भागवत कथामृत

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह।
कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.3.43)

-निवेदन-

कान्तिः सिताऽऽमृशति निन्दित शारदेन्दु
र्यत्रैकतो विलसितामसिताङ्गशोभाम्।
वृन्दावनेऽपि कृतयामुनगाङ्गसङ्ग
राधामुकुन्दयुगलं तदहं नमामि।।

-: अथ ध्यानम् :-

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभं
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कङ्कणम्।
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः।।

अस्ति स्वस्तरूणो कराग्रविगलत्कल्प प्रसूनाप्लुतं
वस्तु प्रस्तुतवेणुनादलहरी निर्वाण निर्व्याकुलम्।
स्रस्तस्रस्त निबद्धनीविविलासद्गोपोसहस्रावृतं
हस्तन्यस्तन तापवर्गमखिलोदारं किशोराकृति।।

इत्येवं ध्यात्वा पाठमारभेत।

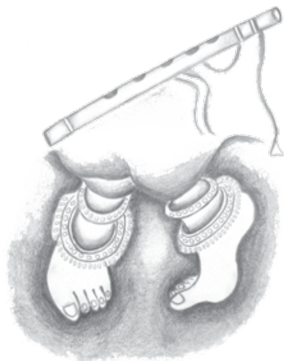
।।श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः।।

कृष्णद्वैपायन व्यास कृत श्रीमद्भागवतम् के
मूल पाठ की कथारूप प्रस्तुति

भागवत कथामृत

कथा व्यास

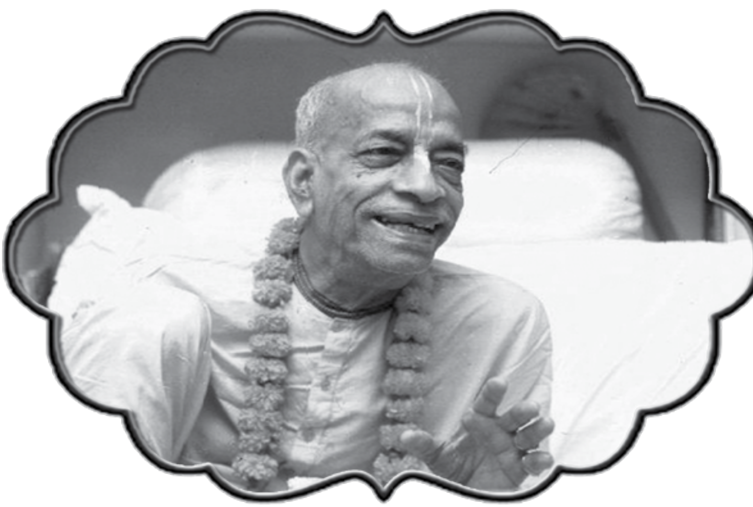
सन्त श्री राधा दामोदर दास जी



"वृन्दावनं परित्यज्य-पादम् एकम् न गच्छति।"

अखिल ब्रह्माण्ड नायक समस्त कारणों के कारण श्रीकृष्णचन्द्र भगवान सर्वत्र होते हुये भी अपने प्रिय बाल सखाओं, ब्रज वासियों, माता-पिता-वसुदेव-देवकी, नन्द-यशोदा एवं गोपियों को छोड़कर एक पद भी ब्रज से बाहर नहीं जाते। भगवान के भक्त कभी श्रीवृन्दावन छोड़ कर बाहर नहीं जाते तो भगवान भी अपने भक्त को छोड़कर श्रीवृन्दावन से बाहर नहीं जाते। ऐसे ब्रज में गोपियों का महाभाव है। कृष्णलीला में जो भगवान श्रीधाम वृन्दावन से बाहर जाते है वे द्वारका वाले वासुदेव-कृष्ण हैं। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र नन्द के लाला, श्रीकृष्ण वृन्दावन से बाहर नहीं जाते। ऐसे नन्द यशोदा के लाला भगवान बालकृष्ण को हम सब मिलकर प्रणाम करते हैं।

समर्पण



कृष्णकृपाश्रीमूर्ति

श्री श्रीमद् ए०सी० भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य: अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ

एवं मेरे गुरुदेव श्रील गोपालकृष्ण गोस्वामी महाराज

विशेष आभार

इस ग्रन्थ को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में विशेषतः श्रीमती ऋतु गुप्ता का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। जिन्होंने अपना अधिक से अधिक समय प्रदान करके इसका लेखन, पाठ-संशोधन आदि मूल्यवान सेवायें प्रदान करके इसको मूर्तिमान रुप दिया। मैं इनकी सेवाओं के लिए आंतरिक हृदय से आभारी हूँ और श्रीश्री राधा पार्थसारथी के श्रीचरणों में यही प्रार्थना करता हूँ की वे अपना चरणाश्रय देकर इन्हें प्रेमाभक्ति प्रदान करें।

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान

सन्त श्री राधा दामोदर दास जी

श्रीश्री राधा पार्थसारथी मन्दिर,
इस्कॉन, हरे कृष्ण हिल,
ईस्ट ऑफ कैलाश, संत नगर,
मेन रोड, नई दिल्ली, पिन - 110065
दूरध्वनी- 262-35133-37,
09891493515

मुकेश गुप्ता / ऋतु गुप्ता

डी-67, सेक्टर-36, नोएडा।
दूरध्वनी- 9810553822

डॉ राम कुमार गुप्ता / राहुल गुप्ता

56- एल, मधुवन कॉलोनी
बागपत रोड, मेरठ- 250002
दूरध्वनी- 9412201719,
9837072188

प्रियव्रत दास

85-बी, लेन-12
सरोजनी पार्क, शास्त्री नगर
नई दिल्ली- 110031
दूरध्वनी- 9268567084

महेश गिरी
सांसद, लोक सभा
पूर्वी दिल्ली संसदीय क्षेत्र

सदस्यः

- **स्थाई समिति - शहरी विकास मंत्रालय**
- **परामर्शदात्री समिति - पर्यटन एवं संस्कृति मंत्रालय**
- **राजघाट समाधि समिति**



परम पूज्य संत श्री राधा दामोदर दास महाराज जी का जीवन "श्रीमद् भागवत कथामृत" से रसपूर्ण है।

पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन जिस भाव से संत श्री राधा दामोदर दास जी ने इस "भागवत कथामृत" में अंकित किया है, यदि किसी मनुष्य ने इस भागवत कथामृत का रसपान किया तो मुझे श्रद्धा है कि उस मनुष्य का हृदय निश्चित ही कृष्ण प्रेम से रसपूर्ण हो जायेगा।

मैं पूज्य संत श्री राधा दामोदर दास महाराज जी के चरणों में वंदन करते हुए इस "भागवत कथामृत" के लिए उन्हें बधाई देता हूँ।

धन्यवाद

Mahesh Giri

महेश गिरी



विषय-सूची

स्कंध-१

स्कंध-२

स्कंध-३

स्कंध–४

स्कंध–५

स्कंध-६

स्कंध-७

स्कंध-८

स्कंध-९

स्कंध-१०

स्कंध-११

स्कंध-१२

लेखक परिचय

प्रस्तावना

श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान् का स्वरूप है, इसी से भक्त भागवतगण भगवत भावना से श्रद्धापूर्वक इसकी पूजा आराधना किया करते हैं। भगवान् व्यासदेव जैसे भगवत्स्वरूप महापुरुष को जिसकी रचना से ही शान्ति मिली। जिसमें सकाम कर्म, निष्काम कर्म, साधन, ज्ञान, सिद्ध ज्ञान, साधन भक्ति, वैधी भक्ति, प्रेम भक्ति, मर्यादा मार्ग, अनुग्रह मार्ग, द्वैत–अद्वैत और द्वैताद्वैत आदि सभी का परम रहस्य बड़ी ही मधुरता के साथ भरा हुआ है। जो सारे मतभेदों से ऊपर उठा हुआ अथवा सभी मतभेदों का समन्वय करनेवाला महान ग्रन्थ है।

उस भागवत की महिमा क्या कही जाए, इसके प्रत्येक अंग ने भगवत, भावपूर्ण परमहंस ज्ञान–सुधा–सरिता की बाढ़ ला दी हैं। "यस्मिन् परमहंस एकम् ज्ञानं पर गीयते"। भगवान् के मधुरतम प्रेम रस का छलकता हुआ सागर है–श्रीमद्भागवत। इसी से भावुक भक्तगण इसमें सदा अवगाहन करते हैं। परम मधुर भगवद रस से भरा हुआ "स्वादु–स्वादु पद पदे" ऐसा ग्रन्थ बस यह एक ही है, इसकी कहीं तुलना नहीं है, विद्या का तो यह भंडार ही है।

इस परमहंस संहिता का यथार्थ आनन्द तो उन्हीं सौभाग्यशाली भक्तों को किसी सीमा तक मिल सकता है जो हृदय की सच्ची लगन के साथ श्रद्धा भक्तिपूर्वक केवल भगवत प्रेम की प्राप्ति के लिए ही इसका परायण करते हैं। श्रीमद्भागवत के सेवन का यथार्थ आनंद तो भगवत्प्रेमी पुरुषों को ही प्राप्त होता है, जो लोग अपनी विद्याबुद्धि का अभिमान छोड़कर और केवल भगवत कृपा का आश्रय लेकर श्रीमद्भागवत का अध्ययन करते हैं वे ही इसके भावों का अपने–अपने अधिकार के अनुसार हृदयङ्गम कर सकते हैं। श्रीमद्भागवत एक आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है, इसके पारायन से पारमर्थिक कार्य सिद्ध होते है। भगवान् की मधुर लीलाओं का चिन्तन, श्रवण करके व्यक्ति को परम पुरूषार्थ एवं भगवत प्रेम की प्राप्ति होती है।

इस दिव्य ग्रन्थ का जितना भी प्रचार किया जाये उतना ही जगत् का मङ्गल होगा। इस समय सारा संसार जल रहा है, सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ है, सारा संसार दु:ख एवं अशान्ति की भीषण ज्वाला से जल रहा है, संसार के कोने-कोने में मार काट मची हुई है और हर दिन लाखों मनुष्यों का संहार हो रहा है। करोड़ो-अरबों की सम्पत्ति एक-दूसरे के विनाश के लिये खर्च की जा रही है। विज्ञान की सारी शक्ति पृथ्वी को शमशान के रूप में परिणत करने में लगी हुई है। आसुरी शक्ति का बोलबाला है, संसार के बड़े-से-बड़े मस्तिष्क संहार के नये-नये साधनों को ढूँढ निकालने में व्यस्त हैं। अत: जगत में सुख-शान्ति एंव प्रेम का प्रसार करने तथा भगवत कृपा का जीवन में अनुभव करने के लिये श्रीमद् भागवत का पाठ-पारायन एवं अनुशीलन परम आवश्यक है क्योंकि भागवत साक्षात् भगवान् है और भगवान् भक्तों की रक्षा करते हैं।

इस महान ग्रन्थ श्रीमद् भागवत के पाठ-संशोधन, अनुवाद, प्रूफ-संशोधन आदि में डॉ. आर. के. गुप्ता, श्री मुकेश गुप्ता, श्री राहुल गुप्ता, एवं सर्वसाक्षी प्रभु, नन्दगोपाल जीवन दास, अनुत्तम हरि दास ने बड़ा ही काम किया है। इसके उपरान्त इस अमृत ग्रन्थ का मुद्रण कार्य में सहयोग करने वाले उन भगवत प्रेमी भक्त का हृदय से आभारी हूँ। भगवान् उन सभी भक्तों को प्रेम भक्ति तथा अपने श्री चरणों में आश्रय दें। सब प्रकार से सभी बातों में सावधानी रखी गयी है, तथापि इतने विशाल ग्रन्थ की छपाई में जहाँ-तहाँ भूलें अवश्य रही होंगी, कृपालु पाठकों से प्रार्थना है कि उन्हें पाठ, अनुवाद या छपाई में जहाँ भूल दिखाई दें, कृपया वे क्षमा कर देवें।

प्रस्तुत श्रीमद् भागवत ग्रन्थ का प्रकाशन श्री सतीश अहुजा, श्री महेन्दर शर्मा, श्री भरत अग्रवाल श्री अजय सिंहल, श्री प्रभु दयाल शर्मा, श्री विजय वर्मा, श्री आर.एन. बत्रा, श्री गौरव गोयल, आदि मित्रों के सहयोग से ही सम्भव हो सका है। अतएव मैं सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता का अनुभव करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ, इन लोगों के सहयोग के बिना यह ग्रन्थ प्रकाशित करना मेरे लिये सम्भव नहीं था।

अन्त में निवेदन है कि यह सब कुछ जो सम्भव हुआ है, इसमें गुरूकृपा, संतकृपा, वैष्णवकृपा, भगवतकृपा ही मूल कारण है और सब कुछ तो केवल निमित्तमात्र है। मैं अपना बड़ा सौभाग्य समझता हूँ और श्री भगवान् का बड़ा ही कृपा प्रसाद मानता हूँ कि कई महीनों से प्राय: श्रीमद् भागवत के ही अध्ययन चिन्तन मनन आदि में लगे

जन–मानस के लिये सीधा–सरल बोधगम्य, रसमय, भावमय, संगीतमय इस भागवत रूपी प्रेम सागर को भेंट करता हूँ। कृपालु साधक सन्त इस प्रेम सागर रूपी भागवत में गोता लगाते हुए आनन्दित हो तभी मेरा प्रयास सार्थक होगा।

दासानुदास
सन्त श्री राधा दामोदर दास जी
श्रीश्रीराधापार्थ सारथी मन्दिर,
इस्कॉन, नई दिल्ली
2 मार्च 2018

ॐ श्री गणेशाय नमः , ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

आरती

श्री बाँके बिहारी तेरी आरती गाऊँ। हे गिरधर तेरी आरती गाऊँ।।
श्याम सुन्दर तेरी आरती गाऊँ। कुंज बिहारी तेरी आरती गाऊँ।।
मोर मुकुट प्रभु शीश पे सोहे। प्यारी बंसी मेरो मन मोहे।।
देख छवि बलिहारी मैं जाऊँ। श्री बाँके बिहारी तेरी आरती गाऊँ।।
चरणों से निकली गंगा प्यारी। जिसने सारी दुनिया तारी।।
मैं उन चरणों के दर्शन पाऊँ। श्री बांके बिहारी तेरी आरती गाऊँ।।
दास अनाथ के नाथ आप हो। दु:ख सुख जीवन प्यारे साथ आप हो।।
(मैं) हरि चरणों में शीश झुकाऊँ। श्री बांके बिहारी तेरी आरती गाऊँ।।
श्री हरिदास के प्यारे तुम हो। मेरे मोहन जीवन धन हो।।
देख युगल छवि बलि-बलि जाऊँ। श्री बांके बिहारी तेरी आरती गाऊँ।।

मंगलाचरण

ॐ अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान्वेणोरधयापूरयन्गोपवृन्दैर्
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः।।

गोपालपाल भुक्नैकपालम् संसारमाया मर्तिमहिजाहि।
यसोविशालम शिशुपाल कालम् बाल मुकुन्दं मनसा स्मरामि।।

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोस्मी।।

नमो कुंज बिहारिणैः।
स्वामि श्री हरिदासाय गुरुनाम् गुरु वैशाय। गुरुबरथे तऽकतराज्यं विचरण वनम्,
पंदपदम्यां प्रिर्याया पाणि स्पृशाय क्षाम्रुभ्यां मृगौ पथिकौ जौ हरिः इन्द्राणुजभ्यां।

वैहरुपिया सूर्पनखा प्रिया विरहा रोर्पोपित रुह भ्रजंभ व्रसताविधि
बधसेतु खलदवदहन कोषलिन्द्रा अवतान्नः।

कृष्ण त्वदियपदपङ्कजपञ्जरान्त अद्यैव मे विशतुमानस राजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः कण्ठावरोधनविधो स्मरणं कुतऽस्ते।।

अतुलितबलधामं हेमशैलाभवदेह, दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनांमगगण्यम्
सकलगुण निधानं वनराणांधीशं, रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैवनरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततु जयमुदीरयोत्।।

मंगलम् भगवान् विष्णु मंगलम् गरुडध्वजः।
मंगलम् पुण्डीराक्ष मंगलाय तनोऽहरि।।

(जय) श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि–गौरभक्तवृन्द।।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण–कृष्ण हरे–हरे।
हरे राम हरे राम, राम–राम हरे–हरे।।

मेरी भवबाधा हरो श्री राधा नागर सोई
जा तन की छाई परै स्याम हरि दुति होई।
श्री राधा मेरी स्वामिनी, मैं राधा जी को दास
जन्म–जन्म मोही दीजियो, श्री वृन्दावन को बास
लाख बार हरि–हरि कहे, एक बार हरि को दास
अति प्रसन्न श्री लाड़ली, सदा विपिन को वास
जय–जय श्री राधा रमन जय जय श्री नवल किशोर
जय गोपी चित चोर प्रभु जय–जय माखन चोर।

भक्त भक्ति भगवन्त गुरु चर्तुनाम वपु एक।
इनके पद बंदन किए, नासत विघ्न अनेक।।

गीत १

स्वागतम् कृष्ण शरणागत कृष्णः। स्वागतम् सुस्वागतम् शरणागतम कृष्णः।।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण।। स्वागतम् कृष्ण शरणागत कृष्ण।

गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में लिखा है

"राम कथा सुन्दर करतारी। संशय विहग उडावन हरि।।"

कीर्तन कथा के प्राण हैं। प्राण की रक्षा करना सभी का धर्म हैं। करताली देने से वृक्ष से पक्षी उड़ जाते हैं, उसी प्रकार शरीर एक वृक्ष है, शरीर रूपी वृक्ष में कई पक्षी बैठे हैं। जैसे ताली देने से वृक्ष का पक्षी उड़ जाता है, शरीर रूपी वृक्ष में काम, क्रोध लोभादि अनेक पक्षी बैठे हैं। इनको भगाना है तो करताली देते हुए शरीर रूपी वृक्ष से इन पक्षी को भगाएँ।

स्वागतम् कृष्ण शरणागतं कृष्ण।।

अभी तो आता ही होगा सलोना मेरा हम राह उसी की ताका करते हैं,
कविता सविता नहीं जानते हैं, मन में जो आया बताया करते हैं।
पड़के उनके पद पंकज में, चलते-चलते जो थका करते हैं।
उनका रूप रस पीया करते हैं, उनकी छवि छाप झाँका करते हैं।

स्वागतम् कृष्ण शरणागतं कृष्ण।

अपने प्रभु को हम ढूंढ़ लियो हैं, जैसे लाख अमलक लाखन में।
प्रभु के अंग में जितनी नरमी, उतनी नरमी नहीं माखन में।
छवि देखत ही मैं तो छांग रहयौ, मेरा चित्त चुरायो लियो झांकन में।
जिया राम बसौ, प्यारी प्यार बसौ, दोनों आँखन में।

स्वागतम् कृष्ण शरणागतं कृष्ण।।

गीत २

गोविन्द राधे माधव, गोपाल राधे माधव।
गोविन्द राधेमाधव, गोपाल राधे माधव।।
मेरे माधव, मेरे माधव, मेरे माधव, मेरे माधव।
गोविन्द राधे माधव, गोपाल राधे माधव-2
मेरे माधव...

-: प्रार्थना :-

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेषयन्तम्!
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं, बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि।।1।।

श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे मुरारे! हे नाथ! नारायण! वासुदेव।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव, गोविन्द! दामोदर माधवेति।।2।।

विक्रेतुकाया किल गोपकन्या, मुरारिपदार्पितचित्तवृत्तिः।

दध्यादिकं मोहवशाद्वोचद, गोविन्द! दामोदर! माधवेति।।3।।

गृहे गृहे गोपवधू कदम्बाः, सर्वे मिलीत्वा समवाय योगम्।
पुण्यानि नामानि पठन्ति नित्यं, गोविन्द! दामोदर! माधवेति।।4।।

सुखंशयाना निलये निजेऽपि, नामानि विष्णोः प्रवदन्ति मर्त्याः।
ते निश्चितं तमन्यतां व्रजन्ति, गोविन्द! दामोदर! माधवेति।।5।।

जिह्वे सदैवं भज सुन्दराणि, नामानि कृष्णस्य मनोहराणि।
समस्त भक्तार्ति विनाशनानि, गोविन्द! दामोदर! माधवेति।।6।।

सुखावसाने इदमेव सारं, दुखावसाने इदमेव ज्ञेयम्।
देहावसाने इदमेव जाप्य, गोविन्द! दामोदर! मोधवेति।।7।।

श्रीकृष्ण राधावर गोकुलेश, गोपाल गोवर्धननाथ विष्णो।
जिव्हे पिबस्वामृतमेदेव, गोविन्द! दामोदर! माधवेति।।8।।

जिह्वे रसज्ञे मधुरप्रियात्वा, सत्यं दितं त्वां परम वदामि।
आवर्णयेथा मधुराक्षराणि, गोविन्द! दामोदर! माधवेति।।9।।

त्वामेव याचे मम देहि जिह्वे, समागते दण्डधरे कृतान्ते।
वक्तयमेवं मधुरं सुभक्त्या, गोविन्द! दामोदर! माधवेति।।10।।

मेरे प्रभु कहते हैं।

नाहं वसामि वैकुंठे, योगीनाम् हृदयेशु वा।
यत्र गायन्ति, मद्भक्ता तत्र तिष्ठामि नारद।

परं मंगल श्रीमद्भागवत महापुराण, परमहंस संहीता वैष्णव सन्तो का परम् धन हैं। उन आनंद कंदश्री वृन्दावनचंद्र के, युगल चरणों के लिए ध्यान करते हुए परम रसिक सन्त श्री शुकदेव जी महाराज राजा परीक्षित के लिए प्रभु की पावन लीलाओं का वर्णन कर रहे हैं।

श्रीमद् भागवत साक्षात प्रभु का वाड्मय स्वरूप हैं। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का समन्वय है। भागवत में और श्रीकृष्णचन्द्र, नन्द नन्दन में कोई अंतर नहीं। यह भगवान् का शब्दब्रह्म स्वरूप हैं। श्रीमद्भागवत ज्ञान, वैराग्य और भक्ति तीनों का एक समन्वय सफर हैं। भागवत ईश्वर वाचक भी है और भागवत व्यक्ति वाचक भी हैं। ग्रन्थ भागवत और व्यक्ति भागवत। भागवत कहते हैं भगवान् को, "भगवता – प्रोक्ताम इतिभागवत" जो साक्षात भगवान् की वाणी है उसे कहते भागवत।

"भक्तानां चरित्राणां इति भागवत्म्।"

जिसमें भगवान् के भक्तों के चरित्र का वर्णन किया गया है उसे भी भागवत कहते हैं। यह परम अद्वितीय ग्रन्थ हैं– श्रीमद्भागवतम्।

"यस्मिन्पामहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते"

(श्रीमद्भागवतम् 12.13.18)

भगवान् के सुमधुर प्रेमरस का छलकता हुआ सागर है– श्रीमद्भागवत। जिस समय नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण अपनी लीला को विश्राम देकर के जब गोलोक धाम को जाने लगे तब उद्धव कहने लगे प्रभु आप जा रहे हैं, मैं भी आपके साथ चलूंगा।

नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणर्धमपि केशव।
त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि।।

(श्रीमद्भागवतम् 11.6.43)

भगवान् ने कहा, उद्धव भैया क्या तू मेरे साथ आया था? उद्धव ने कहा, प्रभु मैं आपके साथ तो नहीं आया था।

भगवान् ने कहा, जब तू मेरे साथ नहीं आया तो जाएगा कैसे?

चलमचित्तं चलम् विनं चलम् जीवनो यौवने।
चलाचले ही संसारे धर्म एको ही निश्चल।।

ये तुम्हारा मन ही चंचल है, धन भी चंचल है तुम्हारा जीवन, यौवन भी चंचल हैं। संसार भी चला–चली का एक खेल हैं। साथ जाने वाली वस्तु केवल एक धर्म ही हैं। उद्धव ने कहा, प्रभु जब आप चले जाएँगे कलिकाल आ जाएगा।

कलिकाल में आपकी निर्गुण उपासना बड़ा ही कठिन हैं। यह जीव कैसे आपको प्राप्त करेगा? कैसे आपसे साक्षात्कार करेगा?

प्रभु कहते हैं, उद्धव मैं अपने सम्पूर्ण श्रीअंग का तेज श्रीमद्भागवत में विराजमान कर रहा हूँ, अपनी समस्त शक्ति भागवत में रख रहा हूँ। यह भागवत साक्षात मेरा ही स्वरूप हैं। श्रीमद्भागवत में और मुझमें कोई अंतर नहीं है।

"तेनहं वाङ्ये मूर्तिः प्रत्यक्षाः वर्तते हरे"

श्रीमद्भागवत भगवान् की वाङ्मयी मूर्ति है। यदि भगवान् को बुलाना हो, कहीं बैठना हो, भागवत रूपी आसन पर बिठा दो। जहाँ पर भागवत रूपी आसन बिछ जाता है, वहीं मेरे गोविन्द आकर बैठ जाते हैं। यहाँ पर साक्षात भागवत रूपी आसन बिछा है, तो क्यों बिहारी जी नहीं आएंगे? ठाकुर जी साक्षात् पधार चुके हैं। इसमें कोई संशय नहीं।

भागवत माहात्म्य



भागवत माहात्म्य

अथ प्रथमोऽध्यायः

देवर्षि नारद की भक्ति से भेंट

देखिए प्रथम श्लोक में कितना सुन्दर वर्णन कर रहे हैं। वेदव्यास जी-

"सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्यादिहेतवे।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः।।

(भागवत माहात्म्य 1.1)

सत् चित् आनंद जिसके स्वरूप हैं। तीन प्रकार के तापों को दूर करने वाले हैं–आध्यात्मिक, आधिदैविक ताप, आधि भौतिक ताप दूर करने वाले हैं। जन्म स्थिति और प्रलय हेतु श्रीकृष्णाय वयं नमः। ऐसे श्रीकृष्ण के चरणों में हम सब मिलकर वंदन करें। भगवान् ज्ञान रूप हैं, सत रूप और आनंद रूप हैं। आनंद स्वरूप कोटि विख्स आनंद विषय का उत्पादन करने वाले हैं। जिनके चरणों की शरण ग्रहण करने से समस्त तापों का निवारण होता हैं। ऐसे श्री भगवान् के चरणों में हम सब प्रणाम करें, वन्दन करें।

एक बार नैमिषारण्य में 88 हजार शौनकादि ऋषि एकत्र हुए और सूत जी महाराज पधारे। शौनकादि ऋषिगण ने सूत जी का वन्दन किया, प्रणाम किया, आसन दिया, प्रार्थना की–

"अज्ञानध्वान्तविध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभ।
सूताख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम्।"

(भागवत माहात्म्य 1.4)

हे सूत जी आप अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने में करोड़ों सूर्य के समान हैं आपकी प्रतिभा है 'ममकर्ण रसायन्'

हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमारे हृदय और कान को पवित्र करने वाली कथा सुनाइए। ज्ञान, भक्ति, वैराग्य कैसे भक्त के हृदय में बढ़ते हैं। व्याख्या करिए। यह वैष्णव माया, मोह को दूर रखकर कैसे भगवान् की भक्ति में जुड़ जाते हैं। इसकी भी व्याख्या करिए।

इस घोर कलिकाल में जीव देखने में मनुष्य लगता है लेकिन आसुरी वृत्ति से भरा है। अतः हे सूत जी आत्मशोधन के लिए हम क्या करें? आप ऐसा कुछ बताएं

और पावन से पावन विषय बतावें। कृष्ण प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन क्या है? यह भी बताइए। सूत जी हमने सुना है चिन्तामणि या पारसमणि से संसार के सब सुख प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ तक कि स्वर्ग सुख भी प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु योगी भी दुर्लभ वैकुण्ठ धाम प्राप्त नहीं कर सकते। उस वैकुण्ठ को प्राप्त करने के लिए 'प्रायच्छति गुरुः प्रीतो' गुरु को प्रसन्न करना ही है और आशीर्वाद लेना ही होगा।

देखिए संसार में है सब व्यथा और हमारे कृष्ण की है कथा "अथातो कृष्ण कथा" गोविन्द कथा, हरि कथा। संस्कृत में कथा माने कैसे? कथम् शब्द वैकण में आया है? कैसे परमात्मा संसार को जन्म देता है? सृष्टि करता है? कैसे पालन करता है? कैसे प्रलय की ओर ले जाता है? अर्थात् कथा माने है कैसे?

संसार में हम दादा–दादी, नाना–नानी की कथा सुनते हैं। भाइयों ये दादा–दादी, नाना–नानी की कथा नहीं हैं। ये तो मेरे गोविन्द की कथा है संसार में सब है व्यथा मेरे कृष्ण की है कथा।

सांसारिक लोग 24 घंटों ग्राम्य कथा का आनंद लेते हैं। प्रजल्प करते हैं। जिन्हें भगवान् को पाना हो, भगवत धाम जाना हो, भक्ति करना हो। वे अति आहार से, अधिक संग्रह करने की इच्छा से, अधिक जनसंघ प्रिय से दूर रहे, लालसा से दूर रहे, ये विषय भक्ति में बाधक है।

अत्याहार प्रयासस्य, प्रजल्पोनियमाग्रहः
जनसंगश्च, लौल्यचं षड्भि र्भक्ति विनश्यति।

(श्री उपदेशामृत 2)

छह प्रकार के विषयों का जो पालन करते हैं। वे कृष्ण की ओर भक्ति में बढ़ जाते हैं। देखिए गोपियाँ कितना सुन्दर नृत्य करती है।

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः।

(श्रीमद् भागवतम् 10.31.9)

तव कथामृतं – केवल कथा ही नहीं ये तो अमृत है, कृष्ण की कथा जीव के हृदय को निर्मल करती हैं। पुण्य अर्जन कराती हैं। हृदय से सब प्रकार के अभद्र विचार नष्ट हो जाते हैं?

शृण्वतां स्वकथाः कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि, विधुनोति सुहृत्सताम्।।

(श्रीमद् भागवतम् 1.2.17)

कृष्ण कथा सुनने मात्र से ही जीव का परम कल्याण होता है।
कृष्ण कथा अमृत के समान हैं। किसी ने कहा, अमृत कहाँ है? उत्तर मिलाः–

1. चन्द्रमा–

उत्तर मिला – अमृत चन्द्रमा में हैं। यदि अमृत चन्द्रमा में होता तो यह क्षीण क्यों होता 15 दिन घटता 15 दिन बढ़ता क्यों है?

2. सागर–

कहा, अमृत सागर में हैं। यदि अमृत सागर में होता तो सागर में से विष क्यों निकलता।

3. देवता–

बोला अमृत कहाँ है — देवताओं के पास। यदि देवताओं के पास अमृत होता तो स्वर्ग से उनका पतन नहीं होता।

4. पत्नी–

बोला अमृत कहाँ है – अमृत पत्नियों के मुख में हैं। यदि अमृत पत्नी के मुख में होता तो पत्नी कभी कड़वा नहीं बोलती। अपने पति को अमर बना देती है। परन्तु पत्नियाँ तो चन्द्रमुखी, सूर्यमुखी तथा ज्वालामुखी बन जाती हैं।

5. सत्पुरुष सत्संग –

यदि अमृत है तो केवल सत्पुरुषों के कंठ में हैं। संसार में यदि अमृत कहीं है तो सत्संग में तथा सत्पुरुषों की वाणी में। जो केवल हरि कथा करते हैं। भागवत कथा करते हैं।

'तव कथामृत–तप्तजीवनं कविभिरीडतं कल्मषापहम्।'

गोपियाँ कहती हैं, उस तपीय जीवन में यदि परम् शांति परम सुख चाहते हो तो श्रीमद्भागवत की कथा में आ जाइए। वह अमृत हैं। जिस अमृत को पीकर कभी आपके पुण्य क्षीण नहीं होंगे। जितना इस अमृत का पान करेंगे उतनी ही प्यास बढ़ेगी। पुण्य फल की प्राप्ति होगी।

'ममकरण रसायनम' शौनकादि ऋषि भी कहते हैं कि सूत जी महाराज कृपा करके हमें वही भागवत सुनाइए। जो हमारे हृदय और कान को पवित्र करने वाले और भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के साधन हैं?

सूत जी महाराज शौनकादि ऋषियों से कहते हैं कि आपके हृदय में प्रेम है, श्रद्धा

है। मैं आपको भागवत अवश्य सुनाऊँगा। जिसे श्रवण करके संसार से भय नष्ट हो जाएगा। परन्तु हे ऋषियों मैं अपने गुरु जी को प्रणाम करके ही आपकी प्रार्थना पूरी करूँगा।

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेत कृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तखोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.2.1)

इस प्रकार सूत जी महाराज ने मन ही मन अपने गुरु को प्रणाम किया, स्तुति की और अपने गुरु से प्रार्थना की इस भागवत को सुनाने के लिए शक्ति प्रदान कीजिए।

गीतम्

सूत जी कह रहे हैं,

तेरी शरण प्रभु – तेरी शरण प्रभु,
तेरी शरण प्रभु मैं आया हूँ।
भव जल लहरी नदिया गहरी,
कर मन देह बहाया हूँ।
तेरी शरण प्रभु तेरी शरण
पल–पल माया जाल बिछाया,
चारों तरफ फँसाया हूँ।
तेरी शरण प्रभु तेरी शरण।
तेरी शरण प्रभु मैं आया हूँ।
क्षण भंग गारा विषय विकारा,
जन्म जन्म भरमाया हूँ।
ब्रह्मानन्द दास दासन को चरण कमल लपटाया हूँ।
तेरी शरण प्रभु तेरी शरण
तेरी शरण प्रभु मैं आया हूँ।

कालव्याल मुख ग्रासत्रासनिर्णाशहेतवे।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौकीरेण भाषितम्।।

(भागवत माहात्म्य 1.11)

सूत जी कहते हैं, प्रत्येक जीव काल के मुख में पड़ा है, कोई ऐसा नहीं कह

सकता मेरी मृत्यु नहीं होगी। काल रूपी विशाल अजगर के मुख में जीव क्रमशः मृत्यु की ओर जा रहा है ओर उसे मालूम नहीं पड़ रहा। किन्तु यदि कोई इस काल रूपी अजगर से बचना चाहे तो साक्षात भागवत रूपी भगवान् की शरण में आना आवश्यक है।

"कलौ कीरेण भाषितम्" रात के भीषण अंधकार को जैसे भुवन भास्कर सूर्य देव नष्ट कर देते हैं। उसी प्रकार भागवत की शरण ग्रहण करने से जीव के समस्त अंधकार दूर हो जाते हैं। कोई ऐसा नहीं कह सकता मेरी मृत्यु नहीं होगी यदि तुम्हारा जन्म है तो मृत्यु निश्चित है उसे कोई टाल नहीं सकता।

गीता में कहा है–

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।

(श्रीमद्भगवद् गीता 2.27)

यदि जन्म और मृत्यु के चक्र से छूटना हो तो श्रीमदभागवत्कार कहते हैं। श्रीमदभागवत की कथा सुनो।

राजा परीक्षित को मालूम था कि सातवें दिन तक्षक के द्वारा मेरी मृत्यु होगी, परन्तु हमें तो एक पल का भी भरोसा नहीं, खबर नहीं। सामान सौ साल का, खबर नहीं एक पल का।

ये भागवत कोई मनगढंत कथा नहीं हैं। मैं आपको कोई आत्मकथा सुनाने नहीं जा रहा हूँ। ये तो भागवत कथा है, हरि कथा है, श्रीकृष्ण कथा है, गोविन्द की कथा हैं। 'कलौकी रेण भाषितम्'।

कलियुग के भीषण अंधकार से जीव को आलोक की ओर ले जाना हो तो श्रीमद्भागवत का आश्रय ग्रहण ही समीचिन हैं। ये भागवत की परम्परा हैं। भागवत की परम्परा कैसी है? सबसे पहले भागवत प्रारंभ भगवान् नारायण से हुआ। भगवान् नारायण ने ब्रह्मा जी को दिया, ब्रह्मा जी से नारद जी को मिला। नारद जी ने वेदव्यास जी को दिया और वेदव्यास जी ने चर्तुश्लोक की भागवत को लेकर 18,000 श्लोक बना दिए। वही भागवत अपने पुत्र परम् रसिक सन्त ब्रह्मवादी निराकार उपासक शुकदेव जी महाराज को दिया।

शुकदेव जी महाराज जिस समय परीक्षित को भागवत सुना रहे थे तो वहाँ पर सूत जी महाराज कहते हैं, मैं भी वहाँ बैठा था। मैंने भी शुकदेव जी महाराज के मुखारविन्द से भागवत सुनी। वही भागवत कथा मैं आपको सुनाऊँगा। शुकदेव जी

कहते हैं। यह कोई मनगढ़ंत कथा नही हैं। यह तो हरि कथा, गोविन्द की कथा हैं।

'जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत्।'

(भागवत माहात्म्य 1.12)

एक नहीं अनेक जन्माँतरों के पुण्य का संचय जब हमारे जीवन में होता है तब उनको भागवत श्रवण (शुकदेव से सूतजी द्वारा कथा श्रवण) करने को मिला हैं। ये मत समझना कि सहज हमें भागवत् की प्राप्ति हो गई हैं। नहीं, नहीं......

"जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत्।।"

(भागवत माहात्म्य 1.12)

एक ही नहीं अनेक जन्मों-जन्माँतरों के पुण्य जब हमारे जीवन-में उदय होते हैं। तब हमें भागवत कथा सुनने को मिलती है या भागवत सुनने की इच्छा मन में जागृत होती हैं। इतनी बड़ी महिमा भागवत की हैं। ये तो देव दुर्लभ है श्रीमद्भागवत।

एक बार देवता लोग अमृत के कलश लेकर शुकदेव जी महाराज के पास गए।

"सुधाकुम्भ गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन्"

(भागवत माहात्म्य 1.13)

देवताओं का अमृत लेकर शुकदेव के पास जाना

शुकदेव जी महाराज राजा परीक्षित को भागवत सुनाने की तैयारी कर रहे थे। देवताओं ने कहा कि महाराज ये अमृत आप हम से ले लो, और महाराज परीक्षित को पिला दो। परीक्षित की मृत्यु नहीं होगी। कथामृत हमें पान कराओ, अमर लोक में, शुकदेव जी हँसने लगे और कहा कि अरे देवताओं तुम लोग कथा सुनने के लिए आते तो मैं सुनाता, किन्तु तुम तो कथा का विनिमय करने आए हो। अमृत देकर कथा लेना चाहते हो। देवताओं तुम अपने कार्यों को करने के लिए कुशल हो। "स्वकार्य कुशलाः सुराः" (श्रीमद्भागवत माहात्म्य 1.14) अरे ठगो-

क्क सुधा क्क कथालोके, क्क काचः क्व मणिर्महान्।
ब्रह्मरातो विचार्यैव तदा देवांजहास ह।।

(भागवत माहात्म्य 1.16)

शुकदेव जी महाराज हँसकर कहने लगे देवताओं-

"क्क सुधा क्क कथा लोके--"

कहाँ श्रीमद्भागवत की कथा है और कहाँ तुम्हारा ये अमृत। कौन ऐसा मूर्ख होगा

जो मणि देकर कांच खरीदेगा। मणि के समान श्रीमद्भागवत है और कांच के तुल्य तुम्हारा अमृत है।

"अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम्"

(भागवत माहात्म्य 1.17)

अभक्त जानकर शुकदेव जी महाराज ने देवताओं को कथामृत नहीं सुनाया। यह श्रीमद्भागवत कथा सुरलोक में भी दुर्लभ है।

"सुरानां अपि दुर्लभाः"

देवता भी अपने-अपने लोक के लिए चले गए। देखिए, भागवत की पुस्तक आप बाजार से खरीद सकते हैं, जैसे गीता प्रैस गोरखपुर हमारे हिन्दुस्तान में यह बहुत प्रसिद्ध या तो अन्तराष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावनामृत संघ के संस्थापक आचार्य श्रील प्रभुपाद की पुस्तक श्रीमद्भागवत खरीद सकते हैं। आप बाजार से या दुकान से ये भागवत लाइए और पढ़िए, परन्तु भागवत की कथा आप नहीं खरीद सकते हैं। भागवत की कथा बाजार में नहीं बिकती। यदि कोई कहता है कि बाजार में भागवत की कथा बिकती है तो ये बात समझ में नहीं आती।

क्क सुधा क्क कथालोके, क्क काचः मणिर्महान्।
ब्रह्मरातो विचार्यैवंतदा देवाञ्हास ह।।

(भागवत माहात्म्य 1.16)

देवता अमृत देकर कथा खरीद रहे हैं। नहीं-नहीं कथा कहीं बिकती नहीं, हाँ! यदि आपको गोविन्द को खरीदना ही है, मेरे ठाकुर को खरीदना ही हो। किसी ने कहा कि भगवान् भी बिकते हैं, परन्तु मीरा जी के शब्दों में इस भाव को समझ लीजिए। भगवान् कैसे मिलते हैं? और क्या मोलभाव है ठाकुर का?

गीतम्

मैंने लीनो गोविन्दा मोल
माई री मैंने लीनो गोविन्द मोल।
कोई कहे धाने कोई कहे तोड़े,

पर मीरा कहती है-

मैंने लीनो बजन्ता ढोल,
माई री मैंने लीनो बजन्ता ढोल।

मीरा जी ने कहा–

कोई कहै मूढ़ो कोई कहै सूढ़ौ।
मैंने लीनो तराजू तोल,
माई री मैंने लीनों तराजू तोल,
माई री मैंने लीनो गोविन्दा मोल।।

कोई कहे कारो कोई गोरो,
मैंने लीनो आमूलकमोल।
माई री मैंने लीनो आमूलक मोल
मैंने लीनों लीनों लीनो–लीनो गोविन्दा मोल।।
माई री मैंने लीनो गोविन्दा मोल,

मीरा जी कहती हैं–

कोई कहे घर में कोई कहे वन में,

मीरा जी कन्हैया को कहाँ देखा?–

वो तो राधा संग करत किलौल।
मैंने लीनो गोविन्दा मोल,
माई री मैंनो लीनो गोविन्दा मोल।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
वो तो आवत 'प्रेम' के मोल।
माई री मैंने लीनो गोविन्दा मोल,
मैंने लीनो–लीनो, लीनो–लीनो।
मैंने लीनो गोविन्दा मोल,
माई री मैंने लीनो गोविन्दा मोल।।

तो मीरा जी को भगवान् प्रेम के भाव से मिले। भगवान् की प्राप्ति का एकमात्र यह सुगम उपाय हैं। "प्रेम से ही भगवान् को मिलना, प्रेम से ही भजन करना"।

"भजतां प्रीति पूर्वकम्"

देवताओं को अमृत से भी नहीं मिला भागवत्

देवताओं को कथामृत पान नहीं कराया। ये सब देवता भागवत कथा खरीदने के लिए आए थे। कि अमृत ले लो और कथा हमें दे दो। तो भगवान् की कथा कहीं

बाजार में नहीं बकती।

भगवान् का नाम कहीं बाजार में बिकता नहीं हैं। देवताओं को कथामृत नहीं पान कराया। देवता अपने अपने लोक को चले गए। देवताओं ने मन में सोचा अब हम देखें कि राजा परीक्षित भागवत् सुनकर मुक्त कैसे होते हैं? देवताओं ने देखा सात दिन के पश्चात् जब परीक्षित की मुक्ति हो गई। देवताओं को परम् आश्चर्य हुआ। ये सब देवता मिलकर ब्रह्मा जी के पास गए और ब्रह्मा जी के पास जाकर कहा–"हे भगवान्! केवल भागवत् सुनकर जीव की मुक्ति हो जाती है?"

ब्रह्मा जी एक तुलायन्त्र तराजू लेकर के ये सामान्य चीज तोलने वाला तराजू नहीं हैं। ये मनरूपी तराजू में ब्रह्मा जी भागवत तोलने लगे। एक ओर श्रीमद्भागवत को विराजमान किया और दूसरी ओर मुक्ति के सब साधनों को रख दिया। तो जितने भी मुक्ति के सब साधन थे। वे तुच्छ बन गए और श्रीमद्भागवत का पलड़ा भारी बन गया। ब्रह्माजी के साथ समस्त देवता विस्मित हुए, आश्चर्यचकित हुए।

राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धातापि विस्मितः।

(भागवत माहात्म्य 1.18)

ब्रह्मा जी ने कहा देवताओं, इसमें कोई संदेह नहीं कि ये श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान् स्वरूप हैं। भागवत् में और भगवान् में कोई अंतर नहीं हैं। "श्रीमद्भागवत ताक्ष्यं – प्रत्यक्षः कृष्णैव ही, श्रीकृतोऽसि मयानार्थः – मुक्तार्थम् भव सागरे, जिसने भी भागवत स्वीकार किया –उसने मुक्ति पर अधिकार पा लिया। साक्षात् भगवान् का यह शब्द ब्रह्म हैं। ये श्रीमद्भागवत। शौनकादि ऋषियों ने प्रश्न किया–

सूत जी महाराज ये बताइए कि भागवत् में ऐसा कहा जाता है और लिखा भी है कि श्रीमद्भागवत सप्ताह ज्ञानयज्ञ। क्या, भागवत् सात दिन ही सुनना चाहिए?

या भागवत् नौ दिन या ग्यारह दिन में या एक महीने में या एक बरस में भागवत नहीं हो सकती? देखिए भागवत् सात दिन क्या सात जीवन में पूरी होने वाली नहीं। परन्तु श्रीमद्भागवत सप्ताह ज्ञानयज्ञ। ऐसा लिखा जाता है क्योंकि हमें सात दिन ही बैठकर भागवत् को सुनना हैं। तुम्हारे जीवन में कभी आठवां दिन नहीं होगा। सात दिन ही व्यक्ति के जीवन में वास्तव में हैं। आठवां दिन नहीं हैं। परीक्षित को ये श्राप लगा था "इति लंघते मर्यादम् तक्षकः सप्तमे हानि" सात दिन में तक्षक नाम का सर्प परीक्षित को काटेगा। अब देखिए आज से गिनना शुरू कीजिए–

प्रेम से बोलो हरे कृष्ण – जय श्री कृष्ण।

आज से गिनना शुरू कीजिए सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि", रवि। जीवन में कभी आठवां दिन नहीं होगा। सप्तवार है अथवा सात दिन ही जीवन में निश्चित हैं। आठवां दिन नहीं होगा। अतः श्रीमद्भागवत "सप्ताह ज्ञान यज्ञ" इन सातों दिन में से कोई भी दिन हमारा भी निश्चित है वो तक्षक काल बैठा है – क्यों न हम श्रीमद्भागवत की शरण हो जाएँ। श्रीमद्भागवत साक्षात रूप से परमात्मा भगवान् का दर्शन करा देने में सक्षम है।

सनतकुमारों से नारद जी की भेंट

सूत जी कहते हैं। कि नारद जी ने सनकादिक ऋषियों से भागवत को सुना है। बोले– महाराज कृपा करके बताइए। कहाँ बैठकर कथा सुनी।

सूत जी महाराज सनकादिक ऋषियों के संवाद कथा प्रसंग से – ये नारद जी की कथा सुना रहे हैं।

"एकदा हि विशाल यां चत्वार ऋषयोऽमलाः।
सत्संगार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम्।"

(भागवत माहात्म्य 1.25)

एक बार ब्रह्मा जी के चार मानस पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन और सनतकुमार – ये बद्री नारायण में भगवान् का स्मरण करने के लिए पहुँचे थे। प्रभु का स्मरण कर रहे थे। सत्संग करने के लिए पहुँचे थे। विशाल पुरी, राजा विशाल ने बनाया है, अब इनका नाम बद्री विशाल पड़ा हैं। जहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु बद्री नारायण के नाम से प्रसिद्ध हैं। अनगिनत विष्णु भक्त भगवान् के दर्शन के लिए जाते हैं। ये चार मानस पुत्र ब्रह्मा जी के बड़े दिव्य भाव से भगवान् का नाम स्मरण करते हैं। और ब्रह्मानन्द में खोए रहते हैं।

संकीर्तन

हरि शरणं - हरिंशरणं, हरि शरणं - हरि शरणं

जिनके मुख से निरंतर निकलता है प्रभु का दिव्य नाम। प्रभु का स्मरण करते रहते हैं। जब ये गए तो सामने से नारद जी आ रहे हैं। नारद जी को देखकर के सनत कुमारों ने पूछा कि नारद आप कहाँ से आ रहे हैं? कहाँ जा रहे हैं? बड़े व्याकुल दिखाई देते हो, क्या बात है? आप तो सन्त हैं।

"नोचितं वदकारणम्"

तुम्हें देखकर लगता है कि तुम्हारी कोई अमूल्य वस्तु खो गई है, जिसके लिए तुम परेशान होकर ढूंढने निकले हो, भागे जा रहे हो।

"गतोवित्तो यथा जनः।"

जैसे किसी व्यक्ति का कोई बहुत धन खो गया है जिसे ढूंढने तुम निकले हो। तुम तो सन्त हो भाई – तुम्हें क्या चिंता है।

"कुतोश्चिंतातुरो भवान्"

सन्त का तो धन है- सन्त का क्या धन है?

गीत

हमारो धन राधा श्री राधा श्री राधा श्री राधा-2
परम धन राधा श्री राधा श्री राधा श्री राधा-2
रसिक धन राधा श्री राधा श्री राधा श्री राधा-

नारद जी की व्याकुलता

तो नारद बताओ सच में तुम्हारा कष्ट क्या है? नारद जी ने कहा महाराज मेरा कष्ट, मेरी व्याकुलता अपनी नहीं है– मैं व्याकुल क्यों हूँ?

अहं तु पृथिवीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामिति।
पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा।।

(भागवत माहात्म्य 1.28)

हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरंग सेतुबन्धनम्।
एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः।।

(भागवत माहात्म्य 1.29)

नारद जी ने कहा कि भगवन् मैंने इस पृथ्वी को परम श्रेष्ठ माना। मन में सोचा कि किसी तीर्थ में, किसी धाम में किसी देवालय में जाऊँगा तो मेरे मन को शांति मिलेगी। मैंने अनेक तीर्थों में भ्रमण किया। 'श्रीरंग सेतुबन्धनम् पुष्कर, काशी, गोदावरी, हरिक्षेत्रे, कुरुक्षेत्रे, भ्रमाणि इतस्ततः।

बहुत जगह नारद ने भ्रमण किया पर कहीं उनके मन को शांति नहीं मिली। अशान्त वातावरण है–सर्वत्र। तीर्थों में, देवालयों में कहीं शांति नहीं। "आदिषु तीर्थेषु" सब तरफ जीव आक्रान्त हो रहा हैं। न सत्य है न दया हैं। न सोच है न पवित्रता है– ये सब चीजें प्राणियों के अंदर से भ्रष्ट हो चुके हैं। थोड़े से पैसे के लोभ में पिता

अपनी बेटी को भी बेच देते हैं। कलि अपने अधर्म मित्र के साथ सबके हृदय में घर कर चुके हैं। पेट भरने के लिए जीव झूठ बोलते हैं।

"उदरम्भरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः"

(भागवत माहात्म्य 1.31)

नारद कहते हैं कि सब एक दूसरे की निन्दा करते हैं। एक दूसरे के लिए स्तुति, कपट ईर्ष्या मन में रखते हैं। अधर्म के मित्र कली ने सबको अपनी बांहों में कस रखा है।

सर्वत्र जब मैंने अधर्म ही अधर्म देखा कलि का दर्शन किया तो भ्रमण करते-करते नारद जी कहते हैं कि मैं श्री यमुना जी के तट पर वृन्दावन में पहुँचा।

एवं पश्यन् कले र्दोषान् पर्यटन्नवनीमहम्।
यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत्।।

(भागवत माहात्म्य 1.37)

यमुना जी के तट पर मैंने क्या देखा – एक सुन्दर युवती बैठी है जिसके पास दो वृद्ध पुरुष बैठे हैं। जिसकी सेवा में अनेक स्त्रियाँ लगी हैं। कोई पंखा कर रही हैं। कोई जल भर कर ला रही है, कोई चरण दबा रही हैं। जब मुझे देखा तो आवाज लगाई।

नारद जी का वृन्दावन पहुँचना

भो भोः साधो क्षणं तिष्ठमच्चिंन्तामपि नाशय।
दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाघहरं परम्।।

(भागवत माहात्म्य1.42)

हे साधु! हे सन्तजी! ठहरो क्योंकि सन्त के दर्शन मात्र से ही जीव का कल्याण हो जाता हैं।

किसी ने लिखा है –

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी की पुण्यात्।
तुलसी संगत साधु की मिटे कोटि अपराध।।

तिष्ठः ठहरो, नारद जी गए नारद जी ने जाकर पूछा हे देवी! आप कौन हैं?

"कासि त्वं काविमौं चेमा, नार्यः काः पद्यलोचनाः।"

(भागवत माहात्म्य 1.44)

हे पद्मालोचन देवी आप कौन हैं, बड़ी उदास हैं? क्या बात है? तब अपना

परिचय नारद जी को देते हुए कहा–

"अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ।
ज्ञान वैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ।।"

(भागवत माहात्म्य 1.45)

मैं भक्ति हूँ, मेरा नाम है भक्ति, मेरे दो पुत्र ज्ञान और वैराग्य हैं। मैं द्राविड़ में पैदा हुई हूँ और कर्नाटक में बड़ी हुई हूँ।

क्वचित्क्वचिन महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता।

(भागवत माहात्म्य 1.48)

भक्ति ने कहा कि कहीं–कहीं महाराष्ट्र में मेरा प्रचार हुआ, परन्तु जब गुजरात में गई तो उन पाखंडियों ने मेरा अंग खंड खंड कर दिया। क्या गुजरात में जाकर भक्ति खंडित हो गई?

प्रेम से बोलो हरे कृष्ण।

भागवत में लिखा है–

"गुर्जरो जीर्णतां गता"

किसी ने इस श्लोक पर चर्चा की – गुजराती मित्र पटेल थे और उन्होंने प्रश्न पूछा कि स्वामी जी 'गुर्जरे जीर्णतांगता' क्या गुजरात में भक्ति खंडित हो गई? देखने में लगता है कि भक्ति का विशेष दर्शन गुजरात में होता हैं। बड़े प्रवचन केसरी गुजरात में ही है और आप कहते हैं कि गुजरात में 'गुर्जरे जीर्णतांगता (इसका भाव बताइए) क्या कहना चाहते हैं। भागवत् का श्लोक इसका अर्थ बताइए। 'गुर्जरे जीर्णतां गता' जब व्यक्ति अधिक भोजन कर लेता है तो उसे अजीर्ण हो जाता हैं। गुजरात में इतनी अधिक भक्ति थी कि प्रवचन केसरी ने अधिक भक्ति की कि बाद में अधिक सुन नहीं पाए, सुना नहीं पाए उन्हें भक्ति काा अजीर्ण हो गया।

'गुर्जरे जीर्णतां गता।'

भक्ति कहती है कि–

वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरुपिणी।

(भागवत माहात्म्य 1–50)

परन्तु मैं वृन्दावन में आकर जवान बन गई हूँ और मेरे पुत्र ज्ञान, वैराग्य वृद्धावस्था में है।

"घटते जरठा माता तरुणौ तनयाविति।।"

(भागवत माहात्म्य 1-53)

नारद जी, महात्मा जी ये तो संसार में देखने को मिलता है कि माता-पिता होते हैं वृद्ध और पुत्र होते हैं स्वस्थ और युवा। यहाँ विपरीत कैसे हो गया कि मैं माँ हो गई जवान मेरे पुत्र हो गए वृद्ध, आप कृपा करे मुझे बताएँ, आप तो सन्त हैं?

भक्ति कहती है कि आज हमारा बड़ा भाग का दिन है कोई कहते हैं कि-

सोई दिन भला जा दिन साधु मिलाय।
अंक भरै भेंटिए पाप सरीरा जाए।।

सच्चे साधु के दर्शन से जीव के जन्माँतर के पाप नष्ट हो जाते हैं।

नारद जी

दर्शन साधू के बड़े भाग दरशाए।
जो होवे सूली सजा काँटै ई-तारी जाए।।

आप तो सन्त हैं। नारद जी कृपा करें, तो नारद जी ने कहा कि, भक्ति महारानी! ये है श्री वृन्दावन, जहाँ आप बैठी हैं। ये श्री वृन्दावन,भक्ति प्रधान देश हैं। जहाँ साक्षात् भक्ति का दर्शन होता है।

जहाँ साक्षात भक्ति देवी नृत्य करती है।

'धन्यं वृन्दावनं तेन, भक्तिर्नृत्यति यत्र च।।

(भागवत माहात्म्य 1-61)

भक्ति महारानी आपका तो अर्हनिश निरंतर नृत्य होता रहता है, एक क्षण भी आप अपने नृत्य को बंद नहीं करती हैं। तो जो वृन्दावन में आते हैं वो कहते हैं- राधे-राधे। कहीं भी वृन्दावन में आपका नाम लेना पड़ता है। कीर्तन में आप प्रसन्न होती रहती हैं। किन्तु भक्ति महारानी इस वृन्दावन में आपके तो ग्राहक हैं। आपके पुत्र के नहीं। क्यों ध्यान दें - सदा सर्वदा वृन्दावन में भक्ति का नृत्य हो रहा हैं। बोलो राधे-राधे। देखिए श्रीवृन्दावन धाम है भक्ति प्रधान देश। इसलिए आप जवान होती हैं। हरिद्वार है ज्ञान प्रधान स्थान और नर्मदा है वैराग्य प्रधान स्थान। जिसे भक्ति ग्रहण करनी हो वृन्दावन धाम आए जिसे ज्ञान प्राप्त करना हो वह हरिद्वार जाए, जिसे वैराग्य प्राप्त करना हो नर्मदा स्थान प्राप्त करे। किसी आचार्य ने लिखा हैं। "ज्ञान वैराग्य जहाँ बँटत जेवरी और मुक्ति भरे पानी"

किसी ज्ञानी से पूछे, किसी सन्त से, भक्त से आप पूछिए - ईश्वर के बारे में आप थोड़ा बताइए तो ईश्वर शब्द पर एक लम्बा चौड़ा प्रवचन कर देंगे। परन्तु ब्रज

में रहनेवाले किसी ब्रजवासी से पूछेंगे कि भैया क्या तू भगवान् को जानता है, तो ब्रजवासी भक्त केवल इतना ही कहेंगे कि–

हम एक बात जाने, दूजि पहिचाने नाहि।
हम हैं बिहारी जी के और बिहारी हमारे हैं।।

मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि मैं बिहारी जी का हूँ और बिहारी जी मेरे। भक्त इतना जानते हैं। कि मैं भगवान् का और भगवान् मेरे।

धन्य हैं ब्रजवासी, जिनके घर खेलने आए पूर्ण पुरुषोत्तम अविनाशी, धन्य हैं वे ब्रजवासी।

"धन्यं वृन्दावनं तेन, भक्तिर्नृत्यति यत्रच।।"

(भागवत माहात्म्य 1.61)

श्रीवृन्दावन धाम में आप जिस किसी का भी नाम लेंगे सबसे पहले आपको प्रभु का ही नाम लेना पड़ेगा। देखिए आप वृन्दावन का दर्शन करिए यहीं बैठे–बैठे–

राधा वल्लभ घेरा, राधारमन घेरा, दान गली, मान गली, कुंज गली, गोपेश्वर महादेव, श्री राधारमन जी, श्री राधा दामोदर जी, श्री राधा श्याम सुन्दर जी यानि आप किसी भी स्थान का नाम लेंगे तो आपको प्रभु का ही नाम लेना पड़ेगा। जहाँ साक्षात भक्ति देवी का ही दर्शन होता है।

किसी भक्त ने बड़ा ही सुन्दर भजन लिखा है बृज के संदर्भ में...आप लोग भी गुनगुनाइए थोड़ा गुनगुनाइए... मेरे साथ भी गाइए... आपको भी गाना पड़ेगा।

गीत

मैं तो आई श्री वृन्दावन धाम किशोरी तेरे चरणों में...
किशोरी तेरे चरणों में श्याम जी तेरे चरणों में...
मैं तो आई वृन्दावनधाम...
बृज बंन्दावन की महारानी, मुक्ति यहाँ पर भर रहे पानी।
तेरे द्वार पड़े चारों धाम किशोरी तेरे चरणों में मैं तो आई वृन्दावन धाम...
कृपा दृष्टि की कोर करो राधे
दीन जनन की ओर करो राधे
मेरे विनती है आठों याम किशोरी तेरे चरणों में
मैं तो आई वृन्दावन धाम...
बाँके ठाकुर की ठकुरानी, वृन्दावन जिनकी राजधानी

तेरे चरणों में पड़ो तेरो श्याम
किशोरी तेरे चरणों में मैं तो...
करो कृपा नाम की जय देवी,
सखी रहूँ चरणन् की सेवी (हे किशोरी) तेरे चरणों में
है विश्राम किशोरी तेरे चरणों में
मैं आई वृन्दावन धाम...
मुझे बना लो अपनी दासी, चाहत नित ही माल खवाती,
किशोरी मुझे न जग से काम किशोरी तेरे चरणों में
मैं तो आई वृन्दावन धाम...
"धन्यं वृन्दावनं तेन, भक्तिर्नृत्यति यत्रच"

(भागवत माहात्म्य 1-61)

देखिए जहाँ निरंतर भक्ति का नृत्य श्री वृन्दावन में हो रहा है ऐसा उद्दीप्त वृन्दावन आज भक्ति की प्रार्थना को श्री नारद जी ने सुना और नारद जी ने भक्ति को कहा कि इस वृन्दावन में आपके ग्राहक हैं, लेकिन आपके पुत्र ज्ञान वैराग्य के कोई ग्राहक नहीं हैं। बिना भक्ति के ज्ञान पंगु है और भक्ति ज्ञान के बिना अंधी हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। अर्जुन प्रिय भक्त था और भगवान् ने उसे गीता का ज्ञान दिया। उद्धव परम ज्ञानी था-

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.46.1)

परम ज्ञानी था उद्धव - उसे भगवान् ने अपनी भक्ति की ओर भेजा। दोनों एक दूसरे के परिपूरक हैं। भक्ति और ज्ञान। आज नारद जी महाराज कहते हैं भक्ति को-

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना।
तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात्।।

(भागवत माहात्म्य 1.68)

केशव केशव कूं-किए जब तक घट में प्राण।
हरे कृष्ण - हरे कृष्ण कृष्ण-कृष्ण हरे -हरे।
हरे राम, हरे राम, राम-राम हरे-हरे।।

भक्ति महारानी, जिस फल की प्राप्ति तपस्या से नहीं होती। जिस फल की प्राप्ति

मौन यज्ञ से नहीं हो, जिस फल की प्राप्ति समाधि से भी नहीं होती उस फल की प्राप्ति इस कलिकाल में केवल भगवान् के नाम संकीर्तन से हो जाती है।

"सम्यक्कलौ केशव कीर्तनात्"

भक्ति महारानी तुम तो स्वयं श्रीकृष्ण को अति प्रिय हो, जिसके हृदय में भक्ति है वह तो "निर्भयं कृष्णोमंद्रिम्" साक्षात भगवान् के हृदय में बसते हैं। हृदय साक्षात् मंदिर बन जाते हैं। व जीव तो निर्भय हो जाता हैं। परम धन्य है वह जीव जिसके हृदय में साक्षात् भगवान् भक्ति के रूप में विराजमान होते हैं। भगवान् के छः गुण हैं। भक्त के रूप में, गुरु के रूप में, भगवान् के रूप में, धाम के रूप में, पार्षद के रूप में, नाम के रूप में।

श्लोक-

कृष्ण, गुरु, भक्त, शक्ति, अवतार, प्रकाश।
कृष्ण एहि छः रुपे करेन विलास।।

(श्री चैतन्य चरितामृत)

आज भक्ति ने उठकर नारद जी के चरणों में प्रणाम किया और स्तुति की।

"जयति जयति माय् यस्य कायाधवस्ते वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य।
ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपतो ध्रुर्वोऽयं, सकल कुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि।।"

(1.80)

जिनकी वाणी को सुनकर हमारे मन को शांति मिले ऐसे व्यक्ति की हमें स्तुति करनी चाहिए वह वन्दनीय है जिसकी वाणी को सुनकर शांति मिले उसे वन्दन करना चाहिए। आज भक्ति देवी ने सुन्दर स्तुति की। वह नारद जी के लिए कहती है – हे नारद जी आपके मुखारविंद से उस कयाधु पुत्र ने माँ के गर्भ में ही राम की महिमा को सुना, उस बालक ने खंभे से भगवान् नृसिंह देव को प्रकट कर लिया। आपने ही उस बालक ध्रुव को द्वादशक्षर नाम दिया था।

"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" और जिस भक्त बालक को पाँच वर्ष की अवस्था में साक्षात् भगवत्-दर्शन करा दिया, ऐसे ब्रह्मा के पुत्र नारद को मैं प्रणाम करती हूँ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भक्ति का दुःख दूर करने के लिए नारद जी का उद्योग

नारद उवाच
वृथा खेदयसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम्।
श्रीकृष्ण चरणाम्भोजं स्मर दु:खं गमिष्यति।।
(भागवत माहात्म्य 2.1)

भक्ति महारानी आप खेद मत करो, श्रीकृष्ण का ध्यान करो। जिन श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करने से "दुखम् गमिष्यति" तुम्हारे सारे दुख दूर हो जाएँगे, देखो भक्ति महारानी वे श्रीकृष्ण आज भी हैं। जिन्होंने द्रोपदी की रक्षा की जिन्होंने कौरवों का विनाश किया वे भगवान् आज भी हैं। जिन्होंने गोप सुन्दरी की रक्षा की, वह कृष्ण कहीं दूर नहीं हैं, परन्तु भगवान् आते क्यों नहीं? क्योंकि हम ठाकुर जी को प्रेम से बुलाते नहीं।

प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण।

जब हमारे घर में कोई मेहमान आते हैं। तो कितने दिन से तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। उसी प्रकार से भगवान् यहाँ आये तो अपने अंदर की सफाई कर लेना। अपने अंदर जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, (जलन), मद-मत्सरता (अन्दर की सफाई) को साफ कर लेना। इस घोर कलयुग में हृदय के अंदर जो ये कल्मष पड़ा है, दोष भरा हुआ है, वह साफ करने के लिए मर्जन करने के लिए हरि का नाम ही एकमात्र सार है।

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि-निर्वापणं

शीशा का मैल कपड़े से साफ हो जाता हैं। परन्तु हृदय रूपी दर्पण में यह दोष रूपी मैल काम क्रोधादि पड़ा है। इन्हें दूर करने के लिए हरि का नाम ही एकमात्र उपाय है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे-हरे।
हरे राम हरे राम, राम-राम हरे-हरे।।

नारद जी कहते हैं, ठाकुर कहीं दूर नहीं हैं। बहुत नजदीक हैं, बहुत पास हैं, केवल सच्चे हृदय से उसको बुलाना आवश्यक है।

ठाकुर जी कहते हैं कि एक ब्राह्मण हैं और उसके अंदर ब्रह्मणत्व है और यदि उस ब्राह्मण के अंदर ब्राह्मणत्व के साथ-साथ मेरे चरण कमलों की भक्ति नहीं है तो भगवान् कहते हैं, कि मैं उससे कभी प्रसन्न नहीं होता। एक श्वपच (कुत्ता खाने वाला) जिनके अंदर ब्रह्मणत्व नहीं है, केवल भगवान् के चरणों में प्रीति है भगवान्

कहते हैं। मैं उसकी भक्ति से प्रसन्न हूँ, भगवान् कहते हैं। कि, वे एक नीच चांडाल के घर में भी पहुँच जाते हैं। एक श्वपच के घर में भी भगवान् पहुँच जाते हैं।

भक्ति महारानी आपको भगवान् ने कितने सुन्दर पुत्र दिए ज्ञान, वैराग्य। जिसके जीवन में आप आ जाती हैं उन्हें प्रत्यक्ष रूप से भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन हो जाते हैं।

तुरंत नारद जी ज्ञान के पास गए और कहा कि अरे! ज्ञान उठो, अरे वैराग्य उठो! वेद, महाभारत, उपनिषद सुना रहे हैं, गीता सुना रहे हैं।

"वेद वेदान्त घोषैश्च गीता पाठैर्मुहुर्मुहः।"

(भागवत माहात्म्य 2.27)

परन्तु न ज्ञान उठता है, न वैराग्य उठता हैं। दोनों ही मूर्च्छित पड़े हैं। नारद जी ने उस समय आकाशवाणी सुनी। आकाशवाणी हुई–

एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर।

(भागवत माहात्म्य 2.32)

आकाशवाणी कहने लगी कि नारद यदि आप ज्ञान, भक्ति, वैराग्य तीनों को सुख प्रदान करना चाहते हैं तो आपको इसके लिए कोई सत्कर्म करना पड़ेगा। नारद जी ने कहा वह सत्कर्म क्या है?

इस प्रश्न को लेकर नारद जी वृन्दावन में ज्ञान, वैराग्य, भक्ति तीनों को छोड़कर चल दिए। प्रभु का स्मरण करते हुए अनेक तीर्थों में गए।

तत्र द्वावपि संस्थाप्य निर्गतो नारदो मुनिः।
तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन्मार्गे मुनीश्वरान्।"

(भागवत माहात्म्य 2.37)

तो नारद जी प्रभु का स्मरण करते–करते अनेक तीर्थों में अनेक धामों में गए। अन्त में पहुँच गए बद्रीकाश्रम। बद्रिकाश्रम जाकर नारद जी को चार कुमारों का दर्शन मिला। सनत कुमारों से भी नारद जी ने यही प्रश्न किया कि महाराज सत्कर्म क्या हैं? किसे कहते हैं, कि श्रीमद्भागवत की कथा एक सत्कर्म हैं। भागवत् की कथा को करना, भागवत् की कथा को कराना, भागवत् को सुनना और भागवत् की कथा को सुनाना सबसे बड़ा सत्कर्म हैं। सनकादिक ऋषियों ने कहा–

"सत्कर्म सूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः।
श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः।।"

(भागवत माहात्म्य 2.60)

नारद जी आप चिंता न करें, आप प्रसन्न रहें। ये उपाय तो पूर्व में भी आपको बताया। अहो! नारद जी धन्य हैं आप। विरक्त शिरोमणि हैं आप, आपको अधिक चिन्ता करने की जरूरत नहीं है, जो आकाशवाणी सुनी वह और कोई नहीं, कुछ नहीं–

"श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः।"

शुकदेव मुनि ने जो भागवत् की चर्चा गीत के रूप में की है वही आपको पारायण करनी हैं। वही सत्कर्म है उसी से ही ज्ञान, भक्ति, वैराग्य का कल्याण होगा, उन्हें सुखी कर पाएंगे। अतः वही भागवत की कथा आपको सुनानी है जो

"कलेर्दोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद् व्रका इव।"

(भागवत माहात्म्य 2.62)

इस भयंकर कलयुग में भागवत के शब्द सिंहनाद से दूसरे सम्प्रदाय पलायन करेंगे। जैसे सिंह की आवाज से भेड़ भाग जाते हैं। नारद जी ने कहा कि हमने तो वेद, वेदान्त, गीता पाठ किया उससे तो कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। भागवत् से कैसे? उन्हें हमने गीता सुनाई, महाभारत सुनाया, उससे उनको कोई जागृत अवस्था प्राप्त नहीं हुई तो भागवत से कैसे? आप कृपा करके बताएं क्योंकि भागवत के प्रति श्लोक में वेदार्थ हैं। वेद की ही चर्चा हैं। महाराज सनतकुमार जी कहते हैं कि नारद जी "वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा" (भागवत माहात्म्य 2.67)

शिक्षित माँ और अशिक्षित माँ

तो नारद जी ये भागवत की कथा मालूम है क्या है? ये भागवत की कथा साक्षात् कृष्ण को इस जीव की गोद में बैठा देती है, तो देखिए दो प्रकार की माता होती हैं। एक है शिक्षित और एक होती है अशिक्षित। शिक्षित माँ वह है, जो बच्चे को नहला–धुलाकर स्वच्छ बनाकर और पति के आने पर पति की गोद में बच्चे को बैठा देती हैं। अशिक्षित वह माता है जो पति के आने से पूर्व ही अपने पुत्रों को नहला–धुला देती है और फिर से बच्चे के गंदे होने पर उसकी सफाई में लगती है फिर पति की गोद में बैठाती हैं। कहने का अभिप्राय है कि शिक्षित माँ भागवत कथा है और अशिक्षित माँ है कर्मकण्ड आदि।

"कर्मकांड ज्ञान कांड सकलविषय भांड।
अमृत बोली जेबा खाए जानिए सुनिए निरयो गमन कराय।"

कर्मकांड और ज्ञानकांड की जो क्रिया है वे सब विषय की वस्तु है उसको जो

अमृत सोच कर मीठा समझकर सेवन करता हैं जानबूझकर वह जीव नरक में गमन करता है ऐसा आचार्य ने कहा हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि भागवत् कथा तुरंत जीव को भगवान् श्रीकृष्ण की गोद में बैठा देती हैं। तो भाइयों कथा में आ जाओ कृष्ण की गोद में बैठना हैं। साक्षात प्रत्यक्ष रूप से गोविन्द का दर्शन करना हो तो श्रीमद्भागवत की कथा में आकर बैठ जाओ। बैठो और श्रवण करो। ये वह कथा है जो

"वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा"।

(भागवत माहात्म्य 2.67)

वेदोपनिषद, गीता, महाभारत ये सबका सार है, निचोड़ हैं। श्रीमद्भागवत नारद जी आप भागवत की कथा उन तीनों को सुना दीजिए। नारद जी ने कहा भागवत् की कथा मैं सुनूँगा तो आपके जैसे विद्वान मुझे कहाँ मिलेंगे? आप ही मुझे यह कथा सुना दीजिए।

भागवत् विद्वान की यदि परीक्षा करनी हो तो आप उनसे कहिए कि महाराज आप मुझे भागवत सुनाइए।

प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण।

विज्ञावतां

'विज्ञावतां भागवती परीक्षाया'

विद्वान व्यक्ति की परीक्षा भागवत से होती हैं। जिन्होंने ठीक प्रकार से भागवत को हमारे हृदय में बैठा दिया हैं। कहने का अभिप्राय है कि तीनों को आप भागवत सुनाइए। कहा जरूर सुनाऊँगा महाराज। मगर आप जैसे विद्वान नहीं मिलेगा। सनतकुमार परम् भक्त हैं। परम सनातन हैं, आप मुझे भागवत सुनाइए।

अथ तृतीयोऽध्याय

भक्ति के कष्ट की निवृत्ति

ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम

(भागवत माहात्म्य 3.1)

महाराज आप मुझे इस ज्ञान यज्ञ को सुनाइए। परन्तु बताइए कहाँ बैठकर इस कथा को सुनें। यह भी कृपा करके बताइए। तो कहते हैं नारद, थोड़ा सुनिए कान खोलकर के ध्यान से श्रवण करें कि भागवत् की कथा कहाँ बैठकर सुननी चाहिए। भागवत में यह भी एक विलक्षण प्रश्न है कि–

श्रृणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवेकिने।
गंगाद्वार समीपे तु तटमानन्दनामकम्।।

(भागवत माहात्म्य 3.4)

नारद जी यहाँ से थोड़ा नीचे उतरिए, एक बड़ा सुन्दर स्थान है जिसका नाम हरिद्वार हैं। हरिद्वार में गंगा के एक तट में एक सुन्दर स्थान है जिसका नाम है आनंद घाट। देखिए – भागवत् में बताया कि कहाँ बैठकर भागवत सुनना चाहिए। या तो किसी तीर्थ में बैठकर भागवत् सुनना चाहिए और या किसी वन में, बगीचे में या किसी मठ में, मंदिर में। परन्तु विशाल व वसुधा बड़ी से बड़ी जगह हो तो अच्छा। यह विशिष्ट बात है- भागवत् में। तो चलें हम गंगा जी के तट पर और वहीं हम आपको भागवत् सुनाएंगे। श्री नारद जी ने कहा महाराज् आपने बड़ी सुन्दर जगह बता दी। वास्तव में आज मुझे सत्संग की महिमा का ज्ञान हुआ कि सत्संग में कितनी शक्ति हैं। नारदजी की घोषणा से भूलोक, देवलोक, ब्रह्मलोक से भक्तजन पधारने लगे।

भृर्गुवसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो मेधातिथि र्देवलदेवरातौ।
रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलोमृकण्डुपुत्रात्रिजपिप्लादाः।।

(भागवत माहात्म्य 3.13)

योगेश्वरौ व्यासपराशरौ च छायाशुको जाजलिजहुमुख्यः।
सर्वेऽप्यमौ मुनिगणाः सहपुत्रशिष्याः
स्वस्त्रीभि राययुरतिप्रणयन युक्ताः।।

(भागवत माहात्म्य 3.14)

सभी भक्त लोग कीर्तन करने लगे। थोड़ा आप भी गुनगुनाइए देखिए सत्संग की महिमा इस भजन में प्रकट की हैं। बड़े प्रेम से गाइए।

गीतम्

श्याम से मिलने का सत्संग एक ठिकाना है।
कृष्ण से प्रीति लगी उनको भी निभाना है।
राम से मिलने का सत्संग एक ठिकाना है।
सत्संग है एक अमृत सागर,
जितना चाहो भर लो गागर।
मुक्ति को पाना है सत्संग एक ठिकाना है।

ज्ञान भक्ति की बहती गंगा,
कर्मयोग की मिलती शिक्षा

जीवन को बनाना है सत्संग एक ठिकाना हैं। इस सत्संग में हमें क्या मिलता है–

क्या मिला। ये तुम्हारे सात शत्रु हैं – काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर और अहंकार। ये ग्रंथियाँ हैं। ये ग्रंथियाँ खुल जाएँ तो भागवत् के सत्संग में आइए। काम, क्रोध, मद, मोह छुड़ावै, विषयों की आँधी से बचावै। यदि कुछ पाना है सत्संग एक ठिकाना है।

श्याम से मिलने का सत्संग एक ठिकाना हैं। राम से मिलने का सत्संग एक ठिकाना हैं। कृष्ण से प्रीति लगी उनको भी निभाना है।

भक्तों के द्वारा कितना सुन्दर नाम संकीर्तन हुआ। सत्संग की महिमा को प्रकट किया। भइया जो नाम संकीर्तन करते हैं वही भागवत् सुनने का अधिकारी हैं। नारद जी सनद कुमारों को लेकर श्रीगंगा जी के आनंद घाट पर पहुँच गए चारों तरफ से शंख ध्वनि होने लगी। एक पवित्र सुन्दर और माहौल बन गया।

जय शब्दो नमः शब्दः शंखशब्दस्तथैव च।

(भागवत माहात्म्य 3.21)

नारद जी ने एक ऊँचा सिंहासन बिछा दिया सनत् सनंद, सनातन और सनत कुमार को बैठाया। नारद जी महाराज ने चारों कुमारों का पूजन किया। पूजन करके नारद जी ने प्रार्थना की कि भगवन आप मुझे भागवत् सुनाइए। सनत्कुमार श्रीभागवत् की महिमा का वर्णन करने लगे।

कुमारा ऊचुः
सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद भागवत्ी कथा।
यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत्।।

(भागवत माहात्म्य 3.25)

सनत कुमार जी कहते हैं। कि सदा श्रीमद्भागवत का सेवन करो। जब–जब जहाँ–जहाँ श्रीमद्भागवत मिले भागवत् की कथा का वर्णन करो, सुनो। किसी ने पूछा कि महाराज भागवत् की कथा को सुनकर हमें क्या मिला? और क्या मिलता है? तो सनद कुमार कहते हैं। कि–

यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता।।

(भागवत माहात्म्य 3.24)

जिसके श्रवण करने मात्र से मुक्ति व्यक्ति के हाथ के आधीन हो जाती है और

“हरिश्चित्तं समाश्रयेत”। जैसे एक औषधी दवा होती है जो रोग को निवृत्त करती हैं। रोग का निराकरण कर देती हैं। परन्तु श्रीमद्‌भागवत कथा का जब हम श्रवण करते हैं। इन कानों से तो ‘हरिश्चित्तं समाश्रयेत् हमारे हृदय में आकर श्रीकृष्ण अवरुद्ध हो जाते हैं, हरिभगवान् आकर स्थित हो जाते हैं। श्रीकृष्ण आकर हृदय में बैठ जाते हैं। श्रीकृष्ण की अप्रत्यक्ष दर्शन कराने वाली श्रीमद्‌भागवत है।

सनत कुमार से श्री नारद जी ने प्रश्न किया कि महाराज बताइए कि भागवत् की कथा सुनकर कौन-से जीव पवित्र हुए। सनत कुमार कहते हैं। कि नारद एक भागवत शास्त्र ही मुक्तिदान देने में समर्थ है अपितु–

न गंगा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम्।
शुकशास्त्रकथायाश्च फलेन समतां नयेत्।।

(भागवत माहात्म्य 3.32)

नारद गंगा, गया, काशी, पुष्कर और प्रयाग की बड़ी महिमा हैं। परन्तु शुकशास्त्र की कथा से जो फल मिलता है उसकी समता ये तीर्थ राज प्रयाग भी नहीं कर सकता। ये तो पाठ करने मात्र से ही जीव पर गति प्राप्त होती हैं। नारद एक जन्म नहीं करोड़ों जन्मों के पाप भी भागवत के परायण से नष्ट हो जाते हैं। – इसमें कोई संशय नहीं।

जन्म कोटिकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः।

(भागवत माहात्म्य 3.37)

नारद जी यदि जीव ने जीवन में शुकशास्त्र कथा रूप अमृत पान नहीं किया वह तो मिथ्या स्वजन्म जननीजनिदुःखभाजा।। वह चांडाल के समान है और अपनी माता के दुख का कारण हैं। देखो! नारद ऐसे तो भागवत सुनने का विधि विधान है फिर भी–

दिनानां नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणं मतम्।।

(भागवत माहात्म्य 3.45)

यह ग्रंथ इतना पवित्र है कि कभी भी इसका श्रवण कीर्तन पारायण कर सकते हैं। यह समस्त नियमों से परे है।

सनत कुमार ने कहा नारद जो मानव भागवत का श्रवण करते हैं। वे हीन से पावन हो जाते हैं। पवित्र हो जाते हैं, शुद्ध हो जाते हैं। चाहे वे कामी हों, क्रोधी हों, कुटिल हों, गुरुजनों का आदर न करता हो।

अथ चतुर्थोऽध्याय

गोकर्ण उपाख्यान प्रारंभ

ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः।
क्रोधाग्नि दग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते।।

(भागवत माहात्म्य 4.11)

ते पुनन्ति, सर्वदा पाप मार्ग में चलने वाला, सदा दुश्चरित्र वाला जीव भी पवित्र हो जाते हैं।

शास्त्र में 5 प्रकार के पापों का वर्णन है,

"पञ्चाग्रपापा" (पंच पापी) – प्रथम ब्रह्मघाती जो ब्राह्मण की हत्या करते हैं।

द्वितीय गौघति – जो गौ की हत्या करते हैं।

तृतीय मद्दप – जो मद्यपान करते हैं, शराब पीने वाले।

चतुर्थ – स्वर्ण की चोरी करने वाले

पंचम – जो चोरों का संग करते हैं।

यदि जीवन में आपके कोई पाप कर्म बन गया हो, ब्रह्मघाती का गौघाति का मद्यपान करने वाले का, तो श्रीमद्भागवत की कथा का आप श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से श्रवण करेंगे तो

"सप्ताह यज्ञेन कलौपुनन्तिते" "ते पुनन्ति"

वह जीव बड़ा पवित्र हो जाता है, जो श्रद्धा भक्ति, प्रेम से श्रवण करते हैं। नारद जी इस सम्बंध में आपको एक सुन्दर कथा सुनाते हैं।

अत्र ते कीर्तयिष्याम इतिहासं पुरातनम्।
यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते।।

(भागवत माहात्म्य 4.15)

जिसके श्रवण करने से आप जीव के पाप का निराकरण कैसे हो सकता है? आप समझ सकते हैं–

तुंगभद्रा नदी के तट पर एक ब्राह्मण रहता था जिसका नाम था आत्मदेव। ये आत्मदेव सर्ववेद विशारद था। देखने में परम तेजस्वी प्रतीत होता था और जिनकी पत्नी थी धुंधली। जो बड़ी सुन्दर थी, परन्तु

लोकवार्तरता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका।
शूरा च ग्रहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया।।

(भागवत माहात्म्य 4.19)

जिनके विषय में क्या कहूँ देखने में सुन्दर थी, परन्तु बहुत बात करने वाली, क्रूर, कपटी और कृपण थी। कलहप्रिया भी थी। परन्तु आत्मदेव बड़े ही विद्वान पंडित थे। ब्राह्मण थे। सब प्रकार से जीवन में आनंद था। वेद–शास्त्र का ज्ञान था, किंतु जीवन में यदि कष्ट था तो एक सन्तान का। अनेक अनुष्ठान, अनेक व्रत किए, किन्तु सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई। इस ब्राह्मण ने सोचा कि– "अपुत्रगतिनोऽस्ति" मैंने तो शास्त्रों में पढ़ा है कि जिसके पुत्र नहीं उसे भी कुछ समय के लिए पूत नाम के नरक में जाना पड़ता हैं। तो मेरी भी गति नहीं होगी। मुझे भी नरक में जाना पड़ेगा। इस प्रकार के विचार करके ब्राह्मण आत्मदेव अपनी देह को त्यागने के लिए घर से निकलकर वन की ओर चल दिये। "गृहं त्यक्त्वा वनं गतः" परन्तु मृत्यु कभी बुलाने से नहीं आती। ब्राह्मण आत्मदेव एक जलाशय के पास जाकर बैठे। दुपहर हुई,जलाशय से जलपान किया, सोचने लगे और बैठे–बैठे रोने लगे। उसी समय एक सन्त आए। सन्त ने आकर पूछा–

"कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिन्ता बलीयसी।
वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुखस्य कारणम्।"

(भागवत माहात्म्य 4.26)

ब्राह्मण तुम क्यों रो रहे हो? क्या बात है? तुम्हारे इतने दुख का क्या कारण है? चिंता का क्या विषय है? ब्राह्मण ने कहा महाराज मेरी सन्तान नहीं हैं। मैंने विचार किया कि मेरी सन्तान नहीं तो कोई बात नहीं, मैंने गाय पाली कि इसके बच्चे से मन लग जाएगा। परन्तु गाय भी बांझ निकली। मैंने बाग में एक वृक्ष लगाया सोचा इससे फल होंगे तो कितना अच्छा होगा, परन्तु वृक्ष भी सूख गया। महाराज मैं कहाँ तक बताऊँ आपको, बाज़ार से कोई भी साग–सब्जी लाता हूँ तो घर आते–आते वह भी सूख जाती हैं। महाराज–

"धिग्जीवितं प्रजाहीनं धिग्गृहं च प्रजां विना।
धिग्धनं चानपत्यस्य धिक्कूलं सन्तति विना।।"

(भागवत माहात्म्य 4.29)

महाराज उस जीवन का क्या मूल्य है जिसका इतनी धन संपति होते हुए भी सन्तति नहीं। उस राजा का भी क्या जिसे कोई प्रजा मानती ही नहीं और वह गृहस्थ

भी क्या जिसके पास धन न हो। महाराज मैं तो बहुत दुखी हूँ। मेरे दुख का अंत नहीं।

अरे ब्राह्मण मैंने तेरे मस्तक की रेखा पढ़ ली है कि–

सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च।।

(भागवत माहात्म्य 4.35)

ब्राह्मण तू तो एक जन्म की बात सोचकर रो रहा है, परन्तु मैं तो तेरे सात जन्म तक पुत्र नहीं देख रहा हूँ "सप्तजन्मावधि तव पुत्रे नैव च नैव च" अरे ब्राह्मण सन्तान लेकर क्या करेगा। क्या संसार में सन्तान वाले सब सुखी हैं? देख ब्राह्मण कर्म की गति बड़ी बलिष्ठ हैं। तू विवेक से सोच और संसार की वासना को त्याग दे। क्योंकि सन्तान सन्तति से सबको सुख मिलेगा। ऐसी गारंटी नहीं हैं। देखा भईया कर्म की गति बड़ी बलिष्ठ है।

"सन्यासे सर्वदा सुखम्" अरे ब्राह्मण तू सन्यास ले ले। देख वो राजा सगर थे जिनको सन्तान के कारण ही दुख मिला।

धन हीन कहे धनवान सुखी।
धनवान कहे सुख राजा को भाई।
राजा कहे महाराजा सुखी
महाराज कहे सुख इंद्र को भाई।
इंद्र कहे सुख चतुरानन को,
चतुरानन कहे सुख विष्णु को भाई।

तुलसी अपने मन सोच कोई
हरि भक्ति बिना सब जीव दुखाई।।

जिसके जीवन में प्रभु की भक्ति नहीं, ईश्वर का नाम नहीं, सुमिरन नहीं, ध्यान नहीं वह जीव दुखी हैं। इसलिए भईया तू सन्यास ले ले।

"सन्यासे सर्वदा सुखम्"

आत्मदेव ने कहा महाराज जैसे आप हो वैसे ही मुझे बनाना चाहते हो। कुछ ज्ञान की चर्चा करो। मेरे पल्ले में नहीं पड़ रही हैं। मोहग्रस्त व्यक्ति को ज्ञान चर्चा अच्छी नहीं लगती। ज्ञान तो पुस्तक में भरा पड़ा है, परन्तु मस्तक में नहीं बैठता। जैसे कभी गौमुखों को देखना– गाय तो पहले चारा खाती है, बैठकर जुगाली करती हैं। इसी प्रकार ज्ञान तो पुस्तक में भरा पड़ा है, परन्तु मस्तक में तब बैठेगा जब बैठकर

थोड़ा जुगाली करेंगे। मोहग्रस्त व्यक्ति को ज्ञान की चर्चा अच्छी नहीं लगती। महाराज आपकी ये ज्ञान चर्चा मेरे पल्ले नहीं पड़ रही। में कुछ नहीं समझ पा रहा हूँ। यदि आप बलपूर्वक सन्तान नहीं प्राप्त करायोगे तो आपके सामने ही मैं अन्न जल त्याग दूँगा। अपनी देह को भी छोड़ सकता हूँ। आपने तो मेरा दुख बढ़ा दिया। सन्यासी ने कहा, आत्मदेव हमने कैसे दुख बढ़ा दिया? आत्मदेव ने कहा,हम तो एक जन्म से दुखी हो रहे थे कि पुत्र नहीं है, आपने कहा सात जन्मों तक पुत्र नहीं होगा। सात जन्म का दुख बढ़ा दिया। आत्मदेव व्याकुल हो गया। सन्यासी ने कहा, देख आत्मदेव! तुम व्याकुल मत होओ। झट अपनी झोली से एक फल निकाला और देकर कहा ब्राह्मण अपनी पत्नी को यह फल खिलाना। जो स्त्री इस फल को खाकर एक वर्ष तक नियमपूर्वक व्रत धारण करेगी वह सुन्दर, निर्मल, दिव्य पुत्र प्राप्त करेगी।

"वर्षावधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रोऽतिनिर्मलः।"

(भागवत माहात्म्य 4.42)

सन्त से प्रसाद लेकर प्रणाम करके घर को लौटे। घर आकर अपनी पत्नी धुंधली को फल दिया और कहा देख सन्त का प्रसाद ये फल यदि तू खाएगी तो तुझे सन्तान होगी। ब्राह्मण तो फल देकर चला गया। हाथ में फल लेकर सोचने लगी–

"फलभक्षेण गर्भः स्याद्गर्भेणोदरवृद्धिता।"

(भागवत माहात्म्य 4.45)

आत्मदेव की पत्नी धुंधली सोचने लगी कि फल खाऊँगी तो उदरवृत्ति होगी। मेरा सौंदर्य विनष्ट हो जाएगा। मैंने सुना है कि गर्भवती स्त्री को बड़ा कष्ट होता है कहीं गाँव में आग लगी तो सब लोग भाग लेंगे। मैं तो प्राण रक्षा नहीं कर सकती। अनेक प्रकार की कुभावना जाग्रत हुई। उस धुंधली के मन में और पति के दिए हुए फल को नहीं खाया। एवं–

एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम्।

(भागवत माहात्म्य 4.50)

जब पति ने पूछा क्यों री तूने फल खा लिया तो पति से भी झूठ बोला कि हाँ मैंने फल खाया। एक दिन धुंधली के पास उसकी बहन आई और कहने लगी, धुंधली बड़ी उदास है, क्या बात हैं! कहने लगी बहन क्या बताऊँ पति ने लाकर एक सन्त का प्रसादी फल दिया और कहा कि इस फल को खाएगी तो सन्तान हो जाएगी। मैंने फल नहीं खाया तो सन्तान नहीं होगी। पति पूछेंगे तो क्या जवाब दूंगी।

देख धुंधली तू दुखी मत हो, तेरे यहाँ तो धन की कोई कमी नहीं और मेरे यहाँ सन्तान की कोई कमी नहीं। अबकी जो सन्तान होगी मैं चोरी से तुझे दे दूंगी तू मेरे पति को थोड़ा-सा धन दे देना। आपस में दोनों बहनों ने विचार विमर्श कर लिया। देखिए, प्रथम अपराध किया सन्त के प्रसाद की अवहेलना, दूसरा अपराध करने जा रही है कि सन्त का प्रसाद झूठा या सच्चा। ये भी तो परीक्षा करले घर में गाय हैं। गाय भी तो बांझ है चलो गाय को ही फल खिला देती हूँ। बहन के घर जब पुत्र का जन्म हुआ तो चोरी से लाकर धुंधली को दिया, पति को खबर दी कि महाराज पुत्र हुआ। जब आत्मदेव ने सुना कि हमारे यहाँ पुत्र जन्म हुआ तो आत्मदेव आनंद में भर गए गद्‌गद हो गए।

अब तो शहनाइयाँ बजने लगीं। बधाइयां बंटने लगीं। जो भी घर में आ रहे हैं। बधाइयां देने लगे। शहनाइयां बज रही हैं। बड़ा मंगल उत्सव मना रहे हैं, सब मिलकर आत्मदेव के घर पर। धुंधली एकांत में आकर कहती है कि महाराज आप तो शहनाइयां बजा रहे हो बधाइयां बाँट रहे हो, परन्तु मेरी ओर देखो तो सही–

अन्य स्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम्

(भागवत माहात्म्य 4.59)

मेरे स्तन में दूध नहीं हैं। आत्मदेव सोचने लगे कि मेरे यहाँ सन्तान हुई और विधाता ने सन्तान के लिए दूध नहीं दिया। भगवान् जीव को पीछे भेजते हैं। पहले भोजन का प्रबंध कर देते हैं, परन्तु आज भगवान् ने मेरे पुत्र को दूध पीने के लिए नहीं दिया। आत्मदेव सोच रहे हैं–

आत्मदेव के चिन्तन के बीच में धुंधली ने कहा महाराज कोई बात नहीं कुछ दिन पूर्व मेरी बहन के पुत्र का जन्म हुआ था। उस बालक की मृत्यु हो गई। यदि आप कहें। तो मैं अपनी बहन को अपने बालक के पालन पोषण के लिए बुला लिया करूं? भोले-भाले ब्राह्मण ने पत्नी को आज्ञा दे दी। अब धुंधली की बहन उस बालक का पालन पोषण करने लगी। सूत जी महाराज कहते हैं। सनकादि ऋषियों कि–

"त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुःसुषुवेऽर्भकम्
सर्वांगसुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम्।।"

(भागवत माहात्म्य 4.62)

तीन महीने निकले, बड़ा चमत्कार हो गया। एक प्रातःकाल के समय आत्मदेव गौशाला में गौ के लिए चारा डालने गए। जो देखा गाय के पास जाकर कि एक पुरुष बालक को गाय चाट रही है, जिसके गौ जैसे कान हैं। जब आत्मदेव

जी ने देखा और दौड़कर गए और झट अपनी गोद में उठा लिया। यह तो 'पौरुषर्ण है गोकर्ण' है यानि आत्मदेव प्रसन्न होकर बालक को लेकर घर की ओर दौड़े। गौ के गर्भ से मानवपुत्र का जन्म हुआ। मानव बालक का जन्म हुआ। यह बड़ा आश्चर्यजनक हैं। बड़ा चमत्कार है यह तो सन्त के प्रसाद की महिमा हैं। आत्मदेव कहने लगे कि यह मेरा पुत्र हैं। गौकर्ण गौकर्ण कहते–कहते बालक का नाम ही गोकर्ण पड़ गया। जब आत्मदेव की पत्नी धुंधली ने देखा तो कहा कि मेरे पति का इस गाय के पुत्र से इतना स्नेह। अरे जन्म होते ही नामकरण और मेरा पुत्र जो तीन महीने बड़ा हैं। मैंने अपने पुत्र का नामकरण नहीं कराया। मैं भी अपने पुत्र का नामकरण कराऊँगी। आस पास के पुरुष लोग कहने लगे कि आत्मदेव का भाग्य देखा। एक नहीं दो–दो पुत्र हुए हैं और वे भी गाय के गर्भ से। पड़ोसियों ने आश्चर्य प्रकट किया। धुंधली ने भी अपने पुत्र का नामकरण संस्कार कराने के लिए बड़े–बड़े पंडित को बुलाया। पंड़ितों ने कहा कि भई आत्मदेव तू आत्मदेव है तुम्हारे पुत्र का नाम ज्ञानदेव रखता हूँ ठीक रहेगा। आत्मदेव मान गया, परन्तु धुंधली नहीं मानी। कहने लगी नहीं महाराज मेरे अनुरूप नामकरण होना चाहिए। पंडितों ने कहा बताइए क्या नाम रखना चाहते हो। धुंधली बोली इनका नाम रखो धुंधकारी। पंडित जी और पति की बात नहीं मानी। यथा नाम तथा काम। 'गोकर्ण : पंडितों ज्ञानी, धुंधकारी महाखलः' जब गोकर्ण बने महापंडित विद्वान और धुंधकारी महाखल।

उलटे हाथ से भोजन किया करते थे और मदिरा पीना, जुआ खेला, दुष्ट लोगों का संग करना, श्मशान घाट पर जाकर पिंड का भक्षण करते थे। ऐसे ही दुराचारी थे धुंध कारी। अनेक कुसंस्कारों के अधिकारी बने धुंधकारी। एक दिन धुंधकारी अपने पिता आत्मदेव के पास आए और उन्हें, पीटा, बहुत मारा, पिता का अपमान किया। पिता बड़े दुखी हुए। एकान्त में जाकर आत्मदेव दुख में कहने लगे–

"क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि को मे दुखं व्यपोहयेत्।"

(भागवत माहात्म्य 4.72)

पुत्र के हाथ की मार खाकर आत्मदेव रोते हुए कहने लगे कि कहाँ जाऊँ, कहाँ बैठूँ, कौन मेरी रक्षा करे, उसी समय गोकर्ण आ गए। गोकर्ण जी ने कहा पिताजी–यही तो संसार हैं। जो सरकता हुआ जा रहा हैं। कभी एक सा नहीं रहता। हर क्षण बदल रहा हैं। परिवर्तन हो रहा हैं। पिताजी इस संसार के प्रति कोई आसक्ति, मोह मत रखो।

देहेऽस्थिमाँसरुधिरेऽभिमतिं त्यंजत्वं
जाया सुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभंगनिष्ठं–
वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः।।

(भागवत माहात्म्य 4.79)

गोकर्ण जी ने कहा पिताजी इस देह का अभिमान मत करो। क्या है इस देह में? यह अनित्य है, यह नष्ट होने वाली है, परन्तु इस देह के अंदर जो देव बैठा है वह शाश्वत हैं। कभी मरता नहीं।

"पश्यानिशं जगदिदं क्षणभंग निष्ठं"

पिताजी, संसार को देखो! जो हर क्षण बदल रहा हैं। परिवर्तन हो रहा है और जो क्षण भंगुर हैं। इस भौतिक संसार को त्याग कर पिताजी वैराग्य लेकर रसिकों के संग में निष्ठा के साथ भक्ति करनी चाहिए। पिताजी लोक धर्म को त्यागकर धर्म का आचरण (अनुसरण) करना चाहिए। साधु पुरुषों की सेवा करते हुए भगवान् श्री हरि की कथा का श्रवण करना चाहिए। पिताजी इस जीवन की कोई स्थिरता नहीं।

"धर्म भजस्व सततं त्यज लोक धर्मान्"

(भागवत माहात्म्य 4.80)

गीतम्

(राग कहरवा)

क्षणभंगुर जीवन की कलिकाल,
काल प्रातः को कली खिली न खिली,
मलयाचल की शुचि शीतल मंद,
सुगंध समीर मिली न मिली।
कलि काल कुठार लिए फिरता,
तन नम्र से चोट झिली न झिली
भजले हरि नाम अरी रसना,
फिर अंत समय में हिल न हिल।
जय–जय राधा रमन हरि बोल।
क्षण भंगुर जीवन की कलिकाल।

भागवत कार कहते हैं। कि "देहिनां क्षण भंगुरः" "तत्स्यापि दुर्लभे मुने वैकुण्ठ प्रिय दर्शने" यह मानव शरीर अति दुर्लभ है। भईया मानव शरीर को प्राप्त करके

व्यक्ति व्यर्थ में समय न गँवाएं। सबके लिए हमारे पास समय होता है, परन्तु सत्संग के लिए, साधना के लिए, भजन भक्ति के लिए हमारे पास समय नहीं होता। कहीं व्यवहार में, लौकिक धर्म में, कहीं से शादी का बुलावा आवे उसे बहुत संभाल कर रखते हैं। और कहीं सत्संग का, भागवत कथा का निमन्त्रण पत्र मिले, कार्ड मिले या समाचार मिले तो उसे हम पढ़ तो लेते हैं। फिर उसे रद्दी की टोकरी में फेंक देते हैं। एक दिन जाकर कृपा करके आएँगे। दक्षिणा दे देंगे। कथा तो सात दिन की हैं। दक्षिणा देनी है, दे देंगे। बोलो राधे कृष्ण।

नहीं, ऐसा मत समझना, और ना ही ऐसा करना। देखिए गंगा तो अखंड बह रही हैं। श्रीयमुना जी तो अखंड बह रही हैं, परन्तु कोई विरला ही गंगा, यमुना में स्नान करते हैं। हजारों, लाखों लोग भगवान् के मंदिर के आगे से निकल जाते हैं, परन्तु अंदर आना तो दूर बाहर से भी प्रणाम नहीं करते। उसके ऊपर कृपा कैसे। भागवत कृपा ऐसे नहीं मिलती। गंगा के तट पर हजारों लोग रहते हैं। स्नान करना तो दूर। गंगाजी के दर्शन तक नहीं करते। ये लोग गंगाजी के ऊपर रहकर व्यापार करते हैं। उन लोगों पर कृपा कैसे? तो यह मत समझना कि केवल दक्षिणा तक सीमित रहे जाकर चढ़ा आएंगे। ये भागीरथ रूपी गंगा अखंड बह रही है और ये भागवत रूपी गंगा अखंड बह रही हैं। कोई-कोई विरला ही इस गंगा में स्नान करता हैं। इस प्रकार ये श्रीगोकर्णजी महाराज कहते हैं, पिताजी लोक धर्म को त्याग दीजिए–"त्यज लोकधर्मान" समय से हमें व्यवहार को त्याग देना चाहिए और सच्चे धर्म का पालन करना चाहिए।

"सेवा कथा रसमहो नितरां पिबत्वम्"

(भागवत माहात्म्य 4.80)

सत्पुरुषों की सेवा सत्पुरुषों का सानिध्य उनके मुखारविंद से भगवान् की कथा श्रवण करे। प्रभु का नाम श्रवण करे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरेहरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

प्रभु का नाम कीर्तन करे, संकीर्तन करे।

"सेवा कथा रसमहो नितरां पिब त्वम्।"

जिनके मुखारविन्द से निरंतर कथामृत टपक रहा है उस अमृत का पान कीजिए, पीजिए। ये राधा कान है, कृष्ण है, कथा। राधा रूपी कान में कृष्ण रूपी कथामृत डालकर पीजिए। बोलो कब तक पीएँ, ये तो बताइए एक, दो, बार। नहीं एक दो

बार नहीं, अरे! भईया, आप पहले भी भागवत सुन चुके हैं। कितनी बार कथा श्रवण करें। जैसे किसी शहर में कोई सन्त आया और बड़ा नाम सुना कि बहुत पहुँचे हुए सन्त है, चलो दर्शन कर आएं। पर भाग्य के उदय न होने से वह जीव कहता हैं। अभी फुरसत नहीं फिर कभी दर्शन करेंगे। फिर दुबारा कभी वे संत आए। बड़ी चर्चा हो रही है बहुत लोग कहने लगे कि सन्त बहुत ही दिव्य हैं। पहुँचे हुए हैं। चलो भईया दर्शन कर लें। वह जीव कहता है अभी समय नहीं है फिर कभी देखेंगे। फिर कुछ समय के बाद वही सन्त पुनः शहर में आए और इस बार लाख दो लाख लोगों से सुना, अखबार, टीवी से सुना कि सन्त बड़े चमत्कारी हैं। तो देखने की इच्छा हो गई। इसी प्रकार से सुनते-सुनते इस राधा रूपी कान से कृष्ण रूपी कथा को सुनते-सुनते भगवान् को देखने की इच्छा आपके अंदर पैदा हो जाएगी।

पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः।

(श्रीमद्भागवतम् 1.1.3)

हे रसिक जन! हे भावुकजनो। इस राधा रूपी कान में कृष्ण रूपी कथा को इस अमृत को डालकर पीयो। बोलो कब तक पीएँ? "मोक्षपर्यन्तम्" यानि यह देह यदि छूट जाए यह शरीर भी छूट जाए फिर मानव शरीर मिले। फिर भी इस भागवतामृत रस का पान करे। यानि कि बार-बार जन्म हो तो भी बार-बार भागवत कथा को श्रवण करें। किसी कवि ने सुन्दर लिखा है, एक मिनट के लिए मेरे साथ गुनगुनाइए।

गीत

कोई पीयो रे प्याला राम रस का बह जात है नीर...
कोई पीयो रे प्याला राम रस का
कोई पीयो रे प्याल श्याम रस का

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्।
तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान्।
यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती।

(श्रीमद्भागवतम् 2.1.9-10)

कोई पीयो रे प्याला श्याम रस का
कोई पीयो रे प्याला राम रस का

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 2.1.11)

कोई पीयो रे प्याला राम राम का
कोई पीयो रे प्याला श्याम रस का
जय राधे–राधे, श्याम राधे राधे
राधे राधे, राधे राधे, श्याम राधे–राधे श्याम राधे
कोई पीयो रे प्याला श्याम रस का राम रस का

गोस्वामी लिखते हैं कि जो व्यक्ति कृष्ण कथा सुनकर, राम कथा सुनकर कह देते हैं, मैं तृप्त हो गया, मुझे यह कथा, राम कथा, कृष्ण कथा नहीं सुननी–बहुत बार यह कथा सुनी है। गोस्वामी जी कहते हैं, "राम चरित जो सुनत अधाई, रस विशेष जानत तिन नाहीं।" जो भागवत कथा को सुनकर तृप्त हो जाए – भईया उसने भगवान् को, भगवान् की कथा की महिमा को नहीं जाना।

जितनी बार इस अमृतकथा को पीया जाए उतनी ही पिपास–प्यास बढ़ती हैं। भईया समय से हमें व्यवहार को त्याग देना चाहिए। परमार्थ की ओर चलिए। भगवान् की ओर चलिए। भगवान् के श्री चरणों में चलिए। 50 साल के ऊपर व्यक्ति का वानप्रस्थ आश्रम शुरू हो जाते हैं। मैं माताओं और बहनों को यह सलाह दूंगा कि 50 के ऊपर उम्र हो जाए तो घर की चाबी अपनी कमर पर लटका कर नहीं चलना। अपनी बहुओं के हाथ में सौंप दो। सुखी रहोगे नहीं तो कलह होगा।

"बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

वानप्रस्थ आश्रम प्रारंभ हो चुका है।

सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्।"

(भागवत माहात्म्य 4.80)

तुम्हारी एक–एक सांस कीमती हैं। ठाकुर ने जो दी व्यर्थ में समय को न गँवाकर हर सांस में प्रभु का नाम लेते रहिए। हर सांस पर "श्रीकृष्ण शरणं मम" "श्रीकृष्ण शरणं मम" "श्री कुंज बिहारी नमः"

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

कलयुग के जीव को तारने के लिए। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने यह दिव्य मन्त्र दिया है श्वास–श्वास पर इस मन्त्र को लेते रहिए। यह महौषध हैं। सब बीमारियों का नाश करने वाला है। भय निर्मूल करने वाला है। यह समस्त मन्त्रों का सरताज है। स्वामी हरिदास जी के दिव्य सम्प्रदाय में भी एक मन्त्र गाया जाता हैं। आप लोग थोड़ा गुनगुनाइए।

गीत (मन्त्र गीत)

जय-जय कुंज बिहारी श्री हरिदास 'जय जय' श्री वृन्दावन निधि वनवास वास कुंज बिहारी श्री हरि दास 'जय-जय' प्यारो वृन्दावन निधि वनवास, जय जय कुंज बिहारी श्री हरिदास जय-जय श्री वृन्दावन निधि वनवास।

(बोलो हरे कृष्ण)

"सेवा कथा रसमहो नितरां पिबत्वम्"

साठ बरस की अवस्था में आत्मदेव को अपने पुत्र के वानी के बाण लग गए। घर का त्याग करके वन में चले गए। और श्रीमद् भागवत के दशमस्कन्ध का पाठ करते-करते अंत में सद्गति प्राप्त कर ली।

एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय
यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः।
युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययासौ
श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात्।।

(भागवत माहात्म्य 4.81)

अथ पंचमोऽध्याय

धुंधकारी को प्रेमयोनि प्राप्ति और उद्धार

जब आत्मदेव जी चले गए घर से निकलकर अब धुंधकारी घर में स्वतंत्र हो गया। बड़े हैं, छोटे की बात मानते नहीं। सत्पात्र कुपात्र में जैसे विभेद हैं, वैसे धुंधकारी सत्पात्र गोकर्ण को मानते ही नहीं। एक बार धुंधकारी ने माता के पास आकर कहा

"क्व वित्तं तिष्ठति ब्रूहि।"

(भागवत माहात्म्य 5.1)

माँ पिता वन में चले गए। धन तेरे पास छोड़ गए हैं, न? तू मुझे वह धन दे दे। धुंधली बोली बेटे धन कहाँ से लाऊँ? सारा धन तूने मदिरा में, जुए में, चौपड़ में, व्यर्थ विकारों में खर्च कर दिया। धन कहाँ से लाऊँ। बोले, माँ तू झूठ कहती है, यदि धन नहीं दिया तो-

'हनिष्ये लत्तया न चेत्'

(भागवत माहात्म्य 5.1)

मैं तुझे लात घूंसों से मारूँगा, इतना कठोर वचन कहकर धुंधकारी चला गया। शाम

हो गई। माँ की चिंता बढ़ने लगी। रात्रि में जब धुंधली सो रही थी। आंखें खुल गई। कान में वे शब्द गूंजने लगे।

हनिष्य लत्तया न चेत्। हनिष्य लत्तया न चेत्।

मैं लात घूंसों से मारूंगा। धिक्कार है मुझे जिस पुत्र का मैंने लालन पालन किया आज वही मेरा अपमान कर रहा हैं। रात्रि में आँख खुल गई। रो रही हैं। व्याकुल धुंधली कुएं में कूद गई।

कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता।

(भागवत माहात्म्य 5.2)

धुंधली ने अपनी देह को त्याग दिया। जब प्रातःकाल गोकर्ण जी महाराज सोकर उठे। इधर धुंधकारी ने देखा कि हमारी माँ की मृत्यु हो गई। गोकर्ण जी महाराज ने कहा कि इस धुंधकारी के कारण हमारी माँ की मृत्यु हुई हैं। अब इस धुंधकारी के साथ मैं नहीं रहूँगा। गोकर्ण जी महाराज तीर्थयात्रा के लिए चले गए। श्री गंगा, सेतुबन्द, पुष्कर, काशी, गया आदि-आदि तीर्थों में भजन करते हुए भ्रमण करने लगे और तीर्थ हरि की सेवा की भाव से भ्रमण करने लगे। इधर धुंधकारी ने घर में पाँच गणिकाएँ रख लीं। प्रतिदिन चोरी किया करता था। अनेक पापकर्म किया करता था। एक दिन उन गणिकाओं ने विचार किया कि रात्रि में धुंधकारी निकलता है यह कहाँ जाता हैं? निश्चय ही चोरी करता हैं। राजा के सिपाही चोर पकड़ने के लिए आएँगे तो हम भी पकड़े जाएँगे। "चोर का संगी भी चोर" हमें भी दंडित किया जाएगा। जैसा तुम्हारा संग वैसा तुम्हारा जीवन (तुम्हारा रंग) क्यों न हम इसे छोड़ दें। गणिकाओं ने कहा हम इसे छोड़ना चाहती हैं। ये हमारा त्याग नहीं करता।

एक दिन धुंधकारी मदिरा पीकर रात्रि में सो रहे थे। होश नहीं हैं। सब गणिकाएँ आई, रस्सी लेकर फंदा बनाकर धुंधकारी के गले में डाल दिया। दोनों हाथ पैर में रस्सी डाल कर जोर से खींचने लगीं। धुंधकारी के कान से आँख से रक्त बहने लगा परन्तु शरीर से प्राण नहीं निकले। वे छटपटा रहे हैं। तब एक ने जाकर जलता हुआ कोयला धुंधकारी के मुंख में डाला।

"तप्तांगारसमूहांश्च"

(5.11)

तो तड़प-तड़पकर धुंधकारी ने अपनी देह को त्याग दिया।

प्रात:काल हुई धुंधकारी की मृत्यु हुई। सारा सामान लेकर गणिकाएँ वहाँ से चली गई और धुंधकारी प्रेत योनि में चला गया। गोकर्ण महाराज ने सुना कि भाई की मृत्यु हो गई। जिस–जिस तीर्थ में गोकर्ण महाराज जी गए। वहाँ श्राद्ध किया।

श्राद्धकर्म क्रियादि सम्पन्न किया। गोकर्ण महाराज ने एक दिन घर लौटने का विचार किया। तीर्थ से घर आते समय गोकर्ण जी महाराज भगवद्–नाम स्मरण करते हुए आ रहे हैं।

गीतम्

राम नाम के हीरे मोती मैं बिखराऊँ गली–गली,
कृष्ण नाम के हीरे मोती मैं बिखराऊँ गली गली,
ले लो रे कोई श्याम का प्यारा शोर मचाऊँ गली गली।
राम नाम के हीरे मोती मैं बिखराऊँ गली–2
बोलो राम बोलो राम
बोलो राम बोलो राम–राम राम।
माया के दीवानो सुन लो एक दिन ऐसा आएगा।
धन दौलत और मायिक खजाना यहीं पड़ा रह जाएगा।
सुन्दर काया मिट्टी होगी चर्चा होगी गली गली......
ले लो रे कोई..........................
जिन जिन ने यहाँ मोती लूटे वो तो मालामाल हुए,
धन दौलत के बने पुजारी आखिर वे कंगाल हुए,
चांदी सोने वालो सुन लो बात सुनाऊँ खड़ी खड़ी
ले लो रे कोई राम का प्यारा शोर मचाऊँ गली–गली..
दुनिया को तू कब तक पगले अपनी कहलाएगा।
ईश्वर को तू भूल गया है अंत समय पछताएगा।
दो दिन का यह चमन खिला ह।।
फिर मुरझाए कली – कली, ले लो रे कोई राम का प्यारा
शोर मचाऊँ गली–गली......।।

तो रात्रि में आकर गोकर्ण जी महाराज अपनी कुटिया में सो रहे थे।

एवं भ्रमन् स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान्।
रात्रौ गृहांगणे स्वप्तुमागतोऽलक्षितः परैः।।

(भागवत माहात्म्य 5.20)

गोकर्ण महाराज जब सो रहे थे, ये धुंधकारी प्रेत बनकर पड़े हुए उसी घर में रहते थे। आकाश में कभी इन्द्र के जैसा रूप धारण कर लेता है, कभी मैना, कभी हाथी कभी अग्नि बन जाए। अनेक रौद्र रूप दिखाने लगे। गोकर्ण जी ने पूछा 'कस्त्वम्' तुम कौन हो? रात्रि में क्यों भय दिखा रहे हो? परन्तु यह बोल नहीं पा रहा, झट अपने कमंडल से जल लिया। जल लेकर वायु रूपी स्वरूप पर डाला। तब धुंधकारी बोलने लगा कि भईया–

अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुंधुकारीति नामतः।
स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया।।

(भागवत माहात्म्य 5.27)

धुंधकारी ने कहा भईया मैं तुम्हारा भाई हूँ धुंधकारी। इस प्रेत योनि में पड़ा हूँ। भईया मेरा उद्धार करो। गोकर्ण ने कहा–धुंधकारी मैंने गया में श्राद्ध किया, क्या तेरी मुक्ति नहीं हुई? प्रेत बोले भईया यदि सौ श्राद्ध गया में करोगे तो भी मेरी मुक्ति नहीं होगी।

गयाश्रद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति।

(भागवत माहात्म्य 5.33)

तो हमारे लिए कुछ और उपाय सोचिए। भाई मेरा उद्धार करिए। गोकर्ण जी महाराज बोले तब तो आपकी मुक्ति बड़ी कठिन हैं। इस समय आप विश्राम करें। प्रातःकाल ब्राह्मणों से पूछेंगे। जब प्रातःकाल हुआ। ब्राह्मणों की सभा बुलाई गई। ब्राह्मण ने कहा आप सूर्य महाराज का स्तवन करें। सूर्य महाराज की स्तुति की। गोकर्ण महाराज के अंदर इतनी तपस्या की शक्ति थी कि स्तंभ चक्र द्वारा सूरज की गति को, वेग को रोक दिया और प्रार्थना की।

तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन् ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकम्।

(भागवत माहात्म्य 5.40)

हे सूर्यदेव इस जगत के साक्षी भुवन भास्कर भगवान्, मेरे भाई की मुक्ति का उपाय बताए। गोकर्ण महाराज ने भाई की मुक्ति के लिए सूर्य भगवान् से प्रार्थना की।।

श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरू।

(भागवत माहात्म्य 5.41)

गोकर्ण जी महाराज आप एक क्षण का भी विलंब मत करो। यदि तुम भाई की मुक्ति चाहते हो तो "श्रीमद्भागवताभुक्तिः"। श्रीमद्भागवत की कथा उन्हें सुनाओ।

प्रेत योनि से उनका छुटकारा हो जाएगा। तो स्वयं बन गया वक्ता (गोकर्ण)

ब्राह्मण को बना लिया श्रोता और सुन्दर मंडप की रचना की। सात गांठ वाला बांस लगा लिया। जिसका नाम सप्तग्रंथि है। ये धुंधकारी वायुरूप धारण करके बांस के अंदर जाकर बैठ गया। पहले दिन की कथा की समाप्ति पर पहली गांठ खुल गई। दूसरे दिन की कथा की समाप्ति पर दूसरी गांठ खुल गई। इस प्रकार 'सप्त ग्रंथि विभेदनम्' सात दिन में सात गांठ खुल गईं कौन-कौन सी गांठ हैं?

आचार्यों ने बहुत सुन्दर व्याख्या की हैं। ये सप्त गांठ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद् मत्सरता, अहंकार। ये सप्त गांठ खुल गईं और धुंधकारीभगवान् का पार्षद बनकर प्रकट हो गए। सुन्दर गले में तुलसी की माला, माथे में मुकुट, कानों में कुंडल।

दिव्यरूपधरो जातस्तुलसीदाममंडितः।
पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः।

(भागवत माहात्म्य 5.51)

धुंधकारी कितनी सुन्दर वाणी में कह रहे हैं। भागवत में कि-

धन्या भागवती वातां प्रेतपीड़ाविनाशिनी।

(भागवत माहात्म्य 5.53)

"धन्या श्रीमद्भागवती कथा" भागवत की कथा बड़ी अद्भुत है, जो आज मुझे प्रेतयोनि से छुटकारा मिल गया। विद्वान लोग कहते हैं कि भईया जीवन में जिन्होंने श्रीमद्भागवत की कथा को नहीं सुना उसका तो जीवन निष्फल हैं। उसी समय भगवान् के दो पार्षद नंद और सुनंद। दो विमान लेकर आए हैं, एक विमान में धुंधली सुत धुंधकारी जो अभी दिव्य रूप धारण करके भगवान् के पार्षद बने जाकर विमान में बैठ गए, परन्तु दूसरा विमान जब खड़ा हुआ, पार्षदों ने गोकर्ण महाराज के पास आकर कहा महाराज आप भी विमान में विराजिए। गोकर्ण महाराज ने कहा पार्षदों क्या भगवान् के धाम में विमानों की कमी हो गई। भगवान् ने दो ही विमान क्यों भेजा। क्या भगवान् के अंदर भी भेद-भाव हैं। अरे भई कथा तो सभी ने सुनी है, फिर भी दो ही विमान क्यों? भगवान् के पार्षद कहते हैं कि दो विमान भेजे हैं। भगवान् के अंदर भेदभाव नहीं। भगवान् तो समदर्शी हैं। बोले, कथा तो सभी ने सुनी, पर किसी ने चिन्तन मनन नहीं किया। एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल दिया।

ब्रज में कहावत है एक होती है कथा, एक होती है पल्लो झाड़ कथा, कि तीन घंटे हम बैठे हैं और कथा में बड़े प्रेम से कीर्तन किया।

"श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारी हे नाथ नारायण वासुदेवा।"

बड़ा झूमकर कथा– कीर्तन का आनंद लिया। पर उठते तो देखता हूँ कि यहाँ भी और सर्वत्र भी मनुष्य उठकर अपना वस्त्र झाड़ते हैं। पंडित जी ने तीन घंटा हमें बैठाया कि हमारे पीछे लगे लगी घर तक न पहुँच जाए। तो यहाँ ली और यहीं छोड़ दी।

सब बोलो हरे कृष्ण। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

इसे कहते हैं। पल्लू झाड़ कथा। कथा में बैठो तो 'सावधानतया श्रवण' सावधान होकर श्रवण करना चाहिए।

अदृंढ च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम।
संदिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः।

(भागवत माहात्म्य 5.73)

बनिा दृढ़ता के ज्ञान स्थिर नहीं होता है और प्रमाद से यदि आप कथा श्रवण करेंगे तो भागवद्कार कहते हैं 'प्रमादेन हतं श्रुतम्' प्रमाद के साथ कथा सुनने से कथा का फल समाप्त हो जाता हैं। प्रमाद ही मृत्यु हैं। यदि व्यापार में प्रमाद करे तो उसका व्यापार नहीं चल सकता। यदि नौकरी में प्रमाद करेंगे तो दूसरे दिन ही नौकरी से छुट्टी। घर के काम धंधे में प्रमाद करेंगे तो घर का काम ठीक ढंग से नहीं चल सकता। "संदिग्धो हि हतो मन्त्रो" गुरु से प्राप्त किए मन्त्र में शिष्य को संदेह नहीं करना चाहिए, कि फल क्या होगा। फल प्राप्त होगा कि नहीं। मन्त्रों में कभी भी संदेह नहीं करना चाहिए। मन्त्र का जल्दी जल्दी जप नहीं करना चाहिए। मन्त्र जप का विधि शान्त और धीर चित्त से होना चाहिए। मन्त्र जाप यदि व्यग्रता से करेंगे, जल्दी–जल्दी करेंगे तो उसका भी फल प्राप्त नहीं होता।

इसी प्रकार भगवान् की कथा में जब बैठे, प्रमाद को त्याग करके बैठें। बहुत से लोग कहते हैं कि हमारा..महाराज..हम क्या बताएं! घर में हम तीन–तीन घंटे वीड़ियो देखते हैं। फिल्म देखते हैं तो नींद नहीं आती। परन्तु जब हम कथा में आते हैं। तो नींद आने लगती हैं। प्रमाद आ जाते हैं। क्यों? कभी लघुशंका तो कभी दीर्घ शंका बार–बार उठना पड़ता हैं। मन चंचल हो जाता हैं। प्रमाद भी आ जाता है क्यों? इसमें आपकी कोई गलती नहीं हैं। इससे सम्बन्धित हम आपको महाभारत की कथा प्रसंगात्मक जरूर सुनाता हूँ कि हमारी कथाएं शास्त्र की प्रमाणिक कथा हैं। कोई

मनगढ़ंत कथा नहीं। 3 घंटे फिल्म देखने से नींद नहीं आएगी। शायद एक टक हम देखते रहते हैं। कोई सीन (दृश्य) नहीं निकल जाए। रात-रात भर आँख फाड़फाड़ कर देखते रहते हैं। कभी कोई चैनल, कभी कोई। कहने का अभिप्राय है कि जब भगवान् की कथा में बैठते हैं। तो प्रमाद आ जाता हैं। एक बार भगवान् कृष्ण अर्जुन के साथ भ्रमण करने गए। भगवान् ने देखा कि एक बहुत सुंदर युवती आँखें बंद करके बैठी हैं। भगवान् ने अर्जुन से कहा अर्जुन देखो यह कौन है? और किसका ध्यान कर रही हैं। अर्जुन गए और पूछा हे देवी आप कौन हैं? वह बोली मेरा नाम गुडाका हैं। अर्जुन ने पूछा हे गुडाका देवी आप यहाँ बैठी किसका ध्यान कर रही हैं? गुडाका देवी ने कहा मैं श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्त करना चाहती हूँ। उन्हीं का ध्यान कर रही हूँ।

देखिए गुडाका कहते हैं नींद या निद्रा को। तो अर्जुन ने कहा, हे गुडाका देवी कृष्ण की तो अनके (16108) शादियां हो गई हैं। कृष्ण के साथ शादी करके तुम सुखी नहीं रहोगी। मेरे साथ शादी कर लो, मैं गांडीवधारी अर्जुन हूँ। गुडाका देवी ने अर्जुन को तिर्यक नयन में देखा क्या कहा कि अर्जुन तू है नर और वह है नारायण। तेरे साथ शादी करके क्या मिलेगा? केवल व्यवहार की बातें। संसार की चर्चा। यदि कृष्ण से शादी करूंगी तो उनकी सेवा और सानिध्य, सत्संग सभी कुछ प्राप्त होगा।

जब अर्जुन की एक नहीं चली तो वापस श्रीकृष्ण के पास आए। भगवान् ने पूछा, अर्जुन बहुत धीरे-धीरे बात कर रहे थे। ऐसी क्या विशेष बात थी। अर्जुन बोले, महाराज वह युवती अपना नाम गुडाका बता रही हैं। आपके साथ शादी करना चाहती है। भगवान् ने कहा अर्जुन तुमने बात नहीं चलाई। वह आपके साथ शादी करना चाहती है मैं अपनी बात कैसे चलाऊँ। सच्ची बात अर्जुन ने नहीं बताई कि मैंने जब सारा जोर लगा लिया एक नहीं चली तो आपकी शरण में आ गया। भगवान् तुरंत उठकर गुडाका के पास गए और कहा अरे गुडाका मेरी आज्ञा है कि तू शादी अर्जुन के साथ कर परन्तु तेरी इच्छा है मेरी कथा, सत्संग सुनने की। आज तुझे मैं वरदान देता हूँ कि जहाँ-जहाँ मेरा सत्संग होगा, कथा होगी। तुझे सम्मान अवश्य मिलेगा।

सत्संगत बोलो हरे कृष्ण-बाल-गोपाल की जय।

तो जहाँ-जहाँ कथा सत्संग हो, वहाँ-वहाँ अवश्य गुडाका (निद्रा) आ जाती है इसलिए बीच-बीच में कीर्तन करना पड़ता है जिससे गुडाका न आए। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय। यानि जाग्रत अवस्था लाने के लिए कीर्तन ही परम् आवश्यक हैं। पहले जब गाँव में कथा होती थी। ऐसा रिवाज भी था कि, भागवत कथा के बीच

में श्रोता लोग कहा करते थे, "सत्य वचन महाराज!" क्या कहा करते थे 'सत्य वचन महाराज' जो पंडित जी कह रहे हैं वह सब सत्य है झूठ नहीं हैं।

एक दिन पंडित जी ने विचार किया, श्रोता लोग समझकर :सत्य वचन महाराज' कहते हैं या बिना समझे आज परीक्षा कर लूँ। पंडित जी ने कथा के बीच कथा बंद करके व्यथा सुनाने लगे संसार की कथा। एक मक्खी की कथा। पंडित जी महाराज ने कहा कि एक बार हिमालय पर्वत से एक मक्खी उड़ी। श्रोता कहने लगे "सत्य वचन महाराज"। श्रोतागण निद्रा का भी आनंद ले रहे हैं। झोंका भी ले रहे हैं और कह रहे हैं– 'सत्य वचन महाराज'। पंडित जी फिर बोले, हिमालय से उड़कर वह मक्खी हलवाई की दुकान पर गई। श्रोता कहने लगे सत्य वचन महाराज और उसने अपने पांव में गुड की भेली दबाई और हिमालय की ओर उड़कर चली गई। श्रोता कहने लगे "सत्य वचन महाराज"। कथा वाचक पंडित जी ने कहा– "खाक सत्य वचन महाराज"। यही कथा सुन रहे हो?

कहने का अभिप्राय यह है कि "सत्य वचन महाराज" वाली कथा नहीं सुनना, कथा में बैठो ध्यानपूर्वक। मन लगाकर कथा का एक-एक शब्द सुनो, नहीं तो प्रमाद आ जाएगा और यदि दृढ़ता के साथ नहीं सुनोगे तो ज्ञान नष्ट हो जाएगा।

"अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेहतं श्रुतम्"

(भागवत माहात्म्य 5.73)

भगवान् के पार्षद धुंधकारी को लेकर चले गए। प्रेत योनि से मुक्त हुए धुंधकारी पार्षद बनकर भगवद् पार्षदों के साथ चले गए। परन्तु गोकर्ण जी नहीं गए। श्रावण का महीना आया। गोकर्ण जी ने गाँव के बीच में भागवत महायज्ञ किया। सबको बुलाया। अंधे, लंगड़े, लूले जिनको जो कष्ट था सभी जीव भागवत की कथा सुनने के लिए पधारे और भागवत की कथा की समाप्ति पर साक्षात् श्रीवृंदावन बिहारी प्रकट हो गए। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय....

विमानैः सह भक्तैश्च हरिराविर्वभूव हः।

(भागवत माहात्म्य 5.80)

भगवान् ने गोकर्ण जी का आलिंगन किया और अपने जैसा स्वरूप गोकर्ण जी के लिए प्रदान कर दिया। जैसे कि भगवान् श्रीराम पूर्व में अपने जितने भी अयोध्या के निवासी थे सभी को लेकर अपने साकेत धाम पधारे।

अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः।
तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम्।।

(भागवत माहात्म्य 5.85)

इसी प्रकार से जितने भी गोकर्ण जी के गाँव के लोग थे सबको लेकर भगवान् अपने गोलोक चले गए।

अथ षष्ठोऽध्यायः

सप्ताह यज्ञ की विधि

जो लोग धुंधकारी की चरित्र कथा श्रवण करते हैं, निश्चित ही उन्हें भगवान् की भक्ति प्राप्त होती है। यदि अश्विन कृष्ण पक्ष में इस कथा को सुना जाए या पाठ किया जाए तो हमारे पितृगण तृप्त हो जाते हैं, मुक्त हो जाते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं। भागवत में लिखा है कि आज भी चित्रकूट में शांडिल्य मुनि इस कथा का पाठ करते हैं।

इतिहासमिमं पुण्यं शांडिल्योऽपि मुनीश्वरः
पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानन्दपरिप्लुप्तः।।

(भागवत माहात्म्य 5.89)

इस भागवत का पाठ करके शाडिल्य मुनि जी ब्रह्माण्ड में मग्न होते हैं। इसी प्रकार फिर नारद जी ने प्रश्न किया कि भागवत सुनाने की विधि क्या है? देखिए भागवत सुनने की भी एक विधि हैं। आश्विन, मार्गशीर्ष, कार्तिक बड़े शुभ मास हैं।

एते मासाः कथारम्भे श्रोतृणां मोक्षसूचकाः।

(भागवत माहात्म्य 6.3)

कथा की दृष्टि से आश्विन और मार्गशीर्ष मास में सुनने वालों को मोक्ष प्राप्ति होती हैं। परन्तु कार्तिक और पुरुषोत्तम मास अधिकस्य फलम्।

प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण।

ये दो मास बड़े विशेष हैं– कार्तिक मास और पुरुषोत्तम मास। ऐसा शास्त्र में लिखा हुआ है कि अधिक मास कृष्ण को अधिक प्रिय है इसलिए इसे पुरुषोतम मास कहते हैं। कार्तिक का महीना यह तो हमारी प्रिया राधारानी का महीना है। कार्तिक के महीने में जिन्हें श्रीमद्भागवत कथा सुनने को मिलता है वे बड़े भाग्यशाली हैं। उन पर राधारानी की कृपा हैं। ऐसे कृपा से ही भागवत सुनने का समागम होता हैं। तो भईया कहने का अभिप्राय है कि भागवत कथा को सुनने का सुन्दर मुहुर्त होना चाहिए। सुन्दर तिथि, सुन्दर नक्षत्र, वार, महीनों में भादों का महीना, अश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, सावन इन छह महीनों में भागवत श्रवण करते हैं। "मोक्षशोचितम् सूचकाः" उनकी मुक्ति हो जाती हैं। मोक्ष प्राप्त करते हैं, ऐसा भागवत में लिखा हैं। यानी उनकी

करतल पर मुक्ति स्थित हो जाती हैं। भागवत में ये भी प्रश्न आया है कि कितने लागत पर कथा होनी चाहिए। श्रीमद्भागवत में सनत कुमार कहते हैं। कि–

"विवाहे यादृशं वित्तं, तादृशं परिकल्पयेत।"

(भागवत माहात्म्य 6.2)

एक कन्या के विवाह में जितना खर्च होता है उतनी ही भागवत कथा में व्यय होना चाहिये यदि श्रीमद्भागवत की कथा हो तो सबको आमंत्रित करना चाहिए और 'विशाला वसुधा' विशाल भूमि पर भागवत यज्ञ कराके सुन्दर पंडाल की रचना कर और गणेश, गौरी का पूजन कर अंत में भागवान के चरणों में श्रीफल भेंट करते हुए प्रार्थना करनी चाहिए कि–

संसारसागरे मग्नं, दीनं मां करुणानिधे।
कर्म मोहगृहीतांग मामुद्धर भवार्णवात्।।

(भागवत माहात्म्य 6.27)

हे वृन्दावन बिहारी, हे नन्द–नन्दन कर्म के मोह ने मेरे पाँव को जकड़ रखा हैं। हे प्रभु आप इस कर्म मोह को छुड़ाकर अपने चरण में स्थान दें। कि

श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि।
स्वीकृतीऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भव सागरे।।

(भागवत माहात्म्य 6.30)

हे भागवत आप तो साक्षात् श्रीकृष्ण मूर्त्ति हैं। जिसने भी भागवत का श्रवण किया श्रीमद् भागवत को स्वीकार किया "मुक्तयर्थं भव सागरे" उसे मुक्ति का अधिकार मिल गया। इस प्रकार से हमें व्यास भगवान् की भी प्रार्थना करनी चाहिए जो व्यास गद्दी पर बैठे हैं, वे किसी का पति नहीं, किसी का भाई नहीं, किसी का पुत्र नहीं, किसी का बन्धु नहीं। वह तो "व्यासाय विष्णुरूपाय" जो साक्षात् भागवत स्वरूप हैं।

तो हमें व्यासदेव भगवान् से भी प्रार्थना करनी चाहिए और प्रार्थना करें–

शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशाय।।

(भागवत माहात्म्य 6.33)

इस प्रकार से व्यास जी और शुकदेव जी को प्रणाम करते हुए वंदन करते हुए हमें सात दिन नियम से कथा सुननी चाहिए क्योंकि कार्तिक का महीना है बड़ा विशेष जिसमें राधारानी की कृपा से बड़ा समागम हो रहा हैं। कहने का अभिप्राय है कि यदि कोई नियम से भागवत कथा सुनना चाहे तो भागवत में यह नियम भी बताया– क्या नियम बताया?

देखिए, परीक्षित जी ने सात दिन निर्जल व्रत धारण करके भागवत को सुना था। परन्तु आज इतनी शक्ति व्यक्ति के अंदर नहीं हैं। परीक्षित को कहना पड़ा था शुकदेव जी को पाँचवें दिन में कि राजा को पाँच दिन हो गए कथा सुनते-सुनते परन्तु आपने जल भी नहीं पीया हैं, अब थोड़ा जल पीयो, प्रसाद लो फिर कथा सुनाऊँगा। परन्तु राजा परिक्षित ने शुकदेव जी के चरण में प्रणाम करते हुए कहा-

नैषातिदु:सहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.13)

महाराज आपके मुख से जो अमृत कथा टपक रही है उस अमृतपान से मुझे भूख प्यास नहीं लग रही। आप इस अमृत को बांटते रहिए। आप मेरी आत्मा का भोजन दे रहे हो। देखो, अन्न देह का भोजन है। अन्न से देह पुष्ट होती है। परन्तु हमारी आत्मा का भोजन ये भागवत कथा, तो आप मुझे मेरी आत्मा का भोजन दे रहे हैं। भगवन्, इसी प्रकार से धारा प्रवाह अमृत को बहाते रहिए। इस कथा को एक क्षण के लिए भी बंद मत कीजिए। मुझे भूख-प्यास नहीं लग रही।

जीवन में एक बार मुझे भूख प्यास लगी थी और मैंने एक सन्त का अपमान किया, एक वैष्णव का अपराध किया। अब मुझे न भूख लगती है न प्यास। अब तो इस अमृत को आप पिलाते रहिए। इस प्रकार से महाराज परीक्षित सात दिन तक निर्जल व्रत धारण कर श्रीमद्भागवत कथा को सुनते रहें। परन्तु आज व्यक्ति में इतनी शक्ति नहीं है तो ऐसा नियम अवश्य रखें कि एक समय भोजन और एक समय फलाहार करें। ऐसा नियम रख के श्रीमदभागवत में बैठे।

नोपवासो वर: प्रोक्त: कथाविघ्ननकरो यदि।

(भागवत माहात्म्य 6.43)

उपवास से कथा सुनने में विघ्न आए। ऐसा न करके फलाहार अथवा एक समय हविष्य अन्न ग्रहण कर कथा श्रवण करें।

इस प्रकार से भागवत में बैठकर कथा श्रवण करें आप जिस कामना से श्रीमद्भागवत कथा का श्रवण करेंगे तब निश्चित ही वृंदावन बिहारी, ठाकुर जी आपकी कामना को अवश्य ही पूरा करेंगे।

सात दिन के पश्चात, श्रीमद्भागवत की समाप्ति पर यदि गृहस्थ है तो गृहस्थों के लिए हवन परमावश्यक हैं।

"गृहस्थश्चेन्तदा होमः"

(भागवत माहात्म्य 6.59)

और यदि किसी सन्त के लिए भागवत हो रही है तो गीता का पाठ परमावश्यक हे।

"विरक्तश्चेद्भवेच्छ्रोता गीता"

(भागवत माहात्म्य 6.59)

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के प्रति श्लोक से हवन किया जाए और द्वादशाक्षर मन्त्र के, "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस द्वादशक्षर मन्त्र से आहुति दी जाए और गायत्री मन्त्र से भी आहुतियाँ दी जाएँ। इस प्रकार कम से कम बारह ब्राह्मणों के लिए या बारहों का भी यदि कोई मन में शंका हो तो 15, 21 जितने भी संभव हो ब्राह्मणों को भोजन कराके इस महायज्ञ को पूर्ण करना चाहिए। "भुक्तिमुक्ति प्रदायिनी" यानी श्रीमद्भागवत की कथा संसार के पदार्थ भी और मुक्ति भी प्रदान करती है।

सर्वपापहारां पुण्यां भुक्तिमुक्ति प्रदायिनीम्।

(भागवत माहात्म्य 6.70)

जब श्रीमद्भागवत की कथा का वर्णन श्री सनतकुमार नारद जी से कर रहे थे, तब उस कथा के माध्यम से साक्षात् शुकदेव जी महाराज पधारे। बोले श्री शुकदेव जी महाराज की जय। साक्षात् शुकदेव जी वहाँ पधारे हैं। व्यास के आत्मज ज्ञान के चन्द्रमा। श्रीमद्भागवत के श्लोकों का पाठ करते-करते तन्मय भाव से आए और सभी ने उठकर शुकदेव जी महाराज के चरणों में प्रणाम किया।

एवं ब्रुवाणे सति बादरायणौ मध्ये सभायां हरिराविरासीत।।

(भागवत माहात्म्य 6.84)

सूतजी कहते हैं, कितना सुन्दर दिवस है, कितना सुन्दर समय है और कितना सुन्दर समागम। उस कथा की समाप्ति पर-साक्षात सनतकुमार और नारद जी प्रसन्न हुए। साक्षात् श्रीवृन्दावन बिहारी प्रकट हुए हैं। बोलो श्री वृन्दावन बिहारी लाल की जय!

जहाँ ऐसी भागवत की कथा होती हो वहाँ उद्धव जी गुप्त रूप से आते हैं। जहाँ राम कथा होती हैं वहाँ हनुमान जी आते हैं। जहाँ श्रीमद्भागवत की कथा होती हैं। वहाँ हनुमान जी तो आते ही हैं, परन्तु गुप्त रूप से उद्धव जी भी पधारते हैं। भगवान् के परम भक्त भगवान् की ही प्रतिमूर्ति श्री उद्धव जी महाराज भी प्रकट

हुए और भगवान् के प्रकट हो जाने से सभी भक्तजन भी आकर भगवान् का नाम संकीर्तन करने लगे। भागवत में इस कीर्तन का वर्णन किया। कितना मधुर कीर्तन हुआ है।

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत।
(भागवत माहात्म्य 6.86)

उद्धव जी प्रकट होकर झांझ बजा रहे हैं और श्री प्रह्लाद जी आकर के ताली बजाने लगे।

"प्रह्लादस्तालधारी" प्रेम से बोलो "हरे कृष्ण" देखिए जब मैं कीर्तन करता हूँ तो विशेष रूप से कहता हूँ कि आप लोग भी ताली बजाइए। ये ताली क्या है? प्रातः स्मरणीय डोंगरे जी महाराज जो भागवत के परम उच्च कोटि के विद्वान वक्ता थे। वे कहा करते थे कि ये जो ताली है ये ब्रह्मनाद हैं। इसे कहते हैं। "ब्रह्मनाद" और भागवत इस बात का प्रमाण हैं। सबसे पहले कीर्तन में ताली किसने बजाई है? बोलो प्रह्लाद जी महाराज "प्रह्लादस्तालधारी" और उद्धव जी ने बजाई हैं "झाँझ" और स्वयं श्री नारद जी महाराज ने वीणा उठा ली। नारद वीणा बजा रहे हैं। 'रागकर्तार्जुन अद्भुत' सुन्दर राग गा रहे हैं। अर्जुन और इन्द्र प्रकट होकर बजा रहे मृदंग। बड़े सुन्दर भावों को प्रदर्शित कर रहे हैं। सनतकुमार बड़े प्रेम से गा रहे हैं। सभी भक्तजन, आप लोग भी कुछ क्षणों के लिए गुनगुनाइए। प्रभु की शरण में गाइए।

गीतम्

कृष्ण मुरारी जय हो तुम्हारी,
बांके बिहारी जय हो तुम्हारी,
जय हो ब्रजराज की बांसुरी की
ब्रजमोहन की बनवारी की जय जय,
ललिता रंग देवी विशाखा की जय
सुकुमारी श्री राधिकाप्यारी की जय-जय,
नटनागर नित ऽ बिहारी की जय,
सुख सागर रास बिहारी की जय,
जगभूषण कृष्ण मुरारी की जय
ब्रजभूषण बांके बिहारी की जय-जय
बांके बिहारी जय हो तुम्हारी,,

जय हो तुम्हारी लाल जय हो तुम्हारी,
जय हो शरणागत रक्षक की
वन वन हिमहा भयहारी की जय जय
कर पूरन मनरथ गोपियों के
जमुना तट चीर बिहारी की जय–जय,
जय हो मगुआ मद मर्दन की
हरे कृष्ण सदा गिरधारी की जय–जय
जग भूषण कृष्ण मुरारी की जय
जगभुषण बांके बिहारी की जय–जय,
कुंज बिहारी जय हो तुम्हारी।
बांके बिहारी जय हो तुम्हारी।

उस आनंद घाट पर साक्षात् भक्ति, ज्ञान, वैराग्य तीनों नृत्य कर रहे हैं।

देखिए भक्ति भी नाच रही है, ज्ञान और वैराग्य भी नाच रहे थे, सभी भक्तगण से भगवान् ने कहा मैं तुम्हें भागवत का फल देना चाहता हूँ। माँगो क्या चाहिए? तो सभी भक्तों ने कहा महाराज जहाँ–जहाँ श्रीमद्भागवत की कथा हो आप स्वयं पधारकर दर्शन लाभ प्रदान करें, तो भगवान् ने कहा कि जहाँ–जहाँ भागवत कथा होगी वहाँ स्वयं मैं अपनी भागवत कथा को सुनने के लिए आऊँगा। तो कौन कह सकता है कि साक्षात भगवान् की उपस्थिति नहीं हैं। भगवान् को देखने के लिए हमारे पास दिव्य आँखें होनी चाहिए। सूत जी महाराज कहते हैं। कि–

असारे संसारे विषय विष संगाकुलधियः
क्षणार्थं क्षेमार्थं पिवत शुकगाथातुलसुधाम्।

(भागवत माहात्म्य 6.100)

इस आसार संसार में असत् वस्तुओं का संग्रह करके जीव कितना दुखी हो रहा है, भइया भागवत का प्रमाण है महाराज परीक्षित। परीक्षित से बढ़कर कोई प्रमाण नहीं। सूत जी कहते हैं, भागवत का, सात दिन श्रवण करने से ही मुक्ति को प्राप्त हो गए। भागवत घोषणा करती है कि मुक्ति की चाह में भागवत की शरण में आओ। इन छः अध्याय में महात्म्य प्रसंग पूर्ण होता है और श्रीमद्भावगत् के प्रथम स्कंध के प्रथम अध्याय में प्रथम श्लोक में बड़ा सुन्दर मंगलाचरण वेदव्यास जी कर रहे हैं।

स्कंध-१



प्रथम स्कंध

अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रीसूत जी से शौनकादि ऋषियों का प्रश्न

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वाभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.1.1)

वेदव्यास जी मंगलाचरण में कह रहे हैं, 'जन्माद्यस्य यतो' जिसका जन्म न होते हुए भी जन्म हैं। जो अजन्मा होते हुए भी भक्त इच्छा पूर्ण करने के लिए जन्म लेता हैं। जो 'अविज्ञ स्वराट्' है, सब प्रकार के ज्ञान से पूर्ण हैं, स्वतंत्र हैं, जो जन्म लेने में स्वतंत्र हैं, कर्म करने मे स्वतंत्र हैं, जो किसी के आधीन नहीं, जिनको ब्रह्मादि देवता लोग भी समझ नहीं पाते। ब्रह्मा जी की क्या बात है? अपने बड़े भाई बलराम जी भी समझ नहीं पाते। ऐसी लीला करते हैं, अपने पुरुषोत्तम जी बड़े-बड़े देवताओं को भी "मुहयन्ति यत्सुरयः" मोह में डाल देते हैं। जैसे मरुभूमि में दूर से देखो तो पानी है पास जाने पर पानी का नामोनिशान भी नहीं। "तोजोवारिमृदां" जो सत्य है नहीं, परन्तु प्रतीत होता है– "सत्य निरस्तकुहकं" ऐसे परम् पुरुष को हम, ऐसे परम, सत्य को हम "धीमहि" ध्यान करते हैं।

"सत्यं परं धीमहि" श्रीमद्भागवत में वेदव्यास जी यह समझा रहे हैं कि हमने सत्य का ध्यान कर लिया तो सबका ध्यान कर लिया। सबको प्रणाम कर लिया। सबका भजन कर लिया।

वेदव्यास जी ने सोचा अगर हम "रामपरंधीमहि" लिखे तो राम को मानने वाले भक्त सोचेंगे कि भागवत हमारे लिए हैं। वेदव्यास जी "कृष्णपरंधीमहि" नहीं लिखा क्योंकि कृष्ण भक्त सोचेंगे कि भागवत हमारी हैं। शिव परं धीमहि भी नहीं लिखा क्योंकि शिव भक्त सोचेंगे कि भागवत हमारी हैं। देवी देवता का नाम भी नहीं लिखा। किसका नाम लिखा "सत्य का" सत्य यानि परमात्मा, सत्य यानी शिव। सत्यम् शिवम् सुन्दरम्। सत्य यानी नारायण– सत्यनारायण। सत्य यानि

कृष्ण। सत्यव्रतम् त्रिसत्यम्।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।

(श्रीमद्भागवतम् 1.2.26)

चाहे राम का हो, कृष्ण का हो या शिव का हो, सत्य को छोड़कर किसी भी अभिव्यक्ति नहीं। देखिए तुलसीदास जी महाराज रामचरित मानस लिखने से पहले उस सत्य नारायण को श्रीराम के रूप में स्वीकार किया और पूर्ण रामचरित मानस की रचना की। जिस ग्रंथ को लिखने से पहले तुलसीदास जी ने गणेश जी का वंदन किया, महेश जी का वंदन किया, देवी माता का वंदन किया शरयू का वंदन किया। राम जन्मभूमि को वंदन किया। अयोध्याजी को वंदन किया। अयोध्याजी में रहने वाले सभी भक्तों को वंदन किया। साधु असाधु को वंदन किया। निंदा करने वालों को वंदन किया। चोरों को, डाकूओं को वंदन किया। छोटे बड़े सभी चोरों को वंदन किया। बाबा जी किसी को छोड़ा ही नहीं अंत में लिख दिया "सिया राममय जग मैं जानि"

परन्तु विचारणीय विषय है वेदव्यास ने भागवत के, आरंभ में मंगलाचरण में किसी देवता का नाम नहीं लिया। केवल सत्य का नाम लिया। जिस सत्य के आश्रय पर समस्त जीव जगत प्रतिष्ठित है, स्थित हैं। उस सत्य का ही ध्यान कर रहे हैं।

"सत्यं परं धीमहि"

तुलसीदास जी महाराज रामचरित मानस में कोई धार्मिक ग्रन्थ लिखने से पहले देवी-देवता का नाम लेकर गणेश जी, पार्वती, शिव जी देवी का नाम लेकर लिखना प्रारंभ करते हैं। वेदव्यास जी ने श्रीमद् भागवत प्रारंभ करने से किसी देवी-देवता का नाम नहीं लिया। मंगलाचरण कहीं बड़ा न हो जाए और मूल बात जो कहना चाहते हैं उसमें विषयान्तर न हो जाए। छोटा न हो जाए इसलिए केवल सत्य का ही ध्यान किया क्योंकि सत्य में ही सब स्थित है।

देखिए तीन मंगलाचरण हैं। श्रीमद्भागवत के सत्संगत बोलो हरे कृष्ण। इन तीन मंगलाचरण का तात्पर्य क्या है? भागवत में तीन मंगलाचरण क्यों? ना दो, ना चार, ना ही सात है।

पहला मंगलाचरण किया है वेदव्यास जी ने। भागवत में दूसरा मंगलाचरण किया है–सूत जी ने। तीसरा मंगलाचरण किया शुकदेव जी महाराज ने, तीन मंगलाचरण का तात्पर्य सम्पूर्ण चौबीस घंटे में अपने ठाकुर को तीन बार कम से कम अवश्य याद

करें। बोले कौन–कौन से समय। प्रात:कालीन बेला–अमृत या ब्रह्म बेला, दोनों वक्त जब समय मिले मंगलाचरण करो। तीसरा – मध्याहन कालीन वेला।

भागवत का जो प्रथम स्कन्ध है उसका आचार्यों ने लक्षण बताया हैं। यानी पात्रस्कन्ध, अधिकारक स्कन्ध। जैसे किसी वस्तु को रखने के लिए पात्र की आवश्यकता होती हैं। उसी प्रकार भागवत का प्रथम स्कन्ध पात्र स्कन्ध हैं। पात्रता सिखाती हैं। भागवत के पात्र बने, जैसे किसी सिंहनी का दूध स्वर्ण के पात्र में रखा जाए अन्यत्र नहीं। अन्य किसी पात्र में नहीं, तो ये पात्र स्कन्ध हैं, अधिकारिक स्कन्ध। जब हम किसी वस्तु को प्राप्त करने के अधिकारी बन जाते हैं। पात्र बन जाते हैं। फिर हमें साधन की आवश्यकता होती हैं। तो देखिए भागवत का द्वितीय स्कन्ध है 'साधन'।

वेदव्यास जी ने प्रथम स्कन्ध में प्रथम श्लोक में मंगलाचरण में 'सत्यं परं धीमहि' कह करके भगवान् का पात्र बताया कि भागवत का पात्र कौन है– "निर्मस्तराणां सतां" जिसके हृदय में मत्सरता नहीं है, जलन नहीं है, ईर्ष्या नहीं है, कपट नहीं है, द्वेष नहीं है वही परम् भागवत हैं। 'निर्मस्तराणां सतां' भागवत हमें भागवत बना देती हैं देखिए भागवत में चार अक्षर हैं– भा + ग + व + त = भागवत्।

भा = भक्ति ग = ज्ञान व = वैराग्य त = त्याग।

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और त्याग चारों की शिक्षा हमें भागवत देती हैं। भागवत ईश्वर वाचक भी है भागवत माने भगवान् और भगवान् माने भक्ति भी हैं। भागवत कौन है? जिसके मन में मत्सरता नहीं हैं। ईर्ष्या नहीं दिखाई देती हैं। जब अपना कोई कार्य बिगड़ रहा हो तो दूसरे का बिगाड़ देना इसे कहते हैं– मत्सरता। प्रेम से बोलो राधे राधे। भले ही अपनी एक आँख फूटे पड़ोसी की दोनों आँखें फूट जाए। परन्तु शास्त्र और सन्त कहते हैं कि

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः।"
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुख भाग भवेत्।

"निर्मस्तराणां सतां" जिसके हृदय में मत्सरता है वह भागवत के पात्र नहीं बन सकते। वे भागवत सुनने के अधिकारी नहीं हैं। एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल देंगे। "निर्मस्तराणां सतां" जिनका हृदय है वही भागवत हैं। वही भगवान् की वानी है "तेनयंवर्तते प्रत्यक्षाहरे" भगवान् के द्वारा प्रोक्तो इसीलिए इसका नाम पड़ा भागवत।

भगवान् नारायण ने स्वयं इस भागवत को प्रथम बार भगवान् ब्रह्मा जी को श्रवण कराया है।

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः।।
(श्रीमद्भागवतम् 1.1.3)

देखिए श्रीमद्भागवत साक्षात वेद हैं। साक्षात वेद का फल स्वरूप हैं। निगम कहते हैं वेद को। श्रीमद्भागवत साक्षात् कल्पतरू है "निगमकल्प तरो र्गलितं फलं"

वेद रूपी कल्पवृक्ष का पका हुआ फल – "श्रीमद्भागवत" है और ये फल जिसका कोई छिलका नहीं, कोई गुठली नहीं, रस ही रस हैं। जिसको शुकदेव रूपी तोते ने चोंच मार दी हैं। किवंदन्ती है–"तोता जिस फल में चोंच मारते है वह फल मीठा होता है।" या तोता जिस फल में चोंच देता है वही मीठा हो जाता हैं। बोले महाराज पीने वाले दो ही व्यक्ति का नाम क्यों लिखा– "रसिका भुवि भावुका" नहीं–नहीं वेदव्यास जी लिखते हैं, रस को कोई भी पी सकते हैं, परन्तु दो ही व्यक्ति को अधिक प्रिय लगता है वे हैं। रसिक भक्त और भावुक भक्त।

"पिबत भागवत् रसमालयं मुहरहो रसिका भुवि भावुकाः।"

प्यास न होने पर व्यक्ति को कहें, बाबूजी कुएं का पानी पीठा है पीजिए। वे कहेंगे कि क्या पानी साफ सुथरा हैं। पिलाने वाले कहेंगे कि बाबूजी मीठा और साफ–सुथरा हैं। फिर बाबूजी पूछ सकते हैं। कि कब से घड़े में डालकर रखा है क्योंकि बाबूजी को प्यास नहीं हैं। इसलिए इतने प्रश्न उठ रहे हैं।

प्यास होने पर वैसे ही पी लेते। इसी प्रकार भागवत के भक्ति रस को "मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः" रसिक भावुक ही ले सकते हैं।

एक बार नैमिषारण्य क्षेत्र में 88,000 शौनकादि ऋषि एकत्र हुए। जहाँ 88,000 मुनि ऋषि हैं। सभी ने शौनक जी को प्रश्नकर्त्ता के रूप में नियोजित किया। शौनक जी वयोवृद्ध हैं। शौनक जी ने सभी सन्त की ओर से सूत जी के आगमन पर प्रश्न किया। भागवत के प्रारंभ में ये छः प्रश्न हैं। इन छ ही प्रश्नों के अंदर भागवत में अन्यत्र जितने भी प्रश्न होंगे, इन के ही अंतर्गत होगे। शौनक जी ने प्रथम प्रश्न किया कि–

1. "पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि।"
(श्रीमद्भागवतम् 1.1.9)

इस मानव के परम श्रेय का मार्ग क्या है? परम कल्याणकारी मार्ग क्या है?

दूसरा प्रश्न किया?

2. परम् तत्व क्या है?

3. तीसरा प्रश्न किया है?

सूत जानासि भद्रं ते भगवान् सात्वतां पतिः।
देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.1.12)

भगवान् का अवतार देवकी और वसुदेव के घर क्यों हुआ? भगवान् अवतार क्यों लेते हैं?

4. चौथा प्रश्न

भगवान् (कृष्ण) ने कौन-कौन सी लीला की?

5. पाँचवां प्रश्न

भगवान् ने कितने अवतार लिए। कोई कहते हैं कि भगवान् के दस अवतार,चौदह अवतार! कोई कहते हैं–चौबीस। कोई कहते हैं–बाईस। तो भगवान् के कितने अवतार हुए। तो ये भगवान् के अवतारों के बारे में प्रश्न किया गया।

6. छठा प्रश्न किया–

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि।
स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.1.23)

ये छठा प्रश्न किया कि सूत जी महाराज बताइए कि जब कृष्ण जी ने अपने कुल का संहार कर अपने गोलोक धाम पधारे, तो ये धर्म किसकी शरण में गया। धर्म ने किसकी शरण ली। सूत जी महाराज, शौनकादि ऋषियों से कहते हैं कि शौनकादि ऋषियों आपने बहुत सुन्दर प्रश्न किया वास्तव में आपका प्रश्न प्रशंसनीय है।

अथ द्वितीयोध्यायः

भगवद्-भक्ति का माहात्म्य

आज शौनकादि ऋषियों के प्रश्नों को सुनकर सूत जी महाराज का रोम-रोम खिल गया। नाम पड़ा 'रोमहर्षण'। देखिए सूत जी का एक नाम है– "रोमहर्षण"। शौनकादि ऋषियों के प्रश्न सुनकर गद्गद हो गए। सूतजी ने कहा देखिए मैं आपके प्रश्नों का

उत्तर दूँगा, परन्तु पहले अपने गुरुदेव का मैं ध्यान करूँगा क्योंकि बिना गुरु की स्तुति किए, प्रार्थना किए हमें कोई कार्य आरंभ नहीं करना चाहिए। जब हम गुरु के चरणों में प्रणाम करते हुए कहते हैं–

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरु देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्मं तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।"

हमने ईश्वर को नहीं, परमेश्वर को नहीं देखा। परन्तु एक मानव के रूप में अपने गुरु के रूप में साक्षात् गोविन्द का दर्शन किया। कृष्ण का दर्शन किया। क्योंकि भगवान् गुरु के आचार्य के शरीर में, वास करते हैं। भगवान् कहते हैं, "आचार्य माम् विजानीयेत्" में ही आचार्य के रूप में हूँ सूत जी कहते हैं, पहले अपने गुरु की स्तुति करुँगा, प्रार्थना करुँगा, फिर आपके प्रश्न का उत्तर दूँगा। तो अपने गुरुदेव श्री शुकदेव जी महाराज के चरणों में वंदन करते हैं, ध्यान करते हैं, प्रणाम करते हैं।

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु- स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि।
(श्रीमद्भागवतम् 1.1.2)

"यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेत कृत्यं" जो कि पैदा होते ही जिनका नाड़ भी नहीं कटा, लौकिक वैदिक कर्मादि अनुष्ठान भी नहीं हुए और पैदा होते ही माँ के गर्भ से वन की ओर दौड़े चले जा रहे हैं। पिता व्यास आवाज लगा रहे हैं, हाँ पुत्र शुक, अपना मुख तो दिखा।

"द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव"
(श्रीमद्भागवतम् 1.1.2)

वृक्ष के अंदर से ध्वनि निकल रही हैं। वृक्षावलि तन्मय होकर कह रही है कि वेदव्यास जिनको आप अपना पुत्र कह रहे हैं। वह केवल आपका पुत्र नहीं है, वे तो सर्वप्राणी के अंदर आत्मा में विराजमान होने वाले परमात्मा स्वरूप है।

"स्तं सर्वभूतहृदयं" ऐसे उन परमात्मा स्वरूप शुकदेव जी महाराज के चरणों में हम वंदन करते हैं। बोलो शुकदेव जी महाराज की जय!

कौशिक संहिता में श्रीशुक देव महाराज जी के जन्म की बहुत सुन्दर कथा आती हैं। एक बार कैलाश पर पार्वती के गुरु नारद जी पधारे। पार्वती ने अपने गुरुदेव का बड़ा आदर-सत्कार किया। जब नारद जी चलने लगे तो कहा कि पार्वती आपने कभी शिव से कोई जिज्ञासा रखी। यह सुनकर पार्वती बोली, गुरुजी कैसी जिज्ञासा? बोले तुमने कभी भगवान् शिव से पूछा कि उनके गले में जो मालाएँ हैं, वे किसके मुंड

की हैं। किसका सिर है कभी पूछा? बोली, गुरुजी मैंने कभी नहीं पूछा तब नारद बोले आज पूछना कि आपके गले मे जो माला है वह किसका मुंड हैं। भगवान् शिव ने कहा कि पार्वती बताऊँ, बोली हाँ। महाराज बताइए। तो भगवान् शिव ने कहा कि हे पार्वती! ये तेरे ही तो सिर हैं। पार्वती ने कहा! महाराज मैं तो बार-बार मर जाती हूँ और आप अमर बने हुए हैं। ये बताइए कि आपने कौन सी ऐसी अमर बूटी खाई हैं। जो आप कभी मरते ही नहीं। भगवान् शिव कहते हैं कि पार्वती मैं भगवान् की अमर कथाओं का गान करता हूँ। मैं भगवान् के अमर कथा का पान करता हूँ। पार्वती ने कहा महाराज यह कथामृत हमें नहीं पिलाओगे। भगवान् शिव ने कहा पार्वती अवश्य ही पिलाउँगा। परन्तु देखो, पार्वती उस अमृत को पीने का अधिकार सबको नहीं हैं। तीन बार भगवान् शिव ने ताली बजाई और जितने भी जीव-जन्तु, पशु-पक्षी थे सब कैलाश से चले गए।

भगवान् शिव ने कहा पार्वती आप बाहर जाओ और देखो कोई दूसरा तो हमारी कथा नहीं सुन रहा। पार्वती जी गुफा से बाहर निकली परन्तु कोई नहीं दिख रहा था। वहाँ एक तोती का अंडा पड़ा था, उस अंडे को देखकर पार्वती देववती ने अनदेखा किया और आकर आसन पर बैठ गई। भगवान् शिव ने कहा कि, देखो पार्वती अब मैं अमर कथा प्रारंभ कर रहा हूँ। परन्तु कथा के बीच में गुड़ाका (नींद) जरूर आती हैं। सब मिलकर बोलो हरे कृष्ण!

ये नींद गुड़ाका हैं यदि गुड़ाका देवी आ गई तो सारी कथा के फल को ले जाएगी। हाँ, ये समझ लेना। तो पार्वती आप ऐसा न करिए कि मैं तो कथा करता रहूँ आप नींद का आनंद लेती रहो। तो बीच-बीच में हुंकार आदि भरती रहना। जिससे मुझे मालूम हो कि आप कथा सुन रही हो। पार्वती ने कहा प्रभु जैसी आपकी आज्ञा और पार्वती आसन पर बैठ गई। भगवान् शिव समाधि में चले गए। शिव ने कथा प्रारंभ कर दी। बीच-बीच में पार्वती हुंकार भरती रही।

जब दसवाँ स्कन्ध पूर्ण हो गया। भगवान् की बाल लीलाएँ सम्पन्न हो गईं। और ग्यारहवां स्कन्ध प्रारंभ हुआ तो पार्वती को नींद आ गई। ज्ञान प्रसंग था। पार्वती जी सो गई और हुंकारा देना बंद कर दिया। उधर जो तोती का विगलित अंडा पड़ा था जिसको भागवत अमृत पान करके प्राण संचित हुआ और उस तोते का जन्म हुआ। अब वह तोते का बच्चा वृक्ष पर बैठकर भगवान् के मुख से अमृत कथा सुन रहा था। उस तोते ने देखा कि पार्वती तो सो गई है हुंकार देना बंद कर दिया हैं। कहीं ऐसा न हो कि भगवान् शिव भी कथा बंद कर दें। तो वह तोता

बीच-बीच हुंकारा भरने लगा। थोड़ी देर में पार्वती की आँख खुली तो पार्वती ने कहा महाराज् आपने कृष्ण उद्धव संवाद प्रारंभ किया आगे कथा सुनाइए। भगवान् शिव ने कहा पार्वती मैं तो बहुत आगे पहुँच गया। क्या आप सो रही थीं। पार्वती ने कहा, महाराज थोड़ी-सी नींद आ गई। शिव ने कहा फिर ये हुंकारा कौन भर रहा था? झट आंखें खोलकर भगवान् शिव ने कैलाश में चारों ओर देखा। परन्तु कोई नहीं दिखाई दिया। भगवान् शिव बाहर आए। देखा वृक्ष पर तोते का बच्चा बैठा है और जोर-जोर से हुंकारा भर रहा हैं। मानो ये तोता भगवान् शिव से प्रार्थना कर रहे हैं कि इसी प्रकार से ही इस कथामृत को आगे बढ़ाएँ और इस अमृत का पान कराते रहें। एक क्षण भी इस कथा को बंद मत करिए। भगवान् शिव ने कहा कि इस तोते के बच्चे ने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया हैं। भगवान् शिव को क्रोध आया उन्होंने तुरंत अपना सुप्रसिद्ध आयुध त्रिशूल उठा लिया। भगवान् शिव मारने के लिए दौड़ पड़े। आगे-आगे तोते का बच्चा, पीछे-पीछे भगवान् शिव।

इधर वेदव्यास की पत्नी 'बीटिका' अपने आश्रम की छत पर खड़े होकर धूप में अपने बाल सुखा रही थी, जो जम्हाई ली तो तोते के बच्चे ने वायु रूप धारण किया और बीटिका के मुख के द्वारा गर्भ में प्रवेश किया। पीछे से भगवान् शिव जब आए तो दरवाजे पर वेदव्यास बैठे हैं। वेदव्यास जी महाराज को देखकर भगवान् शिव ने कहा व्यास जी आपके यहाँ मेरा शत्रु हैं, उसे बाहर निकालिए।

बोले महाराज, मैं तो बहुत देर से द्वार पर बैठा हूँ यहाँ तो कोई आपका शत्रु नहीं आया। आप तो भोले भंडारी हैं। हे शिव जी! आपका कौन-सा शत्रु? भगवान् शिव कहते हैं कि, आज मैं अपनी पत्नी पार्वती को अमर कथा सुना रहा था और वहाँ पर एक तोते का बच्चा आया उसने मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके वह कथा सुनी। वह तोता आपके आश्रम में छिपा हैं। बाहर निकालिए मैं उसे दंड दूँगा। वेदव्यासजी ने कहा शिव एक बात पूँछू जवाब देगा। जो अमर कथा सुन लेते हैं। वे अमर बन जाते हैं। भगवान् शिव ने कहा कि हाँ। जो अमर कथा सुन लेता है वह अमर बन जाता हैं। वेदव्यास जी बोले महाराज जब तोते के बच्चे ने आपके मुखारविंद से अमर कथा को सुन लिया तो वह अमर बन गया ना? अब उसे आप कैसे मारेंगे। भगवान् शिव ने कहा ये हमारी समझ में नहीं आया कि वह अमर बन चुका है? उसने तो अमृत पान कर लिया है। तो वापिस भगवान् शिव कैलाश की ओर चल दिए, बोले शंकर भगवान् की जय!

गीतम्

तेरा पल पल बीता जाए
मुख से जप ले नमः शिवाय,
ॐ नमः शिवाय-ओम नमः शिवाय
शिव शिव तुम हृदय से बोलो,
मन मंदिर का परदा खोलो।
अवसर खाली न जाए,
मुख से जपले नमः शिवाय।
तेरा पल-पल बीता जाए,
मुख से जपले नमः शिवासय।
ॐ नमः शिवाय ओ नमः शिवाय
ये दुनिया पंछी का मेला,
समझो उड़ जाना है अकेला।
तन मन साथ न जाए
मुख से जपले नमः शिवाय।
तेरा पल-पल बीता जाए
मुख से जपले नमः शिवाय।
मुसाफिरी जब पूरी होगी
चलने की मजबूरी होगी।
पिंजरा प्राण रह जाए,
मुख से जप ले नमः शिवाय।
तेरा पल..............................
शिव पूजन में मस्त बने जा
भक्ति सुधा रस पान किए जा।
दर्शन विश्वनाथ के पाए,
मुख से जपले नमः शिवाय।
तेरा पल-पल बीता जाए,
मुख से जपले नमः शिवाय।

वेदव्यास जी की पत्नी के गर्भ में साक्षात् शुकदेव जी महाराज बैठे हैं। बारह बरस हो गए बाहर नहीं आते। गर्भ में ही विराजमान हैं। एक दिन वेदव्यास जी ने कहा कि

बेटा देखो। तुम्हारी माता को कितना कष्ट हैं। आप बाहर आ जाएँ। किन्तु शुकदेव जी कहते हैं। कि यदि मैं बाहर आऊँगा, तो भगवान् की माया मेरे शरीर से लिपट जायेगी। यदि स्वयं नारायण यह प्रतिज्ञा करें कि वेदव्यास के पुत्र को मेरी माया कष्ट नहीं देगी तो मैं गर्भ से बाहर आऊँ। वेदव्यास तुरंत गए द्वारिका में और भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की। भगवान् ने तीन बार यह बात कही कि वेदव्यास आपके पुत्र को मेरी माया कष्ट नहीं देगी। कष्ट नहीं देगी। कष्ट नहीं देगी।

जब तीन बार भगवान् ने कहा तब वेदव्यास की पत्नी के गर्भ से साक्षात् शुकदेव जी महाराज प्रकट हुए। बोलो शुकदेव जी महाराज की जय।

वही 'सर्व भूतहृदयम्' सब प्राणी के अंतरात्मा में विराजमान होने वाले भगवान् के परम भक्त उन शुकदेव जी महाराज के चरणों में हम सब प्रणाम करें। हम सब वन्दन करें जो गुरुओं के गुरु हैं। तो अपने-अपने गुरु के चरणों में हम सब प्रणाम करते हुए भागवत रूपी गंगा में स्नान करें। प्यारे भक्तों बड़े प्रेम से ध्यान से अपने गुरु के चरणों में प्रणाम करते हुए गोते लगाइए।

गीतम्

नन्हा सा फूल हूँ मैं, चरणों की धूल हूँ मैं।
आया हूँ मैं तो तेरे द्वार गुरुजी, मेरी पूजा करो स्वीकार।
सुन लो हमारी अरजी, मुझको कुछ ज्ञान दो।
जीवन को जीना सीखूँ, ऐसा वरदान दो।
सूरज-सी शान पाऊँ, चंदा सा मान पाऊँ।
इतना सा दे दो उपहार, गुरुजी मेरी पूजा करो स्वीकार।
मैं तो निर्गुणिया हूँ बस इतनी सी बात है।
मेरी जीवन की डोरी अब तेरे हाथ है।
थोड़ा-सा गुण मिल जाए, निर्धन को धन मिल जाए।
मानूँ तुम्हारा उपकार गुरुजी, मेरी पूजा करो स्वीकार।
प्रभु जी मेरी पूजा करो स्वीकार।

गीतम्

गुरु मंगलम् गुरु पाद मंगलम्,
गुरु मुगलम् गुरु पाद मंगलम्।
गुरु मंगलम् गुरु पाद मंगलम्,

गुरु मंगलम् गुरु पाद मंगलम्।
बोलो गुरु देवजी महाराज की जय
बोलो शुकदेव जी महाराज की जय

श्री सूत जी महाराज ने अपने गुरु शुकदेव जी महाराज के चरणों में वंदन किया और प्रणाम करके कथा को आगे बढ़ाते हुए श्री सूत जी महाराज कहते हैं। कि

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।
(श्रीमद्भागवतम् 1.2.4)

महात्मा सूत जी ने नर नारायण को प्रणाम किया। देवी सरस्वती को, व्यास जी को प्रणाम किया। देखिए हमारे शास्त्र में ऐसा वर्णन है कि किसी भी धार्मिक ग्रन्थ का पाठ करे। गीता, भागवत या किसी अन्य ग्रंथ को इस श्लोक का पाठ करे– "नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तम देवी सरस्वती व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।"

इस श्लोक को याद करे। भागवत में यह श्लोक दिव्य है, इस श्लोक का पाठ करके उच्चारण करके हमें वैदिक, धार्मिक ग्रन्थ का पाठ करना चाहिए। सूत जी इस श्लोक का उच्चारण करके सबको प्रणाम करके बोल रहे हैं।

"मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भि र्लोकमङ्गलम्"
(श्रीमद्भागवतम् 1.2.5)

महात्मा सूत जी महाराज कहते हैं कि शौनकादि ऋषियों आपने बहुत सुन्दर प्रश्न किया है? आपका प्रश्न विद्वानों के बीच में प्रशंसनीय हैं। आपने केवल अपने कल्याण के लिए प्रश्न नहीं किया अपितु इससे तो सारे जगत का कल्याण होगा। आपने पूछा कि इस मानव जीवन के परम श्रेय का मार्ग क्या है? तो उत्तर हैं- परम् श्रेय का यदि काई मार्ग है तो वह भगवान् की कामना रहित भक्ति है।

"अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सप्रसीदति"
(श्रीमद्भागवतम् 1.2.6)

आपने दूसरा प्रश्न पूछा कि परम् तत्व क्या है?

उत्तर – परम् तत्व ही श्रीकृष्ण है "तत्व तत्तानि तेषां भागम इति तत्तम्"

जो व्यक्ति अपने जीवन में तीन बातों को जान लें–

प्रथम तत्व है जीव तत्व। द्वितीय तत्व है जग तत्व। तृतीय तत्व है ब्रह्म तत्व। जिसे कहते हैं कृष्ण तत्व, जिसने इन तीन तत्व को जान लिया उसने परम् तत्व को प्राप्त

कर लिया। सूत जी कहते हैं। उसी परम् तत्व परमात्मा को प्राप्त करने के लिए चार मार्ग हैं।

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा।

(श्रीमद्भागवतम् 1.2.14)

सूत जी कहते हैं। ये चार मार्ग हैं–

श्रोतव्य : देखो कहीं यदि कथा हो रही है तो परमात्मा के नजदीक पहुँचने का यदि कोई मार्ग है तो एक है– भागवत कथा का श्रवण।

इन कानों के द्वारा कथा का श्रवण करना और 'कीर्तिव्यश्च'– यदि कोई कीर्तन हो रहा है तो भगवान् के नजदीक जाने का मार्ग कीर्तन भी हैं। देखिए आप लोग कथा के बीच–बीच में कीर्तन भी करते हैं। थोड़े कीर्तन शब्द को उल्टा बनाएँ क्या बनता है? कीर्तन का उल्टा बनता है 'नर्तकी' प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। यह नर्तकी कौन है? यही प्रभु की माया है जो हम सबको नचा रही हैं। हमारे जीवन में उस माया का नाच बंद हो जाएगा तो कीर्तन करो। वह माया हमें न नचाए। जब हम कीर्तन करते हैं तो माया का नाच बंद हो जाता हैं। तो कीर्तन का उल्टा होता है नर्तकी। परमात्मा के पास पहुँचने का एकमात्र सरल रास्ता है "भगवन्नाम कीर्तन"।

फिल्मी का गाएंगे तो उसे कभी आप ईश्वर से नहीं जोड़ सकते और यदि आप एक छोटा–सा भगवान् का गीत गुनगुनाएँगे तो तुरंत आप ठाकुर से जुड़ जाएँगे। जैसे श्रीमद् भागवत में ही भगवान् का सात नाम लेकर ही भगवान् के आह्वान किया है कि–

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारि, हे नाथ नारायण वासुदेव।

तो प्रभु का नाम "कीर्तिव्यश्च" परमात्मा के समीप पहुँचने का एक मार्ग भगवन्नाम संकीर्तन हैं। किसी ने कहा कि "लड्डू लड्डू" कहने से लड्डू का स्वाद हमारे मुख में आ जाता है क्या? क्या "कृष्ण कृष्ण" कहने से हमें कृष्ण की प्राप्ति हो सकती हैं। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु से ही यह प्रश्न किया गया कि आप तो पूर्ण वेदान्ती हैं, पूर्ण पंडित, पूर्ण ज्ञानी हैं, परन्तु आप कृष्ण कृष्ण, कृष्ण कृष्ण रटते हैं। ये तो पागलों का लक्षण है।

तो भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया कि मुझे मेरे गुरुदेव ने मूर्ख समझकर कृष्ण मन्त्र की दीक्षा दे दी। भगवान् का नाम एक लड्डू की तरह जड़ नहीं है वह

साक्षात् चेतन हैं। एक शब्द को ही ले लो जब हम किसी व्यक्ति को कोई कटु शब्द कहते हैं। एक गाली दे देते हैं। तो कितना मन तमतमा जाता है, आंखें लाल हो जाती हैं, या आप स्पर्श मत करो, थप्पड़ मत लगाओ, मुख से गाली ही दे दो तो सारा शरीर हिल जाता हैं। इसी प्रकार से परमात्मा का नाम, भगवान् का नाम, कृष्ण का नाम, गोविन्द का नम, माधव का नाम जब हम प्रभु के नाम लेकर प्रभु को पुकारते हैं, तो साक्षात् कृष्ण आ जाते हैं। हमारी जिह्वा पर गोविन्द आ जाते हैं। ठाकुर हरिदास जी कहते हैं कि, जब मैं नाम लेता हूँ तो ऐसा महसूस होता है कि ठाकुर का नाम रूप विग्रह मेरी जिह्वा पर नृत्य कर रहा हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि, जब मैं गुरु के दिए हुए मन्त्र को 'कृष्ण–कृष्ण' रटता हूँ तो–

नयनं गलदश्रुधारया बदनं गदगदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपु कदा तव नाम ग्रहणे भविष्यति।।

(श्रीशिक्षाष्टकम् 6)

श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं, हे नाम प्रभु! आपका नाम ग्रहण करते–करते कब हमारी दोनों आंखों से अश्रु धारा बह चलेगी। कब हमारी वाणी रुक जाएगी, कब हमारा शरीर सुन्दर अलौकिक शक्ति से पुलकित हो जाएँगे। ऐसा कब होगा?

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव।।

तो परमात्मा के नजदीक पहुँचने का यदि कोई सरल मार्ग है तो भगवत नाम संकीर्तन हैं। "कीतितव्यश्च और ध्येय"।

तीसरा है ध्यान और चौथा है पूजा तो भगवान् के नजदीक पहुँचने के चार मार्ग हैं। कथा का श्रवण, कथा कीर्तन, ध्यान और पूजा।

सूत जी महाराज कहते हैं कि शौनकादि ऋषियों आपने बहुत सुन्दर भगवान् के अवतार के विषय में प्रश्न किया तो भगवान् के ये 24 अवतार हुए। देखिए श्रीमद् भागवत में 22 अवतार बताए। दो और प्रमुख अवतार बताए। कौन–कौन से अवतार हुए श्रवण कीजिए। भगवान् के अवतार की कथा सुनने से भी हमारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

अथ तृतीयोध्याय:

भगवान् के अवतारों का वर्णन

स एव प्रथमं देव: कौमारं सर्गमाश्रित:।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.3.6)

१. संयम

भगवान् ने सर्वप्रथम चार रूप से अवतार लिए– सनक, सनन्द, सनातन और सनतकुमार। इसे कहते हैं– ब्रह्मचर्यमखंडितम् अर्थात ब्रह्मचारी जो अवतार हैं। भगवान् ब्रह्मचारी बनकर आ रहे हैं ब्रह्मचर्य अवतार भगवान् को पहले लेने की क्या आवश्यकता पड़ गई? प्रभु यह बता रहे हैं कि इस अवतार को कहते हुए "संयम अवतार" भगवान् इस अवतार को लेकर हमें उपदेश दे रहे हैं, जीवन में शिक्षा दे रहे हैं, यदि तुम्हारे जीवन में संयम है तो निश्चित भगवत प्राप्ति होगी। अपने लक्ष्य की प्राप्ति होगी। क्योंकि आज व्यक्ति का जीवन संयमित नहीं हैं। सुबह उठने का कोई समय नहीं, सोने का समय नहीं, खाने का भी कोई समय नहीं इसलिए अनेक रोगों से जीव, ग्रसित है। हमारा जीवन स्वस्थ्य रहे इसके लिए संयम रखें। ब्रह्मचर्य का अर्थ है संयम। संयमी जीवन ही जीवन रक्षा का आधार है। भागवत को उठाकर देखिए भगवान् कहते हैं कि, संयमी जीव को मैं अपने शीर्ष पर बैठाता हूँ। संयमी पुरुष तो समस्त पृथ्वी को शिष्य बना लेता है।

"सर्वाम् अपि माम पृथ्वी सः शिष्यात्"

(श्री उपदेशामृत)

भगवान् ने अपने मस्तक पर मोर मुकुट धारण किया है, कभी गौर से श्रीकृष्ण की छवि का दर्शन करना। देखेंगे भगवान् मोर पंख धारण किए हुए हैं।

"बर्हापिंड नटवरवपुं"

तो भगवान् ने मोर पंख ही क्यों चुना। अन्य पक्षी का पंख भी तो लगा सकते थे यथा कबूतर का। भगवान् लीला के माध्यम से बता रहे हैं कि जिसके जीवन में संयम है ऐसे व्यक्ति की मैं पूजा करता हूँ। यानि मोर भी संयमी हैं। ब्रह्मचारी है।

२. शूकर

'शूकरं वपु' पृथ्वी की खोज करने के लिए भगवान् शूकर बनकर प्रकट हुए। पृथ्वी का अनुसंधान करने के लिए भगवान् वराह रूप धारण करके प्रकट हुए। बोलिए वराह रूप भगवान् की जय।

३. नारद

तीसरा अवतार हैं। भगवान् का नारद। देवर्षि नारद के रूप में भगवान् ने अवतार लिया। जिन्होंने भक्ति पर बहुत सुन्दर ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का नाम "नारद भक्ति सूत्र"।

नारद भक्ति सूत्र में छोटे–छोटे सूत्र हैं, लेकिन बहुत बलवान सूत्र हैं। जिसको जीवन में अपनाने से भगवत्प्राप्ति की संभावना हैं। भगवान् ने स्वयं नारद जी बनकर भक्ति की महिमा को बताया और भगवान् के नाम में क्या शक्ति है नारद जी महाराज ने बताया। देखिए नारद जी का सुप्रसिद्ध कीर्तन है कि–

श्रीमन नारायण नारायण नारायण!
लक्ष्मी नारायण नारायण नारायण!

प्रभु के नाम की महिमा का प्रचार किया, श्री नारद जी महाराज। यह भगवान् का तीसरा अवतार है।

४. नर नारायण

चौथा अवतार भगवान्का है नर नारायण के रूप में। जिसमें भगवान् ने ध्यान के बारे में बताया।

५. पाँचवां 'पंचमो कपिलो नाम सिद्धो'

पाँचवां कपिल अवतार के नाम से है जिसे कहते हैं- ज्ञान अवतार, शंख योग अवतार। श्रीमद्‌भागवत के तीसरे स्कंध में कपिल गीता है, आप लोग श्रवण करेंगे।

६. दत्तात्रेय

छठा अवतार दत्तात्रेय हुआ।

७. यज्ञ भगवान् सातवां अवतार।

८. ऋषभदेव

ऋषभदेव आठवां अवतार हुए 'अष्टमेमेरुदेव्यां' मेरु देवी के गर्भ से भगवान् ऋषभदेव प्रकट हुए जो जैन धर्म के प्रथम आचार्य हुए। उनके 100 पुत्र हुए, बोलो ऋषभ देव भगवान् की जय।

९. पृथु

पृथु अवतार हुए।

१०. मत्स्य

दसवें अवतार मत्स्य हुए। मछली के अंदर से वेदों की प्रतिष्ठा करने के लिए प्रकट हुए।

११. कच्छप

ग्यारहवां अवतार कच्छप हुए।

१२. धन्वंतरि

औषधियों के प्रवर्तन आयुर्वेद के प्रवर्तक भगवान् धनवंतरि।

१३. मोहिनी

तेरहवें अवतार हुआ, मोहिनी अवतार। जिसके दर्शन से भगवान् शिव भी मोहित हो गए।

१४. नृसिंह देव

चौदहवां अवतार भगवान् का नृसिंह देव। अपने भक्तों के वचन को सत्य करने के लिए भगवान् खम्भे से प्रकट हो गए।

१५. वामन

पंद्रहवां अवतार भगवान् का है वामन, राजा बलि के द्वार पर भगवान् 3 पग पृथ्वी माँगने गए और अपने भक्त के वचन को सिद्ध किया। तन, मन, धन तीनों ही समर्पित कर दिया राजा बलि ने और जिसने आत्मनिवेदन भक्ति के द्वारा भगवान् को प्रसन्न कर लिया।

१६. परशुराम

सोलहवां भगवान् परशुराम के रूप में।

१७. वेदव्यास

सत्रहवां वेदव्यास के रूप में, जिन्होंने अनेक ग्रंथ गीता, भागवत्, वेद, उपनिषद, महाभारत आदि ग्रन्थ व्यासदेव के द्वारा रचित हैं। जो साहित्य हम देख रहे हैं वे सब वेदव्यास जी का ही जूठन हैं। अवशेष है।

१८. श्रीराम

अठारहवें अवतार भगवान् श्रीराम हुए।

१९. बलराम

उन्नीसवें अवतार बलराम हुए।

२०. श्रीकृष्ण

बीसवां अवतार भगवान् श्रीकृष्ण का हैं।

२१. हयग्रीव

इक्कीसवें अवतार ह्यगीव हुए

२२. हरि

हरि अवतार हुआ।

२३. बुद्ध अवतार

तेईसवें अवतार भगवान् बुद्ध हुए।

२४. कल्कि अवतार।

श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध में लिखा है कि भगवान् विष्णु यश ब्राह्मण के घर संभल में कलिकाल के अंतिम चरण में अवतार लेंगे जितने भी अवतार हैं। सभी अवतार के अवतारी साक्षात् श्रीकृष्ण हैं, परन्तु वह श्रीकृष्ण अवतारी के अवतार भगवान् चैतन्य महाप्रभु हैं। किसी ने मुझे पूछा कि महाराज आप तो ठाकुर बांके बिहारी का जयकारा बुलवाते हैं, अब ये बांके बिहारी जी कौन हैं? थोड़ा इनके भी बारे में बताए, बोलिए बाँके बिहारी महाराज की जय।

देखिए, सभी अवतारों के अवतार हैं– श्रीकृष्ण। ये मूल अवतार हैं। इनसे ही सब कुछ प्रकट हुए हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के केवल 125 वर्ष तक के लिए अवतार हुआ। फिर वे अपने गोलोक धाम पधारे। परन्तु हमारे परम आचार्य स्वामी श्री हरिदास जी की वाणी है कि–

माई री सहज जोड़ी प्रकट भयो रंग की डोर,
श्याम जो धन दामन जैसे – प्रथम हुति आजहु आगहु रहियो
तारैहु न तैसे अंग–अंग की उजराई, सुभराई, चतुराई, सुन्दरता।
ऐसे श्री हरिदास स्यामा–कुंजबिहारी संग बैठे, बैठे।

इसमें स्वामी जी महाराज इस रहस्य को प्रकट कर रहे हैं कि बिहारी पहले भी थे, आज भी हैं और आगे भी रहें। यानि जितने भी भगवान् के अवतार हैं,सभी अवतारों के अवतारी श्रीकृष्ण और श्रीकृष्ण के भी अवतारी श्री बांके बिहारी जी महाराज हैं। ऐसा आचार्यों ने अपने ग्रन्थ में लिखा है। इस प्रकार से साक्षात् श्रीकृष्ण की–

एते चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.3.28)

भगवान् युग–युग में अवतार लेते हैं और भक्त की रक्षा, धर्म की स्थापना के लिए प्रभु का अवतार होता है।

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लार्निभवति भारतः।
अभ्युत्थानं अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

(श्रीमद्‌भागवद् गीता 4.7)

जब–जब धर्म की हानि होती है, तब–तब धर्म के उत्थान के लिए भगवान् जन्म लेते हैं। भगवान् धर्म की स्थापना करते हैं।

सूत जी कहते हैं कि शौनकादि ऋषियों श्रीमद्‌भागवत भी श्रीकृष्ण का ही प्रतिपादन कर रहा हैं। शौनकादि ऋषियों ने कहा महाराज एक कृपा कीजिए – बताइए कि भागवत को किसने लिखा है? कहाँ बैठकर भागवत की रचना हुई? किस कारण से हुई? इस पर थोड़ा प्रकाश डालें? सूत जी कहते हैं कि, शौनकादि ऋषियों द्वापर के अंत में श्री वेदव्यास जी ने सबसे पहले ऋग्वेद की रचना की, इसको सरल करने के लिए वेदों के चार भाग किए। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद। फिर लिखे उपनिषद, पुराण, महाभारत। महाभारत के विषय में कहा जाता है–जो नहीं भारत में वह नहीं महाभारत में। अर्थात सर्व सम्पूर्ण ग्रन्थ महाभारत।

"सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्‌धृतम्।"

(श्रीमद्‌भागवतम् 1.3.41)

इतना लिखने के बाद भी वेदव्यास को आत्म सन्तुष्टि नहीं हुई।

एक दिन वेदव्यास जी उदास मन से अपने आश्रम में बैठे थे। नारद जी महाराज वीणा बजाते हुए आए और आकर के व्यास जी से पूछा, वेदव्यास जी आप बड़े उदास हैं। क्या बात है? बोले नारद जी आप ही बताइए आप तो सर्वत्र भ्रमण करते हैं। कृपा करें गुरु जी आप ही बताइए। श्री नारद जी कहते हैं, व्यास मैं जानता हूँ कि आपको आत्म सन्तुष्टि क्यों नहीं है। हे पराशर नन्दन! आपने गीता लिखा, परन्तु आपने ऐसा ग्रन्थ लिखो जिसमें केवल भगवान् के गुणानुवाद का वर्णन हो।

अथ चतुर्थोऽयाय: एवं अथ पंचमोऽध्याय:

महर्षि व्यास का असन्तोष और नारद जी का पूर्व चरित्र

श्री नारद उवाच
भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम्।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम्।।
(श्रीमद्भागवतम् 1.5.8)

व्यास जी आप ऐसे एक विशेष ग्रंथ की रचना करिए जिसमें विशेष रूप से भगवान् के चरित्र का गान किया जाए। "वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णित:" जिसमें भगवान् वासुदेव की महिमा का ही पूरा गुणगान, कीर्तन हो। देखो व्यास जी हम कितना ही सुन्दर गाते हैं, परन्तु जिस वाणी में हमने कृष्ण का नाम नहीं लिया वह कूड़ाघर के समान हैं। व्यास जी, मैं आपसे कृष्ण का वर्णन करते हुए अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाता हूँ, कि मेरे जीवन में भगवत कृपा कैसे हुई? साक्षात् कृष्ण कृपा का दर्शन मेरे जीवन में हुआ है।

अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम्।
(श्रीमद्भागवतम् 1.5.23)

श्री नारद जी कहते हैं—नारद के साथ श्री शब्द जोड़कर मानो अब नारद नहीं कह रहा उनके अंदर भगवान् बोल रहे हैं। श्री लगाने से परमात्मा भगवान् का उद्धीष्ठान हो गया, अब उनके अंदर से भगवान् बोल रहे हैं, नारद नहीं। नारद जी कह रहे हैं कि मानो भगवान् कह रहे हैं कि मैं पूर्व जन्म में एक 'वेदवादिनाम्' की दासी का पुत्र था। मेरी माँ घर-घर जाकर दासी का काम करती थी। उससे मेरा भी जीवन-यापन चलता था और मेरी माँ की भी जीविका।

व्यास जी, एक बार हमारे गाँव में अयोध्यापुरी से कुछ संत लोग चार्तुमास करने के लिए पधारे और माँ सन्त सेवी थी। सन्तों की सेवा के लिए जाती थी। मैं पाँच वर्ष का बालक था। माता के साथ जाया करता था और सन्त के सत्संग में जाकर बैठा करता था। परन्तु सन्त सत्संग में क्या बोल रहे हैं, वह समझ में नहीं आता था। सत्संग में जाकर यदि कथा समझ में नहीं आती तो भी सत्संग में जाइए। वहाँ जाने से आप कुछ खोते नहीं पाते हैं। जीवन में सत्संग की कोई न कोई बात लग जाती है और जीवन सुधर जाता हैं। सत्संग रूपी अमृत कथा कभी व्यर्थ नहीं जाती। एक न

एक दिन जीवन में उसका प्रभाव पड़ता है इसलिए सत्संग में जरूर जाइए। कुछ न कुछ पाओगे खोओगे नहीं।

मैंने भी सन्तों के साथ सत्संग किया। जब चातुर्मास पूर्ण हुआ और सन्त जाने लगे तब बहुत बड़ा भंडारा हुआ। मेरी माँ भंडारे के जूठे बरतन साफ कर रही थी। मैं भी वहीं था। एक पाँच वर्ष का बालक और एक सन्त की कृपा मेरे ऊपर हुई। वह सन्त पास आए और बोले देखो बेटा, तुम्हारी माता कितनी सन्त सेवी है।

वह कितनी सेवा कर रही हैं। तुम भी कुछ सेवा करो। मैंने कहा स्वामी जी आप ही बताइए मैं क्या सेवा करूँ? सन्त ने कहा देखो! बेटा अभी तुम छोटे बालक हो बड़ी सेवा नहीं देंगे। बस इतनी ही सेवा देंगे। जब सन्त सेवा (भोजन) करके उठ जाएँगे तब उनकी जूठी पत्तल उठाओ और किनारे में फेंक दो। व्यास जी जो सेवा सन्त, महात्मा जी ने बताई वह मैंने करनी शुरू कर दी। "सेवा ही परम धर्म" जो सेवा मिले वह करो। अब वह तो सेवा देने वाले के ऊपर है कि वह किस प्रकार सेवा दे रहे हैं। मैंने भी वह सेवा ले ली और जूठी पत्तल उठाने लगा। बार-बार आश्रम के बाहर जाकर पत्तल फेंक आता, परन्तु किसी ने यह भी नहीं पूछा बेटा तुम्हें भूख लगी, थोड़ा जल पी लो। व्यास जी जब मैं खुद पिपासा सहन नहीं कर सका तो मैंने एक सन्त की जूठी पत्तल में से जूठन उठाकर मुख में रख ली।

महाप्रसादे गोविन्दे नमः ब्राह्मणे वैष्णवे,
स्वल्पपुण्य वतां राजन्श्वासोनैव जायते।।

देखिए एक होता है प्रसाद, दूसरा है महाप्रसाद। भगवान् को जो वस्तु भोग लगती है वह है प्रसाद, वही प्रसाद जब कोई ब्राह्मण, वैष्णव, सद्गुरु, सन्तरसिक ग्रहण करते हैं, पाते हैं। वह है महाप्रसाद। जिसको विश्वास है उस प्रसाद को पाने के बाद वैष्णव के अधरामृत का महाप्रसाद पाने के बाद समस्त पाप और पुण्य नष्ट हो जाते हैं और वे जीवन मुक्त हो जाते हैं, परन्तु जिसका मूल में विश्वास है "विश्वासोनैव जायते"।

व्यास जी मैंने उस पत्तल से (जूठन) प्रसाद को मुख में रख लिया तो

"सकृत्स्म् भुञ्जे तदपास्तकिल्बिषः"

(श्रीमद्भागवतम् 1.5.25)

जब मैंने वह जूठन खाई तो मेरा अंतःकरण शुद्ध हो गया। एक सन्त ने मुझे देखा और कहा बेटा तू जूठन खा रहा है? चल हम तुझे भंडारे से प्रसाद देते हैं, परन्तु व्यास जी जो स्वाद मुझे सन्त प्रसाद में मिला वह भंडारे के प्रसाद में नहीं आया। देखिए

भगवान् का केवल होता है प्रसाद। सन्तों का होता है महाप्रसाद। जिस महाप्रसाद की कामना मेरे ठाकुर जी किया करते हैं। सन्त ने मन्त्र दिया कि और कहा कि बेटा हम जा रहे हैं। और तू इस मन्त्र का जप करना। देखिए कितना सुन्दर मन्त्र दिया सन्त ने ये है "द्वादश अक्षर मन्त्र"

ॐ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च।।

(श्रीमद्भापगवतम् 1.5.37)

बेटा, तुम इस मन्त्र का जाप करना और भगवान् नारायण तुम्हें दर्शन देंगे। व्यास जी मैं इस मन्त्र का चिन्तन करने लगा, सोचने लगा कि भगवान् नारायण मुझे दर्शन देंगे और वह मन्त्र लेकर अपनी माँ के साथ घर लौटा। माँ घर के काम में लग जाती परन्तु मैं एकांत में बैठकर वह मन्त्र जपने लगा–

"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। ॐ नमो भगवतो वासुदेवाय।"

माता ने कहा मेरे पुत्र को क्या हो गया, न खाना चाहता है ना पीना। किसी भी काम में मन नहीं हैं। ये तो 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' जपने लगा। अरे सन्त ने मेरे बेटे पर क्या जादू कर दिया। ना खेलने जाता है ना अच्छा कपड़ा पहनना चाहता है। वह केवल अकेला गुनगुनाता रहता हैं। अब माता को चिंता हो गई।

परन्तु व्यास जी जब-जब मैं गुनगुनाता था तब मेरी माँ मुझे भजन नहीं करने देती कि कहीं मेरा बेटा साधु न बन जाए, सन्त न बन जाए। घर से न भाग जाए, किंतु भइया किसी घर से एक बालक साधु बन जाए, सन्त बन जाए, रसिक बन जाए, तो वह बालक सात पीढ़ी को तार देता है। ऐसा शास्त्र कहता है। मेरी माँ ने मुझे भजन नहीं करने दिया। एक दिन मैंने मन ही मन कहा प्रभु आपने सन्त का प्रसादी मन्त्र दिलाया अब ऐसी कृपा करिए कि माँ से छुटकारा दिलाइए। वह माँ कैसी है? जो भगवान् का भजन नहीं करने देती। तुलसी दास जी सुन्दर शब्द में बता रहे हैं–

"जाके प्रिय न राम बैदेही, तजै ताहे कोटि बैरि सम,
यदपि परम सनेही।"

तुम्हारा कितना बड़ा विषमय (शत्रु) क्यों न हो, कितना बड़ा तुम्हारा हितैषी क्यों न हो, परन्तु यदि वह कृष्ण से, राम से, प्रभु से प्रीति न रखे तो ऐसे प्रियजन को हमें करोड़ों देवों के समान त्याग देना चाहिए। यह विष्णु भक्त, कृष्ण भक्त, कृष्ण और विष्णु को प्रिय मानकर पूजन करते हैं और समस्त देवताओं को पीछे छोड़ते हैं।

गोस्वामी जी ने बताया है कि भरत ने अपनी माता कैकेयी को त्यागा। प्रह्लाद ने पिता हिरण्यकश्यपु को त्याग दिया अैर रावण का त्याग विभीषण ने किया। उन ब्रज गोपियों ने अपने-अपने पतियों को त्यागा। अपने पुरोहित शुकाचार्य जी का त्याग राजा बलि ने किया तो–

"जाके प्रिय न राम बैदेही तजे ताहे कोटि बैरि सम
जदपि परम सनेही।"

अथ षष्ठोऽध्यायः

नारद जी के पूर्वचरित्र का शेष भाग

आज नारद जी कहते हैं कि वेदव्यास जी मैंने प्रार्थना की प्रभु से कि प्रभु ऐसी कृपा करें कि माँ से छुटकारा मिले। एक दिन-काल का समय था माँ गौशाला में गाय से दूध निकालने के लिए गई। वेदव्यास जी माँ जब दूध के पात्र को लेकर बाहर निकली तो माँ का पैर सर्प के ऊपर पड़ गया। सर्प ने माँ को डस लिया। माँ की मृत्यु हो गई और मानो मेरे मन में वैराग्य आ गया। माँ की मृत्यु से संसार की आसक्ति से छुटकारा मिल गया। "मेरा वैराग्य और माँ को मुक्ति।" ऐसा भागवान के प्रभाव से हुआ।

गाँव के लोग दौड़े चले आए और बोले–अरे। बालक तेरी मैया मर गई हैं। माँ मर गई हैं। व्यास जी मैं तो नाचने लगा, कूदने लगा, खुशियां मनाने लगा। जब लोगों ने देखा तो सोचने लगे कि अभी बालक है नाच रहा हैं। थोड़ी देर में जब अपनी माता को नहीं देखेगा तो रोने लगेगा।

जब लोग हमारी माता के पार्थिव शरीर को ले जाने लगे तो मैंने पूछा कहाँ ले जा रहे हो? बेटा ये मिट्टी में अंतिम संस्कार करना हैं। व्यास जी मैंने माँ के शरीर को जबरदस्ती कुटिया के अंदर रखवाया। "नहीं ले जाने दूंगा" और माँ के सहित कुटिया का भी अंतिम संस्कार कर दिया। यानि कुटिया को भी जला दिया। मन में सोचा कि यदि एक भी सामान रह जाएगा तो मेरा मन प्रभु के चरण में नहीं लगेगा।,

माँ को घर के सामान से कितना मोह था, एक चाकू, झाडू यदि पड़ोसिन ले जाती थी तो माँ लेना नहीं भूलती थी और माँ की अनुपस्थिति में मैं ये सब कैसे संभालूंगा? माँ के साथ इस कुटिया के संस्कार के बाद यहाँ से चलकर एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठा और अपने गुरु का मन्त्र जपने लगा। इसे भगवान् का अनुग्रह ही मानते हैं।

"ॐ नमो भगवतो वासुदेवाय"

देखो तीन प्रकार से जप किया जाता है, प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण।

एक – प्रथम जप है वाचिक

दो – दूसरा जप है उपांशु

तीन – तीसरा जप है मानसिक

ये तीन स्थितियां होती हैं। जप की–

1. वाचिक जप

जिसमें यदि दूसरा व्यक्ति पास में हो तो सुन ले कि किस मन्त्र का जप हो रहा है।

"ॐ नमो वासुदेवाय"
कुंज बिहारी श्री हरिदास
श्रीमद् कुंज बिहारीणी नमः
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे"

2. उपांशु – इसे उपांशु की व्याख्या कहते हैं। जिसमें हमारे होंठ तो हिलते हैं, परन्तु किसी को सुनता नहीं कोई जान न पाए कि किस मन्त्र का जप हो रहा है यह उपांशु की स्थिति है।

3. मानसिक – जो मन ही मन में भगवान् का जप, नाम किया जाता है।

नाम जप करते-करते भगवान् की आज्ञा मुझे सुनाई दे रही है, भगवान् कह रहे हैं कि–

हन्तास्मिञ्जन्मनि भवान्मा मां द्रष्टुमिहार्हति।
अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.6.21)

बेटा अभी तुम्हारे अंदर राग द्वेष हैं। इस जन्म में तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकते, परन्तु जब तुम्हारा दूसरा जन्म होगा, तब निश्चित मेरा दर्शन मिलेगा। भगवान् कहते हैं, उस अधकचरे योगी को मेरा दर्शन नहीं मिलता जो अभी साधना में कच्चा है, जो अभी रागद्वेष में डूबा हुआ है।

इस प्रकार जिधर से भगवान् की आवाज सुनाई दी उधर ही मैंने भगवान् नारायण को प्रणाम किया। हे भगवान्, हे माधव, हे नारायण, हे गोविन्द, हे कृष्ण आपको आवाज तो सुनाई पड़ी है न। एक दिन आप दर्शन अवश्य देंगे। इस प्रकार काल के प्रभाव से मेरा शरीर छूट गया। हे व्यास जी दूसरा जन्म मेरा ब्रह्मा के पुत्र नारद के रूप

में हुआ। मेरे पास भगवान् प्रदत्त 'वीणा' है, इस वीणा में मैं प्रभु का केवल गुणगान करता हूँ।

श्रीनारद जी कहते हैं, इस वीणा में मैं केवल श्रीकृष्ण का ही गुणगान करता हूँ। बड़े प्रेम से गाइए दो मिनट के लिए–

गीतम्

राधे गोविन्द भजो वृन्दावन चंदा।
राधे–राधे, राधे–राधे, राधे गोविन्दा।
मुझे चरणों में लगाले मेरे श्याम मुरली वाले।।

"देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषितम्"

(श्रीमद्भागवतम् 1.6.32)

नारद जी कहते हैं कि, इस देवदत्त वीणा पर मैं केवल भगवान् का ही गान करता हूँ। चार श्लोक नारद जी ने वेदव्यास जी के लिए प्रदान किये। इसे चर्तुश्लोकी भागवत कहते हैं। और कहा कि आप इस भागवत का पूर्ण विस्तार करेंगे, वेदव्यास जी ने कहा कि गुरुजी मेरे लिए संभव नहीं हैं। मेरे इस शरीर की अवस्था तो देखिए। इस बूढ़े अवस्था में मैं भागवत कैसे लिख सकता हूँ? नारद जी ने वेदव्यास जी को समझाया कि व्यास, हताश मत होओ धीरज धरो। जो धीर स्थिर होते हैं, कार्य में संकल्प लेकर काम करते हैं वे लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं। तुम शुरू करो भगवान् पूरा करा देंगे। नारद जी चले गए। चार श्लोक लेकर वेदव्यास जी महाराज ने सरस्वती नदी तट सोमप्रास, शम्य प्रास, आश्रम में बैठकर भागवत का निर्माण किया।

ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे।
शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः।

(श्रीमद्भागवतम् 1.7.2)

और 18,000 श्लोक बना दिया। वेदव्यास जी अपनी परिपक्वता में इस भागवत को लिखा, वर्णन किया और बाद में यह ग्रन्थ अपने पुत्र शुकदेव जी को प्रदान किया। शुकदेव जी महाराज परम त्यागी, परम रसिक सन्त हुए। जिन्होंने निराकार वृत्ति से भगवान् की उपासना की, परन्तु बाद में भागवत का ही श्लोक स्मरण करके मुरली मनोहर के रूप माधुर्य को स्मरण करके बरबस खिंचे चले आए। निराकार छोड़कर साकार भगवान् की साधना करने लगे।

अथ सप्तमोऽध्यायः

अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पुत्रों का मारा जाना और अर्जुन के द्वारा अश्वत्थामा का मान-मर्दन

यदा मृधे कौरवसृञ्जयानां वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु।
वृकोदराविद्धगदाभिमर्श भग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे।।

(श्रीमद्‌भागवतम् 1.7.13)

यहाँ से कथा प्रारंभ हो रही है, कि भागवत में जब महाभारत का युद्ध पूर्ण हो गया और कौरव पक्ष के तीन लोग बचे हैं—अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा। दुर्योधन मरण दशा में पड़ा हैं। जहाँ कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त हुआ वहीं से भागवत आरंभ हुआ। भीम के द्वारा जिसकी जंघाओं को तोड़ दिया है, वह दुर्योधन अंतिम सांस ले रहा हैं। अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए द्रोणाचार्य जी का पुत्र अश्वत्थामा रात्रि में जाकर सोते हुए पांडवों के पाँच पुत्रों को पांडव समझकर उनके सिर काट दिए।

अश्वत्थामा ने सोचा कि पाँच पांडव को मैंने मार दिया, परन्तु वे पांडव नहीं थे। द्रौपदी के पाँच पुत्र—प्रतिबेनध, श्रुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानि, श्रुतसेन का सिर काटकर साथ में लेकर रात्रि में दुर्योधन के पास गए और कहा महाराज अपनी देह का त्याग करने से पहले खुशखबरी सुनिए। दुर्योधन ने कहा अश्वत्थामा हम 100 भाई थे। सब मारे गए। वे पाँचों ही विद्यमान हैं। अश्वत्थामा ने कहा मैंने आपके शत्रु पाँचों पांडवों को मार दिया हैं। शरीर से प्राण निकल रहे जो वापिस लौट आए। अरे! ये तो खुशी की खबर हैं। अश्वत्थामा तूने पांडवों को मार दिया, तो मुझे भीम का सिर दिखा। रात्रि का समय था अपने झोले से भीम के पुत्र का सिर निकालकर दुर्योधन के हाथ में दिया। दुर्योधन ने अपने हाथ में लेकर कसके मसल दिया। 10,000 हाथियों के बराबर बल रखने वाला दुर्योधन समझ गया कि यह सिर भीम का नहीं हैं। आंखों से टप-अप अश्रु टपकने लगे। दुर्योधन ने कहा—अश्वत्थामा ये तूने क्या कर दिया। ये पाँच पांडव को नहीं मारा, उनके पाँच पुत्रों को मार दिया। ये तूने क्या किया, अश्वत्थामा देख! अब हमारे कुल में कोई नहीं बचा। पाँच पुत्र पांडवों के यदि होते तो कभी-कभी हमारे नाम से जलांजलि प्रदान कर देते। पिण्ड दान क्रिया सम्पन्न करते, परन्तु ये तूने मेरी आशा निराशा में बदल दी। तड़प-तड़प कर दुर्योधन ने अपनी देह त्यागी। इधर जब प्रातःकाल हुआ और द्रोपदी पुत्रों को जगाने के लिए शिविर में जा रही थी, तो उछलती कूदती प्रसन्न मुद्रा में कि पुत्र अभी तक सो रहे हैं, गई तो देखा पाँचों मृतावस्था में हैं। सिर कटे हैं।

माता शिशूनां निधनं सुतानां, निशम्य घोरं परितप्यमाना।

(श्रीमद्भागवतम् 1.7.15)

आज द्रौपदी ने जब पाँचों पुत्रों को मृतावस्था में देखा, तो पछाड़ खाकर भूमि पर गिर पड़ी। बिलख रही है, छटपटा रही हैं। कटे केले के पौधे के समान गिर पड़ी। एक पुत्र की मृत्यु से कितना कष्ट हो जाता हैं। ये माता ही जाने, परन्तु आज द्रौपदी के पाँचों पुत्रों का निधन हो गया। अपने को संभाल नहीं पाई गिर पड़ी। उसी समय अर्जुन आ गए। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि जिसने मेरे पुत्रों को मारा है मैं उसे प्राण दंड दूँगा। तुम उसके सिर पर पैर रखकर स्नान करना तू रो मत। अपनी पत्नी द्रोपदी को सांत्वना देते हुए तुरंत रथ का त्याग करते हुए आगे-आगे अश्वत्थामा पीछे-पीछे अर्जुन। अश्वत्थामा ने देखा कि अर्जुन हमारे पीछे आ रहे हैं। तो अर्जुन पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर दिया। इस अमोघ बह्मस्त्र को देखकर अर्जुन श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे कि-

"कृष्ण कृष्ण महाबहो भक्तानामभयंङ्कर"

(श्रीमद्भागवतम् 1.7.22)

स्तुति करने लगे कि हे कृष्ण, हे गोविन्द आप तो अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए अपनी बांहों को चौड़ा कर लेते हैं। मुझ भक्त अर्जुन की रक्षा नहीं करेंगे? भगवान् कहते हैं कि, अर्जुन ये ब्रह्मास्त्र है तू भी तो द्रोणाचार्य का शिष्य है जिसका पुत्र अश्वत्थामा है और तू भी शिष्य पुत्र के समान हैं। अरे तू भी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर दे।

"विषस्यविषौधनम्" ब्रह्मास्त्र से ब्रह्मास्त्र का काट है, अन्य किसी अस्त्र से कोई लाभ नहीं। तो देखिए अर्जुन ने भी ब्रह्मास्त्र चलाया परन्तु चलाने से पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की, पूजा की और पूजा करके ब्रह्मास्त्र छोड़ा। दोनों ब्रह्मास्त्र आपस में टकराए। भीषण अग्नि बरसने लगी। चारों ओर हाहाकार मच गया। सभी भयभीत हो गए। भगवान् कहते हैं कि, अर्जुन तुम्हें गुरुदेव ने दोनों ही विद्या सिखाई हैं। ब्रह्मास्त्र चलाने की तथा उतारने की शिक्षा दी हैं। अपने पुत्र अश्वत्थामा को केवल चलाने की ही विद्या सिखाई, उतारने की नहीं। तो देखो ब्रह्मास्त्र को अर्जुन ने भगवान् की इच्छा से अपनी ओर खींच लिया और भागते हुए अश्वत्थामा को पकड़ लिया। पाश में बांध लिया। जब भगवान् ने देखा तो कहा कि अर्जुन ये अधम ब्राह्मण है, इसका तुम वध कर दो। इसने सोते हुए बालकों की हत्या की है, जो युद्ध से विरथ, मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त या स्त्री की हत्या करता है वह जीव घोर अपराधी है ऐसे व्यक्ति को दण्ड अवश्य मिलना चाहिए। अर्जुन तुम इसका वध कर दो।

मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम्।
प्रपन्नं विरथं भीत न रिपुं हन्ति धर्मवित्।

(श्रीमद्भागवतम् 1.7.36)

अर्जुन ने देखा, भगवान् श्रीकृष्ण को और सोचने लगा इतना क्रोध तो मैंने कृष्ण के चेहरे पर कभी नहीं देखा। भगवान् कभी अन्याय को, अधर्म को सहन नहीं करते। पाश में बांधकर जब अर्जुन ला रहे हैं अश्वत्थामा को, द्रौपदी के शिविर में, द्वार पर लाए तो देखा कि द्वार पर खड़ी उच्च स्वर में द्रौपदी ने कहा–

मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः।

(श्रीमद्भागवतम् 1.7.43)

महाराज छोड़ दो इसे मत मारो, मैं तो अपने पुत्र के लिए रो रही हूँ। आप यदि इनका वध कर देंगे तो इनकी माता कृपी गुरु माता है, आपकी गुरु माता को बड़ा कष्ट होगा। एक माँ ही एक माँ के हृदय को समझ सकती हैं। एक व्यक्ति यदि कोई अधर्म कर दे और एक अधर्म को हटाने के लिए हम दूसरा अधर्म करें यह कहाँ का नियम है कहाँ का धर्म हैं। छोड़ दो इसे मत मारो, परन्तु पास में भीम खड़ा है भीम ने कहा कि अर्जुन तुमने प्रतिज्ञा की थी उसे पूरा करो। इस अधम ब्राह्मण का वध कर दो। भीम कहते हैं, मार डालो। द्रौपदी कहती हैं, छोड़ दो। भगवान् कृष्ण तो कह ही चुके हैं की इस अधम ब्राह्मण को मार डालो वध कर दो। इसको दंड दो। तो मन में अर्जुन ने सोचा कि किसकी बात मानी जाए। भगवान् श्रीकृष्ण की ओर देखने लगे। हे गोविन्द आप आज्ञा दीजिए हम क्या करें? तो भगवान् कृष्ण कहते हैं। कि अर्जुन–

ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः।

(श्रीमद्भागवतम् 1.7.53)

देखो! अर्जुन ब्राह्मण का कभी वध नहीं करना चाहिए। ब्राह्मण पूजनीय हैं। वन्दनीय हैं। अर्चनीय हैं। परन्तु यदि कोई ब्राह्मण हाथ में शस्त्र लेकर खड़ा है तो ऐसे ब्राह्मण को दण्ड भी देना चाहिए। अब अर्जुन श्रीकृष्ण के परम भक्त भगवान् के इशारे को समझ गए। झट म्यान से अस्त्र निकाले और अस्त्र को निकालकर अश्वत्थामा के मस्तक में जो मणि थी, वह प्रतिष्ठा की सूचक थी, उस मणि को निकाल लिया और अश्वत्थामा को धक्का देकर शिविर से अपमानित करके निकाल दिया। शास्त्रों में ब्राह्मणों के लिए दैहिक दंड नहीं बताया, यदि किसी ब्राह्मण को अपमानित कर दिया जाए या स्थानच्युत कर दिया जाए तो मानो उसकी मृत्यु हो गई। आज भगवान् ने अर्जुन की प्रतिज्ञा को भी पूराकर दिया। ब्राह्मण की भी रक्षा कराई

और प्रतिष्ठा दिलाई। "मणि जहार मूर्धन्यं" मणि निकालकर शिविर से धक्का देकर निकाल दिया।

अथ अष्टमोध्यायः

गर्भ में परीक्षित की रक्षा और कुन्ती के द्वारा स्तुति

इधर पांडवों ने महाराज युधिष्ठिर को राजगद्दी देकर श्रीकृष्ण द्वारका के लिए प्रस्थान करने लगे। श्रीसूत जी महाराज कहते हैं, "द्वारकां रथमास्थितः" सभी भगवान् श्रीकृष्ण को विदा कर रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण एक पैर जमीन पर और एक पैर रथ में बैठने जा रहे हैं, उसी समय एक आश्चर्य जनक घटना घट गई। सभी ने देखा कि अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा भगवान् के रथ के आगे आकर खड़ी हो गई। वह बहुत भयभीत थी। "उत्तरां भय विह्वलाम्" देवी उत्तरा भय से कातर होकर श्रीकृष्ण की स्तुति कर रही है—

पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते।
नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.8.9)

भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में प्रणाम करके उत्तरा ने कहा कि त्राहि त्राहि प्रभु आज मैं आपकी शरण में हूँ। आप मेरी रक्षा करें और मेरे गर्भस्थ शिशु की रक्षा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा बेटी जब मैं राजमहलों में था, तब तूने ऐसी प्रार्थना, ऐसा आग्रह नहीं किया और अब इस प्रकार पांडवों की पुत्रवधू राजमहलों के बाहर। क्या बात है? बेटी बताओ। उत्तरा ने कहा भगवान् आप देख रहे हैं कि एक तेज मेरी ओर आ रहा हैं। उससे मेरी और गर्भस्थ शिशु की रक्षा करें। भगवान् को प्रणाम किया। देवी उत्तरा ने गर्भ की ओर इशारा किया। तो भगवान् को अपनी वाणी याद आ गई "न मे भक्त प्रणश्यति" भगवान् कहते हैं कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता। उत्तरा के गर्भ में मेरा परमभक्त परीक्षित बैठा है और इस परीक्षित के द्वारा भागवत का प्रचार होगा, नाम का प्रचार होगा। तब भगवान् ने उत्तरा के गर्भ में प्रवेश किया। अपनी वाणी को सत्य करने के लिए भगवान् एक रूप में उत्तरा के समक्ष खड़े हैं। दूसरे अंगुष्ठ के बराबर रूप धारण करके योग बल के द्वारा उत्तरा के गर्भ में प्रवेश करके उत्तरा की रक्षा की।

भगवान् अन्तरयामी योगेश्वर श्रीहरि सब जीवात्मा के अंदर रहने वाले सबकी रक्षा करते हैं।

अन्तः स्थः सर्वभूतानामात्मा योगश्वरो हरिः।

(श्रीमद्भागवतम् 1.8.14)

बोलो भक्तवत्सल भगवान् की जय।

भगवान् उत्तरा को पूछने लगे, देवी बताइए अब कैसा लग रहा है? देवी उत्तरा कह रही है कि मुझे सुकून मिल रहा है, तेज कम लग रहा हैं। योगेश्वर श्री हरि ने अपने कौमुदी गदा के द्वारा उस ब्रह्मस्त्र के तेज को नष्ट कर दिया और नन्हें शिशु को बचा लिया। परीक्षित देखता रहा कि हमारे चारों तरफ की आग को मिटाने वाला कौन है? माता के गर्भ में गर्भस्थ परीक्षित को यह ज्ञान हुआ। अब भगवान् थोड़ा और आगे बढ़े। भगवान् की आदरणीय बुआ कुन्ती भगवान् के रथ के आगे खड़ी हो गई। जो कृष्ण से अत्यंत प्रेम करती है अत्यंत स्नेह रखती हैं। ये कुन्ती भगवान् की स्तुति करने लगी।

भागवत में भगवान् की, माता कुन्ती बड़ी ही सुन्दर स्तुति कर रही है।

नमस्ये पुरुषं त्वाद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम्।
अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम्।।
मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम्।
न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा।।
तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः।।
कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः।।
नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.8.18, 19, 20, 21, 22)

कुन्ती जी ने भगवान् के चरण में प्रणाम करके अनेक नाम का उच्चारण किया। कुन्ती कहती हैं कि आप ही प्रकृति से परे ईश्वर है, आप ही समस्त जीवात्मा के अंतर में ही अवस्थित हैं। जैसे नाटक में व्यक्ति राजा बनता है परन्तु वह असली राजा नहीं है। वहीं स्टेज के सामने उसका पुत्र माता से पूछता है माताजी पिताजी कहाँ हैं। माताजी कहती हैं, जो राजा बना है वही पिताजी हैं।

'नटो नाट्य धरो यथा' जैसे उस के पीछे परिचालक होता है, हे प्रभु उसी प्रकार सारे मायिक जगत के परिचालक, संचालक आप ही हैं।

"माया जवनिकाच्छन्नं"

हे प्रभु, परमहंस अमलात्मा पुरुष आपको समस्त योगियों की आत्मा मानते हैं। परन्तु हे देव। ये सब भक्तियोग के विधान को हम सामान्य स्त्री क्या जाने। हम तो आपको प्रणाम करते हैं। कुन्ती कहती हैं, आप ही कृष्ण हैं, देवकीनंदन है आप ही गोविन्द हैं। हे गोविन्द आपके चरणों में मैं नमस्कार करती हूँ, वन्दन करती हूँ, आपकी नाभि से कमल का फूल निकला, आप कितनी सुन्दर कमल की माला गले में धारण करते हैं, आपके कितने सुन्दर कमल से नेत्र हैं। प्रभु वह दिन आपको याद है, भगवान् ने पूछा? कौन सा दिन। तो याद करा रही है भगवान् को, कृष्ण से कुन्ती बुआ, कह रही है भगवान् वह दिन जिस दिन आपने अपनी माँ को दुष्ट कंस से बचाया था।

यथा हृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धातिचिरं शुचार्पिता।

(श्रीमद्भागवतम् 1.8.23)

याद है आपको कृष्ण, उस दिन आपने अपनी माँ को बचाया था, तो केवल अपनी माँ की रक्षा नहीं की, आपने मेरी भी रक्षा की। आप अपने परिवार तक सीमित नहीं रहे। मेरे पुत्र भीम को लड्डू में विष देकर खिलाया। आपने रक्षा की। मेरे पुत्र को मारने का लाक्षागृह में जलाकर भस्म करने का जो षड़्यंत्र दुर्योधन ने किया उसमें भी आपने ही रक्षा की। एक बार नहीं अनेक बार आपने रक्षा की।

देखिए परमात्मा हर जीव की रक्षा करते हैं, परन्तु प्रभु की कृपा का हर जीव को अनुभव नहीं होता। प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण। संसार की भलाई तो बहुत याद होती है। यदि कृष्ण थोड़ा भलाई कर दे अर्थात धन दे दे तो मुख नहीं थकता प्रशंसा करते, परन्तु जिस गोविन्द का, जिस कृष्ण की कृपा निरंतर हमारे ऊपर है उसे हम याद नहीं करते। बहुत से लोग कहा करते हैं, हमने उसकी कृपा का अनुभव किया ही नहीं, दर्शन किया ही नहीं। देखिए भगवत्कृपा का अनुभव जीव कब किया करते हैं, जैसे अग्नि का प्रकाश सर्वत्र होता है, परन्तु ताप उसे लगता है जो पास जाकर बैठता है।

इस प्रकार भगवत्कृपा का अनुभव उसे होता है, जो भगवान् के पास जाकर बैठता है, कथा में, कीर्तन में, भजन में बैठते हैं। उसे ही अनुभव होता है, जो सत्संग में जाकर बैठता है, जो आज कुन्ती कहती है कि प्रभु मैंने तो आपका साक्षात् दर्शन किया है, एक बार नहीं अनेक बार आपकी कृपा का दर्शन किया है गोविन्द। देखिए गोपियाँ भी कह रही हैं, श्रीमद्भागवत के गोपी गीत के तीसरे श्लोक में गोपियाँ कहती हैं–

विषजलाप्ययादव्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद्वैद्युतानलात्।
वृषमयात्मजाद्विश्वतो भया-दृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.31.3)

गोपियाँ कहती हैं कि कभी आपने हमारी विष से रक्षा की है, कभी आपने हमारी अग्नि से रक्षा की, कभी आपने अरिष्टासुर, बकासुर, पूतना आदि असुरों से भी रक्षा की। एक बार नहीं अनेक बार आपने हमारी रक्षा की। अपनी स्तुति में कुन्ती आज भगवान् की कृपा का वर्णन करती है। भगवान् ने कहा कि बुआ एक बात पूछूं? हाँ कन्हैया। आज तो तूने बहुत लम्बी चौड़ी प्रार्थना की है, क्या बात है? आप बोल रहे हैं- आप ही कृष्ण हैं, आप ही गोविन्द हैं, माधव हैं। गिरिधारी हैं? क्या मुझसे कुछ लेने की इच्छा है, प्रेम से बोलो हरे कृष्ण।

आज लोग मंदिर में जाकर लम्बी-चौड़ी स्तुतियां करते हैं।

धनंदेहि, विद्या देहि, जन देहि। देहि देहि।।

और भगवान् से प्रार्थना करते हैं, भोग लगाते हैं। लड्डू पेड़े का भोग लगाकर प्रार्थना करते हैं, हे भगवान्! मेरा काम पूरा कर दे तो मैं आपका मुकुट बनवा दूँगा। सोने की अंगूठी बना देंगे, मुरलीधर मुरली भी बनवा देंगे। मेरा काम हो जाना चाहिए और काम नहीं हुआ तो भोग लगाना तो दूर मंदिर जाना ही छोड़ देते हैं। श्री विग्रह का दर्शन करना छोड़ देते हैं। प्रभु कृपा से वंचित रह जाते हैं। भगवान् से सौदा करते हैं—जीव। मानो भगवान् कुछ जानते ही नहीं। शास्त्र कहते हैं, भगवान् अन्तरयामी हैं। तो उनके सामने स्तुति की ठीक है, परची रखने की इच्छा नहीं। भगवान् के सामने, निकट आना, दर्शन, भक्ति, प्रणाम और उनकी लीलाओं का श्रवण करने से ही भगवान् उस जीव की समस्त इच्छा पूर्ण करते हैं। किसने लिखा तुम आंखों में रहो या दिल में रहो क्या फर्क पड़ता हैं। कहीं न कहीं तुम हो यही पर्याप्त हैं। ठाकुर से माँगना नहीं। ठाकुर से माँगना हो तो केवल ठाकुर को माँगो। भगवान् को ही माँगो क्योंकि स्वार्थ भरा प्रेम ठाकुर पसंद नहीं करते।

आज कुंती कहती है, कन्हैया मेरा स्वार्थ भरा प्रेम नहीं है, मैं तो निःस्वार्थ आपसे प्रेम करती हूँ। भगवान् कहते है, युधिष्ठिर, भीम भैया तुमने सुना है बुआ ने मुझे क्या बोला। आप ही गोविन्द हैं, आप ही देवकी नंदन हैं, आप ही भगवान् हैं, आप ही ईश्वर हैं। अरे बुआ मैं तो तुम्हारे भाई का सबसे छोटा पुत्र हूँ। आज तुमने मुझे भगवान् कह दिया हैं। अच्छा, चलो ठीक है, आज तुमने भगवान् कह दिया, तो हम भगवान् हैं। सब भगवान् से माँगते हैं। तुम माँगो क्या चाहिए।

बुआ कहती है कन्हैया जो आज मैं माँगूंगी क्या दोगे! बोले, बुआ माँग तो सही, तो देखिए कुन्ती ने बड़ी विलक्षण माँग माँगी। जिसे आज तक किसी ने नहीं माँगा। परन्तु भगवान् ने विचार किया आज यहाँ पंच पांडव के साथ उत्तरा, सुभद्रा भी खड़ी हैं। भगवान् ने विचार किया पांडवों में सबसे बड़ा धर्म पुत्र युधिष्ठिर है, तो युधिष्ठिर से ही क्यों न शुरू किया जाए–कहा बड़े भैया आप ही पहले माँगो, आपको क्या चाहिए? युधिष्ठिर ने कहा–केशव, क्या माँगू मुझे तो यही आशीर्वाद दीजिए संपत–विपदे, सुख–दुख लाभ–हानि किसी भी परिस्थिति में धर्म को न छोड़ूं, सत्य को न छोड़ूं। भगवान् ने कहा तथास्तु। अब भीम की तरफ निगाह डालकर भगवान् ने कहा मझले भैया भीम आप भी कुछ माँगो। भीम ने कहा क्या माँगूं केशव। ऐसे ही मुझे सब बदनाम करते हैं, घर में भोजन पकता है एक तरफ भीम का, एक तरफ सारे परिवार का, मुझे तो केशव यही आशीर्वाद दीजिए कि खाते–पीते, सोते, चलते–फिरते आपका नाम लेता रहूँ। आपको भुलूं नहीं। भगवान् ने कहा, दिया। अब अर्जुन से पूछा भगवान् ने। भैया तुम माँगो क्या आशीर्वाद दूँ। अर्जुन ने कहा प्रभु मेरी तो एक ही प्रसिद्ध माँग है "शिषऽस्ते अहं शाधि माम् तं प्रपन्नम्" आप गुरु हैं। मैं आपका चेला। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। भगवान् ने कहा तथास्तु। अर्जुन ने जो वर माँगा वह उत्तम श्रेणी के भक्तों का परिचायक हैं। उत्तम शिष्य गुरु के ही वाक्य पर समर्पित रहते हैं। "गुरुषे वचनांभव" अब भगवान् ने नकुल, सहदेव से पूछा भैया तुम भी माँगो। नकुल–सहदेव कहते हैं, हम दोनों तीनों भाईयों की सेवा में ही रहे। भगवान् कहते हैं। तथास्तु। अब भगवान् ने सुभद्रा की ओर दृष्टि की तथा कहा बहन तुम भी माँगो, सुभद्रा भगवान् कृष्ण की बहन हैं। सभी पांडव सोचने लगे कि क्या माँगेगी सुभद्रा? सुभद्रा देवी ने बड़ी सुन्दर माँग माँगी। वह कहती है प्रभु मुझे यही वरदान दीजिए, क्या?

"कृष्ण त्वदीयपदपंकज पिंजरेऽस्तरान्त
अद्यैव मे विशतुमानस राज हंसः।
प्राणप्रयाणेसमये कफवातपित्ते
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते।।

जब सुभद्रा देवी ने इस प्रकार आशीर्वाद देने के लिए प्रार्थना की भगवान् अति प्रसन्न हो गए। परन्तु सुभद्रा को कहने लगे सभी पांडवों की ओर दृष्टि करके यह मेरी बहन है, इस सुभद्रा की युवावस्था को देखते हुए भगवान् सुभद्रा की अंतिम समय की प्रार्थना से अत्यंत प्रसन्न हुए, तो क्यों नहीं? यह ठाकुर के ही परिवार का हैं। भगवान्

कहते हैं। बहन दिया, आशीर्वाद। अब भगवान् कुन्ती माता की ओर दृष्टिपात करते हुए कहते हैं। बुआ माँगो क्या चाहिए। बुआ कुन्ती ने कहा, हे गोविन्द कि...

विपदः सन्तु ताः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्।

(श्रीमद्भागवतम् 1.8.25)

कुन्ती ने कहा हे गोविन्द आप अत्यंत प्रसन्न हैं। तो यही वर दे दें, बोले क्या? मेरे जीवन में दुख ही दुख आवे, विपत्ति ही विपत्ति आवे। बताइए ठाकुर से कोई दुख माँगता है क्या? मंदिर में जाकर कोई अपनी झोली में नहीं माँगते। क्या माँगते हैं? संसार में जितने सुख हैं, वे मेरी ही झोली में यह डाल दो, मुझे सुख, सम्पति, धन-दौलत, परिवार, पत्नी, पुत्र मिल जाए। यहाँ तक कहते हैं कि किसी और को मिले न मिले पर मुझे दे दो। कई बार तो ऐसा होता है कि पीछे दर्शन, पहले लम्बा चौड़ा माँग पत्र ही रख देते हैं।

सत्संगत बोलो हरे कृष्ण।

देखिए व्यक्ति के जीवन में दुख क्यों आता है? कभी सोचा है, आपने बोले,व्यक्ति के जीवन में इसलिए दुख आता है, व्यक्ति सुख केवल अपने ही जीवन के इच्छा करता हैं। इतना प्रेम से हम सत्संग में भी कहते हैं–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्र् दुखभाग् भवेत्।।

अपना-अपना सुख ही जो ईश्वर से चाहता है उसी व्यक्ति के जीवन में दुख, कष्ट आता हैं। यदि आप ये सच्चे दिल से कहें...

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, माकश्चिद् दुखभाग् भवेत।।

ऐसा कहने से, भागवत् कृपा से समूचे देश का कल्याण हो जाए तो कहना ही क्या। परन्तु देखिए कुन्ती तो पहले ही दुख माँग रही हैं। क्यों? शास्त्र भी कहता है-

"विपदः विस्मरणं विष्णुः संपत्तिः न स्मरति"

अर्थात् विपद में लोग विष्णु का स्मरण करते हैं। सुख में नहीं। जीवन में दुख सुख क्या है? बोले, दुख है वही जब हम श्रीकृष्ण को भूल जाएं। अपने श्रीहरि ठाकुर को भूल जाएँ हमारा सबसे विपत्ति का समय है और जिस समय हम ठाकुर जी का स्मरण करते हैं, चिन्तन करते हैं, ठाकुर की स्मृति है वह सच्ची सम्पति हैं। सच्चा

सुख है तो आज कुन्ती कह रही है विषयों को पाकर के ऐसा सुख मुझे नहीं चाहिए कि मैं तुझे भूल जाऊँ।

"सुख के माथे सिल पड़े, जो हरि नाम बुलाए
बलिहारी वह दुख कि जो पल पल नाम रटाए"

देख कन्हैया किसी ने बहुत सुन्दर लिखा है और किसी भक्त ने बहुत सुन्दर गाया है कि–

"दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करे न कोए,
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे को होए।।"

परन्तु किसी व्यक्ति ने इस दोहे को सुना तो कहा कि महाराज लिखने वाले ने थोड़ा सा गलत लिख दिया। अरे भैया जितना चिन्तन भगवान् का सुख में होता है उतना दुख में नहीं होता। यह कैसे कह दिया कि

"दुख में सुमिरन सब करैं, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, तो दुख काहे को होय।।"

राम-राम जी तो बोलना ही पड़ेगा। अरे भैया विचार करे। जब व्यक्ति के जीवन में सुख होता है तो हर बात निश्चित हो जाती हैं। सुबह से शाम तक की दिनचर्या भी निश्चित हो जाती हैं। इतने बजे हम सोकर उठेंगे। इतने बजे स्नान, नाश्ता और इतने बजे हम ऑफिस में जाएँगे। इतने बजे वापिस आकर चाय-पानी होगा। परिवार के साथ बैठेंगे, वीडियो भी देखेंगे। यानी 24 घंटे की दिनचर्या निश्चित कर लेते हैं, परन्तु अपने प्रभु के लिए कोई समय निकाला? सारा समय हमने अपने काम के लिए निश्चित कर लिया, परन्तु अपने प्रभु के लिए समय निश्चित नहीं कर पाया। कहने का अभिप्राय यह है कि जब व्यक्ति के जीवन में दुख आता है तो उस समय व्यक्ति किसी भी काम को निश्चित नहीं कर पाता, यदि राम नही कहा तो हाय राम निकल ही पड़ता है, ना, तो

"दुख में सुमिरन सब करें सुख में करे न कोय,
जो सुख में सुमिरन करे तो दुख काहे को होय।"

तो भैया राम राम करना ही है तो सुख में क्यों न करो ताकि दुख आवे ही न।

एक सन्त के पास एक हीरा था और जिसकी कीमत एक लाख रुपए थी। बड़ा कीमती है, बहुत से लोग स्वामी जी के पास पहुँचे बोले स्वामी जी आप इस हीरे का क्या करेंगे, हमें दे दीजिए। स्वामी जी ने सोचा ये लोग सब हमारे पीछे पड़ गए। स्वमी

जी ने कहा मैं इस हीरे को देना चाहता हूँ, परन्तु एक शर्त है, इसे मैं अपने हाथों से नहीं दूंगा, मैं इस हीरे को यहाँ से फेंकूंगा, जिसके मस्तक में जख्म कर दे उसे ही हीरा मिल जाएगा। जिन लोगों ने सुना सभी तैयार हो गए। लाइन में खड़े हो गए। भले ही मस्तक में जख्म क्यों न हो जाए, परन्तु हीरा तो मिल जाएगा। उस हीरे के सुख के लिए, समृद्धि के लिए चाहे दुख उठाना पड़े, सिर फोड़ना पड़े व्यक्ति तैयार हो जाता हैं। इस प्रकार से जो भगवद्प्राप्ति जो परम सुख है उसे प्राप्त करने के लिए आपको संसार में दुख सहन करना पड़ेगा, हर दुख के पीछे सुख भी हैं। यह ध्यान देना, भैया आज कुन्ती कहती है कि भगवन् जितना दुख में आपका सुमिरन होता है सुख में नहीं। तो भगवान् से कुन्ती आज दुख, विपत्ति वरदान में माँग रही हैं। परन्तु भगवान् इस प्रसंग को थोड़ा बदलना चाहते हैं, भगवान् कहते हैं। कि मेरी शरण में आने से जीव को परम आनंद का अनुभव होता है तो भगवान् के चिन्तन से ही बुआ कुन्ती ने मुस्कराते हुए भगवान् से ही भगवान् की बाल लीलाओं का वर्णन किया। जो अति सुन्दर, अति दिव्य, अति मधुर हैं। कुन्ती जी कहती हैं। कि कन्हैया आपके दर्शन करके आपकी बाल लीलाओं की याद आ रही है।

“गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्
या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम्।”

(श्रीमद्भागवतम् 1.8.31)

कुन्ती ने कहा कि गोविन्द, हे श्यामसुन्दर, हे नन्दनन्दन जिस समय आपकी लगभग डेढ (1.5) वर्ष उम्र थी, आपने गोकुल में उस समय बहुत सुन्दर, अद्भुत लीला की, तो भगवान् ने कहा बुआ जल्दी सुनाओ मेरी कौन-सी बाल लीला?

घर में बड़े-बूढ़ों से कोई बात सुनने को मिलती है तो अच्छा लगता है, तो भगवान् ने कुन्ती से ही अपनी बाल लीला को सुनना चाहा, कुन्ती ने कहा–

“गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्
या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम्।।”

(श्रीमद्भागवतम् 1.8.31)

हे गाविन्द मालूम है यह लीला मैंने किससे सुनी थी। बोले बुआ बताइए तो आज कुन्ती बुआ बता रही है, भगवान् की बाललीला। बोली– “गोप्याद्दे” दूध, दही बेचने के लिए ब्रज की गोपांगनाएँ मथुरा आया करती थीं, तब नित्य ये लीलाएँ सुनाया करती थीं। मैंने उन गोपियों के मुख से श्रवण किया। गोपाल वही लीला आज मुझे याद आ रही हैं। बोले बुआ सुनाओ तो सही कौन-सी लीला है मेरी। कुन्ती कहती

है कि, देख कन्हैया जिस समय तुम्हारी लगभग डेढ (1.5) वर्ष की उम्र थी, एक रात्रि यशोदा ने तेरी आंखन में 'मोटो-मोटो काजल' लगाओ और तुमको पलंग पर सुलाओ। प्रातः काल भयो तू सोकर उठो, उठते ही तैने माखन की मटकी फोड़ दीनी। जब ब्रजरानी यशोदा ने देखा की आज लाला ने माखन की मटकी फोड़ देनी है, अरे ये हमारे सास-ससुर के जमाने की मटकी थी। मैंने सास की निशानी संभालकर रखी थी और लाला ने फोड़ देनी। आज मैं लाला को सीधा कर दूँगी।

झट हाथ में लकड़ी लेकर यशोदा रानी मारने चली, जो तू मैया के हाथ में लकड़ी देखी तो कन्हैया तुम्हारी आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे। काजल मिश्रित आंखों के अश्रु लाला जब तेरे गालन पर आयो तो तू पहले ही बड़ सुन्दर है, न। हमारे प्रभु का नाम क्या है श्याम सुन्दर। कितनी विलक्षण बात है, पर जरा सोचिए, गौर सुन्दर तो हमने सुना पर हमारे प्रभु श्याम भी हैं, सुन्दर भी, ठाकुर जी का दर्शन करें, क्या देखने को मिलेगा श्याम सुन्दर।

"त्रिभुवन कोमलं तमालवर्णनम्"

जैसे तमाल वृक्ष का वर्ण होता है ऐसा ही कृष्ण का वर्ण है, अंग हैं। "श्याम वर्ण अति कोमल" ऐसे श्रीकृष्ण हैं। तो श्याम सुन्दर, मैंने बहुत गौर सुन्दर सुना हैं। परन्तु हमारे ठाकुर श्याम भी हैं, सुन्दर भी। जब काजल मिश्रित आंसू का जल तैरकर गालन पर आओ तो तेरी शोभा और भी बढ़ गई। जिनकी भ्रुकुटी टेढ़ी हो जाती है तो काल भी डर जाता हैं। कालों के काल स्वयं श्रीकृष्ण हैं।

एक बार कृष्ण का काला रूप देखकर के ग्वाल बालकों ने पूछा कनुवा बता तेरा माँ बाप दोनों गोरे हैं। तू काला क्यों है? भगवान् ने तुरंत जवाब दिया कि अरे सखाओं काली रात में मेरा जन्म भयो ताते काले हो गया। दुर्योधन ने कहा केशव तुम काले हो तुम्हारे माँ बाप गोरे। तुम अपने पिता-माता के नहीं हो। भगवान् ने जवाब दिया सुन दुर्योधन मैं काला इसलिए हूँ कि मैं तेरा काल हूँ। एक बार राधा रानी ने कृष्ण से कहा कन्हैया सब कुछ ठीक है पर तुम बहुत काले हो भगवान् ने कहा हे राधे मैं काला नहीं होऊँगा तो तुम्हारे उज्जवल वर्ण को कौन पूछेगा?

आज कुन्ती कह रही है कृष्ण की श्यामल वर्ण के ऊपर काले वर्ण के ऊपर कितनी सुन्दर दर्शन हो रहा हैं। भागवत में भगवान् कहते हैं, कि मेरे भय से इन्द्र वर्षा करता है, सूर्य तपता हे, मेरे भय से काल चलता है, मैं कालों का काल स्वयं कृष्ण हुँ, परन्तु गोस्वामी जी कितनी सुन्दर लिखते हैं-

"जाकि रही भावना जैसी, प्रभु देखि मूरत तिन तैसी।"

गोस्वामी जी ने बताया आप लोग कृपा करके थोड़ा गुनगुनाइए–

(कीर्तन) जाकि रही भावना जैसी, प्रभु देखि मूरत तिन तैसी।

आज भी आप भगवान् के दर्शन करने जाइए जिस भाव से आप देखेंगे उसी भाव से भगवान् आपको दर्शन देंगे। ये कोई कपोल कल्पित बात आपको नहीं बता रहा हूँ ये साधकों के अनुभव की बात है। जिस भाव से आप भगवान् का दर्शन करेंगे, उसी भाव से भगवान् दर्शन देंगे ये बिल्कुल सत्य बात है।

अशोक वाटिका में हनुमान जी को श्वेत पदम् दिखाई देता हैं। एकनाथ जी की राम कथा में एकनाथ और हनुमान जी का झगड़ा हैं। एकनाथ जी कहते हैं, श्वेतपदं, हनुमान जी कहते हैं, रक्त पद्म। दोनों भक्त का मीठा झगड़ा हैं। अंत में भगवान् राम आकर संभालते हैं, समझाते हैं। भगवान् कहते हैं, हनुमान, पदम् श्वेत था परन्तु अशोक वाटिका की राक्षसियों को देखकर क्रोध के कारण तुम्हें रक्त पदम् दिखाई दिया।

श्री रामकृष्ण देव काली के उपसक थे और काली के मंदिर में अनेक प्रकार के भक्त आते हैं। तो रामकृष्ण परमहंस जी महाराज काली के उपासक थे। एक बार वे वृन्दावन आए और बिहारी जी के मंदिर पधारे जब परदे बंद थे। बिहारी जी के मंदिर में स्वामी जी खड़े हैं। दर्शन के लिए ज्योंही झांकी खुली बिहारी जी महाराज की और रामकृष्ण परमहंस जी महाराज ने अपनी गर्दन ऊँची की दर्शन के लिए तो साक्षात् बिहारी में माँ काली का दर्शन मिला और माँ...माँ कहते हुए बिहारी जी को पकड़ने के लिए भागा, दौड़ा। झट परदा बंद कर दिया गया। तो जिस भाव से भक्त भगवान् के पास जाता है उस भाव से भगवान् दर्शन देते हैं।

गीतम्

जय माधव मदन मुरारी, राधे श्याम श्यामा श्याम।
जय केशव कलि कलिमलहारी राधे श्याम श्यामा श्याम।।
सुन्दर, कुंडल नैन विशाला, गले सोहे वैजयंती माला।
जा छवि की बलिहारी, राधे श्याम.....................।।
कबहुँ लुटि लुटि दधि खाओ कबहूँ मधुबन रास रचाओ।
नाचत बिपिन बिहारी राधे श्याम........................।।
ग्वाल बाल संग धेनु चराओ, वन वन भ्रामत फिरे यदुराई।

कांधे कमर कारी, राधे श्याम..............................।।
चुरा–चुरा कर नवनीत जो खाओ, ब्रज बनीतन पै नाम धराओ।
माखन चोर मुरारी, राधे श्याम............................
एक दिन मान इन्द्र को मारो, नख उपर गोवर्धन धरो
नाम पड़ो गिरिधारी, राधे श्याम.............................
दुर्योधन को भोग न खाओ, रूखे साग विदुर घर खाओ
ऐसे प्रेम पुजारी, राधे श्याम.................................
करुणा कर द्रोपदी पुकारी, पट में लिपट गए बनवारी
नीरख रहे नर–नारी, राधे श्याम..............................

आज कुन्ती भी यही बता रही है, भगवान् को, जिसने जिस भाव से स्मरण करें अपने उस भाव से उसे दर्शन दिया। अब भगवान् का रथ ज्यों थोड़ा आगे बढ़ा तो कुन्ती ने कहा कि कन्हैया आज आप द्वारका मत जाओ, बोले। बुआ क्यों? अच्छा भले हम द्वारका जा रहे हैं, तुम क्यों रोक रही हो? कुन्ती देवी कहती हैं, कन्हैया आज तेरा अपशकुन हो गया हैं, देख मैं भी कितना रोई और उत्तरा भी कितना रोई इसलिए आज तुम द्वारका मत जाओ। परन्तु भगवान् कहते हैं, धन्य है भक्त का भाव, भक्त का प्रेम क्योंकि मेरा एक नाम समस्त अमंगल दूर करने में समर्थ है।

गीत

मंगल भवन अमंगल हारी, द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी।
जाकि रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखि तिन तैसी।।

परन्तु भगवान् के भक्त भगवान् की भी अमंगल की आशंका कर बैठते हैं। कहीं मेरे ठाकुर का अमंगल न हो जाए। मंगल मूर्त्ति है भगवान् साक्षात् श्रीकृष्ण और साक्षात् श्रीराम। जो परम मंगल मूरती हैं, परन्तु आज कुन्ती का भाव पूर्ण करने के लिए भगवान् द्वारका नहीं गए। भगवान् हस्तिनापुर में ही विराजमान हैं।

इधर एक दिन भगवान् नन्द नन्दन, श्याम सुन्दर अमृतवेला में ठीक चार बजे उठे। उठकर के भगवान् आंखें बंद करके बैठे थे, मानो किसी का ध्यान कर रहे हों। युधिष्ठिर महाराज का दैनिक नियम था, प्रात:काल श्री भगवान् को प्रणाम करना यानि भगवान् को प्रणाम करने दैनिक प्रात: आया करते थे। जब प्रणाम करने के लिए गये और स्वयं भगवान् को ध्यान करते हुए देखा तो युधिष्ठिर महाराज ने पूछा कि, हे गोविन्द! सारा जगत आपका ध्यान कर रहा है और आप किसका ध्यान कर रहे हैं?

देखिए भगवान् भी उसका ध्यान करते हैं, जो भगवान् का ध्यान करते हैं। गीता जी में बताया है कि–

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्"

(श्रीमद् भगवद्गीता 4.11)

ये तुम मत समझना कि जो जाप, नाम, तुम कर रहे हो प्रभु तुम्हें याद नहीं कर रहे? भगवान् की याद कर रहे हैं। स्पष्ट भाव गीता में अर्जुन के माध्यम से कह रहे हैं कि–

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्"

(श्रीमद् भगवद्गीता 4.11)

आप प्रभु को जो समय दे रहे हो, वह व्यर्थ नहीं जा रहा, यदि आप प्रभु के लिए बैठकर चिन्तन कर रहे हो, तो प्रभु भी आपका चिन्तन कर रहे हैं। आज श्रीकृष्ण किसका चिन्तन कर रहे हैं? बोले अपने परम् भक्त भीष्म पितामह के लिए चिन्तन कर रहे हैं।

अथ नवमोध्यायः

भीष्म जी का प्राण त्याग

जो कुरुक्षेत्र की युद्ध में शर सज्जा में पड़ा है, जिसका सारा शरीर बाणों से विंधा हे, ऐसा कोई अंग नहीं जहाँ तीर न लगा हो, परन्तु असाध्य होने पर भी भीष्मपितामह एक क्षण भी कृष्ण नाम की औषधि का सेवन बंद नहीं करते। हर क्षण भगवान् श्रीकृष्ण नाम का औषधि सेवन करते रहें।

इधर अर्जुन आए, अर्जुन को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि अर्जुन भैया अपना रथ हमें दे दो। अर्जुन ने कहा आप जाएँगे कहाँ? रथी तो आप ही हैं। जहाँ मरजी ले चलिए। कृष्ण ने कहा मैंने बाबा से प्रतिज्ञा की थी कि जब आप शरीर त्यागेंगे तो मैं आपको दर्शन देने आऊँगा। अब उत्तरायण शुरू हो गया। मुझे बाबा को दर्शन देने हैं, तो मुझे तुम रथ दे दो। आज पाँचों पांडवों को बैठाकर द्रौपदी को भी साथ लेकर भगवान् कुरुक्षेत्र की ओर चल दिए। जिधर भीष्म पितामह जीवन के अंतिम चरण में पहुँच चुके हैं। मृत्यु के सन्निकट आ चुके हैं, परन्तु श्रीकृष्ण शरण श्रीकृष्ण शरणं मम, श्रीकृष्ण शरणं मम। पितामह श्रीकृष्ण का स्मरण कर रहे हैं।

"तथापि एकान्त भक्तेषु–पश्य भूपानु कंपितम्"

सूत जी महाराज कहते हैं। परन्तु जिस पर भगवान् कृपा करते हैं, उसे स्वयं दर्शन देने के लिए आ जाते हैं। आज अपने परम भक्त को दर्शन देने के लिए स्वयं पधारे हैं। भगवान् चाहते हैं कि युधिष्ठिर राजा बनने जा रहे हैं। तो बाबा से कुछ उपदेश ग्रहण करें। क्योंकि युधिष्ठिर को भगवान् बहुत सम्मान करते थे। बुआ के बड़े ज्येष्ठ पुत्र हैं। मेरी उम्र से भी बड़े हैं, इसलिए जो बात, जो उपदेश मैं कहूँगा वह भीष्म देव कहेंगे तो युधिष्ठिर के लिए उचित होगा। क्योंकि उपदेश तो बड़े से ही सुना जाता है यद्यपि भीष्म के अंदर से मैं ही कहूँगा। भीष्म को निमित्त बनाकर मैं ही कहूँगा, फिर भी कहना तो पड़ेगा। वास्तव में भगवान् ही सबके मन की बात कहते हैं, बुलवाते हैं, कहते हैं, दर्शन करवाते हैं। भगवान् पांडवों को द्रोपदी के साथ भीष्म के सम्मुख छोड़ दिया और स्वयं सारथियों के बीच में जाकर बैठ गए। भगवान् ने सोचा जिन सारथियों ने इतनी बड़ी लड़ाई लड़ी, धर्म युद्ध में साथ दिया। उनके लिए हमने कुछ नहीं किया। वे भी हमारा सान्निध्य प्राप्त करें, उनका कल्याण हो, वे भी हमारी कृपा प्राप्त करें। उन सारथी लोगो के बीच में गोल मंडल करके भगवान् बैठ गए। इधर भीष्म पितामह के पास पाँचों पांडव पहुँचे। सर्वप्रथम युधिष्ठिर महाराज ने प्रणाम किया। लेटे–लेटे भीष्म पितामह ने आशीर्वाद दिया। कुछ ज्ञानोपदेश दे रहे हैं।

दानधर्मान् राजधर्मान् मोक्षधर्मान् विभागशः।
स्त्रीधर्मान् भगवद्धर्मान् समासव्यासयोगतः।

(श्रीमद्भागवतम् 1.9.27)

दान धर्म की, राज धर्म की, मोक्ष धर्म की शिक्षा दी। किसी का विस्तार किया और किसी का संक्षिप्त किया। दान धर्म में पितामह ने अनेक प्रकार के दान की महिमा बताई, दान सुपात्र में करना चाहिए। ऐसा करने से दान की सद्गति होती हैं। दान असत्पात्र में करने से दुर्गति को प्राप्त होता है, व्यक्ति को दान समझकर ही करना चाहिए। अन्न दान, वस्त्र दान, जल दान, भूमि दान, गौ दान, कन्या दान ये सभी अच्छे दान हैं, परन्तु सत्पात्र में दान देने के बाद भी दान दिया गया पात्रता में दोष भी दिख जाता हैं। सत्पात्र देखकर कन्या दान दिया और बाद में संगदोष के कारण दामाद जुआरी, शराबी हो गए। भूमिदान दिया मंदिर के लिए, बाद में उन्होंने जमीन बेच दी। साधु शास्त्र कहते हैं, इन दानों में सबसे बड़ा दान है जीव के लिए भगवत भक्ति दान। फिर पितामह ने राजधर्म के विषय में बताया। राजा को तो धर्म में रहकर प्रजा का पालन करना चाहिए। राजा कभी अधार्मिक न हो। अधर्म को राजा को रोकना चाहिए। राजा अधर्मी व्यक्ति को रोके। राजा अन्याय न

करे और न होने दे। भीष्म पितामह लेटे–लेटे उपदेश कर ही रहे थे कि द्रौपदी हंस पड़ी। द्रौपदी की हंसी पितामह ने देख ली। उन्होंने पूछा बेटी तुम क्यों हंसी? द्रौपदी ने कहा पितामह जाने दीजिए, छोड़िए। पितामह कहते हैं कि कुलीन घर की कन्या की हंसी के पीछे कोई रहस्य जरूर होता हैं। बताना ही पड़ेगा। द्रौपदी घबराई। भीष्म के सामने कहना आसान नहीं हैं। द्रौपदी ने घबराते हुए कहा पितामह मुझे ऐसे ही हँसी आ गई। पितामह ने कहा नहीं बेटी, सच बताओ क्या बात है? द्रौपदी बहुत घबराई। मृत्युशय्या में भीष्म पितामह सोए हैं। वाणी के वजन में द्रौपदी को डर लग रहा हैं। द्रौपदी घबराते हुए बोली आप पांडवों, कौरवों के शिरोमणि हैं, ज्येष्ठ हैं। आपके सामने ये राजधर्म का अन्याय क्यों हुआ। आपने कहा राजा अन्याय न करे, न होने दे, फिर आपके सामने अन्याय क्यों हुआ। क्या एक पांडव कुल वधू को सभा के बीच अपमानित करना उचित हैं। सारी सभा देख रही हैं। आपने उसे क्यों स्वीकार किया। क्या आपकी राजधर्म की यही शिक्षा हैं। एक अबला स्त्री को मध्य सभा में अपमानित करें। सभी बड़े शूरवीर सिर नीचा करके बैठे रहे। आपने क्यों अन्याय को स्वीकार किया। क्यों अन्याय होने दिया। आज द्रौपदी नहीं मानो भारतवर्ष की सम्पूर्ण नारी चरित्र ने उस प्रतिष्ठावान पुरुषों के सामने दलील रखी।

भीष्म पितामह ने रोते हुए कहा–बेटी मैं वही हतभाग्य भीष्म हूँ जिसने साक्षात् कलि दुर्योधन का अन्न ग्रहण किया। मेरा नहीं, मेरे अन्न ग्रहण का दोष लगा हैं। बेटी। हो सके तो मुझे क्षमा कर देना–बेटी।

द्रौपदी ने कहा पितामह आप क्या कह रहे हैं। क्षमा! इतने में भीम ने आकर प्रणाम किया तो भीम को आशीर्वाद दिया। अर्जुन ने प्रणाम किया तो कहा अर्जुन वह नहीं आए। अर्जुन ने कहा पितामह किसको पूछ रहे हो कन्हैया को? अरे। उनकी कृपा से तो आपके दर्शन मिले। वही हमें लेकर आए, परन्तु कहाँ चले गए। तुरंत सेवक भेजे। सेवक देखने के लिए गए तो वहाँ कहीं नहीं मिले। महाभारत का युद्ध पूर्ण हो चुका है, परन्तु बहुत से राजा, महाराज का शिविर लगा हैं। सन्तों की कुटियों में भी नहीं हैं। भगवान् कहाँ हैं? रथ चालकों के बीच में।

उन्हीं सारथियों के बीच में गोलमंडल बनाकर श्रीकृष्ण बैठे हुए वातार्लाप कर रहे थे। सेवकों ने जाकर प्रणाम किया और कहा कि प्रभु यह भी क्या आपके बैठने के लिए स्थान हैं। आप यहाँ बैठे हैं? पधारिए बाबा ने आपको दर्शन के लिए बुलाया हैं। तो भगवान् उन सारथियों के बीच में से उठकर भीष्म पितामह के दर्शन के लिए चल दिए।

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम्।
प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लस न्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.9.24)

भीष्म पितामह को दर्शन देने के लिए श्रीकृष्ण भगवान् जब भीष्म पितामह के पास पहुँचे तो सिरहाने में जाकर खड़े हो गए। जब बाबा को मालूम चला कि श्रीकृष्ण आ गए और सिरहाने में खड़े हैं। तो पितामह ने सोचा उठकर प्रणाम करूँ। बार-बार उठने का प्रयास किया, परन्तु उठ नहीं पाए। अपने ठाकुर को दो हाथ जोड़ दूँ पर हाथ भी नहीं उठा पा रहे क्योंकि सारा शरीर बाणों से जुड़ा हैं। वे बोले हे गोविन्द! आप सिर के सामने से आकर पैर के पास खड़े हो जाएँ। अन्त समय में मैं सिर्फ आपको ही देखना चाहता हूँ। भगवान् भीष्म पितामह के चरणों की तरफ आकर खड़े हो गए।

"प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लस न्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः।"

(श्रीमद्भागवतम् 1.9.24)

ज्यों प्रभु का दर्शन किया, भगवान् के प्रसन्न मुखमंडल सुन्दर कमल के से नयन और लम्बे हस्त को देखा, योगियों के ध्यान करने योग्य उस चतुर्भुज भगवान् के दर्शन कर रहे हैं, कृष्ण के नहीं। "ध्यानपश्चतुर्भुजः" भीष्म पितामह गद्गद् हो गए। आंखें भर आईं। दोनों आंखों से आंसू झर झर टपकने लगे। कितनी सुन्दर पितामह प्रार्थना कर रहे हैं। एक-एक मोती के समान अश्रुवृन्दु फूल के समान भेंट किए। गोविन्द के चरणों में चढ़ा रहे हैं। निवेदन है आप लोग भी पितामह की प्रार्थना में सम्मिलित हो जाएं।

गीतम्

इक अरज मेरी सुन लो दिलदार हे कन्हैया,
कर दो अधम की नैया भव पार हे कन्हैया,
अच्छा हूँ या बुरा हूँ, पर दास हूँ तुम्हारा,
जीवन का मेरे तुम पर है भार हे कन्हैया।
तुम हो अधम जनों के उद्धार करने वाले,
मैं हूँ अधम जनों का सरदार हे कन्हैया।
इक अरज मेरी...................................
करुणा निधान करुणा करनी पड़ेगी तुमको,
वरना ये नाम होगा बदनाम हे कन्हैया।
इक अरज मेरी..

भीष्म पितामह भगवान् की स्तुति कर रहे हैं और गोविन्द को आँसुओं की भेंट दे रहे हैं। भीष्म पितामह कहते हैं कि हे गोविन्द मेरे पास न पुष्प है, न जल है, न फल हैं। मैं आपको क्या भेंट करूँ? मैंने सुना है कि तीन जगह खाली हाथ नहीं जाना चाहिए, 1. गुरु के घर, गुरु के द्वार, 2. मंदिर में, 3. मित्र के घर। तीनों जगह कुछ लेकर जाना चाहिए। परन्तु हे गोविन्द मेरे पास तो न पत्र है, न पुष्प हैं, न फल है, न जल। गोविन्द आपने गीता में लिखा है पत्रं, पुष्पं, फलम् तोयं से प्रसन्न होते हैं।

भीष्म पितामह को याद आया कि मेरे पास अभी भी एक वस्तु भेंट करने की हैं। शब्द, वाणी। मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ।

"इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि।"

(श्रीमद्भागवतम् 1.9.32)

भीष्म यह कहते हैं, हे गोविन्द, "इतिमतिरुपकल्पिता वितृष्णा" मेरी जो ये कुमारी कन्या है जिसकी शादी मैं आपके साथ करना चाहता हूँ। भीष्मपितामह तो अखंड ब्रह्मचारी हैं। ऐसे ब्रह्मचारी की कुमारी कन्या कौन है, जिसकी शादी गोविन्द के साथ करना चाहते हैं। देखिए भागवत के शब्द-शब्द के बहुत अर्थ हैं। आपको ध्यान से सुनना होगा। इतिमति–बुद्धि। ये मेरी मति कुंवारी कन्या हैं। आज तक जिसने किसी का चिन्तन नहीं किया। यदि चिन्तन किया तो केवल आपका ही। तो इस कुंवारी कन्या को, बेटी को आपके चरण में समर्पित कर रहा हूँ। क्योंकि भीष्म का अर्थ है भयंकर– ये मन अति भयंकर है ये कभी संकल्प करता है तो कभी विकल्प करता है, परन्तु बुद्धि है निर्णय शक्ति। यदि किसी बात का निर्णय लेना हो तो मन नहीं ले पाता, बुद्धि ही लेती हैं। भीष्म पितामह कहते हैं कि हे गोविन्द मुझे डर है कि कभी अंतिम समय में मेरा मन, बुद्धि संसार में नहीं लगे। अतः मैं इसे आपको समर्पित करना चाहता हूँ। आप जब प्रकृति के साथ विहार करते हैं। तो सारा संसार चलता है, सारी सृष्टि चलती हैं। "प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः"

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.9.33)

भीष्म पितामह कहते हैं कि हे गोविन्द त्रिलोकी में यदि काई सौंदर्य है तो हे कृष्ण आपके श्री अंग में हैं और कहीं नहीं। यदि मैंने सौंदर्य का दर्शन किया तो आपके ही श्रीअंग में दर्शन किया। भगवान् आप की सुन्दर वो अलकावली, कितनी सुन्दर वह छटा। भगवन वह दिन आप याद करिए कि "स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा"

आपने मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए अपनी प्रतिज्ञा तोड़ ली। भगवान् ने पूछा कौन-सी प्रतिज्ञा तोड़ी बताइए?

भीष्म पितामह कहते हैं कि मैंने ये प्रतिज्ञा की थी कि आपसे हथियार उठवाऊँगा और आपकी भी प्रतिज्ञा थी, संकल्प था कि महाभारत युद्ध में हथियार नहीं उठाऊँगा, दुर्योधन को वचन दिया था, परन्तु आपने मेरे संकल्प को पूर्ण करने के लिए अपना संकल्प तोड़ दिया।

"स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा"

भगवान् कहते हैं कि पितामह मेरी कोई प्रतिज्ञा नहीं हैं। जो मेरे भक्त की प्रतिज्ञा है वही मेरी प्रतिज्ञा है, वही मेरा संकल्प हैं। भगवान् अपनी ओर से कोई संकल्प नहीं करते। यदि लीला में कोई संकल्प करते हैं तो भक्तों के संकल्प से ओतप्रोत होते हैं, क्योंकि भगवान् लीलाधारी हैं न, तो भगवान् कहते हैं। मैं अपने संकल्प को भूलकर भक्तों के संकल्पों को पूर्ण करता हूँ।

भक्त को हमेशा सत्संकल्प रखना चाहिए। ठाकुर तुम्हारे उस संकल्प को अवश्य पूरा करेंगे। इस प्रकार भीष्म पितामह भगवान् के चरणों में प्रणाम करते हैं और अंतिम श्लोक में भीष्म पितामह ने कहा कि, मेरे शरीर से प्राण निकल कर आपके चरण में आ रहे हैं, आप स्वीकार करें। उसी समय उत्तरायण शुरू हो गया, भीष्मपितामह के शरीर से प्राण निकलकर श्रीकृष्ण के अंग में विलीन हो गए। आकाश में से देवताओं ने पुष्पवर्षा की, दुंदुभियां, नगाड़े बजाने लगे। समस्त देवता जयजयकार करने लगे। बोलो भक्तवत्सल भगवान् की जय। वृन्दावन बिहारी लाल की जय। जय-जय श्री राधे।

संकीर्तन

राधे-राधे गोविन्द गोपाल राधे
गोविन्द राधे, गोपाल राधे
राधे-राधे गोविन्द गोपाल राधे।।

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण का द्वारका गमन

एवं अथैकादशोऽध्यायः

भगवान् द्वारका में का स्वागत

भगवान् श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि से लौटकर पांडव, सुभद्रा, उत्तरा और बुआ कुन्ती की प्रसन्नता के लिए कुछ समय हस्तिनापुर में निवास किया। अपने प्रिय लोगों का काम बनाने के लिए हस्तिनापुर में ही कुछेक दिन नहीं, कुछ मास रहें।

'मासान् कतिपयान हरिः'

उषित्वा हास्तिनपुरे मासान् कतिपयान हरिः।
सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया।

(श्रीमद्भागवतम् 1.10.7)

भगवान् के हस्तिनापुर में अवस्थान से बहन सुभद्रा, सखी द्रोपदी, बुआ कुन्ती, विराटतनया उत्तरा और गांधारी, धृतराष्ट्र भी परम प्रसन्न हुए। भगवान् के संग को प्राप्त करके हस्तिनापुर में परम आनंद से दिन बीत रहा था। किंतु एक दिन ने भगवान् स्वयं बोले, बुआ–अब मुझे द्वारका जाना है। अजातशत्रु, युधिष्ठिर महाराज भगवान् कि रक्षा के लिए कुछ सैन्य, सामान देकर द्वारका की ओर प्रस्थान कराया। साथ में अर्जुन को भी ले लिया। भगवान् के आगमन संवाद सुनकर द्वारका में भी भगवान् के आगमन के लिए विशाल भक्तों का समावेश हुआ। सभी नर–नारी द्वारिका के बड़े–बड़े प्रसाद और महलों की अट्टालिकाओं पर चढ़कर पुष्पवर्षा की प्रतिक्षा में खड़े हैं।

प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिद्दक्षया।
ववृषुः कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.10.16)

भगवान् के दर्शन से द्वारिकावासी प्रसन्न हुए। वे खुशी से झूम उठे। भगवान् उन भक्तों के प्रति प्रेम से दर्शन देते हुए राज प्रसाद की ओर प्रवेश कर रहे हैं। जब भगवान् अपने प्रासाद में प्रवेश करने आ रहे हैं तब बड़े–बड़े व्यापारी भगवान् के स्वागत में बड़ी–बड़ी भेंट लेकर खड़े हैं। कोई "पानपात्रम्मुखमदृशां" पान के पत्ते लेकर कोई चरण धोने के लिए सोने के पात्र में जल लेकर। परन्तु भगवान् सबको

पीछे करके द्वारिका पुरी में प्रवेश कर रहे हैं। प्रवेश करके भगवान् अपनी माताओं को प्रणाम कर रहे हैं। देवकी माता सहित उन्होंने और माताओं को प्रणाम किया। एक माता नहीं सभी माताओं को प्रणाम किया।

प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्क्तः स्वमातृभिः।
ववन्दे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.11.28)

द्वादशोध्यायः

परीक्षित का जन्म

सूत जी शौनकादि ऋषियों को कथा प्रसंग आगे बढ़ाते हुए बता रहे हैं। कि शौनकादि ऋषियों ने प्रश्न पूछा कि हे सूत जी महाराज–

अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा।
उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाजीवित:पुनः।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.12.1)

भगवन बताइए, कि भगवान् ने उत्तरा के गर्भ रक्षा की जिससे भगवान् परीक्षित का जन्म हुआ। तो परिक्षित महाराज के जन्म और कर्म के बारे में प्रकाश डालें। सूत जी ने कहा शौनकादि ऋषियों आपने बहुत सुन्दर प्रश्न किया।

एक बार महाराज युधिष्ठिर पांडवों सहित सभा में बैठे थे, भगवान् श्यामसुन्दर की सेवा में। इतने में महलों के अंदर से एक सेविका आई और महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया। खुशखबरी का समाचार सुनाया कि महाराज उत्तरा ने पुत्र को जन्म दिया हैं। महाराज ने गले से हार उतार कर सेविका के गले में डाल दिया। सेविका उछलती–कूदती खुशी से अंदर जाने लगी तो महलों के अंदर से रोने की आवाज आई। खबर मिली कि पुत्र तो हुआ पर मृत। भगवान् पांडवों सहित अंदर गए और देखा कि कुन्ती जी की गोद में वह बालक है, मृत शरीर है बालक का। उत्तरा रो रही हैं। जब कुन्ती जी ने भगवान् नन्दनन्दन का दर्शन किया। दर्शन करके कहा, हे गोविन्द जब–जब हमारे ऊपर विपत्ति आई हैं आपने हमारी रक्षा की। ये कौरव, पांडव का बीज है, आप इसकी भी रक्षा करें। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं, सारे संसार की सृष्टि में बीज के मूल के रूप में मैं ही हूँ। अतः मैं इस बीज की भी रक्षा करूँगा।

कुन्ती बुआ ने भगवान् की गोद में उस बालक को दिया। भगवान् ने उस बालक को गोद में लेकर कुन्ती जी से कहा बुआ अब तक हमने जो भी प्रतिज्ञा की है, वे

सब पूर्ण हुई हों तो बालक भी जीवित हो जाए। यदि मेरा अखंड स्वरूप ब्रह्मचारी हो, तो ये बालक जीवित हो जाए। मैंने सत्य का, धर्म का आश्रय लिया हो तो यह बालक जीवित हो जाए। इतना जब श्रीकृष्ण ने कहा, तो झट उस बालक ने श्रीकृष्ण की गोद में आंखें खोल दीं।

बोलो भक्त वत्सल भगवान् की जय।

आश्चर्य की बात है आँखें खोलकर वह बालक चारों तरफ देख रहा है मानो आंखें किसी को खोज रही हैं। कृष्ण को खोज रही हैं क्योंकि बालक ने माता के गर्भ में दर्शन किया। जिसने उसकी रक्षा की उस ताप से, उस अग्निशस्त्र से। वह सांवला कहाँ है वह कान्हा कहाँ हैं? भगवान् ने माता उत्तरा के गर्भ में 'अंगुष्ठमात्रम्' उंगली के बराबर शरीर धारण करके रक्षा की, उस ब्रह्मास्त्र से रक्षा की। जीवन दान दिया।

उस बालक ने कृष्ण की गोद में ही कृष्ण को देखा। सांवरे को देखा और खिल-खिल करके हंस पड़े मानो बता रहे हैं कि ये तो वही हैं, जिसका मैंने माता के गर्भ में दर्शन किया। तो परीक्षा कर रहे थे उस बालक जीव की। नाम पड़ा परीक्षित। "परीक्षिते परीक्षिताः" हरेक ने परीक्षा करी कि मेरा गोविन्द कहाँ हैं? जो हर में कृष्ण का दर्शन करे वह परीक्षित।

इनका एक नाम पड़ा विष्णुरात। भगवान् ने माता के गर्भ में चतुर्भुज विष्णु के रूप में दर्शन दिया और कौमुदी गदा के द्वारा रक्षा की तो इनका नाम पड़ा विष्णुरात। महाराज युधिष्ठिर जी गद्गद हो गए कि आज भगवान् ने मेरे पौत्र की रक्षा की। बड़े-बड़े विद्वानों को बुलाकर जातादि कर्म कराए। श्राद्धा कर्मादि कराए। अनेक बड़े-बड़ें विप्रधौम आदि बुलाए। सब ब्राह्मण आकर नामकरण संस्कार कर रहे हैं। महाराज युधिष्ठिर ने पूछा कि बताओ हमारे पौत्र के अंदर कौन-से गुण हैं। दोष भी बताओ। जन्मपत्रिका पढ़कर ब्राह्मण सुना रहे हैं। कि महाराज–

पार्थ प्रजाविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः।
ब्रह्मण्यः सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यथा।
एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिबिः।
यशो वितनिता स्वानां दौष्यन्तिरिव यज्वनाम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.12.19, 20)

व्रिपधौम आदि ब्राह्मणों ने कहा कि महाराज ये जो आपका पौत्र है इसके अंदर भगवान् राम के जैसे अनेक गुण आएँगे। जैसे राम में पितृभक्ति, पिता आज्ञा पालन, पितृप्रेम था वही इसमें होगा। पिता के प्रति श्रद्धा, प्रेम होगा।

इक्ष्वाकु के समान महान प्रजा पालक बनेगा और शरण आने वालों की रक्षा करेगा। स्त्रियों की, बालकों की रक्षा करेंगे। महाराज रन्तिदेव के समान उदार बनेंगे। ययाति के समान धार्मिक बनेंगे। शिबि के समान ये महान दानी बनेगा। परन्तु एक बार इसके जीवन में एक अपराध होगा। एक सन्त का अपमान करेगा। सन्त के गले में मृत साँप डालेगा। श्राप लगेगा कि तक्षक नाम का साँप डसेगा। एक पहुँचे हुए सन्त पधारेंगे और इसे भागवत के उपदेश देकर जन्म-मृत्यु के चक्कर से छुड़ा लेंगे।

जब महाराज ने सुना तो एक बात अच्छी लगी। मेरा पौत्र अनेक सद्गुणों का अधि कारी है परन्तु एक बात महाराज को अच्छी नहीं लगी, कि हमारा पौत्र एक सन्त का अपमान करे। अरे! हमारे यहाँ तो सन्त की पूजा होती चली आई, परन्तु हमारे पौत्र एक सन्त का अपमान करें। यह तो ठीक नहीं फिर भी महाराज प्रसन्न हुए कि हमारे पौत्र का अंत समय में किसी पहुँचे हुए सन्त से मिलन होगा। महापुरुष का दर्शन मिलेगा और इसे भागवत धर्म प्रदान करके निर्भय पद प्रदान कर देंगे। इस प्रकार परीक्षित का नामकरण संस्कार जातकर्मादि सम्पन्न हुए और भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को लेकर तुरंत द्वारका चले गए।

अथ त्रयोदश अध्यायः

विदुर जी के उपदेश से धृतराष्ट्र–गांधारी का वन में जाना

श्री सूत जी महाराज कहते हैं। सनकादिक ऋषियों–

"विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम्"

(श्रीमद्भागवतम् 1.13.1)

श्री मैत्रेय जी महाराज के आश्रम से ज्ञान प्राप्त कर सत्संग करके विदुर जी महाराज हस्तिनापुर लौटे। आकर के सबको अपनी यात्रा के प्रसंग सुनाए। युधिष्ठिर महाराज तो चाचाजी से यात्रा वृत्तांत श्रवण कर प्रसन्न हुए क्योंकि विदुर जी की यात्रा में श्री भगवान् की तीर्थों के दर्शन करते-करते प्रसन्न हुए, वहीं कथा सुन रहे हैं। युधिष्ठिर ने कहा, चाचाजी आप तो साक्षात् तीर्थ स्वरूप हैं, भागवत स्वरूप हैं। तो आपके तीर्थ दर्शन से तीर्थ भी पवित्र हो जाता है।

तोर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः स्थेन गदाभृता।

(श्रीमद्भागवतम् 1.13.10)

विदुर जी ने भगवान् के तीर्थों का सुन्दर वर्णन करते हुए युधिष्ठिर को प्रसन्न किया। तीर्थ यात्रा के सुखद अनुभव बताए, परन्तु एक बात नहीं बताई कि

भगवान् नन्दनन्दन श्याम सुन्दर अपने कुल का संहार कर गोलोक धाम में पधार चुके हैं।

'यथानुभूतं क्रमशो विना यदुकुलक्षयम्'

(श्रीमद्भागवतम् 1.13.12)

अपने मुख से ये खोटी बात क्यों कहें? विदुर जी युधिष्ठिर को भगवान् का परम भक्त जानकर कि वह इस संवाद से दुखी न हो जाए। इसे गुप्त रखा।

धृतराष्ट्र और गांधारी से भी विदुर मिले और अनेक प्रकार से उन्हें धिक्कारा, कि दादा भैया जिन्होंने तुम्हारे सौ पुत्र मारे आप उनकी दी हुई रोटी पर पल रहे हो। धिक्कार है तुम्हें। तुम्हारा यह समय निन्दनीय समय चल रहा है। भीम को विष के लड्डू खिलाए, पांडवों को लाक्षागृह में जलाना चाहा, आज उन्हीं पाँडवों की छत्रछाया में जी रहे हो। धिक्कार है तुम्हें।

दादा भैया गृहपालित पशु कुक्कुर के समान, भीम के दिए टुकड़े से तुम जी रहे हो।

भीमापवर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत्।

(श्रीमद्भागवतम् 1.13.22)

किसी व्यक्ति को शरीर से कष्ट दें तो व्यक्ति एक दिन भूल जाता हैं। परन्तु वाणी के बाण चुभ जाते हैं, लग जाते हैं। उसको कभी भी वाणी से कटु शब्द नहीं कहना चाहिए।

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करे, आपहुँ सीतल होय।।

वाणी के बाण चुभकर अन्दर तक घाव कर देते हैं। धृतराष्ट्र ओर गांधारी को विदुर के शब्द बाण लग गए, चुभ गए। रात्रि के समय राजमहल त्यागकर विदुर जी के साथ गांधारी, धृतराष्ट्र हरिद्वार में, सप्त सरोवर में पहुँच गए। प्रातःकाल में युधिष्ठिर का नियम था– दैनिक माता, ताऊ!, ताई को प्रणाम करने जाते थे। आज युधिष्ठिर गांध ारी और धृतराष्ट्र को प्रणाम करने गए तो उनका दर्शन नहीं मिला। युधिष्ठिर महाराज ने संजय से पूछा कि तुम्हारे मालिक कहाँ गए हैं? संजय भी उत्तर नहीं दे पाए। वे बड़े दुखी थे। युधिष्ठिर को पूर्व से अपशकुन दिखाई देता है, भगवान् के दर्शन के लिए जब मंदिर जाते हैं। तो मूर्ति भी रो रही है, ऐसा प्रतीत होता हैं। गौशाला में गौएं रो रही हैं।

अथ चर्तुदशोऽध्यायः

अपशकुन दर्शन, अर्जुन का द्वारका से लौटना

दिन में ही आकाश से तारे टूट-टूटकर गिर रहे हैं। यानि जब से भगवान् अपने कुल का संहार कर गौलोक पधारे, तो अधर्म के मित्र कलि का प्रभाव बढ़ गया। कलि की शक्ति बढ़ने लगी, अधर्म ही अधर्म होने लगा। प्रकृति ने भी नियम त्याग दिया। ग्रीष्म में गरमी नहीं पड़ती, वर्षा में वर्षा नहीं होती, शीत में शीत नहीं होती। अधर्म से पापी लोग जीविका चलाने लगे।

तो महाराज युधिष्ठिर कहने लगे भैया ऐसा समय हमने कभी नहीं देखा, ऐसा भयानक समय हैं। सात महीने से न तो अर्जुन लौटा हैं। न ही अपना दूत भेजा है न जाने ऐसा कौन-सा संकट आने वाला हैं। आपस में वार्तालाप हो रहा है भीम और युधिष्ठिर का।

गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः।

(श्रीमद्भागवतम् 1.14.7)

जो आपस में वार्तालाप कर रहे भीम और युधिष्ठिर, तो सामने से अर्जुन आ रहे हैं। मैले कपड़े हैं। वदन नीचे लटका है, आँखों में अश्रु, रो रहे हैं अर्जुन। युधिष्ठिर ने पूछा, अर्जुन! आप क्यों रो रहे हैं। क्या बात है? मलिन मुख, मैले कपड़े है? इतनी उदासी मैंने तुम्हारे जीवन में कभी नहीं देखी, क्या बात है, द्वारका में सब लोग ठीक हैं, वसुदेव, देवकी, चारू, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सभी यादववंशी ठीक हैं।

अर्जुन तुम चुप क्यों हो? बताओ। अरे अर्जुन तुम्हें क्या हो गया। हमने इतने प्रश्न किए तुम कुछ बता नहीं रहें। क्या किसी ब्राह्मण को वचन देकर दान न दे सके इस कारण से कष्ट है। या शरण में आने वालों की आप रक्षा न कर सके इसलिए कष्ट है।

कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम्।

(श्रीमद्भागवतम् 1.14.41)

क्या तुमसे कोई निन्दित कार्य हो गया, अर्जुन बताओ मेरे नन्दनन्दन श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण तो ठीक है न?

अथपंचदशोऽध्याय:

कृष्णविरह व्यथित पांडवों का परीक्षित को राज्य देकर स्वर्ग गमन

जब कृष्ण का नाम लिया तो अर्जुन से रहा नहीं गया। अर्जुन की आंखों से झर-झर आँसू बहने लगे। अर्जुन ने कहा कि 'वंचितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरुपिणा'।

वञ्चितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा।
येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत्।
(श्रीमद्भागवतम् 1.15.5)

अर्जुन ने कहा कि दादा भैया आज हमें उस हरि रूपी बंधु ने ठग लिया। आज श्रीकृष्ण हमें छोड़कर गोलोक धाम चले गए। कृष्ण के लिए अर्जुन रो रहे हैं। कृष्ण महिमा गान सुना रहे हैं। हम अपने आपको गाण्डीवधारी कहते थे। मैं अपने को महाशक्तिशाली कहता था, किंतु वह शक्ति श्रीकृष्ण की थी। आज वही श्रीकृष्ण हम सबको छोड़कर चले गए। दादा भैया याद करें आपकी बुद्धि भी एक दिन पापकार्य में लग गई थी। आप भी दुर्योधन के साथ चौपड़ खेलने लगे थे। उस दिन श्रीकृष्ण ने ही हमारी रक्षा की थी। द्यूत क्रीड़ा में श्रीकृष्ण ने ही हमारी लाज बचाई थी। श्रीकृष्ण का वस्त्रावतार नहीं होता तो द्रोपदी की क्या दशा होती। दादा भैया उस दिन को भी याद करो दुर्वासा से भी हमारी रक्षा श्रीकृष्ण ने ही की थी। दुर्योधन के चक्रांत से कृष्ण ने ही हमारी रक्षा की थी। जब कृष्ण मुझे पुकारा करते थे तो कहते थे पार्थ, हे अर्जुन, हे कुरुनन्दन, इस प्रकार पुकारते थे। अब किसके मुख से मैं यह शब्द सुनूँगा। आज अर्जुन कृष्ण वियोग में फूट-फूटकर रो रहे, जो कुन्ती ने अन्दर महलों में सुना कि हम सबको छोड़कर, श्रीकृष्ण अपने गोलोक धाम पधार चुके हैं। तो एकांत में जाकर बैठ गई। वह अत्यंत कृष्ण से प्रेम करती हैं। इतना वियोग में डूब गई कि कुन्ती ने कहा कि-

जासो मिलो सब सुख लिये दिने-दु:ख विसराई,
दिक् जो जाके बिछुड़ते फटे ना उेर कहे हाई।।

जिस कृष्ण से मिलकर हमने कितना सुख, आनन्द की प्राप्ति की थी, कितना हमारे जीवन में सुख था, परन्तु आज वह श्रीकृष्ण सब कुछ छोड़कर चले गए, तो क्या मेरे शरीर से प्राण नहीं निकलते।

एकान्तभक्त्या भगवत्यधोक्षजे निवेशितात्मोपरराम संसृतेः।

(श्रीमद्भागवतम् 1.15.33)

कुन्ती एकांत में बैठी और समाधि लगा ली, एक दम समाधि में पहुँच गई। श्रीकृष्ण का ध्यान करते–करते अंत में श्रीकृष्ण में ही विलीन हो गई। जब पांडवों ने देखा कि माँ का शरीर तो निस्तेज है, पांडवों ने माँ का अंतिम संस्कार किया और पंद्रह साल की अवस्था में ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर परीक्षित् को गद्दी में बैठाया, स्वयं महाप्रयाण लेकर चल दिये हिमालय की ओर। सूत जी कहते हैं। शौनकादि ऋषियों से कि इस प्रकार महाराज परीक्षित पंद्रह वर्ष की अवस्था में राजगद्दी पर बैठे और उत्तर की बेटी इरावती से महाराज परीक्षित का विवाह हुआ। जिनके चार पुत्र हुए। जनमेजय आदि, महाराज परीक्षित ने तीन बार अश्वमेध किया।

अथषोडशोऽध्यायः

परीक्षित का दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वी का संवाद

एक बार महाराज परीक्षित के मन में विचार आया कि मैं दिग्विजय करूँ। सभी राजाओं के ऊपर विजय प्राप्त करूं, ऐसा संकल्प लेकर सुन्दर रथ में विराजमान होकर महाराज निकले

"स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः।"

(श्रीमद्भागवतम् 1.16.11)

अपनी विशाल सेना के साथ दिग्विजय के लिए महाराज निकले। अनेक देशों पर विजय प्राप्त करते हुए अंत में जब सरस्वती नदी के तट पर पहुँचे, तो महाराज परीक्षित ने देखा कि एक गाय और बैल पुरुष भाषा में वार्तालाप कर रहे हैं। जिस बैल का एक चरण है और गाय की आंखों में अश्रु हैं। गाय से बैल पूछ रहे हैं। अरे धरणियों! ये तुम्हारी आँख में अश्रु क्यों हैं? क्यों रो रही हो?

"दूरे बन्धुं शोचसि कंचनाम्ब"

(श्रीमद्भागवतम् 1.16.19)

क्या तुमसे कोई बन्धु बान्धव दूर चला गया है, जिसके कारण तुम रो रही हो या लोग स्त्रियां, बालकों की रक्षा नहीं करते हैं। तब आपको कष्ट है या शासन व्यवस्था ठीक नहीं, जिसके कारण रो रही हो, या श्रीकृष्ण हम सबको छोड़कर अपने परमधाम को चले गए हैं। क्या कृष्ण वियोग है? या तो मेरी दशा को देखकर रो रही हैं कि मैं एक पैर पर खड़ा हूँ।

देखिए साक्षात पृथ्वी है गौ–माता और बैल ही है साक्षात् धर्म। धर्म के चार पैर हैं। सत्य, दया, तप और पवित्रता चार चरण हैं धर्म के, परन्तु कलियुग के प्रभाव से तीन पैर नष्ट हो चुके हैं। दया, तप और पवित्रता। केवल सत्य रूपी चरण पर धर्म खड़ा है।

आज पृथ्वी ने धर्म को कहा, श्रीमद्भागवत में पृथ्वी रूपी गौमाता ने धर्म को कहा कि–

"भवान् हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि।.
चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः।"

(श्रीमद्भागवत 1.16.25)

धर्म तुम जानते हो, तुमने मुझसे बिल्कुल ठीक पूछा है, कि मैं दुखी क्यों हूँ? धर्म तुम जानते हो फिर भी तुमने पूछा है तो मैं यह बात प्रकट करती हूँ, पृथ्वी रूपी गौमाता ने कहा कि–

"सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः सन्तोष आर्जवम्।
शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम्।"

(श्रीमद्भागवतम् 1.16.26)

देखो धर्म जिनके अंदर, सत्य, दया, शुचि, शान्ति, त्याग, सन्तोष, तप और शमता गुण विद्यमान रहते हैं, वे हैं साक्षात् श्रीकृष्ण। वे श्रीकृष्ण हम सबको छोड़कर अपने गोलोक धाम पधार चुके हैं। भगवान् की ये दो पत्नीयाँ हैं–श्री और भू।

प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण।

श्री माने लक्ष्मी जी और भू माने पृथ्वी तो आज पृथ्वी को श्रीकृष्ण वियोग हुआ। श्रीकृष्ण के लिए पृथ्वी रुदन कर रही हैं। विषाद अनुभव कर रही हैं। तो महाराज परीक्षित दोनों की बातें छुपकर सुन रहे हैं। महाराज परीक्षित ने उसी समय देखा कि एक काले–काले शरीर वाला सिर पर मुकुट हाथ में डंडा लेकर, देखने में राजा जैसा है, परन्तु राजा के दिव्य लक्षण से दूर हैं। ये गौमाता को लात से मारने लगे और डंडे से बैल को मारने लगे।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

कलि का दमन

तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत्

(श्रीमद्भागवतम् 1.17.1)

राजा परीक्षित ने देखा कि ये वेशधारी गाय और बैल को बड़े ही निर्ममता से मार रहे हैं। तो राजा परीक्षित ने कहा, अरे दुष्ट! तू मेरे राज्य में गाय को लात मारता है, डंडे से तूने बैल को मारा तू कौन है? उसने कहा महाराज मैं कलि हूँ। मेरा नाम है–कलि! अब तो मेरा समय आ गया है, महाराज ने कहा–कलि। मैं तुझे ही ढूंढ रहा हूँ। किसी ने कहा था मेरे राज्य में तूने प्रवेश किया है, आज तू मेरे सामने पड़ गया है, तू मेरे राज्य को छोड़कर चला जा। कलि ने कहा महाराज मैं कहाँ जाऊँ, जहाँ तक सूर्य चन्द्रमा का प्रकाश है वहाँ तक आपका राज्य है जहाँ भी मैं जाता हूँ, आप तीर धनुष लेकर खड़े दिखाई देते हैं। मैं कहाँ जाऊँ। महाराज ने विचार किया कि कलि के अंदर सब अवगुण भरे हैं। कलयुग में अवगुण ही अवगुण हैं। कलयुग अवगुण की खान हैं। कलि काल महापापों का काल है, परन्तु एक महान गुण है–भगवान् का नाम ही केवल लेना महान गुण है।

इस कलि में भगवान् का नाम छोड़कर अन्य कोई सरल उपाय नहीं कलिकाल के प्रभाव से बचने के लिए–

कर्लेदोषो निधि राजन अस्ति एको महान गुणैः।
कीर्तनाऽदेवो कृष्णस्य मुक्त संग परम ब्रजेत्।।
(श्रीमद्भागवतम्)

इस भयंकर कलयुग में जो भगवान् श्रीकृष्ण का नाम कीर्तन श्रद्धा और प्रेम से करते हैं, वे ब्रजधाम को प्राप्त होते हैं। यद्यपि कलयुग बहुत ही बुरा है, परन्तु हरि नाम कृष्ण नाम लेने से, अपराध शून्य होकर नाम लेने वाले ब्रज धाम को प्राप्त करते हैं।

सन्त कहते हैं- कलयुग बहुत बुरा नहीं है, कलिरूपी कमल खिल जाए किसी सन्त महात्मा की कृपा से और वह कलयुग की कमल कली खिलती है हरि नाम के कीर्तन से– "कलौ हरिकीर्तनाद, केशवकीर्तनाद।"

कृते यत् धायतो विष्णु त्रतायां यजते मुखै।
द्वापरे परिचिर्यायां कलौ तत् हरि कीर्तनाद्।।

चार युग में, श्रीमद्भागवत में परमात्मा भगवान् की प्राप्ति के लिए चार मार्ग बताए हैं, कृते माने सतयुग में, यत्धायते विष्णु–भगवान् विष्णु का ध्यान, सतयुग में कौन–सा मार्ग था ध्यान! यानि कि सत्ययुग में भगवान् का साक्षात दर्शन करने का ध्यान ही एकमात्र उपाय था और त्रेता युग में "यजते मखै" यज्ञ के द्वारा भगवत प्राप्ति करना होता है "द्वापर में परिचर्यायां" यानि भगवत्प्राप्ति सेवा के द्वारा और इस कलिकाल में भगवत्प्राप्ति के लिए केवल भगवान् का नाम, उठते–बैठते महामन्त्र का

जप करो, भगवान् का नाम स्मरण करो। गोस्वामी जी तुलसी दासजी कितना सुन्दर लिखते हैं।

कलयुग केवल एक नाम अधारा, सुमिरि–सुमिरि नर उतरे पारा।
भाव कुभाव अखल अलस हो, नाम जपत मंगल दिस दस हो।
सुनि पवनसुत पावन नामु, अपने बस करो राखो रामु।
मंगल भवन अमंगलहारी, द्रवहु सु दशरथ अजिर बिहारी।
राजा राम राम राम सीता राम राम राम
राजा राम राम राम

देखिए आपने बड़े उच्च स्वर में कीर्तन किया। कितने आनंद की बात है, कितनी प्रसन्नता की बात है, शास्त्र कहते हैं कि–

जपत हरि नामानि स्थाने शत्गुणदिक।
आत्मानंच पुण्यात् उच्चै जपन्श्रुत्वान् पुनातिच।।

हरिनाम के जप से परम् कल्याण होता है, जिस स्थान में हरि नाम उच्चारण होता है वह स्थान परम तीर्थ बन जाता हैं। आत्मा का कल्याण होता हैं। उच्च स्वर में कीर्तन से पावन से भी पावन हो जाता हैं। परम् पवित्र हो जाता है।

"कलौहरि कीर्तनाद" एक महान गुण इस कलि काल का हैं। भगवन्नाम का उच्चारण।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

देखिए नाम और नामी में कोई भेद नहीं, कोई अंतर नहीं। जहाँ नाम है वही साक्षात प्रभु विराजते हैं।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
यत्र गायन्ति मद्‌भक्तां तत्रं तिष्ठामि नारद।।

भगवान् कहते हैं, नारद न तो मैं केवल योगियों के हृदय में रहता हूँ, न ही मैं केवल वैकुण्ठ में रहता हूँ अपितु जहाँ मेरा भक्त आर्तभाव से पुकारता है, मेरा कीर्तन करते हैं, भगवान् कहते हैं–कि नारद मैं वहीं स्थित होता हूँ तो कलियुग अवगुणों की खान है पर एक महान गुण है, हरिनाम। विचार किया महाराज परीक्षित ने कि कलिकाल की भी स्थापना करनी चाहिए।

सन्त हंस गुण गयोपयो परिहरि बार विकार।
जड़ चेतन गुण दोषमय विश्वकीन करत करतार।।
"सन्त हंस गुण गयोपय परिहरि बाल विकार"

हर व्यक्ति के अंदर गुण अवगुण होते हैं, जैसे कभी हंस पक्षी को देखना जो नीर, क्षीर अलग करके नीर को त्याग देते हैं। फिर क्षीर को प्राप्त कर लेते हैं, इसी प्रकार किसी के अवगुण को न देखें। गुण हैं तो अवश्य देखें, हो सके तो गुण ग्रहण करें। इस कलिकाल में एक महान गुण है, प्रभु का नाम तो इस महान गुण को देखते हुए परीक्षित ने विचारा, कलि की भी स्थापना करनी चाहिए। तो देखो कलि के लिए चार स्थान दिए राजा परीक्षित ने

द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः।

(श्रीमद्भागवतम् 1.17.38)

ये चार स्थान प्रदान कर दिए कलि के लिए महाराज परीक्षित ने–

पहला स्थान : "द्यूतं"–देखो कलि जहाँ लोग जुआ खेलते हैं।, वह तुम्हारा स्थान है, घर है, वहाँ जाकर रहो। कलि ने कहा, महाराज बिल्कुल ठीक स्थान दिया।

दूसरा स्थान: दिया–"पानं"–बोले जहाँ लोग शराब, मदिरा पीते हैं। वही तुम्हारा घर है वहीं रहो। कलि ने कहा महाराज बड़ी कृपा है आपकी।

तीसरा स्थान : महाराज परीक्षित कलि को दे रहे हैं "स्त्रियाँ" जाओ कलि जहाँ पर वारवनिताएं, गणिकाएं रहती हैं तुम्हारा घर है और अब महाराज परीक्षित चौथा स्थान दे रहें हैं,

चौथा स्थान : कि कलि जहाँ पर "कसाई" खाना है, वधशाला है वहाँ जाकर रहो ,कलि ने कहा महाराज ये तो आपने बहुत अच्छा स्थान दे दिया।

लेकिन महाराज एक प्रार्थना हैं। राजा परीक्षित ने कहा बोलो, तो कलि ने कहा कि महाराज ये तो आपने अपनी तरफ से जो भी दिया ठीक हैं। परन्तु अपनी तरफ से भी माँग लूं। राजा परीक्षित ने कहा कि क्या माँगते हो?

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः।
ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.17.39)

बोले महाराज कृपा करके स्वर्ण में भी स्थान प्रदान कर दीजिए। तो महाराज परीक्षित ने कहा हमारा क्या बिगड़ता है स्वर्ण में भी स्थान दे देते हैं। राजा परीक्षित ने

स्वर्ण में भी स्थान प्राप्त करा दिया कलि को। अब तो उसकी शक्ति अधिक बढ़ गई यह उसका पाँचवां स्थान हो गया। 'रजो बैरं च पंचमम्' ये पाँच स्थान प्राप्त करके कलि की छाती चौड़ी हो गई। कलि की शक्ति बढ़ गई। परन्तु देखिए किस स्वर्ण में बैठा है ये कलि। प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण। जो इन चार (स्थान) से प्राप्त किया जाए 'द्यूतं, पानं, स्त्रियं, सूना' जो जुए से, लॉटरी से धन प्राप्त होता है या सट्टा से जो धन इकट्ठा किया हुआ उसमें कलि बैठा हैं। पान-मदिरा से जो धन इकट्ठा हुआ उसमें कलि बैठा है गणिका से जो धन इकट्ठा हुआ उसमें कलि बैठा है चौथा जो किसी की हत्या से धन प्राप्त हो उसमें कलि बैठा है, तो भईया अपना कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को इन चारों स्थानों को छोड़ देना चाहिए। कौन-सा? कौन सा?

"द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः।"

(श्रीमद्भागवतम् 1.17.38)

इस प्रकार महाराज परीक्षित ने ये सब स्थान कलि के लिए प्रदान किए। महाराज परीक्षित जब लौटे तो महाराज परीक्षित ने मानो धर्म के चार पैरों में जो तीन टूट गए थे। उन तीनों चरणों को जोड़ दिया। चार चरण से धर्म को प्रतिष्ठित कर दिया। चारों पैर को सत्य, तप, दया, पवित्रता से धर्म को प्रतिष्ठित कर दिया। धर्म चारों चरण में खड़े हो गए। परीक्षित महाराज ने राजा होते हुए भी चारों वस्तु को त्याग दिया। राजा परीक्षित विलासी राजा नहीं थे। एक धार्मिक न्याय परायण राजा थे।

अथाष्टादशोऽध्यायः

परीक्षित को श्रृंगी ऋषि का श्राप

श्री सूत जी महाराज नैमिषारण्य की विहंगम अरण्य में शौनकादि ऋषियों को कथा बढ़ाते हुए कहा कि-

एकदा धनुरुद्यम्य विचरन् मृगयां वने।
मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.18.24)

एक बार राजा परीक्षित की इच्छा हुई कि मैं अपने राजकोष को देखूँ, कि मेरे पास कितनी दौलत है, मेरे पूर्वज कितना छोड़कर गए हैं। कितना धन छोड़कर गए हैं। कितना धन है हमारे पास। परीक्षित अपने राजकोष को देखने गए। अनेक स्वर्ण, चांदी, हीरा, जवाहरात महाराज के खजाने में भरी पड़ी हैं। बड़ी दौलत है परीक्षित

के पास। एक बड़ा-सा संदूक परीक्षित के मंत्रियों ने खोला, तो देखा कि उसमें एक अत्यंत सुन्दर मुकुट रखा है। मंत्रियों ने कहा कि महाराज आप इस मुकुट को धारण कीजिए। ज्योंहि महाराज ने उस मुकुट को पहना तो मुकुट अपना प्रभाव दिखाने लगा यह जरासंध का मुकुट था। जरासंध के पुत्र सहदेव से जबरदस्ती भीमसेन ने छुड़ाया था। अनीति का धन था, अन्याय का धन था। अनीति से, अन्याय से धन प्राप्त कर सकता है कोई भी। बड़ी बात नहीं है। अनीति और अन्याय का धन व्यक्ति को सुख भी दे सकता हैं। बड़ी-बड़ी कोठी में, मोटर कार में व्यक्ति बैठ सकता हैं परन्तु अनीति से कमाए गए धन से व्यक्ति को सुख मिल सकता है शांति नहीं। अनीति और अन्याय से व्यक्ति बचे, इस अनीति और अन्याय से कमाए गए धन से व्यक्ति भ्रष्ट हो सकता है, आज जरासंध का मुकुट पहनते ही महाराज परीक्षित की विवेक बुद्धि नष्ट हो गयी।

"एकदा धनुरुद्यम्य विचरन् मृगयां वने।"

महाराज परीक्षित अपने मंत्रियों के साथ वन में शिकार खेलने चल दिए। सिर पर है जरासंध का मुकुट। एक सुन्दर मृग देखा राजा परीक्षित ने और आखेट करने की इच्छा हुई और पीछे-पीछे दौड़ाया रथ को। परन्तु मृग हाथ न लगा। थोड़ी ही देर में मंत्रियों का साथ टूट गया। ये उस मायामृग के अनुसंधान में वन में घूम रहे हैं। राजा परीक्षित भूखे-प्यासे परिश्रान्त क्लान्त हो गए। राजा परीक्षित को इतनी जोर से प्यास लगी कि पानी के अनुसंधान में एक सन्त शमीक ऋषि के आश्रम में पधारे जल प्राप्ति के लिए, चलो सन्त का आश्रम है कुछ भोजन जलपान मिल जाए तो अच्छा हो जाएगा। भूख-प्यास मिट जाएगी। तो राजा परीक्षित ने आश्रम में देखा कि सन्त समाधि में बैठा है।

एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः।
मृषासमाधिराहोस्वित्किं नु स्यात्क्षत्रबन्धुभिः।

(श्रीमद्भागवतम् 1.18.31)

राजा परीक्षित ने विचार किया कि देखो सन्त को! देश का राजा आया है आश्रम में और ये समाधि लगाए बैठा है। कितनी सुन्दर ढंग रचाकर बैठा है। मैं सन्त की, समाधि की परीक्षा करूँगा कि ये सच्ची समाधि है या रची हुई।

राजा को क्रोध आ गया। जब राजा परीक्षित कुटिया से बाहर निकले तो देखा कि मृत सर्प पड़ा हैं। राजा ने धनुष की नोक से वह सर्प उठाया और सन्त के गले में डाल दिया। सोचा कि यदि सन्त की समाधि झूठी होगी तो झट सर्प के भय से उठ जाएगा,

परन्तु सन्त की समाधि नहीं खुली। संत की समाधि सच्ची थी। सन्त शमीक भगवान् की चिन्तन साधना में लीन थे।

ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
सम: सर्वेषु भूतेषु मद्भक्ति लभते पराम्।
(श्रीमद् भगवद्गीता 18.54)

शमीक सन्त पहुँचे हुए सन्त थे, जिन्होंने भगवान् की भक्ति को पा लिया जिन्होंने परमभक्ति से मन को भगवान् के चरण में जोड़ दिया। राजा कब आए? उन्हें कुछ मालूम न चला। राजा-जल चाहिए जल चाहिए कहते हुए क्रोधित होते हुए मृत सर्प गले में डालकर सन्त का अपमान करके हस्तिनापुर चले आए।

इधर शमीक के पुत्र थे-श्रृंगी, जो कौंस की नदी के तट पर बालकों के साथ खेल रहे हैं। ऋषि बालकों ने आकर कहा अरे श्रृंगी! आपको कुछ खबर लगी है, बोले भैया क्या खबर। बोले आज तुम्हारे पिता का किसी राजा ने अपमान किया। तुम्हारे पिता के गले में मृत सर्प डालकर चले गए। ऋषि श्रृंगी को क्रोध आया। बालकों को देखकर कौंस नदी से जल गण्डूश में लिया और कहा कि 'पश्यत् मे बलम्' देखो मेरी शक्ति-इतना कहकर बालक श्रृंगी ने मानो वाणी रूपी वज्र को चला दिया।

"कौशिक्याप उपस्पृश्यवाग्वज्रं विससर्ज ह।"
(श्रीमद्भागवतम् 1.18.36)

उस तेजस्वी बालक ने जल का आचमन करके राजा को श्राप दिया। जिस राजा ने मर्यादा का उल्लंघन किया, एक सन्त का अपमान किया।

इति लङ्घितमर्यादं तक्षक: सप्तमेऽहनि।
(श्रीमद्भागवतम् 1.18.37)

इस राजा को सात दिन में तक्षक नाम का सर्प काटे, ऐसा श्राप महाराज परीक्षित को दे दिया। और आकर अपने पिता के पास रोना शुरू कर दिया। पिता ने अपनी समाधि से उठा, आँख खोली, गले में सर्प देखा तो उतारकर रख दिया। बोलो-बेटा, क्यों रो रहे हो? क्या बात है? पिताजी किसी राजा ने आपका अपमान किया हैं। मैंने उसे श्राप दिया कि तक्षक नाम का सर्प आज से ठीक सातवें दिन काटे। ऋषि शमीक ने पूछा, बेटा जिसे तुमने श्राप दिया क्या उसे देखा? श्रृंगी ने कहा नहीं, पिताजी! मैंने उसे नहीं देखा। शमीक ऋषि ने कहा बेटा जिसे देखा नहीं, बिना देखे श्राप दे दिया। ऋषि शमीक मन ही मन आशंकित हो गए। अनिष्ट की आशंका मन में भर आई।

'समेषु सर्वभूतेषु मद्भक्ति लभते परम्'

जिन्होंने भगवान् की भक्ति की उन्होंने सबके अंदर भगवान् के परमात्मा के स्वरूप को देखा। संत शमीक ध्यान में बैठकर योग बल में सब कुछ मालूम कर लिया। कौन राजा आया और क्या हुआ सब मालूम हो गया। योगबल से सन्त शमीक को मालूम चला कि महाराज परीक्षित हमारे आश्रम में आए हैं तो सन्त शमीक ने अपने पुत्र को बहुत डाँटा, बहुत फटकारा। बेटा, ये तुमने क्या कर दिया? ये तूने ठीक नहीं किया। तूने एक धर्म में स्थित नरपति को शाप दे दिया जो केवल धार्मिक राजा नहीं अपितु साक्षात् महाभागवत् राजर्षि को श्राप देकर अच्छा नहीं किया।

धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः।
साक्षान्महाभावतो राजर्षिर्हयमेधयाट्।
क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवास्मच्छापमर्हति।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.18.46)

सन्त शमीक ने इतना कहकर भगवान् नारायण से प्रार्थना की, अपने पुत्र की ओर से कि, हे नारायण! आप मेरे पुत्र को क्षमा कर दें, यह बालक है।

आज इसने धर्मात्मा राजा को श्राप दिया, अनेक प्रकार की प्रार्थना की और तुरंत अपने प्रिय शिष्य गौरमुख को बुलाया कहा, जाओ गौरमुख तुरंत राजा परीक्षित को खबर दे दो कि महाराज आपका अंत समय आ चुका हैं। आपकी आयु में केवल सात दिन का समय शेष है।

जब महाराज परीक्षित अपने राजमहल में लौटे, रात्रि में जब सिर से मुकुट उतारा तो बुद्धि ठिकाने पर आ गई। विवेक भ्रष्ट हो चुका था, क्योंकि अनीति और अधर्म से कमाया हुआ धन स्वरूप मुकुट सिर पर था। जिसमें कलि विराजमान हैं। यह अनीति, अन्याय और कलि का प्रभाव है, परन्तु राजा का यह नियम था कि रात्रि मे पलंग पर बैठकर विचार करता था कि आज मुझ से कोई पापकर्म तो नहीं हो गया और यदि कोई पापकर्म हो जाता था तो महाराज परीक्षित संकल्प करते थे कि मैं ऐसा कर्म पुनः नहीं करूँगा। परीक्षित ऐसे धार्मिक राजा थे, कि हर दिन के पाप-पुण्य स्वयं रात्रि में ही विचार करते थे। जब महाराज ने विचार किया तो याद आया कि मैंने एक सन्त का अपमान किया। संत के गले में मृत सर्प डाला। महाराज सोचने लगे मैं तो राजा हूँ, मुझे कौन सजा देगा? परन्तु नहीं-नहीं, आज यदि मैं इसके लिए प्रायश्चित नहीं करूँगा तो भविष्य में संसार के लोग सन्त का, वैष्णव का अपमान करेंगे। राजा ने विचार किया कि इसके लिए मुझे अवश्य प्रायश्चित करना है, मैं अवश्य प्रायश्चित करूँगा। इस प्रकार महाराज विचार करते-करते सो गए।

जब प्रातःकाल हुआ। भुवन भास्कर सूर्य देव का उदय हुआ, दैनिक कर्मों से सम्पूर्ण होकर सभा में गए राजा परीक्षित, तो शिष्य गौरमुख ने प्रवेश किया। महाराज ने सिंहासन से उठकर स्वागत किया और कहा–कौन हो? कहाँ से पधार रहे हो। गौरमुख ने कहा राजा मैं सन्त शमीक का शिष्य हूँ। आपने हमारे गुरुदेव का अपमान किया है तो आज से सात दिन बाद आपको तक्षक नाम का सर्प डसेगा। सुनकर महाराज विचलित नहीं हुए। मन ही मन विचारा कि मुझे श्राप नहीं वरदान मिला है। महाराज परीक्षित ने गौरमुख को प्रणाम किया।

मुझे प्रायश्चित करने का मौका मिला। एक साधु का मैंने अपमान किया। एक सन्त का, वैष्णव का मैंने अपमान किया। तो महाराज परीक्षित बीच सभा में खड़े होकर महलों में भी नहीं गए। परीक्षित बीच सभा में अपने पुत्रों को बुलाकर राज्यभार सौंप दिया। सारे अपने राजसी वस्त्र उतार दिए। यदि तन पर कोई वस्त्र है तो एक आधि वास, और एक अन्तरीय पहन कर महाराज गंगा जी के तट, शुक्रताल की ओर चल दिए। तट पर जाकर आसन पर बैठ गए। श्रीकृष्ण की सेवा में संलग्न हो गए महाराज परीक्षित। बड़े-बड़े सन्त गंगा जी के तट पर पहुँचने लगे। जिसने भी सुना महाराज ने अनशन किया है, अन्न-जल त्याग दिया। राजा की मृत्यु देखने के लिए बड़े-बड़े तपस्वी, मुनिजन पधार रहे हैं, जिनके दर्शन से तीर्थ पवित्र हो जाते हैं, जो स्वयं तीर्थ के समान पवित्र है।"तीर्थ पुनन्ति सन्तः"

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

परीक्षित का अनशन व्रत और शुकदेव जी का आगमन

अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वा–नरिष्टनेमिर्भृराङ्गिराश्च।
पराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इन्द्रप्रमेदध्मवाहौ।।
(श्रीमद्भागवतम् 1.19.9)

जब ये सारे सन्त गंगा के किनारे सुन्दर, कोमल बालू के आसन पर बैठ गए। सभी बड़े-बड़े सन्तों के चरणों में जाकर राजा परीक्षित ने प्रणाम किया। चरण धोकर चरणामृत पान किया, वन्दन किया।

"राजा शिरसा ववन्दे" और प्रार्थना किया कि आज मैं कुल समेत पवित्र हो गया हूँ, कितना बड़भागी हूँ। जिन सन्तों का दर्शन दुर्लभ है, आज मैं उनका दर्शन कर रहा

हूँ। मुझे वरदान मिल गया उन सन्तों का कि मैं आज गंगा तट पर आ गया हूँ। उन ऋषियों के बीच में हूँ–

"अहो वयं धन्यतमा नृपाणां महत्तमानुग्रहणीयशीलाः।
राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद् दूराद् विसृष्टं बत गर्ह्यकर्म।।"

(श्रीमद्भागवतम् 1.19.13)

राजा परीक्षित ने एक सुन्दर प्रश्न रखा चरणामृत लेकर के सन्तों के चरणों का। कहा कि महाराज बताइए जिसका अंतिम समय आ गया हो वह व्यक्ति क्या करे? सभी अपनी-अपनी बात रखने लगे। ब्राह्मणों ने कहा राजाआप दान करिए। ऋषियों ने कहा आप यज्ञ करिए, परन्तु महाराज परीक्षित को कोई बात समझ में नहीं आई। महाराज ने पूछा कि मैंने अनेक बार दान किया और अपने जीवन में तीन बार अश्वमेध यज्ञ किया। यदि मैं यज्ञ या दान करूँगा तो सामग्री जुटाने में बहुत समय चाहिए। इतना समय मेरे पास नहीं हैं। महाराज परीक्षित ने ऋषियों के बीच सभा में एक सिंहासन रख दिया और सभी सन्तों को ब्राह्मणों को प्रणाम करके कहा कि जो भी मेरे प्रश्न का उत्तर दे, वही सिंहासन पर बैठ जाए। वहाँ व्यास देव भी हैं।

सूत जी ने कहा शौनकादि ऋषियों मैं भी वहाँ बैठा था, परन्तु किसी की भी हिम्मत नहीं हो रही, उस सिंहासन पर बैठने की। श्रीसूत जी महाराज कहते हैं। शौनकादिक ऋषियों ठीक उसी समय एक चमत्कारी घटना घट गई।

तत्राभवद्भगवान् व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः।
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो वृतश्च बालैरवधूतवेषः।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.19.25)

मानो आज परीक्षित का भाग्योदय हो गया। ज्ञान के चन्द्रमा, व्यास के आत्मज, साक्षात् भगवद्स्वरूप मुनियों के मुनि, ज्ञानियों के ज्ञानी, सन्तों के सन्त, परम सन्त श्री शुकदेव जी महाराज राजा को कृपा करने के लिए गंगा जी के तट पर पधारे। बोलिए शुकदेव जी महाराज की जय! शुकदेव जी महाराज के पधारने से सभा समेत महाराज परीक्षित खड़े हो गए। सभी सन्तों ने, ब्राह्मणों ने शुकदेव जी का स्वागत किया।

गीतम्

हरिकथा सुनाने वाले, तुमको लाखों प्रणाम।
हम भूल रहे थे वन में, कल खो बैठे थे तन में।
ओ राह बताने वाले, तुमको लाखों प्रणाम।
हम पीरहे थे विष का प्याला, जा रहे थे यम के गाला।

ओ सुधा पिलाने वाले, तुमको लाखों प्रणाम।
हम पार तेरा क्या पावें, बस शीश झुकावें यही गावे।
हरि दरस कराने वाले, आत्मज्ञान कराने, वाले तुमको लाखों प्रणाम।।

सभी ब्राह्मणों और सन्तों ने शुकदेव जी के आगमन पर सुन्दर पूजन किया गीत गाया। राजा परीक्षित ने प्रणाम किया, शुकदेव जी महाराज को और शुकदेव जी महाराज सहज भाव से सिंहासन पर बैठ गए। शुकदेव जी महाराज के चरण धोकर चरणामृत पान किया महाराज परीक्षित ने। तृप्त होकर कहा कि भगवन् ये बताइए जो मृयमान पुरुष है, जो मृत्यु के सन्निकट है ऐसे पुरुष को क्या करना चाहिए। किसका वह ध्यान करें, किसका नाम करें, किसका स्मरण करें, महाराज कृपा करके बताइए। तो महाराज परीक्षित को श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने नहीं आया। मैं तो गाँव में भिक्षा माँगने गया था। भिक्षां देहि, भिक्षां देहि। मेरे इस अद्‌भुत वेश को जब स्त्रियों और बालकों ने देखा तो किसी ने मिट्‌टी, किसी ने धूल, किसी ने रेत उछाली। मैंने सोचा कहाँ बैठू? चलो, गंगा जी के तट पर बैठेंगे, एकान्त में आसन लगाएँगे। जब मैं गंगाजी के तट पर आया तो देखा कि यहाँ विशाल जन–समुदाय। बैठने की जगह नहीं थी, तो सहज भाव से आसन पर बैठ गया। राजन मैं तेरे प्रश्न का उत्तर देने नहीं आया।

राजा परीक्षित ने कहा महाराज अब तो आपको गद्‌दी की लाज रखनी ही पड़ेगी, तो परीक्षित के प्रश्नों को सुनकर शुकदेव जी महाराज, राजा परीक्षित के प्रश्न के बंधन में बंध गए। शुकदेव जी महाराज गृहस्थ के घर जब भिक्षा के लिए जाते तो कितनी देर खड़े रहते थे, एक गृहस्थ के द्वार पर, जितनी देर एक गाय से दूध निकलना हैं। भिक्षा मिली तो ले ली नहीं तो नारायण हरि।

वही शुकदेव जी महाराज आज राजा का प्रशन के उत्तर देने के लिए बंध गए।

इति प्रथम स्कन्धः समाप्तः

स्कंध-०२



द्वितीय स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

ध्यान विधि और भगवान् के विराट स्वरूप का वर्णन

श्रीशुक उवाच
वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप।
आत्मवित्सम्मतः पुंसां श्रोव्यादिषु य परः।
(श्रीमद्भागवतम् 2.1.1)

राजा परीक्षित, आपने बहुत सुन्दर प्रश्न किया। देखो परीक्षित आपने जो प्रश्न किया वह विद्वानों के बीच बड़ा ही प्रशंसनीय हैं। ऐसे प्रश्न का सम्मान विद्वान लोग करते हैं। परीक्षित आपने पूछा कि मृयमान् पुरुष के लिए क्या करना चाहिए? देखो परीक्षित जीवन में कार्य बहुत है, परन्तु समय बहुत कम है, सफर बड़ा लम्बा है। परन्तु समय कम और सफर लम्बा देखकर घबराना नहीं,विचलित नहीं होना। धीर और स्थिर से मन को स्थिर करके उठकर कृष्ण की ओर, गोविन्द की ओर चलो। मानो शुकदेव जी महाराज का भाव है, कि बहुत समय मोह निशा में सोए हो अब उठो, जागो।

गीतम्

उठ जाग मुसाफिर भोर भई
अब रैन कहाँ जो सोवत है
जो सोवत है वो खोवत है
जो जागत है सो पावत है।
तू नींद से अंखिया खोल जरा, और अपने प्रभु से ध्यान लगा।
यहाँ प्रीत करन की रीत नहीं, प्रभु जागत है तुम सोवत है।
जो कल करना सोआज कर ले, जो आज करना सो अब कर ले।
जब चिड़िया ने चुग खेत लिया, ये पछताए क्या होवत है।
नादान भुगत अपनी करनी, ये पापी पाप मैं चैन कहाँ।
जब पाप की गठरी सीस धरी, अब सीस पकड़ क्यों रोवत है।
उठ जाग मुसाफिर भोर भई.."

तो कृष्ण की ओर हमें कैसे बढ़ना है, उस परमात्मा की कृपा का दर्शन कब होगा। आप सभी ने अभी-अभी भागवत में श्रवण किया कि कलिकाल में उसका नाम संकीर्तन परम विशेष हैं। देखिए भागवत के प्रारंभ में अंत में नाम की महिमा है।

"नाम संकीर्तनंयस्य-सर्वपाप विनाशनम्"

जब हम नाम कीर्तन करते हैं। तो पाप से बचते हैं। यही कलिकाल में कीर्तन की बहुत महिमा हैं। प्रभु का नाम जप करने से व्यक्ति पाप से बचता है इसलिए हमें उठते-बैठते जप करना चाहिए। कैसे नाम-जप करते हैं।

संकीर्तनम्

जय गोविन्दा, गोपाला मुरली मनोहर नन्दलाला।
जय गोविन्दा गोपाला मुरली मनोहर नन्दलाला।।

तो भैया शुकदेव जी महाराज कह रहे हैं। कि-

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा।
(श्रीमद्भागवतम् 2.1.3)

परीक्षित इस संसार में सुनने की अनेक चर्चाएँ हैं। परन्तु संसार की बातों को सुनकर व्यक्ति का विशेष कल्याण नहीं होता। सारा संसार, सारा जीवन सांसारिक चर्चाओं को सुनते-सुनते निकाल देता। व्यापार में, नौकरी में, परिवार में परन्तु जीव का परम् कल्याण कब होता है जब हम इन कानों से भागवत चर्चा को श्रवण करें।

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा।
(श्रीमद्भागवतम् 2.1.3)

देखो राजन! रात्रि को जीव सोकर व्यतीत कर देता है या तो स्त्री प्रसंग में व्यतीत कर देते हैं। दिन हमारा व्यापार, नौकरी,धन कमाने में निकल जाता हैं। फिर कोई तीसरा समय हमारे पास है प्रभु के लिए, नहीं। रात्रि तो सो कर गुजार दी, दिन कमाने में निकल गया। कौन-सा समय हम प्रभु को दें? कोई समय हमारे पास नहीं रहा इसलिए जीवन में सभी सांसारिक कर्मों को निबटाते हुए प्रभु के लिए, ठाकुर के लिए थोड़ा समय निकालना चाहिए। परीक्षित संसार में यह देखने को मिलता है-

"तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति।"

(श्रीमद्भागवतम् 2.1.4)

यह देख रहा है जीव कि संसार से सब खिसकता हुआ जा रहा है, सब चला जा रहा है पत्नी भी चली गई, पुत्र भी चला गया। पति भी चला गया, रिश्तेदार भी चले गए, परन्तु अपने को समझ लिया कि मेरी कभी मृत्यु नहीं होगी। यह शमशान संसार का कितना बड़ा आश्चर्य है कि "पश्यन्नपि न पश्यति।" दूसरे की मृत्यु को देखकर भी कभी अपनी मृत्यु को विचार नहीं करता। जितनी देर शमशान की भूमि पर खड़े रहते हैं। वह है वैराग भूमि, चिता को जलते देखा तो वैराग्य हो गया, जिसे कहते है शमशान वैराग्य। घर लौटे तो सारी बात भूल गए। परीक्षित उसी जन्म मृत्यु से छूटने का यदि कोई उपाय है, जो तुमने प्रश्न किया कि मृयमान व्यक्ति को क्या करना चाहिए। तो शुकदेव जी महाराज कहते हैं। कि राजन्–

"तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवानीश्वरो हरिः।"

(श्रीमद्भागवतम् 2.1.5)

जो सर्वात्म भगवान् है, सबकी आत्मा जो श्रीकृष्ण हैं, उन श्रीकृष्ण का ही ध्यान, जप, स्मरण जीव करे तो परम् कल्याण हैं। उन परमात्मा श्रीकृष्ण की प्राप्ति के तीन मार्ग हैं–ज्ञान, भक्ति और सत्कर्म। किसी मार्ग से चलो। ज्ञानी ज्ञान मार्ग से जा रहा है, भक्त भक्ति मार्ग से जा रहा हैं। सत्कर्मी सत्कर्म करते हुए कृष्ण की ओर जा रहा है। मार्ग भले ही अलग है लक्ष्य एक है। भगवत प्राप्ति का, कृष्ण प्राप्ति का। हे महाराज परीक्षित जो भागवत मैं आपको पढ़ाने जा रहा हूँ वह मैंने अपने पिता से पढ़ी।

यह कोई मेरी आत्मकथा नहीं, यह भागवत तो कृष्ण कथा है, साक्षात् ये भागवत वेद समान है जिसमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की स्थापना की गई हैं। परीक्षित तुम यह मत विचार करना कि सात दिन में भागवत् पूर्ण हो जाएगी और मेरी मुक्ति हो जाएगी। मुक्ति तो इस जीव की दो घड़ी में ही हो जाती हैं। मैं तुमको बता देता हूँ–

खट्वाङ्गो नाम राजर्षिर्ज्ञात्वेयत्तामिहायुषः।
मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम्।

(श्रीमद्भागवतम् 2.1.13)

परीक्षित ये अयोध्या के राजा जिनका नाम था खट्वांग। ये भगवान् राम के पूर्वज थे। एक बार देवता और दैत्यों में युद्ध हुआ? देवता पर दैत्यों ने विजय प्राप्त कर ली। सब देवता मिलकर ब्रह्मा जी के पास गए और कहा, हे ब्राह्मण हमें स्वर्ग दिलवाएँ। बह्मा जी ने कहा–देखो, देवताओं अयोध्या के राजा इस समय खटवाङ्ग हैं। ये महाराज

राम के पूर्वज हैं। आप सब देवता उनके पास जाइए। उनके पास तुम्हारे स्वर्ग को दिलाने की शक्ति हैं। वह तुम्हें निश्चित स्वर्ग दिलाएंगे। सभी देवता अयोध्या में गए और प्रार्थना की। महाराज खट्वांङ्ग ने देवताओं के प्रस्ताव को स्वीकार करके दैत्यों से युद्ध किया। सभी दैत्यों को मारकर स्वर्ग से भगा दिया। अन्त में जब स्वर्ग का शासन देकर चलने लगे तो इन्द्र ने दोनों हाथ जोड़कर महाराज से कहा कि हे महाराज खट्वांङ्ग आपकी कृपा से हमें स्वर्ग मिला हैं। हम आपको कुछ देना चाहते हैं। आप हमसे उपहार लीजिए। महाराज ने कहा, हे! इन्द्र जिसने स्वर्ग जीत लिया वह क्या इच्छा रखेगा। मेरी कोई इच्छा नहीं।

परन्तु इन्द्र ने कहा, महाराज कुछ तो आप माँगिए। महाराज खट्वांग ने कहा, तुम हो देवता, तुम सब कुछ जानते हो–भूत, वर्तमान, भविष्य सभी कालों को जानते हो। देखो–इन्द्र यह बताओ कि मेरी आयु में और कितना समय बाकी है। इन्द्र ने तुरंत बताया कि महाराज आपकी आयु में केवल चार घड़ी समय बचा।

देखिए जिस राजा ने स्वर्ग को जीत लिया उसकी आयु में केवल चार घटी का समय बचा हैं। एक घटी के अंदर तो विमान से अयोध्या पहुँच गए और दूसरी घटी में अपने पुत्रों को बुलाकर राजपाट सौंप दिया और शरयू के तट पर जाकर बैठ गए। केवल दो घटी बचा। दो घटी में ही महाराज खट्वांग ने प्रभु का स्मरण किया और दो घटी में ही भगवद् धाम को प्राप्त कर लिया। परीक्षित तुम्हारी तो अभी सात दिन की आयु हैं। प्रेम से भागवत को सुनो। यह मत विचार करो कि सात दिन में भागवत भी पूर्ण हो जाएगी और मेरी मुक्ति भी हो जाएगी। मुक्ति, तो केवल दो घटी में ही हो जाती है।

राजन् आपने जो प्रश्न किया है कि मृयमान पुरुष के लिए क्या करना चाहिए? मृयमान व्यक्ति को सबसे पहले जब मृत्यु व्यक्ति के सन्निकट आ जाए, ऐसा आभास व्यक्ति को होने लगे तो किसी पुण्यतीर्थ में जाना चाहिए और वहाँ जाकर जैसे श्रीवृन्दावन धाम, जगन्नाथपुरी धाम, हरिद्वार, काशी, बद्रीविशाल, द्वारका आदि में वास करना चाहिए। ये सब पवित्र स्थान भक्तों की रसिकों की भूमि हैं। ऐसी पवित्र भूमि में तीर्थों में हमें निवास करना चाहिए। पवित्र नदी में, हमें स्नान करना चाहिए जैसे वृन्दावन में, है, यमुना जी और हरिद्वार में है गंगा जी। इस प्रकार इन नदियों में स्नान करें और स्नान करके "त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्" इस मन्त्र का ध्यान करें, अथवा भगवान् नाम का उच्चारण करें। शुकदेव जी कहते हैं कि ॐ जो अक्षर है ये साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है ओउ्म से ही सब कुछ निकला हैं। ॐ से ही

वेद, मनुष्य की भाषाएं, ये सब ॐ से ही निकला है और ॐ में ही लीन हो जाना है।

देखिए कभी शहर के कोलाहल से यदि कोई व्यक्ति दूर से शहर के कोलाहल को सुने तो उसमें ॐ, ॐ, ॐ ही सुनाई देगा। "त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्" ये तीनों अक्षर ब्रह्म स्वरूप हैं–तो ओंकार का जप करें और अपने मन को स्थिर करने के लिए परीक्षित सबसे पहले भगवान् के विराट स्वरूप का ध्यान करे। राजा ने प्रश्न किया किस प्रकार मैं विराट के स्वरूप का ध्यान करूँ। शुकदेव जी महाराज ने कहा कि–

जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः।
स्थूले भगवतो रूपे मनः सन्धारयेद्धिया।

(श्रीमद्भागवतम् 2.1.23)

परीक्षित सबसे पहले 'जितासन' आसन को जीतो यानि अपने आसन को स्थिर कर लो। भगवत प्राप्ति के लिए भगवत भक्ति के लिए, भगवत साधना के लिए भी आसन को स्थिर करना आवश्यक है, जब तक आसन स्थिर नहीं होगा जैसे कलश में जब जल कम होता है तो वह छलकता है उसी प्रकार यदि आसन अधूरा है, ठीक न हो तो मन भी स्थिर नहीं होता।

मन की स्थिरता के लिए सबसे पहले 'जितासनो' आसन को जीतो, स्थिर कर लो। बोले महाराज तीन घंटे बैठा नहीं जाता, बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय। कभी दाएं तो कभी बाएं आसन बदलना पड़ता हैं। कभी दीर्घशंका तो कभी लघुशंका जाना पड़ता हैं। आप श्रोतागण तो फायदे में हैं। कथा श्रवण कर रहे हो तीन घंटे बैठा नहीं जाता। कभी बायीं ओर को कभी दायीं तरफ आसन बदल लेते हो। कथा के बीच में कभी मोबाइल भी सुन लेते हो शेयर मार्किट, बिजनेस भी हो जाता हैं। हर दृष्टि से आप श्रोतागण तो फायदे में हैं। परन्तु कथा व्यास के लिए जो एक क्षण के लिए भी हिल नहीं सकता। व्यास गद्दी छोड़ नहीं सकता। निश्चित समय तक बैठना ही पड़ता हैं। आप तो फायदे में हो। वक्ता को श्रोता के ऊपर कृपा दृष्टि डालनी पड़ती हैं। कृपा दृष्टि ठाकुर के माध्यम से मिलती हैं। एकदम टकटकी से कृपादृष्टि और दृष्टिपात करना पड़ता हैं। दृष्टि इधर-उधर होते ही कथा रस और छन्द नष्ट हो जाते हैं। कथा व्यास को तो एक दम भगवत कृपा से ही कथा करना पड़ता है, बैठे ही रहना पड़ता है, परन्तु श्रोता के लिए सब नियम लागू नहीं हैं, वह मुक्त है- कथा श्रवण करते ही हृदय की मलिनता दूर हो जाती हैं। तो 'जितासन' आसन को जीतकर ही भक्ति में लगना पड़ता है और 'जितश्वास' के द्वारा पूरक कुम्भक रेचक के द्वारा

अपने श्वास को भी स्थिर करें। 'जितासंग' अपने संग को भी जीते। यह भी देखा गया कि 'जितासन, जितश्वास' का अभ्यास कर लिया जितासंग से दूर नहीं हो पाए।

साधु सन्त कई बार दुनियावि लोगों के संवाद ग्रहण करने के लिए त्ंकपवए छमू च्ंचमत आदि श्रवण करते हैं, साधन मार्ग में जो साधु सन्त उत्तम श्रेणी का है उनको तो इन चीजों से मुक्त होना चाहिए। किसी व्यक्ति को किसी भी वस्तु का संग नहीं करना चाहिए। केवल 'त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्' ओम्, ओम्, ओम का उच्चारण तथा ध्यान करना चाहिए। देखिए संग को व्यक्ति कैसे जीत सकता है, अब तक तुमने किया है संग, परन्तु सत्संग से व्यक्ति संग को जीत सकता हैं। सत् का आश्रम लो अच्छे संग का सेवन करो।

सत्संग अनेक प्रकार है पहला सन्तसंग है, किसी सन्त का, रसिक भक्त का दर्शन संग। "प्रथम भक्ति सन्तन कर संग" किसी वैष्णव का दर्शन भी सत्संग हैं। दूसरा सत्संग है सन्तों की वाणी को सुनना और तीसरा यदि सन्त का दर्शन या वाणी सुनने को न मिले तो सत्साहित्य पढ़ना भी सत्संग हैं। अच्छे व्यक्ति का संग करना भी सत्संग हैं। अनेक प्रकार है सत्संग, अनेक मार्ग हैं। सत्संग के, तो

"जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः।"

अपने संग को जीतो और इन्द्रियों को भी वश में कर ये जितने भी दृश्य हैं,परीक्षित ये भगवान् के विराट रूप हैं, इसलिए अपने मन को स्थिर करने के लिए भगवान् के विराट का ध्यान करे। भगवान् के विराट स्वरूप का अनुभव करना हो तो किसी बड़े पहाड़ के नजदीक जाकर दर्शन करे या प्रशान्त महासागर को देखे। भगवान् कितने विशाल हैं? आपको समझ में आएंगे।

पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्
महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे।।
(श्रीमद्भागवतम् 2.1.26)

सात लोक ऊपर सात लोक नीचे

परीक्षित, ये सात लोक नीचे और सात लोक ऊपर बताए गए हैं। देखिए सात लोक नीचे कौन-कौन से हैं, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल। और सात लोक हैं उपर। भू, भुर्व, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य ये सात लोक ऊपर हैं, ये चौदह जो भुवन हैं, इसे चौदह भुवन कहते हैं। ये चौदह लोक भगवान् के अंग हैं। ये भगवान् के अंग बताए हैं। भगवान् के विराट रूप

हैं। मन को स्थिर करने के लिए भगवान् के विराट रूप का ही ध्यान करना चाहिए।

संसार में जितना अग्नि हम देख रहे हैं। ये भगवान् का विराट स्वरूप में मुख हैं। जितना भी संसार में पवित्र नदी बह रही हैं। ये विराट स्वरूप में भगवान् की नाड़ियाँ हैं। जैसे गंगा, यमुना, सरस्वती आदि। वृक्ष भगवान् के अवयव, अंग हैं। सूर्य चन्द्र भगवान् के नेत्र हैं। वायु भगवान् विराट के श्वास-प्रश्वास हैं। उन्हीं विराट भगवान् गले में वैजयन्ती माला पंचतत्व है, तो भगवान् का जो विराट स्वरूप है, उससे मनस्थिर होता हैं। भगवान् का स्वरूप।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवान् के स्थूल और सूक्ष्म रूपों की धारणा तथा क्रममुक्ति और सद्योमुक्ति का वर्णन

'प्रसन्नवक्त्रं नलिनांयतेक्षणं' जिन भगवान् का प्रसन्न मुखारविंद है-सुन्दर, जिन भगवान् के माथे पर मुकुट है, गले में वैजयन्ती माला है, कान में कुंडल, बाँह में बाजूबंद, कमर में करधनी, पांव में नुपूर, हाथ में शंख, चक्र, गदा, पदम्, परिधान में पीताम्बर यह सूक्ष्म रूप है (भगवान् का अव्यक्त) भगवान् का। परीक्षित ये दो प्रकार के भगवान् के स्वरूप बताए हैं। इसी प्रकार मुक्ति की चर्चा करते हैं-क्रममुक्ति तथा सद्योमुक्ति, ये दो प्रकार से योगियों को मुक्ति मिलती है, प्रेम से कहो- जय श्रीकृष्ण!

सद्योमुक्ति के बारे में श्री शुकदेव जी महाराज परीक्षित को समझा रहे हैं। कि इसमें जैसे ही जीव मुक्त होता है अपने एडी से गुदा को दबाकर योगी प्राण और इंद्रियों को खींचता हैं और ये छह चक्र हैं। हमारे अंदर जिसे कहते हैं। 'षड्चक्र' छह चक्र क्रमशः नाभि से मस्तक तक होते हैं। इनका भेदन करते हुए अन्त में योगी प्राण ाों को आग्नेय चक्र में ले जाते हैं। फिर आग्नेय चक्र से ब्रह्मरन्ध का भेदन करते हुए परमात्मा में लीन हो जाते हैं। जिसे कहते हैं। 'सद्योमुक्ति'।

और दूसरा है 'क्रममुक्ति' यह क्रिया एड़ी से गुदा के मूल भाग को दबाकर प्राण और इंद्रियों को खींचता है योगी। सर्वप्रथम भू, भुव, स्वः, मह, जनः, तप और सत् जो सात लोक हैं। इनकी यात्रा करते हुए योगी ब्रह्मलोक में जाता है, जिसे सत्यलोक कहते हैं। ब्रह्मा जी के समान सुख भोगता है ब्रह्मलोक में। अंत में ब्रह्माजी के साथ

मुक्त होता हैं। जहाँ से इस योगी की तीन गतियां प्राप्त होती हैं। ये दो प्रकार की मुक्ति बताकर राजा के प्रश्न करने पर शुकदेव जी ने देवी–देवता के उपासना का दस श्लोक में वर्णन कर दिया।

देखिए भागवत का जो ये द्वितीय स्कन्ध है यह बड़ा ही ज्ञान प्रधान प्रसंग हैं। ज्ञान का अथाह सागर हैं। देवी, देवता के उपासना के बारे में श्री शुकदेव जी महाराज बता रहे हैं। देखो परीक्षित हर जीव के अंदर संसार की कामना होती है, केवल मनुष्य ही नहीं हर प्रकार जीव में ही कामना होती हैं। कुछ न कुछ वस्तु को पाने की इच्छा व्यक्ति की होती है, तो शुकदेव जी महाराज ने दस श्लोक में बता दिया। इस कामना, वासनाओं का विषय–

अथ तृतीयोऽध्यायः

'कामनाओं के अनुसार विभिन्न देवताओं की उपासना तथा भगवद् भक्ति के प्राधान्य का निरूपण'

'विद्याकामसतु गिरिशं दाम्पत्यार्थ उमां सतीम्'

(श्रीमद्भागवतम् 2.3.7)

यदि गृहस्थ आश्रम में व्यक्ति है और पति पत्नी में प्रेम बना रहे, सुख समृद्धि बनी रहे तो शिव पार्वती का पूजन करना चाहिए। यदि वह ऐसा चाहता है। जो व्यक्ति चाहे कि मुझे सन्तति की प्राप्ति हो जाए सन्तान इच्छा हो तो इन्द्रादि देवता का पूजन करे। जो व्यक्ति चाहे कि बहुत से लोग कहा करते हैं। महाराज हम तो बड़ा अच्छा कार्य करते हैं। जीवों के कल्याण के लिए व्यक्ति के कल्याण के लिए परन्तु जितना अच्छा कार्य हम करते हैं उतनी ही बुराई मिलती हैं। प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। भगवन हमारे भाग्य में प्रतिष्ठा, सम्मान नहीं हैं। ऐसा लोग हमसे कहते हैं। भैया ऐसे व्यक्ति को शुकदेव जी महाराज कहते हैं देवा भूमि नाम के देवता की पूजन करना चाहिए। तो आपको सम्मान और प्रतिष्ठा मिल जाएगी। जो व्यक्ति चाहे कि हम विद्यावान हों, ऐसे व्यक्ति को अकेले भगवान् शिव की ही आराधना करनी चाहिए। नौ श्लोकों तक तो शुकदेव जी महाराज ने ये चर्चा कर दी, परन्तु दसवें श्लोक में शुकदेव जी महाराज कहते हैं। परीक्षित को–

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्।

(श्रीमद्भागवतम् 2.3.10)

राजन कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं। जिनके अंदर सांसारिक वस्तु को पाने की इच्छा भी होती है, ऐसे व्यक्ति को क्या करना चाहिए, तीव्र भक्ति के द्वारा हरि की ही आराधना, उपासना करनी चाहिए। आज करूंगा, कल करूंगा, अभी जवान हूँ भगवान् को किसने देखा, ऐसा न सोचकर भक्ति में जुट जाना चाहिए। सब बुरी आदतों को छोड़कर भगवान् की शरण में आते हैं। तो 'ददामि बुद्धियोगं' भगवान् बुद्धि भक्ति दोनों प्रदान करते हैं। भगवान् ये भी कहते हैं कि जो जिस प्रकार मुझे भजते हैं। मैं वही भक्ति उसे देता हूँ "ये यथा माम् भजन्ते ताम् तथैव भजामहं"

परीक्षित जैसे प्रतिदिन सूरज, सूर्य नारायण उदय होते हैं।, शाम को अस्ताचल में जाकर अस्त हो जाते हैं। यह दैनिक क्रम चल रहा है, उसी प्रकार हर क्षण जीव की मृत्यु भी हो रही हैं। "सुबह होती है शाम होती है यूं ही जिंदगी तमाम होती है।" हर क्षण ये जीव मृत्यु के मुख में जा रहा हैं। परीक्षित जो आप सुबह थे वह आप मध्याह्न में नहीं हो। जो मध्याह्न में हो वह आप संधिकाल में नहीं हो, जो संधिकाल में हो वह रात्रिकाल में नहीं होगे। हर क्षण जीव की मृत्यु हो रही हैं। हर क्षण जीव मृत्यु के मुख में जा रहा है। "जातस्य ध्रुव मृत्युः" जन्मा व्यक्ति अवश्य ही मरेगा। परीक्षित क्या उस लुहार की धौंकनी सांस नहीं लेती? क्या ग्राम्य पशु भोजन नहीं करता? ये पशु के अंदर भी आहार, निद्रा, भय, मैथुन है, परन्तु उसके अंदर विचार शक्ति नहीं होती। परीक्षित इस मानव को ही भगवान् ने विचार शक्ति दी हैं। प्रभु ने बुद्धि देकर बड़ी कृपा की है। जो मानव देह प्राप्त करके सत्कार्य नहीं करता, जीवन का सदुपयोग नहीं करता, भगवान् की भक्ति नहीं करता, जो दूसरों का कल्याण नहीं चाहता वह मनुष्य तो पशु से भी गया गुजरा हैं। हे परीक्षित–

"श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः।"

(श्रीमद्भागवतम् 2.3.19)

जैसे एक बार शुकदेव जी महाराज बड़ा सुन्दर दृष्टांत दे रहे हैं। एक बार पशुओं की पंचायत हो रही है "प्रेम से कहो हरे कृष्ण" अब इस पंचायत में पाँच पशु चुन लिए पंच। क्योंकि फैसला तो देना है ना पाँच पशु बनाए पंच–यह प्रस्ताव रखा गया कि सबसे निकृष्ट पशु कौन है? निकृष्ट माने नीच पशु। तो सबसे पहले नम्बर आया श्वान का–श्वान माने कुत्ता। कुत्ते से सभी जीव-जन्तु पशु, पक्षी, कहा कि अरे श्वान तू निकृष्ट है, श्वान ने कहा भैया मैं निकृष्ट नहीं हो सकता, अरे जिस स्वामी की दी हुई मैं रोटी खाता हूँ उसकी पहरेदारी करता हूँ, चौकीदारी करता हूँ। मैं कैसे निकृष्ट हो सकता हूँ। मैं तो मनुष्यों का नजदीकी सान्निध्य प्राप्त

करता हूँ। हम निकृष्ट कैसे हैं, सभी ने कहा यह ठीक हैं। यह निकृष्ट नहीं हो सकता।

फिर नम्बर आया वराह का। वराह कहते हैं। शूकर को। सबने कहा अरे शूकर तू निकृष्ट हैं। शूकर ने कहा अरे भैया मैं निकृष्ट नहीं हो सकता, अपने वाक्‌चातुर्य से शूकर ने भी अपने ऊपर से नम्बर हटा दिया, कहा कि जबसे मेरे कुल में भगवान् का अवतार हुआ है हमारे कुल का महिमा बढ़ गई हैं, बोलो वराहदेव भगवान् की जय। तब से तो मेरा कुल ही पवित्र हो गया। बात तो ठीक है अरे जिस कुल में, परिवार में भगवान् का जन्म हो जाता है वह तो पवित्र हो जाता हैं। वराह से भी नम्बर हट गया। बोले फिर नम्बर आया ऊँट का–देखिए ऊँट से भी सभी जीव जन्तु पशु पक्षी ने कहा–अरे ऊँट तू निकृष्ट हैं। ऊँट ने कहा कि मैं निकृष्ट नहीं हो सकता हूँ जिस स्वामी ने मुझे बनाया मेरी गरदन भी ऊँची कर दी है बोले क्यों रे ऊँट तू निकृट कैसे नहीं है? मैं तो स्वाभिमान से जीता हूँ, हमेशा मेरी गर्दन ऊँची रहती हैं। मैं निकृष्ट नहीं हूँ। बात बिल्कुल ठीक है।

फिर नम्बर आया खर का। खर से भी जीव जन्तु, पशु–पक्षी ने कहा कि अरे खर तू निकृष्ट हैं। खर ने कहा कि भैया जैसे आपने कहा मान लिया। देखिए खर किसे कहते हैं। मालूम है संस्कृत में खर (गधा) कहते हैं गधे को। प्रेम से बोले हरे कृष्ण। अब गधे के अंदर बुद्धि ऐसे नहीं होती। कोई व्यक्ति यदि मूर्ख होता है तो हम कहते हैं। तू गधा है, इतनी बार समझाया तुझे समझ न आया। गधे ने मान लिया। पंचायत समाप्त हो गई। पंचायत ने फैसला दिया कि गधा ही निकृष्ट हैं। सब पंच जाने लगे, सारे पशु–पक्षी जीव–जन्तु जब अपने गन्तव्य स्थान से जाने लगे तो गधे ने देखा कि सामने से एक व्यक्ति आ रहा है जिसने अपने कंधे पर दो बच्चों को बैठा रखा है और दो गोद में हैं और एक पीछे कुरता पकड़कर आ रहा हैं। तो गधे ने आवाज लगाई कि अरे पंचो–सुनो! बोले भैया क्या बात है, मुझे तुमने गधा योनि में नीच कहा या जीव मात्र में नीच कहा, बोले–अरे गधे तू जीव मात्र में नीच है, निकृष्ट है। गधे ने कहा मैं जीव मात्र में निकृष्ट नहीं हो सकता। भैया मैंने कभी न कभी तो भगवान् की भक्ति की होगी। पंचों ने कहा गधे तूने किस मंदिर में घंटा बजाया, भगवान् की आरती उतारी, जरा बताओ तो। गधे ने कहा भैया मैंने आरती नहीं उतारी तो क्या? घंटा नहीं बजाया तो क्या? परन्तु कहीं किसी मंदिर के निर्माण के लिए ईंट, मिट्टी चूना, पत्थर अपनी पीठ पर लाकर दिया भगवान् का मंदिर तो बनवाया होगा। परन्तु धिक्कार है उस पुरुष रूपी पशु को कि मानव जीवन के प्राप्त होने के बाद भी भगवान् की

भक्ति और सत्कार्य नहीं करता। श्रीमद्‌भागवत हमें यही बताती है कि तुम्हारे जीवन में सद्‌कार्य हो, भगवान्‌ की भक्ति, स्मरण बना रहें।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं। हे राजन! जिन्होंने इन कानों से भगवान्‌ की कथा को नहीं सुना, भगवान्‌ की भक्ति नहीं की उस व्यक्ति के कान कैसे हैं– गोस्वामी जी सुन्दर बता रहे हैं। कि

"जिन हरि कथा सुना नहीं काना, श्रवणरन्ध अहि भवन समाना।"
नयन संत दर्शन नहीं देखा, लोचन मोर पंख करि लेखा।

गोस्वामी जी कहते हैं रामचरित मानस में, कि जिस व्यक्ति ने इन कानों से कथा नहीं सुनी, गोविन्द के नाम को नहीं सुना, भैया उसके कान कैसे हैं? "अहि भवन समाना" अहि माने सर्प, सर्प के बिल के समान हैं। जिसने इन आंखों को प्राप्त करके भगवद्–दर्शन करने के लिए, हरि का दर्शन नहीं किया उसकी आंखें "मोर पंख करि लेखा" कभी गौर कर देखना कि मोर पंख की बड़ी सुन्दर आँख बनी रहती है, परन्तु देखने के मतलब की आंखें नहीं हैं। वे तो 'मोर पंख करि लेखा'।

कितना ही सुन्दर मस्तक पर तिलक लगा लें। मकुट पहन लें, परन्तु उस मस्तक की शोभा नहीं जो अपने गुरुजन के सामने, आदरणीय के सामने, पूजनीय के सामने न झुके। अपने बड़ों के सामने झुकने से व्यक्ति को चार बातें प्राप्त हो जाती हैं।

"आयु, विद्या, यशो, बलम्‌"

अपने बड़ों के सामने झुकने से सम्मान देने से क्या मिलता है? सबसे पहले आयु प्राप्त होती हैं। दीर्घायु जीवन होता हैं। बड़ों–बूढ़ों के मुख से अनायास ही निकल जाता है 'दीर्घायु भवः' यानि आपकी आयु बढ़ती है।

दूसरा–विद्या, व्यक्ति विद्यमान बनता है।

तीसरा – यश, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है।

चौथा – बल शक्ति बढ़ती हैं। स्वास्थ्य भी ठीक रहता है।

"आर्युविद्यायशोबलम्‌" अपने बड़ों को सम्मान देने से प्रणाम करने से जीव का परम कल्याण होता हैं। मस्तक प्रभु ने क्यों दिया है? अपने माता–पिता को, बड़ों को सम्मान देने के लिए, वन्दन करने के लिए। भगवान्‌ श्रीरामचन्द्र जी कहते हैं। प्रातःकाल सबसे पहले ही–

"प्रातःकाल उठे रघुनाथा, माता पिता गुरु नावै माथा।।"

भगवान् प्रातःकाल में ही अपने माता-पिता, गुरुजन को प्रणाम करते थे। कितना सुन्दर ही हम अपनी आंखों में अंजन डाल दें, काजल लगा लें, किंतु आंखों की शोभा नहीं होती। जिन आंखों से श्यामसुन्दर के दर्शन नहीं करते। कितना ही सुन्दर कंगन क्यों न हम पहन लें इन हाथों में, परन्तु उन हाथों की शोभा नहीं। वे हाथ तो मृतक के समान हैं। जो सत्कार्य न करें तो इस प्रकार से शुकदेव जी महाराज भी कहते हैं–

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः।
(श्रीमद्भागवतम् 2.3.24)

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि जिसका हृदय भगवान् की कथा में बैठकर, सुनकर द्रवित नहीं हो वह पत्थर दिल का हैं। उसका हृदय पत्थर के समान हैं। क्योंकि भगवान् की कथा सुनकर नहीं पिघलता।

"संसार के लिए, परिवार के लिए हम रोते हैं, कहीं-कहीं तो झूठे आंसू भी बहाना पड़ता हैं। परन्तु गोविन्द के लिए, श्रीकृष्ण के लिए, भगवान् के लिए, दो बूंद आंसू नहीं टपकते। जो संसारके लिए रोता हैं। वह रोता ही रहता है और भैया जो गोविन्द के लिए, भगवान् के लिए यदि दो बूंद आंसू गिर जाएं तो उसे संसार नहीं रुला सकता।"

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गद्-रुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम गृहणे भविष्यति।।
(श्रीचैतन्य शिक्षाष्ट्कम्)

चैतन्य महाप्रभु जब कृष्ण का नाम लेते थे तब झर-झर आंसू गिरने लगते थे, रोने लगते थे। चैतन्य महाप्रभु स्वंय कृष्ण हैं, जो राधा भाव में, राधा जी की अंग की ज्योति, वर्ण और नाम प्रचार करने के लिए अवतरित हुए, जो साक्षात् भक्त अवतार हैं, कैसे भगवान् की भक्ति करनी होती है, उसी के प्रदर्शन के लिए, शिक्षा देने के लिए, चैतन्य महाप्रभु पावन भूमि नवद्वीप धाम पश्चिम बंगाल में अवतरित हुए। किसी ने कहा कि चैतन्य की आंखों से देखें, स्वामि हरि दास जी की आँख से देखें, एक भक्त की आँख से देखें तो साक्षात् हमें गोविन्द का दर्शन होगा, अनुभव होगा। कहने का अभिप्राय है कि–

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।"
(श्रीमद्भागवतम् 2.3.24)

भगवान् का नाम, जप करते समय जिसका हृदय द्रवित नहीं होता वह तो पत्थर दिल है।

"चेतोदर्पणमार्जनं" जब प्रभु का नाम संकीर्तन हम करते हैं। तो चित्त रूपी दर्पण हमारा स्वच्छ हो जाता है, और चित्त रूपी दर्पण जब साफ हो जाता हैं तब चित्त रूपी दर्पण में साक्षात् श्रीकृष्ण के दर्शन होने लगते हैं। श्री शुकदेव जी महाराज राजा परीक्षित को इस कथा को सुना रहे हैं। परीक्षित ने कहा कि आप पद्म कल्प की सृष्टि के विषय में बताइए। शुकदेव जी महाराज ने कहा कि परीक्षित आपने प्रश्न तो बहुत सुन्दर किया, परन्तु देखो! राजन पहले हम अपने इष्ट की स्तुति करेंगे। देखिए अब श्रीशुकदेव जी महाराज के द्वारा श्रीमद्भागवत में। तीसरा मंगलाचरण हो रहा है।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

राजा का सृष्टि विषयक प्रश्न और शुकदेव जी का कथारम्भ

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध के चतुर्थ अध्याय में शुकदेव जी महाराज को याद आया कि मैंने अभी मंगलाचरण तो किया ही नहीं आते ही कथा आरंभ कर दी। द्वितीय स्कंध के चौथे अध्याय में बड़ा सुन्दर मंगलाचरण कर रहे हैं। अपने इष्ट की स्तुति करते हैं।

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्माणि रंस्यते नमः।

(श्रीमद्भागवतम् 2.4.14)

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि जिनके अंतकरण शुद्ध नहीं है उन्हें उस परमात्मा का दर्शन नहीं होता। वह परमात्मा स्वरूप में अपनी परम आह्लादिनी शक्ति के साथ जो निरंतर क्रिया करते हैं, नित्य विहार करते हैं, ऐसे प्रिय-प्रियतम जुगल सरकार के चरणों में वन्दन करते हैं।

जिनका कीर्तन–

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं चच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं, तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः।

(श्रीमद्भागवतम् 2.4.15)

जिनके कीर्तन से, जिनके स्मरण से तत्काल जीव के पाप हरण हो जाते हैं, दूर हो जाते हैं। क्या पहले भी किसी के पाप दूर हुए हैं, राजा ने प्रश्न किया–तो शुकदेव जी बता रहे हैं।

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कशा आभीरशुम्भा यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः।
(श्रीमद्भागवतम् 2.4.18)

भागवत में इन जातियों का नाम बता दिया–किरात, हूण, पुलिंद, पुल्कसा, आभीर, कंक यवन आदि। यानि इन जाति में जन्म लेने पर भागवत नाम की शरण लेने पर जीव पवित्र हो जाते हैं। यानि भागवत की शक्ति की कोई जात पांत नहीं होती। भगवान् ये नहीं कहते कि ये ब्राह्मण है या क्षत्रिय, ये वैश्य है भगवान् की दृष्टि में कोई जात-पात नहीं। भगवान् तो देखते हैं किसके अंदर मेरे लिए प्रेम है कितनी श्रद्धा भक्ति है। "राम ही केवल प्रेम प्यारा"

मेरे ठाकुर को तो केवल प्रेम ही प्यारा है, यही नहीं कि भगवान् को तो केवल ब्राह्मण ही मिलते हैं, भागवत में- "किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा "आभीर कंकायवनाः खसादयः" ये जातियों के नाम बताए हैं।

भगवान् के मुसलमान भी परम भक्त हुए, रसखान जैसे भक्त। मुसलमान रसखान कृष्ण के भक्त हुए। रसखान की जीवन कथा बड़ी दिव्य है, बड़ी रसमय है और अलौकिक सत्य कथा हैं। ये रसखान एक बार अपने उस्ताद के साथ मक्का के लिए रवाना हुए। वास्तव में रसखान भक्ति रस की खान है, ये थे तो पठान पर भक्ति रस में भरे हुए। ये मक्का मदीना चले। यात्रा करते-करते ब्रज प्रदेश में पहुँचे और ब्रज में भी जब श्री वृन्दावन धाम पहुँचे। वृन्दावन में प्रवेश करते ही उस्ताद ने कहा कि देखो रसखान अब हम हिन्दुओं के सबसे बड़े तीर्थ श्रीवृन्दावन धाम से गुजर रहे हैं, परन्तु रसखान सावधान होकर सुनो–इस वृन्दावन में एक बहुत बड़ा काली नाग रहता है। तुम अपने दाएं-बाएं नहीं देखना, कहीं ऐसा न हो कि वह तुम्हें डस ले। ठीक मेरे पीछे-पीछे चले आना। ऐसा आदेश उस्ताद ने दिया।

रसखान ने कहा कि जैसी आपकी आज्ञा गुरुजी, अब आगे-आगे उस्ताद, पीछे पीछे रसखान। जब वृन्दावन में प्रवेश किया अद्भुत घटना घटी। हमारे श्री बिहारी जी तो बड़े नटखट हैं ना–कभी तो अपनी बांसुरी बजा देते हैं। कभी नुपुर का शब्द श्रीकृष्ण करते हैं। कभी बायीं ओर तो कभी दायीं ओर सुनाई देती है- बंसी और नुपूर का शब्द, रसखान को सुनने के लिए बाध्य कर दिया। ये शब्द कहाँ से आ रहे हैं। देखने के लिए बाध्य कर दिया। रसखान ने सोचा, कौन बांसुरी बजा रहा है, नुपुर बजा रहा है जरा देख लूं, पर सोचा गुरु की आज्ञा पालन करना आवश्यक। गुरु ने कहा था दाएं बाएं नहीं देखना रसखान। गुरु की आज्ञा नहीं देखना।

जब वे वृन्दावन के यमुना के तट पर रसखान पहुँच गया, रसखान को लगा कि हम वृन्दावन से निकल गये। रसखान ने कहा कि अब तक हमने अपने उस्ताद की आज्ञा मानी। अब मैं नहीं रह सकता, यह कौन बंसी बजा रहा है? कौन नुपुर? रसखान से नहीं रहा गया। वे व्याकुल हो गए, उस बंसी ध्वनि और नुपूर ध्वनि बजाने वाले को देखने के लिए। जब रसखान ने अपने दायीं ओर यमुना तट पर देखा तो प्रभु ने एक झलक दिखा दी। प्रिय प्रियतम युगल सरकार यमुना तट पर खड़े हैं और श्रीकिशोरी जी अपने नुपूर के शब्द कर रही हैं। भगवान् मंद-मंद स्वर से बंसी ध्वनि कर रहे हैं। ज्योंहि रसखान ने उस सांवरी सलोनी सूरत का दर्शन किया रसखान वहीं मूर्छित हो गए, बेहोश हो गए। उस्ताद आगे निकल गये। थोड़ी देर में उस्ताद ने जब पीछे मुड़कर देखा। तब देखा कि रसखान नहीं हैं।

उस्ताद ने आवाज लगाई–अरे रसखान कहाँ गए? जब पीछे मुड़कर आए उस्ताद-वृन्दावन की सीमा पर यमुना तट पर देखा कि रसखान बेहोश पड़े हैं। उस्ताद समझ गया कि इसे काले नाग ने डस लिया। अब ये हमारे मतलब का नहीं रहा। उस्ताद रसखान को वृन्दावन में छोड़कर चल दिए। रसखान वृन्दावन में यमुना तट पर पड़े हैं, थोड़ी देर में होश आने पर रसखान उस गौर श्याम छवि को ढूँढता हुआ बांके बिहारी जी के द्वार पर पहुँचा। यवन वेश था रसखान का, लम्बी दाढ़ी, तहमद देखकर बांके ठाकुर के पुजारी ने अंदर जाने से रोक दिया। धक्का देकर रसखान को मंदिर के द्वार पर ही पटक दिया। यवनों का प्रवेश नहीं है, परन्तु जोर-जबरदस्ती रसखान करने लगे अंदर जाने के लिए, परन्तु रसखान को अंदर नहीं जाने दिया गया। रसखान श्री बांकेबिहारी के मंदिर के दरवाजे पर पड़े हैं। रसखान रो रहे हैं। प्रभु को रसखान ने कहा, रसखान की भाव भाषा बड़ी ही सुन्दर हैं। बिहारी जी के चरणों में ध्यान करते हुए रसखान भाव-विभोर होकर कहने लगे कि प्रभु आपने मुरली बजाकर मेरे जीवन में क्या जादू कर दिया? एक बार फिर मुरली सुना दें यह भाव रसखान का है।

ठेका, कव्वाली

1. मुरली बजाके मोहना क्यूं कर लिया किनारा,
अपने से हाय कैसा व्यवहार है तुम्हारा,
क्यूं कर लिया किनारा, क्यूं कर लिया किनारा,
मुरली बजा के मोहना.................................

2. ढूंढा गली-गली में, खोजा डगर-डगर में,

मन में यही लगन है दर्शन मिले तुम्हारा,

मुरली बजा के मोहना...............................

3. मधुबन तुम्हीं बता दो मोहन कहाँ गया है,

कैसे झुलस गया है कोमल बदन तुम्हारा,

मुरली बजा के मोहना.........................

4. यमुना तुम्हीं बता दो छलिया कहाँ गया है?

तू भी छली गई है कहती है नील धारा,

मुरली बजा के मोहना क्यूं कर लिया किनारा।

5. दुनिया कहे दीवानी, पागल कहे जमाना,

तुमको न भूल जानाहमको नहीं गंवाना,

मुरली बजा के मोहना.........................

6. राधा की पीर निर्मल व्याकुल ह्रदय ही जाने,

समझेगा क्या भला वो जिसको न गम प्यारा,

मुरली बजा के मोहना...................................

श्रीवृन्दावन में श्री बांकेबिहारी जी के मंदिर के द्वार पर रसखान मूर्च्छित पड़ा हैं। अर्धरात्रि में श्री बांकेबिहारी जी ने सिंह द्वार खोला और चांदी का कटोरा लेकर पहुँचे। जिसमें लड्डू प्रसाद हैं। जाकर प्रभु ने कहा–रसखान। ज्यों ही आवाज सुनी रसखान ने आंखें खोलीं, बोलो, बांके बिहारी जी महाराज की जय। रसखान को वह पात्र देकर अखंड भक्ति देकर प्रभु अंर्तध्यान हो गए, तो कहने का मेरा अभिप्राय है कि भगवान् के भक्त की कोई जात–पात नहीं होती।

"हरि को भजे सो हरि को होए, जात पात न पूछे कोए।"

"किरातहूणान्ध्र पुलिन्द पुल्कसा, आभीरकंका यवनाः खसादयः"

शुकदेव जी महाराज कहते हैं। इन जातियों में जन्म लेने के बाद भी अनेक जीवों का उद्धार किया वही प्रिया प्रियतम जुगल किशोरी अपनी कृपा से मेरी वाणी को अलंकृत करे। मैं उनके चरणों में वन्दन करता हूँ। राजा परीक्षित सुन्दर प्रश्न करते हैं। पदम् कल्प के विषय में।

अथ पंचमोऽध्यायः

सृष्टि का वर्णन

अथ षष्ठोऽध्यायः

विराट स्वरूप की विभूतियों का वर्णन

अथ सप्तमोऽध्यायः

भगवान् के लीलावतारों की कथा

अथाष्टमोऽध्यायः

राजा परीक्षित के विविध प्रश्न

अथनवमोऽध्यायः

ब्रह्माजी का भगवद्धाम दर्शन और भगवान् के द्वारा उन्हें चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश

देखो राजन, आपने पद्मकल्प की सृष्टि, के बारे में प्रश्न किया–जैसे आपने प्रश्न किया वैसे श्री नारद जी ने ब्रह्मा जी से प्रश्न किया था। एक दिन नारद अपने पिता ब्रह्मा जी के पास गए, बोले पिताजी मैं कभी–कभी देखता हूँ कि आप आंखें बंद करके ध्यान करते हैं। आप तो जगद्गुरु हैं। सारा जगत् आपका ध्यान करता है, परन्तु आप किसका ध्यान करते हैं? ब्रह्मा जी ने कहा बेटा नारद मैं जगद्गुरु नहीं हूँ, जगद्गुरु तो "कृष्णंवन्दे जगद्गुरु" कृष्ण ही जगद्गुरु हैं। मैं जगत गुरु नहीं हूँ। परन्तु जिनकी कृपा से लोग मुझे जगतगुरु समझते हैं, मैं उन जगतगुरु का सेवक हूँ, जो पूर्ण वेद है, पूण तप हैं, पूर्ण ज्ञान है। वह साक्षात् श्रीकृष्ण हैं, नारायण हैं। मैं उनका ध्यान करता हूँ।

"नारायणपरा वेदा देवा नारायणाङ्गजाः।
नारायणपरा लोका नारायणपरां मखाः।
नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः।
नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः।"

(श्रीमद्भागवतम् 2.5.15, 16)

नारद जी ने कहा पिताजी आप किस प्रकार सृष्टि उत्पन्न करते हैं? थोड़ा बताइए तो, ब्रह्मा जी ने कहा कि सर्वप्रथम भगवान् की नाभि से कमल का फूल निकलता है

और कमल के फूल से मेरी उत्पति। एक दिन ब्रह्माजी अपने कमलासन पर बैठे थे श्रीब्रह्मा जी ने विचार किया कि मेरी उत्पति कहाँ से हुई तो ब्रह्मा जी कमल की जड़ में गए तब भी उन्हें यह ज्ञान नहीं हुआ कि उत्पत्ति कहाँ से हुई, पुनः आकर आसन पर बैठ गए। चारों ओर दृष्टि घुमाई तो चतुर्मुख हो गए। चार सिर हो गए। ब्रह्माजी ने सागर में बुलबुला फूटने का स्वर सुना। तप-तप शब्द सुना। ये वर्णमाला का 16वां और 21वां अक्षर है।

स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं निष्किञ्चनानां नृप यद् धनं विदुः।

(श्रीमद्भागवतम् 2.9.6)

सागर में जब लहरें फटने का स्वर सुनकर ब्रह्माजी को अनुभव मानो हुआ कि परमात्मा का आदेश हुआ कि तप करो, तप करो। ब्रह्मा जी ने भगवान् के आदेश को स्वीकार किया और दिव्य सौ वर्ष तक तप किया।

दिव्यं सहस्राब्दममोघदर्शनो जितानिलात्मा विजितोभयेन्द्रियः।
अतप्यत स्माखिललोकतापनं तपस्तपीयांस्तपातं समाहितः।

(श्रीमद्भागवतम् 2.9.8)

भगवान् के दिव्य वैकुण्ठ का दर्शन ब्रह्मा जी का हुआ। इन दिव्य सौ वर्ष का फलस्वरूप भगवान् दर्शन देते हुए अपने कर कमल का स्पर्श करते हुए। चतुर्श्लोकी भागवत का वर्णन कर रहे हैं। भगवान् कहते हैं–

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।

(श्रीमद्भागवतम् 2.9.33)

श्री ब्रह्माजी को भगवान् कहते हैं। सृष्टि के पहले भी मैं हूँ, सृष्टि में जो आप देख रहे हैं। वह भी मैं हूँ। सृष्टि के शेष जो बचता है वह भी मैं हूँ। ब्रह्मा जी जो न हो वह हमें दिखा दो। "यथा भासो यथा तमः।"

वह मेरी माया है ब्रह्माजी, इन तीन तत्व के द्वारा सत् रज और तमो, मैं संसार की रचना करता हूँ। चौथे श्लोक में भगवान् बता रहे हैं। जीव के अंदर आत्म जिज्ञासा होनी चाहिए। इन चार श्लोक का वर्णन श्रीमद्भागवत में चर्तुश्लोक की भागवत के रूप में वर्णन किया।

ब्रह्मतत्व, मायातत्व, जगतत्व और आत्मतत्व, वही चर्तुश्लोकी भागवत ब्रह्माजी ने अपने पुत्र नारद जी को दे दी। नारद जी ने वेदव्यास जी को दिया, वही चर्तुश्लोक भागवत को वेदव्यासजी ने 18,000 श्लोकों में निर्माण करके अपने पुत्र श्री शुकदेव

जी को दे दी। शुकदेव जी कहते हैं कि परीक्षित, वही भागवत मैं आपको सुना रहा हूँ। जैसे आज आपने मेरे से प्रश्न किया वैसे ही मैत्रेय जी से विदुर जी ने प्रश्न किया था। भागवत के दस लक्षण के विषय का वर्णन श्रीमदभागवत में है।

अथ दशमोऽध्यायः

भागवत के दस लक्षण

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः।

(श्रीमद्भागवतम् 2.10.1)

भागवत के दस लक्षणों में से प्रथम है सृष्टि। सृष्टि यानी रचना, तत्पश्चात सर्ग यानी सृष्टि का विस्तार, तीसरा पोषण यानी पोषण करना, चौथा स्थान यानी सर्ग विसर्ग आदि लोकों का यथा स्थान, पाँचवां पोषणं यानि सृष्टि के सर्ग, विसर्ग लोकों का विस्तार, छठा मन्वन्तर यानी अनेक प्रकार के मुनियों का जन्म तथा विस्तार कथा, इशानुकथा सातवां यानी ईश्वर के एकान्तिक, अलौकिक भक्ति कथा, ईश्वर की लीला कथा, आठवां निरोध यानी भगवान् के चरण में जीव अपने मन को स्थिर कर देने से परम् कल्याण होता है।

नवां मुक्ति यानि जीव भगवद नाम, भगवद कथा भगवद आश्रय लेने से जीव मुक्त हो जाते हैं। दसवां आश्रय-यानी जीव को पता नहीं है कि भगवद् आश्रय ही परम आश्रय मूलाधार आश्रय है, यह जीव को मालूम हो जाए तो उसे कहीं और भटकना नहीं पड़ता।

ये दस लक्षण श्रीमद्भागवत में वेदव्यास जी ने सुन्दर भाव से वर्णन किया है। राजा परीक्षित ने प्रश्न किया कि महाराज मैत्रेय जी और विदुर दोनों ही महान सन्त हैं। जहाँ पर दो सन्त का मिलन होता हैं वहाँ संसार की चर्चा नहीं होती। बताइए दोनों सन्तों का समागम कहाँ पर हुआ। और क्या ईश्वर चर्चा हुई और क्या आत्मतत्व चर्चा हुई आप कृपा करके बताइए। श्रीशुकदेव जी भागवत के तृतीय स्कन्ध के प्रथम अध्याय में इस कथा को बढ़ाते हुए कहते हैं-

इति द्वितीय स्कन्धः समाप्तः।

"हरिः ॐ तत्सत।।

स्कंध-०३



तृतीय स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

उद्धव और विदुर की भेंट

यदा तु राजा स्वसुतानसाधून् पुष्णन्न धर्मेण विनष्टदृष्टिः।
भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान्विबन्धून् प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह।
(श्रीमद्भागवतम् 3.1.6)

राजन एक बार जब महाभारत युद्ध प्रारंभ हो रहा था, पांडव जब वनवास और अज्ञातवास से लौटे तो पांडवों ने आधा राज्य माँगा किन्तु कौरव किसी भी स्थिति में देना नहीं चाहते। भगवान् को राजदूत बनाकर कौरवसभा में भेजा। भगवान् ने जाकर सभा में धृतराष्ट्र से कहा यदि आप आधा राज्य नहीं देना चाहते, तो पाँच गाँव भूमि ही प्रदान करे। उनके गुजर बसर के लिए बहुत है।

हे केशव! ये तो आपने बहुत अच्छी बात कह दी। पाँच गाँव भूमि हमारे लिए कौन-सी बड़ी बात है। मेरे भाई के पुत्र हैं। पांडु के पुत्र हैं। अवश्य दूँगा। परन्तु हे केशव आप एक बात सुने, मैं कोई भी कार्य करता हूँ तो अपने पुत्रों से सलाह लेता हूँ। आप थोड़ा दुर्योधन से पूछ ले। वह पास में ही बैठा हैं। दुर्योधन की ओर देखकर भगवान् ने पूछा भैया आपके मन में क्या विचार उठा। वह बोला– हे केशव आप तो पाँच गाँव भूमि की बात करते हो मैं तो सुई की नोक के बराबर भूमि भी बिना युद्ध नहीं दूँगा। "बिना युद्धधे न केशव" भगवान् ने कहा, ये तूने कोई नई बात नहीं कि "विनाशकाले विपरीत बुद्धि"। जब व्यक्ति के विनाश का समय आता है बुद्धि भी स्वतः ही नष्ट हो जाती है। निश्चित ही कौरवों के विनाश का समय आ चुका है, इसमें कोई संदेह नहीं। भगवान् जब सभा से चलने लगे तो दुर्योधन के पास उनके मामा शकुनि खड़े हैं। दुर्योधन ने पूछा, मामा! मैंने कृष्ण को ठीक जवाब दिया ना। शकुनि ने कहा, दुर्योधन राजनीति में तो तू मेरा ही शिष्य है, तूने तो मेरे मुँह की बात ही छीन ली। मैं यही तो कहना चाहता था कि बिना युद्ध के सुई की नोक के बराबर भूमि नहीं दूँगा। दुर्योधन यदि पांडवों के पास कोई शक्ति है तो एक कृष्ण ही है और कोई नहीं। तेरी सभा में कृष्ण खड़ा है तू अपने सैनिकों को आज्ञा दे कि कृष्ण को पकड़ ले और दो चार दिन के लिए कारागार में बंद कर दे। जब पांडव सुनेंगे तो आधे पांडव तो मर ही जाएंगे। अब जैसा संग वैसा बुद्धि। भगवान् को जब पकड़ने

का विचार दुर्योधन ने किया, अपने सैनिकों को आदेश दिया कि पकड़ लो कृष्ण को। जितने भी सैनिक सभा में थे प्रत्येक सैनिक के अंदर कृष्ण को दिखने लगे। सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण खड़े हैं। दुर्योधन ने कहा यह मैं क्या देख रहा हूँ। आश्चर्य चकित हो गए। जब सेना की ओर से दृष्टि हटाकर प्रभु की ओर डाली तो भगवान् भी अपना रौद्र रूप दिखा रहे हैं। भगवान् के मुख से लम्बी-लम्बी ज्वालाएं निकल रही हैं। बड़े-बड़े महारथी लिपटे हुए पड़े हैं।

कृष्ण ने कहा दुर्योधन को पकड़ लो, तूने सोचा होगा कि मैं वही लाला कन्हैया हूँ, जैसे कि मैंने व्रज में एक बार बचपन में माखन की मटकी फोड़ दी थी और मैया ने मोकु ओखल से बांध दिया है, मैं वही कृष्ण हूँ मोकु पकड़ लो।

"तक्षकस्य विषमदन्ते, मक्षिकाया विषमशिरे।
वृश्चिकस्य विषम पुच्छे, सर्वांगे दुर्जने विषम"।।

तक्षक के दन्त में जहर है, मक्षिका के सिर में जहर है, बिच्छु के पूंछ में जहर है परन्तु दुर्जन के सब अंग में जहर है, तो दुर्योधन ऐसा ही दुर्जन व्यक्ति है जिसका सारा शरीर दुर्जनता से भरा हैं। हमेशा पांडवों का बुरा करने में ही सोचते रहता है, परन्तु "जाके राखे साईंयां मार सके न कोई" जिन भक्तों की भगवान् रक्षा करते हैं। दुर्जन उनका बाल भी बांका नहीं कर सकते। दुर्योधन ने कहा कि नहीं प्रभु आपतो साक्षात् हैं। मेरा अपराध क्षमा करें और सारी सत्कार की तैयारियां हो चुकी हैं। आप पधारिए। आतिथ्य स्वीकार करिए। मुझे माफ करिए। अपराध क्षमा करिए। भगवान् ने कहा, दुर्योधन अब तेरे घरका भोजन मैं नहीं करूँगा। दूसरों के घरका भोजन लोग कब करते हैं? जानते हो दुर्योधन–दो परिस्थितियां पहली भोजन करने वाले के लिए कहीं अभाव हो, न मिलता हो तो भोजन करते हैं। दूसरी परिस्थिति है भोजन कराने वाले के दिल में प्यार हो, श्रद्धा हो भक्ति हो। ये दोनों बातें हो तो तब लोग दूसरे के घर का भोजन करते हैं। दुर्योधन देख तेरे अंदर तो प्यार नहीं, हमारे लिए कहीं अभाव नहीं। जहाँ कहीं मैं जाऊँगा कहीं भी कोई भी भक्त भोग तो लगा ही देगा ना।

भगवान् दुर्योधन के घर की मेवा मिठायों को त्यागकर निकल पड़े। दुर्योधन प्रभु को मनाते रहें। परन्तु प्रभु ने उनकी एक न सुनी। भगवान् जब महलों से बाहर निकले तो प्रभु को बड़ी भूख लगी हुई थी। भगवान् ने सोचा कि आज अच्छा-सा निमन्त्रण उसने दिया जो सुबह से भूखे हैं। अब कौन को घर चले, प्रभु को याद आई कि मेरे चाचा, चाची। विदुर विदुरणी कितने दिनों से मेरे इंतजार में हैं, दर्शन के लिए तड़प रहे हैं। कितने लालायित हैं मेरे दर्शन को। भगवान् विदुर के घर की ओर चल दिए।

गीतम्

विदुर घर पाहुना आज हरि आयों,
विदुर नहीं घर थी विदुराणी।
घर में आए सारंग पानी
कदली फल ले आना
आज हरि आयों
विदुर घर पाहुना.........
इतने में ही विदुर जी आयो,
विदुराणी पर बहुत रिझायो,
घर की लाज गंवाना, आज हरि आयो।
सुनह विदुर हम भाव के भूखे हैं,
भाव बिना सब व्यंजन रूखे हैं।

कविता

भाव का भूखा हूँ मैं, भाव ही बस सार है।
भाव से जो मुझको भजे तो भव से बेड़ा पार है,
अन्न धन, वस्त्र, भूषण कुछ न मुझको चाहिए,
आप हो जाए मेरा बस यही मेरा सत्कार है,
भाव जिस जन के नहीं उसकी मुझे चिंता नहीं,
भाव वाले भक्त का भरपूर मुझ पर भार (विश्वास) है,
सुनो विदुर-ऐसा भव कहाँ पाओ ना
विदुर घर पाहुना.......................।

भगवान् ने एक बार भी नहीं कहा कि काकी जी मैं पहली बार तेरो घर आओ तो मुझको तू उल्टी चौकी पर बैठा रहो। भगवान् उसी उल्टी चौकी पर प्रसन्न मुद्रा में बैठे हैं। उसकी तन्मयता, भाव, भक्ति, प्रेम को कृष्ण देख रहे हैं। विदुराणी ने कहा प्रभु मैं नित्य प्रतीक्षा कर रही थी कि आप मेरे घर आओ और मैं आपको माखन खिलाऊँ, मिशरी खिलाऊँ, क्योंकि आपको माखन मिशरी अत्यंत प्रिय हैं। मैं रोज-रोज माखन निकालकर रखती थी। आप मेरे घर नहीं आए। आज तो ताजा माखन भी नहीं निकाला, अब मैं आपको क्या खिलाऊँ?

विदुराणी को याद आई कि केले रखे हैं। झट उतारे और प्रभु का भोग लगाने लगे। गिरी भाग तो जमीन में डालती जा रही छिलके का भोग लगा रही, प्रभु बैठे-बैठे

छिलकों का ही भोग लगा रहें। देखो भगवान् वस्तु के नहीं प्रेम के प्यार के भूखे हैं। बैठे-बैठे प्रेम से भोग लगा रहे हैं। प्रभु विदुराणी सुलभा जी के भाव कहीं उन मुनि-ऋषियों से कम नहीं, जो मुनि-ऋषि ने भगवान् के दर्शन से अपना ज्ञान, वैराग्य भूलकर भगवान् के दर्शन से विह्वल हो जाती हैं। अकस्मात् तन्मयता को प्राप्त करते हैं, किंकर्तव्यमूढ़ हो जाते हैं, क्या करना है, क्या नहीं करना है सुध-बुध खो देते हैं। वही भाव आज विदुराणी का हैं। कन्हैया की आवाज सुनकर वह इतनी तन्मय हो गई कि स्नान के वस्त्र भी संभाल नहीं पाई। पर भगवान् कृष्ण केवल लीला पुरुषोत्तम नहीं, मर्यादा पुरुषोत्तम भी हैं। आज काकी के शरीर पर पीताम्बर उढ़ाकर मर्यादा की रक्षा की। भक्तों का मान बढ़ाया। भक्त मेरा तन्मय होकर कितना भजन करते हैं, मैं नहीं भूलता उनकी रक्षा करना। भगवान् ने एक बार द्रौपदी के भी मर्यादा की रक्षा की। कौन कहते हैं भगवान् कृष्ण केवल लीला पुरुषोत्तम हैं, लीला पुरुषोत्तम के साथ-साथ मर्यादा पुरुषोत्तम भी हैं।

"कम्वादयालु शरणं भजे"

कृष्ण के समान ब्रज में कौन दयालु है, कृष्ण के समान कौन कृपालु है जो अपने भक्तों की रक्षा करे।

सूरदास जी ने कितने सुन्दर भाव को अपने पद में बताया। क्या बताया है?

गीतम्

सबसे ऊँची प्रेम सगाई
दुर्योधन की मेवा त्यागी, साग विदुर की खाई
सबसे ऊँची प्रेम सगाई
सुरपुर इस नायक नाही, कहीं लाग करे बड़ाई।
सबसे ऊँची प्रेम सगाई।

बैठे-बैठे भगवान् कृष्ण छिलकों का भोग लगा रहे हैं, कृष्ण ने एक बार भी नहीं कहा कि काकी जी कहाँ तो ये मेरे कोमल मुख, कहाँ ये कठोर छिलका। देखो! भगवान् वस्तु को महत्व नहीं दे रहे, भाव को ग्रहण कर रहे हैं। छिलकों का भोग लगा रहें। यदि कोई व्यक्ति चाहे कि अच्छे भोजन, वस्त्र से प्रभु को रिझा लूं, अपना बना लूं तो कदापि नहीं हो सकता। भोग लगाते समय, वस्त्र धारण कराते समय सेवा में यदि भक्ति है, प्रेम है, भाव है तो ठाकुर न जाने कौन से गुण पर रीझ जाए। चाहे वह भाव में रीझे या चाहे वह प्रेम में, यह तो ठाकुर ही जाने। हमारे ब्रज में

आचार्य ने बताया है रागानुगा सेवा, प्रेममयी सेवा। जिसे कहते हैं–भावमय सेवा, प्रेममय सेवा।

बिना भाव रीझे नहीं नटवर नन्द कशोर।

भगवान् उस भक्त के प्रेम और भाव से रीझते हैं। जिसके हृदय में सच्चा प्रेम और भक्ति, श्रद्धा हो। जब प्रभु छिलकों का भोग लगाने लगे तो भगवान् ने देखा कि काकी मोकु छिलका खिला रही है। काकी कलिकाल में कलिकाल के डाक्टरों के चक्कर में तो नहीं पड़ गई, क्योंकि कलिकाल में कलिकाल के डाक्टर कहेंगे कि विटामिन हैं। तो छिलको में हैं कहीं विटामिन तो नहीं दे रही हैं। बैठे-बैठे भगवान् श्रीकृष्ण भोग लगा रहे हैं। विुदर आए बाजार से सौदा लेकर तो गद्‌गद हो गए। पत्नी को कृष्ण के साथ बैठा देखकर, परन्तु जब पास में आकर देखा कि भगवान् के मुख में छिलका है और विदुरणी के हाथ में भी छिलका। बोले सुलभा! तेरी बुद्धि को क्या हो गया। पहली बार कृष्ण हमारे घर आए तू उन्हें छिलका खिला रही हैं। पागल हो गई है क्या। विदुरणी की आंखें खुली तो देखा, अपने हाथ और कृष्ण मुख दोनों में छिलका हैं। विदुरणी ने कहा कि, मैं पागल हो गई सोभई पर आज मेरो कन्हैया भी पागल भयो। एक बार भी नहीं कहा कि काकी कहाँ मेरा कोमल मुख कहाँ ये कठोर छिलका। भगवान् कृष्ण कहते हैं, कि काकी जी मुझे जो स्वाद दुर्योधन के छप्पन भोग में नहीं आता वह स्वाद मुझे आपके घर में छिलकों में आ रहा है।

बोलिए श्री वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

विदुर जी कहते हैं कि प्रभु मैंने बाजार में अभी सुना। जहाँ भी गया यही चर्चा हो रही है कि आपने दुर्योधन की मेवा, मिठाई त्याग दिया। मेरे छिलकों की प्रशंसा कर रहे हो।

"प्रभु, न जाने कौन से गुण पर दयानिधि रीझ जाते है।।"

प्रभु भक्तों के कौन से गुण पर आप कब रीझ जाएं, आपको भक्त नहीं समझ सकता। आप स्वयं जानते हैं। जब विदुर जी के घर पर भगवान् पधारे हैं। तब छोटे बालक नहीं हैं। महाभारत में लिखा है उस समय भगवान् की उम्र 75 वर्ष की हैं। पुत्र कितना भी बड़ा हो जाए, आयु में, यश में, बुद्धि, ज्ञान में, पद में परन्तु माता-पिता की दृष्टि में एक बालक ही हैं। विदुर और विदुराणी का भगवान् के प्रति वात्सल्य भाव, पुत्र भाव हैं। विदुर और विदुराणी के आतिथ्य भाव, वात्सल्य भाव को स्वीकार करके पांडवों के शिविर की ओर चल दिए।

श्री शुकदेव जी कहते हैं। राजन, इधर आज दुर्योधन ने कृष्ण का अपमान किया और मेरा भी अपमान किया। तो ऐसे राजा के यहाँ हम नौकरी नहीं करते। दुर्योधन ने दासी पुत्र कहकर विदुरजी को अपमानित किया था।

क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः।

(श्रीमद्भागवतम् 3.1.15)

जिस समय महाभारत प्रारंभ हो रहा था, तो उस समय एक छोटी-सी सेना का सेनापतित्व दिया था, पर विदुर ने अपमानित होकर राजा दुर्योधन की नौकरी छोड़ दी, बोले ऐसे राजा की हम नौकरी नहीं करते। तुरंत विदुर जी महाराज चपरास उतारकर रख दिया दुर्योधन के घर पर। बोले तीर्थ–यात्रा पर जा रहे हैं। विदुर जी तीर्थ यात्रा पर चले गए।

श्रीरंगमम, पुष्कर, काशी अनेक तीर्थों में भ्रमण करते-करते विदुर जी अन्त में वृन्दावन चले गए। यमुना जी के तट पर आए, जब से विदुर जी कौरवों को छोड़कर तीर्थों के लिए चले गए। तब से कौरवों का पुण्य का खाता बंद हो गया। "स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो" पांडव पक्ष में धर्मपुत्र युधिष्ठिर और कौरव पक्ष में धर्मराज स्वयं विदुर। न्याय नीति में रहकर सबको मार्ग दर्शन कराते थे। परन्तु आज विुदर के तीर्थ भ्रमण जाने के बाद कौरवों का पुण्य खाता, पुण्य मार्ग लुप्त हो गया। विदुर जी अवध ूत वेश में हरिका चिन्तन करते-करते र्तीथादि करते-करते सबके अलक्ष में भ्रमण कर रहे हैं। जब वृन्दावन में विुदर जी आए हैं। तो विदुर जी ने कहा, आज मैं पहली बार श्री वृन्दावन में आया हूँ।

यह श्री वृन्दावन तो मेरे गोविन्द की लीलाभूमि है पहली बार आया तो कुछ दिन निवास करूँ। सचिव, वैद्य, गुरु को समदर्शी होना चाहिए, तीनों को न्याय में रहकर सबका हित करना चाहिए।

धृतराष्ट्र का सचिव विदुर है, न्याय में परिवार के हित के लिए दुर्योधन को साक्षात् कलिका अवतार कहा और घर से निकालने का आदेश दिया, नहीं तो कुरू वंश ध्वस्त हो जाएगा। यह एक उच्च कोटि के सचिव का, मन्त्री का कर्तव्य है घर को, समाज को, राष्ट्र को सदुपदेश देकर रक्षा करें। वैद्य को भी व्याधि प्रबल जानकर रोगी की जान बचाने के लिए चाहे हाथ या पैर काटकर भी रोगी की रक्षा करे यह वैश्य का कर्त्तव्य है, शिक्षक का कर्तव्य है कि शिष्य को सदुपदेश देकर भगवत्संस्कार के योग्य बना दे, परन्तु जो इन तीनों की बात नहीं मानते। इनकी समदर्शिता को स्वीकार नहीं करते तो उन व्यक्ति का, वंश का, परिवार का, समाज का, सम्पूर्ण राष्ट्र का भी पतन

होने में देरी नहीं लगती। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति सचिव, वैद्य, गुरु की छत्रछाया में, कृपा में रहना, जीना श्रेष्ठ मानते हैं। जब से दुर्योधन को छोड़कर विदुर गए तब से कौरवों का पतन शुरू हो गया। कलि का विस्तार शुरू हो गया। शास्त्र में लिखा है कि तीर्थ में जाएं तो तीन दिन अवश्य रहें, तीन नहीं तो दो दिन, नहीं तो कम से कम एक दिन तो अवश्य रहें। इससे तीर्थ फल मिलता है, भ्रमण होता है, मन को शांति मिलती है, प्रभु की कृपा होती है भजन, स्मरण करने का अवसर मिलता हैं। इससे प्रभु धाम में, रहने का फल मिलता है, तो इन तीर्थों में, वृन्दावन की महिमा के बारे में किसने हमसे पूछा, महाराज बताइए, चार धाम में और सप्ततीर्थ में वृन्दावन का नाम नहीं आता। और आप जयकारा बुलवाते हैं। वृन्दावन की जय हो। तो ये बताइए कि ये पाँचवां धाम कौन सा है।

देखो पुराणों में, ये कथा आती है कि, श्री वृन्दावन महिमा के सम्बन्ध में सभी तीर्थों का राजा है प्रयाग। आज भी हमारे श्रीवृन्दावन में नित्य प्रति, प्रतिदिन रात्रि में श्री प्रयाग राज जी प्रणाम करने के लिए आते हैं। बिहारी जी के चरणों में, ये सन्तों की वाणी है, श्रीवृन्दावन में ठाकुर को बिहारी जी को प्रणाम करने के लिए, वन्दन करने के लिए प्रयाग राज नित्य आते हैं, तो सभी तीर्थों के राजा हैं। प्रयाग, इसलिए नाम पड़ा प्रयाग राज। एक बार सभी तीर्थ प्रयाग में एकत्रित हुए। सबकी हाजिरी लगाई गई परन्तु श्रीवृन्दावन नहीं था। जब देखा तीर्थराज प्रयाग ने कि सभी तीर्थ आए हैं परन्तु वृन्दावन नहीं आया। प्रयाग राज जी भगवान् श्रीकृष्ण के पास गए और कहा कि प्रभु आपने हमें तीर्थों का राजा बनाया है ना। भगवान् ने कहा हाँ। आप तीर्थों के राजा हैं। बिल्कुल पक्का आप ही तीर्थराज हैं। प्रयाग राज ने कहा कि महाराज मेरे तीर्थ में सभी आए परन्तु वृन्दावन नहीं आया। भगवान् कहते हैं कि प्रयागराज जी सुनिए, आप तीर्थों के राजा है नाकि मेरे घर के राजा हैं। श्रीवृन्दावन तो मेरा घर हैं। मेरा परम धाम है, इसलिए चारों धाम और सप्ततीर्थों में वृन्दावन धाम नहीं आता हैं। गोलोक धाम है श्रीवृन्दावन।

“वृन्दावन वैकुण्ठ को तोलो तुलसीदास,
गरो भू पड़ो रहो और हलका गयो आकाश।”

जिस वृन्दावन की तुलना गोस्वामी जी कर रहे हैं कि वृन्दावन श्रेष्ठ है या गोलोक धाम। यानि वैकुण्ठ श्रेष्ठ है, तो बड़ा सुन्दर ये दोहा वृन्दावन के सम्बंध में “गरो भू पड़ो रहो और हलका गयो आकाश”। गरो कहते हैं भारी को यानी साक्षात् प्रिया प्रियतम जिसमें विद्यमान हैं। युगल सरकार तो गरो भू पड़ो रहो। गरो मानो भारी तो भारी तो उसी वृन्दावन भूमण्डल रहा, बाकी हल्का गया आकाश। ऐसा श्री वृन्दावन।

आज विदुर जी रात्रि में एक लता के पास वृन्दावन में बैठ गए। देखो सन्तों का रात्रि कब और दिन कब होता हैं। ये गीता जी में भगवान् श्रीकृष्ण बताते हैं। कि जब संसार जागता है तो सन्त सोते हैं और जब संसार सोता है तो सन्त जागते हैं।

"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.69)

तो सारे ब्रजमंडल के लोग सो रहे हैं, परन्तु सन्त विदुर की आंखों में नींद नहीं हैं। विदुर जी वृन्दावन में यमुनाजी के तट पर एक लता के नीचे बैठकर अपनी झांज निकालकर बजाते हुए भगवान् के महामन्त्र का जप कर रहे हैं। ये महामन्त्र कौन सा है।

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।"

विदुर जी ने सुन्दर महामन्त्र के बाद भजन भी गाया है।

भजन

आओ नन्दलाल बरस रहे नैना।
बरस रहे नैना तरस रहे नैना।।
आओ गोपाल तरस रहे नैना।
आओ घनश्याम बरस रहे नैना।।
मैं अपने घर सों निकसी जहाँ नन्द को लाला बैठो अथारी,
मैं निकसी मुख मोर हंसी, तो संग की सहेली ने सों सो लगाई
सांस ने गारी देई, रिस रजों और नंद ने फंद रचै हैं। बनाई,
बलिहारी सखी बृज को बसिबों, जहाँ पानी में आग लगावे लुगाई
तो आओ गोपाल तरस रहे नैना....
मैं खिरकी फिरकी सो गिरी, सखी आय गयो मोहि प्रेम तमारो।
मोहन नेन को बान लग्यो मुरझाय गिरी कोई आनसंवारो।
बीर शरीर की ये गति हो गई वैद्य मिले नहि नंद दुलारो,
खोल सी घूंघट खोकर कहाँ वस्यो आंखन मोर की पांखन वाले
आओ नंदलाल बरस रहे नैना।
[तो गाना समाप्त हुआ अब महामन्त्र गाएंगे।]

तो ये श्रीमद् भागवत में सन्त विदुर और सन्त उद्धव की श्रीवृन्दावन में स्वागत हैं। बोलो श्री वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

एक लता के नीचे बैठकर विदुरजी महामन्त्र का जप कर रहे थे। ये बत्तीस अक्षर सोलह शब्द का महामन्त्र हैं। कलिसन्तरण उपनिषद में महामन्त्र के रूप में दिया है, जोकि भगवान् चैतन्य महाप्रभु उस पुराण से निकालकर कलि के जीव के लिए सहज और सरल बना दिया। जो व्यक्ति इस महामन्त्र का जप करते हैं। भैया उसके जीवन में जो ज्ञान से अज्ञान से जो दोष बन जाते हैं। तो उस दोष का, उस पापों से बचने के लिए एक मार्ग है—भगवान् का हरि नाम संकीर्तन।

प्रभु का नाम कीर्तन

भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने इस महामन्त्र को सारे भारतवर्ष में वितरित किया। जब चैतन्य महाप्रभु इस मन्त्र को गाते थे, तो उनके शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते थे, आंखों से अश्रु टपकते थे। उद्दंड होकर नाचते थे, तब मानो प्रभु जी स्वयं नहीं नाच रहे मानो नर्तकी ही प्रभु की सेवा में नृत्य कर रही हैं। उस प्रभु की कीर्तन की मस्ती देखकर झारखंड के पशु, पक्षी, जीव नृत्य करने लगते हैं। आपस में वैर भाव भूलकर एक साथ गाय, शेर, मोर, हाथी महाप्रभु के साथ नृत्य करने लगे।

उन पशु पक्षी और चैतन्य महाप्रभु के नृत्य का वर्णन कौन करे? उस मस्ती को जिसने देखा नहीं, उसका वर्णन कैसे? वास्तव में वह अवर्णनीय हैं। मस्ती तो वो हैं। जो उतरती नहीं हैं। जो उतरती है चढ़ती है हकीकत में वह मस्ती नहीं हैं। मस्ती–माने एक नशा जिसे कहते हैं मदिरा जो चढ़ जाती है और उतर जाती है। वास्तव में ये प्रभु के नाम की मस्ती। पहले तो ये चढ़ती नहीं। अगर एक बार चढ़ जाती है तो उतरती नहीं।

कीर्तन का उल्टा क्या है? नर्तकी। नर्तकी माने माया। वह माया नर्तकी जो हमें अनवरत नचाती हैं। परन्तु जब हम भगवान् के नाम के कीर्तन में नाचते हैं। तो तन्मय होकर सारी माया ही जीत लेते हैं। तो प्रभु का नाम संकीर्तन करते–करते माया से हमें दूर रहना चाहिए।

ये कीर्तन की तीन बातें पहली उच्च स्वर से कीर्तन करना। जहाँ–जहाँ, जब–जब भगवान् का कीर्तन हो तो उच्च स्वर से करना चाहिए। दूसरा ब्रह्मनाद भी करना चाहिए, दोनों हाथ से तालियां बजाना ये ब्रह्मनाद है। तीसरा कीर्तन के साथ झूमो या नृत्य करना। क्योंकि ये तीन बातें आपको बता देते हैं। देखिए कीर्तन में तालियां

इसलिए बजाई जाती हैं, विधाता ने हमारे हाथ में कुछ उल्टी रेखाएं लिख दी हैं। जिससे हमारा जीवन विपरीत दिशाओं की ओर जा रहा है।

जब भगवान् का नाम संकीर्तन करते-करते हम तालियां बजाकर नृत्य करते हुए ब्रह्मनाद करते हैं। तो हमारी उल्टी रेखाएं भी सीधी हो जाती हैं, प्रभु का नाम संकीर्तन करते हुए उच्च स्वर से। कीर्तन क्यों करना चाहिए। उच्च स्वर से कीर्तन इसलिए करना चाहिए कि जितना भी आसपास का वातावरण है वह महक जाए प्रभु के शब्द के नाम के उच्चारण से। जो दूषित वातावरण है, उस स्थान भगवान् के नाम की सुगंध फैल जाए। एक चींटी एक हाथी अपने मुख से प्रभु का नाम नहीं ले सकता। उसके कान में भी गोविन्द का नाम पड़ जाए, तो हमें उच्च स्वर से कीर्तन करना चाहिए और नृत्य क्यों, झूमना क्यों? एक व्यक्ति पीकर भी झूमता है।

प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। उसे कहते हैं। नशा यानि नशे में वह झूमता हैं। देखिए संस्कृत में कहते हैं। "न समयजा इति-नशा" नशे का अर्थ है कि जिससे कभी शांति न मिले, उसे कहते हैं- नशा। किन्तु यह मदिरा का नशा नहीं, ये नाम की मस्ती का नशा हैं। गुरु के नाम की मस्ती हैं। तो हमें झूमकर नृत्य करते हुए कीर्तन क्यों करना चाहिए। जन्मजन्माँतर के पाप की गठरी हमारे सिर पर रखी हैं। कुछ ज्ञान से कुछ अज्ञान से व्यक्ति पाप करता है और जब हम प्रभु का नाम संकीर्तन करते हुए झूम-झूम कर गाते हैं, तो हमारे पापों की गठरी धड़ाम से नीचे गिर जाती है। तो प्रभु का कीर्तन आप जब करें तो झूमना चाहिए मस्ती में या उठकर नृत्य करें। इसी प्रकार से कीर्तन की तीन विशेष बातें हैं, उच्च स्वर से कीर्तन करना, तालियां बजाना, नृत्य करना। जो ऐसा करते हैं। चैतन्य महाप्रभु कहते हैं, उनके हृदय से जन्म-जन्माँतरों का पाप निकल जाता है वह परमानंद को प्राप्त करता हैं। विश्व में विजयी होता है।

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि-निर्वापणं श्रेय:
कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्वुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्।।

(श्री चैतन्य शिक्षाष्टकम्-1)

तो ये महामन्त्र का जप विदुर जी वृन्दावन में झूम-झूमकर कर रहे थे। प्रभु का नाम संकीर्तन कर रहे हैं। हरे कृष्ण महामन्त्र का जप कर रहे थे।

इधर भगवान् का वियोगी था उद्धव, जब से भगवान् अपने गोलोक धाम पधारे तब से श्रीवृन्दावन में उद्धव जी आ गए थे। आज उद्धवजी ने जब सुना कि रात्रि में

वृन्दावन में कोई भगवान् का नाम ले रहे हैं तो उनकी इच्छा हुई कि मैं भी प्रभु का नाम लूँ। विदुर जी कहते हैं। "हरे कृष्ण"। किन्तु उद्धव जी के मुख से निकल पड़ता है "हाः कृष्ण हरे कृष्ण" जोगी हैं। न कृष्ण का नाम लेते हुए रुदन करते हैं, रो रहे हैं। जब हा कृष्ण की आवाज सुनी तो विदुर जी ने कीर्तन बंद कर दिया। और उठकर के आकर देखा कि एक लता के पास बैठे हैं। "हा कृष्ण हा कृष्ण" कहकर उद्धव रो रहे हैं। उन्हें देखकर विदुर जी ने कहा कि उद्धव द्वारिका में सब ठीक है ना। मेरे नन्दनन्दन श्याम सुन्दर ठीक है ना। उद्धव जी ने कहा कि विदुर जी अब कुशल मंगल कहाँ? यादव का सूर्य अस्त हो चुका हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अपने कुल का संहार कर अपने गोलोक धाम पधार चुके हैं। अब मैं कन्हैया को कहाँ ढूंढूं। रोते-रोते श्री उद्धव जी भगवान् की बाल लीला, मथुरा लीला और भगवान् की द्वारिका लीला विदुर जी को सुना रहे हैं। इसे भागवत में कहते हैं। उद्धव भागवत्। विदुर और उद्धव की कृष्ण चर्चा को उद्धव भागवत कहते हैं।

अंत में उद्धव जी ने कहा कि विदुर जी आपको कन्हैया ने याद किया था, जिस समय प्रभु अपने गोलोक धाम में जा रहे थे आपको कृष्ण ज्ञान देना चाहते थे। वह ज्ञान मेरे पास सुरक्षित है, किन्तु मैं इस समय ज्ञान की चर्चा नहीं कर सकता हूँ, क्योंकि वृन्दावन है भक्ति प्रधान देश और आप ज्ञान भूमि हरिद्वार में जाकर मैत्रेय जी से इस ज्ञान को प्राप्त करिए। उद्धव जी को प्रणाम करके सीधे वृन्दावन से हरिद्वार चल दिए। श्री विदुर जी मार्ग में अपने परम स्नेही श्रीकृष्ण का चिन्तन करते-करते मन ही मन गुनगुनाते हुए हरिद्वार की ओर चल दिये। तो विदुर जी गुनगुनाते हुए जा रहे हैं। आप भी गुनगुनाइए-

मुझे चरणों में लगा ले श्याम मुरली वाले।
मेरी श्वास श्वास पे तेरा है नाम मुरली वाले।।
मुझे.......................................
भक्तों की तुमने कान्हा विपदा है तारी
मेरी भी बांहैं। थामो आके बिहारी।
बिगड़ी बनाई तुमने हर काम मुरली वाले
मुझे............................।।
पतझड़ है मेरा जीवन बनके बहार आ जा।
सुन ले पुकार कान्हा बस एक बार आ जा।।
बेचैन मन के तुम ही आराम मुरली वाले।

मुझे चरणो में..................।।
तुम हो दया के सागर मैं हूँ जन्मों की प्यासी।
दे दो जगह मुझे भी चरणों में बस जरा सी।।
सुबह तुम्हीं हो, तुम्हीं हो शाम मुरली वाले।
मुझे चरणों में..............।।

मैत्रेय जी के आश्रम पर जाकर विदुर जी ने मैत्रेय जी को प्रणाम किया, चरण धोए, चरणामृत लिया। चरणामृत लेकर प्रार्थना की।

अथ द्वितीयोध्याय

उद्धवजी द्वारा भगवान् की बाल लीलाओं का वर्णन

अथ तृतीयोध्याय

भगवान् के अन्य लीलाचारियों का वर्णन

अथ चतुर्थोऽध्याय

उद्धवजी से विदा लेकर मैत्रय ऋषि के पास-जाना

अथ पंचमोऽध्यायः

विदुर जी का प्रश्न और मैत्रेय जी का सृष्टिक्रम वर्णन

सुखाय कर्माणि करोति लोको न तैः सुखं वान्यदुपरामं वा।
(श्रीमद्भागवतम् 3.5.2)

विदुर जी ने प्रश्न किया कि मैत्रेय जी ये बताइए कि संसार में प्रत्येक जीव सुख के लिए कर्म करता है, सुख उसे मिलता नहीं, दुख टलता नहीं, ऐसा क्यों? और दूसरा प्रश्न मेरा है कि भगवान् है अकर्त्ता और किस प्रकार इस सृष्टि को बनाते हैं, कैसे कृष्ण कर्ता बन जाते हैं, आप कृपा करके बताइए। उस परमात्मा के बारे में ईश्वर की सृष्टि के बारे में ये प्रश्न किया गया भागवत में। तीन जगह भागवत में सृष्टि विषयक प्रश्न किए गए।

एक : नारद ब्रह्मा जी को

दूसरा : परीक्षित शुकदेव जी महाराज को

तीसरा : विदुर जी मैत्रेय जी को।

तो मैत्रेय जी ने कहा कि तुमने बहुत सुन्दर प्रश्न किया है, देखो विदुर जी मानव जीवन में तीन बातें विशेष हैं। प्रथम विचार, दूसरा कर्म, तीसरा साधना यदि व्यक्ति विचार करके कर्म करे तो उसे दुख नहीं मिलता।

विचार करें–पहले तो यही विचार करें कि संसार में हमें मानव शरीर क्यों मिला? शरीर तो अन्य भी हैं, दूसरा भी हैं। कीट–पतंग अनेक प्रकार के जीव के विभाग देखने को मिलते हैं। भागवत में, अन्य ग्रन्थ में लिखा है कि चौरासी लाख योनियां जीव को भोगनी पड़ती हैं। अंत में मानव शरीर मिलता है।

"जलजानौलखानि – स्थावरालक्षविंशति,
क्रीमोरुद्र शंका – पक्षीनांदशलक्षाणाम्
त्रिसंलक्षाणि पशवः – चर्तुलखानि मनुष्याः।"

जो साधन धाम मोक्ष की द्वारा यह मानव शरीर है, मैत्रेय जी महाराज कहते हैं। हमें विचार करना चाहिए कि हमें मानव शरीर क्यों मिला? केवल संसार के कार्य के लिए ही नहीं। व्यापार करो, नौकरी करो, घर के काम धंधे भी करना ही हैं। यदि नहीं करेंगे तो एकक्षण भी हमारा जीवन नहीं चल सकता। जीविका के लिए हमें अर्थोपार्जन करना ही पड़ेगा। घर का काम धंधा करना भी आवश्यक हैं। घर का कार्य करते समय और नौकरी, व्यापार करते समय यदि हम परमात्मा को ईश्वर को भूल जाएं तो यह बड़ी कष्टदायक स्थिति है, मान लीजिए। यह दुख का विषय है कि जीव परमात्मा को भूल बैठा हैं। ईश्वर को भूल बैठा हैं। सन्त जन कहते हैं। सबके लिए हमारे पास समय होता हैं। परन्तु ब्रह्म के लिए परमात्मा के लिए ईश्वर के लिए हमारे पास समय नहीं है।

मैत्रेय जी विदुर जी को कहते हैं कि आप विचार करें, कि जीव के रूप में संसार में क्यों आये हो? विचार करके कर्म करे तो उसे दुख नहीं भोगना पड़ता। मैत्रेय जी महाराज कहते हैं, विदुर आप तो साक्षात् धर्मराज का अवतार हैं। मंडव्य ऋषि के श्राप से आपको दासी के घर में जन्म लेना पड़ा, विदुर आप साक्षात धर्मराज हैं, आपके लिए इस प्रकार प्रश्न करना बहुत ही औचित्य है।

माण्डव्यशापाद्भगवान्प्रजासंयमनो यमः।
भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवतीसुतात्।

(श्रीमद्भागवतम् 3.5.20)

विदुर आपने जो सृष्टि के बारे में प्रश्न किया है उसके लिए मैं आपको एक कथा सुनाता हूँ–

सबसे पहले भगवान् की नाभि में कमल निकला, कमल के फूल से ब्रह्मा जी की उत्पति हुई और ब्रह्माजी ने मानस चार पुत्र उत्पन्न किए। सनक, सनंद, सनातन और सनत्कुमार। इन चारों ब्रह्मा जी के पुत्रों को मानस पुत्र कहते हैं। श्री ब्रह्माजी ने चारों पुत्रों को कहा कि तुम सृष्टि को उत्पन्न करो। चारों ने कहा हम सृष्टि के चक्कर में नहीं पड़ेंगे, ईश्वर का चिन्तन करेंगे। ब्रह्माजी ने विचारा कि मेरे ही पुत्र मेरी बात नहीं मानते, उन्हें क्रोध आया और भृकुटी टेढ़ी की तो उनकी भौंहों से एक बालक जन्म हुआ जिसका नाम पड़ा रुद्र। ये रुद्र भगवान् शिव के स्वरूप हैं, बोलो रुद्र भगवान् की जय।

इन्हें ग्यारह स्थान तथा ग्यारह स्त्रियां प्रदान की ब्रह्माजी ने और सृष्टि को बढ़ाने के लिए प्रेरणा दी। स्त्रियों को प्राप्त करके शिव अवतार रुद्र सृष्टि बढ़ाने लगे। एक दिन ब्रह्माजी ने रुद्र से कहा बेटे हमें अपनी सन्तान का दर्शन कराओ। तो रुद्र भगवान् ने जो भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी बनाया था उन सबको लेकर शाम के समय रुद्र भगवान् आकर ब्रह्माजी को दर्शन दिया। ब्रह्माजी ने कहा बेटा रुद्र ये तेरी सन्तान हैं।

रुद्र ने कहा–देखिए पिताजी कितना सुन्दर हैं। भगवान् रुद्र अपने पुत्रों का वर्णन ब्रह्मा जी को बता रहे हैं, कोई इतना लम्बा कि यदि सिर पर टोपी पहना हो तो टोपी खिसक जाए शक्ल दिखाई नहीं देगी। कोई इतना छोटा कि सूक्ष्म यंत्र से दिखाई नहीं देगा। जब ब्रह्माजी ने इन भूतों को देखा तो कहा ये सब तुम्हारी सन्तान हैं? भगवान् रुद्र ने कहा पिताजी देखिए कितनी सुन्दर हैं। अब अपनी सन्तान किसे अच्छी नहीं लगती चाहे कैसी भी हो। ब्रह्मा जी ने कहा ये तेरी सन्तान, मेरी सन्तान को भी नष्ट कर देगी। देखो बेटा तुम भूत सृष्टि बंद कर दो। ब्रह्मा जी की आज्ञा से रुद्र अवतार ने भूत सृष्टि को बंद कर दिया। ब्रह्मा जी ने अपनी सृष्टि में फिर दस पुत्र उत्पन्न किए। भृगु, मारीचि वसिष्ठ, नारद आदि।

अथ षष्ठोऽध्यायः

विराट् शरीर की उत्पत्ति

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्वसिष्ठौ दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः।।

(श्रीमद्भागवतम् 3.12.22)

ब्रह्मा जी ने उन पुत्रों को भी सृष्टि बढ़ाने की आज्ञा दी। अपनी–अपनी सत्ता, सामर्थ्य के अनुसार सृष्टि बढ़ाए। परन्तु उन्होंने भी कहा कि पिताजी हम सृष्टि के चक्कर में नहीं पड़ेंगे केवल ईश्वर चिन्तन करेंगे। जो वैष्णव होते हैं। सन्त होते हैं। वे सृष्टि का चिन्तन नहीं करते वे तो ईश्वर का चिन्तन करते हैं। ब्रह्माजी एक दिन प्रसन्न मुद्रा में बैठे सोच रहे थे कि कैसे सृष्टि बढ़े, उनके चिन्तन करते ही परमात्मा भगवान् की इच्छा से दो भाग हो गये एक भाग ने पुरुष रूप धारण किया जो मनु महाराज के नाम से जाने जाते हैं और दूसरा भाग शतरूपा बनी। सुन्दर मुहुर्त में ब्रह्मा जी ने इस जोड़ी का दर्शन किया और झट दूसरा शरीर धारण करके दोनों का पाणिग्रहण संस्कार कर दिया। ब्रह्मा ने कहा कि, बेटा मनु आप सृष्टि को उत्पन्न करें। यही मनु और शतरूपा मानव समाज की प्रथम मानवीय जोड़ी हैं, मानवीय शरीर है, हम सब मनु के वंशज हैं। इसलिए हम अपने को मानव कहते हैं। मनु के जीवन में जो–जो महान विभूतियां आईं उन्होंने महान मानवता का परिचय दिया। मनु ने कहा पिताजी आपकी सृष्टि है जल में। आप जल के ऊपर पद्म में बैठे हैं। सर्वत्र जल ही जल हैं। मुझे सृष्टि को बढ़ाने के लिए पृथ्वी की आवश्यकता है, आप पृथ्वी को लाकर प्रदान करें।

ब्रह्मा जी सोच में पड़ गए गंभीर चिन्तन करने लगे, ब्रह्मा जी ने कहा कि आदि दैत्य हिरण्याक्ष इतने बलवान थे कि सारी पृथ्वी को घसीटकर रसातल में ले गए। कैसे पृथ्वी का उद्धार करूँ। ब्रह्माजी महाराज विचार कर रहे थे। इतने में ब्रह्मा जी को छींक आ गई। उनकी नसिका से एक कीड़ा निकला और देखते–देखते उसने विशाल रूप धारण कर लिया। उस विशाल रूप का दर्शन करते ब्रह्मा जी समझ गए कि यह यज्ञ पुरुष वराह देव हैं। बोलिए वराह देव भगवान् की जय। साक्षात् वराह भगवान् प्रकट हुए। देवताओं ने पुष्पवर्षा की। ब्रह्मा जी ने प्रार्थना की कि प्रभु आप पृथ्वी का उद्धार करें। पृथ्वी का उद्धार करने के लिए वाराह भगवान् रसतल की ओर चल दिए।

राज परीक्षित ने प्रश्न किया कि महाराज ये बताइए कि आदि दैत्य हिरणाक्ष कौन है जो इतना बड़ा बलवान था कि सारी धरती को घसीटकर रसातल में ले गए। उनके बारे में कृपा करके बताइए तो श्री शुक देव जी महाराज कहते हैं कि राजन–

पूर्व जीवन में ये भगवान् के पार्षद थे जय–विजय। एक बार चर्तुकुमार भगवान् के दर्शन के लिए वैकुण्ठ की ओर गए। वैकुण्ठ धाम अतिदिव्य धाम हैं। वहाँ एक बार जीवात्मा पहुँच जाती हैं, वापिस नहीं आतीं। भगवान् का महान दिव्य धाम हैं। वहाँ जन्म, मृत्यु, जरा व्याधि नहीं। एक बार जाने के बाद जीव को दोबारा आना नहीं पड़ता। भगवान् की कृपा से आत्मा मुक्त होकर विचरण करती है। भगवान् के ध्यान

में मग्न रहते हैं। किसी प्रकार की कुंठा नहीं हैं। उस धाम को वैकुण्ठ बोलते हैं। उस धाम में भगवान् का दर्शन करने के लिए सनकादि ऋषि जब पहुँचे तो वैकुण्ठ में सात द्वार पार करने के बाद ही भगवान् का दर्शन मिलता है। तब जाकर ही भगवान् का दर्शन होता हैं। ये सात द्वार हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरता और अहंकार। जब सात द्वार जीव पार कर जाता है, तब गोविंद का दर्शन प्राप्त होता है यानि भक्तों को इन सातों स्थितियों से मुक्त होकर ही भगवान् को प्राप्त होते हैं। सनकादिक ऋषि छह द्वार पार कर गए। जब सातवें द्वार पर पहुँचे तो भगवान् के पार्षद जय विजय खड़े हैं। उन्हें छड़ी लगा दी। अंदर नहीं जाने दिया। भगवान् के पार्षदों को देखकर सनकादि ने श्राप दिया कि दुष्ट तुम भगवान् के द्वार पर खड़े हो हमें दर्शन नहीं करने देते हो जाओ तुम राक्षस बन जाओ।

जब भगवान् ने सुना कि मेरे पार्षदों को श्राप दे दिया, तो भगवान् लक्ष्मी जी सहित द्वार पर आ गए। आकर भगवान् ने प्रणाम किया सनतकुमारों को और कहा कि आपने मेरे पार्षदों को श्राप देकर कृपा की। उन्होंने अपराध किया तो दंड मिलना ही चाहिए। परन्तु सनतकुमारों ने कहा कि नहीं प्रभु हमने तो बड़ी गलती कर दी। हमें अहंकार हो गया था और हमने आपके पार्षदों को श्राप दे दिया, भगवान् ने कहा कि ये तो मेरी ही प्रेरणा से लीला हो रही है, मैंने ही तुम्हें क्रोध दिलाया था। यानि कि इनको तीन जन्मों तक असुर बनना पड़ेगा। इनका उद्धार करने के लिए मैं भी जन्म लूंगा। देखिए भगवान् के अवतार के लिए कोई न कोई कारण होता हैं। तो प्रथम अवतार भगवान् ने धारण किया वराह। हिरणाक्ष और हिरण्याकश्यपु का उद्धार करने के लिए भगवान् ने वराह और नृसिंह रूप धारण किया और दूसरे जन्म में ये बने रावण और कुम्भकण र्ा तो भगवान् श्रीरामचन्द्र का अवतार हुआ। बोलिए राजा राम चन्द्र की जय। तीसरे जन्म में शिशुपाल और दन्तवक्र बने तो भगवान् श्याम सुन्दर का अवतार हुआ। इन जय-विजय पार्षदों ने ही दीति के गर्भ में प्रवेश किया। देखिए यहाँ भक्त तीन बार जन्म लेते हैं। परन्तु इनके उद्धार के लिए भगवान् को चार बार अवतार लेना पड़ा। हिरणाक्ष का उद्धार करने के लिए भगवान् को वराह रूप, हिरण्यकश्यपु का उद्धार करने के लिए नृसिंह रूप, रावण कुम्भकर्ण का उद्धार करने के लिए राम रूप और शिशुपाल, दन्तवक्र का उद्धार करने के लिए कृष्ण रूप धारण करना पड़ा। भक्तों को चाहें। शत्रु हो या मित्र हो किसी भी भाव से भगवान् लीला के माध्यम से चाहे चार बार ही क्यों न अवतार लेना पड़े। भगवान् अति कृपालु, अति दयालु भक्तों का उद्धार करते हैं।

अथ सप्तमोऽध्यायः

विदुरजी के प्रश्न

अथाष्टमोऽध्यायः

ब्रह्मा जी की उत्पति

अथ नवमोऽध्यायः

ब्रह्मा जी द्वारा भगवान् की स्तुति

अथ दशमोऽध्यायः

दस प्रकार की सृष्टि का वर्णन

अथै कादशोऽध्यायः

मन्वन्तरादि काल विभाग का वर्णन

अथ द्वादशोऽध्यायः

सृष्टि का विस्तार

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

वराह अवतार की कथा

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

दितिका गर्भ धारन

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि राजन् एक दिन कश्यप जी जो देवता और दैत्य के पिता हैं। शाम के समय, संधि काल के समय अपनी पत्नी दीति के आश्रम पर गए, कामत्त दीति ने कश्यप जी को समागम की इच्छा प्रकट की। कश्यप जी ने कहा कि देखो दीति यह संधिकाल का समय है, दोनों वक्त मिले हैं, संधिकाल के समय व्यक्ति को चार वस्तुओं का त्याग करना चाहिए। कौन–कौन–सी वस्तु?

"चत्वारि कौलू कर्माणि – सन्ध्याकाले विसर्जेत्।
आहारं, मैथुनम्, निद्रा –सअध्ययनच चतुथकम्।।

1. संधिकाल में व्यक्ति को भोजन नहीं करना चाहिए, इससे उदर विकार होता हैं। पेट में अनेक रोग हो जाते हैं। शाम के वक्त भोजन मत करो।

2. शाम के समय मैथुन नहीं करना चाहिए। इससे दुष्ट सन्तति उत्पन्न होती है।

3. शाम के वक्त व्यक्ति को सोना नहीं चाहिए, इस समय सोने से आंखों की ज्योति कम हो जाती है।

4. शाम की बेला में विद्यार्थी को अध्ययन भी नहीं करना चाहिए। इस समय अध्ययन करने से जो पुस्तक पढ़ी है, याद किया है विस्मरण हो जाता है।

तो शाम के समय ये चारों चीजें शास्त्रों के अनुसार वर्जित हैं।

शाम की बेला भगवान् शिव की बेला हैं। भगवान् शिव और पार्वती दोनों विचरण करते हैं और भगवान् शिव देखते हैं कि कौन जीव कौन–से कर्म में लगे हैं। व्यक्ति को भगवान् उसके कर्म के अनुसार गति भी प्रदान करते हैं। कश्यप जी ने कहा कि दिति देखो यह समय ठीक नहीं है।

"एषा घोरतमा वेला घोराणां घोरदर्शना।
चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह।।"

(श्रीमद्भागवतम् 3.14.23)

यह भगवान् भूतनाथ का समय है। देवी, इस समय को छोड़कर तुम धैर्य धारण करो, उचित समय पर मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करूँगा और सुनो दिति–

"देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते"

(श्रीमद्भागवतम् 3.14.25)

आपके देवर और आपके ससुर भगवान् शिव के विचरण करने का समय हैं। आप धैर्य धारण करें, परन्तु दिति ने अपने पति की बात नहीं मानी। ब्रह्मचर्य नष्ट किया। कश्यप जी ने दिति को श्राप दिया। अरे दुष्टा जा तेरे गर्भ से दुष्ट बालक उत्पन्न होंगे। जो ब्रह्मघाती होंगे। गौघाती होंगे। अनेक पाप–कर्म में रत होंगे।

दिति ने पति के चरण पकड़ लिए कहा महाराज मेरे अपराध का क्षमा करें। कश्यप ने कहा कि दिति तूने अपराध किया अब क्षमा माँग रही हैं। प्रसन्न होकर कश्यप जी ने कहा देख दिति जो हमारे यहाँ पौत्र होगा उसका नाम होगा प्रह्लाद वह सारे कुल को पवित्र कर देगा।

"स वै महाभागवतो महात्मा"

(श्रीमद्भागवतम् 3.14.48)

प्रह्लाद जी के बारे में क्या कहें, वह तो साक्षात् भगवान् के परम् भक्त हैं। महाभागवत हैं। कश्यप जी ने इतना कहकर दिति को आशीर्वाद भी दिया और कश्यप जी के द्वारा दिति का गर्भ धारण भी हुआ। दिति के गर्भ से भगवान् के पार्षद जय-विजय यही आज दो रूप में प्रकट हुए हिरणाक्ष और हिरण्यकश्यपु।

हिरणाक्ष इतना बलवान था कि सारी पृथ्वी को घसीटकर रसातल में ले गए। जिस समय ब्रह्माजी सृष्टि की रचना में तल्लीन हैं, उसी समय हिरणाक्ष पृथ्वी को घसीटकर रसातल में ले गए थे। आज भगवान् पृथ्वी का उद्धार करने के लिए वाराह रूप में जा रहे हैं। बोलो वराह भगवान् की जय। और भगवान् ने अपनी दाढ़ से पृथ्वी को उठा लिया लेकर चलने लगे, तो उधर से नारद जी के द्वारा हिरणाक्ष को खबर लग गई कि भगवान् पृथ्वी को निकालकर ले जा रहे हैं। तुरंत हिरणाक्ष रसातल में पहुँच गए और आवाज लगाई कि अरे विष्णु, अरे वराह चोरों की भांति हमारी पृथ्वी का हरण करके ले जा रहे हो यदि ताकत है तो मेरे साथ युद्ध करो, भगवान् ने देखा कि ये दुष्ट मेरे साथ युद्ध करने आ गया है।

तो दिखाएं दो-दो हाथ। भगवान् ने पृथ्वी को अपनी दांत से निकालकर जल में रख दिया। और भगवान् खड़े हो गए युद्ध करने के लिए। पंजे से पंजा लगा रहे, जंघा से जंघा प्रभु लड़ रहे हैं। दुष्ट हिरणाक्ष के साथ भीषण युद्ध हो रहा हैं। अंत में एक मुष्टि का प्रहार प्रभु ने कंठस्थल पर किया। झट शरीर से आत्म ज्योति निकली और भगवान् के शरीर में विलीन हो गई। बोलिए वराह देव भगवान् की जय।

भगवान् ने पृथ्वी का उद्धार करके ब्रह्माजी को पृथ्वी प्रदान कर दी। ब्रह्मा जी ने अपने पुत्र मनु को दी और मनु जी महाराज ने मैथुन धर्म से पाँच सन्तान उत्पन्न किया। जिसमें तीन पुत्री और दो पुत्र हैं। प्रियवर्त और उत्तानपाद दो पुत्र, आकूति, देहूति, प्रसूति तीन बेटियां। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन् ब्रह्माजी की छाया से भी एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम था 'कर्दम'। एक कर्दम ऋषि 10,000 वर्ष से सरस्वती नदी के तट पर भगवान् के लिए प्रार्थना कर रहे थे। जिन्हें भगवान् ने दर्शन दिया और भगवान् का दर्शन करके कर्दम ऋषि ने भगवान् की स्तुति की–

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

जय-विजय को सनकादिका शाप

अथ षोडशोऽध्यायः

जय-विजय का वैकुण्ठ से पतन

अथ सप्तदशोऽध्यायः

हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष का जन्म तथा हिरण्याक्ष की दिग्विजय

अथाष्टादशोऽध्यायः

हिण्याक्ष के साथ वराह भगवान् का युद्ध

अथैकोनविंशोऽध्यायः

हिरण्याक्ष वध

अथ विंशोऽध्यायः

ब्रह्माजी की रची हुइ अनेक प्रकार की सृष्टि का वर्णन

अथैकविंशोऽध्यायः

कर्दम जी की तपस्या और भगवान् का वरदान

"जुष्टं बताद्याखिलसत्त्वराशेः
सांसिद्ध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः।"

(श्रीमद्भागवतम् 3.21.13)

कर्दम ऋषि ने भगवान् के चरणों में प्रणाम किया और कहा कि प्रभु आज मेरे ऊपर आपने कृपा की है, मैं कितना बड़भागी हूँ, जो इन चक्षु से मैं आपका हे गोविन्द, हे कृष्ण मैं आपका दर्शन कर रहा हूँ, बड़े-बड़े योगी जन जीवन पर्यंत आपका जप करते हैं, नाम लेते हैं। किन्तु अन्त में उनके मुख से आपका नाम नहीं निकलता। गोस्वामी जी कितना सुन्दर लिखते हैं।

कीर्तन

"जन्म-जन्म मुनि जतन कराई
अन्त राम कहि आवत नाहि।।"

अन्त में किसी के मुख से राम नाम निकलते हैं? भैया जो कर्दम हैं। कर्दम कहते हैं, जितेन्द्रिय को, जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर रखा है, जो दशरथ हैं। देखिए रामचरित मानस में महाराज दशरथ के मुख से क्या निकला?

राम – राम कहि राम कहि
राम राम कहि राम।
तन पर हर रघुबर बिरह
राऊर गए सुख धाम।।

तो अन्त में महाराज दशरथ के मुख से प्रभु राम का नाम निकला। भगवान् राम के पिता दशरथ ही नहीं हैं, दशरथ कौन है? जो जितेन्द्रिय हैं। ये दस घोड़े लगे हैं। अश्व लगे हैं। पाँच कर्मेन्द्रियां, पाँच ज्ञानेन्द्रियां, जिस पर ये जीवात्मा बैठी हैं। जीव बैठा है, जो दसरथी हैं। तो जिसने अपनी इन्द्रियों को बस में कर रखा है वह अन्त में भगवान् राम का, कृष्ण का नाम निकाल पाता हैं। कर्दम ने कहा कि, प्रभु आपने मेरे पर कितनी कृपा की जो इस चरम चक्षु से भी आपके दर्शन किया हैं। भगवान् कहते हैं, कर्दम जी आप हमसे वर माँग लीजिए। कर्दम जी ने कहा कि प्रभु मेरी कोई इच्छा नहीं है, परन्तु भगवान् कहते हैं। कि

विदित्वा तव चैत्यं में पुरैव समयोजि तत्।

(श्रीमद्भागवतम् 3.21.23)

यदि आप नहीं माँगते अपनी ओर से तो मैं आपके मन की बात को जानता हूँ, आप तपस्या करके उठे हैं तो बताइए आपके मन में गृहस्थ जीवन के सुख की इच्छा हुई या नहीं। कर्दम ऋषि कहते हैं कि आप सब कुछ जानते हैं। भगवान् ने कहा मैंने इसी के अनुरूप सारी व्यवस्था कर दी हैं। आज से तीसरे दिन आपके आश्रम पर मनु जी अपनी बेटी देहुति को लेकर आएंगे और आपके साथ पाणिग्रहण संस्कार करेंगे। आपके यहाँ नवकन्याओं का जन्म होगा। नौ कन्याओं का जन्म होगा। जैसे ही नौ कन्याओं का नाम लिया तो कर्दम जी ने कहा कि प्रभु कहाँ संसार के चक्कर में फंसा रहे हो? एक बेटी बहुत भारी होती हैं। वर अच्छा मिले तो दहेज का प्रबंध नहीं होता और यदि दहेज का प्रबंध होता तो वर अच्छा नहीं मिलता। यानी कि एक ही बेटी कितनी भारी होती है और आप कह रहे हैं। नौ कन्या? ये नौ कन्या क्यों दे रहे हो?

परन्तु भागवत कहती है कि जब तक नौ कन्याओं का जन्म नहीं होता आगमन नहीं होता, तो भैया उस घर में भगवान् का ज्ञानावतार नहीं होता। ये नौ कन्या कौन–कौन हैं? श्रीमद्भागवत जी में प्रह्लाद जी महाराज बता रहे हैं कि–

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।"

(श्रीमद्भागवतम् 7.5.23)

ये भगवान् की नौ प्रकार की भक्ति है, इसे कहते हैं। नवधा भक्ति। रामचरित मानस में भी गोस्वामी तुलसी दास जी ने नवधा भक्ति का वर्णन किया है। प्रथम भक्ति क्या है? प्रथम भक्ति 'सन्तनकर संगा' और भैया सन्त की महिमा क्या बताएँ, गोस्वामी जी मानस में लिखते हैं–

"राम सिन्धु धन सज्जन धीरा चन्दन तरु हरि सन्त समीरा"

राम जी कैसे हैं? कि सिंधु के समान गंभीर लेकिन धीर और सज्जन हैं। राम जी चन्दन के तरु के समान सुगंधित हैं। परन्तु उस सुगंधित चन्दन को जन मानस पर लाने के लिए हवा की जरूरत है और वह हवा वह समीर सन्त हैं। तो भैया प्रथम भक्ति करो सन्त की। रामकथा, कृष्ण कथा सुनने को मिलती है इसलिए सन्त का संग करो।

दूसरी है : 'रति ममकथा प्रसंगा' सन्त के मुख से मेरे कथा प्रसंग को सुनते–सुनते रति हो जाएगा। मेरे शौर्य वीर्य की गाथा कथा सन्तों के मुख से श्रवण करते–करते आसक्ति हो जाए, रति हो जाए ये दूसरी भक्ति।

तीसरी है : 'गुरु पद पंकज सेवा' तीसरी भक्ति महान, तीसरी भक्ति है गुरु के चरण कमल की सेवा। अभिमान त्याग कर अमानी होकर।

चौथी : 'भक्ति मम गुन गान करई कपट तजिगान', चौथी भक्ति है कपट भाव छोड़कर निर्भय होकर मेरा गुण कीर्तन करना।

पाँचवीं : 'मन्त्र जप मम दृढ़ विश्वास।' पंचम भजन सो वेद प्रकाशा' पाँचवी भक्ति है जो वेद शास्त्र में प्रकाश होता हैं। वेदशास्त्र कहते हैं। पंचम भक्ति मेरे नाम में विश्वास लेकर दृढ़ता से विश्वास करना।

छठा : 'दमशील विरति बहुकर्मा,' निरत निरंतर सज्जन धर्मा। छठी भक्ति में विश्वास है देवता के साथ शीलवन्त होकर निरंतर भगवान् का ही काम करते रहना और सज्जन धर्म को निभाना। जीवन में सज्जनता को स्थान देना।

सातवां : "सातवां सम महिमय जग देखा"

जगत के सब में मैं हूँ यह देखो और सुनो "मोते सन्त अधिक करि लेखा" और देखो, मेरे ये अधिक, जो मेरे सनत को मानते हैं। वही सातवीं भक्ति है।

आठवीं : "जथा लाभ सन्तोष" अर्थात जो भी मिले उसमें सन्तुष्ट रहना लालच नहीं करना यही आठवीं भक्ति। देखो "सपनेहु नहीं देखी पर दोष।" भैया सपने में भी दूसरे को दोष नहीं देखना, बोलना।

नौवां : "नवम् सरल सब सन् छल हीना" नौवी भक्ति है सरल भाव है, सबके

साथ छलहीन प्रवृति रखना है और "मम भरस हिय हरस न दीना" मेरा भरोसे में रहना और प्रसन्न रहना गोस्वामी तुलसीदास जी अन्त में सुन्दर बातें कहते हैं।

"नवमहु एकहु जिनके होइ नारि पुरुष सचरचर कोई"

ये नौ प्रकार भक्ति जिनमें दिखाई देती है वे सबसे उत्तम माने जाएँगे। लेकिन ऐसे नवगुण नवधा भक्ति किसी नारी, पुरुष में मिलना कठिन हैं। तो भैया नवधा भक्ति – प्रथम है श्रवणम् श्रवण – करिए किसके – द्वारा – सन्त के द्वारा, सन्त का। संग करोगे, वैष्णव का संग करोगे, रसिक का संग करोगे तो आपको हरिकथा सुनने को मिलेगा। आप जो कथा सुन रहे हैं। ये भगवान् की भक्ति कर रहे हैं। भगवान् की कथा कानों से सुनना भगवान् की भक्ति हैं। सुनकर गुनगुनाए जिसे कहते हैं। कीर्तन वह कीर्तन भक्ति है जैसे कि भागवत के बीच में आप कीर्तन भक्ति भी करते हैं।

संकीर्तनम्

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारी।
हे नाथ नारायण वासुदेव।।

ये भगवान् की 'कीर्तन' भक्ति हैं। इसे कहते हैं। कीर्तनम्।

विष्णु 'स्मरणम्' आंखें बंद करके प्रभु को स्मरण करना ये प्रभु स्मरति हैं। आगे है "पाद सेवनम्", पाद सेवन भक्ति कहते हैं। अपने गुरु के, प्रभु चरणों की सेवा। साक्षात् गुरु, परमात्मा, भगवान् के रूप में है भगवान् कहते हैं। "आचार्यमां विजानीयत्"। हे भक्त, मैं ही आचार्य के रूप में हूँ, जिनको भागवत् दर्शन करना है पहले गुरु की आचार्य की सेवा करे। इसे कहत हैं। पाद सेवन भक्ति।

अब है 'अर्चनम्': यानि पूजा करना, अर्चना करना, वन्दनम् यानि वन्दना करना। ये भगवान् की वन्दना भक्ति है।

"दस्यां" : यह भाव रखना इष्ट के प्रति कि आप मेरे नाथ हैं। मैं आपका दास हूँ।

"सख्यं" : माने सखा भाव, अन्त में 'आत्मनिवेदन' अपने आपको प्रभु के चरण में न्यौछावर कर देना। देखिए नवधा भक्ति के नौ भक्त बताया भक्त माल के अंदर। नाभाजी एक संत हुए हैं। ब्रज में, जिन्होंने लिखा है "भक्तमाल" ग्रन्थ जो प्रमाणिक ग्रन्थ है "नाभाकृत भक्तमाल" और जिसमें नौ भक्ति बताई है, कौन-कौन-सी भक्ति। जहाँ श्रवण भक्ति की जाती है वहाँ सबसे पहले नाम आता श्रवणम् माने सुनना तो नाम आता है महाराज परीक्षित का – यानि सबसे पहले हम परीक्षित को याद करते हैं, जो सात दिन तक भागवत कथा धाराप्रवाह सुनते रहे और शुकदेव जी महाराज

कथा सुनाते रहें।

कीर्तनम् : कीर्तन भक्ति में सबसे पहला नाम आता है श्री शुकदेव जी महाराज का जो परीक्षित महाराज को लगातार कथा सुनाते रहें।

विष्णु स्मरणम् : स्मरण भक्ति में नाम आता है श्रीप्रह्लाद जी का जिन्होंने जीवन भर भगवान् का स्मरण किया, सब जगह हरि का दर्शन करते थे, हर वस्तु में भगवान् की उपस्थिति का अनुभव करते थे।

पादसेवनम् : पाद सेवन भक्ति में नाम आता है श्री लक्ष्मी जी का जो अपने पति भगवान् नारायण की चरण सेवा करती हैं, भगवान् को एक क्षण के लिए भी कहीं जाने का मौका नहीं देती। श्री लक्ष्मी जी निरंतर सेवा करती रही हैं।

अर्चनम् : अर्चनम् भक्ति का नाम आया है श्रीमद्भागवत में राजा अम्बरीश का। अम्बरीश महाराज अपने राजपाट से युक्त होते हुए भी भगवत सेवा में अपनी समस्त इन्द्रियों को लगाए रहते थे। यानि कि सभी इन्द्रियों का प्रयोग करते थे भगवत की सेवा में।

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो–र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये।।

(श्रीमद्भागवतम् 9.4.18)

वन्दनम् : वन्दनम् भक्ति का नाम आया है, श्री अक्रूर जी का– "ममत्व मंगलम् अष्टम् परमाश्चभव।" भगवान् हमारा सर्वत्र मंगल करेंगे यह भाव रहना चाहिए। अक्रूर जी भगवान् का वन्दनम् भक्ति किया है।

दास्यम् : दास भाव, सेवक भाव। दस्यम् मैं तो हमारे पवनसुत हनुमान जी हैं। बोलिए बजरंग बली हनुमान की जय जिनका भाव है दस्य। जो रघुपति रामचन्द्र भगवान् का प्रिय भक्त है।

"रघुपति प्रियभक्तम् वातजातं नमामि।" हम सभी उस रघुपति का प्रिय भक्त को प्रणाम करते हैं।

साख्यं : भैया साख्यं में तो अर्जुन है, जिन्हें भगवान् गीता श्लोक प्रदान किए हैं, सख्य भक्ति में, प्रिय भाव में जिन्हें भगवान् कहते हैं। "भक्तोऽसि मे सखा चेति" भक्तों में मेरा प्रिय भक्त और सखा है वह अर्जुन ही है।

आत्मनिवेदनम् : जिसे कहते हैं। अपना तन, मन, धन अपने ठाकुर को समर्पित करना। आत्मनिवेदन करना।

भैया तन को पवित्र कियो सेवा किए, मन पवित्र कियो हरि भजन से–
धन पवित्र कियो दियो धन– यही विधि होवे कल्याण।

देखिए आप लोग जब आरती करते हैं। तो क्या कहते हैं। ओउम जय जगदीश हरे। अन्त में क्या कहते हैं।

तन मन धन सब कुछ तेरा और क्या लागे मेरा।

कभी कोई पूछता है तो क्या कहते हैं। ये मेरा पुत्र है, मेरा पति है, मेरा मकान है वहाँ पर हम सब कहते हैं। यह सब प्रभु का है बिहारी जी का हैं और जब आरती करते हैं। तो प्रेम से कहते हैं। सब है तेरा। कथनी करनी में अंतर हो रहा है भगवान् के सामने कुछ और कहते हो पीछे कुछ।

भगवान् आपसे कुछ लेने नहीं आए बस केवल एक भाव रखें कि अपने तन में अपने गोविन्द का दर्शन करें। अपने मन में भी श्रीकृष्ण का दर्शन करिए और धन में भी अपने प्रभु का दर्शन करिए। जो तन में, मन में, धन में अपने ठाकुर का दर्शन करते हैं। वे ही भगवान् की आत्मनिवेदन भक्ति हैं। राजा बलि ने भगवान् को आत्मनिवेदन भक्ति के द्वारा प्रसन्न किया। ये नवधा भक्ति के स्वरूप ही नव कन्याएं हैं।

तो कर्दम जी महाराज ने भगवान् से कहा कि प्रभु एक कृपा करिए ये तो आपने अपनी ओर से वरदान दिया ना, अब मैं भी कुछ माँग लूं। तो भगवान् ने कहा कर्दम जी माँगिए – क्या चाहिए? कर्दम जी ने कहा प्रभु मेरी इच्छा है कि आप जैसा पुत्र मेरे घर में जन्म ले। आपके जैसा बालक मेरे घर आए। भगवान् ने कहा कि कर्दम जी मेरे जैसा संसार में मैं ही हूँ और दूसरा नहीं हो सकता अतएव मैं ही तुम्हारे घर पुत्र बनकर आऊँगा।

"ममैवांश जीव लोके जीवभूत सनातन:"

ये जीव भगवान् का अंश है न कि अंशी। समस्त जगत में जितने जीव दिखाई देते हैं। मेरे अंश हैं। ये सब जीव सनातन हैं। "ईश्वर अंश जीव अविनाशी" जीव ईश्वर का अंश है कभी भी नष्ट नहीं होने वाला। नष्ट तो शरीर होता है जीव के अंदर तो आत्मा है, वह नष्ट नहीं होती। परन्तु भगवान् का अंश है ये जीव, परमात्मा नहीं। ईश्वर नही।"

भागवत में स्वयं भगवान् इस बात का प्रमाण प्रकट कर रहे हैं। कि

सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने।
तव क्षेत्रे देहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम्।।
(श्रीमद्भागवतम् 3.21.32)

तो भगवान् कहते हैं, मैं आपके यहाँ पुत्रस्वरूप में जन्मग्रहण करूँगा और "प्रणेष्येतत्त्वसंहिताम्" अपनी माँ को तत्वसंहिताम् का उपदेश प्रदान करूँगा। इतना कहकर भगवान् अर्न्तध्यान हो गए।

भगवान् को प्रणाम करके कर्दम जी अपने आश्रम बिन्दु सरोवर लौटे और भगवान् की प्रेरणा से ही जैसाभगवान् ने मार्गदर्शन दिया वैसा ही अनुसरण करने लगे।

जब कर्दम जी लौटे अपने आश्रम पर। कर्दमजी ने सोचा कि आज से तीसरे दिन मनु जी आश्रम पर आएंगे अपनी बेटी देवहुति को लेकर। लेकिन कन्या पक्ष के लोग वर दक्ष की दो बातें विशेष देखते हैं। पहला देखा जाता है वर, दूसरा घर। यानि लड़का कैसा है? खानदान कैसा है? तो कर्दम जी ने कहा, जैसा हम हैं ठीक है। वर तो जैसा है ठीक है परन्तु घर भी नहीं है हमारे पास। अरे लड़की का पिता आएगा तो घर भी देखेगा ना?

तो कर्दम जी ने एक दिन लगाकर सारी पर्णकुटी तैयार कर दी। अब जब दूसरे दिन निकल आया तो कर्दम जी ने कहा हमें स्वागत भी करना हैं। व्यवहार भी निभाना हैं। जब गृहस्थ में आए हो तो व्यवहार भी निभाना पड़ेगा। व्यवहार को भी बड़ी कुशलता से निभाओ। कर्दम जी आज व्यवहार को निभाने के लिए वन में गए और वन से कंद मूल तोड़ लाए हैं। घर में मनु जी आएंगे। उनका हम स्वागत करेंगे। हमारे ससुर जी हैं। ससुर भी पूजनीय होता है ना, उनका स्वागत सत्कार करेंगे। तो सुन्दर कन्द मूल तोड़कर लाये। जब तीसरो दिन हुआ तो कर्दम जी ने कहा कि भगवान् ने तो आज का ही दिन लिया था, तो आज ही मनु जी आएंगे। परन्तु अभी तक तो आए नहीं। चलो थोड़ी देर हम भगवान् का भजन कर लें तो अपनी माला उठाकर भजन करने लगे।

श्रीकृष्ण शरणंमम्। श्रीकृष्ण शरणं मम्।।

श्रीकर्दम जी माला तो फेर रहे हैं, परन्तु मन माला में नहीं हैं। मन संसार की ओर भाग रहा हैं। अब कोई हिरन सूखे पत्ते पर चलते हैं, अन्दर से बाहर जाते हैं। तो कर्दम जी क्या सोचते हैं कि मनु जी का रथ आ गया। माला झोला फेंक कर कुटिया से बाहर रथ देखने जाते हैं। रथ नहीं दिखने पर कर्दम जी वापिस आकर अपने आसन पर बैठ जाते हैं। देखिए मन है एक या तो उस मन को भगवान् के चरण में लगाओ या संसार में लगाओ, जो मन संसार में लगा है वह बन्धन कारक है, और जो मन प्रभु के चरण में लगा है वह मुक्ति का कारक है।

तो बार–बार कर्दम जी देखने जाते हैं, किसी कोने देखने पर वापिस आकर आसन पर बैठ जाते हैं। अब शाम हो गई। उसी समय मनु महाराज जी आए समस्त पृथ्वी का भ्रमण करते–करते...

मनुः स्यन्दनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छम्।

(श्रीमद्भागवतम् 3.21.36)

शुकदेव जी कहते हैं। राजन थोड़ी देर में सुन्दर रथ में विराजमान होकर मनु जी अपनी बेटी और पत्नी शतरूपा को लेकर पधारे। कर्दम जी के आश्रम पर आए। कर्दम जी ने बड़ा सुन्दर स्वागत किया। बड़ा सत्कार किया। आसन दिया और कहा कि हे वीर पुरुष आज आपने हमारे आश्रम को कैसे पवित्र किया। आपको प्रसन्न करने के लिए हम कौन–सा कर्म करें?

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

देवहुति के साथ कर्दम प्रजापति का विवाह

मनु जी महाराज ने देवहूति को इशारा किया, कर्दम जी आप देख रहे हैं। ये मेरी बेटी है।

"प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेयं दुहिता मम।"

(श्रीमद्भागवतम् 3.22.9)

मनु जी कहते हैं कि प्रियव्रत उत्थानपाद की बहन और मेरी बेटी हैं। श्री नारद जी के द्वारा इसने आपके गुणानुवाद को श्रवण किया आपके पति रूप में स्वीकार कर लिया हैं। यह मेरी बेटी साक्षात लक्ष्मी हैं। आपके घर स्वयं लक्ष्मी चलकर आई है आप मेरी बेटी को स्वीकार करें।

मनु जी कहते हैं, जो व्यक्ति घर आई लक्ष्मी को त्याग करे और फिर लक्ष्मी के पीछे भागे तो ऐसे व्यक्ति को अपमान के सिवा कुछ नहीं मिलता। मेरी बेटी साक्षात् लक्ष्मी है। यह मनु जी की वाणी है भागवत् में। मनु जी कहते हैं, आप मेरी बेटी को स्वीकार करें। ज्यों कर्दम जी ने सुना तो कहा मुझे तो पहले ही भगवान् की वाणी आदेश के रूप में मिल चुकी हैं। अतः भगवान् की आज्ञा के रूप में विवाह स्वीकार लिया। शुभमुहूर्त में पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हो गया।

मंगलम् भगवान् विष्णु मंगलम् गरुड ध्वज्।
मंगलम् पुंडरीक्षाय मंगलाय तनो हरिः।।

बहुत सारा सामान बेटी को दिया। जब माता-पिता चलने लगे तो अपनी बेटी से कहने लगी शतरूपा, देख बेटी मैं तुझे एक शिक्षा की बात कहती हूँ। हर माता-पिता को यह शिक्षा लेनी चाहिए भागवत से। देखिए व्यवहार की शिक्षा भी भागवत दे रही है।

देवहूतिको आज माता शतरूपा कह रही हैं, बेटी देख, हमने तेरी शादी एक ऋषि से की है, और तू है महलों में रहने वाली राजकुमारी। तूने ये वन की कष्ट कहाँ देखें? परन्तु बेटी संजोग प्रबल हैं। जहाँ जीव को जाना है जाना ही होता हैं। देख बेटी अब तुझे दुख मिले या सुख मिले सब पति के साथ। अपने पिता के घर आकर अपने माता-पिता को न कहना। यदि किसी बेटी के जीवन में कष्ट है और वह आकर अपने माता-पिता से कहती है और माता-पिता हस्तक्षेप करते हैं तो बेटी के जीवन को ओर भी नरक बना देते हैं।

यानि सुख-दुख केवल पति के साथ ही है। दुख की बात आकर माता पिता को नहीं कहना। यह शिक्षा की बात जब देवहूति को बताई तो श्रीशुक देव जी महाराज कहते हैं। राजन माता-पिता तो बेटी को छोड़कर राजधानी चले गए। इधर देवहूति पति के घर पति की सेवा में जीवन उत्सर्ग करने लगी।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

देवहूति का शोक

पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गितकोविदा।
नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम्।

(श्रीमद्भागवतम् 3.23.1)

जैसे कि भवानी, पार्वती अपने पति भगवान् शिव की सेवा में संलग्न रहती है, उसी प्रकार अपने पति की सेवा देवहूति ने की। राजकुमारी होकर वन में लकड़ी काटने जाती है, समिधा लेकर आती है और अपने हाथों में फूल माला बनाती हैं। चन्दन घिसती हैं। इसी तरह सेवा करते-करते बारह बरस बीत गए। अपने शरीर का भी ख्याल नहीं रखती थी। इतनी श्रद्धा, इतना प्रेम एकनिष्ठ भाव से सेवा कर रही थी। एक दिन कर्दम जी ने कहा हमें गृहस्थ जीवन में 12 वर्ष हो गए, परन्तु गृहस्थ धर्म में प्रवेश नहीं किया। कर्दम जी महाराज ने कहा कि-

"तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः
शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या।"

(श्रीमद्भागवतम् 3.23.6)

अरे मनु पुत्री देवहूति, मैं तेरी सेवा से प्रसन्न हूँ, आज तूने मेरा हृदय जीत लिया। देवहूति ने कहा मेरा जब पति प्रसन्न है तो मैं क्या माँगू। कर्दम ने कहा माँग तुझे क्या चाहिए। देवहूति ने कहा आप प्रसन्न होकर कुछ देना चाहते हैं। तो–

भूयाद्गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम्।

(श्रीमद्भागवतम् 3.23.10)

जो सती स्त्री होती है उनकी भी सन्तान की अभिलाषा होती है तो आप मुझे सन्तान प्रदान करें। अपनी प्रिया को प्रसन्न करने के लिए सुन्दर विमान मंगाया–

प्रियायाः प्रियमन्विच्छन्कर्दमो योगमास्थितः।

(श्रीमद्भागवतम् 3.23.12)

श्री कर्दम जी महाराज योग में स्थित हुए और कामंग नामक विमान का निर्माण किया। उस विमान में देवहूति को लेकर बैठे, और देवताओं के देश में हजारों वर्ष तक विचरण करते रहें। नव–कन्याओं का जन्म हुआ। जब नौ बेटियां देखी कर्दम जी ने तो कहा कि मैं कहाँ संसार के चक्कर में पड़ गया। अपना दंड, कमंडल लेकर वन की ओर जाने लगे। देवहूति पति के सामने आकर खड़ी हो गई और कहा बेटियों की शादी करके जाओ कहाँ से मैं वर तलाश करूंगी। आप तो वन को जा रहे हैं। देवहूति के कहने पर कर्दमजी रुक गए।

देवहूति ने कहा कि मेरी एक प्रार्थना और है मैं चाहती हूँ, कि एक पुत्र की प्राप्ति भी हो जाए। ज्यों कर्दम जी के सामने कहा कि पुत्र प्राप्ति हो जाए तो कर्दम जी को भगवान् की वाणी याद आ गई। कर्दम जी ने कहा कि मेरे घर तो साक्षात भगवान् आने वाले हैं। जिन भगवान् का दर्शन करने मैं जा रहा हूँ वन में। वह तो पुत्र बनकर मेरे घर में जन्म लेंगे। कर्दम जी ने दंड कमंडल फेंक दिया और बिन्दु सरोवर पर विराजमान हो गए एक दिन कर्दम जी महाराज ने अपने अंदर भगवत आवेश देखा और देवहूति जी ने गर्भ धारण किया। जहाँ साक्षात भगवान् विराजमान हो गए। देवता देवहूति की प्रशंसा कर रहे हैं। धन्य है ये देवहूति जिन्होंने कोटि–कोटि ब्रह्माण्ड गर्भ में रखे हैं।

अथ चर्तुविंशोऽध्यायः

श्री कपिल देव जी का जन्म

देवहूति कहती है कि – "देवान हूयते आहुयेते ईति"

जिसके आवाहन करने से देवता भी दर्शन देने आ जाते थे ऐसे परम सती थी देवहूति। आज सुन्दर मुहुर्त में देवहूति के गर्भ से भगवान् का अवतार हो रहा है इसे कहते हैं।

ज्ञानावतार। बोलिए कपिल देव भगवान् की जय। भक्त वत्सल भगवान् की जय। सभी देवताओं ने पुष्प वर्षा की, भगवान् की जय-जयकार की। आप भी प्रेम से बोलिए।

गीतम् संकीर्तनः-

गोविन्द राधे माधव, गोपाल राधे माधव
गोविन्द राधे माधव, गोपाल, राधे माधव

साक्षात कपिल भगवान् प्रकट हुए। देवताओं ने पुष्प वर्षा की भगवान् के ऊपर। भगवान् की जय-जयकार सर्वत्र हो रही है। बोलो कपिल देव भगवान् की जय। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन् भगवान् कपिल देव ने अपने पिता को संन्यास के लिए भेजा। माँ को सन्यास की ओर प्रभु ने नहीं भेजा क्योंकि व्यक्ति को संन्यास के लिए अकेला ही जाना होता हैं। वहाँ दो का संग नहीं हैं। भगवान् इंतजार कर रहे हैं। बिन्दु सरोवर पर कि कब माँ की आसिक्त संसार से छूटे, और माँ से मैं कुछ ज्ञान चर्चा करूँ। एक दिन जब देवहूति संसार के दुखों को झेलते-झेलते दुखी हो गई तो अपने पुत्र कपिल की शरण में आई और प्रार्थना की-

गीतम्

कर दो दूर प्रभु मेरे मन में अंधेरा है
जब से तेरी लगन लगी हुआ मन में सवेरा है।
हरि तुम से बिछड़े हुए कई युग बीत गए,
अब आन मिलो प्रियतम मेरे मन में प्यार तेरा है।
कर दो.........
इतना तो बता दो मुझे मेरी मंजिल है कहाँ?
ले चलो मुझको, जहाँ सन्तों का डेरा है-2
कर दो दूर प्रभु....................
जबसे तेरी लगन लगी मेरे मन की कलयां खिलीं-2
अब जाग उठी किस्मत हुआ दर्शन तेरा है-2
कर दो दूर प्रभु..................
दर्शन पाए बिना दरसे हटेंगे नहीं-2
कर दो दूर......................
जब से तेरी....................

माता देवहूति कपिल जी की शरण में आकर प्रार्थना करती है।

अथ पंचोविशोऽध्यायः

भक्तियोग की महिमा का वर्णन

तं त्वा गताहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम्।
जिज्ञासयाहं प्रकृतेः पुरुषस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम्।

(श्रीमद्भागवतम् 3.25.11)

देवहूति ने भगवान् को प्रणाम किया और कहा कि प्रभु आप सभी धर्म के ज्ञाता हैं। "त्वं त्वाहं गताहं शरणं शरण्यं" मैं आपकी शरण में हूँ, भगवान् ने देखा कि माँ मेरी प्रार्थना कर ही हैं। माता देवहूति "त्वं त्वाहं गताहं" जब तक शरणागत भाव नहीं होता तब तक ज्ञान उपलब्धि नहीं हैं। गीता में भगवान् कहते हैं। "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्" और 'ज्ञानवान मम प्रपद्यते' श्रद्धावान को ही ज्ञानप्राप्ति होती हैं। कभी-कभी महापुरुषों का सान्निध्य प्राप्त करने के बाद भी हम उनसे कुछ प्राप्त नहीं कर पाते। उनके स्वरूप को नहीं पहचानते। माँ है देवहूति और पुत्र है कपिल, क्या माँ एक पुत्र की स्तुति करती है? क्या पुत्र की वन्दना करती है? मातापिता की वन्दना पुत्र करे। परन्तु आज देवहूति अपने पुत्र की वन्दना कर रही है, क्यों? ब्रह्मभाव है पुत्र के प्रति, पुत्र भाव नहीं है, "त्वंत्वा गतां शरणं शरण्यं" मैं आपकी शरण हूँ – शरण हूँ। भगवान् ने अर्जुन को गीता का ज्ञान तब तक नहीं दिया जब तक अर्जुन श्रीकृष्ण को अपना मित्र ही समझते रहें। अन्त में अर्जुन ने कहा कि कृष्ण अब आप मेरे मित्र, सखा नहीं, बल्कि मेरे गुरु हैं, तब भगवान् ने अर्जुन को गीता का ज्ञान प्रदान किया, उपदेश दिया। कहने का अभिप्राय है कि श्रद्धावान को ही ज्ञान प्राप्त होती हैं। 'श्रद्धावान लभते ज्ञानम्' भगवान् ने देखा कि माँ जब मेरी स्तुति कर रही है तो भगवान् ने अपना प्रवचन शुरू कर दिया।

योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निःश्रेयसाय मे।
अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च।।

(श्रीमद्भागवतम् 3.25.13)

भगवान् कहते हैं कि माँ इस जीवन का परम कल्याण कारी यदि कोई मार्ग है तो केवल आध्यात्मिक जीवन हैं। जब व्यक्ति का आध्यात्मिक जीवन होता है तो उसका परम् कल्याण होता हैं। आध्यात् माने – आधी आत्मा – आध्यात्मिक – आधी माने वास, आत्मक माने आत्माँ

माँ

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम्

(श्रीमद्भागवतम् 3.25.15)

माँ आत्मा और देह का बन्धन नहीं होता। भगवान् कहते हैं केवल इस मन का ही बन्धन और मन से ही मोक्ष? माँ तुम संग करो। माता देवहूति कहती है कि मैं तो संसार के संग त्याग करके आई हूँ, तुम कहते हो कि संग करो, मुझे अब किसी का संग अच्छा नहीं लगता। भगवान् कहते हैं। कि, माँ अब तक तुम संग करके आए तो अब सत्संग करके देखो।

गीतम्

विनु सत्संग विवेक न होइ।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोइ।।

कविता–

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख
धरई लायक अंग,
तूलन नाही सकल मिल
जो सुख लभ सत्संग।

सत्संग के समान कोई सुख नहीं हैं। माँ तुम सत्संग करो। बेटे यह बताओ कि सन्त कौन है? कपिल जी ने कहा माँ सन्त को ढूंढने से पहले सन्त बन जाओ जल्दी सन्त मिल जाएगा। यदि दृष्टि में दोष होगा तो यदि सामने सन्त होगा तो भी हम नहीं पहचान सकते। सन्त को ढूंढने जाओ तो, स्वयं सन्त बनो जल्दी सन्त मिल जाएगा।

भागवत में एक सन्त पुरुष का लक्षण स्वयं बता रहे हैं। भगवान् कहते हैं। कि–

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः।।

(श्रीमद्भागवतम् 3.25.21)

माँ जिनके अंदर तितिक्षा है, करुणा है, सहनशीलता है, दया है, माँ "दयाधर्म का मूल है, पापमूल अभिमान, तुलसी दया न छोड़िए, जब तक घट में प्राण" माँ जिनके अंदर तितिक्षा है, करुणा है, सहनशीलता है, दया है, शान्त स्वरूप है, जिनके दर्शन से परम्शान्ति मिले, जिनका संसार में न कोई शत्रु है न मित्र है ऐसे सत्पुरुषों का तुम

संग करो। बोले भगवन् ये बताओ कि ऐसे सत्पुरुषों के संग से मुझे क्या मिलेगा? भगवान् बता रहे हैं।

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भविन्त हृत्कर्णरसायना: कथा:।
(श्रीमद्भागवतम् 3.25.25)

जब तुम सत्पुरुषों का संग करोगी तो उसके मुखारविंद से मेरी कथा सुनने को मिलेगी। जब आप उनके मुख से मेरी कथा को सुनेंगी तो आपके अंदर मेरे प्रति श्रद्धा जाग्रत होगी, श्रद्धा से रति, रति से नैष्टिक भक्ति जीवन में प्राप्त होगी। देवहूति ने कहा कि भगवन ये बताइए कि भक्ति कितने प्रकार की है? भगवान् ने कहा कि मेरी भक्ति अनेक प्रकार की है, परन्तु तीन प्रकार की भक्ति परम् विशेष हैं। जो स्वभाव और गुण से व्यक्ति करता है।

"सात्विक भक्ति, राजसी भक्ति, तामसिक भक्ति"

भगवान् कहते हैं। कि माँ माँगने से मैं जल्दी भक्ति नहीं देता। मुक्ति जल्दी देता हूँ, क्यों? जिसे मैं जल्दी भक्ति देता हूँ तो मेरी भी छुट्टी हो जाती हैं। आवागमन के चक्कर से जीव छूट जाता है।

परन्तु भगवान् कहते हैं। जिसे मैं अपने चरणाविन्द की भक्ति देता हूँ मैं उन भक्त के बन्धन में बंध जाता हूँ।

"अहम् भक्त पराधीनो:"

भक्त तो स्वयं जन्म लेना चाहता है और मेरा भी जन्म चाहता है, कि प्रभु भी जन्म लें, लीलाएं करें, अवतार लें। वह भक्त स्वरूप सगुण साकार का दर्शन करना चाहता हैं। भगवान् भी अपने भक्तों को रिझाने के लिए और अपनी प्राप्ति के लिए सुगम मार्ग प्रकट करने के लिए जो निर्गुण है निराकार है वह भगवान् सगुण, साकार होकर प्रकट हो जाते हैं। तो भगवान् कहते हैं। माँगने से मैं मुक्ति देता हूँ भक्ति जल्दी नहीं देता। क्योंकि मैं जिसे मुक्ति देता हूँ वह मुक्ति वाला जीव होता है मेरे पीछे मैं होता हूँ आगे-आगे। जिस भक्त को मैं भक्ति देता हूँ वह कहीं भी हो मैं उसकी रक्षा के लिए उसके पीछे होता हूँ। सदा सर्वदा रक्षा करता हूँ

ये पाँच प्रकार की मुक्ति भागवत में कपिल देव बता रहे हैं

1. सार्ष्टि 2. सायुक्य 3. सारुप्य 4. सामीप्य 5. सालोक्य

1. सार्ष्टि : मुक्ति किसे कहते हैं? जिससे भगवान् का सा दर्जा उन्हें मिल जाए।

2. सालोक्य : जिससे हमें भगवान् का लोक वैकुण्ठ मिल जाए।

3. सारुप्य : जिससे हमें भगवान् का स्वरूप मिल जाए।

4. सामीप्य : जिससे हमें भगवान् के पास रहना मिले।

5. सालोक्य : जो परमात्मा भगवान् के लोक में वास मिल जायें।

तो ये पाँच प्रकार की भगवान् की मुक्ति हैं। परन्तु भगवान् कहते हैं। "दियमानं न गृहन्ति विना मत सेवनम् जनाः।" भगवान् दोनों हाथों से मुक्ति लुटा रहे हैं। मुक्ति माने "मुक्ति ददाति इति मुकुदं" परन्तु भक्त कहते हैं कि नहीं प्रभु मुझे तो आपके चरणों की भक्ति चाहिए। आप मुझे भक्ति दें, सेवा दें। "भक्ति मुक्ति प्रदायिनी" देखो ठाकुर से भगवान् से माँगना तो भक्ति माँगना मुक्ति नहीं। मुक्ति तो सहज ही मिल जाती हैं। भक्ति की दासी है मुक्ति।

जब तुम्हारे जीवन में भक्ति होगी, ठाकुर की प्रेम सेवा होगी निश्चित ही मुक्ति की ओर ले जाती हैं। "भक्ति मुक्ति प्रदायिनी" मुक्ति प्रदान कर देती है? भक्ति की दासी है मुक्ति। तो ठाकुर से माँगो भगवान् से माँगो कि उनके प्रति प्रेम बढे। देखिए भक्ति शब्द का अर्थ संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'भज धातु सेवनम्' से बना हैं। भज धातु से भक्ति शब्द बना है भक्ति माने सेवा।

परन्तु केवल सेवा में, प्रभु की सेवा में ही सीमित नहीं। ठाकुर की सेवा करते हैं- धूप-दीप, चंदन, माला आदि से जो भगवान् को चढ़ाते हैं, केवल यही भक्ति नहीं। भक्ति माने, वह सेवा केवल परिवार की सेवा नहीं, एक समाज की सेवा नहीं, विश्व की सेवा भावना हमारे अंदर हो। जीवमात्र की सेवा भावना हमारे अंदर हो, वही परमात्मा की सच्ची सेवा हैं। वही परमात्मा की भगवान् की सच्ची भक्ति हैं। भज धातु सेवा से भक्ति शब्द बना हैं। जीव मात्र के प्रति प्रेम, सेवा वही परमात्मा की सच्ची सेवा भक्ति बन जाती हैं। परन्तु किसी ने पूछा कि महाराज क्या भगवान् के चरणों में फूल माला चढ़ाना आरती उतारना भक्ति नहीं हैं। देखिए ये भी भागवत भक्ति में परमावश्यक है जितनी देर हम भगवान् की सेवा करते हैं। फूल चढ़ाते हैं, स्नान कराते हैं प्रसाद चढ़ाते हैं, उतनी देर हमारा ध्यान प्रभु में ही लीन रहता हैं। उतनी देर तक हम ठाकुर से ही जुड़े रहते हैं। तो इसीलिए भक्ति में प्रभु के लिए ये भी परमावश्यक हैं। इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। कहने का अभिप्राय है कि परमात्मा से भगवान् से यदि माँगो तो भक्ति ही माँगना, सेवा का ही दान माँगना क्योंकि "सेवा ही परम धर्म"।

श्री शुकदेव जी महाराज ने कहा राजन इस प्रकार से श्री कपिल देव भगवान् ने माता देवहूति को उपदेश दिया। माता देवहूति ने कहा कि भगवान् आप कृपा करके

थोड़ा ध्यान के बारे में प्रकाश डालें। तो भगवान् ध्यान के बारे में अष्टांग विषय में चर्चा कर रहे हैं।

अथ षड्विंश

महदादि विभिन्न तत्वों की उत्पत्ति का वर्णन

अथ सप्तविंश

प्रकृति-पुरुष के विवेक से मोक्ष-प्राप्ति का वर्णन

अथ अष्टविंशोऽध्याय:

अष्टांग योग की विधि

योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे।
मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्प्रथम्।

(श्रीमद्भागवतम् 3.28.1)

भगवान् कपिल देव कहते हैं। माँ योग के प्रथम लक्षण हैं अपने मन को सत्मार्ग की ओर ले जाओ। अच्छे रास्ते की तरफ अपने मन को लगाओ। पवित्र विचार, शुद्ध विचार तुम्हारे मन में उठें ये योग का प्रथम लक्षण हैं। "प्रसननं जाति सत्प्रथम्" अष्टांग योग के बारे में भगवान् बता रहे हैं। योग में जो आठ क्रिया हैं—यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि।

देखिए पाँच श्रेणियां जो हैं। योग के अंदर—यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम ये देह शुद्धि के लिए हैं।

और जब देह शुद्ध अवस्था में आ जाती है बोले फिर है—

धारणा : धारणा माने एक छवि की अपने मन में पक्की करके धारणा करना। यदि ध्यान से पहले तुमने धारणा नहीं कि तो ध्यान में मन कभी नहीं लगेगा। बहुत से लोग बिना इष्ट चुनाव के ध्यान में बैठ जाते हैं।

प्रेम से कहिए जय श्रीकृष्ण। तो उनका ध्यान कभी नहीं लगता।

ध्यान का अर्थ अपने इष्ट देव का चुनाव। प्रणाम सबको करो। भगवान् राम को, कृष्ण को, शिव को, माँ दुर्गा को, भवानी को, सबका वन्दन करो। किसी की उपेक्षा मत करो किन्तु जब ध्यान करने बैठे तो एक का ही ध्यान करो। कहने का अभिप्राय है कि श्रीमद्भागवत में भगवान् ध्यान के बारे में जो बता रहे

हैं। ध्यान से पूर्व धारणा। ध्यान का अर्थ है कि अपने मन में एक छवि की ही धारणा धरो।

एक साधे सब साधे, सब साधे सब जाए।

जब हमारे जीवन में इष्ट का चुनाव हो जाता है तब हम जब ध्यान में बैठेंगे तो साक्षात् हमारे प्रभु का दर्शन होगा। आंखों में, दिल में, दिमाग में प्रभु का ही चिन्तन होगा। ध्यान में हमारा ठीक प्रकार से मन लगेगा, तो इस प्रकार से भगवान् का ध्यान करना चाहिए।

सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं
वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम्।
(श्रीमद्भागवतम् 3.28.21)

अपने इष्ट का जब ध्यान करने बैठे तो सबसे पहले इष्ट के चरणों का ध्यान करना हैं, भगवान् श्रीकृष्ण का या भगवान् राम का ध्यान करें, चरण से प्रारंभ करें। फिर मुखारविंद तक जाएं और श्री राधारानी का जानकी जी का या माँ दुर्गा का ध्यान करना हो तो मुखारविंद से आरंभ करके चरणों तक आना चाहिए, क्यों? भागवत् कार कहते हैं। भगवान् के चरणों में चार चिन्ह विशेष हैं। वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल। भगवान् के चरणों में ये जो वज्र का चिन्ह है भक्त के भव बंधन काटता हैं। अंकुश का जो चिन्ह है ये मनरूपी हाथी को वश में करता हैं।

"चञ्चलं हि मनः कृष्ण पमाथ बलवत् दृढ़म्"

और तीसरा भगवान् के चरण में बड़ा विशेष चिन्ह है ध्वजा यानि पताका। जो भगवान् के चरण कमलों की भक्ति करता है, जिसके अंदर सेवा भावना है, कहते हैं भागवत्कार, भगवान् के चरणों में जो ध्वजा चिन्ह है भक्त के यश, प्रतिष्ठा, कीर्ति का प्रतीक हैं। भगवान् अपने भक्तों का मान, प्रतिष्ठा, कीर्ति चाहते हैं।

"जापर कृपा राम की होई तापर कृपा करहि सब कोई।"

जिस पर राम की कृपा हो जाए कृष्ण की कृपा हो जाए, उस पर सारा जगत कृपा करता हैं। तो भगवान् के चरणों में जो ध्वजा का चिन्ह है प्रतिष्ठा का चिन्ह है।

और चौथा भगवान् के चरणों में चिन्ह है कमल के फूल का। ये बड़ा विशेष चिन्ह हैं। देखिए कमल कीचड़ से पैदा होता है, परन्तु उसका कीचड़ से कोई सम्बन्ध नहीं होता। उसी प्रकार भक्त की, सन्त की, सद्गुरु की विशेष दुनिया नहीं होती। इसी प्रकार संसार में एक सन्त, सद्गुरु का भक्त का महापुरुष का, वैष्णव का जन्म होता

हैं। परन्तु कैसे? वह सन्त का वैष्णव का जीवन होता है जैसे जल में कमल का फूल। इसी प्रकार हमारा भी जीवन बने। इसलिए सबसे पहले भगवान् के चरण कमलों का ध्यान करें।

और श्री राधा रानी के मुखारविंद से क्यों? राधारानी के नेत्रों के दर्शन में साक्षात् श्रीकृष्ण दिखाई देंगे। राधारानी के नेत्र में श्रीकृष्ण का वास है यानी राधारानी के नेत्रों में श्रीकृष्ण रहते हैं। श्री राधारानी के नेत्रों में कृष्ण का दर्शन होता हैं। श्रीकृष्ण के चरणों में मुखारविंद तक और श्रीराधारानी के मुखारविंद से चरणाविन्दतक आना इसी प्रकार अपने इष्ट का ध्यान करें।

माता देवहूति ने भगवान् कपिल को बताया कि आपने बहुत सुंदर ध्यान के बारे में बताया। तो प्रभु आपने जो यह बताया तो संसार में जीव आपका बहुत ध्यान, नाम करता होगा। परन्तु भगवान् कहते हैं।

"अथै एकोनत्रिंशोऽध्याय:

भक्ति का मर्म और काल की महिमा

अथ त्रिशोऽध्याय:"

देह गेह में आसक्त पुरूषों की अद्योगति का वर्णन

कुटुम्बभरणाकल्पो मन्दभाग्यो वृथोद्यमः।
श्रिया विहीनः कृपणो ध्यायञ्छ्वसिति मूढधीः।
(श्रीमद्भागवतम् 3.30.12)

कि सारा जीवन ही पुरुष कुटुम्ब के लिए ही लगा रहता हैं। इनकी भाग्य अति मंद हैं। व्यर्थ ही उद्यम करते हैं। वृथा ही परिश्रम करते हैं। और

"निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः।"
(श्रीमद्भागवतम् 2.1.3)

रात्रि तो ये जीव सोकर व्यतीत कर देता हैं। दिन हमारा धन कमाने में चला जाता हैं। फिर ठाकुर के भजन के लिए हम कहाँ से समय लाएं? प्रभु के ध्यान के लिए हमारे पास कोई समय नहीं हैं। परन्तु देवहूति माता कहती है कि हे भगवन् आप कहते हैं कि समय नहीं हैं। एक समय तो आता है व्यक्ति के जीवन में, भगवान् ने कहा माँ कौन-सा समय? थोड़ा बताओ। तो देवहूति माता ने कहा वह है वृद्धावस्था। ये समय तो सबके जीवन में आता हैं। समय पर्याप्त मिलता है, भगवान् के चिन्तन करने

में, भगवान् हँसने लगे। कहाँ माँ जब प्रारंभिक अवस्था में मेरा ध्यान नहीं किया तो वृद्धावस्था में कैसे याद आऊँगा। भगवान् कहते हैं, माँ इस प्रकार से जीव की दशा हो जाती है कि–

वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः।
कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते।

(श्रीमद्भागवतम् 3.30.16)

भगवान् कहते हैं कि माँ वृद्धावस्था में तो नाड़ी की गति भी रुक–रुक कर चलती हैं। शरीर में कफ का जोर बढ़ जाता है और कण्ठ भी कृष्ठ हो जाता हैं। जीव बड़ा कष्ट अनुभव करता हैं। "कण्ठेघुरघुरायते" कण्ठ घुरघुराने लगता है यदि हम चाहे कि प्रभु का कीर्तन कर लें तो आवाज भी साफ नहीं निकलती। वृद्धावस्था में "कण्ठघुरघुरायते" कंठ में बड़ा कष्ट होता है, माँ अंत में जीव किसे याद करता है? अंतिम अवस्था में मुझे याद नहीं करता। भगवान् कहते हैं दूर बेटी की शादी कर दी तो बेटी की याद आती हैं। दूर विदेश में पुत्र हो तो उसे याद करता हैं। मुझे याद नहीं कर पाता। माँ इस प्रकार चिन्तन में ही उसका मन लगा रहता हैं और अंत में उसे यमदूत के दूत पकड़ने आ जाते हैं। जब मृत्यु हो जाती है जीव की, तो स्थूल शरीर अग्नि में डाल दिया जाता हैं। कारण शरीर जाता है यमलोक में। 99000 योजन इस जीव को रास्ता तय करना पड़ता हैं। तप्तभूमि पर चलाया जाता है, बालू पर और जब भूख लगने पर भोजन तथा प्यास लगने पर जल माँगता है तो यमदूत उसे कोड़े मारते हैं। संसार में रहकर यदि भूखे को खाना और प्यासे को जल पिलाया हो, तो परलोक के रास्ते में ये सब प्रबंध हो जाता है। अंत में माँ जब ये जीव यमलोक जाता है और जैसे कर्म करते आए, उसी के अनुसार वैसी गति प्रदान कर देते हैं। यदि अच्छे कर्म करता है तो जीव स्वर्गादि लोक की यात्रा करता हैं। बुरे कर्म करता है तो नरकादिलोक की यात्रा करनी पड़ती हैं। परन्तु सच्ची बात यदि पूछे तो भगवान् भागवत में कहते हैं। कि–

"अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते"

(श्रीमद्भागवतम् 3.30.29)

भगवान् कहते हैं, कि माँ यहीं नरक है यही स्वर्ग हैं। एक सन्त से किसी जिज्ञासु ने प्रश्न किया, कि महाराज बताइए स्वर्ग के सिंहासन तक पहुँचने वाला कौन–सा मार्ग है? कौन से साधन हैं? तो सन्त ने उत्तर दिया वाणी और हृदय। ये दो रास्ते हैं।

फिर उस जिज्ञासु ने पूछा महाराज नरक की आग में झोंकने वाले कौन से साधन हैं। थोड़ी कृपा करें। संत ने कहा–वाणी और हृदय।

वाणी हमें नरक की आग में झोंक देती हैं और जब हम वाणी से मीठा बोलते हैं। तो हमारे हृदय में सद्विचार पैदा होते हैं। वही हमें स्वर्ग के सिंहासन में ले जाते हैं।

"अत्रैव नरकः स्वर्गः' इतिमातः प्रचक्षते"

(श्रीमद्भागवतम् 3.30.29)

संसार में यही नरक है और यही स्वर्ग है।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

मनुष्ययोनि को प्राप्त हुए जीव की गति का वर्णन

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

भक्तियोग की उत्कृष्टता का वर्णन

अथ त्रयस्त्रिंशोध्यायः

मनुष्य योनि को प्राप्त हुए जीव की गति का वर्णन

माता देवहूति ने कहा कि भगवन आप ही बताइए कि संसार में जीव आता कैसे है? यह तो आपने अंतिम समय के बारे में बताया, भगवान् कपिल देव ने बताया कि माँ कि–

कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये।
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः।

(श्रीमद्भागवतम् 3.31.1)

भगवान् कपिल देव कहते हैं कि जब वर्षा होती है तो उन बूंदों के सथ जीवाणु पृथ्वी पर आता है, और अन्न में मिलता है, अन्न को स्त्री-पुरुष भक्षण करते हैं। एक रात्रि में पुरुष के द्वारा स्त्री के उदर में जीवाणु प्रवेश करते हैं और एक रात्रि में शुक्र और शनित मिलते हैं। पाँच रात्रि में बुलबुले के समान आकार होता है।

"पंचरात्रेण बुदबुदम्"

और दस दिन में बीज के समान आकार होता है, प्रथम महीना होने पर प्रथम जीव का सिर निकल आता है माँ के गर्भ मे।

"मासेन तु शिरो द्वाभ्यां वाह्वङ्घ्रियाद्यङ्गविग्रहः।"

(श्रीमद्भागवतम् 3.31.3)

दूसरे महीने में हाथ-पांव आदि का निर्माण हो जाता हैं। तीसरे महीने में लड़का या लड़की का फैसला हो जाता हैं। चौथे महीने में मांसादि सातों धातुएं पैदा हो जाती हैं। पाँचवें महीने में जीव को भूख-प्यास आदि लग जाती हैं। छठे महीने में जरायु से लिपट जाते हैं,

"चतुर्भिर्धातवः सप्त पंचभिः क्षुत्तृडुद्भवः।
षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौभ्राम्यति दक्षिणे।"

(श्रीमद्भागवतम् 3.31.4)

और सातवें महीने में जीव को माँ के गर्भ में बुद्धि की प्राप्ति होती हैं। जब इसे बुद्धि मिल जाती है तब जीव माँ के गर्भ में सौ जन्म के पाप याद करता है।

तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम्।

(श्रीमद्भागवतम् 3.31.9)

जो खोटे कर्म संसार में करके आता है, वे उसे माँ के गर्भ में याद आते हैं। जब इसे बुद्धि मिलती है तो सोच-सोचकर रोता है और सुषुम्ना नाड़ी से सम्पर्क होने के कारण प्रत्येक जीव का परमात्मा से लिंक जुड़ा होता हैं। तब ये जीव प्रार्थना करता है कि प्रभु–

तस्योपसन्नमविंतु जगदिच्छयात्त-नानातनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम्।
सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा।

(श्रीमद्भागवतम् 3.31.12)

श्रीमद्भागवत में शब्द आया है "जन्तुरुवाच" यानि प्रत्येक जीव जो माता के गर्भ में आया है, प्रत्येक जीव का लिंक परमात्मा से जुड़ा होता हैं और प्रत्येक जीव परमात्मा से प्रार्थना करता है कि प्रभु इस नरक से आप मुझे बाहर निकाल दीजिए। जीव और परमात्मा में होड़ लग जाती है।

"मोसो ना बिगाड़न तोसो ना संवारन
मोहे तोहे पड़ी ह होड़।"

गीतम्

तेरी बन जाएगी गोविन्द गुण गाये से।
ध्रुव हूँ कि बन गई प्रह्लाद हूँ कि बन गई

द्रौपदी की बन गई चीर की बढ़ाई से।।
तेरी बन जाएगी...............।।
बालि की बन गई सुग्रीव की बन गई।
हनुमान की बन गई सीया सुत गाई के।।
तेरी बन जाएगी..........................।।
नन्द की बन गई यशोदा की बन गई
गोपियन की बन गई माखन खवाई के।
तेरी बन जाएगी................।।
गजहु की बन गई गिद्धहु की बन गई।
केवट की बन गई नाव पे चढ़ाई के।।
तेरी बन जाएगी.......................।।
उद्धव की बन गई भीष्म हु की बन गई।
अर्जुन की बन गई गीता ज्ञान सुनाई के।।
तेरी बन....................................।।

ये जीव माता के संदर्भ में इस प्रकार रोते हैं, भगवान् से प्रार्थना करते हैं। प्रभु मुझे इस गर्भ से निकाल दीजिए। भगवान् हंसते हैं, क्या करेगा निकलकर, जीव कहता है भजन करूँगा। भगवान् हंसते हैं। जीव रोते हुए पुनः भगवान् से कहता है–

"मेरे रोने से जो तुमको आए हंसी,
तो मैं रो–रो के तुमको हंसाया करूँ।।"

ये गर्भ एक नरक हैं। प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। इस गर्भ रूपी नरक में जीव आना नहीं चाहता, परन्तु बार–बार आना पड़ता हैं। क्योंकि वह वही काम करता है जिससे बार–बार नरक में आना पड़े। नीचे की ओर सिर है ऊपर की ओर पांव हैं। मूत्र में जीव पड़ा है, जीव कहता है, प्रभु अबकी बार मुझे निकाल दो इस नरक से मेरा उद्धार कर दो।

"गर्भावस्था सम दुखय: न भूतं न भविष्यति।"

गर्भवास के समान दुख न कभी हुआ है न कभी हो सकता हैं। भीषण कष्ट है।

भगवान् कहते हैं। क्या करोगे बाहर निकल कर, अरे वही तुझे कार्य करना है नरक आने का, इससे तो अच्छा है तू यहीं पड़े रहना, परन्तु जीव कहते हैं। प्रभु अबकी बार आप मुझे बाहर निकाल दीजिए मैं आपका भजन करूँगा। भगवान् कहते हैं, तू

बार–बार यही कहकर गया, परन्तु मैंने तुझे बार–बार माफ किया। अच्छा तू ये बता कितनी बार, दिन–रात में तू मेरा भजन करेगा। दिन–रात छबीस घंटे मैं आपका नाम लिया करूँगा जीव कहता हैं। भगवान् कहते हैं कि यहाँ भी झूठ बोलने की आदत नहीं गई। दिन और रात्रि में कितने घंटे होते हैं। बोले 24 घंटे होते हैं। तो दो घंटे ज्यादा क्यों बताया भैया।

जीव नें कहा, ये दो घंटे मैंने इसलिए बताया कि ये दो घंटे में एक क्षण भी जाने नहीं दूँगा। 24 घंटे में श्वास प्रश्वास पर भी मैं आपका नाम लूंगा। एक स्वस्थ व्यक्ति अपने 24 घंटे में 21,600 बार श्वास लेता हैं। तो कम से कम हम आपका नाम लिया ही करेंगे। इतना भजन तो मैं करूँगा। भगवान् कहते हैं। चलो एक भक्त पैदा हो जाएगा। कृपा करते हैं।

जब दसवां महीना सुषुम्ना नाड़ी का संपर्क टूटा, प्रसूति वायु के द्वारा, वेग से जब जीव का माँ के गर्भ से जन्म हुआ तो जीव बाहर निकला तो,

"छींकत जग में मग दियो, और आवत दिनो रोय"

पैदा होते ही छींक हुई, छींक नहीं होती तो दैया मैया हॉस्पिटल में छींक दिलवाती है कि बच्चे का स्वर कैसे खुलेगा। यदि आप घर से बाहर निकले और छींक हो जाए तो लोग कहते हैं ना, अपशकुन हो गया। लोग कहें या ना कहें अपने परिवार वाले तो जरूर कहेगे अब तुम यात्रा न करो थोड़ा रुक जाओ। तो यात्रा का समय निकाल कर ही यात्रा करनी चाहिए। परन्तु ये जीव तो संसार की यात्रा करने के लिए ही चला है और पैदा होते ही छींक हो गई, नहीं होती है तो जबरदस्ती दिलाई जाती हैं। यदि यात्रा में जाना ही हो तो कहते हैं कि प्रभु का एक नाम ले लो फिर यात्रा करो। जैसा कि भागवत में लिखा है तीन बार–

"हरये नमः हरये नमः हरये नमः।।"

ऐसा कहकर यदि हम यात्रा करेंगे, तो यात्रा में जो भी विघ्न है सब टल जाएँगे। तीन बार हमें ऐसा बोल देना चाहिए परन्तु "छींकत जग में पग दीयो"

पैदा होते ही छींक हो गई। भगवान् का नाम लिया नहीं, क्योंकि भगवान् का एक नाम समस्त अमंगल को दूर करने में समर्थ हैं। कि–

कीर्तनम्

"मंगल भुवन अमंगल हारी द्रवहु सुदसरथ अजिर बिहारी।"
श्रीराम जय राम जय जय राम।।

"छींकत जग में पग दीयो और आवत दिन रोय।
जन्म हंसि अशुमन भये तो मंगल केहि विधि होय।।"

पैदा होते ही जीव रोया तो जीवनपर्यन्त जीव रोता ही रहता हैं। गर्भ की सारी बातें उल्टी हो गई। गर्भ में भगवान् को जीव ने क्या कहा? जीव ने कहा– नमोः नमः नमोः नमः, माने–न–मे–इति नमः। मैं कुछ नहीं हूँ जो कुछ हैं सब आप हैं। तो गर्भ में तो कहा भगवान् को नमोः नमः। और नमो को उल्टा धरने से क्या बना है? नमः का उल्ट बनता है मनः। गर्भ में तो कहता है जैसा आप कहेंगे वैसा ही करूँगा। परन्तु पैदा होते ही कहता है जो मेरे मन में आयेगा सो करूँगा। गर्भ की सारी बातें ही उल्टी हो गई और ये प्रभु को भूल गया, परन्तु शास्त्र कहते हैं, साधु कहते हैं। एक क्षण भी भगवान् को मत भूलो एक क्षण भी श्री राधारानी को मत भूलो।

गीतम्

मन भूल मत जाइयो श्री राधा रानी के चरण

(एक क्षण भी श्रीमती राधा रानी को नहीं भूलना)

(बड़े प्रेम से गाइये भैया)

मन भूल मत जाइयो राधा रानी के चरण।
मन भूल मत जाइयो श्यामा प्यारी के चरण।।
राधा रानी के चरण श्यामा प्यारी के चरण।।।
मन भूल मत जाइयो राधा रानी के चरण
मन भूल मत जाइयो श्यामा प्यारी के चरण।।
वृषभान की किशोरी वो तो गऊन की मोरी।
इते जान की छोरि तोय राखली शरण।।
मन भूल मत.................................।
राधारानी के चरण श्याम प्यारी के चरण।।
मत भूल.......................................
वो तो श्याम पुर हेरे नित राधा–राधा फेरे।
बांसुरी में बेर–बेर नित नाम की रटन।।
मन भूल.......................................
मन..
राधा रानी....................................

मेरे मन मतवारे छोड़ दुनिया के ठारे।
"राधा" नाम के सहारे छोड़ जीवन मरण।।
मन भूल..
मन..
राधा...।।
एक क्षण भी हमारे मन श्री किशोरी जी को न भूलें।
मन भूम मत जाइयो राधारानी के चरण।

तो वहाँ तो कहा नमः, ऐसा मत करना कि नम का उल्टा कर देना कि जो मेरे मन में आवेगा वैसा करूँगा। जब बालकपन में शरीर में कीडा काटते हैं। तो माँ से कह नहीं पावे बल्कि रोना शुरू कर देते हैं, जब बड़े हुए तो खेलने कूदने की चीज नहीं दी तो रोना शुरू किया क्योंकि जन्म से जीव रोया तो जीवनपर्यन्त रोता ही रहता हैं और बड़े हुए तो युवावस्था में भी जीव रोया। बोले वहाँ रोया युवावस्था में, क्योंकि शादी की चिंता लग गई। पड़ोसी, मित्रों की हो गई हमारी नहीं हुआ। माता-पिता को तो बोल नही सकता अन्दर से जीव रोता हैं। बात तो ठीक हैं। भगवान् ने कहा कि अभी एक है एक से दो हो जाएँगे, दोनों मिलकर मेरा भजन करेंगे। कुटिया बनवाकर मेरा भजन करेंगे, काशी में, वृन्दावन में हरिद्वार में। किन्तु जब युवावस्था धारण कर लेता है जीव, तो भैया वहाँ बाहर से रोता दिखाई नहीं देता, अन्दर से रोता है जीव। फिर भगवान् ने कृपा कर दी शादी हो गई। भैया जन्म का, विवाह का दिन महत्व नहीं हैं। मृत्यु का दिन ही महत्व का दिन हैं। क्योंकि मृत्यु के दिन सबको आएंगे क्योंकि मरना तो सबका है ही।

गीतम्

चली जा रही है उम्र धीरे-धीरे।।
सुबह-शाम और दुपहर धीरे-धीरे।
लड़कपन भी बीता जवानी भी बीती
बुढ़ापे का होगा असर धीरे-धीरे ।।
चली जा.................।।
गिरे दांत तेरे भूरे केश उजरे
झुकी जा रही कमर धीरे-धीरे
अगर चाहते हो कल्याण अपना
भजो राम आठों पहर धीरे-धीरे ।।

चली जा.........................।।
भैया जब शादी हो गई तो पूरा ही पशु बन गया।
थोड़ा विचार करना भैया, दो पैर वाला कौन होता है?
दो पैर वाला होता है मानव और चार पैर वाला पशु।
दो अपने और दो घर वाली के।
बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की–जय।

चौपाया बन गया भैया। शादी से पहले तो थोड़ा–बहुत भजन किया करता था, परन्तु जब शादी हो गई तो दुल्हन मिल गई तो पूरा चौपाया बन गया। ये जीव जैसे गधा होता है भार ढोते–ढोते, गृहस्थी का भार ढोते–ढोते उसका जीवन व्यतीत हो रहा हैं। एक क्षण भी इसके पास प्रभु का स्मरण करने के लिए समय नहीं हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। कपिल भगवान् कहते हैं। माँ अपने अंदर हमें बाल्यावस्था में हमें ऐसे संस्कार डालने चाहिए, जो कुछ देर बैठकर परमात्मा का ध्यान स्मरण किया जाए।

"कौमार आचरेत प्रज्ञ"

कुमार अवस्था से ही भगवान् का भजन करणा चाहिये। माँ वृद्धावस्था के बारे में तो तुझे पहले ही बता दिया कि क्या जीव की दशा हो जाती हैं। मैंने जो कथा तुझे सुनाई कि जिसके अंदर श्रद्धा न हो, प्रेम न हो, भक्ति न हो ऐसे भक्तों को कभी कथा वर्णन न करना।

"श्रद्धावान लभते ज्ञानम्।"

माँ ये परम ज्ञान जिसके अंदर श्रद्धा भक्ति है वही प्राप्त कर सकता है, जो श्रद्धा से सुनना चाहे उसे अवश्य सुनाना। इस प्रकार माता देवहूति ने कपिल भगवान् का पूजन किया, ओर देवहूति को छोड़कर कपिल भगवान् चल दिए दक्षिण की ओर। श्री सिद्धपुर नाम के स्थान पर सिद्धया नदी के रूप में भगवान् का नाम करते–करते देवहूति माता नदी के रूप में परिणत हो गई। एक नदी का रूप धारण कर लिया।

"उपलभते भगवत्पदारविन्दम्"
(श्रीमद्भागवतम् 3.33.37)

इति तृतीय स्कन्धः समाप्तः।

।। हरिः ॐ तत्सत्।।

स्कंध-०४



चतुर्थ स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

स्वायंम्भुव मनु की कन्याओं के वंश का वर्णन

मैत्रेय उवाच

मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.1.1)

श्री मैत्रेय जी विदुर जी से कहते हैं। विदुर जी मनु जी की तीन बेटियाँ थी आकूति, देवहूति और प्रसूति। जिन आकूति का पाणिग्रहण संस्कार रूचि प्रजापति के साथ हुआ।

"आकूतिं रूचये प्रादादपि"

और जिनके यहाँ भगवान् का अवतार हुआ जिसे कहते है– यज्ञवतार। इसी प्रकार से देवहूति का पाणिग्रहण संस्कार कर्दम ऋषि के साथ हुआ। जिनके यहाँ नव कन्याएँ हुई और साक्षात कपिल भगवान् हुए। तीसरी जिनका नाम प्रसूति था उनका पाणि ग्रहण दक्ष प्रजापति के साथ हुआ। जिन दक्ष की बेटी थी सती। और जिन सती जी का पाणिग्रहण संस्कार शिव भगवान् के साथ किया गया। प्रश्न किया श्रीविदुर जी महाराज ने कि–

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवान् शिव और दक्ष प्रजापति का मनोमालिन्य

"भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.2.1)

महाराज हमने सुना है कि अपनी आत्मजा सती जी से दक्ष प्रजापति अति स्नेह किया करते थे। अपनी आत्मजा का पाणिग्रहण संस्कार भगवान् शिव से किया कितना मधुर सम्बन्ध था। किन्तु फिर भी आपस में भेदभाव क्यों? शिव तो आत्माराम परम शान्त विग्रह हैं। ऐसे निर्भय शान्त विग्रह शिव से दक्ष ने क्यों बैर भाव मोल लिया? आप कृपा करके इस कथा को सुनाएं, तो भागवत में सती का चरित्र है, मैत्रेय जी कहते हैं। कि–

पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः।
तथामरशणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नयः।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.2.4)

एक बार विश्व कि सृजन करने वाले देवता ने यज्ञ किया। वहाँ बड़े-बड़े देवता पधारे। गंधर्व, नाग, चम्पक भी आए हैं। ब्रह्मा जी भी पधारे। भगवान् शिव भी पधारे। किन्तु ये दक्ष प्रजापति का नियम था कि किसी की सभा में जाता था तो सबसे अन्त में, जिसके अन्दर सम्मान की भूख थी, सबसे अन्त में जाऊँगा तो सब उठकर मुझे प्रणाम करेंगे। सम्मान देंगे। सम्मान की भूख यदि व्यक्ति के अंदर है, तो कभी-कभी यह देखा गया है कि महापुरुषों का भी लोग अपमान कर देते हैं। अनादर कर देते हैं। आज दक्ष प्रजापति जब आए तो सब उठकर अभिवादन कर रहे हैं- जय हो, जय हो, जय हो, कर रहे हैं। सबका हाथ हिलाकर अभिवादन स्वीकार कर रहे हैं, दक्ष प्रजापति। परन्तु एक ब्रह्मा जी नहीं उठे और दूसरे शिव जी नहीं उठे। जब ब्रह्माजी को देखा तो सोचा ये तो मेरे पिता हैं। शिवजी की ओर देखकर कहा कि-

"ऐषं में शिष्यतां प्राप्तो।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.2.11)

अरे इन्होंने तो मेरे शिव्यत्व प्राप्त कर लिया है, मैंने ब्रह्मा की आज्ञा से अपनी सुकुमारी बेटी से पाणिग्रहण संस्कार किया। मैं तो इनका गुरु हूँ। ससुर भी गुरु तुल्य होता है, इनको तो उठकर मुझे अभिवादन करना चाहिए, प्रणाम करना चाहिए। दक्ष प्रजापति का क्रोध बढ़ गया। भगवान् शिव का अपमान करने लगे। देखो, ब्रह्मऋषियों, देवताओं, साधुओं के समाज में कोई ऐसे नहीं बोल रहा हूँ, मेरी सुकुमारी बेटी को वे ग्रहण किया और वह है "गृहीत्वा मृगशावाक्ष्यः"।

मृगशावक के समान सुन्दर आँख वाली मेरी बेटी "पाणिमंर्कटलोचनः" (श्रीमद्भागवतम् 4.2.12) और ये बन्दर जैसी आँख वाले और ये रहते कहाँ हैं? "प्रेतावासेषु घोरेषु" (श्रीमद्भागवतम् 4.2.14)

भूत-प्रेत के साथ रहते हैं, मैं तो बेटी की शादी यहाँ करना नहीं चाहता था , नारदजी की वजह से करनी पड़ी। ऐसे तम तमाते हुए बोलते हुए कटु शब्दों में कहा कि, मुंडमाला पहनते हैं। भस्म लगाते हैं। भूत-प्रेतों का संग करते हैं। इतना क्रोध बढ़ गया दक्ष का, कि अंत में भगवान् शिव को श्राप भी दे दिया कि-

अयं तु देवयजन इन्द्रोपेन्द्रादिभिर्भिवः।
सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.2.18)

दक्ष प्रजापति ने कहा कि आज से शिव के नाम की आहुति किसी भी यज्ञ में नहीं निकाली जाएगी। भृगु आदि ब्राह्मण बैठे थे जो श्राप का अनुमोदन करने लगे। वहाँ पर शिवगणों ने जब देखा कि ये जो हमारे स्वामी का अपमान कर रहे हैं। शिवगणों को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा कि अरे दक्ष तूने जिस मुख से हमारे स्वामी को गाली दी है, वह मुख बकरे का हो जाए और जितने भी ब्राह्मण बैठे थे जो श्राप का अनुमोदन कर रहे थे सबको श्राप दिया कि तुम भी वेदादि ग्रन्थों को भूल जाओगे। भृगु आदि ब्राह्मण भी श्राप देने लगे कि जाओ तुम भी पाखण्डी बन जाओ। आपस में शापाशापी होने लगी। भगवान् शिव ने सोचा कि मैं तो यज्ञ में आया हूँ मुझे तो खबर ही नहीं लगी कि कब दक्ष आया। मैं भी प्रणाम कर देता। भगवान् शिव तो आंखें बंद करके अपने प्रभु श्रीराम का श्रीकृष्ण का स्मरण कर रहे थे। यहाँ तो झगड़ा शुरू हो गया। भगवान् शिव शान्त भाव से उठकर कैलाश की ओर चल दिए। बोलो शंकर भगवान् की जय। भगवान् शिव की जय।

"निर्भय शान्त विग्रहं" जिसका कोई शत्रु नहीं, जो शान्त भाव से भजन करता रहता है।

अथ तृतीयोऽध्यायः

सती जी का पिता के यहाँ यज्ञोत्सव में जाने का आग्रह करना

परन्तु जब से दक्ष प्रजापति ने शिव को श्राप दिया तब से कोई यज्ञ नहीं करता, यदि शिव को नहीं बुलाएंगे तो भगवान् शिव क्रोध करेंगे, नाराज होंगे। तो शिव का ही अपमान करने के लिए कनखल हरिद्वार में गंगा तट पर "बृहस्पतिअ सर्व" नाम का यज्ञ किया। जब से ब्रह्माजी ने दक्ष को प्रजापतियों का आधिनायक बना दिया तब से दक्ष फूले न समाए।

"प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्मयोऽभवत्।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.3.2)

दक्ष ने सबको आमंत्रित किया, इस "बृहस्पतिअ सर्व" नायक यज्ञ में, परन्तु भगवान् शिव और सती को आमंत्रित नहीं किया। जब देवता अपनी पत्नियों के साथ

विमानों में बैठकर यज्ञमंडप की ओर जा रहे थे, सती जी कैलाश की शिला पर खड़ी है, उन्होंने देखा कि सब मेरे पिता की चर्चा कर रहे हैं। पिता के घर की ओर जा रहे हैं। क्या वे यज्ञ कर रहे हैं। उन्होंने अपनी बेटी को याद नहीं किया। मैं तो अपने पिता के यज्ञ को देखने अवश्य जाऊँगी।

भगवान् शिव के पास सती जी गईं और बोली कि मेरे पिता गंगा तट पर यज्ञ कर रहे हैं। आप चलिए। आज सती जी अपने पिता या पित्रालय की प्रशंसा न करके शिव का सम्बन्ध मधुर हो इसलिए सुन्दर शब्द में बता रही हैं–

प्रजापतेसतेश्वशुरस्य साम्प्रतं निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल।
वयं च तत्राभिसराम वाम ते यद्यर्थितामी विबुधा व्रजन्ति हि।।
(श्रीमद्भागवतम् 4.3.8)

देखिए, वह आपका ससुर है और इस यज्ञ में हमारी अन्य बहनें और उनके पति भी आएंगे। कितना आनंद होगा महाराज सबसे मिलेंगे, खुशियां मनाएंगे, हमको तो जाना ही चाहिए। ये उत्सव, बार-बार नहीं आते। आप चलिए न।

तस्मिन्भगिन्यो मम भर्तृभिः स्वकै-
र्ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृद्दिदृक्षवः।
(श्रीमद्भागवतम् 4.3.9)

सती ने व्याकुल हृदय से आग्रह के साथ पिता के यज्ञमंड़प जाने के लिए आग्रह किया। परन्तु भगवान् शिव ने कहा कि देखो सती आपके पिता ने मुझे निमन्त्रण नहीं भेजा। बगैर बुलाए हम कैसे जाएँ–

"अनाहुता अप्यभियन्ति सौहृदं।"
(श्रीमद्भागवतम् 4.3.13)

देखो सती व्यस्तता के कारण नहीं बुलाए तो ठीक है जा सकते हैं, लेकिन जान-बूझकर नहीं बुलाना तो अपमान हैं। हम वहाँ जाएं और वे मुँह घुमाकर चले जाएं देखकर भी न देखें तो ये अच्छा नहीं होगा।

"आवतहि हरषै नहीं नैनन नहीं सनेह।
तुलसी ताहाँ न जाइये चाहैं। कंचन बरस सनेह।।"

देखो सती वहाँ जाऊँ और तुम्हारे पिता जी देखकर भी न देखें तो वहाँ जाना नहीं चाहिए, जहाँ चेले सोना वरसे पर निमन्त्रण न मिले तो वहाँ कदापि जाना नहीं चाहिए। आज शिव ने उस पुरानी बात को खोल दिया, जब दक्ष ने भी शिव का अपमान किया

था। कहा सती उस दिन तुम्हारे पिता जब सभा में आए तो हमने खड़े होकर स्वागत नहीं किया तो कितना बुरा भला कहा उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। ससुर पिता समान होता है और पिता से ऐसा अपमान हृदय को व्यथित कर देता है, सती ये बाण के घाव से भी अधिक हैं। शस्त्र के बाण का घाव मरहम पट्टी से ठीक हो जाता है पर वाणी के बाण का घाव कभी नहीं मिटता। आज भी ये बात हमें कष्ट देती हैं। अपने लोगों से ऐसा व्यवहार शोभा नहीं देता। सती ने कहा कि महाराज वह आपके ससुर हैं। ससुर रहेंगे, मेरे पिता पिता ही रहेंगे। हम वहाँ जाएँगे तो पिताजी आदर के साथ शायद हमें स्वीकार करें और कहें सती तू आई। मैं तो तुम्हें निमन्त्रण देना भूल गया। महाराज यदि आप और मैं नहीं जाएँगे तो बाहर के लोगों को पता चलेगा कि देखो दक्ष ने बेटी दामाद को नहीं बुलाया। घर की बात सब बाहर करेंगे। इससे तो अच्छा है महाराज हम वहाँ जाएं और सबका मुँह बंद कर दें। आप नहीं जाएँगे तो मैं अवश्य जाऊँगी। क्योंकि तीन जगह पर बगैर बुलाए चले जाना चाहिए।

1. शिष्य को अपने गुरु के घर, जब गुरुदेव के दर्शन की इच्छा हो शिष्य जा सकता है।

2. पत्नी को अपने पति के घर।

3. बेटी को अपने माता-पिता के घर।

पिता का घर तो अपना ही घर है, महाराज, मैं तो अवश्य ही जाऊँगी।

परन्तु भगवान् शिव मन ही मन सोचते हैं कि होनी कितनी बलवान है, मेरे इतना कहने पर भी सती जी मायके जाने की होड़ नहीं छोड़ रही। यज्ञभूमि की ओर जाने को उतावली हो रही हैं। पति की बात भी नहीं स्वीकार कर रही हैं।

"होइहि सोइहि जो राम रुचि राखा
की करि तरक बड़ावहि वैशाखा।।"

जो भगवान् को मंजूर है वही होना है, यही सोचकर भगवान् शिव कहते हैं। यदि सती, तुम आज मेरी आज्ञा का उल्लंघन करोगी तो वहाँ तुम्हारा अपमान होगा। सती एक बात सुन लो यदि पराए व्यक्ति से अपमान होता है तो सहनीय होता है, लेकिन यदि अपने परिवार में अपमान होता है, तो "मरणाय कल्पते"

भगवान् शिव कहते हैं, वह व्यक्ति मरणतुल्य हो जाता है, तुम मत जाओ। परन्तु सती आज नहीं मान रही, कभी वह बाहर जाती है कभी अंदर आती हैं। माता-पिता बहनों से मिलने को तड़प रही हैं। शिव भगवान् ने विचार किया कि यदि मैं सती से

जबरदस्ती करूँगा तो यहीं देह का त्याग कर देगी। वे चिन्तन करने लगी कि सती दो कदम चली जाती है फिर वापिस आ जाती है शिव की आज्ञा नहीं है, नहीं जाती हूँ। फिर कहती शिव तो अपने पति हैं। भोले नाथ हैं, चली जाती हूँ। आकर मना लूंगी। हमारे पति का नाम तो आशुतोष है जिसका अर्थ है जो शीघ्र ही सन्तोष हो जाता है। आशुतोषस्य–

"आशु, शीघ्रम् तुष्यम् इति आशुतोष"

ऐसी ही सती चिन्तन करते–करते बोली अब मैं जा रही हूँ। शिव ने आँख खोलकर देखा कि सच में ये तो चली गई। अब तक भगवान् शिव का कई चक्कर लगाए। जब सती शिव के पास आई तो, शिव ने आँख बंद की और दूर जाने पर आँख खोली। जब सती चली गई तो शिव ने पार्षद नन्दीश्वर को बुलाकर कहा सती के जाने की व्यवस्था करो। पार्षद ने कहा माता जी हमें भी जाना है। आप कहाँ जा रही हैं? कहाँ पिताजी के यहाँ यज्ञ है आप भी चलिए, गेंद, खिलौने, तोता, मैना लेते हुए पिता के घर मस्ती में जा रहे हैं।

अर्थ चर्तुर्थोऽध्यायः

सती जी का अग्नि प्रवेश

मैत्रेय उवाच

एतावदुक्त्वा विरराम शङ्करः पत्न्यङ्गनाशं ह्युभयत्र चिन्तयन्।
सुहृद्दिदृक्षुः परिशङ्किता भवा–न्निष्क्रामती निर्विशती द्विधास सा।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.4.1)

भगवान् शिव चिन्तित हो गए और कहा कि सती ने मेरी बात नहीं मानी, मैं क्या करूँ? शान्त हो गए भोलेनाथ। आज सती भगवान् शंकर की आज्ञा का उल्लंघन करके अपने पिता के यज्ञ को देखने जा रही हैं। इतने द्रुतगति से सती जा रही है, कि साथ में गणकों को चलना भी मुश्किल हो रहा है, शिवगण सब पीछे–पीछे जा रहे हैं। जब वह गंगातट पर पहुँची तो सती जी की 15 बहनें मिलीं। वे आपस में मिलीं। परन्तु किसी ने भी सती से ठीक से वार्तालाप नहीं किया, मुँह फेर लिया। जब सती ने देखा कि मेरी बहनें जो मुझसे स्नेह करती थीं, पति ने भी, बहनों ने भी मुझसे बात नहीं की। स्वयं पिता दक्ष भी सामने से निकल गये। वह भी एक बार नहीं बोले कि बेटी तू आ गई, तेरे आने से तेरे पति और पिता का बैर निकल गया। एक बार कुशल मंगल नहीं पूछा। सती को ग्लानि हुई। बहन और उनके पति से बात न करने पर वह

मर्माहत हुई। पिता के बात नहीं करने पर वह बहुत दुखी हुई। माँ के पास जाने पर प्रसूति उसे देखकर जल की झारी लाई और कहा बेटी दूर से आ रही हो, थक गई हो जल पीयो। स्वागत किया बेटी का। माँ का हृदय कितना कोमल होता है।

"सादर भनै मिलहि एक माता भगिनी मिलै बहुत मुस्काता।"

माँ के हाथ से जल की झारी लेकर कहा सबने मेरा अपमान किया, पिता ने, बहनों ने, बहनों के पतियों ने, सब परिवारजनों ने मेरा अपमान किया। ऐसा कहकर क्रोध में जल झाड़ी को दूर फेंक दिया। माँ से कहा कि माँ मैं सबसे पहले यज्ञ मंडप की शोभा देखने जा रही हूँ। फिर आकर तुझसे मिलूंगी। इतना कहकर यज्ञमंडप चली गई। सती जी क्रोधित मन में द्रुत गति से यज्ञ मंडप की ओर जा रहे हैं। यज्ञ मंडप में ब्राह्मणों ने "आब्रह्म का घोष" की, होड़ लगा दी।

कौन वेद मन्त्र का उच्चारण उच्च स्वर से करेगा। वेद मन्त्र का उच्चारण श्रवण कर के सती जी ने मंडप में प्रवेश किया। एक ओर देवता बैठे हैं, एक ओर देवियां बैठी हैं। सबको दर्शन देते हुए सती जी अंत में आहुतियां देने के स्थान पर पहुँची। जहाँ देवताओं के नाम पर आहुतियां दी जा रही हैं। "इन्द्राय स्वहा:, वरुणाय स्वहा:, चन्द्राय स्वहा:– आदि आदि देवताओं की आहुतियां दी जा रही हैं, परन्तु सती ने देखा कि सबको आहुतियां दी जा रही हैं, भगवान् शिव को नहीं। भगवान् शिव की यह अवहेलना देखकर सती जी और क्रोधित हो गई और इतनी क्रोधित होकर यज्ञशाला में सबको देखने लगी कि मानो सबको जलाकर राख कर देंगी।

"चुकोप लोकानिव धक्ष्यती रुषा।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.4.9)

अपने पिता के द्वारा इस प्रकार व्यवहार देखकर सती जी ने कहा कि

"यद्द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.4.14)

तो सती ने भगवान् शिव की आहुति को न सुनकर बड़ी दुखी हुई, क्रोधित हुई। मन में विचार किया कि मैंने शिवद्रोही के घर जन्म लिया हैं। कितना सुन्दर नाम है शिव मेरे पति का।

"यद्द्वयक्षरं नाम गिरेरितं नृणां"

जो एक बार शिव कह देता है उसका परम् कल्याण हो जाता हैं। परन्तु मैंने शिवद्रोही के घर जन्म लिया हैं। सती कहती हैं कि श्रीमद्भागवत में जहाँ हर ओर

हरि की निन्दा करी जाए, राम, शिव की कृष्ण की निंदा हो तो ऐसे व्यक्ति को दंड देना चाहिए। यदि दंड न दे सके तो कान में उंगली डाल देना। अपने प्रभु की, इष्ट की निन्दा कभी न सुनना।

"हरिहर निन्दा सुने जो काना होइहि पाप गौघात समाना"

तो आज सती अपने पिता को दंड नहीं दे सकती क्योंकि पिता है, मर्यादा में रहकर ही सती अपने को संभाल ने की कोशिश की। परन्तु सती के अंदर इतना क्रोध बढ़ गया कि क्रोध से सती के शरीर से क्रोधाग्नि, योगाग्नि प्रज्ज्वलित हुई। लोग कहते हैं सती क्रोधाग्नि में जल गई, नहीं नहीं, परन्तु श्रीमद्‌भागवत कहता हैं–

"सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना।"

(श्रीमद्‌भागवतम् 4.4.27)

सती जी क्रोधाग्नि में नहीं जली योगाग्नि में प्रज्ज्वलित हुई। अपने पति शिव का चिन्तन करते–करते त्रिनेत्र से ज्वाला प्रकट करके दग्ध हो गई। जलकर स्वाहा हो गई। त्रिलोक में हाहाकार मच गया। सब देवता भयभीत हो गए। नाग, गन्धर्व सब भयभीत होकर डरने लगे कि अब भगवान् शिव के कोपसे कौन रक्षा करेगा?

श्री नारद जी महाराज ने देखा कि सती जी ने अपनी देह त्याग दी, तो वह कीर्तन करते हुए कैलाश पर शिव के पास पहुँचे। श्रीनारायण नारायण नारायण।

भगवान् शंकर के पास जब नारदजी पहुँचे तो शंकर भगवान् को देखकर नारदजी ने कहा, भोले बाबा की जय, शंकर भगवान् की जय हो। प्रणाम किया शंकर भगवान् को।

शंकर यानि "सम् कल्याण करोति इति शंकरः।"

जो सबका ही भला करते हैं, कल्याण करते हैं, वही शंकर हैं। भगवान् शंकर ने कहा नारद बहुत दिन में पधारे हो क्या खबर लाए हो? नारद जी ने कहा प्रभु पहले यह बताएं कि सब लोग यहाँ हैं। सती जी कहाँ हैं? नारद जी, सती अपने पिता के घर गई हैं। यह तो आपको पता ही हैं। नारद बोले महाराज यह तो आपने बहुत अच्छी बात कह दी।

परन्तु आपको वहाँ से कुछ और खबर मिली है क्या? भगवान् शिव बोले नारद क्या खबर लाए हो? नारद जी ने कहा महाराज सती ने जब आपके नाम की आहुति नहीं देखी तो सती अग्नि में जलकर भस्म हो गईं हैं।

अथ पंचमोऽध्यायः

वीर भद्रकृत दक्षयज्ञ विध्वंस और दक्ष वध

"भवो भवान्या निधनं प्रजापतेर् असत्कृताया अवगम्य नारदात्।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.5.1)

श्रीनारद जी के द्वारा शिवजी को खबर मिली कि सती जी अग्नि में भस्म हो गई हैं। भगवान् शिव को अत्यधिक क्रोध आया और क्रोध में भगवान् शिव ने अपनी जटाओं को पकड़ लिया। जटाओं को पकड़कर विशाल चट्टान पर जब फेंककर मारा एक बाल को, तो वीरभद्र नामक गण उत्पन्न हो गए। "कालं कालं महाकालं शिवं" कालों के काल महाकाल भगवान् शिव हैं। जिनके एक बाल से वीरभद्र नाम के गण प्रकट हो गए।

"करालदंष्ट्रो ज्वलदग्निमूर्धजः कपालमाली विविधोद्यतायुधः।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.5.3)

जिनको देखना अति भयंकर हैं। सारा आकाश भर गये प्रचंड विराट शरीर हैं। ज्वलन्त अग्नि मूर्ति की तरह विराट शरीर हाथ में खड्ग लेकर भगवान् शिव को प्रणाम करते हुए कहने लगे–

"किं करोमिति" हे नाथ, हे मालिक बताइए मैं आपके लिए क्या करूं? भगवान् शिव ने कहा, कि वीरभद्र जाओ– "दक्षं सयज्ञं जहि" अभी जाकर दक्ष का यज्ञ विध्वंध कर दो, आज दक्ष ने मेरी प्राण प्यारी सती को जलाकर भस्म कर दिया। उस समय वीरभद्र शिवगणों को साथ लेकर दक्ष के यज्ञ की ओर चल दिए। जब वीरभद्र अपनी शिवसेना, शिवगणों को लेकर दक्ष के यज्ञ की ओर जा रहे हैं। साथ में भूत-प्रेतादि भी हैं। उस समय आकाश मार्ग में अंधकार छा गया। मानो कोई प्रलयन्तकारी झंझावात होने वाला हैं।

वाता न वान्ति न हि सन्ति दस्यवः प्राचीनबर्हिर्जीवति होग्रदण्डः।
गावो न काल्यनत इदं कुतो रजो लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.5.8)

यज्ञ में भाग लेने आए हुए सब देवताओं, ऋषियों, ब्राह्मणों ने देखाकि भयंकर अंधकार छा गया। किसी ने कहा कि भैया दिन दहाड़े चोर डाकूओं का संगत तो नहीं आ रहा, दूसरे ने कहा भई ये राजा प्राचीन वहि का राज हैं। जो स्वयं चोर डाकूओं को दंड देते हैं, तो ये चोर डाकूओं का संगत नहीं हो सकता। किसी ने कहा गाय भैंस का

झुण्ड वापिस जा रहा वह धूल है, किसी ने कहा प्रलय का समय तो नहीं आ गया। ऐसा वार्तालाप चल ही रहा था कि उसी समय वीरभद्र ने अपनी भूत सेना लेकर सारा यज्ञमण्डल घेर लिया। घेराबंदी कर के कहने लगे भैया एक भी न भाग पाए, सबको बांध लो, पकड़ लो। सारे यज्ञ मंडल में हाय–तौबा मच गई। इन भूतों ने स्त्रियों के बैठने के स्थान को ध्वस्त कर दिया यज्ञ पात्र नष्ट कर दिए। यहाँ तक कि "कुण्डेषूमूत्रयन्" यज्ञ कुण्ड में इन भूतों ने लघुशंका कर दिया। जितने देवता हैं। सबका अंग भंग कर दिया। ऊषा नाम के देवता का दांत तोड़ दिया। भृगु महाराज की दाढ़ी उखाड़ ली और भग नाम के देवता की आँख फोड़ दी। त्रिलोकी में हाहाकार मच गया।

भृगुं बबन्ध मणिमान्वीरभद्रः प्रजापतिम्।
चण्डेशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वराऽग्रहीत्।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.5.17)

ये सब देवता भागने का उपक्रम कर रहे थे, परन्तु भगवान् महादेव के गणों ने इन सबको पकड़ लिया। भृगु महाराज को मणिमान! ने बांध लिया, प्रजापति को वीरभद्र ने, चण्डीश ने पूषणं देव को बांध लिया और भंग देवता को नन्दीश्वर ने बांध लिया।

वीरभद्र ने कहा भागते कहाँ हो? यज्ञ में आए हो भाग लेकर जाओ। ऐसे नहीं छोड़ेंगे। नन्दीश्वर ने कहा उषा नाम के देवता दांत हिलाकर नृत्य कर रहे थे। वीरभद्र बोले अच्छा। एक मुक्का मारा, बत्तीसी बाहर कर दिया। फिर नन्दीश्वर ने कहा भृगु महाराज दाढ़ी हिलाकर अनुमोदन कर रहे थे, ठीक हैं। वीरभद्र ने कहा अच्छा एक झटके में दाढ़ी उखाड़ दी। भग नाम के देवता आँख टेढ़ी करके इशारा कर रहा था। वीरभद्र ने कहा अच्छा उंगली डालकर आँख ही निकाल दी।

दक्ष का सिर काटकर वीरभद्र ने यज्ञकुण्ड में डाल दिया, 'दक्षमुडःस्वाहा' त्रिलोक में हाहाकार मच गया। सर्वत्र पुकार होने लगी त्राहिमाम्! त्राहिमाम्। रक्षा करो! रक्षा करो। कौन रक्षा करेगा। शिवगणों के हाथों सब पराजित हो रहें। भगवान् शिव के क्रोध से कौन रक्षा करेगा!

अथषष्ठोऽध्यायः

ब्रह्मादि देवताओं का कैलाश जाकर महादेव जी को मनाना

ये सारे देवता ब्रह्माजी के पास गए और कहा कि रक्षा करें, रक्षा करें। ब्रह्माजी ने कहा कि देवताओं क्या हुआ? क्यों इतने घबराए हुए हो? सब देवता ब्रह्मा को दक्ष यज्ञ

की, शिवगणों का प्रसंग सुनाने लगे। ब्रह्माजी ने कहा देवताओं जहाँ शिव का अपमान हुआ, जिस सभा में, यज्ञ में शिव नहीं गए। हम सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा नहीं गए तो आप क्यों गए? देवताओं ने कहा "राम दुहाई तो दुहाई कभी न जाई" अब हम क्या करें?

गलती हो गई माफ करें। ब्रह्मा जी ने देवताओं को समझाया। तुम सब ने मिलकर शिव का अपमान किया। जिसका अपमान किया उसी की शरण में हम सब चलें। सब देवताओं को लेकर ब्रह्माजी कैलाश की ओर चल दिए। सब देवता कैलाश में जाकर भगवान् शिव की स्तुति कर रहे हैं।

गीतम्

ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय
तेरा पल पल बीत जाए जप ले ॐ नमः शिवाय।

परन्तु भगवान् शिव को देखकर देवताओं का साहस नहीं हुआ, उनके सम्मुख जाने के लिए। ब्रह्मा जी को कहा आप हमारी तरफ से जाइए, शान्त परिवेश देखकर इशारा कीजिए तभी हम आएंगे। इधर भगवान् शिव एक विराट वृक्ष के नीचे ध्यानास्थ बैठे हुए हैं।

"ददृशुः शिवं आसोनं" ब्रह्माजी को शिव ने देखा अंतदृष्टि से, ब्रह्माजी को देखकर शिवजी ने आँख खोली, स्वागत किया। प्रणाम किया। ब्रह्मा जी ने कहा हे शिव, हे प्रभु मैंने अपका इतना क्रोध कभी नहीं देखा। भगवान् शिव ने कहा,ब्रह्माजी आप तो मेरा ही स्वरूप हैं, क्या आप मेरे स्वरूप को नहीं पहचानते हैं, तो भगवान् शिव ने ब्रह्मा जी, को, ब्रह्मा, विष्णु महेश के एकत्व स्वरूप से अवगत कराया।

शिव ने कहा देखो ये सब देवता दक्ष के साथ मिलकर मेरा कितना अपमान किया। दक्ष ने हमें कितनी बड़ी गाली बकी। सती को सोचकर हमने दक्ष को छोड़ दिया। अब जब सती ही न रही हो तो दक्ष का क्या? हमने वीरभद्र को भेजा, हमारा यज्ञ भाग भी बंद कर दिया। ब्रह्मा जी ने सभी को इशारा किया आकर उन्होंने माफी माँगी।

"एष ते रुद्र भागोऽस्तु युदच्छिष्टोऽध्वरस्य वै।
यज्ञस्ते रुद्र भागेन कल्पतामद्य यज्ञहन्।।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.6.53)

हे शिवजी हम सब देवता आपको छोड़कर यज्ञभाग नहीं ले सकते। हम आपको यज्ञ भाग देकर ही यज्ञ भाग लेंगे। जहाँ रुद्र का यज्ञ भाग नहीं मिलेगा वहाँ यज्ञ सम्पन्न नहीं होगा। हम सब तो आपके साथ ही हैं। भगवान् शिव का नाम है

आशुतोष। शीघ्र ही प्रसन्न होकर अपने नाम को सार्थक किया। ब्रह्मा जी ने कहा चलकर यज्ञ सार्थक करो। शिव सभी देवताओं के साथ रुद्राक्ष भूमि आए और यज्ञ सार्थक किया।

अथ सप्तोऽध्यायः

दक्ष यज्ञ की पूर्ति

श्री महादेव उवाच
नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये।
देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.7.2)

शिवजी ने कहा! हे ब्रह्माजी हमने क्रोध नहीं किया, ब्रह्माजी मैं क्रोध नहीं कर रहा हूँ। जैसे कोई बालक जब कोई अपराध करता है तो माता-पिता की भावना उसे मार डालने की नहीं होती, बल्कि वे चाहते हैं हमारी सन्तान सही मार्ग का अनुसरण करे, तो उसके लिए कभी-कभी डांटती, कभी फटकारती, कभी डराती, कभी थप्पड़ भी लगाती हैं। माता-पिता सन्तान को धमकाती भी हैं। सही मार्ग के लिए। इसी प्रकार देवता हमारे पुत्र हैं। यदि ये गलत मार्ग पर चले तो सुधारने के लिए दण्ड देने के लिए डंडा धारण किया। शासन व्यवस्था सुधारने के लिए। ये मेरा क्रोध नहीं, बनावटी क्रोध है।

ब्रह्मा जी कहते हैं! हे देवाधिदेव महादेव, आपकी लीला कौन जान सके हैं। आप इस यज्ञ को पूरा करें, कृपा करें तो भगवान् शिव जितने भी देवता थे, जिनके अंग-भंग थे उन्हें आशीर्वाद देकर उनके अंग व्यवस्थित कर दिए। भग नाम के देवता की आँख फोड़ दी थी वीरभद्र ने, उनकी आँख ठीक कर दी। ऊषा नाम के देवता के दाँत भी लगा दिए। ब्रह्माजी ने कहा- भृगु जी की दाढ़ी भी लगा दीजिए। भोले नाथ ने कहा पूरा नहीं बाबा, थोड़ी मिलेगी, तो पड़ी हुई बकरे के समान दाढ़ी को भगवान् शिव ने यथा संभव लगा दी।

देखिए देवताओं को ये कष्ट क्यों मिला, जिस समय दक्ष भगवान् शिव का अपमान कर रहा था, उस समय ये सब देवता जिस अंग से उसका अनुमोदन कर रहे थे, वही अंग खराब कर दिया। यानी आदमी जिस अंग से पाप करता है उसे ही दंड मिलता हैं। भृगु जी ने अपनी दाढ़ी हिलाई तो उसी समय उनकी दाढ़ी उखाड़ी। ऊषा देवता हंस रहे थे तो उनके दांत निकाल दिए। जिस समय भग नाम के देवता की

आँखें लगी ऊषा देवता रोने लगे। अपनी दाँत की वापसी के लिए महादेव जी ने कहा "पिष्टभुकः," दांत की क्या जरूरत है सत्तू घोल-घोलकर पीयो। परन्तु ब्रह्मा जी की प्रार्थना से उन्हें भी दांत मिल गया। तो ये शिक्षा प्रदत्त कथा हैं। कहने का अभिप्राय है जो भगवान् शिव की शरणागत हो जाते हैं। किसी भी परिस्थिति में उन पर भगवान् शिव की कृपा बरसती हैं। यहाँ पर सबका कल्याण कर दिया। अपने त्रिशूल सेवक को भगवान् शिव ने इशारा किया जाओ और वे चल पड़े। तुरंत लेकर आए बकरे का मस्तक। भगवान् शिव बकरे के मस्तक को लेकर गए यज्ञ मंडप में जहाँ दक्ष का शरीर, धड़ पड़ा हैं। धड़ पर बकरे का मस्तक स्थापित कर दिया। आज भगवान् शिव अपने प्रिय पार्षद नन्दीश्वर का वचन पूरा कर रहे हैं। क्योकि जिस समय शिवगणों को शापाशापी हो रहा था और दक्ष ने गाली दी थी। नन्दीश्वर ने कहा कि दक्ष जिस मुख से तुमने शिव को गाली दी तेरा मुख बकरे का हो जाए।

ज्योंहि भगवान् शिव ने बकरे का मस्तक दक्ष के धड़ पर रखा तो वह जीवित हो गए। खड़े हो कर हाथ जोड़कर भगवान् शिव की प्रार्थना करने लगे। तीन श्लोकों में दक्ष ने शिव की प्रार्थना की।

दक्ष उवाच

भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे
दण्डस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः।

(श्रीमद्भागवतम् 4.7.13)

दक्ष ने भगवान् को प्रणाम करते हुए कहा प्रभु आपने मेरे ऊपर बहुत अनुग्रह किया, कृपा की जो बकरे का मस्तक देकर प्राण दान दिया।

प्रेम से कहो हरे कृष्ण-

"विद्याविहीनः पशु भी समाना"

जो विद्या से विमुख जीव है, उसका जीवन पशु समान है, आज दक्ष को दंड दिलाकर भगवान् शिव जगत में शिक्षा दे रहे हैं की अधिकार प्राप्त करके व्यक्ति को अहंकार में नहीं आना चाहिए।

साथ-साथ में ज्ञान का भी होश रखना चाहिए। विद्या से विचार करना चाहिए। जो ऐसा नहीं करते, उसका परिणाम दक्ष की तरह बकरा बनना पड़ता है, शिव हैं। विद्यामूर्ति, ज्ञान मूर्ति जिसने शिव के स्वरूप को नहीं पहचाना उसका जीवन पशु स्वरूप हैं। जो शिव को नहीं मानते उसका क्या कहना वह अज्ञानी हैं। आज बमबम शब्द कहकर दक्ष ने कहा प्रभु आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की बकरे का मस्तक देकर

आपने दंड नहीं दिया। बड़ा अनुग्रह किया क्योंकि मुझ संसारी व्यक्ति को आपका स्वरूप नहीं मालूम।

आपके प्रति मैंने भेदभाव रखा है, मैंने सोचा आप मेरे दामाद ही हैं। आपके भगवद्स्वरूप को नहीं पहचान पाया जबकि एक प्रजापति होने के नाते मुझे आपके स्वरूप का भी ज्ञान होना चाहिए था, परन्तु आपने मुझे दंड देकर कृतकृत्य कर दिया। मैं आपके चरणों में "पुरुषाय तुभ्यं हरेश्च कुतः" मैं आपको प्रणाम करता हूँ। भगवान् शिव प्रसन्न हुए।

अब भगवान् शिव की अध्यक्षता में यज्ञ प्रारंभ हो गया। उच्छिष्ठ भाग भगवान् शिव को भेंट किया गया। श्री शुकदेव महाराज कहते हैं। राजन, यज्ञपरांत या यज्ञान्त यज्ञ भगवान् भी प्रकट हो गए। बोलिए यज्ञ भगवान् की जय। यज्ञ भगवान् ने अपने स्वरूप का परिचय करवाया।

श्री भगवानुवाच–

"अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.7.50)

यज्ञ भगवान् कह रहे हैं मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही शिव हूँ, मैं ही जगत का परमकारण हूँ। मुझे में ही त्रिदेव हैं।

संक्षिप्त में शिवपुराण की कथा

बोलिए शंकर भगवान् की जय!

देखिए यहाँ से थोड़ी भगवान् शिव की कथा श्रवण करें। जब यज्ञ पूर्ण हुआ, सम्पूर्ण हुआ, भगवान् शिव की अध्यक्षता में तो सब देवता अपने-अपने लोक को चले गए। शिवजी कैलाश धाम को चले गए। परन्तु आज भगवान् शिव का मन कैलाश पर नहीं लग रहा हैं। बार-बार शिव को सती का स्मरण हो रहा हैं। आज अग्नि ने मेरी सती को जलाया हैं। तो मैं संसार से अग्नि को नष्ट कर दूँगा। लेकर अपना त्रिशूल भगवान् शिव दौड़ पड़े अग्निदेव को मारने। आगे-आगे अग्नि देव पीछे-पीछे शिव। अग्नि देव ब्रह्मा जी की शरण में गए और बोले महाराज बचाइए शिव मेरे ऊपर क्रोध कर रहे हैं। मैंने सती को नहीं जलाया। मेरे अंदर इतनी ताकत नहीं है कि मैं सती को जला दूं।

ब्रह्मा समझ गए कि इस समय भगवान् शिव मोहलीला कर रहे हैं। मैं भी मोह लीला में सहायक बन जाऊँ। तो तुरंत पंचतत्व लेकर ब्रह्माजी ने सती जी का शरीर

निर्माण किया और वह पंचभौतिक शरीर लेकर भगवान् शिव को समर्पित कर दिया। भगवान् शिव ने वह शरीर लेकर अपने कंधे पर डाल लिया और कैलाश की गुफाओं में भ्रमण करने लगे।

भगवान् शिव का कंधे से सती का शरीर बँधने के कारण गल गल कर गिर रहा था। जहाँ-जहाँ वे गिरे वहाँ-वहाँ देवियों की प्रतिष्ठा हुई, जहाँ हृदय का भाग गिर वहा (वैष्णों) देवी प्रकट हो गई और जहाँ सिर का भाग गिरा वहाँ 'मनसा देवी' प्रकट हो गई। जहाँ आंखों का भाग गिरा। वहाँ 'नैना देवी' प्रकट हो गई।

जहाँ मुख का भाग गिरा वहाँ 'ज्वाला जी' प्रकट हो गई। जहाँ केश गिरे वहाँ 'कात्यायिनी देवी' स्थापित हो गई। आज भी श्री वृन्दावन में कात्यायिनी पीठ है जो गोपियों ने भगवत प्राप्ति के लिए कात्यायिनी देवी का पूजन किया था। भागवत में यह श्लोक है-

"कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः।
इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः।।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.22.4)

आज भी कात्यायिनी पीठ हैं। रघुनाथ जी मंदिर के पास ही है वृन्दावन जाएं तो दर्शन जरूर करना चाहिए। कात्यायिनी जी का पवित्र मंदिर है, जहाँ सती जी के केश गिरे थे। जहाँ जहाँ सती जी के अंग गिरे वहाँ देवियों की स्थापना हो गई। दूसरा जन्म सती जी ने पार्वती के रूप में धारण किया। पर्वत की पुत्री के रूप में, पर्वत राज हिमालय के घर पार्वती के नाम से प्रख्यात हुई और कठोर तप करके भगवान् शिव को पुनः प्राप्त कर लिया। श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन जो सती के चरित्र का श्रवण करते हैं। वे मन में शिव पार्वती के प्रति श्रद्धा भक्ति उत्पन्न कर लेते हैं और दो बातें मिल जाती हैं। इन प्रसंगों को श्रवण करके। कौन-कौन से लाभ हैं? भैया, बोले- "यशस्वं आयुषं" उस व्यक्ति की आयु बढ़ जाती है और यश भी प्राप्त होता है तो देखिए कथा में कितनी शक्ति है दीर्घायु जीवन होता है, सती के चरित्र श्रवण से, और प्रतिष्ठा प्राप्त होती हैं। ये है परम् मंगल चरित्र सती जी का। एक बार प्रेम से बोलो हर-हर महादेव, शिव पार्वती की जय। शिव शक्ति की जय।

भागवत का जो प्रथम स्कन्ध है इसे किसी-किसी आचार्य ने भूमिका स्कन्ध भी कहा है, जैसे किसी ग्रंथ की जो रचना होती है तो भूमिका लिखी जाती हैं। भागवत का प्रथम और द्वितीय दोनों स्कन्ध भूमिका स्कन्ध है।

तृतीय स्कन्ध का लक्षण है—सर्ग। सर्ग माने सृष्टि। जिसमें दस प्रकार की सृष्टि का भागवत में वर्णन किया।

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः।।

(श्रीमद्भागवतम् 2.10.1)

चौथे स्कन्ध का लक्षण है विसर्ग यानी सृष्टि का विस्तार।

मैत्रेय जी और विदुर जी को संवाद प्रसंग में सती जी का चरित्र प्रसंग आपने श्रवण किया। राजा परीक्षित ने प्रश्न किया कि भगवन् आपने सुन्दर श्रवण कराया कृपा करके किसी भक्त का चरित्र सुनाइए, क्योंकि जितना आनंद भगवान् की कथा सुनने में आता है, भक्त चरित्र सुनने में भी कम आनंद नहीं आता। तो आप कृपा करके गुरु जी महाराज किसी भक्त की कथा सुना दीजिए। तो शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन्।

अष्टमोऽध्यायः

ध्रुव का वनगमन

प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ।
वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतःस्थितौ।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.7)

मनुशतरूपा के पुत्र उत्तानपाद जिनकी राजधानी कन्नौज (कानपुर) में स्थित हैं। जो भगवान् वासुदेव के इच्छा से जगत की रक्षा के लिए उत्तानपाद तथा प्रियव्रत के रूप में अवतरित हुए। जिन उत्तानपाद की दो पत्नियां सुनीति और सुरुचि हैं। दोनों पत्नी के दो पुत्र हैं। सुरुचि का पुत्र उत्तम कुमार और सुनीति का पुत्र ध्रुव कुमार।

सुनीति माने "सुष्टु नीति इति सुनीति" जो शास्त्रों की सुन्दर नीति पर चलती हैं। और सुरुचि का अर्थ है जो अपने मनमाने ढंग से जीवन यापन करती हैं। एक बार सुनीति के पुत्र ध्रुवकुमार मित्रों से खेल समापन करके सुरुचि के महल में गए।

एकदा सुरुचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन्।
उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाभ्यनन्दत।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.9)

पाँच वर्ष के थे ध्रुवकुमार, विमाता के महल में आकर देखा, पिता की गोद में भाई उत्तम कुमार बैठा हैं। स्वाभाविक है बालक के मन में विचार आया कि मैं भी

पिता की गोद में बैठूं। ऊँचा सिंहासन था, ध्रुव जी सिंहासन पर चढ़ने लगे। बार–बार चढ़ने का प्रयास किया पर नीचे गिर रहे हैं। चढ़ा नहीं जा रहा। राजा उत्तानपाद की दूसरी पत्नी सुरुचि बैठी थी पास में सुरुचि ने कहा बेटा ध्रुव। क्या तू पिता की गोद में बैठना चाहता हैं। ध्रुव बोले–हाँ माँ मैं भी महाराज की गोद में बैठूंगा। सुरुचि ने कहा–ध्रुव ऐसे तू पिता की गोद में नहीं बैठेगा। ध्रुव यदि तुझे पिता की गोद में बैठना हो तो सुरुचि ने कहा–

"तपसाराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे।
गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनम्।।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.13)

पहले नारायण की तपस्या करो। तप करने के बाद देह का त्याग करके मेरे गर्भ में जन्म लेना तब तू इस सिंहासन पर बठने लायक बनेगा। राजा का बेटा होना आवश्यक नहीं, बल्कि मेरा पुत्र होना आवश्यक है, तभी तुम सिंहासन पर बैठ सकते हो। जैसे किसी सर्प को लाठी से पीटा जाए तो सर्प फुंकार मारता है वैसे ही ध्रुव कुमार लम्बी–लम्बी सांस भरते हुए अपने महल की ओर गए।

मातुः सपत्न्याः स दुरुक्तिविद्धःश्वसन्रुषा दण्डहतो यथाहिः।
हित्वा निषन्तं पितरं सन्नवाचं जगाम मातुः प्ररुदन्सकाशम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.14)

जाकर कहा रोते हुए, माँ क्या मैं महाराज का पुत्र नहीं हूँ। सुनीति ने कहा बेटा आज तक तुमने ऐसा कभी नहीं पूछा, क्या बात है? बोले माँ आज मैं विमाता के महल में गया महाराज की गोद में उत्तम भैया थे। मेरी इच्छा हुई कि मैं भी महाराज की गोद में बैठूं तो विमाता ने कहा कि ध्रुव यदि तुम महाराज की गोद में बैठना चाहते हो तो पहले नारायण का तप करो। फिर देहत्याग करो तब मेरे गर्भ से जन्म लेने के बाद ही इस सिंहासन पर बैठने लायक बनोगे। क्या माँ, मैं महाराज का पुत्र नहीं हूँ।

सुनीति जानती है कि महाराज का प्रेम सुरुचि से ज्यादा है हमसे नहीं। तो सुनीति माता ने कहा बेटा–तेरी माँ (सुरुचि) ने बिल्कुल ठीक कहा, परन्तु संसार में जो व्यक्ति दूसरों के अमंगल की कामना करता है उसका कभी मंगल नहीं हो सकता।

मामङ्गलं तात परेषु मंस्था भुङ्क्ते जनो यत्परदुःखदस्तत्।

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.17)

अतः बेटा तुम यदि अपना मंगल चाहते हो तो दूसरे का भी मंगल करो। बेटा तेरा भाग्य ही ऐसा है कि तूने मेरे गर्भ में जन्म लिया इसलिए तू राजगद्दी पर नहीं बैठ सकता।

"यद्दुर्भगाया उदरे गृहीतः।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.18)

परन्तु बेटा तेरी माता ने कितना सुन्दर बताया कि तू भगवान् का तप कर, भजन कर, कितना सुन्दर मार्ग दर्शाया। कि "तपस्या आराध्यं पुरुषं" बेटा निश्चित रूप से तुम तप करो और निर्भय हो कर करो। वही आराध्य पुरुष ही हम लोगों का दुख दूर करेंगे। बोले माँ आप भी कहते हैं कि मैं तप करूँ तो बताओ वे भगवान् नारायण कहाँ मिलेंगे।

बड़े-बड़े ऋषि मुनि नहीं जानते कि भगवान् कहाँ रहते हैं। ये साधारण माँ क्या बताएगी। तो आकाश की ओर इशारा कर दिया। भगवान् बहुत दूर रहते हैं। ध्रुव ने कहा माँ भगवान् अब कहीं भी हैं, मैं घर तब ही लौटूंगा जब नारायण का दर्शन कर लूंगा।

एक पाँच बरस के बालक ने अपने तन से राजसी वस्त्र उतार दिया। केवल लंगोटी धारण करके राजमहल से बाहर निकल पड़े। शुकदेव जी महाराज कहते हैं, देखो परीक्षित इस राजपुत्र के तेज को, जरा भी मानभंग बर्दाशत नहीं हुआ। क्षत्रिय तेज धारण करते हुए मन को स्थिर करके भगवान् नारायण की खोज में निकल पड़े।

अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभङ्गममृष्यताम्।
बालेऽप्ययं हृदा धत्ते यत्समातुरसद्वचः।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.26)

राजन, मनु महाराज की ये उत्तानपाद छोटे पुत्र हैं, जिसकी राजधानी कानपुर में हैं। उत्तानपाद कानपुर के राजा थे। मनु महाराज के बड़े पुत्र प्रियव्रत जी जो नारद जी को गुरु बनाकर उनकी प्रेरणा से ब्रह्मविद्या लाभ की इच्छा से मलय पर्वत पर तपस्या में लीन हैं।

तो ध्रुव कुमार निकल पड़े और अनेक मार्ग से भ्रमण करते हुए महावन में जा रहे हैं, अनेक मार्ग हैं। कौन-से मार्ग में चलें निर्णय नहीं कर पा रहें। किस मार्ग पर चलूं जो भगवान् का दर्शन मिले। मार्ग दर्शन कराने वाला ही सद्गुरु है, जो हमें सद्मार्ग दिखाए। अच्छा मार्ग बताए। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में सद्गुरु की आवश्यकता है।

तो हमारे जीवन में सद्गुरु की महिमा बढ़ जाती है, किसी ने कितना सुन्दर लिखा है कि-

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पायै,
बलिहारि गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताये।।

गुरु समान दाता नहीं याचक शिष्य समान,
तीको लोक की सम्पदा सद्गुरु दीनी दान।
कबीरा गुरु की भक्ति कर त्याग विषयारस चोंच,
बार–बार नहीं पाइए मानव तन की मोह।।

जैसे एक रत्न की पहचान एक जौहरी को होती हैं। यदि किसी साधारण व्यक्ति के हाथ एक रत्न लग जाए तो कांच समझकर उसे फेंक सकता है।

किन्तु जौहरी की दृष्टि में वह रत्न होता है कांच नहीं। इसी प्रकार से उन परमात्मा की कृष्ण की, बिहारी जी, महाराज की पहचान करने वाले भी गुरु हैं। पत्थर में भगवान् दिखता है गुरु जी की नजर से।

श्री विग्रह में भगवान् के साक्षात् दर्शन गुरु करते हैं, साधारण मनुष्य नहीं। आज से 500 वर्ष पहले श्रीवृन्दावन धाम में परम आचार्य, गुरुओं के गुरु, संगीत सम्राट, रसिक शिरोमाणि, स्वामी श्रीहरि दास जी महाराज ने जिनकी कृपा से साक्षात् श्री बिहारी जी महाराज का दर्शन हुआ।

25 वर्ष की अवस्था में वृन्दावन आए स्वामी हरिदास जी महाराज और 5000 वर्ष की पहले के घटना हैं, 15वीं शताब्दी के महान सन्त थे स्वामी हरिदास जी महाराज और जिन्होंने 5 साल के साधना काल में ही साक्षात् बिहारी जी महाराज को प्रकट कर दिया। बिहारी जी महाराज का साक्षात् दर्शन करा दिया। बोलो बांके बिहारी जी महाराज की जय।

जब गुरुजन की कृपा हो जाती है, भगवत दर्शन में देर नहीं लगती। ये केवल 500 वर्ष पहले की घटना है। उस समय के जो ब्रज के रसिक भक्तों ने प्रार्थना की कि आप जिस छवि का आनंद लेते हैं हमें भी उसका दर्शन कराइए। वे कौन हैं। बांके बिहारी जी? तो बांके बिहारी जी महाराज से प्रार्थना की तो आज भी दिव्य तिथि हैं। अगहन मास शुक्ल पक्ष पंचमी तिथि को बिहारी जी महाराज का प्राकट्य दिन, जन्म दिन श्री वृन्दावन में बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। जिन दिनों मिथिला में श्रीराम जी का सीता जी से पाणिग्रहण संस्कार हुआ था, अगहन मास शुक्ला पंचमी उसी दिन श्रीवृन्दावन में बांके बिहारी जी प्रकट हुए। तो गुरु की कृपा हो गई, साक्षात् श्री बिहारी जी मिल गए। महापुरुषों की कृपा होने से कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती।

एक बार अकबर ने तानसेन का संगीत सुना। तानसेन का संगीत सुनकर अकबर मोहित हो गए। अकबर ने कहा तानसेन आपका गुरु कौन है? तानसेन ने कहा मेरे गुरुदेव हैं, स्वामी हरिदास जी महाराज, जो वृन्दावन में ही रहते हैं।

अकबर संगीत प्रेमी थे। उन्होंने कहा कि तानसेन जी आप अपने गुरुदेव का संगीत नहीं सुनवाएंगे। बोले महाराज आप वृन्दावन चलें शायद आप पर मेरे गुरुदेव जी की कृपा हो जाए। आप पधारें, क्योंकि मेरे गुरुदेव किसी साधारण व्यक्ति के लिए नहीं गाते। वे उन प्रिया प्रियतम को रिझाने के लिए संगीत गाते हैं।

आप वृन्दावन चलिए आप पर कृपा हो जाएगी। तानसेन और अकबर वृन्दावन चले। वृन्दावन पहुँचे, तो कुटिया के अंदर स्वामी जी बैठे हैं और द्वार पर खड़े हैं अकबर और तानसेन। द्वार पर अकबर को खड़ा करके जब अन्दर तानसेन जी गए तो उस समय स्वामी जी को ज्वर था, यानि बुखार से पीड़ित थे स्वामी जी महाराज। जाकर स्वामी जी महाराज को प्रणाम किया तो महाराज के मुख से निकला अरे तानसेन भैया बादशाह को द्वार पर क्यों खड़ा किया? उन्हें भी अंदर लाओ। हम स्वागत करेंगे। बोले गुरुदेव आपको ज्वर हैं। हम कैसे उन्हें अंदर लाएं। आप तो बात करने की स्थिति में नहीं हैं। स्वामी जी महाराज ने जो गुदड़ी पहन रखी थी उतारकर उसे एक लता पर डाल दिया। अपना ज्वर उस लता को दे दिया। इतनी शक्ति स्वामी जी महाराज में थी। उस लता में कम्पन होने लगा और स्वामी जी स्वस्थ होने लगे।

अन्दर अकबर ने आकर स्वामी जी के चरणों में प्रणाम किया। अब स्वामी जी संगीत को सुनना चाहता हैं। तो तानसेन ने कहा, महाराज आप मुझे आज्ञा दें कि मैं आपको कोई राग सुनाऊँ। हाँ बेटा सुनाओ। एक मेघ मल्हार राग शुरू किया। तानसेन ने जान–बूझकर गलत सुर लगा दिया। कोई संगीतज्ञ बैठा हो और गलत राग गाए, गलत सुर लगाए तो उसे कभी सहन नहीं होगा। स्वामी जी ने कहा–अरे तानसेन तुझे मैंने कितना सुन्दर संगीत शिक्षा दी और आज तू ये गलत राग गा रहा है, ला मुझे तानपुरा दे, स्वामी जी ने वह तानपुरा लिया और राग अलापना शुरू किया तो वृन्दावन का वह दिव्य दृश्य प्रकट हो गया। मोर, पपीहा, बोलने लगे। रिमझिम वर्षा होने लगी। दिव्य वृन्दावन का दर्शन होने लगा।

"सदा रहत बसन्त श्री वृन्दावन"

वह दिव्य श्री वृन्दावन का दर्शन हुआ। अकबर स्वामी जी के चरणों में जाकर गिर पड़ा। अकबर ने कहा महाराज मैं आपकी कोई सेवा करना चाहता हूँ। स्वामी जी ने कहा, अकबर आप हमारी क्या सेवा करना चाहते हैं। आप मेरी सेवा करेंगे। मैं रोज यमुना जी में स्नान करने जाता हूँ, यमुना जी के घाट का एक कोना टूट गया तुम जुड़वा दो। बोले गुरुदेव बस इतनी छोटी–सी सेवा। अरे कोई बड़ी सेवा बताइए ना। स्वामी जी ने कहा बस इतनी–सी ही सेवा है।

तो स्वामी जी महाराज अकबर को लेकर यमुना तट पर गए और जब वहाँ खड़े हुए तो अकबर ने पूछा गुरुदेव वह कौन–सा कोना? स्वामी जी ने जो इशारा किया घाट की ओर यमुना तट की ओर तो अकबर ने देखा मणियों से, रत्नों से जड़ा वह घाट देखकर स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ा। उस दिव्य वृन्दावन के दर्शन करके अकबर ने कहा, गुरुदेव मेरे जैसे अनेक बादशाह के बादशाह यदि इस वृन्दावन के घाट का कोना जुड़वाने में लग जाएं तो भी नहीं बनवा सकते। उस दिव्य वृन्दावन का दर्शन स्वामी जी ने करा दिया। कहने का अभिप्राय है कि गुरुकृपा से कोई वस्तु दुर्लभ नहीं।

सन्त कृपा से कोई वस्तु दुर्लभ नहीं। आज अकबर को स्वामी जी ने उस दिव्य वृन्दावन का दर्शन करा दिया। स्वामी जी महाराज के चरणों में गिर कर अकबर ने कहा, गुरुदेव और कोई सेवा बताइए। स्वामी जी ने कहा कि अकबर एक बात कान खोलकर सुन लो कि अब पुनः आप श्री वृन्दावन में नहीं आना। प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण। गुरुदेव ऐसा श्राप मुझे आप क्यों दे रहे हैं? क्यों मैं पुनः वृन्दावन नहीं आऊँ? तो स्वामी जी ने कहा कि देख अकबर तुम्हारे साथ सेना आती है, तुम्हारे सैनिक भी और वृन्दावन के जो बन्दर हैं, वृक्ष हैं, मोर हैं, ये सब सन्त हैं। वैष्णव हैं। श्रीमद्भागवत में उद्धव जी महाराज ने तो यह वर माँगा है कि–

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.47.61)

उद्धव जी महाराज ने प्रार्थना की प्रभु से, यही वह प्रार्थना है कि यदि अबकी बार संसार में जन्म हो तो आप मुझ पर इतनी कृपा करना कि इस वृन्दावन में कोई लता, पता, औषधि बना दें। क्योंकि वृन्दावन के जो वृक्ष हैं, लताएं हैं वे साक्षात् गोपी स्वरूप हैं, आज परमभक्त उद्धव जी ने गोपी भाव प्रकट किया। वे वृन्दावन में लता पता बनकर रहना चाहते हैं। क्योंकि यही उत्तम विधि हैं। जिसको गोपी भाव कहते हैं, जब तक साधक गोपियों का भाव ग्रहण नहीं करते तब तक श्रीकृष्ण कृपा प्राप्त करना कठिन है, दुर्लभ है।

उद्धव जी के मन में यह भी भाव है, कि वृन्दावन में लता–पता, औषधि गुल्मलता के रूप में रहेंगे तो किसी वैष्णव के चरण की धूल हमारे सिर उस पत्ते पर गिरेंगी या जब गाय गोधूलि में वापस घर आएंगी तो उनके चरण की धूल मेरे पत्ते पर गिरेगी तो मेरा जीवन धन्य हो जाएगा। आज उद्धवजी इस प्रकार प्रार्थना कर रहे हैं।

अकबर ने स्वामी जी की आज्ञाओं का पालन किया, इस प्रकार से दिव्य वृन्दावन का दर्शन हुआ अकबर को। आज ध्रुव जी महाराज भी एक पाँच वर्ष के बालक जिसके मन में भगवत दर्शन की तीव्र लालसा है परन्तु बिना गुरु के ईश्वर दर्शन नहीं होता। एक गुरु की आवश्यकता हैं। एक मार्गदर्शक की आवश्यकता हैं। स्वामी जी महाराज की जैसे अकबर के ऊपर कृपा हुई उसी प्रकार से आज ध्रुव के ऊपर भी कृपा होने जा रही हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन मार्ग में नारद जी मिल गए। नारद जी क्या कर रहे हैं, वीणा यंत्र में नारायण मन्त्र उच्चारण कर रहे हैं। श्रीमन् नारायण–3

ध्रुव जी ने नारद जी का दर्शन किया प्रसन्न हुए, प्रणाम किया। नारद जी ने कहा बेटा, तुम्हारा कल्याण हो। "कल्याणमस्तु" बेटा कहाँ जा रहे हो? ध्रुव जी ने कहा, गुरुदेव मैं भगवान् के दर्शन के लिए जा रहा हूँ। नारद जी ने कहा, बेटा अभी तुम पाँच वर्ष का हो। यह खेलने का समय हैं। जाओ तुम घर लौट जाओ। यह भक्ति का मार्ग, साधना का मार्ग बड़ा कठिन हैं। जाओ घर लौट जाओ बेटा। खाओ पीयो–मौज उड़ाओ। परन्तु ध्रुव जी महाराज अपने संकल्प में अटल रहें। तब नारद जी बोले देखो तुम बहुत हठी हो। तुम नहीं जानते जंगल में जंगली जानवर हैं। वे तुमको खा जाएँगे। मानो आज प्रथम बालक को समझाओ। बाद में भी तकलीफ है जन्तु–जानवर का भय दिखाया। ध्रुव अपने सिद्धांत पर अटल रहे, कहा भले ही जन्तु जानवर शरीर खा जाएं, परन्तु मैं दर्शन करके रहूँगा। मैंने संकल्प किया है बिना दर्शन किए घर नहीं जाऊँगा। भगवत दर्शन करना ही है।

नारद जी अब तीसरा उपाय बोले, इस हठी बालक को वापिस डराने का उपाय किया जाए कि मैं तेरे मन के भाव को जानता हूँ, कि मैं पिता की गोद में बैठूं। चल मैं तेरे पिता को समझाकर तुझे गोद में बिठाता हूँ। परन्तु ध्रुव ने कहा कि गुरुदेव अब पिता की गोद में बैठने का सवाल नहीं हैं। अब तो मैं परमपिता परमात्मा की गोद में बैठूंगा। आप मुझे बताएँ कि भगवान् नारायण कहाँ मिलेंगे। नारद जी ने देखा कि हमारा शिष्य पक्का है, किसी प्रकार के लालच में नहीं। अब रास्ता बता रहे हैं। नारद जी ने कहा बेटा–

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तंट शुचि।
पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.42)

बेटा यहाँ से थोड़ी दूर पर एक स्थान है, जिसका नाम है श्री वृन्दावन, बड़ा सुन्दर स्थान हैं। उस वृन्दावन में एक वन है–मधुबन। उस मधुबन में जाकर तप करो,

उपासना करो, देखो मैं तुम्हें भगवान् के स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ। ये भगवान् का स्वरूप हैं। नारद जी भगवान् के स्वरूप का वर्णन कर रहे हैं

श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम्।
शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.47)

जिनके माथे पे मुकुट, कानों में कुंडल, गले में हार, बाहों में बाजूबंद, कमर में करधनी, पैरों में नुपूर, बदन पर पीताम्बर, चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पदम् दिखे, बेटा इन सभी का अंत:करण में ध्यान करना। मैं तुझे एक दिव्य मन्त्र देता हूँ, जिसे कहते हैं द्वादश अक्षर मन्त्र। इसमें 12 अक्षर हैं। श्रीमद्भागवत में भी 12 स्कंध हैं। एक-एक स्कंध भगवान् का एक-एक अंग हैं। एक श्लोक जो मन्त्र हैं। भागवत में–

"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नम:"

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.54)

एक-एक अक्षर इस मन्त्र का भगवान् का अंग हैं, जिसे कहते हैं द्वादशाक्षर मन्त्र। तू इस मन्त्र का जप करना भगवान् दर्शन देंगे। ध्रुव जी गुरु देव महाराज को प्रणाम किया। मन्त्र गुनगुनाते हुए मधुबन की ओर श्री वृन्दावन की ओर चल दिए।

संकीर्तन

ध्रुव जी आज कीर्तन करते हुए मधुबन की ओर जा रहे हैं।

ॐ नमो भगवतो वासुदेवाय।
वासुदेवाय प्रभु कृष्ण चन्द्राय।।
वासुदेवाय प्रभु रामचन्द्राय।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।।

इस मन्त्र को गुनगुनाते हुए ध्रुव जी वृन्दावन की ओर जा रहे हैं। भैया वृन्दावन की अधीश्वरी श्री वृन्दा देवी हैं। श्री राधिका रानी हैं। श्री किशोरी जी हैं। भैया जब तक किशोरी जी की कृपा न हो तो कैसे वृन्दावन में वास और वृन्दावन में बिहारी का दर्शन कैसे मिले। अत: जब तक किशोरी जी की कृपा न हो भगवान् का दर्शन कैसे मिले। आइए दो निमट के लिए अपनी रसना को पवित्र करें। दो मिनट के लिए प्रेम से भाव से गुनगुनाइए क्योंकि ध्रुव श्री वृन्दावन में यमुना तट पर खड़े किशोरी जी से प्रार्थना कर रहे हैं।

गीतम्

नाम तेरा पालन हारा, कब तेरा दर्शन होगा।
जिसकी रचना इतनी सुन्दर, वह कितना सुन्दर होगा।।
जिसने तारे लाखों प्राणाी, ये सन्तों की वाणी है।
तेरी छवि के दर्शन की, मेरी अभिलाषा है।।
दर्शन दे दो प्रभु मेरे, ये दास तुम्हें। पुकारे है।
नाम तेरा पालन हारा, कब तेरा दर्शन होगा।।
जिसकी रचना.........................
हरे कृष्ण महामन्त्र......................

यमुना जी के तट पर ध्रुव जी खड़े हैं, किशोरी जी से भगवान् से प्रर्थना कर रहे हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन इस प्रकार से ध्रुव जी अपने गुरु के बताए मार्ग का अनुसरण करने लगे। ध्रुव जी ने जब सर्वप्रथम उपासना प्रारंभ की तो ध्रुव जी ने तीन दिन का संकल्प किया, केवल फल खाकर ध्रुव जी ने उस मन्त्र का जप किया

"ॐ नमो भगवतो वासुदेवाय" गुरु ने दिये मन्त्र का जाप किया।

त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रानते कपित्थबदराशनः।

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.72)

फिर ध्रुव जी ने 3 दिन का संकल्प किया दूसरे महीने में। छः दिन अन्तर-अन्तर पर सूखे पत्ते का चूर्ण बनाकर खा लेते थे और ऊपर से यमुना जी का जल पी लेते थे।

"द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठऽर्भको दिने।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.73)

आगे ध्रुव जी ने चूर्ण खाना बंद कर दिया और केवल तीसरे महीने में नौ दिन अन्तर-अन्तर केवल जल पीने का ही निश्चय किया। "ॐ नमो भगवतो वासुदेवाय" का उच्चारण किया।

'तृतीयं चानयन्यासं नवमे नवमेऽहानि। अब्भक्ष'

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.74)

इस प्रकार से जप करते-करते ध्रुव जी ने जल पीना भी छोड़ दिया और चतुर्थ महीने में विचार किया कि मैं केवल प्राण वायु का ही सेवन करूँगा। संकल्प लेकर ध्रुव जी ने एक निष्ठ होकर अपने गुरु को दिए हुए मन्त्र का जप करने लगे। इस

प्रकार चतुर्थ महीने में 12 दिन अन्तर-अन्तर केवल वायु भक्षण से ही भगवान् का ध्यान करने लगे।

"चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहानि। वायुभक्षो"

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.75)

फिर ध्रुव जी प्राण वायु का भी सेवन करना छोड़ दिया। एक पैर के ऊपर ध्रुव जी खड़े हो गए और भगवान् का ध्यान और गुरु जी का मन्त्र जप के साथ करने लगे। 'ॐ नमो भगवतो वासुदेवाय' इस प्रकार ध्रुव जी पाँचवें महीने में ऐसा दिव्य ध्यान किया कि संसार से प्राण वायु का ही चलना बंद हो गया।

पञ्चमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः।
ध्यायन्ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.76)

जब ध्रुव जी ने प्राण वायु को रोककर एक पैर में खड़े होकर भगवान् के ध्यान में तल्लीन हैं, तो सारे देवता छटपटाने लगे। सारे देवताओं को सांस लेने में कष्ट हो रहा हैं। सारे देवता वैकुण्ठ में भगवान् के पास जाकर प्रार्थना करने लगे-

भगवन्प्राणरोधं चराचरस्याखिलसत्त्वधान्नः।
विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.81)

सारे देवता कहने लगे प्रभु ऐसा कौन भक्त आपकी तपस्या कर रहे हैं कि संसार से प्राणवायु का चलना ही बंद हो गया। भगवान् ने सभी देवताओं की ओर प्रसन्न मुद्रा में देखा और हंसते हुए कहा कि-

मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्या-न्निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम।
यतो हि वः प्राणनिरोध आसी-दौत्तानापादिर्मयि सङ्गतात्मा।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.8.82)

देवताओं, ये उत्तान पाद की आत्मा और मेरा परम भक्त ध्रुव कुमार हैं। मैं अभी दर्शन देता हूँ। चिंता न करें। आप सब अपने-अपने लोक को जाएं। देवताओं ने कहा प्रभु जल्दी कीजिए बड़ा संकट है सांस लेने में कहीं देर न हो जाए। भगवान् के कहने से प्रणाम करके वे अपने-अपने लोक चले गए। भगवान् अपने भक्तों को दर्शन देने के लिए श्री वृन्दावन में मधुबन में प्रकट हो गए। श्रीकृष्ण चन्द्र भगवान् की जय। श्री वृन्दावन की जय। भगवान् अपने भक्तों को दर्शन देने के लिए मधुबन में खड़े हैं।

अथ नवमोऽध्यायः

ध्रुव का वर पाकर घर लौटना

भगवान् श्री मधुबन में ध्रुव जी को दर्शन देने के लिए खड़े हैं, परन्तु ध्रुव आंखें नहीं खोल रहे हैं। क्योंकि एकनिष्ठ भाव से ध्रुव जी अपने ध्यान में मग्न हैं। चतुर्भुज नारायण का ध्यान हृदय में कर रहे हैं। प्रभु ने कहा ये तो आंखें नहीं खोलता कैसे इसे दर्शन दूं। भगवान् जी गीता के वचन को आज यहाँ अपनी लीला में प्रकट चरितार्थ कर रहे हैं। कि–

"ये यथा माम प्रपद्यन्ते – त्वां तथैव भजाम्यहं।"

भगवान् कहते हैं, जो मेरा ध्यान करता है, मैं उसका ध्यान करता हूँ, तो आज भगवान् अपने परम् भक्त ध्रुव का ध्यान कर रहे हैं और ध्रुव जी महाराज उस भगवान् की छवि को अपने अंतःकरण में ध्यान कर रहे हैं।

उस छवि को भगवान् ने अपनी ओर खींचा जिसकी छवि ध्रुव कुमार अपने हृदय में दर्शन कर रहा था। जब भगवान् ने अपने ध्रुव जी के हृदय से दर्शन को अपनी ओर खींच लिया तो ध्रुव जी को अब वह अपने हृदय में नहीं दिखता। ध्रुव जी छटपटाए मेरे प्रभु कहाँ गए? जैसे ही आंखें खोली तो जिस छवि का ध्रुव जी अपने हृदय में दर्शन कर रहे थे, वह साक्षात् ध्रुव जी महाराज के सामने थी। वे साक्षात दर्शन करने लगे। बोलो भक्त वत्सल भगवान् की जय। भगवान् मंद-मंद मुस्करा रहे हैं। ध्रुव जी साक्षात् भगवान् के दर्शन कर रहे हैं।

ध्रुव जी की आंखों से झर झर अश्रु टपकने लगे, वे रोने लगे भगवान् को साक्षात् साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। भगवान् ध्रुव जी के भाव समझे, कुछ बोलना चाहते हैं। तो आज ध्रुव की वाणी पर भी माता सरस्वती का प्रवेश हो गया। ध्रुव जी महाराज भगवान् की स्तुति करने लगे।

गीतम्

[दो मिनट के लिए आप गाइए। भगवान् का स्वागत कीजिए।]

गोविन्द हरे, गोपाल हरे
जय-जय प्रभु दीन दयाल हरे।

ध्रुव उवाच

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.9.6)

ध्रुव जी ने भगवान् को प्रणाम करते हुए कहा प्रभु आज आपने मेरी सोई हुई वाणी को जाग्रत कर दिया। अब तक मेरी वाणी सोई हुई थी। तो क्या? ध्रुव जी अपने माता-पिता गुरुजनों से वार्तालाप नहीं करता था? आज ही ध्रुव जी क्यों कहते हैं कि प्रभु आज मेरी सोई हुई वाणी को जागृत कर दिया।

यहाँ पर भाव ये है कि, जब तक इस मुख से हमने प्रभु का गुणगान नहीं किया तब तक हमारी वाणी सोई हुई हैं और जब हम इस वाणी से प्रभु का गुणगान, प्रभु के विषय में वार्तालाप करते हैं तो मानो हमारी वाणी जागृत हो गई। ध्रुव महाराजा इसीलिए कहते हैं कि आपने मेरी सोई हुई वाणी को जागृत कर दिया। अब तक हमारी इन्द्रियां विषय की ओर जा रही थीं, परन्तु आपके दर्शन के बाद मानो हर इन्द्रियो में मानो आपका ही निवास हो गया। सारी इन्द्रियां आपकी ओर उन्मुख हो चुकी हैं, हे प्राणों के अधिष्ठाता देवता भगवान् वासुदेव मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ। "पुरुषाय तुभ्यम् नमः।" ध्रुव ने कहा, भगवन् मैं आपसे केवल एक ही वर चाहता हूँ क्या आप मुझे देंगे। भगवान् ने कहा, माँगो बेटा क्या चाहिए। ध्रुव ने कहा प्रभु यदि आप देना चाहते हैं तो हम आपसे केवल यह वरदान चाहते हैं कि आपके भक्तों का, वैष्णव का, सन्तों का रसिकों का मुझे संग प्राप्त होता रहें। निरंतर मैं आपके भक्तों का संग प्राप्त करता रहूँ। एक यही कृपा आप मेरे जीवन में करें। भगवान् ने कहा ध्रुव ये तो तूने कोई वरदान नहीं माँगा, ध्रुव जी तो अर्थार्थी भक्त हैं, न! अर्थ का कामना पूर्ण करने के लिए वन में तपस्या करने गए थे, पिता की गोद के इच्छुक, राजगद्दी के इच्छुक थे। भगवन् कहते हैं, बेटा तेरा कल्याण हो। धुव यदि तू अपनी इच्छा मेरे सामने प्रकट नहीं करता है तो कोई बात नहीं, परन्तु मैं तेरे मन की इच्छा को जानता हूँ, तेरे मन में अपने पिता की गोद में बैठने की इच्छा है न। बताओ ध्रुव सही है न। ध्रुव ने कहा प्रभु आप तो अन्तर्यामी हैं, सब जानते हैं। प्रभु ने कहा बेटा तू 36,000 वर्ष तक राज करेगा।

राज्य सुख भोग करेगा। यह सतयुग की कथा हैं। श्रीमद्भागवत में, जब हजारों वर्षो तक प्राणियों की उम्र हुआ करती थी। सतयुग में मनुष्य की आयु एक लाख त्रेता

में 10,000, द्वापर में 1000 और कलयुग में अब 100 वर्ष रह गई। तो उस सतयुग की कथा भगवान् जी कहते हैं। कि बेटा 36,000 वर्ष तक तू राज करेगा ये मेरा आशीर्वाद हैं। परन्तु ध्रुव एक दिन तुम्हारा भाई उत्तम वन में शिकार खेलने जाएँगे। वन में, हिमालय के पाददेश में और यक्षों के साथ उनका भीषण युद्ध होगा। यक्ष उनका वध कर देंगे। पीछे से बिमाता सुरुचि जब उनको देखने जायेगी तो वह भी वन में अग्नि के अंदर जलकर नष्ट हो जायेगी। वहाँ यक्ष से तुम्हारा युद्ध होगा, अंत में विजय तुम्हारी होगी। मेरा आशीर्वाद हैं तुम मेरे परम् धाम को अंत में प्राप्त कर लोगे। तो इतना कहकर भगवान् अन्तध्यान हो गए। ध्रुव जी महाराज ने भगवान् को प्रणाम किया और अपनी नगरी कानपुर की ओर चल दिए क्योंकि पिता उत्तानपाद के राजधानी कानपुर में ही थे।

नारद जी ने महाराज उत्तानपाद को जाकर पहले खबर कर दी, कि महाराज आज आपका पुत्र भगवत दर्शन करके लौट रहा है, आपको स्वागत के लिए अगुवानी करनी चाहिए। नारद से अवगत होकर उत्तान पाद कानपुर नगरी को दुल्हन के रूप में सुन्दर सजा दिया। शुकदेव जी ने कहा राजा आपने देखा छह महीने में कितना परिवर्तन हो गया। छह महीने पहले जब ध्रुव भगवत दर्शनके लिए घर से निकला तब किसी ने भी नहीं कहा, बेटा यदि तू पिता से नाराज है तो दो चार दिन हमारे घर आ जा। किसी भी प्रजा ने, किसी भी मन्त्री ने, किसी भी परिवार के व्यक्ति ने ध्रुव को नहीं रोका।

परन्तु आज जब ध्रुव पर प्रभु की कृपा हो गई तो सब लोग ध्रुव के स्वागत में खड़े हैं। इसीलिए सन्त कहते हैं कि "भक्ति, भक्त, भगवन्त, गुरु, चर्तुनाम बोपु एक।

जिनके पगबन्दन किए, नासत विघ्न अनेक।"

नाम चार हैं–भक्ति, भक्त, भगवन्त, गुरु।

परन्तु बोपु एक ही हैं। "चर्तुनाम बोपू एक" शक्ति एक है, जीवन में यदि किसी एक का दर्शन, सत्संग में मिल जाए तो मानो हमें साक्षात् श्रीकृष्ण की प्राप्ति हो गई। यदि किसी वैष्णव का दर्शन मिले, संग प्राप्त हो तो मानो हमें प्रभु मिल गए। यदि भक्ति तुम्हारे जीवन में है तो निश्चित ही प्रभु तुम्हें मिलेंगे। भगवान् मिलेंगे। यदि गुरु मिल जाए तो निश्चित बिहारी जी मिलेंगे और यदि साक्षात् बिहारी जी मिल जाएं तो कहना ही क्या? नाम चार हैं। परन्तु शक्ति एक है भक्ति, भक्त, भगवन्त, गुरु, चर्तुनाम बोपु एक है।

आज ध्रुव जी महाराज के दर्शन हेतु सब खड़े हैं, पथ में दोनों ओर से पुष्प वर्षा हो रही है, ध्रुव जी का स्वागत हो रहा हैं। उसी समय पिता हाथी की सवारी लेकर आए और धुव जी को हाथी पर बैठाया। उनकी जय-जयकार हो रही है। धुव जी महाराज ने हाथी पर बैठकर सबको दर्शन देते हुए, सबको अभिवादन करते हुए प्रसन्न मुद्रा में अपने राजमहल में पधारे। ध्रुव जी महाराज हाथी से उतरकर अपनी बिमाता सुरुचि के महल की ओर चल दिए। सौतेली माता सुरुचि तो डर गई कि कहीं ध्रुव आकर मुझसे झगड़ा न करे। परन्तु ध्रुव जी महाराज ने बिमाता से कोई झगड़ा नहीं किया, न ही दुर्व्यवहार किया, बल्कि ध्रुव जी ने बिमाता को प्रणाम किया और कहा माँ! सच्ची माँ तो तू है यदि उस दिन तू वाणी के बाण नहीं मारती तो मेरी 5 वर्ष की अवस्था की उम्र खेलने-कूदने में निकल जाती।

तेरी कृपा से मैंने साक्षात् भगवान् के दर्शन कर लिए। सच्ची माँ तो तू है।

"गुरु न सस्यात्- सज्जन न सस्यात्,
पिता न सस्यात् – जननी न सस्यात्।।"

भागवत कार कहते हैं, वह तुम्हारा गुरु गुरु नहीं है, कान्तकान्त नहीं हैं। देव देव नहीं, सज्जन-सज्जन नहीं, माँ माँ नहीं पिता पिता नहीं जो अच्छा मार्ग न बताए।

जाके प्रिय न राम बैदेही
त्याजै कोटि बैरि सत्म
जदपि अति परम सनेही

ध्रुव जी कहते हैं माँ, सच्ची माँ तो तू है, जो मुझे अच्छे संस्कार दिए कि मैंने पाँच वर्ष की अवस्था में साक्षात् भगवत दर्शन कर लिया, ये तेरी कृपा हैं। पहले बच्चे पर माँ का ही संस्कार पड़ता हैं। माँ चाहे तो बच्चे को अच्छा भी बना सकती है चाहे तो बिगाड़ भी सकती हैं। यह माँ के हाथ में हैं। हमारे वेद भी कहते हैं कि मातृ देवी भव। क्यों कहा वेद ने ऐसा। वेद की वाणी असत्य नहीं सत्य हैं। सबसे पहले जीव की गुरु माँ है, और गुरु, सद्गुरु तो तीसरे नम्बर पर आते हैं।

पहला – मातृ देव गुरु

दूसरा – पितृ देव गुरु

तीसरा – आचार्य देव गुरु

पहले आचार्य देव को गुरु नहीं कहा, पहले मातृ देवो भव, पितृ देवो भव फिर आचार्य देवो भव।

यहाँ 'भव' शब्द का अर्थ है गुरु।

सन्त ने बहुत सुन्दर उदाहरण दिया है आप श्रवण करें, जो हमें शिक्षा देती है, उत्तर भारत का एक बहुत बड़ा डाकू मान सिंह, जिसके जीवन की घटना थी। जिसने अपने जीवन में अनेक हत्याएं की, पापकर्म किए। अंत में जब उसे फांसी की सजा मिली तो अन्तिम इच्छा पूछी गई। डाकू ने कहा मैं अपनी माँ से मिलना चाहता हूँ। माँ को बुलाया गया। जब माँ आकर खड़ी हुई तो डाकू ने कहा माँ मेरे पास आ। माँ जब पास में आ गई, तो डाकू ने कहा कि माँ थोड़ा और पास आ। मैं तेरे कान में कुछ कहना चाहता हूँ। माँ ने कान डाकू मान सिंह के पास कर दिया। माँ के कान को डाकू ने इतनी जोर से काटा कि रक्त टपकने लगा। डाकू मानसिंह ने कहा, माँ आज तेरे ही कारण मैं फांसी के फन्दे पर लटक रहा हूँ।

जब मैं एक पाँच बरस का अबोध बालक स्कूल से बच्चों की चीज चुरा कर लाता था, तो तू मुझे नहीं डांटती थी, न फटकारती थी, न मारती थी। आज चोरी करते–करते मैं इतना बड़ा डाकू बन गया कि तेरे ही सामने मैं फांसी के फंदे पर लटक रहा हूँ।

तो जीवन की प्रथम गुरु माँ हैं। माँ चाहे तो अच्छा मार्ग अपने बच्चे को दे सकती हैं। चाहे तो खोटा मार्ग भी दे सकती हैं। ध्रुव जी ने कहा, माँ तू ही सच्ची माँ है तेरी कृपा से मैंने 5 वर्ष में ही भागवत दर्शन किया। माँ सुनीति का तो खुशी का ठिकाना नहीं। आज छह महीने बाद अपने पुत्र का मुख दर्शन कर रही है।

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् समय व्यतीत हुआ और पिता ने ध्रुव को गद्दी पर बैठाया। ध्रुव जी महाराज की शादी हुई इला और भ्रमिर के साथ, उत्कल और वस्तर आदि दो पुत्र हुए। ध्रुव जी को गद्दी देकर पिता उत्तानपाद वन की ओर चले गए।

अथ दशमोऽध्यायः

उत्तम का मारा जाना ध्रुव का यक्षों के साथ युद्ध

अथ एकादशोऽध्यायः

स्वायंभुव मनुका ध्रुव को युद्ध बंद करने के लिए समझाना

मैत्रेये उवाच

एक दिन उत्तम शिकार खेलने के लिए वन में गए। यक्ष ने उत्तम का वध कर दिया। यक्ष के साथ ध्रुव जी का युद्ध हुआ। विजय ध्रुव जी की हुई। अंत में 36,000 वर्ष राज्य सुख भोगते हुए अपने पुत्रों के ऊपर राज्यभार सौंपते हुए ध्रुव जी जब बद्रिकाश्रम पर चले कि अब तो कुछ भजन करना चाहिए, हमें राज्य सुख भोगते-भोगते 36,000 वर्ष निकल गए। चलो अब तो भजन करें। ध्रुव जी महाराज बद्रिकाश्रम पधारे। वहाँ पर जब ध्रुव जी महाराज आसन पर बैठे तो उसी समय भगवान् के पार्षद आ गए। पार्षदों ने कहा, ध्रुव जी अब आपको इस आसन पर बैठने की आवश्यकता नहीं हैं। आपके लिए विमान आया हैं। आप विमान में बैठिए। ओर चलिए भगवत धाम को, ध्रुव जी महाराज ने उठकर भगवत विमान की पूजा की। जब विमान में ध्रुव जी महाराज चढ़ने जा रहे हैं। तो धुव जी के सामने मृत्यु आकर खड़ी हो गई। धुव ने पूछा आप कौन हैं? मृत्यु ने कहा आपने मुझे नहीं पहचाना। मेरा नाम है मृत्युदेव।

ध्रुव ने कहा कि आपका काम है मृत्युलोक में शरीर ग्रहण करना। आप मेरा शरीर लेने आए हो तो ले लो यह शरीर। परन्तु मृत्यु ने कहा कि सब पर मेरा जोर चल जाता है परन्तु भगवान् का भक्त मृत्यु को भी जीत लेता हैं।

"न मे भक्त प्रणशति"

भगवान् कहते हैं मेरे भक्तों का विनाश नहीं। मेरे भक्तों को कोई कभी मार नहीं सकता। तो आज मैं भी धन्य हो जाऊँगा। कृतकृत्य हो जाऊँगा। जब आप इस विमान में चढ़ें तो यह विमान थोड़ा ऊँचा है ना, तो हे ध्रुव जी महाराज आपको चढ़ने में कष्ट होगा। अब आप अपने चरण मेरे मस्तक पर रखें और इस विमान में बैठ जाएं। ध्रुव जी के चरण में साक्षात् मृत्यु झुक गई और मृत्यु के मस्तक पर जब ध्रुव जी ने चरण रखे तो ध्रुव जी का पंच भौतिक शरीर छूट गया। दिव्य देह ध्रुव जी को प्राप्त हो गई।

अथ द्वादशोऽध्याय:

ध्रुव को विष्णु लोक कि प्राप्ति

मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम्।

(श्रीमद्भागवतम् 4.12.30)

भगवान् के भेजे विमान पर ध्रुव जी महाराज बैठ गए। विमान जब भगवान् के धाम की ओर चला तो थोड़ी दूर जाने पर भगवान् के पार्षदों से ध्रुव जी ने कहा भईया इस विमान को लेकर थोड़ा मृत्यु लोक की ओर चले। पार्षदों ने कहा क्यों? आप ऐसी क्या वस्तु मृत्युलोक में छोड़कर आए हैं। ध्रुव जी ने कहा भईया मैं अपनी माँ को छोड़ आया हूँ, जिस माँ ने मुझे जन्म दिया मैं उसे लेकर ही भगवत धाम जाऊँगा। तो भगवान् के पार्षद विमान के अंदर से दिखा रहे हैं, ध्रुव जी को, कि हे ध्रुव जी जिस माँ ने आप जैसे लाल को जन्म दिया वह माँ तो संसार में नहीं रहेगी। आप देख रहे हैं ना, आगे विमान जा रहे हैं। उस विमान में आपकी माँ भी भगवत धाम जा रही हैं।

"दर्शयामासतुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीम्।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.12.33)

पार्षदों ने कहा कि "कूलं पवित्रम् - जननी कृतार्थम् वुसंधरा भाग्यवतिन् च धन्यम्" वह कुल पवित्र हो जाता है, वह परिवार पवित्र हो जाता है, वह समाज पवित्र हो जाता है, वह राष्ट्र पवित्र हो जाता है जिसमें कि एक भगवान् का भक्त पैदा हो जाता हैं। एक सन्त का जन्म हो–

"कि जननी जने तो भक्त जन – या जाता या सुर"
"नहीं तो जननी बांझ रहेत् कहे गवाए नूर"

ध्रुव जी ने केवल अपने परिवार को ही पवित्र नहीं किया, केवल अपने वंश को ही पवित्र नहीं किया, ध्रुव जी ने तो इस भारतवर्ष को ही पवित्र कर दिया। ये भारतवर्ष सन्त की, रसिक की, वैष्णव की भूमि है।

श्री शुक देव जी कहते हैं, राजन् आज कितनी कृपा है ध्रुव जी के ऊपर, जितने भी तारागण हैं, नक्षत्रगण हों आज भी ध्रुव जी का परिक्रमा कर रहे हैं। सबसे ऊपर ध्रुवलोक है। ये भगवान् की भक्ति की महिमा हैं। भगवान् अपने भक्तों की महिमा बढ़ा देते हैं।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

ध्रुव वंश का वर्णन, राजा अंग का चरित्र

सूत उवाच

श्री विदुर जी ने मैत्रेयी जी से प्रश्न किया कि –

के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत।

(श्रीमद्भागवतम् 4.13.2)

भगवन् कृपा करके बताइए कि प्रचेताओं का जन्म किस वंश में हुआ। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। कि राजन् ध्रुव जी के वंश में एक राजा था प्राचीनब्रहि। प्राचीनब्रहि के ही दस पुत्र हुए जिनका नाम पड़ा – प्रचेता। जिन्हें देखने में एक जैसा लगता था। एक ही शक्ल सूरत थी दसों की। ध्रुव जी के वंश में आगे चलकर एक राजा हुए जिनके बारे में भागवत में वर्णन है जिनका नाम है – अंग।

जिन अंग राजा की पत्नी का नाम था – सुनीथा। महाराज अंग का सब प्रकार से आनंद था। केवल जीवन में एकमात्र कष्ट था कि सन्तान नहीं थी। सन्तान के लिए राजा पुत्रेष्टि यज्ञ किया। तो महाराज को एक पुत्र प्राप्त हुआ जिनका नाम रखा – "वेन"

ये 'वेन' प्रकृति से बड़ा कठिन था। बालक अवस्था में ही ये वेन मदिरा पान करता, जुआ खेलता और पापकर्म करता परन्तु जब ये पाप कर्म करता माँ इसे कुछ नहीं कहती।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

राजा वेन की कथा

मैत्रेय उवाच

पिता डांटते, फटकारते थे। परन्तु ये पापकर्म करते–करते ऐसा कठोर बन गया कि अंत में पिता, महाराज अंग को राज महल छोड़कर जंगल में जाना पड़ा। किसी को पता न चला कि महाराज कहाँ गए? जब पिता चले गए तो गद्दी में वेन बैठ गया। अपने को राजा घोषित कर दिया और गद्दी पर बैठते ही वेन ने राज्य में ढोल बजाकर घोषणा कर दी कि–

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित्।
इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.14.6)

मेरे राज्य में न तो कोई यज्ञ करेगा, न तो कोई दान करेगा और न ही सत्कर्म करेगा, जब सन्त ने श्रवण किया 'वेन' की घोषणा को तब वे आपस में सब सन्त कहने लगे कि ये कैसे राजा हैं? न यज्ञ करने देता है, न ही सत्कर्म करने देता है, तो सारे सन्त मिलकर वेन के पास गए और सभी सन्त वेन को कहा कि महाराज ये

आपने क्या घोषणा कर दी, जिस राजा के राज्य में दान, यज्ञ, सत्कर्म नहीं होते वहाँ अशांति फैल जाती हैं। तो सभी ब्राह्मणों एवं सन्त से वेन ने कहा कि, देखो, सन्त, मैं तुम्हारा राजा हूँ और तुम मुझे उल्टी शिक्षा देने के लिए आए हो। राजा को शास्त्रों में पति कहा, "पाति रक्षति सा पति" जो पालन भी करे, रक्षा भी करे, मैं तुम्हारा पालन भी करता हूँ, रक्षा भी करता हूँ। परन्तु–

बालिशा बन यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः।
ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.14.23)

देखो संतो! तुम उस पति का अपमान कर रहे हो, जो तुम्हारी रक्षा करता है, पालन भी करता हैं। तुम तो अपने पति को छोड़कर "जारं पतिमुपासते" तुम किसी जार पति की उपासना करते हो। देखो शास्त्रों में कहा गया है कि राजा के अंदर सभी देवताओं का निवास हैं।

देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः।

(श्रीमद्भागवतम् 4.14.27)

यदि आपको पूजा करनी है, सत्कर्म करना है, तो मेरे नाम से पूजा करो, सत्कर्म करो। अब तो सन्तों को क्रोध आ गया। वेन की बात सुनकर। यह तो अधर्म का प्रतीक है यह व्यक्ति अपनी पूजा करना चाहता हैं। प्रेम से कहो "जय श्री कृष्ण"

भागवत की हर कथा रहस्यमयी है, हमारे सनातनधर्म में व्यक्ति पूजा नहीं हैं। ईश्वर पूजा है, यदि हम गुरु की भी पूजा करते हैं तो वहाँ व्यक्ति के रूप में गुरु की पूजा नहीं होती, एक मानव के रूप में हम गुरुदेव की पूजा नहीं करते हैं, साक्षात् गोविन्द के रूप में हम अपने गुरुदेव के दर्शन करते हैं। शास्त्र व्यक्ति पूजा को महत्व नहीं देता हैं। अधर्म का प्रतीक है वेन। सन्तों ने कहा कि ये तो ईश्वर पूजा को बंद करा रहे हैं और अपनी पूजा कराना चाहते हैं। तो सभी सन्तों को क्रोध आ गया और सभी सन्तों ने अपने-अपने कमंडल से जल लेकर अभिमंत्रित किया, तदुपरांत उस जल को वेन के ऊपर छिड़क दिया–

"हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.14.31)

'हन्यतां-हन्यतां-हन्यतां' मरण हो ऐसे राजा का जो हमें अधर्म की शिक्षा दे। मन्त्रशक्ति से सभी ब्राह्मणों ने, सन्तो ने वेन का प्राणांत कर दिया। वेन की माँ सुनीथा ने अपने पुत्र के शरीर को तेल की कढ़ाही में रख दिया, सन्तों ने देखा कि वेन मर

गया। राजा अंग पलायन कि अब राजगद्दी में कौन बैठे? हमें तो स्थिति ठीक करने के लिए वेन को सुधारना था परन्तु उसकी तो मृत्यु हो गई, तो सन्तों ने सुनीथा को गद्दी में बैठा दिया। परन्तु स्त्री व्यवस्था ठीक प्रकार से नहीं चली। दिन-दहाड़े लोग फसल काटकर ले जाने लगे एक दूसरे के। चोरियां करने लगे, डकैती पड़ने लगी। सन्तों ने देखा कि अव्यवस्था फैल रही हैं। सन्तों ने जाकर सुनीथा से कहा माँ आपने वेन का शरीर सुरक्षित रखा है ना। सुनीथा ने कहा हाँ। संतों की आज्ञा से सुनीथा ने वेन का शरीर सन्तों के सामने रख दिया। वेन के शरीर का सन्त मंथन करने लगे। सबसे पहले कमर के नीचे के भाग का मंथन किया, तो एक कृष्ण वर्ण का बालक निकला। सन्त ने कहा, ये योग्य नहीं, तू यहीं बैठ जा।

"निषादस्ततोऽभवत्" इसे हम राजसिंहासन पर नहीं बिठा सकते।

अथ पंचदशोऽध्यायः

महाराज पृथु का आविर्भाव और राज्यभिषेक

सन्त ने फिर से वेन के शरीर का ऊपरी भाग मंथन किया तो साक्षात् भगवान् के ही कलावतार पृथु भगवान् प्रकट हुए।

बोलिए पृथु महाराज की जय।

और दूसरी ओर साक्षात् लक्ष्मी के अंशावतार अर्ची देवी प्रकट हो गई। सन्त ने दोनों सुन्दर जोड़े का दर्शन किया और पाणिग्रहण संस्कार किया। दोनों को गद्दी पर बैठा दिया। जब पृथु महाराज गद्दी पर बैठे तो सबसे पहले उनके सामने अन्न की समस्या आई। सारी प्रजा भूखे मरने लगी। प्रजा ने प्रथु महाराज के सामने जाकर प्रार्थना की कि हम आपकी प्रजा हैं, व्यक्ति के जीवन में तीन वस्तु की परम् आवश्यकता होती है।

यदि ये तीन चीजें नहीं होती हैं। तो जीवन नहीं चल सकता। रोटी-कपड़ा और मकान। तो सभी प्रजा के लोगों ने पृथु जी से प्रार्थना की कि हमें भोजन दें, स्थान दें, कार्य के लिए नौकरी दें। सभी जनता पृथु महाराज से माँगने लगी। उन्होंने विचार किया कि वास्तव में मेरे राज्य में अकाल फैल गया है, अशान्त वातावरण हो रहा है। उन्होंने यह विचारा कि सबका कारण पृथ्वी ही है। महाराज पृथु ने तुरंत धनुष बाण उठाया और धरती पर निशाना लगाकर कहा-

"वुसधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम्।"
(श्रीमद्भागवतम् 4.17.22)

अरे वसुधे मैं तेरा शासक हूँ और तूने अपने अंदर से सभी पदार्थों को नष्ट कर दिया हैं। जो महाराज पृथु ने पृथ्वी को ताड़ना दिया तो पृथ्वी जैसे गौरूप धारण करके महाराज के सामने उपस्थित हो गई और वे प्रार्थना करने लगी–

"नमः परस्मै पुरुषाय मायया विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने।"
(श्रीमद्भागवतम् 4.17.29)

अथ षष्टदशोऽध्याय

वन्दीजन द्वारा महाराज पृथ् की स्तुति

अथ सप्तदशोऽध्यायः

पृथु का पृथ्वी पर कुपित होना

अथष्टादशोऽध्यायः

पृथ्वी दोहनं

भगवान् के चरणों में प्रणाम करके पृथ्वी ने कहा कि भगवन आप तो साक्षात् मायापति हैं। इसमें मेरा कोई अपराध नहीं हैं। ये तो आपके पूर्वजों के पापकर्म के कारण मेरे अंदर से बीज नष्ट हो चुके हैं। आप अलग-अलग पात्र बनाएं और अलग-अलग वस्त्र बनाएं और मेरा दोहन करें, मैं प्रसन्न हो जाऊँ तो आपकी जो इच्छा हो वही प्राप्त कर सकते हैं। पृथु भगवान् ने पृथ्वी को प्रसन्न करने के लिए इन्द्र को वत्स बनाया और इन्द्र को वत्स बनाकर स्वर्ग के पात्र में अमृत, तेज और ओज को प्राप्त किया। फिर तक्षक सर्प को वत्स बनाया और बिल्व पत्र में विष को ग्रहण किया। प्रह्लाद महाराज को भी वत्स बनाया और लोहे के पात्र में मदिरा को प्राप्त किया। इस प्रकार से पृथु जी महाराज अलग-अलग बछड़ा बनाया और अलग-अलग पात्र बनाया और पृथ्वी का दोहन किया। सभी वस्तुएँ प्राप्त कीं। समूचे देश, समाज, राष्ट्र धनधान्य से भर गए। सर्वत्र सुखका अनुभव होने लगे।

बड़े-बड़े पर्वतों को काटकर समतल भूमि बनाया। प्रजा को बड़ा भारी सुख प्रदान किया। जब सब प्रकार के सुख प्रजा को मिला पृथु जी के राज्य में, सर्वत्र सुख समृद्धि का दर्शन होने लगा। शास्त्र में ऐसा वर्णन है, जब घर में, समाज में, राष्ट्र में

सुख शांति हो तो व्यक्ति को, समाज राष्ट्र नायक को भगवान् यज्ञ नारायण की सेवा करनी चाहिए। यज्ञ करना चाहिए। प्रेम से बोलो जय श्री राधे।

ऐसा शास्त्रकारों ने कहा कि यदि तीन वर्ष तक हमारे पास भोजन की ठीक व्यवस्था हो, घर में सुख शांति हो तो उसे यज्ञ अवश्य करना चाहिए। यज्ञ भगवान् का आवाह्न करना चाहिए। तो पृथु जी महाराज ने यज्ञ का संकल्प किया कि मैं सौ अश्वमेध यज्ञ करूँगा।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

महाराज पृथु के सौ अश्वमेध यज्ञः

पृथु जी महाराज ने 100 यज्ञ का संकल्प करके प्रारंभ कर दिया, परन्तु इन्द्र किसी को 100 अश्वमेध यज्ञ करने नहीं देता। जो व्यक्ति अपने जीवन में सौ अश्वमेध यज्ञ कर लेता है, उसे इन्द्र की पदवी मिल जाती हैं। सौ यज्ञ करने वाले व्यक्ति को "शतक्रतु" कहते हैं। जो व्यक्ति "शतकतु" के अधिकारी बन जाते हैं उससे इन्द्र चिंतित हो जाते हैं। क्योंकि सभी को अपनी-अपनी गद्‌दी की चिंता होती है ना कि कहीं हमारी गद्‌दी न छिन जाए। जब-जब यज्ञ प्रारंभ होता तब-तब इन्द्र इनके यज्ञ अश्व का हरण कर ले जाता। पृथु महाराज को बड़ा क्रोध आया। वे समझ गए कि इन्द्र हमारे यज्ञ में विघ्न डालता है, मैं उसका ही वध कर दूँगा। जो अपने शस्त्र से इन्द्र को मारने दौड़े पृथु महाराज तो देवताओं के गुरु आ गए बृहस्पति जी महाराज। उन्होंने आकर कहा कि देखो राजन् आप भगवान् को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ कर रहे हैं, इन्द्र की पदवी को तो इच्छा नहीं हैं। ना तो आप कुछ ऐसा करें कि आपका यज्ञ भी सम्पन्न हो जाए और इन्द्र का पद भी सुरक्षित रहें।

तब पृथु महाराज ने 99 यज्ञ किए। एक छोड़ दिया बृहस्पति जी महाराज की सलाह से। स्नान किया और साक्षात् दर्शन दिया यज्ञ महाराज ने। बोलिए यज्ञ महाराज की जय।

अथ विंशोऽध्यायः

पृथु की यज्ञशाला में भगवान् का प्रादुर्भाव

पृथु महाराज ने यज्ञ से प्रार्थना की कि

"न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्-
न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।

महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो
विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः।।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.20.24)

पृथु महाराज ने प्रार्थना किया यज्ञ से कि "न कामम्ये नाथ" ये मैंने किसी कामना को रखकर प्रार्थना नहीं किया महाराज। निष्काम इसका फल मैं आपको ही समर्पण कर रहा हूँ।

"नारायण समर्पयेत" "श्रीकष्णाय अर्पणमस्तु"

मुझे इसका कोई फल नहीं चाहिए प्रभु। किन्तु भगवान् कहते हैं कि पृथु जी आप कुछ तो माँगो जो हम आए हैं। आपने कितने प्रेम से श्रद्धा से यज्ञ किया है। फल तो मिलना चाहिए, हम जो आए हैं। पृथु जी कहते हैं आप के कहने से मैं कुछ माँगू तो क्या आप देगें। भगवान् कहते हैं, अवश्य दूँगा। पृथु महाराज कहते हैं, कि यदि आप प्रसन्न हैं, तो वर दीजिए कि मेरे शरीर में 10,000 कान हो जाएं। भगवान् ने कहा पृथु जी इन दोनों कानों से बहुत दूसरों की बुराई सुनने को मिल जाती हैं। 10,000 कान लेकर क्या करोगे? अरे भईया जितने कान उतनी बुराई, उतनी निन्दा। परन्तु पृथु महाराज ने कहा कि भगवन ऐसे कान नहीं चाहिए, बुराई सुनने वाले कान नहीं।

"श्रवणो कथायां" इन कानों से आपकी कथा सुनें, आपका नाम सुनें। जब इन दो कानों से आपकी कथा सुनते हैं। तो प्यास नहीं बुझती, तृप्ति नहीं होती, प्यास बढ़ती हैं। आपकी लीलाओं का श्रवण करूँ इसलिए आप मेरे शरीर में 10,000 कान होने का वर दें। कृपा करें। प्रभु ने दो ही कान में 10,000 कानों के शक्ति की प्राप्ति कर दी। यदि 10,000 व्यक्ति बैठकर श्रीमद्भागवत का पाठ करें तो पृथु महाराज सभी का श्रवण कर सकते थे। इतनी शक्ति भगवान् ने पृथु महाराज को दे दी।

शुकदेव जी ने कहा कि राजन् एक बार महाछत्र का आयोजन पृथु जी ने किया और इस महाछत्र के आयोजन में विश्व के बड़े-बड़े लोग पधारे। सारे विशिष्ट जनों ने पृथु जी से कहा कि महाराज आप हमें कहते हैं कि यज्ञ करें, दान करें, सत्कर्म करें परन्तु एक बात हमारे पल्ले नहीं पड़ती कि हमने जीवन में अनेक दान, यज्ञादि सत्कर्म किए। परन्तु ये बताइए कि हमारे दान यज्ञ से भगवान् प्रसन्न हुए या नहीं, ये बताइए पृथु जी महाराज।

पृथु जी महाराज कहते हैं। कि–

अथैकविंशोऽध्यायः

महाराज पृथु का अपनी प्रजा को उपदेश

श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः।

(श्रीमद्भागवतम् 4.21.41)

श्रद्धा से यदि किसी ब्राह्मण के, सन्त के, मुख में हवन कर दिया जाए तो भगवान् भी तृप्त हो जाते हैं। प्रेम से बोलो जय श्री राधे। प्रेम से बोलो जय श्री कृष्ण।

"श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः।"

(श्रीमद्भागवतम् 4.21.41)

पृथु जी का कहना है कि सन्त, ब्राह्मण के मुख में हवन करने का अर्थ है कि ब्राह्मण को इतने प्रेम से बुलाए, भोजन कराए कि वह प्रसन्न होकर स्वतः कहे कि "अहा" कितना सुन्दर भोजन हैं। प्रसाद हैं। यज्ञ में "स्वाहा" और ब्राह्मण के मुख में "आह"।

इस सम्बंध में बहुत सुन्दर कथा सुनाते हैं। आपको। श्रोताओं श्रवण करो। एक बड़ी रोचक कथा है, एक बार भगवान् शिव व पार्वती वैकुण्ठ में गए। भगवान् नारायण के पास। नारायण और लक्ष्मी ने उनका स्वागत किया 56 भोग लगाया शिव पार्वती को। जब से पार्वती जी चली वैकुण्ठ से तब मार्ग में पार्वती जी ने भगवान् शिव से कहा कि प्रभु मालूम है कि आज हमने किसके घर भोजन किया। शिव ने कहा, पार्वती आज हमने लक्ष्मी जी के घर भोजन किया। पार्वती जी ने कहा, प्रभु आपने ठीक कहा, परन्तु मेरी इच्छा है कि कैलाश पर विष्णु लक्ष्मी को जोड़े सहित बुलाकर भोजन कराऊँ तो भगवान् शिव ने कहा पार्वती भगवान् को ये न्यौता देकर क्या करोगी। अरे, भगवान् के अनेक भक्त हैं, परन्तु पार्वती जी ने कहा, प्रभु यदि कभी आपको मार्ग में भगवान् नारायण मिल जाएं तो वे कुछ नहीं कहेंगे और कभी मुझे मार्ग में लक्ष्मी जी मिल जाएं तो बातों-बातों में कह देंगी कि पार्वती तुम मेरे घर भोजन कर आई हो कभी अपने घर भी बुलाया तो मैं तो मुख दिखाने लायक भी नहीं रहूँगी, तो मैं तो उन्हें जोड़े से बुलाऊँ, भोजन कराऊँगी। भगवान् शिव ने कहा पार्वती जैसी आपकी इच्छा।

पार्वती बोली देखो भगवन आज तो मैं आई हूँ, कल मैं 56 भोग बनाऊँगी, आप ऐसा करिए कि परसों का प्रभु को निमन्त्रण दे आइए। भगवान् शिव ने सोचा कि भगवान् कोई कलयुग के ब्राह्मण तो है नहीं। तीन दिन पहले से ही यदि न्यौता दे दिया

जाए तो नमक का पानी ही पीना शुरू कर दें। बोलिए वृन्दावन बिहारी लाल की जय। तो भगवान् शिव ने मन में सोचा कि जब तीसरा दिन आएगा तो निमन्त्रण दे देंगे क्या बड़ी बात हैं। भगवान् शिव तो समाधि में जाकर बैठ गए।

पार्वती जी ने अपनी थकान उतारी, विश्राम किया। दूसरे दिन सुबह जल्दी उठकर स्नान करके 56 प्रकार की मिठाइयां तैयार करने लगी, जब सारी तैयारियां हो गई तीसरा दिवस हुआ। तो पार्वती शिवजी के पास गई, जाकर कहा कि प्रभु आप भगवान् को न्यौता दे आए? भगवान् शिव ने कहा कि पार्वती मैं तो भूल गया। पार्वती बोली भगवन् यहाँ सब तैयारी हो गई और आप भूल गए। जाओ भगवान् को निमन्त्रण देकर आओ। मेरी सब तैयारी हैं। भगवान् शिव ने कहा पार्वती अब निमन्त्रण क्या देना मैं जाकर साथ ही ले आता हूँ। भगवान् शिव अपने वाहन पर चढ़कर कैलाश से वैकुण्ठ चल दिए। दिव्य भाव से कीर्तन कर रहे हैं। भगवान्–शिव

संकीर्तन

श्रीमन् नारायण नारायण नारायण। लक्ष्मी नारायण नारायण नारायण।।

श्रीमन नारायण कीर्तन करते–करते भगवान् शिव वैकुण्ठ पहुँच गए। भगवान् नारायण ने आदर दिया, सत्कार किया, आसन दिया। भगवान् शिव ने कहा कि भगवन आपका हमारे कैलाश पर निमन्त्रण हैं। आप पधारें। भगवान् नारायण ने कहा कि हे शिव, आप तो हमें कभी न्यौता देने नहीं आए। ये पहली बार कैसा न्यौता? क्या गणेश के जन्मदिन की खुशी में न्यौता देने आए हो, क्या खुशी है?

भगवान् शिव ने कहा प्रभु ये सब हमें नहीं मालूम ये आप पार्वती से पूछना। आप पधारें लक्ष्मी जी सहित। तो लक्ष्मी नारायण को लेकर शिव तुरंत कैलाश की ओर चल दिए। जब कैलाश पहुँचे तो देखा कि पार्वती जी द्वार पर खड़ी हैं।

स्वागतम् प्रभु स्वागतम् - स्वागतम्।

पार्वती जी ने तिलक किया लक्ष्मी जी नारायण जी को, स्वागत किया आरती उतारी। अब बाहर भगवान् नारायण को बैठक में बिठाया और अंदर लक्ष्मी जी को लेकर गई कैलाश पर और अपना घर दिखाने लगी। जैसे घर में कोई नई सखी आती हैं तो स्त्री अपना घर दिखाने लगती हैं। यह उनका स्वभाव है। आज पार्वती जी अपना घर दिखा रही हैं। कैलाश पर लक्ष्मी को भ्रमण करा रही हैं। पार्वती जी दिखा रही हैं। लक्ष्मी जी देख रही हो ना यह कितना सुन्दर फ्लैट मैंने बनवाया। यह मेरे कार्तिकेय का है और ये मेरे गणेश का हैं। सुन्दर है ना। दोनों

का अलग–अलग बनवा दिया हैं। इनकी शादी कराऊँगी, बहुएं आएंगी तो शादी होते ही दोनों को अलग कर दूंगी। झगड़ा न हो। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

इस प्रकार पार्वती जी लक्ष्मी जी के साथ बाहर घूम रही हैं। नारायण भगवान् अंदर हैं, पार्वती जी लक्ष्मी जी के साथ। शिव ने फिर अंदर आकर कहा कि पार्वती जी मुझे कोई सेवा बताइए मैं भी कोई सेवा करूँ। पार्वती जी भोलेनाथ के परिहास को समझ गई। पार्वती जी ने कहा प्रभु क्या आप मेरे साथ पूरियां बिलवाओगे। बात वहीं पर समाप्त हो गई। बात तो ठीक हैं। भगवान् शिव कहते हैं, मेरा काम तो अब है नहीं। अब तो पार्वती का काम है भोजन कराना। अब तो समाधि में बैठ जाते हैं। वे समाधि में बैठ जाते हैं। बोलिए भगवान् शंकर की जय।

इधर बाहर बैठक में भगवान् नारायण बैठे हैं और भगवान् शिव नारायण को देखते देखते ही समाधि में बैठ गए। देखिए कितना विलक्षण दृश्य है? साक्षात भगवान् नारायण जहाँ विराजमान हैं। विष्णु नारायण हैं। वहीं समाधि में लीन हैं भगवान् शिव। कितना सुन्दर कितना विलक्षण दृश्य है, अब पार्वती 56 प्रकार की मिठाई थाली में सजाकर भगवान् के सामने लेकर गई और थाली परोस दी भगवान् के सामने। दोनों हाथ जोड़कर पार्वती जी ने कहा भगवन भोग लगाइए।

भगवान् नारायण ने कहा पार्वती जी, देखो मेरी एक आदत है। पार्वती जी ने कहा—क्या? मैं धीरे–धीरे प्रेम से भोग लगाता हूँ। पार्वती जी ने हंसकर कहा आप जैसे भोग लगाते हो वैसे ही प्रेम से भोग लगाओ। वे प्रेम से भोग लगाने लगे।

भगवान् एक–एक चीज उठाकर मुख में रख रहे हैं। पार्वती जी वस्तुएँ थाली में लाकर रखती जा रही हैं।

भगवान् मना नहीं कर रहे हैं, प्रेम से भोग लगा रहे हैं, भगवान् को भोग लगाते–लगाते पूरा एक दिन निकल गया, दूसरे दिन प्रातःकाल हो गया। पार्वती जी बिना पूछे भोजन डालती जाती थीं। अब पार्वती जी पूछने लगी कि प्रभु और कुछ लोगे। भगवन् ने कहा कि हाँ डाल दो ना।

फिर पार्वती को थाली में डालना पड़ता, भगवान् को भोग लगाते लगाते दूसरा दिन भी निकल गया। पार्वती ने कहा मन ही मन में ये आफत आई, जाना ही बंद कर दिया। शिव के पास जाकर कहा कि प्रभु उठो, भगवान् शिव समाधि से उठे। शिव ने कहा पार्वती भगवान् भोजन करके चले गए, आपने हमें नहीं उठाया, मैं स्वयं उन्हें दक्षिणा देता। पार्वती ने कहा कि प्रभु आप दक्षिणा की बात करते हैं। अभी तक तो भोजन भी

समाप्त नहीं हुआ। शिव ने कहा तो प्रेम से भोग लगाओ। पार्वती ने कहा प्रभु एक दिन प्रेम से भोग लगाया, दूसरे दिन प्रेम से भोग लगाया, आज तीसरे दिन कहाँ से प्रेम लाऊँ। मैं भी तो तीन दिन से भूखी प्यासी बैठी हूँ, भगवान् शिव ने कहा देखो मैंने तो तुम्हें पहले ही कहा था भगवान् को निमन्त्रण मत दो जैसी करनी वैसी भरनी। पार्वती ने कहा भगवन् अबकी बार मेरे गले से ये फंदा हटा दो, फिर कभी मैं नारायण को निमन्त्रण नहीं दूँगी। भगवान् शिव ने कहा पार्वती तुम अंदर जाओ मैं कुछ करता हूँ। पार्वती के अंदर जाते ही त्रिशूल सेवक को शिव ने ब्राह्मण लाने भेजा। वह त्रिशूल सेवक कैलाश से नीचे उतरा, भगवान् शिव के मारने के हथियार का नाम है त्रिशूल तथा एक सेवक का नाम भी है त्रिशूल। त्रिशूल सेवक आए नीचे उतरकर हरिद्वार में। एक किसी यजमान के घर से भोजन कर लौट रहे थे ब्राह्मण देवता। त्रिशूल देव ने पूछा ब्राह्मण देव भोजन करोगे। बोले भैया कहाँ करना है क्योंकि अभी तो भोजन करके आ रहे हैं, पेट भरा हैं। परन्तु निमन्त्रण भी तो सामने खड़ा है, कैसे न कर दें?

बोले कहाँ पर भोजन करना है, भैया। कैलाश पर भगवान् शिव के घर। ब्राह्मण ने सोचा तब तो लम्बी चौड़ी दक्षिणा मिलेगी जरूर चलेंगे। झट त्रिशूल ने कंधे पर ब्राह्मण को बैठाया, तुरंत कैलाश की ओर चल पड़े। भगवान् शिव ने प्रणाम किया, आसन दिया और अंदर पार्वती को खबर दी कि एक और आ गए हैं। जैसे ही पार्वती ने सुना दौड़कर शिव के पास आई और बोली, भगवन एक से तो पिंड छूटा नहीं आपने दूसरे को भी आमंत्रित कर दिया। शिव ने कहा मेरे कहे अनुसार अब करो। अब तक तुमने अपने मन की करी, अब मेरे मन की भी होने दो। देखो जाकर भगवान् नारायण के पास एक आसन बिठाकर जल की झारी रखके ब्राह्मण को भोजन के लिए बैठाओ। पार्वती ने वैसा ही किया और सुन्दर 56 भोग की थाली भरकर ब्राह्मण को परोस दी। ब्राह्मण देवता ने भोग लगाया। थाली से एक-एक चीज उठाई और खाई और पेट भर गया। पार्वती जी ने जब थाली भरकर चीज लाई और परोसने लगी तो ब्राह्मण देवता ने कहा बस-बस मेरा पेट भर गया।

पार्वती जी ने कहा कि ब्राह्मण का तो पेट भर गया। तीन दिन से भगवान् बैठे हैं। अब इन से भी पूछ लें। पार्वती ने पूछा प्रभु आप कुछ लोगे? नारायण ने कहा पार्वती बस-बस मेरा भी पेट भर गया।

बोलिए श्री वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः।

(श्रीमद्भागवतम् 4.21.41)

यदि श्रद्धा से किसी ब्राह्मण के सन्त के मुख में भोग लगा दिया जाए तो भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, तृप्त हो जाते हैं। भगवान् का भोग लगाने का अपना एक अलग तरीका हैं। भगवान् सन्त के, भक्त के, वैष्णव के मुख से, रसना से उस रस को प्राप्त करते हैं। परन्तु भगवान् अपनी किसी भी इन्द्रिय से भोजन ग्रहण कर सकते हैं, केवल मुख से नहीं, आंखों से, कानों से भी भोजन ग्रहण कर सकते हैं।

भगवान् का तो दृष्टिमात्र से ही भोजन हो जाता हैं। आज पृथु महाराज भी अपनी प्रजा के लिए कहते हैं कि–

"श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभि:"

(श्रीमद्भागवतम् 4.21.41)

उस महल में श्री सनत कुमार भी पधारे हैं। ये चारों कुमार आकाश मार्ग से सूर्य के समान तेजोमय होकर पृथु महाराज की छत्र छाया में अवतरित हुए हैं।

अथ द्वाविंशोऽध्याय:

महाराज पृथु को सनकादिक का उपदेश

बड़ा सुन्दर प्रभु का कीर्तन करते हुए सनतकुमार आए हैं। सनतकुमारों का ये बड़ा प्रसिद्ध कीर्तन हैं। ब्रह्माजी के चार पुत्र सनक, सनन्द, सनातन और सनतकुमार। ये सदा भगवान् के कीर्तन में लीन रहते हैं। अत: ये कीर्तन करते हुए आ रहे हैं।

कीर्तन

"हरि शरणम् हरिशरणम् हरिशरणम्"

ब्रह्मा के मानस पुत्र सभा में आए, राजा ने उठकर प्रणाम किया चरणामृत लिया और प्रश्न किया कि इस मानव जीवन के परम श्रेय का मार्ग क्या है? यह प्रश्न महाराज पृथु ने किया।

अस्त्येव राजन्भवतो मधुद्विष: पादारविन्दस्य गुणानुवादने।
रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी कामं कषायं मलमन्तरात्मन:।।

(श्रीमद्भागवतम् 4.22.20)

पृथु महाराज को सनत्कुमार ऋषियों ने कहा राजन, इस मानव जीवन का परम कल्याणकारी यदि कोई मार्ग होता है– केवल सत्संग। सत्संग से भागवत कथा, भागवत कथा से रति, रति से प्रेम यानि प्रेम भक्ति। जब इस जीवन से मुझे भक्ति प्राप्त होती है, तब "कामं कषायं मलमन्तरात्मन:"

जब हमारे मन में हमारे अंदर मलविक्षेप है उसके लिए निवृत्ति उस कथा से, सत्संग से हो जाती हैं। मनविक्षिप्त से मन को निर्मल करने के लिए सत्संग परमावश्यक हैं। अनेक जन्म–जन्मातरो से जीव भटकता आ रहा हैं। परन्तु उसे मालूम नहीं सत्संग के माध्यम से उसे ज्ञात होता हैं। सनतकुमार कहते हैं जीवन में जब राम कृपा, कृष्ण कपा, भगवद् कृपा होती है, तब उसे सत्संग की प्राप्ति होती हैं। सत्संग अपने में कोई साधन नहीं हैं। यह तो फल के रूप में प्राप्त होती हैं। जिसका सिंचन महापुरुष के द्वारा किया जाता हैं। एक बार यदि व्यक्ति के जीवन में सत्संग प्राप्त हो जाए। तो निरंतर उसे सत्संग से जुड़े रहना चाहिए। सत्संग का कभी त्याग न करें। निरंतर जीवन में सत्संग बना रहें। सत्संग की बड़ी सुन्दर महिमा बताई सनद कुमार ने। राजा पृथु ने उठकर प्रणाम किया। पृथु महाराज ने कहा कि मैं आपको कुछ दक्षिणा देना चाहता हूँ। मैं आपके सत्संग से प्रभावित हूँ कुछ देना चाहता हूँ। सनद कुमारों ने कहा आप हमें क्या दक्षिणा देना चाहते हैं? ये तो बताइए। राजा ने कहा कि "सर्वम् निवेदितम्"

प्राणा दाराः सुता ब्राह्मन्ग्रहाश्च सपरिच्छदाः।
राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितम्।।
(श्रीमद्भागवतम् 4.22.44)

आज मैं अपने पुत्र, परिवार, पत्नी, पुत्री धन कोष सभी को आपको समर्पित कर रहा हूँ। आपने मेरे से सत्संग किया है, परन्तु सनतकुमार कहते हैं कि राजन हम कुछ लेने नहीं केवल सत्संग करने आए थे। सत्संग हो गया और हरि शरणम्, हरि शरण म्, हरि शरणम् चल दिये।

देखिए गोपियों ने कितना सुन्दर कहा हैं। इसे गुनगुनाइए और भाव समझिए। गोपियाँ भी कृष्ण को कहती हैं। कि

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.31.9)

संसार में कोई अन्न का दान करता है, कोई वस्त्र का दान करता है, कोई भूमि का दान करता है, अनेक दान करने की वस्तुएँ हैं। गोपियाँ कहते हैं, केवल अन्न, वस्त्र, भूमि के दान से ही दानी नहीं होता ये तो हमें कल्याण के लिए करना ही चाहिए। परन्तु गोपियाँ कहती हैं कि हमारी दृष्टि में सबसे बड़ा दान है भगवान् की जो कथा को दान करता हैं। जो कृष्ण के नाम दान करता हैं। वही सबसे बड़ा दानी है।

व्यास आदि लेखक, नारद आदि ऋषि जिन्होंने कृष्ण कथा लिखी और नाम का गान किया है। ऐसे व्यास, नारद के चरण में कोटि-कोटि नमन करती हैं। प्रणाम करती हैं।

आज सनतकुमारों ने पृथु महाराज को सत्संग का दान किया है और प्रभु का नाम स्मरण करते हुए चल दिए।

पृथु महाराज के जीवन में सत्संग का बड़ा प्रभाव पड़ा। अपने पुत्र विजि तस्य के ऊपर राज्य का भार सौंपकर वन में चले गए और वानप्रस्थ आश्रम व्यतीत करते हुए अंत में पृथु जी ने अपनी देह को भगवान् के चरण में त्यागा।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

पृथु की तपस्या और परलोक गमन

अथ चर्तुविंशोऽध्यायः

प्रचेताओं को भगवान् रुद्र का उपेदश

श्री शुक देव जी कहते हैं कि राजन् इस प्रकार से आपने प्रश्न किया था कि प्रचेता कौन है? इसका उत्तर है प्राचीनबर्हि के दस पुत्रों का नाम प्रचेता हैं। दसों का एक ही रूप नक्शा हैं। ये प्राचीन ब्रर्हि जिन का यज्ञ में आस्था थी, जीवन में इतना यज्ञ किया कि सारी पृथ्वी कुश के आसन से ढक गई। परन्तु कैसा यज्ञ करते थे। पशु बलि यज्ञ। पशुओं की आहुतियां दिया करते थे। यानि माँस की आहुतियां दिया करते थे। श्री नारद जी ने जब सुना, सोचा कि राजा कैसा है, जो माँस की आहुतियां दे रहे हैं। उसी समय नारद जी महाराज प्राचीब्रर्हि राजा के पास आए और बोले महाराज से आप कैसा यज्ञ कर रहे हैं? इसे बंद करो ये तो पशु बलि यज्ञ है, परन्तु राजा ने कहा कि

"वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति"

जो वेद मन्त्र के द्वारा हिंसा होती है वह हिंसा नहीं कहलाती। मैं तो वेद के मन्त्र की आज्ञाओं का पालन कर रहा हूँ। ऐसे यज्ञों का हमारे वेद में वर्णन किया हैं। परन्तु देखिए हम वेद की आज्ञाओं का अर्थ ठीक से नहीं निकाल पाते। मन्त्र का विकृत अर्थ लगा लेते हैं। अपने-अपने स्वार्थ के लिए। समय-समय पर लोगों ने वेदों का मन्त्रों का अपना-अपना अर्थ कर लिया। श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध में यह बताया। ऐसे यज्ञों का जो वर्णन किया गया है उन यज्ञों को करने का और आचार्यों के कहने का तात्पर्य यही है कि माँस भक्षण नहीं, पशु बलि यज्ञ नहीं। "पशुआलवहन"

ऐसा लिखा हैं। 11वें स्कन्ध में पशु को लाया जाता है यक्षमंडप में। पशु का स्पर्श करके पूजन करके छोड़ दिया जाता हैं परन्तु लोगों ने पशु बलि यज्ञ, माँस भक्षण शुरू कर दिया।

लोग कहते हैं कि महाराज ऐसे यज्ञ की विषय वेदों में भी चर्चा होती है हमने सुना है कि "श्रोताः मनिः यज्ञ" जिसमें मदिरापान करके ही बैठा जाता हैं। शास्त्र कहते हैं नहीं, ऐसा कोई यज्ञ नहीं, जिसमें मदिरा पान करके बैठा जाता है। केवल मदिरा को पात्र में लेकर सूंघा जाता हैं। तत्पश्चात् यजमान स्नान करके यज्ञ में बैठता हैं। परन्तु लोगों ने मदिरा ही पान करना शुरू कर दिया। मद्यपान, माँस भक्षण निषिद्ध है। आत्म उद्धार, कल्याण के लिए यदि व्यक्ति चाहे तो इन वस्तुओं का त्याग कर दे। देखिए पाश्चात्य देश में भी आज लोग प्रवासी भारतीय जो अमेरिका में है ये दुर्गुण छोड़ रहे हैं। हमारे शास्त्र, वेद तो पहले ही माँस भक्षण, मद्य पान निषेध है, कह रहे हैं। परन्तु राजा अपने विचार में कर्म में घुल-मिल गए। "वैदिकी हिंसा हिंसा नभवति" अपने मत को कायम रखा। तो नारद जी महाराज ने अपने कमण्डल से जल लेकर मन्त्र अभिषेक करके राजा के नेत्रों से लगा दिया। जो आकाश की ओर देखा तो जितने पशु राजा ने मारे थे वे सब राजा के भक्षण के लिए दौड़े। राजा ने कहा महाराज ये सब मैं क्या देख रहा हूँ। नारद जी ने कहा राजा तुमने इनकी बलि दी उतने ही जन्म तुम लोगे और ये तुम्हें नोच-नोचकर खाएंगे।

एक सदना (कसाई) की कथा बड़ी सुन्दर भक्त माल में कथा आती है। रात्रि में माँस बेचता था। एक दिन दुकान बंद करके घर जा रहा था। राजा का आदेश आया, कि रात्रि में माँस की आवश्यकता हैं। वह अपने हथियार लेकर जब बकरे को काटने गया, तो सदना कसाई ने देखा कि बकरा कभी रोता है कभी हंसता हैं। तो सदना तन्मय हो गया उस बकरे के अन्तर्मन से तन्मय होकर वार्ता करने लगा। सदना ने पूछा कि बकरे तू अभी रोया और अभी हंसा कैसे? बकरे ने कहा कि मैं रो इसलिए रहा हूँ कि तुम मुझे काटने आये हो। हंस इसलिए रहा हूँ कि एक दिन मैं भी तुझे काटूंगा। ये जन्मजमाँतरों का चक्कर हैं। इस चक्र से छूट लो। जो सदना का आत्मज्ञान हुआ तो तुरंत हथियार छोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण की शरणागति हो लिया। कहने का अभिप्राय है कि मद्यपान माँस भक्षण निषिद्ध हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजा आज नारद जी प्राचीबर्हि राजा को जब यह दृश्य दिखाया तो राजा को ज्ञान हुआ। नारद जी ने राजा को पुरंजन उपख्यान भी सुनाया।

अथ पंचविशोऽध्यायः

पुरंजन उपख्यान आरंभ

नारद जी कहते हैं देख राजा एक पुरंजन नाम का व्यक्ति था, उसके मित्र का नाम था अविज्ञात। बड़ी आध्यात्म कथा हैं। एक बार पुरंजन अपने मित्र अविज्ञात के साथ हिमालय पर भ्रमण के लिए गया। उसने वहाँ एक सुन्दर महल देखा। जिसके साथ दो द्वार ऊपर दो द्वार नीचे हैं। जिस महल के पास एक सर्प उसकी रक्षा कर रहा था। उस महल को देखकर पुरंजन ने अपने मित्र अविज्ञात से कहा कि कितना सुन्दर महल है। मित्र देखो, यह बाहर से तो सुन्दर है ही अंदर से तो अधिक ही सुन्दर होगा। चलो देखने चलें।

परन्तु अविज्ञात मित्र ने मना किया, कहा! पुरंजन इस महल में मत जाओ, उसने मित्र की बात नहीं मानी, महल में चला गया। महल के अंदर देखा कि दो अंधे सेवक और जिनके कंधे पर एक युवती बैठी हैं। जिनके पीछे 11 सैनिक चल रहे हैं। पुरंजन ने उस युवती को और युवती ने उन्हें भी देखा तब उनका वार्तालाप हुआ और एक-दूसरे पर आसक्त हुए। पाणिग्रहण कर लिया। नाम, गोत्र पूछे बिना शादी हो गई। स्त्री का नाम पड़ा-पुरंजनी। स्त्री से इतना आसक्त हो गया कि जब स्त्री राग अलापने बैठती है, सितार लेकर तो ये भी राग अलापता हैं। भोजन करती है तो स्वयं पुरंजन भी भोजन करता हैं। जल पीती है तो जल पीता हैं। अर्थात् जैसा आचरण पुरंजनि करती है वैसा ही व्यवहार पुरंजन करता है।

क्वचिद्गायति गायन्त्यां रुदत्यां रुदति क्वचित्।
क्वचिद्धसन्त्यां हसति जल्पन्त्यामनु जल्पति।।
(श्रीमद्भागवतम् 4.25.58)

अथ षड्विंशोऽध्यायः

राजा पुरञ्जन का शिकार खेलने वन में जाना और रानी का कुपित होना

अथ सप्तविंशो

पुरञ्जनपुरी पर चण्डवेग की चढ़ाई तथा कालकन्या का चरित्र

अथ अष्टविंशो

पुरञ्जन की स्त्री योनि की प्राप्ति और अविज्ञात के उपदेश उसका मुक्त होना

अथ एकोनत्रिंशोऽध्याय

राजा पुरंजन का शिकार खेलने पुरञ्जनोपाख्यान का तात्पर्य

एक बार जब पुरंजन ने संसर्ग किया पुरंजिनी से तो उसके गर्भ से 1100 पुत्र और 110 पुत्रियां उत्पन्न हुई। राजन चण्डवेग नाम से एक गंधर्व था, जिसके पास 720 काली गोरी सेना थी। इसने जब देखा तो पुरंजन के राज्य पर, आक्रमण कर दिया, परन्तु पुरंजन तो अपने परिवार में ही व्यस्त है, आसक्त हैं। एक क्षण भी भगवान् के भजन में नहीं बैठा। काल कन्या ने भी आक्रमण कर दिया पुरंजन पर यानी वृद्धावस्था हो गई पुरंजन की। फिर भी पुरंजन को ध्यान नहीं। यवन राज ने भी आक्रमण किया यानी भय ने भी आक्रमण किया। प्रजर ने भी आक्रमण किया, जब अंतिम अवस्था पुरंजन की हुई तो पुरंजिनी को याद करते-करते शरीर को त्यागा तो अंत में "ज्यामित सा गति" यानी अपनी पत्नी को याद करते-करते जब देह को छोड़ा तो भैया दूसरे जीवन में उसे स्त्री शरीर मिला, साड़ी पहननी पड़ी। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय। ये समझ लेना भैया भगवान् कहते हैं।

"यं यं वापि स्मरणं भावं त्यजेत् अन्ते कलेवरं"

जिस भाव को रखते हुए आप शरीर छोड़ेंगे, उसी भाव के साथ अगला जन्म होगा। जैसा चिन्तन करेंगे वैसा शरीर प्राप्त होगा। यदि भगवत स्मरण में व्यक्ति शरीर त्यागता है तो भगवान् को ही प्राप्त कर लेता हैं। संसार में रत हुए हम किसी वस्तु या व्यक्ति को याद करते-करते देह को त्यागेंगे तो उसी भाव को हम प्राप्त कर लेंगे। ये पुरंजन विदर्भ देश की राजकुमारी के रूप में पैदा हो गई। जिनकी शादी हुई मलायध्वज नाम के एक राजा के साथ। जिनके सात पुत्री पाँच पुत्र हुए।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन एक बार राजा मलायध्वज वानप्रस्थ आश्रम व्यतीत करने वन में गए तो अपनी पत्नी को भी साथ ले गए। ये पुरंजन जो वैदर्भी नाम से पैदा हुई जब राजा मलायध्वज ने योगबल से दोबारा अपने शरीर को छोड़ा तो अपने पति के साथ सति होने के लिए जाने लगी तो उसी समय अविज्ञात नाम का मित्र आ गया। मित्र अविज्ञात कहने लगे अरे वैदर्भी तूने मुझे पहचाना नहीं मैं कौन हूँ? बोले नहीं महाराज मैंने आपको पहचाना नहीं, बताकर कृपा करें। तो अविज्ञात नाम के मित्र कहने लगे मैं तुम्हारा पूर्व जन्म का मित्र हूँ—अविज्ञात। मैंने तुझे मना किया था कि तू महल में पवेश मत कर, परन्तु तूने मेरी बात नहीं मानी और फिर वही कार्य करने जा रहा है।

थोड़ा अपने आत्मस्वरूप का ध्यान करें, भगवान् हमें सन्तों के रूप में, सद्‌गुणों के रूप, वैष्णव के रूप में प्राप्त होते हैं और एक सत्मार्ग बताकर निज आत्म स्वरूप का ज्ञान कराके जन्म मृत्यु के चक्कर से छुड़ा देते हैं।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

प्रचेताओं की श्रीविष्णु भगवान् का वरदान

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

प्रचेताओं की नारद जी का उपदेश और उनका परमपद लाभ

परन्तु राजा की समझ में यह कथा नहीं आई। राजा ने कहा महाराज–थोड़ा स्पष्ट करिए कि पुरंजन और पुरंजिनी कौन है? नारद जी कहते हैं, पुरंजन जीवात्मा तथा पुरंजिनी बुद्धि हैं। अविज्ञात नामक मित्र भगवान् नारायण है जो प्रत्येक जीव का परम् मित्र हैं। परमात्मा के स्वरूप हैं, ये नौ द्वार वाला महल हमारा शरीर हैं। सात ऊपर दो नीचे द्वार हैं। इसकी रक्षा करने वाले पाँच प्राण हैं। यही पाँच सिरवाला सर्प है जो इस देह की रक्षा कर रहा है।

और जिसके अंदर 11 सैनिक ओर दो अंधे सेवक हैं। जिसके कंधे पर बुद्धि पुरंजिनी बैठी है ये दो हमारे पैर हैं। और 11 सैनिक पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियां और एक मन हैं। जो बुद्धि के पीछे–पीछे चलता हैं। 1100 पुत्र और 110 पुत्री चित्र की वृत्तियां हैं, राजन्, चण्डवेग नाम का जो गन्धर्व है जिसकी 720 काली गोरी सेना है ये दिन–रात हैं। काल कन्या वृद्धावस्था हैं। यवन राज भय है और प्रज्वर जो अंत काल में आता है यह एक प्रकार का भयंकर ज्वर है जो अन्तिम अवस्था में आता है, अंतिम अवस्था में पुरंजन ने किसको याद किया, अपनी पुरंजिनी को।

"अन्ते जा मति सा गति"

परन्तु भगवान् कितने दयालु हैं, कितने कृपालु हैं कि सन्त के रूप में जीवन में हमें बार–बार मिलते हैं और निज आत्मस्वरूप का ज्ञान कराके जन्म और मृत्यु के चक्कर से छुड़ा देते हैं। पर लोग सन्तों को देखकर भी जो भगवान् के स्वरूप में है ये अनुभव नहीं कर पाते। नारद जी ने ये पुरंजन उपख्यान भागवत् में राजा को सुनाया, राजा नें तुरंत उठकर नारद जी के चरणों में प्रणाम किया और कहा कि महाराज आपने मेरे चक्षु खोल दिए। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार नारद जी राजा के ऊपर कृपा करते हुए भगवान् का नाम कीर्तन करते हुए पधारे। परीक्षित महाराजा ने प्रश्न किया, शुकदेव जी महाराज के चरणों में।

इति चतुर्थ स्कन्ध समाप्तः

हरि ऊँ तत्सत्



स्कंध-०५

पंचम स्कन्ध

प्रथमोऽध्यायः, द्वितीयो, तृतीयो, चतुर्थो

प्रियव्रत चरित्र

प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने।
गृहेऽरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः।।
(श्रीमद्भागवतम् 5.1.1)

राजा परीक्षित जी ने प्रश्न किया कि आप मुझे कृपा करके बताएं प्रियव्रत महाराज के बारे में, कि ये प्रियव्रत राजा गृहस्थ आश्रम में रहकर भी कर्म बन्धन में नहीं बन्धे, ये कैसे हो सकता है? तो शुकदेव जी महाराज कहते हैं।

बाढमुक्तं भगवत उत्तम श्लोकस्य
श्रीमच्चरणारविन्दमकरन्दरस आवेशितचेतसो।।
(श्रीमद्भागवतम् 5.1.5)

राजन् जिस प्राणी का मन भगवान् के चरण कमल मकरन्द का पान करने में लग चुका है ऐसे प्राणी के जीवन में यदि कोई विघ्न बाधा आ जाए फिर भी वह एक क्षण भी परमार्थ की शरण से नहीं हटता। यही भगवत भक्ति की महिमा हैं। प्रियव्रत महाराज भगवत भक्त हैं। महाराज प्रियव्रत जी का जीवन निर्मल, शुद्ध महिमा मंडित हैं। देखिए प्रियव्रत कहते हैं–प्रिय माने अच्छा, सुन्दर, व्रत माने संकल्प अर्थात जिसका सत्संकल्प हैं। सुन्दर संकल्प है वही प्रियव्रत हैं। आजीवन ब्रह्मचारी रहकर भगवान् का भजन करना एक प्रियव्रत जीवन, सुन्दर जीवन हैं। सुंदर संकल्प हैं। सत्संकल्प हैं। भगवान् को संयमी, सदाचारी, व्रतधारी, ब्रह्मचारी अति प्रिय है।

ये प्रियव्रत महाराज गन्धमादन पर्वत पर अपने गुरुदेव नारद जी से आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या को प्राप्त कर रहे थे। परन्तु पिता की इच्छा हुई कि मैं अपने पुत्र को गद्दी दे दूँ। बड़ा पुत्र है। ज्ञानवान पुत्र है।

तो महाराज मनु गए और कहा बेटा मैं बूढ़ा हो गया हूँ। आप गद्दी को संभालो। बोले पिताजी हम गद्दी पर नहीं बैठेंगे, केवल ब्रह्मविद्या को ही प्राप्त करेंगे जो मानव जीवन का लक्ष्य है। तो श्री ब्रह्मा जी ने सुना कि प्रियव्रत गृहस्थ आश्रम स्वीकार नहीं कर रहे तो उसी समय वे हंस वाहन कर बैठकर आ गए।

ब्रह्मा जी ने आकर कहा देखो बेटा, मैं भगवान् की प्रेरणा से यहाँ आया हूँ। और तुम हो जितेन्द्रिय। प्रेम से कहो जय श्री कृष्ण। देखो दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं। एक

जितेन्द्रिय, दूसरे अजितेन्द्रिय, जितेन्द्रिय उसे कहते हैं जिसने अपनी इन्द्रिया वश में की हो। अजितेन्द्रिय वह है जो इन्द्रियों के आधीन हैं। तो ब्रह्मा जी ने कहा बेटा तुम तो जितेन्द्रिय हो यदि कोई अजितेन्द्रिय आदमी वन में भजन करने जाए। घर छोड़कर बाबा जी हो जाए और वहाँ भी उसके पीछे लोभ, काम, क्रोध, मोह, मत्सर आदि लगा रहे तो ऐसे व्यक्ति को वन में जाना बेकार हैं। सबसे पहले गृहस्थ आश्रम में ही अभ्यास करना चाहिए। बेटा गृहस्थ आश्रम वह किला है जिस किले के अंदर रहकर राजा अपने शत्रु पर प्रहार करता है तो निश्चित उस राजा की विजय होती है। ऐसा ब्रह्माजी ने भागवत में कहा हैं। यह गृहस्थ आश्रम किला हैं। देखो प्रियव्रत तुम इस गृहस्थाश्रम में सुरक्षित रहोगे। इस किले में सुरक्षित रहकर सबसे पहले–

काम को जीतो, क्रोध को जीतो,
मद को जीतो, लोभ को जीतो,
मत्सरता को जीतो,

बोले तब भजन करने के अधिकारी बनोगे जब तक इस वेग को इस शत्रु को न जीत लोगे। बहुत से लोग कहते हैं कि महाराज मैं इतना जप, तप, व्रत करता हूँ उसका कोई फल नहीं मिलता।

प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण।

देखो जप, तप, व्रत, उपासना का फल हमें कब मिलेगा? थोड़ा सा इन शत्रुओं का भी ध्यान रखना–

यदि व्यक्ति के जीवन में थोड़ी-सी भी काम वासना आ जाती है, तो वासना से भी भजन का फल नष्ट हो जाता हैं। यदि हमने क्रोध किया तो क्रोध से भजन का फल नष्ट हो जाता है, यदि मद आ गया तो मद से भी भजन का फल नष्ट हो जाता है, यदि लोभ आ गया तो भी भजन का फल नष्ट हो जाता हैं। प्रियव्रत देखो तुम हो जितेन्द्रिय पहले इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो। तो ब्रह्माजी के उपदेश से प्रियव्रत ने गृहस्थ आश्रम प्राप्त किया।

इस गृहस्थ आश्रम में प्रियव्रत महाराज के 10 पुत्र हुए। सबसे बड़े पुत्र का नाम है "अग्निन्द्र" और दूसरी पत्नी से तीन पुत्र उत्पन्न हुए। जिनमें तीन मन्वन्तर के अधिपति बने। उत्तम, तामस खैत ये तीन मन्वन्तरों के राजा बन गए। अग्निन्द्र को राजगद्दी दे दी प्रियव्रत ने और इनके पुत्र हुए महाराज नाभि। अग्निन्द्र की पत्नी ब्रह्मा जी की सभा की नर्तकी थी, जिनका नाम अप्सरा पूर्वचिति। इस अप्सरा से पुत्र प्राप्ति हुई नाभि। नाभि के घर साक्षात् भगवान् का अवतार हुआ ऋषभ, बोलो ऋषभ देव

भगवान् की जय। अष्टमेमेरुदैव्य: यह भगवान् का आठवां अवतार है, मेरुदेव्यां के गर्भ से प्रकट हुए भगवान्। देवताओं ने फूलों की वर्षा की। जय-जयकार हुई। भागवत में भगवान् के 24 अवतार बताए हैं। आठवें अवतार की कथा आप श्रवण कर रहे हैं।

अथ पंचमोऽध्याय:

ऋषभ जी का अपने पुत्रों को उपदेश देना और स्वयं अवधूत वृत्ति ग्रहण करना

ऋषभदेव भगवान् ने अपने पुत्रों को मानव जीवनका जो परम लक्ष्य है उस मार्ग को बताया। ऋषभ देव भगवान् के सौ पुत्र हुए। प्रथम पुत्र का नाम है भरत, भरत के अनुगमन करने वाले नौ भाई भरत के अनुरूप हुए। नौ पुत्र योगेश्वर हुए। और 81 पुत्र कर्मकाण्डी का जीवन बिताने लगे। एक दिन ऋषभदेव समस्त पुत्रों को बुलाकर उपदेश दे रहे हैं।

नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्धध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 5.5.1)

ऋषभ जी महाराज कहते हैं। पुत्र हमें मानव जीवन क्यों मिला? ये केवल सांसारिक लोगों के लिए, सांसारिक कर्मों के लिए हमें मानव जीवन नहीं दिया संसार के लोगों का संग करने के लिए ये हमें मानव तन नहीं दिया। केवल संसार के भोग भोगने के लिए मानव जीवन नहीं मिला। आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये पशु शरीर में भी होता हैं। ऋषभदेव कहते हैं। परमात्मा की अनंत कृपा से यह मानव शरीर मिला। मोक्ष का यह द्वार हमें मिला।

"तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्धध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्।"

(श्रीमद्भागवतम् 5.5.1)

ऋषभ देव महाराज अपने पुत्रों को ही उपदेश दे रहे हैं। पराये व्यक्ति को नहीं। ऋषभदेव महाराज कह रहे हैं। पुत्रों ये मानव जीवन परमात्मा ने अपने दिव्य तप, दिव्य भजन के लिए दिया। जो व्यक्ति अपने जीवन में तप, भजन नहीं करता तो तप का उल्टा होता है- पत अर्थात् पतन। उस व्यक्ति के जीवन का पतन हो जाता हैं। ऋषभदेव जी महाराज ने कहा कि-

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या-न्न मोचयेद्य: समुपेतमृत्युम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 5.5.18)

वह तुम्हारा गुरु–गुरु नहीं, वह तुम्हारा पिता–पिता नहीं, वह माँ–माँ नहीं। वह कान्त–कान्त नहीं। वह देव–देव नहीं जो तुम्हें सत्मार्ग न दिखाए। जो तुम्हें अच्छा मार्ग न बताए।

"इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं"

(श्रीमद्भागवतम् 5.5.19)

ऋषभ देव जी महाराज कहते हैं। मैंने मानव को उपदेश देने के लिए ये मानव शरीर धारण किया। जब ऋषभ देव महाराज के पुत्रों ने पिता की आज्ञा को सुना तो पिता की आज्ञा का पालन किया। ऋषभदेव महाराज के सबसे बड़े पुत्र का नाम था भरत। जिनके हृदय में पिता के संस्कार जाग्रत हुए। युवावस्था में इनको वैराग्य हो गया। कभी–कभी ग्रन्थ पढ़कर भी व्यक्ति को वैराग्य हो जाता है, व्यक्ति वैराग्यवान हो जाता है। कभी–कभी किसी की बात भी लग जाए परिवार में, समाज में तो वैराग्य आ जाता हैं। या सन्त की वाणी, शास्त्रों के वचन सुनकर वैराग्य आ जाता हैं। परन्तु वैराग्य तुम्हारा स्थिर हो। ये नहीं कि पत्नी से झगड़ा हुआ तो चलो वृन्दावन। "घर में हुई" खट्–पट् चलो बाबा जी के मठ पर।"

दस बारह दिन के बाद पत्नी की, बच्चों की यदि आने लगे। वैराग्य भाव आने पर जीवन पर्यन्त उसी भाव में रहो।

परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

"वैराग्य विद्या निज भक्ति योगम्"

चैतन्य महाप्रभु कहते हैं– भक्तियोग का मूल तत्व है—वैराग्य। वैराग्य विद्या क्या है—अपनी भक्ति, भक्ति ही वैराग्य है, वैराग्य ही भक्ति है।

सच्चा वैराग्य आ जाए तो मानव का कल्याण हो जाए। गोकर्ण महाराज कहते हैं—

"वैराग्य रागरसिको भव भक्ति निष्ठाः"

वैराग्य राग से रंजित होकर, डूबकर निष्ठा के साथ भक्ति करें। एक बार वैराग्य होने पर उस भाव की रक्षा करते हुए भक्ति करें।

अथषष्ठोऽध्यायः

ऋषभदेव का देह त्याग

श्री भरत जी के जीवन में देखिए वैराग्य हुआ, जिनके पाँच पुत्र थे अपने पाँचों पुत्रों के ऊपर राज्य भार सौंपकर नेपाल की तलहटी, जहाँ गण्डकी नदी बहती है,

उस गण्डकी नदी के अंदर से शालिग्राम भगवान् की प्राप्ति होती है, जो हम घर में पूजा करते हैं। भरत जी ने गण्डकी नदी के तट पर जाकर पुलह और पुरस्त ऋषि के आश्रम के पास एक सुन्दर कुटिया बनाई, जिसमें शालिग्राम की सेवा पूजा कुटिया में रहकर करने लगे, भजन करने लगे।

भगवान् की दो प्रकार से सेवा बताई है, एक है–नियम सेवा, जिसे कहते हैं। वैदिकी सेवा। दूसरी है–रागानुगा सेवा यानि प्रेम भक्ति। यदि वैदिकी सेवा में हमसे कोई गलती हो जाए तो भगवान् दंड देते हैं। क्षमा नहीं करते और यदि भगवान् के भाव भक्ति रागानुगा भक्त में गलती हो जाए भगवान् दण्ड नहीं देते। भगवान् उस कमी को स्वयं ही पूरा कर लेते हैं। जैसे ठाकुर बिहारी जी की प्रसिद्ध घटना है वृन्दावन की, श्रवण करे।

एक बार गोस्वामी जी, करीब 150 वर्ष पहले की घटना है, गोस्वामी जी श्री बांके बिहारी जी की सेवा में लड्डू रखना भूल गए। बिहारी जी के मंदिर में, रात्रि में ओर मध्याह्न में भगवान् के पलंगे के पास चार बूंदी के लडू रखे जाते हैं। एक बार गोस्वामी जी लड्डू रखना भूल गए, तो साक्षात् बिहारी जी लड़्डू स्वयं खरीदने पहुँचने गए। यदि नियम की सेवा होती तो भगवान् नहीं जाते। प्रेम की, भाव की सेवा को पूरा करने के लिए बाजार में लड्डू लेने पहुँचे भगवान्।

अथ सप्तमोऽध्यायः

भरत चरित्र

श्री भरत जी महाराज के जीवन में प्रेममयी भावमयी, सेवा चल रही थी। शुकदेव महाराज कहते हैं। राजन् एक दिन भरत जी महाराज अपनी सेवा से निवृत्त होकर कुटिया के बाहर खड़े थे। गण्डकी नदी में एक गर्भवती हिरनी जल पीने के लिए आई। भरत महाराज देख रहे हैं। पीछे से उसने सिंह की आवाज सुनी, सुनकर भय से छलांग लगाई। वह हिरनी गर्भवती थी, नदी में छलांग लगाने से हिरनी के गर्भ से बच्चा नदी में गिरा और पानी में बहने लगा। दूसरी उस हिरनी ने गुफा में जाकर शरीर त्याग दिया। भरत जी यह दृश्य देख रहे थे। भरत जी को दया आ गई। भरत जी का हृदय सहिष्णुता से भर गया भरत जी ने कहा कि इस हिरन के बच्चे की माँ मर गई, ये भी नदी में डूब रहा हैं। यदि मैंने भी इसकी रक्षा नहीं की तो यह प्राण त्याग देगा। शुकदेव जी कहते हैं–

"भरतस्तु महाभागवतो"

महाभागवत भरत जी गण्डकी नदी में कूद पड़े, हिरन के बच्चे को बचाने के लिये, हिरन के बच्चे को कुटिया में ले आए और पालने लगे। मातृवश स्नेह से उसकी देखभाल करने लगे। अपने हाथों से कोमल-कोमल हरी-हरी घास तोड़कर खिलाने लगे। अपने हाथों गण्डकी नदी से जल लाकर उसे पिलाते। जब से भरत जी के पास वह हिरनी का बच्चा आया तब से उनका ठाकुर जी से मन हटने लगा।

देखो मन है एक, इस मन से व्यक्ति एक ही समय, एक ही विषय विचार कर सकता है, दो नहीं। या तो मन में कृष्ण को, ठाकुर को बैठाओ या संसार को।

"मन एव मनुष्याणां – कारणम् बन्ध मोक्षयोः"

गीता में भगवान् कहते हैं, मन ही कर्म-बन्धन का कारण हैं। मन से बन्धन, मन से ही मुक्ति हैं। जिस मन में साक्षात् गोविन्द जाकर बैठ गए, जिस मन में साक्षात् गोविन्द हैं वही मुक्ति का द्वार हैं। जो मन श्रीकृष्ण के चरण में है वही मुक्ति का द्वार हैं। जो संसार में है वह बन्धन कारक हैं। जब से हिरण भरत के कुटी में आया तब से उनका मन ठाकुर की सेवा से हट गया।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गोऽस्तषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधऽभिजायते।।
(श्रीमद् भगवद्गीता 2.62)

अथ अष्टमोऽध्यायः

भरत जी का मृग के मोह में फंसकर मृग योनि में जन्म लेना

जब हिरन का बच्चा कुछ बड़ा हुआ तब भरत जी के मन हिरन के प्रति हृदय से लग गया।

एक दिन हिरन का एक झुण्ड आया, भरत जी को छोड़कर वह हिरन का बच्चा चला गया। रात्रि हुई तब भी वह कुटिया में नहीं लौटा तो भरत जी महाराज उसे ढूंढने चले गए। परन्तु कहीं नहीं दिखाई दिया। हिरन की याद में खाना, पीना, सोना छूट गया।

एक पशु के प्रति इतना मोह, परन्तु देखो संसार में व्यक्ति को मोह न रखकर सेवा की भावना रखनी चाहिए। आजकल लोग अपने बच्चों से इतना प्यार नहीं करते। कुत्ते-बिल्ली से ज्यादा प्यार करते हैं। वह बीमारी विदेशों में थी अब यहाँ भी आ गई। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

हाँ हमें उनका पालन करना चाहिए, मोह नहीं। भरत की कथा से हमें शिक्षा लेनी चाहिए। भरत जी में सेवा की भावना हिरन के लिए नहीं ठाकुर के लिए थी। परन्तु मोह हो गया हिरन के बच्चे से। मोह सबको रुलाता है, कष्ट देता है।

गीता

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृता:।
प्रसक्ता कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।।

(श्रीमद् भगवद्गीता 16.16)

हिरन के बच्चे को याद करते-करते जब अपने शरीर को त्याग दिया भरत जी महाराज ने, तो अन्त में जैसा चिन्तन किया वैसा ही तन मिला। कालिन्जर पर्वत पर एक हिरन के परिवार में हिरन बनकर जन्म लिया। "जा मति सा गति"।

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं। एक हिरनी के गर्भ से भरत जी महाराज का जन्म हुआ। यदि कुत्ते को याद करते करते शरीर त्यागते तो कुत्ता ही बनते। देखो मानव शरीर को प्राप्त करने के बाद फिर हिरन का एक पशु योनि प्राप्त हो गई। भरत जी महाराज रोने लगे, भगवान् से मन ही मन प्रार्थना करने लगे, हे कृष्ण,इस पशु जीवन में कितना कष्ट है, मैं भगवान् का भजन नहीं कर सकता हूँ। कोई उपासना भी नहीं कर सकता हूँ, योगादि क्रिया नहीं कर सकता, भरत जी महाराज का मन व्याकुल हो गया। कभी-कभी पशु योनि में भी वह रोने लगते, आँख से आँसू आ जाते।

पशु शरीर में भरत जी महाराज ने एक दिन विचार किया कि अब इस शरीर को त्यागना चाहिए। परम योगी थे भरत जी महाराज। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं। कि "योगभ्रष्ट आभिजायते" जो योगी अपने पथ से भ्रष्ट हो जाते हैं। वे निम्न योनियों को प्राप्त हो जाते हैं।

योग भ्रष्ट जोगी हैं भरत जी।

अथनवमोऽध्याय:

भरत जी का ब्राह्मणकुल में जन्म

भरत जी महाराज एक दिन गण्डकी नदी में बैठे, आधा शरीर जल में आधा बाहर। हिरन शरीर में भरत जी ने घास खाना, जल पीना छोड़ दिया। जैसे-तैसे पशु शरीर त्याग दिया। तीसरा जन्म भरत जी महाराज का अंगीरा ब्राह्मण के घर हुआ जिसकी दो पत्नी थीं, दूसरी से इनका जन्म हुआ। एक बहन भी है भरत जी की और पहली पत्नी से ब्राह्मण के तीन पुत्र हैं। जब भरत जी महाराज का माता-पिता की आज्ञा से

यज्ञोपवीत हुआ, भरत जी को गायत्री मन्त्र याद करने के लिए पिता जी ने दिया। परन्तु भरत जी ने अपने पिता जी को गायत्री मन्त्र भी याद करके नहीं सुनाया। भरत जी को दोनों जन्म की बात याद थी कि मैं कौन था? उन्होंने सोचा भगवान् की कृपा से मुझे ये मानव शरीर मिला हैं। इसे व्यर्थ नहीं जाने दूँगा। तो वह गूंगे, बहरे, अंधे के समान आचरण करने लगते हैं।

"उन्मत्तजडान्धबधि रस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य।"

(श्रीमद्भागवतम् 5.9.3)

भरत जी ने सोचा कि आज पिता ने कहा गायत्री मन्त्र याद कर। कल कहेगें कर्मकाण्ड की पुस्तक पढ़। परसों कहेंगे शादी करने जा। मैं तो संसार में फंसता ही चला जाऊँगा, इसलिए मुझे मानव शरीर परमात्मा ने फिर से नहीं दिया कि केवल सांसारिक कर्म करें।

तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्।

(श्रीमद्भागवतम् 5.5.1)

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि भरत जी विचार करते हैं कि यह तो परमात्मा ने भजन करने के लिए शरीर प्रदान किया कुछ समय बाद में भरत जी के माता-पिता की मृत्यु हो गई, परन्तु उन्होंने गायत्री मन्त्र नहीं सुनाया। याद था भरत जी को। जड़ के समान आचरण करते थे गूंगे, बहरे, अंधे के समान।

भरत जी महाराज छोटे-मोटे सेवा कर्म करते थे। जब भरत जी महाराज अपने भाई-भाभी के शासन में आ गए तो भरत जी महाराज की भाभियां जला भोजन उन्हें दे देतीं। परन्तु कभी उन्होंने रसना का स्वाद नहीं जाना। स्वाद में ही व्यक्ति को रोना पड़ता हैं। रसना को कौन तृप्त कर पाए, जिसकी रसना संयमी है उसकी भजन साधना उतना ही प्रगतिशील है।

परन्तु जब प्रसाद समझ लेता है कि यह मेरी ठाकुर जी का, बिहारी जी, कृष्ण का है तो "प्रसादस्तु प्रसन्नता"।

प्रसादे सर्वदु: खानां हानिसोपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्यशु बुद्धिः पर्यऽतिष्ठते।।

(श्रीमद् भगवद्गीता 2.65)

प्रसाद में ही व्यक्ति को खुशी मिलती है, तो भरत जी महाराज मन ही मन कहते हैं कि मुझे ठाकुर का यह प्रसाद मिला, उनकी कृपा हुई। जो कुछ भी भरत जी महाराज को मिलता तो खा लेते, कभी रसना का स्वाद उन्होंने न जाना। भरत की

भाभियों ने अपने पतियों से कहा कि तुम तो कितना परिश्रम करते हो खेतों में, दिन रात लगकर फसल उगाते हो, परन्तु भरत घर में बैठा बैठा रोटी खाता है, इसे भी काम पर लगाओ न। भरत के भाइयों ने कहा, बात तो ठीक है, बुलाकर कहा, तुम हमारे साथ खेत पर चलो।

खेत पक कर तैयार थे। भाइयों ने कहा भरत खेत की रखवाली कर। एक ऊँचे मचान पर भरत को बैठा दिया, हाथ में लम्बा बांस दे दिया और जीव, जन्तु पशु पक्षी को भरत भगा रहे हैं। जब थोड़ी देर में भरत के भाई घर चले गए, भरत तब भी खड़े हैं, उस मचान पर खेत की रखवाली के लिए। जब भरत ने आकाश की ओर देखा कि हरी-पीली, नीली गुलाबी चिड़िया उड़ रही हैं। भरत ने कहा ये किसने बनाई है एक साधारण चित्रकार कहे कि मैं ऐसा बना दूँ तो नहीं बना सकता। यह तो भगवान् श्री हरि का ही निर्माण है, फिर भरत का ध्यान अपने खेत की ओर गया तो बोले खेत कौन का है, खेत तो है, विचार आया कि नहीं-नहीं खेत भी हमारा नहीं है, अरे हमने तो इस खेत में कुछ बीज डाले हैं। परन्तु एक से अनेक करने वाले भगवान् हरि ही हैं, तो हरि की ही चिड़िया है हरि के ही खेत हैं, मैं क्यों रोकूँ?

भरत जी महाराज ने बाँस फेंक दिया। बुलाबुलाकर चिड़ियों को फसल खिलाने लगे।

हरि की ही चिड़िया और हरि को ही खेत।
खाओ मेरी चिड़िया भर-भर पेट।

अब तो जीव जन्तु पशु पक्षी सब आकर नुकसान करने लगे। उन चिड़ियों के अन्दर भी भरत जी श्रीकृष्ण, श्रीहरि का दर्शन कर रहे हैं। अपने खेत के अंदर साक्षात कृष्ण को नृत्य करते देख रहे हैं। भगवान् गीता में कहते हैं। कि

"पंडिता समदर्शिनः"
विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैवश्वपाके चैव पण्डिताः समदर्शिनः।।

(श्रीमद् भगवद्गीता 5.18)

वह पंडित है, वही ज्ञानी है, वही पूर्ण भक्त है, वैष्णव है, जो एक गज के अंदर भी, चाण्डाल के अंदर भी, ब्राह्मण के अंदर भी, कुत्ते के अंदर भी अपने गोविन्द के, कृष्ण के दर्शन करे। "पंडिताः समादर्शिनाः।"

वह पूर्ण पंडित है, ज्ञानी हैं। आज भरत जी के जीवन में साक्षात् ये बात देखने को मिलती हैं। पूर्ण ज्ञानी, पूर्ण भक्त, पूर्ण पंडित, पूर्ण वैष्णव।

इस प्रकार से भरत जी के खेत के नुकसान पर उनके भाई दौड़कर आए तो देखा कि भरत जी आँख बंद करके बैठे हैं।

श्रीकृष्ण शरणं मम्, श्रीकृष्ण शरणं मम्, की कीर्तन कर रहे हैं। प्रभु का स्मरण कर रहे हैं। भाई बोले–अरे भरत तूने हमारे खून–पसीने की कमाई क्यों बरबाद की। इससे तो तू मर जा, चला जा। हम सन्तोष कर लेंगे। परन्तु हमारा नुकसान मत कर।

भरत चाहते थे कि किसी प्रकार से ये संसार मुझे त्याग दे। यदि संसार को तुम अपनी इच्छा से छोड़ोगे तो ये संसार जकड़े बैठा है पकड़े बैठा है, परन्तु शास्त्र कहता है सन्त कहता है कि जिसका त्याग संसार करता हैं। उसे फिर कभी याद नहीं करता। अतः अपनी इच्छा से मत छोड़ना, संसार की इच्छा से ही इसे त्यागना। यदि अपनी इच्छा से छोड़ोगे तो संसार पकड़े बैठा हैं। भरत जी महारज चाहते तो पहले भी घर त्याग कर जा सकते थे, परन्तु भरत ने कहा कि नहीं मेरे भाइयों को मेरी आवश्यकता है, परन्तु जब आज इस संसार के भाइयों ने कह दिया कि तू मर जा, चला जा, सन्तोष कर लेंगे तो भरत ने कहा कि अब यहाँ रहना उचित नहीं। भरत जी महाराज चल दिए। एक पागल की तरह भरत जी चलते चलते एक वृक्ष के नीचे बैठ गए।

गीतम्

अब तो लागी लगन ऐ मिट्टी में मिल जाना,
प्रेमी के प्रेम पथ पर मन हो गया दीवाना।
दर–दर की खाक छानी दृग से बहा के पानी,
जो दिखता तो कहता है नेह की निशानी।
अब रो रहा है कि दिल पहले कहना न माना
मन हो गया दीवाना....................................
प्रेमी के प्रेम पथ पर..................................
अब तो लागी लगन....................................

परन्तु भगवान् जितनी अपने भक्तों की परीक्षा लेते हैं। शायद उतनी और किसी की नहीं लेते। क्या भक्तों को दुख नहीं आता?

प्रेम से कहो जय श्री कृष्ण। जैसे एक स्वर्णकार स्वर्ण को तपा–तपाकर खरा बना देता हैं। ऐसे ही अपने भक्तों को भगवान् परीक्षा से खरा बना देते हैं। सोने की तरह। भरत जी महाराज के जीवन में भी इतना दुख आया कष्ट आया परन्तु उन्होंने सहन किया, यही भक्त और भगवान् की विशेषता हैं। यदि जीवन में कोई कष्ट भी, विघ्न

भी, दुख भी आता है तो सच्चा, भक्त तो वही हैं। परमात्मा का, ईश्वर की परीक्षा जो हंसकर सहन करे।

एक डाकू से भी भगवान् ने रक्षा की, परमात्मा ने रक्षा की भरत जी महाराज की। इस डाकू ने प्रतिज्ञा की थी कि मेरी कामना पूर्ण होगी तो मैं नरबलि दूँगा, देवी भद्रकाली को। एक व्यक्ति को पकड़ा था, परन्तु वह छूटकर भाग गया। कोई और तो मिला नहीं, भरत जी महाराज को पकड़ लाए। स्नान कराके सुन्दर वस्त्र पहनाए, लड्डू खिलाकर सुन्दर भोग चढ़ाया और बलि देने का समय आया तो भरत को देवी भद्रकाली की मूर्ति के सामने खड़ा किया–कहा, महाराज प्रणाम करो! भरत जी ने कहा, क्यों क्या बात है? ये खडग क्यों दिखा रहे हो। जल्लाद ने कहा ये सुन्दर वस्त्र देसी घी के लड्डू का प्रसाद मुफ्त में नहीं मिलता, अब आपका भोग भद्रकाली को लगेगा।

माता को प्रणाम करो। समझ गए भरत मंद-मंद मुस्कराते हुए कहा, हे देवी! इस डाकू की मनोकामना पूर्ण कर दो। इस पर कृपा करो। परन्तु आज देवी मूर्ति सोचने पर बाध्य हो गई कि ये अज्ञानी क्या ब्रह्मज्ञानी की बलि देना चाहते हैं। देवी माता सोच में पड़ गई। इतने में डाकू ने सबसे पहले देवी पूजन सम्पन्न किया फिर भरत जी की पूजा करके तलवार निकाल कर वध के लिए उद्धत हुआ तो एक चमत्कार हुआ। देवी भद्रकाली से रहा न गया। देवी भद्रकाली ने सोचा डाकू ने अनेक कामनाएं रखीं हमने हर कामना पूर्ण की। इसने एक ब्रह्मज्ञानी, भक्त को मारने की ठानी। यदि भक्त के शरीर से रक्त की एक भी बूँद गिरी तो मैं भगवान् को क्या जवाब दूँगी कि मैं उनके भक्त की रक्षा न कर सकी। देवी भद्रकाली मूर्ति में विचार कर रही हैं। उसी समय डाकू ने बलि देने के लिए म्यान से तलवार निकाली।

देवी भद्रकाली मूर्ति को फोड़कर प्रकट हो गई।

"सहसोच्चाट सैव देवी भद्रकाली"

(श्रीमद्भागवतम् 5.9.17)

बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय। भक्त वत्सल भगवान् की जय।

डाकू के हाथ से तलवार लेकर भद्रकाली ने सभी सेवकों का संहार कर मुंडों से खेलते हुए रक्त पान करते हुए भरत जी महाराज की परिक्रमा कर रही हैं। अंत में प्रणाम करके साक्षात् मूर्ति में जाकर विलीन हो गई। भरत जी महाराज ने ये सब संहार देखा। वे न दुखी हुए न सुखी। मंदिर से निकल कर भरत जी महाराज प्रभु का स्मरण करने लगे।

अथदशमोऽध्यायः

जड़ भरत और राजा रहूगण की भेंट

सिन्धुसौवीरपते रहूगणस्य

सिन्धु सौवीर कच्छ कन्धार के एक राजा जिनका नाम था रहूगण। ये पालकी में बैठकर आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए गंगा सागर जा रहे हैं। कपिल भगवान् के आश्रम में। मार्ग में एक कहार की कमी हो गई, पालकी उठाने में। दरअसल एक कहार भाग गया। राजा रहूगण ने कहा कि जाओ कोई वन में है तो ले आओ। रहूगण महाराज के सेवक भरत जी महाराज को ले आए। पालकी लेकर सन्त भरत जी चल रहे हैं। सन्त महात्मा लोग कहते हैं। कि ऐसा सुना है सन्तों के मुख से जो पालकी में राजा रहूगण बैठा है, वह कौन है? वह हिरन का बच्चा है। जिसके प्रति भरत जी महाराज का मोह हुआ था। आज राजा बनकर इस पालकी में बैठा हैं। क्योंकि भरत जी से बिछुड़कर हिरन ने भरत जी महाराज का चिन्तन किया। शरीर त्यागते समय राजा का चिन्तन किया इसलिए मानव शरीर मिला। दोनों का मिलन हुआ आज राजा बना रहूगण, सन्त का चलना भी विचित्र होता हैं। प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। जब वैष्णव सन्त चलता है तो वह ढाई हाथ आगे तक देख लेता है कि मेरे पांव के नीचे कोई कीड़ा-मकोड़ा तो नहीं हैं। भरत जी महाराज को उछलकर चलना पड़ता कभी तेज तो कभी धीरे, बार-बार पालकी हिलने-डुलने लगी। अंदर बैठा राजा रहूगण बोलने लगे-

"हे वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति।"
(श्रीमद्भागवतम् 5.10.2)

हे वोढार साध्र्वात क्रमत? ये पालकी क्यों हिल रही है? ठीक प्रकार से पालकी को लेकर चलें। कहारों ने कहा महाराज! इसमें हमारा अपराध नहीं। जो ये नया आदमी आया है, आपने बुलाया है ये हमारे साथ चलने में समर्थ नहीं। एक का दोष सबको लग रहा हैं। राजा रहूगण ने मन में सोचा कि वास्तव में बात ठीक है यही संसर्ग दोष हैं। जैसा तुम संसर्ग करोगे वैसा ही दोष आएगा। यदि मद्यपान करने वालों के साथ उठना-बैठना शुरू कर दो आप मद्यपान न भी करो तो भी लोग कहेंगे ये भी शराबी है पीता होगा। जुआरी के साथ रहो भले ही जुआ आप न खेलें। आपको भी लोग जुआरी कहना शुरू कर देंगे। यही संसर्ग दोष है।

राजा रहूगण ने उसी समय पालकी से झांककर देखा। भरत जी महाराज को और भरत को देखकर कटाक्ष किया-हे बूढ़ार! बहुत दूर से तुम हमारी

पालकी को उठाकर चले आ रहे हो। शायद अब थक गए हो। तुम्हें कष्ट हो रहा है

"अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरुपरिश्रान्तो।"

(श्रीमद्भागवतम् 5.10.6)

परन्तु तुम्हें मालूम है मैं राजा हूँ, राजा की आज्ञा का जो उल्लंघन करता है उसे प्राण दण्ड मिलता हैं। ठीक प्रकार से मेरी पालकी को उठाकर चले, अबकी बार पुनः जब संत भरत राजा रहूगण की पालकी को लेकर चले तो शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि भरत जी ने क्या देखा कि लम्बी चींटियां की लाइन। देखकर जोर से छलांग लगाई भरत जी महाराज ने, कि मेरे पैर से दबकर ये चींटियां न मर जाएँ। राजा रहूगण का सिर पालकी से टकराया वे चीखने चिल्लाने लगे। हे वो ठार, हे कहार तू जीते जी मरने के समान है।

अरे उन्मत्त, अरे पागल मैं तेरी क्या दवा करूँ, फिर भरत जी महाराज को गाली देना शुरू कर दिया,

"प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिरिव"

(श्रीमद्भागवतम् 5.10.7)

भरत जी ने कहा कि ये तो अति हो गई।

'अरे उन्मत्त, अरे पागल मैं तेरी क्या दवा करूं'

देखो अति किसी बात की मत करना। अति वर्जित होती हैं। अधिक बोलना, अधिक खाना, अधिक सोना।

प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण।

संसार की वस्तुओं को इकट्ठा करने की कभी अति न करना। जो मिले उसी में सन्तुष्ट रहना। अति केवल एक बात की करना उससे कभी सन्तुष्ट नहीं होना। धन से नहीं, सम्मान से नहीं, प्रतिष्ठा से नहीं। यदि अति तुम्हारे जीवन में हो तो सब काम छोड़कर स्नान करो, हजार काम छोड़कर समय पर भोजन करो, लाख काम छोड़कर सत्कर्म करो, करोड़ों काम, अरबों खरबों काम छोड़कर प्रभु का नाम स्मरण करो। यानि प्रभु के नाम से कभी तृप्त न होना। आज हमने 11 माला जप कर ली तो बहुत हो गए तृप्त हो गए। 108 माला करने पर भी सोचना आज भजन नहीं हुआ? यानि प्रभुनाम से कभी तृप्त न होना।

तो रहूगण को देखकर भरत जी महाराज ने कहा कि—राजा तूने अति कर दी,अब इसे कुछ उपदेश देना चाहिए, नहीं तो कल ब्राह्मण समाज, सन्त समाज कहेगा कि

सन्त भरत के होते हुए भी राजा रहूगण का कल्याण नहीं हुआ। तो ऐसा उपदेश भरत जी महाराज बोले कि, उनकी वाणी से राजा का जीवन ही पलट गया। भरत जी ने कहा कि–

ब्राह्मण उवाच

त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः।
गन्तर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवादः।।

(श्रीमद्भागवतम् 5.10.9)

श्री भरत जी ने कहा कि राजा रहूगण आपने कहा कि मेरी पालकी लेकर चलें बिल्कुल ठीक कहा–यदि संसार में भार नाम की वस्तु है तो केवल उसका सम्बंध इस देह तक है आत्मा से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। राजा ये सुख-दुख, आदि, व्याधि, जरा-मृत्यु, स्थूलता-कृशता, ये तो देह अभिमानी को व्याप्त हैं। परन्तु मुझे अपनी देह का कोई अभिमान नहीं है।

परन्तु राजा रहूगण तूने कहा कि मैं पागल हूँ, उन्मत हूँ, पागल तो जरूर हूँ मगर मेरे जैसे पागल की दवा तेरे पास नहीं हैं। यदि तू मेरी चिकित्सा करेगा तो उसी प्रकार से, व्यक्ति जैसे किसी चीज को पीसले और दूसरा व्यक्ति उसी को अज्ञान से पीसने बैठ जाए, उसी प्रकार से मेरी चिकित्सा करनी होगी। तूने कहा कि, तू जीते जी मरे के समान हैं। यह भी बिल्कुल ठीक कहा, यह देह तो अनित्य है, परन्तु देह के अंदर जो देहि बैठा है, वह शाश्वत है वह कभी मरता नहीं अखंड है चैतन्य है, जब सन्त भरत की वाणी को सुना, रहूगण राजा ने, तो झट पालकी से उतरकर मन ही मन सोचने लगे कि ये कोई कहार नहीं हैं। बोढार नहीं हैं। सन्त प्रतीत होता हैं झट पालकी से उतरकर राजा रहूगण ने हाथ जोड़कर कहा कि–

कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजानां बिभर्षि सूत्रं कतमोऽवधूतः।

(श्रीमद्भागवतम् 5.10.16)

प्रभु आप कौन हैं? कहीं आप सन्त वाम देव तो नहीं या साक्षात् कपिल भगवान् दर्शन देने तो नहीं आ गए। आप कौन हैं प्रभु? राजा क्षत्रिय हैं न! देखिये कितना अभिमान है रहूगण के अंदर। एक सन्त के पास ज्ञान प्राप्ति के लिए जा रहे हैं कपिल भगवान् के पास। साक्षात, भगवत स्वरूप हैं कपिल। परन्तु राजा के मन में अभिमान है यदि मन में अभिमान रखके हम सन्त, वैष्णव, गुरु के पास जाएँगे तो कुछ भी नहीं उपलब्ध कर पाएंगे। देखिए राजा रहूगण ने क्या कहा कि–

नाहं विशङ्के सुरराजवज्रा-न्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात्।।

(श्रीमद्भागवतम् 5.10.17)

भगवन् आप ये मत समझना कि मैं आपसे डरकर पालकी से उतरा हूँ, मुझे डर शिव के त्रिशूल से भी नहीं लगता "न्त्रयस्त्रशूलान्न", यम राजा के दण्ड से मुझे डर नहीं लगता। "न यमस्यदण्डात्", इन्द्र के वज्र से भी मुझे डर नहीं लगता हैं। सन्त भरत जी ने कहा तो राजा आप फिर नीचे क्यों उतरे? तुम जब किसी से डरते नहीं तो क्या कहना चाहते हो? राजा रहूगण ने कहा कि केवल यदि मुझे भय लगता है, तो एक बात का "ब्रह्मकुला अवमानात्" कि मेरे इस शरीर से किसी ब्रह्माण का, किसी वैष्णव का, किसी गुरुजन का, किसी सन्त का अपमान न हो जाए। अनादर न हो जाए। तो आप कोई ब्राह्मण तो नहीं हैं। सन्त भरत ने कहा, राजा रहूगण मैं ब्राह्मण हूँ या नहीं, परन्तु तुम कहो क्या कहना चाहते हो। रहूगण राजा ने कहा कि महाराज आपने अभी-अभी कहा कि यदि संसार में कोई भार नाम की वस्तु है तो उसका सम्बध यह शरीर के साथ हैं। आत्मा से नहीं। आत्मा केवल सुख-दुख अनुभव नहीं करती। यह बात तो मेरे पल्ले नहीं पड़ी। यह बात तो आपने ऐसी कह दी कि जैसे मिथ्याघट से जल लाना असंभव हो जाता हैं। मैंने तो अपने आपको युद्ध में परिश्रम करते देखा हैं। भगवन एक दृष्टांत दूँ, भरत जी ने कहा-कहो राजा रहूगण क्या कहना चाहते हो? बोले भगवान् जैसे एकपात्र है बाटलोई है, और इस बाटलोई में जल है चावल हैं। उस बाटलोई को, पात्र को अग्नि में चढ़ाते हैं। अग्नि उस पात्र को गरम करके चावल को भी गला देती है, उसी प्रकार से भगवन् इस देह का सम्बन्ध है इन्द्रियों से। इन्द्रियों का सम्बन्ध है मन से। मन का सम्बन्ध है बुद्धि से। बुद्धि का सम्बन्ध है आत्मा से। यदि इस देह को कोई सुख या दुख है तो आत्मा भी इसका अनुभव करती होगी न। रहूगण तूने बहुत सुन्दर दृष्टांत दिया। भरत जी ने कहा परन्तु राजा रहूगण?

अथैकादशोऽध्यायः

राजा रहूगण को भरत जी का उपदेश

अकोविदः कोविदवादवादान् वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः।
न सूरयो हि व्यवहारमेनं तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति।।

(श्रीमद्भागवतम् 5.11.1)

राजा एक ओर तो तू पंड़ितों जैसी बात करता है परन्तु तू पूर्ण मूर्ख है राजा रहूगण "अकोविदः कोविदवादवादान्" रहूगण तूने दृष्टांत बहुत अच्छा दिया, व्यवहार

की दृष्टि से तेरा दृष्टांत बिल्कुल सही है, परन्तु मैं तेरी भाषा में तुझे समझा देता हूँ। देख रहूगण तूने कहा है कि पात्र है, पात्र में जल है, जल में चावल हैं। अग्नि पहले पात्र को गरम करती है फिर जल को, फिर चावल को गला देती हैं। राजा रहूगण यदि उस चावल की जगह हम पत्थर रखें तो क्या अग्नि पत्थर को गला सकती है? रहूगण ने कहा महाराज यह संभव नहीं। ऐसा कैसे हो सकता है?

तो उसी प्रकार से राजा रहूगण यह आत्मा भी अखण्ड, शाश्वत, चेतन, नित्य हैं। यह बात इस प्रकार से तेरे पल्ले नहीं पड़ेगी, अभी तेरे मन में यह संसार घुसा हुआ हैं। जब तक तू इस मन को विशुद्ध नहीं करेगा तब तक निज आत्मा स्वरूप का ज्ञान तुझे नहीं होगा। राजा रहूगण ने तुरंत चरण पकड़कर कहा आप कृपा करें, बताएं।

अथद्वादशोऽध्यायः

रहूगण का प्रश्न भरत जी का समाधान

अथत्रयोदशोऽध्यायः

भवाटवी का वर्णन और रहूगण का संशयनाश

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन भरत जी महाराज बड़ा सुन्दर आध्यात्मिक प्रवचन किया। जिसे भागवत में कहते हैं। भवाटवी का वर्णन। इस अध्याय में संसार चक्र के बारे में बताया है। रहूगण को सन्त भरत ने कहा कि मालूम है संसार कहाँ तक है? बोले महाराज बताइए कहाँ तक–बोले जहाँ तक ये तुम्हारा मन जाता है वहीं तक संसार है उसके आगे नहीं। सबसे पहले मन स्थिर करो। राजा रहूगण ने कहा, कि महाराज कृपा करें, बताएं ये मन कैसे स्थिर होता है? बड़ा सुन्दर उपाय बताया, सन्त भरत ने कि राजन् तुम सन्त की महापुरुषों की, सन्तों की चरणधूलि अपने मस्तक पर लगाओ। तब तुम्हारा ये मन शुद्ध होगा। शुद्ध और स्थिर मन को ही परमात्मा का अपरोक्ष दर्शन होता हैं। भगवान् की कृपा सन्तों की कृपा के बिना संभव नहीं– "बिना महत्पादरजोऽभिषेकम्" सन्तों के चरण की धूलि बिना भगवान् की कृपा नहीं। रहूगण केवल तपस्या से, यज्ञ से, अग्नि या जल की उपासना से भगवत कृपा नहीं मिलती–

रहूगणैतत्तपसा न याति न चज्ज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा।
न च्छन्दसा नैव जलग्निसूर्यै–र्विना महात्पादरजोऽभिषेकम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 5.12.12)

राजा रहूगण तू तो एक सिन्धुसौवीर देश का राजा हैं। सुन "अहं पुरा भरतो नाम राजा" मैं सम्पूर्ण भारत वर्ष का चक्रवर्ती राजा रहा, परन्तु एक मृगस्यशावक के संग के कारण मेरी आराधना छूट गई। मैंने मृग शरीर को प्राप्त किया, परन्तु मेरी स्मृति मृग शरीर में भी परमात्मा का चिन्तन करके पुनः इस शरीर को ग्रहण किया। मेरे पर भगवान् की असीम कृपा हैं। रहूगण तू कौन है? अपने को जानता है? भरत महाराज अपनी और रहूगण की पूर्व स्थिति को अपनी अन्तर्दृष्टि से जान लिया। साधन सिद्ध साधक यह जीवन और पुनर्जीवन के कर्मों को जान सकते हैं। सन्त भरत जी रहूगण को सन्तों की चरणधूलि को सिर पर रखने का उपदेश दिया। एक सुन्दर उदाहरण के द्वारा हम इस तत्व को समझ सकते हैं। जैसे एक बार राजा जनक जी ने एक बड़ी सभा का आयोजन किया। बड़े-बड़े लोगों को आमंत्रित किया।

अष्टावक एक सन्त-जिसने गीता लिखी है बड़ा सुन्दर भव्य हैं अष्टावक्र गीता। इनके पिता भी उस सभा में गए थे। जब ये संत घर आए और माँ से पूछा कि पिताजी कहाँ हैं, माता ने कहा कि तुम्हारे पिताजी राजा जनक की सभा में गए हैं। माँ की आज्ञा से उन विद्वानों की सभा में विद्वानों की वाणी सुनने की अभिलाषा से चल दिए। जिनका आठों जगह से अंगटेढ़ा था इसलिए इनका नाम अष्टावक्र पड़ा।

जब संत अष्टावक्र राजा जनक की सभा में पहुँचे तो सभी सन्त, सभासद हँसने लगे। तो सन्त अष्टावक्र उनसे दुगुना जोर से हँसे। सभी विद्वानों ने पूछा महाराज आप क्यों हंसे? तो सन्त अष्टावक्र ने कहा आप बताइए पहले आप क्यों हँसे? तो मैं भी बता दूँगा मैं क्यों हँसा? सभी विद्वानों ने कहा हमें आपके इस कुरुप पर हँसी आ गई कि आपके आठ जगह से अँग टेढ़ा हैं। परन्तु सन्त अष्टावक्र ने कहा कि मुझे इसलिए हँसी आ गई क्योंकि मुझे लगता है कि राजा जनक ने विद्वानों की सभा नहीं बुलाई, चर्मकारों की सभा बुला ली। चर्म की पहचान एक चर्मकार को ही हो सकती है आपने मेरे ज्ञान की ओर नहीं चर्म की ओर देखा। जब राजा जनक ने सन्त अष्टावक्र की यह वाणी सुनी तो गद्दी से उठकर राजा सन्त के चरणों में गिर पड़े।

मुझे विश्वास हो गया कि आप मुझे परमात्मा के दर्शन करा देंगे। अष्टावक्र ने कहा राजा मैं तुझे परमात्मा से तो मिलाऊँगा, पर तू मुझे क्या देगा? बोले माँगिए प्रभु आपको क्या चाहिए? जो चाहोगे मिलेगा।

"सर्वम्निवेदिन्तम्"

अपना पुत्र, पत्नी, धन-सम्पत्ति, परिवार, महल सब कुछ आपको दे रहा हूँ। आप मुझे परमात्मा का दर्शन कराइए। सन्त ने कहा कि राजन् एक बात पूछूँ-बोले

महाराज कहिए–ये पुत्र, पत्नी, धन सम्पत्ति, परिवार, महल, मकान ये सब लेकर तू पैदा हुआ था। राजा जनक ने कहा नहीं, महाराज ये सब लेकर तो पैदा नहीं हुआ। जिस वस्तु को लेकर तू पैदा हुआ वह हमें दे दे। मैं अभी परमात्मा का दर्शन करा देता हूँ। महाराज आज्ञा करिए आपको क्या चाहिए, सन्त अष्टावक्र ने कहा देना है तो तू मुझे अपना मन दे दे। मैं अभी परमात्मा का दर्शन करा देता हूँ। तो सन्त की आज्ञा से राजा जनक ने अपने मन को स्थिर किया, साक्षात, परमात्मा के दर्शन हुए। स्थिर और विशुद्ध मन को ही परमात्मा के दर्शन होते हैं। इस प्रकार से भरत जी महाराज ने भवाटवी का वर्णन किया रहूगण महाराज से। राजा रहूगण ने सन्त भरत की पूजा की और सन्त भरत जी महाराज पधारे।

बोलो श्रीवृन्दावन बिहारी लाल की जय।

अथचर्तुदशोऽध्यायः

भवाटवी का स्पष्टीकरण

अथ पंचदशोऽध्यायः

भरत जी के वंश का वर्णन

अथ षोडशोऽध्यायः

भुवन कोष का वर्णन

राजा परीक्षित ने प्रश्न किया महाराज थोड़ा–सा आप भूगोल खगोल का भी प्रकाश डालें देखिए, श्रीमद्भागवत में भूगोल खगोल का भी वर्णन है, जिसका संक्षिप्त वर्णन करते हुए कथा को आगे बढा रहे हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् जहाँ हम बैठे हैं। इस जगह का नाम है जम्बूद्वीप। यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन में फैला हैं। जिसके ठीक चारों ओर खारा समुद्र हैं। बीच में सुमेरू नाम का पर्वत है जिसके ऊपर सप्त पुरियां हैं। ब्रह्मा की कौम्भी निमलोचनी, यमराज की संयमनी, ये सब पुरियां हैं।

इसी प्रकार से सबसे ऊपर के लोक को कहते हैं– कौम्भीपुर। कौम्भीपुरी में ही भगवान् राजा बलि के दरबार से तीन पग भूमि माँगने गए। तो एक पग में ही जब ऊपर के लोक नापे तो ब्रह्मपुरी में जो भगवान् का चरण गया तो ब्रह्माजी ने विरजा नदी से भगवान् का चरण प्रक्षालन किया। वही पतित पावन गंगा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बोलो गंगा माई की जय।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

गंगाजी का विवरण और भगवान् शंकर कृत संकर्षण देव की स्तुति

अथ अष्टदशोऽध्यायः

भिन्न भिन्न वर्षो का वर्णन

माता गंगा भगवान् के चरण स्पर्श करके पतित पावनी बनी। सगर राजा के वंशों का उद्धार करने के लिए राजा भगीरथ की तपस्या का फल प्राप्त हुआ पतित पावनी गंगा। कलि में समस्त पापों का विध्वंस करने वाली गंगा के स्पर्श से, गंगा के सुमिरन से, जीव पवित्र हो जाते हैं। समस्त पापों का नाश हो जाता है, आज भी गंगोत्री से गंगा सागर तक गंगा की अखंड महिमा है, यद्यपि गंगा माँ कहीं विस्तार से है तो कहीं लघु प्रवाह हैं। फिर भी गंगा तो गंगा ही हैं।

"गंगोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते"

मनुष्य मृत्यु के समय एक बूँद गंगाजल मुख में प्राप्त कर ले तो वैकुण्ठ प्राप्त हो जाए। परन्तु ऐसी पवित्र गंगा माता को भारतवर्ष में लाने के लिए कठिन तपस्या करनी पड़ी। अनेक कठिनाई के बाद भगीरथ शंकर जी की कृपा से, सहायता से लेकर आये। गंगा माता को समूचे भारतवर्ष को पवित्र करती हुई गंगा सागर के अभि मुख में चली गई और अपने वंशों का उद्धार किया। वहीं भगीरथ के आराध्यदेव शंकर भगवान् है और शंकर भगवान् के आराध्य देव संकर्षण भगवान् हैं। इसी प्रकार से सात लोक ऊपर है और सात लोक नीचे।

भू, भुवः, स्वह, महः जनः, तपः, और सत्य ये हैं। सात लोक ऊपर के।

सात लोक नीचे हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् दो लाख योजन ऊपर सूर्य और चन्द्रमा हैं। ये सब ग्रह बैठे हैं। (स्थिर) सूर्य भगवान् एक राशि पर एक महीना रहते हैं। जिनके द्वारा वर्षों का, कल्प का विभाग होता हैं। इसी प्रकार से चन्द्रमा का विभाग होता हैं। इसी प्रकार से चन्द्रमा भी एक राशि पर ढाई दिन बढ़ता हैं। सूर्य और चन्द्रमा से ऊपर मंगल हैं। बुध है, शुक्र हैं। शनि हैं। ये सब ग्रह बैठे हैं। भइया ये शनि ग्रह सबको अशान्त करता हैं। शनि किसी से डरता नहीं। केवल एक देवता पवनसुत हनुमान जिनका नाम हैं। बोलो बजरंग बलि महाराज की जय। शनि केवल हनुमान जी से डरता हैं। पुराणों में सुन्दर कथा आती है।

एक बार शनि देव हनुमान के पास आया। हनुमान जी ने पूछा तू कौन है? शनि ने कहा प्रभु आप मुझे नहीं जानते हैं। मेरा नाम है शनि। हनुमान जी ने कहा अच्छा भैया तो तू शनि है, भैया आजकल तो तेरा बहुत बढ़ोत्तरी हो रही हैं। आजकल तो लोग अपने पुत्र का नाम भी शनि रखने लगे। नाम तो बहुत अच्छा हैं। बोलो शनि, भैया आप कैसे पधारे, कृपा करें। शनि ने कहा कि हे पवनसुत आपके ऊपर मेरी साढ़े सात की दशा आ रही है साढ़े सात बरस के लिए मैं आपके पास आ रहा हूँ। हनुमान जी ने कहा, भैया ठीक है, अच्छी बात है भैया। अब तक तो मैं अकेले ही राम नाम जपता था। अब तू भी मेरे साथ राम नाम की माला फेरना। शनि ने कहा, हे पवनसुत! मैं राम नाम की माला फेरने नहीं आया, आप जो रामनाम का जप करते हैं। माला फेरते हैं। उस राम का नाम भुलाने आया हूँ।

हनुमान ने कहा शनि तेरे, अंदर इतनी शक्ति नहीं जो तू मेरे ठाकुर का नाम भुला दे। शनि ने कहा–देखिए पवनसुत मेरा कमाल। इतना कहकर शनि चला गया। हनुमान जी महाराज जब प्रभु नाम के ध्यान में बैठे, प्रभु श्रीराम का स्मरण करने के लिए श्री राम जय राम, श्री राम जय राम जय जय राम।

कीर्तन

हनुमान प्रभु राम का ध्यान कर रहे हैं। आँखें बँद करते हुए। शनि की दशा प्रारंभ हो गई, हनुमान जी के ऊपर। देखिए कहाँ से प्रभाव डालती है चेहरे के ऊपर सबसे पहले सिर पर ही आकर बैठता हैं। 100 दिन चेहरे पर रहता है शनि। तभी व्यक्ति के ऊपर जब शनि का प्रभाव पड़ता है तो उसे क्रोध आता हैं। सौ दिन तक उसके चेहरे पर प्रभाव बना रहता हैं। जब हनुमान जी के चेहरे पर शनि आकर बैठा तो हनुमान जी का मन श्रीराम के चरणों में नहीं लगता, तब आँखें खोलकर हनुमान जी ने सोचा कि आज मेरा मन क्यों नहीं लग रहा कीर्तन में–क्या बात है? हनुमान जी को याद आया कि सिर पर तो बैठा है शनि, मन कैसे लगे? हनुमान कहने लगे कि ये शनि हमें भगवान् का भजन करने नहीं देगा। राम का जप नहीं करने देगा तो हमारे पास और कोई काम भी नहीं हैं। हम क्या काम करें। हनुमान जी को याद आ गया कि सोचा शनि से ही दो-दो हाथ कर लें। हनुमान जी महाराज ने तुरंत अपना आसन छोड़कर गदा उठा लिया। गदा उठाकर हनुमान जी अपने सिर पर मारना शुरू कर दिया। सिर पर बैठा है शनि। शनि चिल्लाया – मरा मरा। हनुमान जी ने कहा मरा तो नीचे उतर। तो शनि उतरकर कंधे पर आ गए। कंधे पर गदा मारी तो पेट पर आ गए। पेट पर गदा मारी तो जंघा पर आ गए। जंघा पर गदा मारी तो पिंडली पर आ गए। पिंडली पर

गदा मारी तो पैरों पर आ गए। पैरों पर गदा मारी तो शनि हनुमान जी को छोड़कर दूर जाकर खड़े हो गए। बोलिए हनुमान जी महाराज की जय।

हनुमान जी ने कहा भैया अभी तो एक मिनट भी नहीं हुआ कहाँ भागा जा रहा हैं। शनि ने कहा, महाराज मैं तो आपके पास साढ़े सात बरस के लिए आ रहा था, परन्तु आपने तो एक मिनट में ही मार–मारके ये दशा बना दी और थोड़ा रुका तो मेरी गोविन्दाय नमो नमः हो जाऊँगा। मेरी शक्ल भी देखने नहीं मिलेगी। सभी के पास जाऊँगा, पर आपके पास कभी नहीं आऊँगा।

भैया जिसके जीवन में शनि का प्रभाव हो, उसे शास्त्रों में तो अनेक उपाय लिखा है, कि हमें छायापात्र दान करना, नीलम धारण करना आदि अनेक उपाय हैं, शनि देव को शान्त करने के, परन्तु जिसको शनि तंग करता हो बार–बार तंग करता हो, वे शनिवार, मंगलवार हनुमानजी की उपासना करें। शाम के समय हनुमान जी की मूर्ति के सामने देसी घी का दीया जलाएँ। बेसन के लड्डू का भोग लगाएँ। पाँच पाठ–शनिवार, पाँच पाठ मंगलवार को हनुमान चलीसा यदि आप पाठ करें तो निश्चित ही शनि का प्रभाव कम हो जाएगा। शनि आपको तंग नहीं करेगा। शनि को शांत करने के लिए हनुमान जी की पूजा ही उपाय है, अन्य कुछ नहीं।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन शनि से ऊपर हैं– सप्तऋषि और सप्तऋषियों से ऊपर हैं। ध्रुव जी महाराज, ध्रुव लोक। जितने भी तारे हैं, नक्षत्र हैं, सभी ध्रुव जी महाराज की परिक्रमा करते हैं। इसी प्रकार से सूर्य–चन्द्रमा से 10,000 योजन नीचे एक राहु नाम का ग्रह है, जब यह सूर्य भगवान् के सम्मुख आ जाते हैं। तो सूर्य ग्रहण और जब चन्द्रमा के सम्मुख आ जाते हैं। तो चन्द्र ग्रहण पड़ता है। इसी प्रकार से सात लोक नीचे हैं। अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल, पाताल। जिनमें बड़े–बड़े निपात जाति के दैत्य लोक निवास करते हैं।

अथ एकोनविंश

किम्पुरुष और भारत वर्ष का वर्णन

अथ विंशोऽध्यायः

अन्य छः द्विपों तथा लोकालोक पर्वत का वर्णन

अथ एकविंशोऽध्यायः

सूर्य के रथ और उसकी गीता का वर्णन

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

भिन्न भिन्न ग्रहों की स्थिति

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

शिशुकुमार चक्र का वर्णन

इन लोकों में तक्षक, वासुकि आदि सर्पों का निवास हैं। सबसे नीचे शेष शैय्या पर भगवान् नारायण सो रहे हैं, जिनकी नाभि से कमल निकला हैं। कमल के फूल के ऊपर सरसों के दाने के बराबर कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड रखे हैं। वही भगवान् नारायण जीव को क्रमानुसार गति प्रदान करते हैं। जब जीव, संसार में अच्छे कर्म करते हैं तो, उसे स्वर्गादि लोक मिलते हैं, और जब पापकर्म करता है उसे नर्क मिलता है।

राजा परीक्षित ने पूछा महाराज बताएँ नरक कहाँ है?

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

राहु आदि की स्थिति , अतलादि नीचे के लोकों का वर्णन

अथ पंचविंशोऽध्यायः

श्री संकर्षण का विवरण और स्तुति

अथ षडविंशोऽध्यायः

नरकों की विभिन्न गतियों का वर्णन

राजा परीक्षित ने भागवत में प्रश्न किया है। शुकदेव जी महाराज ने सुन्दर उत्तर दिया कि महाराज नरक तो हजारों हैं, एक-दो नहीं, परन्तु श्रीमद्भागवत में 28 नरकों का विशेष वर्णन किया गया है।

तामिस्र नरक, अंध तामिस्र, महारौरव, रौरव, कुंभिपाक, असिपत्रवन, शुचिमुख भोजन, सर्पदंशन, वैतरणी, पूर्णा आदि-आदि। राजन् इन नरकों में जीव जैसा पाप कर्म करता है वैसी इन नरकों में यातना भोगता है। जब राजा परीक्षित ने नरकों की यातना

सुनी तो भयभीत हो गए। बोले ये जीव तो हर क्षण पाप करता है यदि हमारे इस देह से पाप हो जाए तो क्या शास्त्रों में कोई प्रायश्चित बताया है? यदि हैं तो बताएँ, कृपा करें। शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन्- हमें व्रत करना चाहिए, जैसे चन्द्रायन, कृच्छायण, एकादशी आदि करने से हमारे पाप दूर हा जाते हैं।

इति पञ्चम स्कन्ध समाप्त

ॐ श्री परमात्मने नमः


स्कंध-०६

षष्ठ स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

अजामिलोपाख्यान का प्रारंभ

राजा परीक्षित ने कहा महाराज अब तो बहुत अच्छी बात आपने कह दी–

प्रायश्चित्तमथोऽपार्थं मन्ये कुञ्जरशौचवत्।

(श्रीमद्भागवतम् 6.1.10)

ये तो आपने हाथी की पवित्रता वाली बात कह दी। अब तो लोग पाप करेंगे और पाप करके कहेंगे कि व्रत कर लो। जैसे हाथी तालाब में स्नान करके फिर बाहर आकर धूल छिड़क लेते हैं, क्योंकि भागवत में लिखा हैं। फिर दोबारा पाप करना शुरू करेंगे। परन्तु शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन् ये बात नहीं। यदि जीवन में व्यक्ति से कोई पाप हुआ है और प्रायश्चित कर ले, व्रत कर ले, अनुष्ठान कर ले तो इससे पाप तो दूर हो जाता है, परन्तु पाप की आकृति बनी रहती हैं। पाप की वासना नहीं मिटती। जैसे देखो एक रस्सी होती है रस्सी को जलाओ तो वह जल जाएगी परन्तु जलने के बाद भी रस्सी की आकृति बनी रहेगी।

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः।
नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः।।

(श्रीमद्भागवतम् 6.1.21)

यह अजामिल– "दास्याः संसर्गदूषितः" जिसकी सुन्दर पत्नी थी। माता–पिता थे, पूरा परिवार था अजामिल का। एक बार अजामिल पिता की आज्ञा से वन में समिधा लेने गया, जब समिधा लेकर अजामिल लौट रहे थे, अजामिल ने देखा कि मार्ग में गाणिका, एक शूद्र के साथ शराब पीकर व्याभिचार कर रही है। जब देखा अजामिल ने, अजामिल ने पाप किया नहीं, केवल आँखों से पाप देखा। तो आँखों के द्वारा पाप मन में प्रवेश करके हृदय में घर कर गया। अर्थात पाप देखना भी गलत है। घर आकर अजामिल गणिका का चिन्तन करने लगे। एक दिन अजामिल उस गणिका का चिन्तन करने लगे और उसी दिन अजामिल उस गणिका के पास पहुँच गए और उन्हें घर ले आए। गणिका ने पूछा–अजामिल की पत्नी को देखकर, कि यह कौन है? अजामिल ने कहा मेरी पत्नी है। गणिका ने कहा यह रहेगी तो मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मुझे रखो या इन्हें। अजामिल गणिका की गोरी चमड़ी में लुब्ध हो गए, पत्नी को त्याग दिया। उस

गणिका के साथ अजामिल रहने लगे, जितना भी धन था। माता-पिता का सब उस गणिका को दे दिया। जब गाँव के लोगों ने सुना कि अजामिल एक ब्राह्मण है और इसने ब्रह्मत्व को दूषित कर दिया– "दास्याः संसर्ग दूषिताः" तो अजामिल को गाँव से बाहर निकाल दिया। गाँव के बाहर एक तालाब है किनारे पर एक वृक्ष हैं। अजामिल कुटिया बनाकर वहाँ रहने लगा। जात से विच्छेद कर दिया, बिरादरी से निकाल दिया, गाँव से बाहर निकाल दिया ऐसे नियम था। गाँव से बाहर उस गणिका के साथ रहते हुए एक-एक करके 9 सन्तान हुई और अब 10वां होने वाला हैं। इसी समय पर अजामिल के गाँव से कुछ संत गाते हुए आ रहे हैं।

संकीर्तन

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारि। हे नाथ नारायण वासुदेवा।।

गाँव के लोग एक चबूतरे के पास खड़े थे, सन्तों ने गाँव वालों से पूछा भैया अब तो रात्रि हो गई, अब हम इस गाँव में रुकना चाहते हैं। किसी भक्त का घर बता दो। देखिए संसार में सब प्रकार के लोग होते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं। जो सन्तों के स्वरूप को नहीं पहचानकर उनसे भी मजाक करते हैं, तो कुछ दुष्ट लोग मिल गए। अजामिल के गाँव में, कहा महाराज हमारे इस गाँव में तो एक ही भक्त हैं। उसका नाम अजामिल हैं। भैया वे कहाँ रहते हैं? लोगों ने कहा वे परमभक्त हैं, गाँव के बाहर तालाब के किनारे में झोंपड़ी बनाकर रहते हैं। एक चरित्रहीन दुष्ट का, पतित ब्राह्मण के घर का रास्ता भोले-भाले सन्तों को बता दिया। ये सन्त अजामिल के घर पहुँच गए। द्वार पर जाकर आवाज लगाई भक्त अजामिल, आज हम तेरे घर निवास करेंगे। अजामिल ने सुना और मन ही मन कहने लगा मैं तो भक्त नहीं हूँ, आज पहली बार मुझे किसी ने भक्त कहा है। अजामिल ने तुरंत द्वार खोल दिया। सन्त मंडली को प्रणाम किया। आज मेरा पुण्य जाग्रत हुआ, सन्त द्वार पर आए, वैष्णव द्वार पर आए।

"जा दिन ते साधु दर्शन होए ता दिन ते राम कृपा बरसाए"

अजामिल ने सन्तों के रहने की व्यवस्था की, भोजन सामग्री दी। अब रात्रि में सन्तों ने अजामिल के घर भगवान् नाम संकीर्तन किया। प्रेम से सन्त संकीर्तन कर रहे हैं, अजामिल भी बैठ गए। सन्त प्रेम से गा रहे हैं।

गीतम्

रहे मेरे मुख में सदा तेरा नाम।
ओ राधा के श्याम ओ मीरा के श्याम।

कोई दुनिया की ताकत जुदा न करे।
मिले जो मुझे राधा राधा कहे।
मुझे तो न मरने से न जीने से काम।
ओ राधा के श्याम ओ..........................।
नजरों ने तेरी दिलासा दिया।
मुझे अपना तुमने बना ही लिया।
कहैं। सभी तुमको यशोदा के लाल।
ओ राधा के श्याम................।
चरणों में अपने बैठा लो प्रभु।
अपने में मुझे मिला लो प्रभु।
रटूं तेरा नाम सबुह और श्याम।
रहे मेरे मुख में सदा तेरा नाम।
ओ राधा के.....................।

रात्रि भर कीर्तन होता रहा अजामिल के घर–आंगन में। आज अजामिल की आँखों से आँसू झरझर टपक रहे हैं। आँसुओं के द्वारा पाप शरीर से निकल रहा हैं। भगवान् के नाम कीर्तन में व्यक्ति बैठकर अश्रु जब निकालता है, जब प्रभु के लिए रोता हैं। तब देह से पाप बाहर निकल जाता हैं। सारी रात अजामिल रोता रहा कब अमृत वेला हुई पता न चला। सन्तों ने कीर्तन बंद किया–कहा कि अजामिल बड़ा मजा आया, हम अब प्रस्थान करें।

अजामिल ने कहा महाराज आप जा रहे हैं, परन्तु मेरा अपराध क्षमा करें। अजामिल, तुमने तो हमारा कोई अपराध नहीं किया। अजामिल ने कहा, नहीं! महाराज हमने बहुत बड़ा अपराध किया। मैं जाति से ब्राह्मण हूँ, लेकिन आपने एक नीच ब्राह्मण के घर भोजन किया। मैं शराबी, जुआरी, नीच ब्राह्मण हूँ। अनेक पाप मैंने किए हैं। आपने मुझे भक्त समझा था।

यदि जीवन में व्यक्ति से कोई पाप या गलती हो जाए तो अपने गुरुजन के सामने उगल देना चाहिए, जिससे पाप क्षमा हो जाएँ। अजामिल ने पाप उगल दिया। सन्तों के सामने। सन्त ने कहा अजामिल हम तुम्हें अवश्य दंड देंगे। तूने पहले क्यों नहीं बताया। हम तेरे घर भोजन नहीं करते। अजामिल ने रोते हुए कहा आपका दंड मुझे स्वीकार हैं। सन्त ने कहा अच्छा अजामिल एक बात बताओ। तुम्हारी कितनी सन्तान हैं? अजामिल ने कहा महाराज इस गणिका के गर्भ से मुझे 9 सन्तान मिली दसवीं

की आशा है क्योंकि वह गर्भवती है।

सन्त ने कहा अजामिल बताओ बच्चों का क्या नाम रखा हैं। जैसे लोग अपने बच्चों का नाम रखते हैं। टिंकू, पिंकू, चिंकू, मिंकू ऐसे ही अजामिल ने नाम गिना दिया। विदेशों में भी लोग अपने कुत्तों के नाम ऐसे रखते हैं। हम सब भारतीय हैं। विदेशियों का जरूर अनुकरण करते हैं। देखो अजामिल, अबतक तो तुमने अपनी समझ से जो रखा है वह ठीक है, परन्तु देखो अजामिल अब जो सन्तान होगी वह पुत्र होगा यह हमारा आशीर्वाद हैं। उस बालक का नाम हमारी आज्ञा से नारायण रख देना। व्यास, हमने तुझे दंड दे दिया।

तस्य प्रवयसः पुत्र दश तेषां तु योऽवमः।
बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 6.1.24)

संत चले गए किन्तु अजामिल के लिए मोक्ष का द्वार खोल गए। यदि कोई लम्बी–चौड़ी पूजा पाठ की विधि बता देता तो अजामिल कभी न कर पाता, किंतु दयालु संतों ने कितना सहज, सरल उपाय बता दिया, भगवत प्राप्ति का, कि तू अपने पुत्र का नाम नारायण रख देना। जब दसवां पुत्र हुआ तो अजामिल ने सन्तों की आज्ञा से नाम रखा–नारायण। अजामिल ने सन्तों की आज्ञा का पालन किया। नारायण नाम धारी पुत्र बड़े होने लगे। अजामिल का इस पुत्र के प्रति अत्यधिक स्नेह उमड़ने लगा।

इतना आसक्त था अजामिल अपने पुत्र नारायण में कि स्वयं भोजन न करता, पहले पुत्र नारायण को पुकारता कि नारायण दूध पीलो, नारायण वस्त्र परिवर्तन करो, देखो तुम्हारे मित्र बुला रहे हैं। खेलने जाओ। नारायण अब तो सांझ हो गई लौट आओ। रात्रि हो गई सो जाओ। अब प्रातः हो गया नारायण उठो। सुबह से शाम तक नारायण, नारायण, नारायण। न जाने कितनी बार ईश्वर को याद किया करता था।

भुञ्जानः प्रपिबन्खादन्बालकं स्नेहयन्त्रितः।
भोजयन्पाययन्मूढो न वेदागतमन्तकम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 6.1.26)

जब 80 बरस के अजामिल हो गए, कभी मंदिर में नहीं गए, अपने पुत्र नारायण ने तो बहुत बार कहा भगवान् की पूजा करने के लिए, पर नहीं बैठा पूजा के लिए। अंत में अजामिल को 3 यमदूत पकड़ने आए।

भैया प्रत्येक व्यक्ति के लिए आते हैं। दो यमदूत। अजामिल भयंकर पापी के लिए 3 यमदूत आए। 'किंभूतिकीमाकार' बड़ी अजीब देखने में, बड़े–बड़े दांत वाले, देखते

ही अजामिल डर गए। अजामिल को जो निरंतर अभ्यास था जीवन में उस अभ्यास के कारण अपने पुत्र नारायण जो पास में खेल रहा था उसे आवाज लगाई भैया नारायण मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।

अन्त समय कहा नारायण तो उसी समय भगवान् के चार पार्षद प्रकट हो गए। बोलिए भक्त वत्सल भगवान् की जय।

दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम्।
प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः।।

(श्रीमद्‌भागवतम् 6.1.29)

भगवान् के पार्षदों ने कहा यमदूतों तुमने इसे क्यों पकड़ रखा है–बोले महाराज ये घोर पापी है इसे हम नरक में डाल देंगे। पापी है? अरे तुम तो धर्मराज यमराज के दूत हो, अच्छा बताओ धर्म का लक्षण क्या है?

यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देशकारिणः।
ब्रूत धर्मस्य नस्तत्त्वं यच्चधर्मस्य लक्षणम्।।

(श्रीमद्‌भागवतम् 6.1.38)

यदि तुम धर्मराज की आज्ञा से इसे पकड़ने आए हो तो बताओ धर्म किसे कहते हैं? बोले महाराज हम तो बस इतना ही धर्म जानते हैं। जो वेदों में लिखा है वह धर्म है जो वेदशास्त्र के बाहर है, अधर्म हैं। इसने कभी वेद के मार्ग का अनुसरण नहीं किया, जुआ खेलता है, शराब पीता है, दुष्टों का संग करता है अनेक पापकर्म करता है यह नरक में जाएगा।

विष्णु के दूत ने कहा, भैया इसने मरते समय भगवान् नारायण का नाम लिया हैं। पापी कैसे हो सकता है? बोले, महाराज आप नहीं जानते इसने भगवान् का नाम नहीं हमसे डरकर अपने पुत्र को पुकारा था। भगवान् के पार्षद ने कहा भैया इनके पुत्र का नाम भले ही नारायण हो आदि में तो प्रभु का ही नाम है, साधारण व्यक्ति को, नाम एक बालक का नाम नारायण नहीं हो सकता। नार कहते हैं, ज्ञान को जो ज्ञान बोलती है।

"सत्तं अनतं ज्ञानम्" नार कहते हैं। जल को, जिनका निवास जल में ही है वह नारायण श्रीकृष्ण ही हैं। तो ऐसे उन भगवान् नारायण का नाम ही नारायण हैं। इस बालक का नाम नहीं हो सकता, बालक को यह नाम अभी मिला, भगवान् का वह नाम नारायण तो आदिकाल से।

अथद्वितीयोऽध्यायः

विष्णु दूतों द्वारा भागवत धर्म निरुपन और अजामिल का परम धाम गमन

सांङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेवं वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः।।
(श्रीमद्भागवतम् 6.2.14)

अरे यमदूतों, भगवान् का नाम चाहे कैसे भी ले लो, संकेत से लो, परिहास करके, श्लोक के द्वारा, श्रद्धायुक्त, कैसे भी लो, वह भगवान् का नाम हैं। अपने पुत्र का, मकान का, दुकान का नाम प्रभु के नाम पर रख दो, भगवान् के नाम की महिमा कितनी अद्भुत है श्रीमद्भागवत में यह बताई जा रही है, परिहास या मजाक भी हो। परिहास में भी हमारे मुख से भगवान् का नाम निकल जाए, उठते-बैठते, किसी भी अवस्था में भगवान् का नाम निकल जाए तो

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
सङ्कीर्तिमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः।।
(श्रीमद्भागवतम् 6.2.18)

जैसे अग्नि होती है, अग्नि को चाहे कोई, बालक, बूढ़ा, जवान, स्त्री आदमी कोई भी छुए अग्नि का काम है जलाना, तो वह जला ही देगी।

वह बालक या वृद्ध को नहीं जलाए ऐसा नहीं हैं। इसी प्रकार से परमात्मा का नाम ज्ञान से, अज्ञान से कैसे भी लिया जाए हमारे पापों को भस्म कर देता हैं। परन्तु ये बात यमदूतों के पल्ले नहीं पड़ रही। कभी भगवान् के नाम की महिमा प्रकट नहीं हुई थी।

आज जबरदस्ती अजामिल को यमदूत ले जाने लगे तो भगवान् के पार्षदों ने यमदूतों को इतनी मार लगाई कि अजामिल को छुड़ा लिया।

इधर अजामिल के जब प्राण वापिस लौट आया भगवान् के पार्षदों से वार्तालाप करने की इच्छा हुई, किंतु वे अर्न्तधान हो गए। बोलो श्रीवृन्दावन धाम की जय।

अथतृतीयोऽध्यायः

यम और यमदूतों का संवाद

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन इस प्रकार से यमदूत अपने महाराज यमराज के पास गए और अजामिल ने 80 बरस की अवस्था में गृहस्थाश्रम छोड़कर

हरिद्वार में सप्त सरोवर में पहुँच गए। जाकर एकनिष्ठ भाव से भगवान् का स्मरण करने लगे। अन्त में भगवद् धाम को अजामिल ने प्राप्त किया। शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् जब यमदूत यमराज के पास गए और पूछा कि महाराज संसार में शासन करने वाले कितने लोग हैं? यमराज ने कहा भैया क्या बात हो गई, बोलो महाराज आज हम एक घोर पापी अजामिल को पकड़ने गए थे और वहाँ 4 पार्षद आ गए। चतुर्भुज जिनका स्वरूप था और उन्होंने हमें इतना मारा, इतना मारा कि उस घोर पापी अजामिल को छुड़ा लिया, अब तक हम समझते थे कि जीव जैसे कर्म करते हैं उसके कर्म के हिसाब से आप सजा देते हैं।

परन्तु आज हमें मालूम पड़ा है कि आपसे भी बड़ी कोई शक्ति हैं। यमराज समझ गया कि आज यमदूतों ने भगवान् के पार्षदों का दर्शन किया हैं। यमराज ने अपने यमदूतों से कहा कि देखो–आज मैं तुम्हें ये बात बता रहा हूँ कि वैष्णव धर्म क्या है? कैसे–कैसे जीव मेरे लोक में आने के अधिकारी हैं?

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्।।

(श्रीमद्भागवतम् 6.3.29)

यमराज कहते हैं कि, जिसकी वाणी नें एक बार कृष्ण नाम न लिया हो, जिसने एक बार भी भगवान् के चरण कमलों का चिन्तन न किया हो, जिसने एक बार भी "कृष्णायनो नमति" यच्छिर एकदापि, भगवान् कृष्ण को प्रणाम न किया हो। यमराज कहते हैं। कि ऐसे व्यक्ति को दंड देकर मेरे लोक में लाओ। परन्तु जो भगवत स्मरण करता हैं भगवान् का चिन्तन कर रहा है, ऐसे व्यक्ति मेरे लोक में आने का अधिकारी नहीं।

ये अजामिल उपाख्यान सुनकर श्रीमद्भागवत में भगवान् के नाम की महिमा को प्रकट कर दिया। परन्तु देखिए भगवान् का जो नाम जाप करते हैं। व्यक्ति को इन 10 नाम अपराध से बचना चाहिए। ये नाम अपराध है? सबसे पहले–

1. जापक के लिए साधक के लिए गुरु का अपमान, गुरु को सामान्य व्यक्ति मानना।

2. सन्त निन्दा–किसी सन्त, वैष्णव, भक्त की निंदा।

3. भगवान् शिव तथा विष्णु में भेद।

4. वेद की निंदा–प्राचीन ग्रन्थ है भारतीय संस्कृति का वेद–वेद की निंदा साधक को नहीं करनी चाहिए।

5. भगवान् के नाम के बल पर पाप करना। बहुत से लोग कहा करते हैं हम भगवान् का नाम जपते रहे, साथ-साथ पाप भी करते रहें तो पाप धुल जाएँगे। बोलो वृन्दावन बिहारी नाम की जय।

6. भगवान् के नाम का अर्थवाद करना। अर्थात् भगवान् के नाम के साथ देवी-देवताओं के नाम को समान समझना।

7. नाम लेने में पाखंडवाद समझना हैं। भई ये समझने की बात है कि प्रभु का नाम जप करते हैं या नाम संकीर्तन करते हैं। हमें इससे पाखंड नहीं करना चाहिए, यह पाखंड अपराध है।

8. आलसी और नास्तिक को नाम का उपदेश देना नहीं यह अपराध है।

9. भगवान् को एक क्षण के लिए भी भूल जाना। भगवान् को भूलना।

10. नाम में अनादर बुद्धि करना। संसार के प्रति आसक्त रहना। यह भी एक अपराध हैं। इस प्रकार से 10 नाम अपराध से बचकर हम नाम जप करें तो तुरंत भगवान् का नाम अपना प्रभाव दिखाता हैं। इसी प्रकार से अजामिल का उपाख्यान सुनाकर भगवान् का नाम महिमा को प्रकट किया।

अथ चर्तुथोऽध्यायः

दक्ष के द्वारा भगवान् की स्तुति और भगवान् का प्रादुर्भाव

अथ पंचमोऽध्यायः

नारद जी के उपदेश से दक्षपुत्रों की विरक्ति तथा नारद जी को दक्ष का श्राप

शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन्, फिर दक्षों की सृष्टि का वर्णन किया हैं। दक्ष ने सृष्टि में अपने 10,000 पुत्रों को उत्पन्न किया। जो सबके सब नारद जी महाराज के शिष्य बन गए। फिर 1,000 पुत्र उत्पन्न किया। वे भी नारद जी महाराज के शिष्य बन गए।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् फिर ब्रह्माजी की आज्ञा पर दक्ष ने सृष्टि में 60 कन्याओं को उत्पन्न किया।

अथ षष्ठोऽध्यायः

दक्ष प्रजापति की ६० कन्याओं के वंश का विवरण

जिनमें 27 का पाणिग्रहण संस्कार किया चन्द्रमा के साथ, जिसे 27 नक्षत्र कहते हैं। दक्ष का विवाह हुआ, धर्म के साथ, धर्म के ये 10 लक्षण बताए हैं, 13 का विवाह कश्यप जी महाराज के साथ किया गया। ये अदिति, दिति, इला, कष्ठा, दोनु सूरमा, क्रोधवश, ताम्रा आदि कश्यप जी की पत्नी हैं। देखिए अदिति से हुए देव लोक और दिति से हुए दैत्य लोक और दोनुनाम की पत्नी से 61 दानव हुए। ये वर्णन भागवत में विस्तार रूप से है।

अथ सप्तमोऽध्यायः

बृहस्पति जी द्वारा देवताओं का त्याग

कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः।

(श्रीमद्भागवतम् 6.7.1)

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् देवताओं के गुरु थे बृहस्पति और दैत्यों के गुरु श्री शुक्राचार्य जी। राजा ने प्रश्न किया, महाराज मैंने सुना है एक बार देवताओं ने अपने गुरु का अपमान किया? क्यों, गुरु का तो अपमान कभी नहीं करना होता हैं। गुरु तो सदैव वन्दनीय होते हैं। गुरु का अपमान क्यों किया? अवश्य बताएं।

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं। कि राजन, एक बार इन्द्र अपने इन्द्रासन पर बैठा था, सभी देवता अप्सराओं का नृत्य दर्शन कर रहे थे, सभी देवता सोमरस पीए हुए थे। उसी समय इन्द्र की सभा में गुरु बृहस्पति पधारे। परन्तु ये सब नशे में चूर थे उठकर देवताओं ने अपने गुरु को प्रणाम नहीं किया, न आसन दिया, न सम्मान किया। परिहास करते हुए अप्सराओं का नृत्य देखते रहें।

गुरु बृहस्पति ने देखा कि मेरे शिष्य, देवताओं को इतना अभिमान है कि अपने धन का, सम्पति का, लक्ष्मी का जिन गुरु की कृपा से इन्हें लक्ष्मी प्राप्त हुई, उन्हीं गुरु का अपमान कर रहे हैं। जाओ देवताओं तुमसे तुम्हारी लक्ष्मी रूठ जाए। ये श्राप दे दिया देवगुरु बृहस्पति ने और इन्द्रपुरी से निकलकर चले गए। ये बात जब दैत्यों को पता चली तो वे इन्तजार कर रहे थे कि कब देवताओं को श्राप लगे और हम देवताओं को पराजित करके त्रिलोकी का शासन करें। अब सारे दैत्यों ने मिलकर देवताओं पर

चढ़ाई करके सभी देवताओं को स्वर्ग से भगा दिया।

सारे देवता ब्रह्मा जी के पास गए, जाकर प्रार्थना की। ब्रह्माजी ने कहा कि देखो इन्द्र..............

अहो बत सुरश्रेष्ठाः ह्यभद्रं वः कृतं महत्।
ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तमैश्वर्यान्नाभ्यनन्दत।।

(श्रीमद्भागवतम् 6.7.21)

इन्द्र जो व्यक्ति अपने गुरु का अपमान करे उसे दंड मिलना चाहिए। तुम सबने मिलकर अपने गुरु का अपमान किया। गुरु पूजने योग्य है, अपमान के पात्र नहीं। गुरु कोई व्यक्ति नहीं, गुरु कोई साधारण जीव नहीं, हम मानव के रूप में गुरु का दर्शन करते हैं। वह तो साक्षात् ईश्वर रूप हैं। भगवान् स्वयं कहते हैं। "आचार्य मम विजानीयत्" गुरु के रूप में भगवान् साक्षात् है, आचार्य के रूप में भगवान् साक्षात् हैं। जब हम गुरु की स्तुति करते हैं, वन्दन करते हैं। तो कितने सुन्दर शब्द में हम उसका वर्णन करते हैं।

गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।
ॐ अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया
चक्षुरून्मिलितिमयेन तस्मै श्री गुरुवे नमः

जैसा कि ब्रह्मा जी के द्वारा सृष्टि की उत्पति होती है, इसी प्रकार से जब हम गुरु की शरण में चले जाते हैं। तो हमारा एक नया जीवन होता है, गुरु फिर हमारा पालन करता हैं। जैसे संसारका पालन विष्णु करते हैं। इसी प्रकार से गुरु की कृपा से, गुरु के आशीर्वाद से हमारा जीवन जाग्रत होता है और "गुरु देवमहेश्वरः" मोक्ष दाता हैं। उसी प्रकार से गुरु की कृपा से ही मोक्ष प्राप्त करता है, हमारी मुक्ति होती हैं। ऐसे "तस्मै श्री गुरुवे नमः" ऐसे हम गुरुदेव के चरण में प्रणाम करते हैं, नमन करते हैं।

परन्तु देवताओं तुम सबने मिलकर अपने गुरु का अपमान किया, बहुत बड़ा अपराध किया गुरु की चरण में। देवताओं ने प्रार्थना की ब्रह्मा जी आप प्रसन्न होवें। कोई मार्ग बताएं कि गुरु प्रसन्न हों। तो ब्रह्मा जी ने कहा, कि देखो इन्द्र जब तक तुम्हारे गुरुदेव प्रसन्न नहीं होते हैं, तब तक त्वाष्टाः के पुत्र विश्वरूप को आप अपना पुरोहित बना लो। इनके पास शक्ति है और ये आपको स्वर्ग की राजलक्ष्मी प्रदान करा देंगे। ये सब देवता विश्वरूप के पास गए और जाकर प्रार्थना की कि आप हमारे पुरोहित बनें, पहले तो विश्वरूप ने कहा हम ये काम नहीं करेंगे। पुरोहित के काम से

शक्ति का नाश होता है हम तो सामान्य रूप से खेत की फसल कट जाने के बाद जो अवशिष्ट फसल पड़ी रहती है उससे जीविकार्जन करके, भरण पोषण करके जीवन धारण करता हूँ क्योंकि संन्यासी, तपस्वी लोगों का इसी प्रकार से ही जीविका का विधान है।

अकिञ्चनानां हि धनं शिलोञ्छनं तेनेह निर्वर्तितसाधुसत्क्रियः।
कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्गतिः।।

(श्रीमद्भागवतम् 6.7.36)

देवताओं ने अपनी विवशता को विश्वरूप के सामने रखकर प्रार्थना की, विनय की, देवताओंका गुरु बनने के लिए। अनेक प्रार्थना करने पर विश्वरूप ने पुरोहित बनना स्वीकार किया। इन्द्र को एक कवच दिया।

अथ अष्टमोऽध्यायः

नारायण कवच का उपेदश

भागवत में इसे नारायण कवच कहते हैं, श्रीमद्भागवत में छठे स्कन्ध में आठवें अध्याय में ये दिव्य पाठ हैं। नारायण कवच का वर्णन है, यदि व्यक्ति ब्रह्मनिष्ठ, कर्मनिष्ठ, ब्राह्मण से कवच बनवाकर, पढ़वाकर धारण करे तो उसके ऊपर कोई तन्त्र-मन्त्र की क्रिया प्रभाव नहीं डाल सकती। देखिए भागवत में जो नारायण कवच है, बड़ा सिद्ध पाठ हैं। यदि व्यक्ति इसका पाठ करे, धारण करे ब्रह्मनिष्ठ, कर्मनिष्ठ ब्राह्मण से बनवाकर तो उस व्यक्ति के जीवन में कभी तन्त्र-मन्त्र की क्रिया का प्रभाव नहीं पड़ता और विजयश्री को लक्ष्मी को देने वाला नारायण कवच है।

इन्द्र को नारायण कवच का उपदेश विश्वरूप ने दिया और इन्द्र ने इसे धारण किया।

अथ नवमोऽध्यायः

विश्वरूप का वध, वृत्रासुर द्वारा देवताओं की हार और भगवान् की प्रेरणा से देवताओं का दधीचि ऋषि के पास जाना

तस्यासन्विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत।
सोमपीथं सुरापीथमन्नादमिति शुश्रुम।।

(श्रीमद्भागवतम् 6.9.1)

इस नारायण कवच जिसे भागवत में एक अमोघ कवच कहते हैं। भागवत के छठे स्कन्ध के आठवें अध्याय में ये पाठ हैं। इस कवच का वेदव्यास जी ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया हैं। व्यक्ति यदि ब्रह्मनिष्ठ, कर्मनिष्ठ ब्राह्मण से बनवाकर, पढवाकर विधि वत से इसे धारण करे तो कोई तन्त्र–मन्त्र क्रिया का प्रभाव नहीं पड़ सकता। देखिए भागवत में जो नारायण कवच है, बड़ा सिद्ध पाठ है और यदि कोई इसे धारण करे तो विजय प्राप्त कर सकते हैं। विजयश्री को अपने हाथ कर लेते हैं। श्री लक्ष्मी को दिलाने वाला ये नारायण कवच हैं। इन्द्र को नारायण कवच का उपदेश दिया तथा धारण कराया।

श्रीशुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् ये विश्वरूप के तीन मुख थे,

"तस्यासन् विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत।"

एक से सोमरस पान, एक से सुरापान करते थे और एक से अन्न ग्रहण करते थे, एक बार इन्द्र यज्ञ कर रहे थे, विश्वरूप ने विचार किया कि देवता और दैत्य एक ही पिता की सन्तान हैं, देवताओं को तो यज्ञ में आहुतियाँ दी जाती हैं। इन्द्राय स्वाहा, ब्रह्माय स्वाहा आदि देवताओं के नाम से परन्तु दैत्यों के नाम आहुतियाँ नहीं दी जाती। तो ये चोरी से दैत्यों के नाम से, आहुतियाँ देने लगे। श्रीमद्‌भागवत में ऐसा वर्णन है कि विश्वरूप की माँ दैत्य कुल से थे, शादी देवताओं के कुल से हुई, अपनी माता से अत्यधिक प्रेम होने के कारण दैत्यों के नाम से चोरी से आहुतियाँ निकालने लगे "मातृस्नेहवशानुगः।" जब ये बात इन्द्र को मालूम चली कि हमसे हमारे पुरोहित कपट करते हैं। तो एकदम इन्द्र का क्रोध बढ़ गया और इन्द्र ने आकर पुरोहित विश्वरूप का ही वध कर दिया। इन्द्र को ब्रह्महत्या पाप लगा, ब्रह्महत्या के अपराध से इन्द्र परेशान।

ब्रह्महत्या के प्रभाव से इन्द्र कैसे मुक्ति प्राप्त करे, चार जगहों में इन्द्र ने इस ब्रह्महत्या के पाप को बाँट दिया–वृक्षों के लिए, जल के लिए, भूमि के लिए और स्त्रियों के लिए। ये चार विभाग कर दिए–इन्द्र ने ब्रह्महत्या का अंश, चार भाग (जगह) कर दिया। पहला जल में काई, फेन, झाग ब्रह्म हत्या का पाप है। दूसरा भूमि में जहाँ ऊसर भूमि जहाँ अन्न नहीं उपजता चाहे कितना भी जल, खाद बीज डाले तो वहाँ ब्रह्महत्या का वास है। तीसरा वृक्षों में जो गंध निकलता है वह भी ब्रह्महत्या का स्वरूप है चौथा स्त्रियों के लिए मासिक धर्म ब्रह्महत्या का स्वरूप है। ये चार जगहों में इन्द्र ने अपनी ब्रह्महत्या को बाँटकर इस पाप से मुक्ति प्राप्त की।

जब त्वष्टा ने सुना कि मेरे पुत्र का वध किया इन्द्र ने तो इन्द्र का वध करने के लिए जप आरंभ कर दिया, यज्ञ में आहुति दे रहे क्रोध से पुत्र शोक व्यथित होकर।

इन्द्रशत्रो विवर्धस्व मा चिरं जहि विद्विषम्।

(श्रीमद्भागवतम् 6.9.11)

देखो किसी भी मन्त्र का जप करें और वैदिक मन्त्र का जप करते समय व्यक्ति को ध्यान रखना चाहिए, आपने देखा होगा कि वैदिक विद्वान जब मन्त्र का जप करते हैं। तो इस प्रकार से हाथ चलाते हैं। कभी ऊपर कभी नीचे, इसे कहते हैं। उदात्त और अनुदात्त स्वर यानि वेदों के मन्त्र में स्वर लगाए जाते हैं। यदि स्वरों की गलती हो गई तो मन्त्र का अर्थ उल्टा हो जाता है, आज देवता त्वष्टा क्रोध से पुत्र शोक में व्यथित होकर क्रोध से मन्त्र का उच्चारण कर रहे थे, कहना चाहते थे कि इन्द्र को जो मारे ऐसा वीर पुरुष इस यज्ञ से प्राप्त हो, परन्तु क्रोध से मन्त्र का उच्चारण किया तो अर्थ हो गया उल्टा यानि उदात्त की जगह लगा दिया अनुदात्त और अनुदात्त की उदात्त लग गया। स्वर की गलती होने से अर्थ हो गया कि जिस इन्द्र को मारे ऐसा वीर पुरुष इस यज्ञ से प्राप्त हो, तो वृत्रासुर यज्ञ से प्रकट हो गए। इस बात को और एक तरह समझो, रोको मत, जाने दो। रोको, मत जाने दो। शब्दों का, उच्चारण का अंतर होने से सम्पूर्ण क्रिया बदल जाती है, देवता त्वष्टा ने वृत्रासुर से कहा अरे जाओ इन्द्र का वध कर दो, ये वृत्रासुर युद्ध करने दौड़ पड़ा, युद्ध करके सब देवताओं को भगा दिया तो सब देवता भगवान् की शरण में गए, भगवान् ने कहा कि इन्द्र तुम मेरे भक्त सन्त दधीचि की शरण में जाओ, तथा अस्थि पिंज माँगकर लाओ और फिर विश्वकर्मा के द्वारा वज्र का निर्माण करना। उस वज्र के द्वारा जब तुम युद्ध करोगे तो निश्चय तुम्हारी विजय होगी, ये सब देवता गए, दधीचि ऋषि को मनवाकर के अस्थि पिंजर लाए। विश्वकर्मा से वज्र बनवाया। संत ने अपना शरीर देवताओं को दान में दिया।

"परोपकाराय सतां विभूतयः"

अथ दशमोऽध्यायः

देवताओं द्वारा दधीचि ऋषि की अस्थियों से वज्र निर्माण और आक्रमण

अथ एकादशोऽध्यायः

वृत्रासुर की वीरवाणी और भगवत प्राप्ति

उस वज्र को लेकर जब इन्द्र युद्ध में कूद पड़ा तो एक ओर वृत्रासुर तथा एक ओर इन्द्र और भीषण युद्ध छिड़ गया, परन्तु अंत में वृत्रासुर पर जब इन्द्र ने वज्र का

प्रहार किया तो चार श्लोक बड़े विशेष हैं। श्रीमद्भागवत में, वृत्रासुर की स्तुति में। वल्लभसम्प्रदाय के आचार्य हैं, श्रीमत् वल्भाचार्य जी महाराज, इसे कहते हैं- पुष्टि मार्ग। इस पुष्टि मार्ग के आचार्य के लिए ये श्लोक बड़े ही प्रिय हैं। इन श्लोकों में भागवत में बड़ा भाव भरा पड़ा है, आज वृत्रासुर भगवान् की स्तुति कर रहे हैं। वे कहते हैं कि–

अहं हरे तव पादैकमूल–दासानुदासो भवितस्मि भूयः।

(श्रीमद्भागवतम् 6.11.24)

पहला श्लोक में वृत्रासुर कहते हैं कि प्रभु मेरा अंत निश्चित है, अंत समय सन्निकट है परन्तु प्रभु इतनी कृपा करना कि यदि अब संसार में मेरा जन्म हो तो हे नन्द नन्दन, इतनी कृपा करना कि "दासानुदोसोभवितास्मि भूयः" अपने दासों का भी दास बना के रखना।

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे।।

(श्रीमद्भागवतम् 6.11.25)

वृत्रासुर कहते हैं मैं आपसे चक्रवर्ती राजा बनना नहीं चाहता हूँ, मैं आपसे ऋद्धि–सिद्धि की कामना नहीं चाहता हूँ, जो आप योगियों को प्रदान करते हैं। भगवान् मैं तो केवल यही चहता हूँ कि मेरा मन, बुद्धि आपके चरण कमल का चिन्तन करे, तो आपसे मैं क्या सम्बन्ध जोड़ूँ? वृत्रासुर के अंदर बड़े दिव्य भाव प्रकट हो रहे हैं। कि–

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिद्दक्षते त्वाम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 6.11.26)

वृत्रासुर ने कहा कि भगवन् जैसे चिड़िया अपने घोंसले में बच्चों को छोड़कर दाना चुगने जाती है, गौशाला में गाय अपने बछड़े को छोड़ करके वन में घास चरने जाती है, पीछे से दोनों अपनी माता को याद करते हैं। चिड़िया का बच्चा अपनी माँ चिड़ी के, गऊ का बच्चा अपनी माँ गऊ को दोनों का मन अपनी–अपनी माता में लगा हैं। इसी प्रकार से मेरा मन भी प्रभु आपके प्रति लगे, आपकी शरण में लगे, परन्तु वृत्रासुर ने कहा नहीं, थोड़ा और गंभीर भाव से डूबे रहेंगे। वृत्रासुर ने कहा जब चिड़िया आकर अपने बच्चे को दाना चुगा देती है और गाय बछड़े को दूध पिला देती हैं। चिड़िया का बच्चा तथा गऊ का बच्चा पेट भरने पर अपनी माँ को भूल जाता है।

वृत्रासुर कहते हैं, ये दोनों भाव अपूर्ण हैं। पूर्ण नहीं हैं, मैं तो प्रभु एक क्षण को भी आपको भूलना नहीं चाहता हूँ "प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा"

वृत्रासुर ने कहा कि जैसे परदेस गए पति को पीछे से पत्नी याद करती है, परिवार में रहकर अपने परिवार में सास, ससुर, ननद, देवर सब की सेवा करती है, परन्तु पत्नी का मन पति के चरण में लगा रहता है, इसे कहते हैं। कान्ताभाव, माधुर्य भाव। यह व्रज की उपासना हैं। जब श्रीकृष्ण ब्रज से मथुरा जा रहे थे, तो गोपियों ने कहा कि "शीघ्रायस्य"।

गोपियों मैं शीघ्र आ जाऊँ। आज गए कल रूक कर परसों आ जाउंगा। यह कहकर कन्हैया परसों की, परन्तु बरसों निकल गए। जिन गोपियों के अंदर विशुद्ध प्रेम था, लोग कहते हैं कि गोपियों के अंदर तो काम था। नहीं नहीं प्रेम और काम में तो अंतर होता हैं। प्रेम में त्याग हैं और काम में? काम में है कामना–वासना। प्रेम निर्मल भास्कर स्वरूप हैं। काम है अंधकार। जगत से लोक प्रेम करते हैं परन्तु जगत प्रेम की वस्तु नहीं, व्यवहार की वस्तु है। जगत से व्यवहार करो, भगवान् से प्रेम करो। जगत के लोग प्रेम के पात्र नहीं, प्रेम का पात्र केवल परमात्मा है।

जहाँ प्रेम है, प्रभु कहते है, वही मैं हूँ अर्थात प्रेम भगवान् की प्रिय वस्तु है, वो तो प्रेम के रस का सागर है, रसमय हैं। क्या गोपियाँ कृष्ण से मिलने मथुरा नहीं जा सकती थीं? इस दृष्टि से हम देखें तो मथुरा कितनी दूर है, केवल नौ किलोमीटर। मथुरा ही नहीं, द्वारिका भी गोपियाँ जा सकती थीं, कृष्ण के दर्शन, कृष्ण से मिलने के लिए, परन्तु ऐसा कहीं नहीं लिखा कि गोपियाँ मथुरा, द्वारिका गईं। इसे कहते हैं– प्रेम। मथुरा या द्वारिका में कृष्ण से मिलने से समाज में विक्षिप्त हों। यह गोपियाँ नहीं चाहती थीं। प्रेमास्पद व्यक्ति का समाज में कोई अपमान हो, कृष्ण जहाँ हों सुखी रहे, प्रसन्न रहें, "तत्सुखे सुखेतम् – इति प्रेम लक्षणम्।"

यही प्रेम का लक्षण है कि अपने प्रेमास्पद को सुख देना। प्रेम में लेना नहीं, केवल देना ही देना हैं। जो गोपियों के जीवन से देखने को मिलता है।

"तत्सुखेसुखेतम् – इति प्रेम लक्षणम्।"

गोपियाँ कहती हैं कि आप कहीं भी रहें पर सुख से रहें—दर्शन करने की लालसा केवल गोपियों की, कृष्ण दर्शन की लालसा थी, काम नहीं वासना नहीं केवल विशुद्ध प्रेम था।

गोपी किसको कहते हैं—गोपी कहते हैं। "गोभि इन्दिय भक्ति रसं पिबति सा गोपी" जो सम्पूर्ण इन्द्रियों से कृष्ण का भक्ति रस पान करे वही गोपी हैं। वृत्रासुर भी

अन्त समय में गोपी भाव से यानि कान्त भाव से कह रहे हैं और भगवान् के चरण में प्रणाम किया, उसी समय में तुरंत आकर वज्र वृत्रासुर पर गिरा।

ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदार गेहेष्व् आसक्तचित्तस्य न नाथ भूयात्।।
(श्रीमद्भागवतम् 6.11.27)

परमवीर वृत्रासुर ने सांस छोड़ते-छोड़ते अंतिम समय में प्रार्थना की—प्रभु मैं मुक्ति नहीं चाहता, अपने कर्म के कारण, पाप के कारण मुझे जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़ना पड़े तो इसकी मुझे परवाह नहीं। परन्तु मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ, जिस-जिस योनि में जन्मूं, भगवान् के भक्तों से मेरी मैत्री बनी रहे, स्वामि मैं केवल यही चाहता हूँ, आपकी माया से देह गेह और स्त्री-पुत्रादि में आसक्त हो रहे हैं। उनके साथ मेरा सम्बन्ध न हो। वृत्रासुर का प्रणान्त हुआ। राजा परीक्षित ने प्रश्न किया महाराज ये वृत्रासुर कौन है?

क्योंकि, "जन्म-जन्म मुनि जतन कराहिं अन्त राम-कहीं आवत नाहि।"

गीतम्

देखिए इस चौपाई के दो भाग ध्वनित हो रहे हैं। राम चरित्र मानस में, एक तो सीधा भाव है—

जन्म-जन्म मुनि जतन कराहिं
अन्त राम कहीं आवत नाहिं।

अनेक जन्म निकल जाते हैं, परन्तु प्रभु राम का नाम मुख से नहीं निकलता। एक सनत ने और कहा है।

"जन्म जन्म मुनि जतन कराहि-
अन्त राम कहीं आवत नाहि।।"

कितना सुन्दर भाव ध्वनित हुआ हैं। जन्म-जन्माँतर के तुम्हारे जो भाव हैं। पूर्ण कर्म हैं, सत्कर्म हैं, भजन के फल हैं। वही अंत में राम कहि। राम का नाम तभी अंत में मुख से निलता हैं। तथा उस जीव का पुनर्जन्म नहीं होता।

उस जीव का मोक्ष हो जाता हैं, अन्त राम कहि आवत नहि, प्रश्न किया- महाराज परिक्षित ने श्रीमद् भागवत में कि महाराज बताइये वृत्रासुर कौन हैं? एक असुर हो कर के उसने भगवान् का नाम स्मरण किया। भगवान् का ध्यान किया वह भी युद्ध भुमि में, कौन हैं महाराज?

शुकदेव जी महाराज कहते हैं। महाराज, पूर्व जीवन में मथुरा का एक राजा थे, जिनका नाम था चित्रकेतु, और जिनकी पत्नी थी रानी कृतद्वती, राजा के जीवन में सन्तान का अभाव था, सन्तान प्राप्ति के लिये राजा ने अनेक शादियाँ की परन्तु सन्तान नहीं हुई, एकबार नारदजी और अंगिरा ऋषि राजा चित्रकेतु, के महल में आयें, राजा को देखकर के पूछा कि राजन! आप दुःखी क्यों? तो बोले महाराज, मेरी सन्तान नहीं है। तो नारदजी ने कहा कि हम आपकों सन्तान देगे– राजा तेरे जो सन्तान होगी व सुख भी देगी और दुःख भी देगी, राजा ने सुख की ओर ध्यान दिया– दुःख की ओर ध्यान नहीं दिया, कि भले हमें दुःख क्यों न दें– परन्तु हमें सन्तान तो हो जाय, नारदजी ने एक फल राजा चित्रकेतु को दिया और कहा कि राजा एक वर्ष जो फल खाकर ब्रत धारण करोगी– वह सुन्दर निर्मल पुत्र प्राप्त कर लेगी, राजा ने वह फल रानी कृतद्रुती को खिलाया– रानी गर्भवती हुई, और समय में एक सुन्दर बालक जन्म ग्रहण किया,

जब से राजा के महल में राजकुमार का जन्म हुआ तब से राजा ने अन्य रानियों के महल में जाना ही छोड़ दया। अब क्यों नहीं आते? रानियों ने सोचा, जब से कृतदुतो के पुत्र हुआ हमारे पास राजा आना ही छोड़ दिया।

अथ द्वादशोऽध्यायः

वृत्रासुर का वध

अथ त्रयोदशोऽध्यायः,

इन्द्र पर ब्रह्महत्या का आक्रमण

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

वृत्रासुर का पूर्व चरित्र

अथ पंचदशोध्यायः

चित्रकेतु को अंगिरा और नारद जी का उपदेश

हमारे और महाराज के बीच में यदि कोई कांटा है तो यह बालक हैं। एक दिन सभी रानियों ने मिलकर बालक के महल में जाकर चोरी से दूध में जहर मिलाकर पिला दिया, बालक की मृत्यु हो गई। राजमहल में सब रोने लगे। राजा रानी तो असली रोए पर जहर पिलाने वाली रानियों कपटी रोईं। सारा महल रोनेको हो गया। राजा पुत्र

के लिए पागल–सा हो गया। बालक के अंतिम संस्कार से पहले नारद जी आ गए। वे बोले राजन आप क्यों रो रहे हैं? बोले राजन ये तुम्हारा पुत्र हे! अगर ये तुम्हारा पुत्र है तो ये बोले, खावे, जीवे, उठे, बैठे, चले। ये तुम्हारा पुत्र नहीं हैं।

देहेन देहिनो राजन्देहाद्देहोऽभिजायते।
बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वतः।।

(श्रीमद्भागवतम् 6.15.7)

राजन जैसे कि एक बीज में अनेक बीजों की उत्पत्ति हो जाती है, हम एक बीज डालते हैं। अनेक बीज उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार एक देह से अनेक देहों की उत्पति होती हैं। लेकिन इस देह के अंदर जो देही बैठा है वह शाश्वत है, कभी नहीं मरता। राजन तुमने हमें पहचाना, हम कौन हैं? बोले महाराज नहीं। हमने तुम्हें नहीं पहचाना। क्योंकि पुत्र शोक में व्यथित थे। वे बोले आप मुझे कोई सन्त, ज्ञानी प्रतीत होते हैं। नारद बोले बिल्कुल ठीक मैं हूँ नारद और अंगिरा। मैंने कहा था कि पुत्र रूप में आपको सुख–दुख दोनों मिलेंगे। पुत्र जन्म पर आपको असीम सुख मिला था, मृत्यु पर दुख। अब इसका अंतिम संस्कार कीजिए। राजा ने नारद जी को प्रणाम करते हुए कहा, महाराज आप आज जो हमें ज्ञान दे रहे हैं। वह हमारे पल्ले नहीं पड़ रहा है।

अथ षोडषोऽध्यायः

राजा चित्रकेतु का वैराग्य–संकर्षण देव का दर्शन

उसी समय नारद जी मृत बालक के पास गए और जीवात्मा को सम्बोधित किया कि–

"जीवात्मन्पश्य भद्रं ते मातरं पितरं च ते।"

(श्रीमद्भागवतम् 6.16.2)

जीवात्मा तुम बालक के शरीर में प्रवेश करके माता पिता के शोक को दूर करो। जीवात्मा बोलने लगी, उस शरीर से–अरे राजा चित्रकेतु और रानी तुम मेरे एक जन्म के माता–पिता नहीं हो अनेक जन्मों से हमारा साथ हैं। कभी मैं तुम्हारा माता–पिता, कभी तुम हमारे माता–पिता कभी हम मित्र बने, कभी शत्रु। कभी हम इतनी दूर गए कि तुम्हें भी नहीं मालूम कि हम कहाँ, हमें नहीं मालूम कि तुम कहाँ।

इस जन्म से पहले जब तुम ब्राह्मण, ब्राह्मणी थे। मैं एक भिक्षुक था, आपके द्वारे भिक्षा माँगने आया। तेरी रानी ने कहा महाराज आज हमारे द्वार पर बैठकर भोजन बनाया। मैंने ऐसा ही किया। तेरी रानी ने जो लकड़ियां मुझे जलाने के लिए

दी उनमें चीटियां थीं। चींटियों वाली लकड़ी मैंने आग में डाल दी सारी चींटियां जलकर मर गई। जितनी चींटियां थी वे सब तेरी रानियां थीं। जिस प्रकार मैंने इन सबको मारा उसी प्रकार इन सबने मिलकर मुझे विष देकर मार डाला। मेरा प्राणांत हो गया।

देखो शास्त्र कहते हैं विष और अग्नि में कोई अंतर नहीं। जैसे आग से जलते हैं वैसे ही विष खाने से शरीर जल जाता हैं। तो अग्नि और विष में कोई अंतर नहीं। राजा की आंखें खुलीं और बालक का अंतिम संस्कार किया। नारदजी की कृपा से राजा चित्रकेतु गन्धर्व वन गए।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

चित्रकेतु जी को पार्वती जी का श्राप

एक बार चित्रकेतु महाराज हिमालय पर अपने विमान में भ्रमण कर रहे थे। आकाश में देखा कि भगवान् शिव पार्वती को गोद में लेकर सत्संग कर रहे हैं। चारों तरफ मुनि ऋषि बैठे हैं, जब ये देखा तो गंधर्व चित्रकेतु हँसने लगे। ये कैसे जगत के माता–पिता हैं। शिव–पार्वती।

जगतों पितरों–बन्दे पार्वती परमेश्वरौः

इनको इतनी लज्जा नहीं, सन्त समुदाय के बीच में पत्नी को अंग में लेकर बैठे हैं। अज्ञानियों की तरह ये कृत्य कर रहे हैं।

एषः लोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ता शरीरिणाम्।
आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया।।

(श्रीमद्भागवतम् 6.17.6)

चित्रकेतु ने कहा देखो ये तो साक्षात् लोक गुरु हैं, धर्म की ध्वजा को धारण करने वाले हैं। देखो कैसे ये ऋषि मुनियों के बीच अपनी भार्या को लेकर बैठे हैं। ये शोभा नहीं देता, जब पार्वती ने सुना, शिव तो हँसने लगे। पार्वती ने कहा कि चित्रकेतु गन्धर्व तू हमारे प्रति साधारण मानवबुद्धि रखता है अतः

"अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते।"

(श्रीमद्भागवतम् 6.17.15)

जा तू असुर योनि प्राप्त कर, माता पार्वती ने श्राप दे दिया। ये विमान सहित जाकर माता पार्वती के चरण में गिर पड़ा, माँ मेरा अपराध क्षमा कर दें।

"प्रतिग्रह्णामि ते शापम्"

चित्रकेतु ने माता पार्वती का श्राप तो ग्रहण किया, परन्तु माता एक कृपा प्रार्थना कि, माँ एक कृपा करें, भले ही मैं असुर योनि में जाऊँ पर जब मेरा अंत समय आए तो मुझे कृष्ण की स्मृति हो जाए। पार्वती माता प्रसन्न हो गई और कहा कि तथास्तु। ऐसा ही होगा। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन् ये ही चित्रकेतु वृत्रासर बने, ईश्वर कृपा से अंत समय में भगवत धाम को प्राप्त किया। पुनः पार्वतीजी के आशीर्वाद से भागवत धाम को प्राप्त किया।

अथा अष्टादश अध्यायः

अदिति की सन्तानों की उत्पत्ति तथा मरुद्गण की उत्पति का वर्णन

देवमाता अदिति और असुरमाता दिति, दिति से दानव दोनों ही कश्यप ऋषि की पत्नी। ब्रह्मा जी के बाद कश्यप जी को दूसरा सृष्टिकर्ता माना जाता हैं। इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि प्रधान देवताओं की शक्ति देखकर दिति के मन में विचार आया कि मेरा पुत्र इन सबसे बलवान हो इसी भाव से सन्तान प्राप्ती कि योजना की, तपस्या की। इन्द्र को पता चला कि माता दिति ने पवन से भी बलवान पुत्र के लिए तपस्या की। इन्द्र भयभीत होकर माता के पीछे-पीछे दोष देखने लगे। एक साल तक माता के अंदर कोई दोष नहीं देखा। इन्द्र को कोई मौका नहीं मिला गर्भ नष्ट करने का। कुछ ही समय बाकी था। माता दिति ने कुछ नियमों का उल्लंघन किया। इन्द्र को मौका मिल गया। इन्द्र ने माता के गर्भ में प्रवेश कर गर्भ के सात खंड कर दिए। आश्चर्य की बात है कि सात टुकड़ों के बाद भी मृत्यु नहीं हुई। इन्द्र को भय हो गया। सातों प्रार्थना करने लगे कि हमें क्यों मारते हो? इन्द्र ने सातों जीवात्मा के सात-सात खंड कर दिए। उनचास (49) खंड होने के बाद भी मृत्यु नहीं हुई। सभी इन्द्र को घेरकर प्रार्थना करने लगे कि तुम तो हमारे भाई हो, क्यों मारते हो? इन्द्र को शर्म आई और उन्होंने अपने देव परिसर में स्थान दिया, तुम उनचास पवन के नाम से प्रसिद्ध होओ। भयमुक्त हो जाओ।

इन्द्र ने भयभीत होते हुए माता दिति को सारी कथा सुनाई और माफी माँगी। माँ ने उसे माफ कर दिया।

अथ एकोनविंशऽअध्यायः

पुंसवन व्रत की विधि

शुकदेव जी महाराज कहते हैं, इस व्रत के माध्यम से भगवान् विष्णु को प्रसन्न करके माता अपनी इच्छा अनुरूप सुन्दर पुत्र प्राप्त कर सकती हैं। एक साल तक नियमों का पालन करना होता है।

इति षष्ठ स्कन्धः समाप्तः

स्कंध-०७



सप्तम स्कन्ध

अथ प्रथमोऽध्याय

नारद युधिष्ठिर संवाद और जय-विजय की कथा

समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन्भूतानां भगवान्स्वयम्।
इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा।।
(श्रीमद्भागवतम् 7.1.1)

महाराज ये बताए, आप कथा सुना रहे हैं, भगवान् की कथा सुनकर मन में एक शंका होती है, भगवान् है समदृष्टि सबको समान देखने वाला। भगवान् की कैसी समान दर्शिता है! भगवान् देवताओं की रक्षा करते हैं, दैत्यों को मारते हैं। ये तो समदर्शिता नही हैं। आज तो मुझे नारायण के गुणों के प्रति शंका हुई हैं। आप इस शंका का निवारण करे। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन-

साधु पृष्टं महाराज हरेश्चरितमद्भुतम्।
यद्भागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनम्।
(श्रीमद्भागवतम् 7.1.4)

राजा आपने तो भक्ति से भरा प्रश्न कर दिया है, देखो परीक्षित भगवान् समदर्शी ही है, परमात्मा की दृष्टि विषम नहीं हैं। सत्, रज, तम ये परमात्मा का गुण नहीं है, ये प्रकृति का गुण हैं। जब भगवान् अवतार लेते हैं और प्रकृति के गुणों को धारण करते हैं। जब भगवान् सतोगुणों को धारण करके देवताओं की रक्षा करते हैं।

देव पुरुषों की रक्षा करते हैं, जब रजोगुण का आश्रय लेकर अवतार लेते हैं। तब दैत्यों की रक्षा करते हैं। जब तमोगुण का आश्रय लेकर अवतार लेते हैं, तब यक्ष, किन्नर आदि सभी की रक्षा करते हैं। यानि वाध्य और बधकता दोनों को प्रभु जब प्राप्त करते हैं। तो दोनों की रक्षा करते हैं। जैसे आपने परीक्षित हमसे प्रश्न किया वैसे ही नारद जी से युधिष्ठिर ने प्रश्न किया। महाभारत का विषय था। राजसूय यज्ञ का समय था।

जब राजसूय यज्ञ प्रारंभ होने जा रहा था, तो प्रस्ताव रखा गया कि प्रथम पूजा किसकी की जाए। सभी ने कहा हम तो द्वारकाधीश भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करेंगे। परन्तु वहाँ भगवान् की बुआ का पुत्र बैठा था, नाम था शिशुपाल। शिशुपाल ने कहा

हम श्रीकृष्ण की पूजा नहीं करेंगे। ये ग्वाला गौए चराने वाला इसकी कौन पूजा करेगा। भगवान् ने सोचा कि ये शिशुपाल सौ गालियां तो मुझे घर से देकर आया। प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। शिशुपाल जब पैदा हुआ उसके चार हाथ थे। पंडितों ने कहा जिसकी गोद में जाकर इसके दो हाथ छिप जाएँगे उसी के हाथों इसकी मृत्यु होगी। शिशुपाल की माता उसे सभी की गोद में देती।

एक बार श्रीकृष्ण भी पधारे उनकी गोद में जाते ही झट दो हाथ छिप गए। बुआ ने कहा, बेटे कृष्ण! तू मेरे बेटे का वध मत करना। कृष्ण ने कहा ये मेरा भाई है, मैं इसे क्यों मारूं? सौ गालियां देने तक इसे नहीं मारूँगा। इससे ऊपर एक भी हुई तो इसे नहीं छोड़ूंगा। बोली, बेटे ये तो तेरा भइया हैं। ये तुझे गाली क्यों देगा? भगवान् ने कहा तो बुआ मैं इसे क्यों मारूंगा? जब शिशुपाल बड़ा हुआ तो अकारण उससे विरोध करने लगे। न कोई लड़ाई न झगड़ा बस अकारण विरोध। गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं। ऐसे लोग संसार में होंगें जो अकारण तुमसे विरोध करे।

ऊँच निवास नीच कर तुति, देख'न सकहिं पराई विभूति

यानि अकारण विरोध, अकारण वैर, अकारण शत्रुता कोई लड़ाई नहीं कोई झगड़ा नहीं। रास्ता चलते अटक बाजी ऐसे भी लोग होते हैं। अकारण झगड़ते हैं। शिशुपाल ने भी पैदा होते ही गाली देना शुरू कर दिया था, जब इसे मालूम चल गया तो प्रातःकाल उठते ही पहले भगवान् कृष्ण को सौ गाली दिया करता। भगवान् कहते हैं, यह भी मेरा भक्त है, सौ बार मुझे गाली देता है तो, सौ बार मेरा नाम भी लेता हैं। भगवान् गाली की ओर ध्यान न देकर कहते हैं, इसने मेरा नाम लिया है।

परन्तु राजसूय यज्ञ में जब सौ से ऊपर गालियां दी, तो भगवान् सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी, सुदर्शन चक्र ने शिशुपाल का सर धड़ से अलग कर दिया। शरीर शान्त हो गया। शरीर से आत्मा ज्योति निकली, मुक्ति को प्राप्त किया भगवान् के शरीर में प्रवेश कर गई। जब महाराज युधिष्ठिर ने देखा तो, नारद जी से पूछा की शिशुपाल ने भगवान् को गालियां दी, उसे कोढ हो जाना चाहिए था, पर भगवान् उसे भी मुक्ति दे रहे हैं। नारद जी ने कहा यहीं तो भगवान् की भक्तवत्सलता है।

'जाकि रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखि तिन तैसी'

गोप्य: कामाद्भयात्कंसो द्वेषाचैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद्वृदष्णय: स्नेहाद्युयं भक्त्यां वयं विभो।।

(श्रीमद्भागवतम् 7.1.31)

जैसे गोपियों का प्रेम, प्रेम से गोपियों ने श्रीकृष्ण को भजा। गोपियाँ कामत्त पाने की इच्छा कृष्ण को। शिशुपाल ने द्वेषभाव, कंस ने शत्रुभाव, जैसी जिसकी भावना भगवान् ने वैसा ही किया। नारद जी से युधिष्ठरजी ने प्रश्न किया।

विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि।
ब्रूहि मे भगवन्येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता।।

(श्रीमद्भागवतम् 7.1.48)

युधिष्ठिर जी ने पूछा महाराज हमने सुना कि हिरण्यकश्यपु के घर प्रह्लाद का जन्म हुआ उनका प्रसंग भी सुना दीजिए राजन्।

अथ द्वितीयोऽध्याय:

हिरण्याक्ष का वध होने पर हिरण्यकशिपु का अपनी माता को समझाना

"भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना।"

(श्रीमद्भागवतम् 7.2.1)

राजा जिस समय भगवान् ने वाराह रूप धारण घर के हिरणाक्ष का वध किया तो हिरणाक्ष के वध का संवाद सुनकर भाई के हत्याकारी भगवान् विष्णु के प्रति प्रतिशोध की भावना हिरण्यकश्यपु के मन में जाग्रत हुई, कि मैं विष्णु से बदला लूँगा। अपनी माता दिति को राजसूय यज्ञ की कथा सुनाकर, आत्मा की मित्रता के बारे में बताया और मन्दराचल पर्वत पर तपस्या करने हिरण्यकश्यपु चले गए। एक ओर तो आत्मा को नित्य कहा करता और दूसरी ओर इस देह को भी नित्य बनाना चाहता था।

"पर उपदेश-कुशल बहुतेरे"

प्रेम से कहो—जय श्रीकृष्ण।

ऐसे लोग होते हैं, अपने जीवन में कितना उतारा? जैसे महापुरुष दृष्टांत दिया करते हैं कि एक गृहस्थ के पुत्र की मृत्यु हो गई। एक ज्ञानी पुरुष उस गृहस्थ को सांत्वना देने लगा, भाई क्यों रो रहे हो? गृहस्थ बोले महाराज, मेरे पुत्र की मृत्यु हो गई इसलिए रो रहा हूँ। बोले आत्मा तो अखण्ड, चेतन, शाश्वत है तुम किसका शोक कर रहे हो।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक:

गीता के दो चार श्लोक भी सुना दिए। ज्ञानी पुरुष जी ने, जैसे-तैसे उसे समझा दिया। एक दिन की बात है, वही गृहस्थ उस ज्ञानी की कुटिया पर गया। देखा वह

ज्ञानी रो रहा हैं। गृहस्थ बोलो आप क्यों रो रहे हैं? ज्ञानी ने बोले भईया मेरी भैंसा मर गई हैं। गृहस्थ ने कहा, उस दिन आप लम्बा–चौड़ा प्रवचन दे रहे थे, कि आत्मा शाश्वत, अमर है आज क्या हुआ। ज्ञानी ने कहा भईया पुत्र तो तेरा था। भैंसा तो हमारी हैं। वृन्दावन बिहारी लाल की जय। एक ओर आत्मा को नित्य कहता था, ता दूसरी और देह को भी नित्य बनना चाहता था हिरण्यकश्यपु।

अथ तृतीयोऽध्यायः

हिरणकश्यपु की तपस्या और वर प्राप्ति

ये हिरण्यकश्यपु सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी का ध्यान करने मन्दराचल पर्वत पर एक पैर पर खड़े होकर तप करने लगे। बड़ी भयंकर तपस्या की। ऐसी तपस्या ब्रह्माजी के लिए किसी ने नहीं की। सारा शरीर मिट्टी का ढेर हो गया। हाड माँस में चींटी लग गई। दूर से पता ही नहीं चलता था कि ये क्या है? भयंकर तपस्या में रत थे। दस हजार साल निकल गए, तप करते–करते ब्रह्मा जी को दया आई वे पधारे,सुन्दर शब्दों में हिरण्यकश्यपु को सम्बोधित किया।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपः सिद्धोऽसि काश्यप।
वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः।।

(श्रीमद्भागवतम् 7.3.17)

ब्रह्माजी ने मंदराचल पर्वत पर आकर कहा–कश्यप पुत्र उठो उठो उतिष्ठ–उतिष्ठ मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ। वर माँगो। यह मिट्टी के ढेले से बाहर निकल कर ब्रह्मा जी को प्रणाम किया पूछा आप मुझसे प्रसन्न हैं। ब्रह्मा जी बोले अभी तक किसी ने मेरी इतनी तपस्या नहीं कि, बोल तुझे क्या चाहिए। वह बोला हे ब्रह्मा!

यदि दास्यस्यभिमतान्वरान्मे वरदोत्तम।

(श्रीमद्भागवतम् 7.3.35)

ब्रह्मा जी मैं जानता हूँ कि आप वर देने में परमश्रेष्ठ हैं। आप वरदान दीजिए कि आपकी सृष्टि में पैदा होने वाले किसी जीव से मेरी मृत्यु न हो, पापी को यदि भय लगता है तो पाप से (मृत्यु से), भक्तों को मृत्यु का भय नहीं, वह तो निर्भय होता है।

"निर्भय कृष्ण मन्दिरम्"

तो सबसे पहले माँगा कि मैं अमर बन जाऊँ।

आपकी सृष्टि से पैदा होने वाले किसी जीव से मेरी मृत्यु न हो। न मैं दिन में मरूं, न रात में, घर में मरूं, न बाहर। अस्त्र से मरूं, न शस्त्र से। ब्रह्मा जी ने कहा तो फिर ये कैसे मरेगा? ब्रह्माजी ने सोचा आज तक किसी ने मेरी इतनी तपस्या नहीं की, वरदान तो दे ही देते हैं। आगे नारायण जाने। जब सन्त पर कोई आपदा आती है, तो भगवान् पर डाल देते हैं। तथास्तु कहा ब्रह्मा जी ने और हिरण्यकश्यपु को वरदान मिल गया।

शक्ति मिलते ही देवताओं को कष्ट देना प्रारंभ कर दिया। देवताओं को तंग किया सबको अपनी सेवा में लगा दिया, सभी देवता भगवान् के पास गए और दुष्ट के उद्धार की प्रार्थना की। भगवान् ने कहा, अभी इसे नहीं मारूँगा क्योंकि अभी इसके पाप का घड़ा भरा नहीं।

बहुत से लोग कहते हैं जो भगवान् के दर्शन नहीं करता, मंदिर नहीं जाता उसके जीवन में कितनी सुख-शांति हैं और जो पूजा करता है, जप, पाठ करता हैं। उसके जीवन में कष्ट क्यों आते हैं? प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण।

देखिए गीता में भगवान् कहते हैं, पाप और पुण्य ये व्यक्ति के दो काल चलते हैं। जिस समय व्यक्ति का पुण्य काल चलता है जो अर्जित पुण्य हैं। उस समय व्यक्ति के पाप का तुंरत फल नहीं मिलता और जब उसका पाप काल चल रहा होता हैं। तो उस समय पुण्य करे तो संचित हो जाता है, परन्तु उस समय जो पाप ज्ञान से अज्ञान से बनते हैं। तो उसे भोगना ही पड़ता है।

भगवान् कहते हैं, इसके पाप का घड़ा नहीं भरा, हिरण्यकश्यपु के पाप अभी बाकी हैं। जब मेरे भक्त प्रह्लाद को ये कष्ट देगा तब मैं इसका संहार करूँगा।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

हिरण्यकश्यपु का अत्याचार प्रह्लाद के गुणों का वर्णन

शुकदेव जी कहते हैं कि राजन हिरण्यकश्यपु के चार पुत्र थे जिनमें सबसे छोटे थे प्रह्लाद जी, बाल्यपन से ही सतही भगवत प्रेमी थे। एकांत बैठ जाते थे, कभी रोते थे, हंसते थे, नाचते थे तो कभी गाते थे प्रह्लाद जी महाराज। एक दिन माँ कयाधू ने देखा और कहा कि मेरा पुत्र प्रह्लाद कभी नाचता है, गाता है कभी बेहोश सा हो जाता हैं। अपने पति से कहा कि देखो जो अब तो ये बड़ा हो गया हैं। यदि ये घर में रहा तो, ऐसा ही करेगा अतः इसे विद्यालय पढ़ने भेज दो।

"पौर हिताय भगवन्" तो शुक्राचार्य जी के दो पुत्र थे शण्ड और अमर्क जो एक गुरुकुल चलाया करते थे। उनको को बुलाकर कहा गुरुदेव मेरे पुत्र को ले जाएं और उचित शिक्षा प्रदान करें। गुरुदेव प्रह्लाद जी को गुरुकुल ले गए शिक्षा प्रदान करने के लिए।

अथ पंचमोऽध्यायः

हिरण्यकश्यपु के द्वारा प्रह्लाद के वध का प्रयत्न

दोनों ने प्रह्लाद जी को उच्च शिक्षा प्रदान की धर्म, अर्थ और काम। असुर शिक्षा प्रणाली में मोक्ष को छोड़कर आसुरी पद्धति से अधर्म, अर्थ औरकाम की शिक्षा प्राप्त करके जब प्रह्लाद अपने महलों में लौटे, तो माँ कयाधु ने स्नान कराया और अपने पुत्र को सुन्दर वस्त्र पहनाए। माँ ने कहा बेटा जाओ, तुम्हारे पिता सभा में बैठे हैं। प्रणाम करो पिताजी को। प्रह्लाद जी पिताजी महाराज को प्रणाम करने चल दिए। दूर से आते हुए प्रह्लाद को देखकर पिता सिंहासन से कूद पड़े। अपनी गोद में प्रह्लाद को उठा लिया, गोद में बिठाकर हिरण्यकश्यपु ने कहा, बेटा देखो सब विद्वान लोग सभा में बैठे हैं, बेटा तुम बहुत दिन से गुरुजी से शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, बताओ तुमने क्या सीखा, प्रह्लाद जी ने कहा, पिताजी एक बात पूछूँ? बोले हाँ। बेटा पूछो—प्रह्लाद जी ने कहा गुरु जी ने जो सिखाया वह बताऊँ या अपने मनसे जो शिक्षा मुझे अच्छी लगी वह सुनाऊँ?

हिरण्यकश्यपु स्वयं कभी विद्यालय में पढ़ने नहीं गया। किस विषय से पूछता, तो क्या पूछता इसलिए कहा बेटा तूने जो अच्छा सीखा वह बता। प्रह्लाद जी की इसमें क्या गलती। प्रह्लाद जी ने कहा—

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।
हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत।।

(श्रीमद्भागवतम् 7.5.5)

पिताजी मैंने जीवन में एक ही शिक्षा ली है कि जितना भी संसार के सम्बंध हैं, ये मेरा पति, पिता, पुत्र, परिवार इन सभी का इस देह से सम्बंध है, आत्मा से नहीं। पिताजी "वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत" मानव जीवन में यदि व्यक्ति को कुछ पाना हो तो इस अंधे कुएं को त्याग कर, आसक्ति और मोह के कुएं को त्यागकर (वनं गतो) वन में जाकर श्रीहरि की आराधना करें। जो अपने पुत्र के मुख से अपने वैरी का नाम सुना तो उसकी लाल आंखें निकल आईं। शण्डामरक की

ओर देखकर कहा गुरुदेव आपने मेरे पुत्र को मेरे वैरी का नाम लेना सिखा दिया। वे बोले महाराज मैंने आपके पुत्र को ऐसी कोई शिक्षा नहीं दी। इसकी शिक्षा अभी बाकी हैं। ठीक हैं। इसे ले जाओ और ठीक से शिक्षा देना, कि ये मेरी वैरी विष्णु का नाम न सीखे। प्रह्लाद गुरुजी के साथ वापिस गुरुकल चल दिए। पुनः शिक्षा प्राप्त कर लौट आए तो हिरण्यकश्यपु ने फिर प्रश्न किया बेटा क्या शिक्षा लेकर आए हो। प्रह्लाद जी ने कहा पिता जी मैंने एक ही शिक्षा ली है–

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 7.5.23)

पिताजी मैंने जीवन में एक ही शिक्षा ली है, भक्ति के जो 9 प्रकार हैं उन्हें नवधा भक्ति कहती हैं। 9 भक्ति का रास्ता है–पहली भक्ति है श्रवण करना, दूसरा है कीर्तन, तीसरी–विष्णु श्रवण, चौथी पादसेवा, पाँचवी–सेवा पूजा (अर्चनम्), छठी – वन्दन करना, सातवीं – दास्यं, प्रभु मालिक मैं द्वास, आठवीं – सयम्, प्रभु-प्रभु ही नहीं मेरा मित्र भी हैं। नौवीं हैं आत्मनिवेदन। तो प्रह्लाद जी महाराज ने हिरण्य कश्यपु को 9 भक्ति की महिमा के बाद प्रभु के नाम की महिमा बताई तो वह बोला कि यह पुनः मेरे बैरी का नाम ले रहा है। उसने सैनिकों को आदेश दिया कि मेरे चार पुत्र हैं। यदि एक नहीं रहेगा तो सन्तोष कर लूँगा पर अपने वैरी का नाम नहीं सुन सकता। सभी सैनिक प्रह्लाद पर वार करने लगे। शरीर में भाले मारने लगे। परन्तु आश्चर्य की बात शरीर से भाले लगते ही टूट-टूटकर गिर रहे हैं। ये भगवान् के नाम स्मरण भक्ति की महिमा हैं। ऐसी अवस्था में जब प्रह्लाद की मृत्यु नहीं हुई तो उन्हें आग में डाला गया। विष खिलाया पर हर स्थिति में भगवान् ने अपने भक्त की रक्षा की। वह ईश्वर स्मरण करते रहे, वही नाम उनकी रक्षा करता रहा।

बहुत से लोग कहते हैं। हमारे जीवन में बहुत कष्ट हैं, परन्तु जितना प्रह्लाद जी के जीवन में दुख, कष्ट हुआ शायद हमारे किसी के जीवन में नहीं। साक्षात् पिता उसका वैरी है, नन्हें बालक को भी मारना चाहा हर कष्ट सहते हुए प्रह्लाद ईश्वर स्मरण करते रहें तो स्मरण रहे कि कष्ट में ईश्वर नाम भजते रहें भूले नहीं। प्रह्लाद जी महाराज ने प्रभु का नाम स्मरण बंद नहीं किया।

उठते-बैठते ईश्वर स्मरण करते थे। एक दिन शण्डमरक आ गए और कहने लगे हिरण्यकश्यपु को, कि महाराज आप दुखी क्यों हैं? वे बोले गुरुदेव मैंने प्रह्लाद को मारने के अनेक उपाय किये पर वह नहीं मरा। गुरुदेव बोले, मेरे पिता अनेक विद्याएं

जानते हैं। इस समय वे बाहर यज्ञ के लिए गए हैं। आप ऐसा करें कि जब तक पिताजी न आएं तब तक हम इसे संभालते हैं, फिर पिताजी से अन्य उपाय पूछकर प्रह्लाद को मारने का उपाय ढूंढते हैं। तब तक आप इसे गुरुकुल में भेज दें। वह वापिस गुरुकुल चले गए। कमरे में प्रह्लाद जी को बंद कर दिया। समय पर भोजन वस्त्रादि दे दिए जाते।

एक दिन गुरुदेव ने पूछा बेटा प्रह्लाद तेरे ऊपर बहुत दया आती है, तू विष्णु का भजन करना छोड़ दे, प्रह्लाद ने कहा गुरुदेव मैं विष्णु का भजन नहीं छोड़ सकता, आप मुझे खाने, पीने को मत दो पर विष्णु का नाम छोड़ने को मत कहे मैं नाम लेना बंद नहीं कर सकता, गुरुदेव बोले तुझे मुझसे कुछ चाहिए तो माँग ले, बोला– गुरुजी मैं अंदर बैठकर नाम संकीर्तन करता हूँ मुझे एक नई करताल की जोड़ी ला दीजिए। देखिए भक्त का यदि संसार की वस्तु पर मोह होता है। भगवान् की सेवा में काम आने वाली वस्तु, प्रह्लाद ने, अपने लिए कुछ भी भोजन या वस्त्र नहीं माँगा। केवल माँगा करताल भगवान् के भजन के लिए। गुरुदेव ने मन में सोचा हमारा क्या बिगाड़ता है अंदर बैठकर कुछ भी करे। एक करताल दे दिया। प्रह्लाद अंदर बैठकर संकीर्तन करने लगे। बाहर से गुरु जी ने कुण्डी लगा दी।

अथ षष्ठोऽध्यायः

प्रह्लाद जी का असुर बालकों को उपदेश

एक दिन जब गुरुदेव विद्यालय में नहीं थे तो बालक स्वतंत्र हो गए, सारे दैत्य बालक बाहर निकलकर खेलने लगे सभी ने कहा कि सामने के कमरे में हमारा मित्र प्रह्लाद बंद पड़ा है उसे बाहर निकालकर खेलेंगे। दरवाजा खोलकर बाहर निकालकर कहा, चलो हमारे साथ खेले, प्रह्लाद जी ने कहा भईया मुझे ये सांसारिक खेल अच्छा नहीं लगता यदि तुम मेरा खेल खेलो तो मैं तुम्हारे साथ खेलूँ। सभी ने पूछा तुम्हारे गुरुदेव कौन हैं, जो तुम्हें यह खेल खिलाया, वे बोले मेरे गुरुदेव हैं। नारद जी।

यदि मेरे गुरुदेव का खेल देखना हो तो अपने अपने घर से ढोलक करताल, मंजीरा ले आओ। सारे दैत्य बालक गद्‌गद् हो गए। सब साज लेकर बैठ गए। बीच में बैठा दिया प्रह्लाद को। सभी दैत्य बालक प्रेम से प्रह्लाद जी के साथ गा रहे हैं। भजन करने लगे–

गीतम्

कन्हैया तुम्हें। एक नजर देखना है,
जिधर तुम छिपे हो उधर देखना है

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्णा हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे रहें।

प्रह्लाद जी महाराज भगवत नाम संकीर्तन कर रहे थे, असुर बालकों के साथ। उसी समय शण्ड–अमर्क आ गए। वे सोचने लगे अब तो इसने पाठशाला के सभी असुर बालकों को भी बिगाड़ दिया। बोले अरे हमने गुरुकुल खोला है या कीर्तन मंडली। कीर्तन बंद कराया। दौड़कर हिरण्यकश्यपु के पास गया और बोला, बुला लो अपने छोरे प्रह्लाद को, उसने तो सभी को विष्णु भक्त बना दिया। उसी समय सेनापति को भेजा, सेनापति जब गुरुकुल प्रांगण में पहुँचा तो वह स्वयं को भूलकर प्रह्लाद के साथ कीर्तन करने लगा। थोड़ी देर में कीर्तन बंद होने के बाद कहा आपको पिता जी ने याद किया।

प्रह्लाद जी ने सभी दैत्य बालकों से कहा, तुम सब मिलकर कीर्तन करो। मैं पिताजी से मिलकर आऊँ। वे बोले प्रह्लाद आपको जाने नहीं देंगे। मंडली से मंडलेश्वर के जाते ही मंडली बिगड़ जाएगी। हम सब कीर्तन करते हुए चलेंगे। प्रह्लाद जी ने कहा मेरे नाम लेने से पिताजी नाराज थे सब को देखेंगे तो अधिक गुस्सा करेंगे। तुम सब यहीं रहो।

परन्तु किसी ने एक न मानी, कीर्तन करते हुए सभी बालक जब चले तो हिरण्यकश्यपु ने जब नाम संकीर्तन सुना तो उसके मुख से भी प्रभु का नाम निकल गया। थोड़ी देर में उसे याद आया कि अरे मैं भी पागल हो गया जो बैरी विष्णु का नाम लेने लगा। ज्यों दैत्य बालक ने हिरण्यकश्यपु को देखा तो राजा आ गए कहकर भाग गए। अकेले प्रह्लाद खड़े हैं। वे बोले बेटा, ये विष्णु का भजन क्यों करता है ? इसे छोड़ दे। प्रह्लाद जी ने कहा मैं एक क्षण भी विष्णु भजन नहीं छोड़ सकता। देख प्रह्लाद तू कहता है विष्णु–विष्णु–विष्णु मैंने इसे सब जगह ढूँढा हैं यह मुझे नहीं मिला बता, यह कहाँ रहता है?

प्रह्लाद जी ने मन में सोचा कि मेरे पिता कौन को सोच रहे हैं? विष्णु को। विष्णु माने व्यापक मेरे पिताजी उस व्यापक को ढूंढ रहे हैं। जो सर्वत्र विराजमान है।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम सों प्रगटहि मैं जाना

यदि राम को पूछते तो बता देता अयोध्या, यदि कृष्ण को पूछते तो बता देता वृन्दावन धाम, परन्तु मेरे पिता विष्णु को पूछ रहे हैं। क्या बताऊँ–बोले, पिताजी विष्णु व्यापक हैं। आपके अंदर भी है मेरे अंदर भी। तब तो प्रह्लाद मेरे हाथ में

जो तलवार हैं। वह तेरी गर्दन पर पड़ने वाली है क्या इस तलवार में भी तेरा विष्णु हैं। प्रह्लाद जी ने कहा पिता जी हाँ इस तलवार में भी भगवान् विष्णु हैं। तो जब तलवार में भगवान् है तो इस खम्भे में भी तेरा भगवान् है, प्रह्लाद जी ने कहा पिताजी–

"मो में तो मैं खड़क खंभ में, जहाँ देखे तहाँ राम है"

मेरे विष्णु मेरे राम सर्वत्र हैं। आपमे मुझमें सर्वव्यापक हैं। पिताजी मेरी आँखों से देखो तो आपको साक्षात् विष्णु दर्शन होगा। उस व्यापक विष्णु का दर्शन होगा।

देख प्रह्लाद तेरा विष्णु व्यापक है इस खम्भे से प्रकट होना चाहिए। हिरण्यकश्यपु ने दौड़कर मुष्टि से खंभ पर प्रहार किया तो उसी समय चारों दिशाओं से गूँज करते हुए नृसिंह भगवान् प्रकट हुए जिनका शरीर मानव का सिर सिंह का, बोलिए नरसिंह भगवान् की जय।

नरसिंह देव भगवान् का दर्शन जब हिरण्यकश्यपु ने किया तो बोले हाँ ये विष्णु है परन्तु न ये नर है न पशु, आज मैं भाई की मृत्यु का बदला इस नरसिंह से लूंगा। बार–बार भगवान् को लड़ने के लिए ललकारने लगे। सभी देवता प्रार्थना करने लगे, भगवान् भी खंभे से बाहर कूद गए। भगवान् नृसिंह और हिरण्यकश्यपु में युद्ध हुआ। अंत में भगवान् ने दोनों हाथों से उठाकर हिरण्यकश्यपु को मुख्य दरवाजे पर बैठ गए। गोद में बैठाकर भगवान् बोले तूने ब्रह्मा से वरदान माँगा था कि आपकी सृष्टि में पैदा होने वाले किसी जीव से मेरी मृत्यु नहीं तो मैं ब्रह्मा की सृष्टि से नहीं खंभे से निकला हूँ न मैं नर हूँ न पशु। नृसिंह हूँ न घर में हूँ न बाहर बीच दरवाजे पर है, न भूमि पर न आकाश बल्कि मेरी गोद में हैं। न दिन है न रात संध्या समय, न अस्त्र से मारूंगा न शस्त्र से। ऐसा कहते ही नख प्रकट करके भगवान् ने हिरण्यकश्यपु की छाती फाड़ दी। आँत निकालकर गले में पहन लीं भगवान् ने अपने भक्त के पिता को सम्मान देते हुए आँतें गले में पहन ली। बोलो नृसिंह भगवान् की जय।

अथ सप्तमोऽध्याय:

प्रह्लाद जी द्वारा माता के गर्भ में प्राप्त हुए नारदजी के उपदेश का वर्णन

अथा अष्टमोऽध्याय:

नरसिंहदेव का प्राकटय् एवं देवताओं द्वारा स्तुति

अथ नवमोऽध्यायः

प्रह्लादजी द्वारा भगवान् नृसिंह की स्तुतिः

प्रह्लाद जी महाराज इस अद्‌भुत सुन्दर दृश्य को देख रहे हैं। देवता भगवान् की प्रार्थना कर रहे हैं। परन्तु सब भयभीत हैं। भगवान् का क्रोध तेज है पृथ्वी में भी कंपन हैं। ब्रह्मा जी शान्त करने की प्रार्थना करते हैं, ब्रह्मा जी ने प्रह्लाद से कहा है प्रह्लाद तुम भगवान् को शान्त करो प्रह्लाद जी ने कहा—

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः।।
(श्रीमद्‌भागवतम् 7.9.8)

प्रह्लाद जी ने कहा प्रभु आपने मेरे ऊपर कितनी कृपा की, जो आज मुझे दर्शन देकर कृतार्थ किया। भगवन मैं तो एक अज्ञानी बालक हूँ। मेरे अंदर कोई ज्ञान नहीं। दैत्युकुल में मेरा जन्म हुआ पर मैं जानता हूँ कि एक ब्राह्मण है, ब्राह्मण के अंदर ब्रह्मणत्व है जिसके अंदर आपके चरणकमलों का प्रेम नहीं तो आप उस ब्राह्मण से प्रसन्न नहीं होते। आपने मुझे दर्शन देकर मेरी प्राण रक्षा करके मुझ पर कृपा की। भगवान् ने कहा तू मुझसे वर माँग ले।

अथ दशमोऽध्यायः

प्रह्लाद जी का राज्याभिषेक और त्रिपुर दहन की कथा

यदि दास्यसि मे कामान्वरांत्वं वरदर्षभ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्।।
(श्रीमद्‌भागवतम् 7.10.7)

प्रभु यदि आप मुझे वरदान देना चाहते हैं तो दीजिए मेरे अंदर कोई कामना जाग्रत न हो। भगवान् ने कहा बेटा ये तो तूने कोई वरदान नहीं माँगा, प्रह्लाद जी ने कहा प्रभु माँगू। भगवान् बोले, हाँ बेटा माँग, तो प्रह्लाद जी ने कहा कि मुझे वरदान दिजिए कि मेरे पिता ने आपका बहुत अपमान, तिरस्कार किया जो जो आपका अपमान करता हैं। वह नरक को जाता है ऐसा मैंने सुना है, परन्तु मेरे पिता के साथ ऐसा न करना। भगवान् कहते हैं, धन्य है प्रह्लाद धन्य हैं। हिरण्यकश्यपु के पुत्र जिस पिता ने पुत्र को इतने कष्ट दिए फिर भी पिता के

लिए नरक नहीं माँगा। भगवान् रोने लगे यह सुनकर और बोले–

त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ।
यत्साधोऽस्य कुले जातो भवान्वै कुलपावनः।।

(श्रीमद्भागवतम् 7.10.18)

प्रह्लाद तू अपने पिता की बात करता है, परन्तु मैं आज से तेरे वंश की 21 पीढ़ियां ही पवित्र करता हूँ। तेरे कुल में मेरा कोई भी अपमान करेगा मैं प्राणदंड नहीं दूँगा। तू राजसुख भोग और अंत में परम धाम को प्राप्त करेगा। ऐसा कहकर अंर्तध्यान हो गए। बोलो नृसिंह भगवान् की जय।

अथ एकादशोऽध्यायः

मानवधर्म, वर्णधर्म और स्त्रीधर्म का निरुपण

अथ द्वाद्वशोऽध्यायः

ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

यति धर्म का निरूपण और अवधूत प्रह्लाद संवाद

युधिष्ठिर महाराज ने नारद जी से मानव के विषय पर प्रश्न किया। वर्णाश्रम के विषय में स्त्री धर्म का निरूपण भी किया। नारद जी कहते हैं। युधिष्ठिर–

"धर्ममूलं हि भगवान्सर्ववेदमयो हरिः।"

(श्रीमद्भागवतम् 7.11.7)

धर्म के मूल में भगवान् स्वयं हैं। और उन भगवान् के शरीर में समस्त देवताओं का वास है। मानव को धर्म में ही जीवन यापन करना चाहिए। धर्म परायण होना चाहिए। मानव का धर्म सत्य, दया, तप, शौच, अस्तेय, तितिक्षया, क्षमा, दया ये सब गुण मानव जीवन में होने चाहिए। युधिष्ठिर अहिंसा मानव का परम धर्म होना चाहिए। किसी भी जीव के प्रति हिंसा न हो। हर मानव को एक समय तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। त्याग ही मानव का परम भूषण हैं। स्वाध्याय तो साधनशील भजन से भक्तों का जीवन होना चाहिए। नारद जी कहते हैं कि–

"ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दानतो गुरोर्हितम्।"

(श्रीमद्भागवतम् 7.12.1)

ब्रह्मचारी को गुरुकुल में रहकर गुरु के आदेश पर जीवन–यापन करना होता हैं। गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए ब्रह्मचारी 25 वर्ष तक गुरु की आज्ञा का पालन करे। गुरु द्वारा दी वस्तु ग्रहण करे।

जो गुरु ने नहीं दिया वह वस्तु कभी ग्रहण न करे।

नारद जी कहते हैं, एक बार प्रह्लाद महाराज ने एक अवधूत को देखा और वे सोचने लगे कि अरे इनका शरीर तो भोगी जैसा है ये खाता है क्या? पीता है क्या? ऐसा योगी का तो शरीर नहीं होता।

"भोगिनां खलु देहोऽयं पीवा भवति नान्यथा।"

(श्रीमद्भागवतम् 7.13.17)

प्रह्लाद जी ने कहा, बाबा क्या खाते हो? क्या पीते हो? बाबा आपका शरीर तो भोगी जैसा है, तो उस अवधूत ने प्रह्लाद जी को उत्तर दिया।

"पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम्।"

(श्रीमद्भागवतम् 7.13.32)

उस अवधूत ब्राह्मण ने कहा हमने धनी के धन इकट्ठा करने का क्लेश देखा। धन इकट्ठा करने में क्लेश होता है, खर्च करने में क्लेश होता हैं। शत्रु से, चोरों से, सज्जनों से जो दस्यु के रूप में हो, धन को संभालना होता है, इसलिए हमने मधुकर और सर्प को सबसे उत्तम गुरु के रूप में मान लिया है।

"मधुकारमहासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ।"

(श्रीमद्भागवतम् 7.13.35)

अजगर यथा समय में भोजन प्राप्त कर लेता है कहीं नौकरी चाकरी नहीं करता और मधुकर फूलों में बैठकर मधु संग्रह करता है और कोई दूसरा मधु ले जाता है उस मधुकर को कुछ नहीं प्राप्त होता हैं। इसलिए अवधूत ने कहा न तो मैं कुछ भी संग्रह करता हूँ न शरीर का ध्यान रखता हूँ। जो भी प्रसाद के निमित्त प्राप्त होता है ग्रहण कर लेता हूँ। रुखा सूखा खाके ठंडा पानी ले लेता हूँ।

अथ चर्तुदशोऽध्यायः

गृहस्थ संबधी सदाचार

अथ पंचदशोऽध्यायः

गृहस्थों के लिए मोक्षधर्म का वर्णन

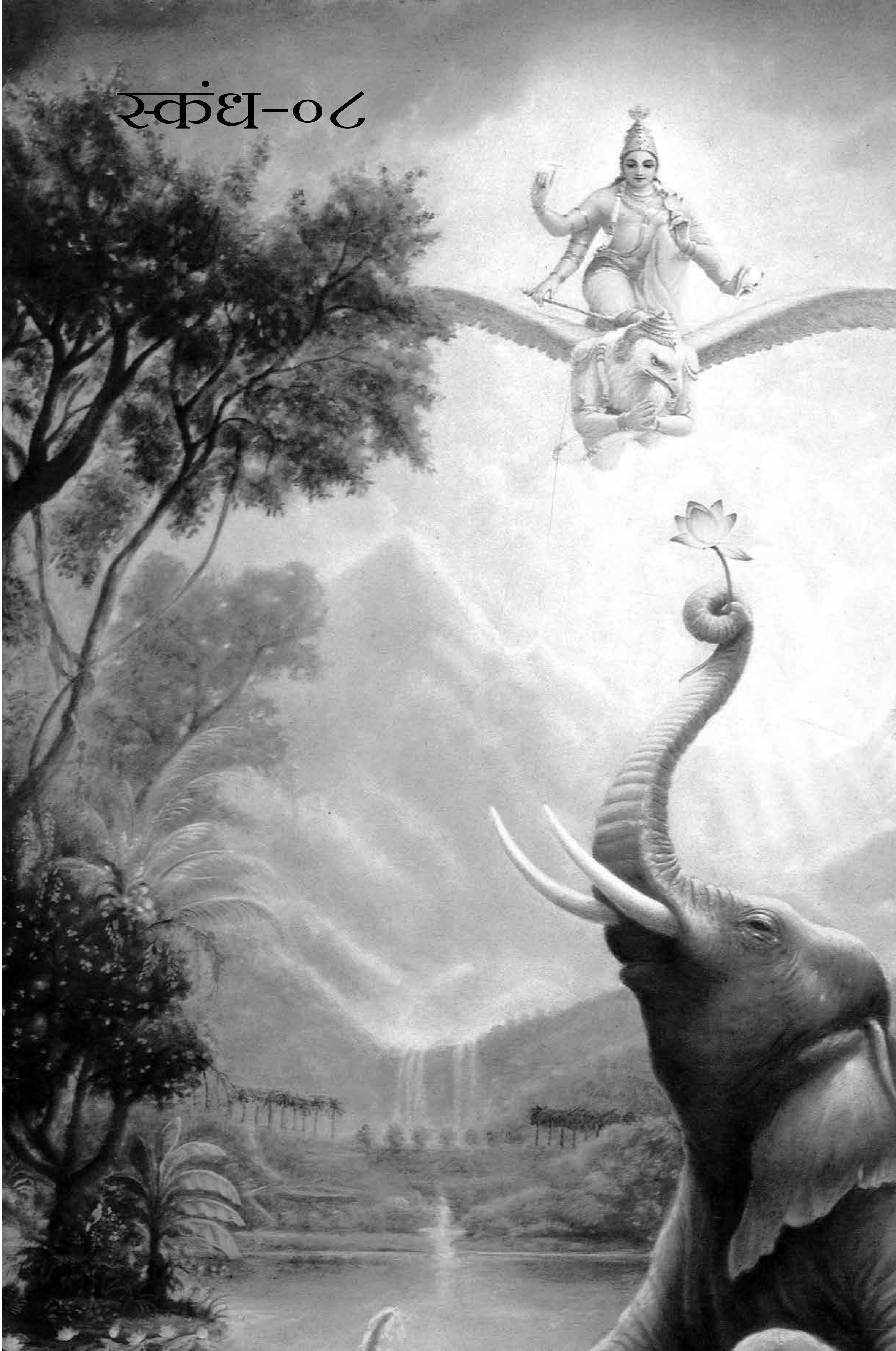
इसमें नारद जी युधिष्ठिर जी को समझाते हैं, युधिष्ठिर गृहस्थ जीवन में सदाचार

की बड़ी आवश्यकता हैं। सदाचार ही गृहस्थ जीवन के सुख की शांति की चाबी हैं। जो व्यक्ति सदाचारी है उसके घर में लक्ष्मी का वास हैं। जहाँ लक्ष्मी का वास है वहाँ ही नारायण भी रहते हैं। अतः व्यक्ति का सदाचारी होना आवश्यक हैं। सत्य, न्याय, नीति को अपनाकर व्यवहार में लाने को सदाचार कहते हैं। सदाचारी व्यक्ति प्रभु को बहुत प्यारा है।

जो गृहस्थ सदाचार में रहकर धर्म, अर्थ, काम को यथावत नियमित रूप से पालन करता है वह गृहस्थ मोक्ष को प्राप्त करने में कष्ट नहीं प्राप्त करता। गृहस्थ में रहकर धर्म परायण होना, अर्थ को धर्म में लगाना, धर्माचरण करना, अर्थ का सद्‌गति है। कामनाओं, वासनाओं की पूर्ति करते हुए ग्रहस्थ प्रभु का शरणागत हो जाए प्रभु को न भूले। अंत में मुक्ति पाना कठिन नहीं होता। चार पुरुषार्थ, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में मोक्ष अंतिम पुरुषार्थ है, मोक्ष, हर जीव को अंत में इस अंतिम पुरुषार्थ की ओर चलना ही चाहिए यही, गृहस्थाश्रम में रहते हुए मानव की सफलता है।

इति सप्तम स्कन्धः समाप्तः

स्कंध-०८



अष्टम स्कन्ध

प्रथमोऽध्यायः

मन्वन्तरों का वर्णन

द्वितीयोऽध्यायः

ग्रह के द्वारा गजेन्द्र का पकड़ा जाना

राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से कहा महाराज आप मुझे मन्वन्तर का वर्णन सुनाएं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन अब तक 6 मन्मन्तर व्यतीत हुए–स्वयंभू, सरुचि, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुश।

तामसमन्वन्तर में श्रीभगवान् ने हरि रूप धारण किया कि–

"आसीद्गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः।"

(श्रीमद्भागवतम् 8.2.1)

क्षीर सागर में एक त्रिकूट नामक पर्वत था। राजन इस पर्वत पर गजेन्द्र अपने परिवार सहित निवास करते थे। एक बार ये गजेन्द्र अपने परिवार को लेकर त्रिकूट पर्वत पर एक सिद्ध जल के सरोवर में जल क्रीड़ा के लिए गए। परिवार के साथ जलक्रीडा कर रहे थे। सूंड में जल भरकर हथिनी, बच्चों पर जल डाल रहे थे। उस गजेन्द्र को जल क्रीड़ा करते हुए एक ग्रह ने देखा। उस मगरमच्छ ग्रह ने आकर गजेन्द्र के पाँव को पकड़ लिया।

"ग्राहो बलीयांश्चरणे रूषाग्रहीत्।"

(श्रीमद्भागवतम् 8.2.27)

उस बलवान मगरमच्छ ने गजेन्द्र के चरण को पकड़ लिया। गजेन्द्र ने देखा मेरा पैर किसी ने पकड़ा है? उसने सोचा मैं तो यहाँ का राजा हूँ, बलवान हूँ किसी छोटे जीव ने मेरा चरण पकड़ा होगा बाद में बोलेगा कि महाराज माफ कर दो। ऐसा सोचकर गजेन्द्र ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। देखिए जब हमारे चरण यानी पैर ही जवाब देते हैं। तो यानी हमारा अंतिम समय ही आ रहा हैं। मृत्यु का सन्निकाट हो रहा है। प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण। एकादशी के दिन में साधक भक्तों को हरि के काम को छोड़कर अन्य साधारण काम नहीं करना चाहिए। हरि का ही कर्म करें, भजन करें। मनसा वाचा कर्मणा से हरि के काम में, नाम में लग जाओ। कम से कम एकादशी तो ठाकुर जी को दे दो।

उस गजेन्द्र का चरण ग्राह ने पकड़ लिया, 1000 वर्षों का युद्ध चलता रहा। गजेन्द्र की समझ में आया कि मेरा चरण किसी साधारण जीव ने नहीं किसी बड़े मगर ने पकड़ा हैं। ये हाथी अपने चरण छुड़ाने के लिए चिंघाड़ने लगा। हाथी अपने मित्र, पत्नी, बच्चे सभी को मदद के लिए पुकारने लगे। पत्नी बेचारी सूड से सूंड पकड़कर खींचने लगी मगरमच्छ से मुक्त कराने के लिए, परन्तु गजेन्द्र मुक्त नहीं हो पाए। जल में बलवान मगरमच्छ हाथी को जल के अंदर खींचकर ले जाने लगा। गजेन्द्र अपने पुत्र और पत्नी की ओर चीत्कार करने लगे। आर्तनाद करने लगे। पत्नी और बच्चों ने कहा बाबूजी आप तो निकलेंगे नहीं हम कब तक यहाँ रहें। हम जा रहे हैं। गजेन्द्र को ग्लानि हुई कि जिस परिवार की मैं रक्षा करता हूँ, संकट समय हमें छोड़कर चल दिया। गजेन्द्र ने भगवान् का स्मरण किया।

अथ तृतीयोऽध्यायः

गजेन्द्र द्वारा भगवान् की स्तुति और संकट से मुक्त होना

"जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्।"

(श्रीमद्भागवतम् 8.3.1)

पूर्व जन्म के सुकृत्य के फल से गजेन्द्र हाथी ने भगवान् को स्मरण किया, प्रार्थना की अपनी रक्षा के लिए दिव्य मन्त्र जाप किया। गजेन्द्र कहते हैं कि प्रभु मेरी रक्षा करें, रक्षा करें। अपनी सूंड में एक पुष्प उठाया, भगवान् का स्मरण करके "जजाप परमं जाप्यं" उस परम मन्त्र का जाप किया। गजेन्द्र कहते हैं–

"ॐ नमो भगवते तस्मै यत एततच्चिदात्मकम्।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि।।"

(श्रीमद्भागवतम् 8.3.2)

गजेन्द्र ने भगवान् की उद्देश्य से तो पुकारा परंतु नाम नहीं लिया। आकाश मार्ग में भीड़ लग गई सबने सोचा हमें बुला रहे हैं। किसी के नाम न होने से कोई आगे न हुआ। नारायण ने सोचा सबके मूल में तो मैं ही हूँ वह नाम नहीं ले पाया तो क्या है, "यत एतत चिदात्मकम्" सबका चित्त मैं हूँ आदि मैं हूँ अत: मेरा जाना ही उचित हैं। भले ही देवता खड़े रहें। भगवान् तुरंत गजेन्द्र की आर्त प्रार्थना सुनकर चल दिये भक्तों की रक्षा करने के लिए।

गीतम्

मानो गजेन्द्र प्रार्थना कर रहे हैं–

हे गोविन्द राखो शरणअब तो जीवन हारे,
हे गोविन्द, हे गोपाल अब तो जीवन हारे
अबकी बार पार करो नन्द के दुलारे
हे गोविन्द, हे गोपाल अब तो जीवन हारे।

गजेन्द्र भगवान् को आर्तनाद से प्रार्थना कर रहे हैं। भगवान् कहते हैं। जो मेरा आर्त भक्त है उसके लिए मैं जल्दी पहुँचता हूँ, जो मेरा अर्थार्थी भक्त है उसे मैं साधना पूर्ण होने पर ही दर्शन देता हूँ। जो मेरा जिज्ञासु भक्त हैं, उन्हें मैं तत्व ज्ञान के द्वारा अप्रत्यक्ष ज्ञान कराता हूँ और जो मेरा ज्ञानी भक्त है उनके मुख से मैं बानी के रूप में प्रकट होता हूँ। तो भगवान् ने गरुड से कहा भैया चलो, तो गरुड को अभिमान हो गया, उसने मन में सोचा कि मैं न जाऊँ तो भगवान् नहीं जा पाएँगे। गजेन्द्र ने मेरा नाम तो लिया नहीं। गरुड़ ने कहा भगवन मरे पास समय नहीं हैं। गरुड़ ने सोचा कि भगवान् का नाम तो लिया कि आप ब्रह्मा हैं, शिव हैं, पर मेरा नाम एक बार भी नहीं लिया, मैं तो चालक हूँ ना। भगवान् मेरे बिना कैसे पहुँचेंगे। भगवान् गरुड के अभिमान को एक क्षण में समझ गए। गरुड की पीठ पर एक उंगली रखकर भगवान् ने कहा उड़, तो उड़ने के लिए वह बहुत फड़फड़ाया पर उड़ न सका। अब गरुड का अभिमान जाता रहा, उसे गलती का अनुभव हुआ कि मैं भगवान् की एक उंगली भी नहीं उड़ा पा रहा, उसकी आंखें छलछला आई। भगवान् भक्तों के अहंकार को जगह नहीं देता उसे मन से जल्दी निकाल देता है। भगवान् ने कहा अरे क्या हुआ गरुड़ उड़। तू अभिमान करता है कि, तू मुझे, उड़ाता है तेरी कृपा से मैं उड़ता हूँ। अरे गरुड़ तू मुझे क्या उड़ाएगा, मैं ही तुझे अपने चरण के आश्रय रखकर उड़ाता हूँ।

गरुड ने अपने अहंकार को स्वीकार किया। नारायण आकाश मार्ग में आकर खड़े हो गए। बोलो भगवान् नारायण की जय।

उसी समय भगवान् ने कालक्षेप न करते हुए अपने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी उस चक्र ने ग्रह का मस्तक धड़ से अलग कर दिया। उस ग्रह ने दिव्य शरीर प्राप्त करके भगवत धाम प्राप्त किया।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

गज और ग्रह का पूर्व चरित्र तथा उनका उद्धार

योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक्।
मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तम्ः।।

(श्रीमद्भागवतम् 8.4.3)

देवल ऋषि के शाप से 'हू हू' गन्धर्व ने ग्राह का जीवन प्राप्त किया था, जो इस सरोवर में वास करते हुए श्री भगवान् की कृपा की प्रतीक्षा कर रहे थे, आज भगवान् श्री नारायण के चक्र के स्पर्श से देवल ऋषि के श्राप से मुक्त हुए ग्राह दिव्य शरीर को धारण करके मुक्त होकर परम धाम गए। भगवान् के चरणों में प्रणाम करते हुए जब ग्रह की मृत्यु हो गई और दिव्य शरीर लेकर चले गए तब भगवान् सरोवर की सीढ़ियों से नीचे उतरे। गजेन्द्र ने भगवान् को अपने सूंड से उस पुष्प को भेंट किया। भगवान् ने देखा कि 1000 वर्ष से युद्ध कर रहा था। सारा शरीर कीचड़ में था। बार-बार गजेन्द्र पैर निकालने के लिए प्रयासरत था पर पैर कीचड़ में फंसा था। भगवान् सरोवर की सीढ़ियों से नीचे उतरे। यों गजेन्द्र ने अपना पैर उठाया यहाँ सन्त, महात्मा अपना मत देते हैं कि भगवान् गजेन्द्र को कीचड़ से बाहर निकालना चाहते हैं। भगवान् ने उसके पैर का स्पर्श किया जैसे ही गजेन्द्र ने कीचड़ से अपना पैर निकाला।

अब गजेन्द्र के हाथ तो हैं नहीं वह पशु है, हाथी है, उसने पैर ही उठाया, जब पुकारा गजेन्द्र ने, हरि ही आ गए। भगवान् ने स्पर्श किया तो गजेन्द्र ने पशु शरीर छोड़ दिया, दिव्य शरीर धारण करके भगवान् को प्रणाम करने लगे।

शुकदेव महाराज कहते हैं। राजन, गजेन्द्र मोक्ष की कथा है श्रीमद्भागवत में। रात्रि में यदि कोई दु:स्वप्न देखे तो प्रात:काल हरि मंदिर में इस कथा के पाठ से बुरे स्वप्न का दोष दूर हो जाता हैं और कितना भी व्यक्ति का बंधन क्यों न हो, लड़ाई-झगड़ा हो, मुकदमा हो इस गजेन्द्र मोक्ष का पाठ 11 पाठ रोज हरि को सुनाए तो उसके जीवन के सारे क्लेश मिट जाएँगे। सब बन्धन मुक्त हो जाएँगे।

इन्द्रद्युम्न राजा जो अगस्त्य ऋषि के श्राप से गजेन्द्र के रूप में त्रिकूट पर्वत पर रहते थे। आज भगवत कृपा से अगस्त्य ऋषि के श्राप का अंत हुआ। पुनः राजा इन्द्रद्युम्न हाथी शरीर से मुक्त होकर देवयोनि को प्राप्त हुए।

स वै पूर्वमभूद्राजा पाण्ड्यो द्रविडसत्तमः।
इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः।।

(श्रीमद्भागवतम् 8.4.7)

इन्द्रद्युम्न राजा द्रविड़ में राज्य करते थे, भगवान् विष्णु के परम भक्त थे। राज पाट छोड़कर राजा निश्चेष्ट शान्त होकर भगवान् का ध्यान करते थे। एक दिन अगस्त्य ऋषि ने देखा ये राजा होकर तपस्वी की तरह आँख बंद करके उपासना कर रहे हैं, प्रजा की तरफ कोई ध्यान नहीं, हाथी की तरह आँख बंद करके बैठा है, तो ऋषि ने देखा कि मेरी तरफ ध्यान नहीं दे रहा "विप्र अवमानना" ऐसे राजा का तो कुछ करना चाहिए ऋषि ने श्राप दे दिया

"तमोऽस्त्रं यथा गजः स्तब्धमतिः स एव।"

(श्रीमद्भागवतम् 8.4.10)

जैसे तुम निस्तब्ध होकर कामकाज छोड़कर आँख बंद करके बैठे हो, तो जाओ गज बन जाओ। महात्मा की इच्छा से गज बने थे, पर महात्मा का श्राप और आशीर्वाद दोनों का फल एक ही हैं। वह फल है हरि कृपा। अगस्त्य ऋषि के श्राप के फल से राजा इन्द्रद्युम्न हाथी बनकर भगवान् की कृपा प्राप्त कर ली। राजा ने मनुष्य शरीर में तो चिन्तन किया भगवन का, किन्तु सन्तों की कृपा से अगले नीच जन्म में पशु जन्म में भगवत प्राप्ति हुई, ये सन्त कृपा है। सन्तों की कृपा तो श्राप और आशीर्वाद दोनों में हैं।

जैसे देवल ऋषि के श्राप से हूहू गंधर्व को मगरमच्छ बनना पड़ा वास्तव में हूहू गन्धर्व देवलोक में सबको हँसाता हैं। साथ में हा हा हैं। दोनों सबको हँसाते हैं। एक दिन देवल ऋषि नदी (मंदाकिनी) में स्नान कर रहे थे। हू हू ने देखा स्वामी जी तप कर रहे हैं, तो पानी में उन्हें हँसाता हूँ। पानी में डुबकी लगाकर ऋषि के चरण पकड़ लिए। देवल ऋषि ने डरकर श्राप दे दिया जा तू मगरमच्छ बन जा। अब हूहू गन्धर्व जल के ऊपर आए और कहा मेरा काम हंसाना है मैं तो आपको हंसा रहा था। ऋषि ने कहा श्राप तो व्यर्थ नहीं जाएगा। तुम नारायण की कृपा से मुक्त हो जाओगे। वे ही हूहू मगरमच्छ बने गजेन्द्र के चरण पकड़े नारायण के स्पर्श से मुक्त होकर नारायण धाम गए। सन्तों की यही कृपा है कि श्राप और आशीर्वाद दोनों भगवत्प्राप्ति का मार्ग हैं।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन्, ये सरोवर संसार है–गजेन्द्र जीव है, ग्राह भी जीव है, संसार रूपी सरोवर में ग्रह और गजेन्द्र गोता लगा रहे थे। इस संसार रूपी

सरोवर में जीव भी गोता लगा रहे हैं। भगवान् के काल चक्र अनिमिष घूम रहा है, सबकी आयु का हरण कर रहा हैं। हरि की कृपा से, सन्तों की कृपा से जैसे गजेन्द्र और ग्रह ने आत्मा का परम कल्याण किया। हरि कृपा प्राप्त की संसार रूपी मोह जाल से मुक्त होकर भगवत्धाम प्राप्त किया। ऐसे ही जीव को जीवन के किसी भी क्षण में सन्त का सान्निध्य प्राप्त हो जाए वह भगवत्धाम को प्राप्त हो जाए। सन्त के श्राप और आशीर्वाद से डरना नहीं चाहिए।

अथ पंचमोऽध्यायः

देवताओं का ब्रह्माजी के पास जाना और ब्रह्मकृत भगवान् की स्तुति

यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः।

(श्रीमद्भागवतम् 8.5.11)

राजा ने पूछा कि भगवान् आप मुझे मन्थन की कथा सुनाएं, शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन् एक बार देवता और दैत्यों में सागर मंथन हुआ, देखिए आज भी आपमें, हममें मन्थन हो रहा है, ये मथन क्या है? ये मनमन्थन हैं। व्यक्ति के अंदर देव और दानव बैठा हैं। कभी ये जीव व्यक्ति सुर बनने लगते हैं और कभी असुर। ये देव और दानव दोनों अंदर बैठे हैं। बुद्धि देवता है और मन दैत्य हैं। दोनों ही अंदर बैठे हैं। यानि बुद्धि से हम ठीक विचार करें तो अमृत फल की प्राप्ति होगी और मन के ऊपर चलने से हमें अच्छा फल तो मिल सकता है, परन्तु अमृत फल नहीं मिल सकता। तो देव बनो, इस बुद्धि को शुद्ध करो, परमात्मा के चरणों में मन लगाओ तो आप देव बन सकते हैं, यदि आप मन के अनुरूप चलोगे तो दैत्य जीवन ही रहेगा। अपने जीवन का मन्थन करो, ऐसा करने से अमृत फल की प्राप्ति होगी।

अमृत का अर्थ है अमर, देखो अमर व्यक्ति कौन है? अमर व्यक्ति वह है जिसका नाम अमर हैं। देह से कोई व्यक्ति आज तक अमर नहीं हुआ हैं। देह को तो मरना ही है, परन्तु जिसका नाम अमर है वह वास्तव में अमर है, महाराज परीक्षित आज भी श्रीमद्भागवत के माध्यम से अमर हैं। श्रीमद् भागवत जब आरंभ होता है तो कहा जाता है कि शुकदेव जी महाराज परीक्षित को भागवत सुना रहे हैं। परीक्षित को हजारों वर्ष हो गए परन्तु आज भी उनका नाम अमर है जिसका नाम अमर है वास्तव में वही

अमर हैं। (कीर्तियस्य स: जीवति) जिसकी कीर्ति अभी तक विद्यमान है वास्तव में वही व्यक्ति अमर है वही जीवित है।

"यदा दुर्वासरा: शापान सेन्द्रा लोकस्त्रयो नृप।
नि:श्रीकाश्चाभवंस्तत्र नेशुरिज्यादय: क्रिया:।।"

(श्रीमद्भागवतम् 8.5.16)

अथ षष्ठोऽध्याय:

देवताओं और दैत्यों का समुद्र मन्थन के लिए उद्योग करना

एक बार इन्द्र को दुर्वासा से शाप प्राप्त हुआ जिससे इन्द्र श्रीहीन हो गए। सभी देवता ब्रह्माजी को साथ लेकर भगवान् विष्णु के पास गए। भगवान् विष्णु ने कहा भाई, तुम दैत्यों के साथ मित्रता करो। वे बोले, जो हमारे शत्रु हैं। उनके साथ मित्रता कैसे? भगवान् विष्णु ने सुन्दर उपदेश दिया, उदाहरण दिया कि

अरयोऽपि हि सन्धेया: सति कार्यार्थगौरवे।
अहिमूषकवद्देवा ह्यर्थस्य पदवीं गतै:।।

(श्रीमद्भागवतम् 8.6.20)

श्री भगवान् ने कहा देखो इन्द्र, एक बांस की पिटारी थी, जिसमें साँप पहले से ही था। वह साँप अनेक प्रयासों के बाद भी बाहर नहीं निकल पाया। साँप बहुत परेशान था। इतने में एक चूहा वहाँ अंदर घुस गया। साँप ने सोचा यह मेरा भोजन है, लेकिन क्या करूँ बाहर नहीं निकल पा रहा। बुद्धिमान सर्प ने चूहे से दोस्ती की और कहा हम दोनों पिटारी में हैं, तुम ऐसा करो पिटारा में छेद कर दो, दोनों बाहर निकल जाएँगे। चूहे ने सोचा आज मेरा शत्रु मुझसे प्रेम से बात कैसे कर रहा है, परन्तु करें इससे बाहर निकलना तो सही हैं। चूहे ने ज्योंहि पिटारी में छेद किया तो सर्प पहले ही निकल गया। निकलकर छेद के सामने मुँह खोलकर चूहे को बाहर आने के लिए कहा, चूहे भाई बाहर आओ। चूहे ने देखा ये तो मुँह खोलकर मुझे खाने का इंतजार कर रहा है। चूहा चिंता करते-करते अंत में साँप के मुँह में चला गया और साँप उसे खा गया सर्प बुद्धिमानी से पिटारी से बाहर भी आ गया और भोजन भी कर लिया। सुनो इन्द्र इसी प्रकार इन देवताओं को दैत्यों से दोस्ती करनी हैं। जैसे सर्प ने चूहे से दोस्ती की। सर्प ने अपने कार्य को सम्पन्न किया भोजन भी किया इसी प्रकार तुम

देवता और दैत्य दोस्ती करके समुद्र मन्थन करो। इसी क्रिया से तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा। समुद्र से अनेक रत्न निकलेंगे, लालच नहीं करना। अंत में तुम्हें अमृत प्राप्ति होगी। भगवान् विष्णु की बात इन्द्र ने हृदयंगम किया। सभी देवताओं को समझाया। इन्द्र समस्त देवताओं को लेकर दैत्यराज के पास निहत्थे गए। कुछ दैत्य तो इन्द्र को देखकर मारने, पकड़ने दौड़े परन्तु दैत्यराज ने रोक लिया। इन्द्रादि समस्त देवताओं ने अभिवादन किया, समुद्र मंथन की बात छेड़ी, चलो समुद्र मंथन करें, जो निकलेगा आधा-आधा बांट लेना। दैत्यों के साथ दैत्यराज ने परामर्श किया सभी ने मिलकर मन्दर पर्वत को मथानी के रूप में, वासुकी नाग को रस्सी के रूप में बनाया परन्तु वह पर्वत इतना बड़ा और भारी था कि देवता, दैत्य मिलकर हिला नहीं पाए, तो भगवान् ने स्वयं देवता, दैत्यों में शक्ति संचार किया और स्वयं भगवान् सुर-असुरों के बीच में विशाल पर्वत को उठा लिया। भगवान् ने एक ही हाथ से पर्वत उठाकर समुद्र में रख दिया।

"गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तैनैकेन लीलया।"

(श्रीमद्भागवतम् 8.6.38)

देवता और दैत्यों में विवाद हुआ कौन कहाँ होगा। विष्णु की बात सुनकर देवता पूंछ की तरफ गए, क्योंकि देवता पूंछ को अशुभ मानते थे, अतः दैत्य वासुकि नाग के मुख के आगे रहे, देवता पूंछ की तरफ। समुद्र मन्थन शुरू हुआ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

समुद्र मंथन प्रारंभ, भगवान् शंकर का विषपान

घर्षण कार्य शुरू होते ही मन्थर पर्वत सागर में डूबने लगे। भगवान् ने स्वयं विशाल कछुआ रूप धारण करके पीठ पर धारण किया। पीठ पर घर्षण के कारण मानो भगवान् की पीठ की खुजली मिट रही है।

कृत्वा वपुः काच्छपमद्धुतं महत्
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार।

(श्रीमद्भागवतम् 8.7.8)

पुनः मन्थन आरंभ हुआ। अब भीषण घर्षण से उस वासुकि नाग के मुख से आग की ज्वाला निकलने लगी। नाग की ज्वाला से दैत्य जलने लगे। देवताओं को भी कष्ट होने लगा। ये सभी त्राहि-त्राहि करते हुए महादेव की शरण माँगने लगे। आग की दाह इतनी तेज थी कि सभी एक साथ महादेव को पुकारने लगे।

देवदेव महादेव भूतात्मन्भूतभावन।
त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद्विषात्।।
(श्रीमद्भागवतम् 8.7.21)

शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् उसी समय समुद्र में कालकूट नामक भयानक विष उत्पन्न हुआ। "कालकूटा उपस्थितम्" सभी प्रजा विष और वासुकि कि ज्वाला से परेशान हैं, देव, दानव सभी कष्ट पा रहे हैं। भगवान् शिव से सभी ने प्रार्थना की प्रभु रक्षा करें। भगवान् शिव ने पत्नीसे पूछा देवी क्या मैं विषपान करके सभी का कल्याण करूं? देवी भवानी विष भावन महादेव के प्रभाव को जानती थी और सभी के कष्टों का देखकर अनुमोदन किया, कि प्रभु जाइए, रक्षा कीजिए। भगवान् शिव ने अंजुलि में ही उस हलाहल विष को एकत्र करके भक्षण किया, परन्तु स्मरण हो आया अरे हृदय में भगवान् वास करते हैं। उसी समय कंठ में ही भीषण हलाहल स्थित कर दिया। नाम पड़ गया नीलकंठ।

यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम्।
(श्रीमद्भागवतम् 8.7.43)

सभी देवताओं ने देखा भगवान् शिव भयंकर, विशाल हलाहल विष का पान कर गए। कुछ देवताओं ने पूछा भगवन कोई परेशानी। भगवान् शिव ने कहा कुछ नहीं। देवादि देव भगवान् शिव में इतनी शक्ति है कि विशाल हलाहल को कण्ठ में रखकर जगत की रक्षा की और नाम दिया नीलकंठ।

अथ अष्टमोऽध्याय:

समुद्र से अमृत प्रकट होना, भगवान् का मोहिनी अवतार लेना

भगवान् शंकर के विषपान से, देवता, दैत्य सभी बहुत प्रसन्न हुए।

"प्रीतास्तेऽमरदानवा:" जब दोनों पक्ष प्रसन्न हो गए तो पुनः समुद्र मंथन शुरू हुआ। इस बार सिन्धु गर्भ से "हविर्धानी तातेऽभवत् कामधेनु" निकला। ये कामधेनु ब्राह्मण को दिया गया। ब्राह्मण इसे धारण करने योग्य माना गया। पुनः मन्थन कार्य प्रारंभ किया गया। अब की बार उच्चैश्रवाः नाम का घोड़ा निकला। इसे बलि से लेने का आग्रह किया गया। दैत्य राज बलि को दे दिया गया। पुनः मन्थन में ऐरावत हाथी निकला। यह हाथी देवपक्ष में आया देवराज इन्द्र को मिला।

पुनः मन्थन हुआ। इस बार कौस्तुभ मणि निकली। यह मणि पद्मराग युक्त बहुत सुन्दर है, जो भगवान् नारायण को अर्पित की गई। पुनः समुद्र मंथन का कार्य शुरू हुआ। अब पारिजात कल्पवृक्ष प्राप्त हुआ तो यह देवताओं को दिया गया। सुरलोक में स्थापित किया गया। अब मन्थन कार्य से सुन्दर अप्सराएं निकली ये भी देवताओं को प्राप्त हुईं, देवता प्रसन्न हुए। पुनः मन्थन शुरू हुआ।

रञ्जन्ति दिशः कान्त्या विद्युत्सौदामनी यथा।

(श्रीमद्भागवतम् 8.8.8)

अबकी बार महालक्ष्मी प्रकट हुई। जो साक्षात् भगवत परा है, भक्ति युक्त है, भगवान् नारायण की आदि शक्ति हैं, जिसके तेज से सिंधु में चारों तरफ विद्युत सी फैल गई। विद्युत चन्दन की तरह फैल गई। सब लोग प्रार्थना करने लगे कि–

हिरण्यगंभार्गां हरिणीं सुवर्ण जतस्त्रजान्।
चन्द्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो में आवह।।

लक्ष्मी के हाथ में सुन्दर वर माला है लक्ष्मी को देखकर सब चाहते हैं कि मेरा बन जाए।

आज लक्ष्मी पति चुनने के लिए माला हाथ में लिए आगे बढ़ रही हैं। ये महालक्ष्मी नारायण की ही तो हैं। परन्तु लीला में लक्ष्मी माधुर्य बढ़ा रही हैं। लक्ष्मी कौन नहीं चाहता? महान तपस्वी, देवता, योगी, भोगी, रोगी, देवता, दैत्य सभी को लक्ष्मी प्रिय हैं। लक्ष्मी ने देखाएक तपस्वी हैं। यह तपस्वी तो है, परन्तु इसमें क्रोध हैं। महालक्ष्मी ने इस तपस्वी, क्रोधी को छोड़ ओग निकल गई, फिर देवताओं को देखा, देखते ही देखते ललचा गए। शायद हममें से किसी को चुन ले। लक्ष्मी ने सोचा हैं तो देवता पर कामी। लक्ष्मी कामी, क्रोधी के पास नहीं रहती। आगे निकल गई। आगे देखा परशुराम को, ये भगवान् के रूप हैं, परन्तु ये हिंसा को अपनाते हैं और दया हीन हैं। ब्राह्मण होते हुए भी राजाओं की 21 बार हत्या की हैं। लक्ष्मी आगे निकल गई। आगे बैठै हैं मार्कण्डेय ऋषि। आंखें बंद करके मार्कण्डेय ऋषि ने भगवान् नारायण का ध्यान किया, लक्ष्मी ने देखा सब ने हमें देखा, सब ने हमें देखा, इसने तो ध्यान भी नहीं दिया आगे निकल गई। अब शंकर भगवान् दिखाई दिए, जिसने अभी-अभी जहर पीकर सबको जीवन दिया, परन्तु इनकी वेशभूषा अच्छी नहीं हैं।

यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमङ्गलः
सुमङ्गलः कश्च न काङ्क्षते हि माम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 8.8.22)

शंकर भगवान् तो देखने में सुन्दर हैं। सत्यं, शिवं सुन्दरं–परन्तु देवी लक्ष्मी को बाद्यम्बरधारी, सर्पाभूषणं, चिताभस्म लगा हुआ अच्छा नहीं लगा। आगे निकल गई।

आगे भगवान् नारायण विराजमान हैं, नारायण भगवान् को देखकर लक्ष्मी रुक गई। अपलक दृष्टि से देखने लगे, मानो इन्हीं का इंतजार कर रही हैं और भगवान् नारायण स्थिर भाव से खड़े हैं।

लक्ष्मी को याद आया कि ये मेरे पति के योग्य हैं। परन्तु सभी ने हमें देखा और चाहा परन्तु ये तो हमें चाहते नहीं। शुद्ध लक्ष्मी ने नारायण के गले में वरमाला डाल दी, इस प्रकार लक्ष्मी नारायण को प्राप्त हुई। पुनः मन्थन कार्य प्रारंभ हुआ। वारुणि देवी प्रकट हुए। सुन्दर कमला लोचना, हरि की इच्छा से दैत्यों ने उसे ले लिया। फिर मंथन कार्य आरंभ हुआ। धन्वंतरि नारायण प्रकट हुए। हाथ में सुन्दर अमृत कलश लेकर जो आयुर्वेदशास्त्र के भगवान् हैं।

"धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेदहृगिज्यभाव।"

(श्रीमद्भागवतम् 8.8.34)

धन्वतरि के हाथ में सुन्दर अमृत कलश देखकर देवता और दैत्य दोनों ही प्रलुब्ध हो गए। अमृत कलश प्राप्त करने के लिए आपस में झगड़ा करने लगे।

अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो।

(श्रीमद्भागवतम् 8.8.38)

मैं पहले पीऊँगा, पहले मैं पीऊँगा कहते–कहते झगड़ने लगे। धन्वन्तरि भगवान् अमृतकलश लेकर स्थित हैं। उसी समय आश्चर्यजनक घटना घटी। भगवान् विष्ण ु सुन्दर स्त्री रूप धारण करके प्रकट हो गए। जिस स्त्री रूप देखकर सभी असुर उस अमृत कुम्भ को भूल गए और सुन्दरंश्यामवर्णं स्त्री को देखकर, मोहिनी को देखकर आकृष्ट हो गए। श्री शुकदेव जी महाराज ने भगवान् मोहिनी का सुन्दर रूप का वर्णन किया। जिस मोहिनी रूप का दर्शन करके देवता और असुर प्रसन्न और आकृष्ट हुए बाद में भगवान् शिव ने विशेष रूप दर्शन की अभिलाषा प्रकट की। इस मोहिनी भगवान् ने, देवता और दानवों का मन, वासना, कामना में भर दिया।

"काममद्दीपयन्मुहुः।"

(श्रीमद्भागवतम् 8.8.46)

अथ नवमोऽध्यायः

मोहिनी रूप से भगवान् के द्वारा अमृत बांटा जाना

आपस में जो झगड़ा था, अमृत बँटवारे का समय में तो सभी बोलने लगे कि आप कौन हैं? आप कोई भी हो? आपके आगमन से हम समझ सकते हैं कि आप हमारे झगड़े के समाधान करते हुए हे देवि, समान रूप से अमृत बँटवा दीजिए। मोहिनी रूप भगवान् ने कहा अरे कश्यप पुत्रों तुम लोग हमें विश्वास करके ये बहुत बड़ा काम दे रहे हो, अमृत बांटने का हम स्वीकार करते हैं, परन्तु हमारी एक शर्त है।

परन्तु यदि हम पर विश्वास है तो हमारी बात माननी पड़ेगी। तो सब देव, दानव कहने लगे कि हम तुम्हारी हर बात मानेंगे। मोहिनी ने कहा देखो दैत्यों तुम एक तरफ लाइन लगाकर बैठ जाओ, देवताओं से कहा, तुम भी लाइन लगाओ। मोहिनी ने सुन्दर मुस्कुराहट के साथ कहा देखो दैत्यों–भगवान् मोहिनी की मुस्कुराहट पर समस्त दैत्य मोहित हो गए। मोहिनी ने कहा, दैत्यों कलश में ऊपर पानी हैं। नीचे गाढ़ा अमृत, ऊपर का पानी में देवताओं को और तुम्हें नीचे का अमृत, यह बात सभी ने मान ली। भगवान् दैत्यों को तिरछे नेत्रों से देखकर रूप सुधा पिलाते हैं और देवताओं को कलश में भरा अमृत सुधा पिलाते हैं, परन्तु दैत्यों में से स्वर्भानु नाम के दैत्य इन्द्र और चन्द्र, के बीच में देवरूप धारण करके बैठ गए। मोहिनी ने पिलाते-पिलाते स्वर्भानु को पिला दिया तभी इन्द्र ने कहा यह देव नहीं हैं। इन्द्र, चन्द्र की बात सुनते ही मोहिनी ने चक्र का आवाहन किया और सर को धड़ से अलग कर दिया। उस सुधा पीते सिर भगवान् ने काट दिया।

"चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः।"

(श्रीमद्भागवतम् 8.9.25)

स्वर्भानु का सिर कट जाने के साथ समस्त दैत्य जान गए कि मोहिनी ने हमसे छल किया हैं। सभी दैत्य अपने अस्त्र लेकर उसे मारने दौड़े। देखते-देखते मोहिनी अदृश्य हो गई। मोहिनी के द्वारा देवता अमृत पान से बलवान हो गए थे। दैत्य न पान करते विजय हीन हुए। परन्तु वे तो दैत्य हैं। अपनी सामर्थ्य के अनुसार युद्ध के लिए उद्धृत हुए जो देवासुर संग्राम है।

अथ दशमोऽध्यायः

देवासुर संग्राम

अथै एकादशोऽध्यायः

देवासुर संग्राम समाप्त

सब देवता और दैत्य भीषण रोमहर्षकारी युद्ध करने लगे। इस युद्ध में भगवान् विष्णु के शरणागत रहकर अमृत पान के कारण देवताओं ने असुरों को परास्त कर दिया। यहाँ तक कि दैत्यराज बलि भी मारा गया। गुरु शुक्राचार्य को जब पता चला तो उन्हें बहुत कष्ट हुआ। गुरु जी ने आकर जिनके धड़ देखे उन्हें जीवित कर दिया। बलि ने देखा हम मर ही गए थे, गुरु जी ने हमें बचाया। बलि गुरुजी के चरण में पूर्ण रूपेण न्यौछावर हो गए। जीवन प्राप्त करके बलि महाराज ने अपने गुरु शुक्राचार्य को जीवन अर्पण किया, उन्हीं के आदेश पर चलने को तत्पर हुए। शुक्राचार्य दैत्यों के पुरोहित, यज्ञ करने लगे।

उधर देवताओं ने अमरत्व पाकर अमर लोक प्राप्त किया।

अथ द्वादशोऽध्यायः

मोहिनी रूप देखकर महादेव जी का मोहत होना

भगवान् शिव ने नारायण भगवान् के समीप जाकर अभिवादन किया, याचना की, कि प्रभु आप मुझे अपने मोहिनी रूप दर्शन कराएं, भगवान् शिव की इच्छा को समझते हुए भगवान् ने कहा कि देखो शंकर–

कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया धृतः।
पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने।।

(श्रीमद्भागवतम् 8.12.15)

दैत्यों की कोलाहल को देखते हुए, स्त्री में आसक्त व्यक्ति को हमने अमृत बाँटने का कार्य सम्पन्न किया।

उस मोहिनीरूप को देखने की तुम्हारी चाह उचित नहीं है, लेकिन भगवान् शिव के अति आग्रह से भगवान् विष्णु ने शिव को मोहिनी रूप दिखाने का अवसर प्रदान किया। उसी समय एक सुंदर उपवन की सृष्टि हुई, जिसमें सुन्दर, विचित्र पल्लव द्रुम भर गया। उसी समय एक सुन्दर स्त्री–

"विक्रीडतीं कन्दुकलीलया"

हाथ में फूलों की गेंद लेकर उछलती हुई शिव की तरफ आ रही हैं। उसका चलन, हाव-भाव देखकर शिव से न रहा गया। शिव उसे प्राप्त करने के लिए पीछे-पीछे, वह स्त्री आगे-आगे चलने लगे। कुछ समय बाद भगवत इच्छा से शिव को अपने मोह का अनुभव हुआ, मोह भंग हुआ, स्वाभाविक देवत्व में आ गए। शिव कुछ शरमा से गए। ऐसा प्रदर्शन हुआ भगवान् विष्णु ने शिव को अपने मोहिनी रूप की आसक्ति का छेदन करके भक्ति से आसक्त कर दिया।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

आगामी सात मन्मन्तरों का वर्णन

अथचतुर्दशोऽध्यायः

मनु आदि के पृथक कर्मों का निरूपण

अथ पंचदशोऽध्यायः

राजा बलि की स्वर्ग पर विजय

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन्-राजा बलि ने गुरु जी के कृपा से जीवन प्राप्त कर, नर्मदा नदी के किनारे पर यज्ञ प्रारंभ किया। यज्ञ प्रारंभ करके बलि बलवान हो गए। गुरु के आदेश से, परामर्श से स्वर्ग पर चढ़ाई कर दी। अचानक स्वर्ग पर चढ़ाई करते देख इन्द्र घबरा गए। देवगुरु बृहस्पति से इन्द्र ने विचार किया कि बलि के पास इतनी शक्ति कैसे आई। गुरु बृहस्पति ने कहा सभी ब्राह्मणों की शक्ति उसके पास हैं। विजय उसी के साथ है, तुम छिप जाओ। युद्ध में भी विजयी न हो पाओगे। इन्द्र ने ऐसा ही किया। बलि ने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। इधर देव माता अपने आश्रम में अपने पुत्र देवताओं के कष्ट से दुखी थी।

अथ षोडषोऽध्यायः

कश्यपजी के द्वारा अदिति को पयोव्रत का उपदेश

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन वैवस्वत मन्वन्तर में एक बार कश्यप जी महाराज अदिति जी के आश्रम में पधारे। अदिति कश्यप जी की पत्नी हैं। अदिति उस

समय बहुत उदास थी। अदिति को उदास देखकर कश्यप जी बोले देवि आप उदास क्यों हैं? अदिति ने कहा स्वामी मेरे पुत्र देवता सुखी नहीं हैं। कश्यप जी महाराज ने अदिति को एक व्रत की विधि बताई। जो भागवत में पयव्रत के नाम से विख्यात हैं। कहा, देवी यदि आप इस व्रत को करेंगी तो आपकी कामना पूर्ण होगी।

इस पयव्रत को जब पति की आज्ञा से अदिति ने किया तो भगवान् ने साक्षात दर्शन दिया, "बोलिए नारायण भगवान् की जय" देखिए ये व्रत होता है बारह दिन का। इसे कहते हैं- पयव्रत। फाल्गुन महीने के शुक्ल पक्ष में जिसमें केवल पय यानि दूध को पीकर ही व्रत करते हैं। उन पर भगवान् कृपा करते हैं। अदिति ने ऐसा ही किया तथा भगवान् ने दर्शन दिया।

फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतम्ः।

(श्रीमद्भागवतम् 8.16.25)

अथ सप्तदशोऽध्यायः

भगवान् का प्रकट होकर अदिति को वर देना

श्री भगवान् ने कहा कि देवी अदिति हम आपसे प्रसन्न हैं। आपने कष्ट उठाकर व्रत किया, तपस्या की। हमसे वर माँगें। अदिति ने कहा कि प्रभु केवल एक ही वर माँगने की इच्छा है कि आप जैसा बालक मेरे घर जन्म ले। भगवान् ने कहा, 'तथास्तु'। अदिति जी ऐसा ही होगा।

अथ अष्टदशोऽध्यायः

वामन भगवान् का प्रकट होकर बलि की यज्ञशाला में प्रवेश

द्वादश्यां सवितातिष्ठन्मध्यन्दिनोगतो नृप।
विजयानाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः।।

(श्रीमद्भागवतम् 8.18.6)

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन द्वादशी भादों का महीना शुक्ल पक्ष और विजया नाम की तिथि थी। श्रवण नक्षत्र और मध्याह्न का समय ठीक अभीजित मुहूर्त में वामन भगवान् प्रकट हुए। देखिए दैनिक अभीजित मुहर्त आता है 11 बजकर 48 मिनट से लेकर 12 बजकर 12 मिनट तक।

यह बहुत ही दिव्य समय हैं। आप को कोई पंडित न मिले और कोई अच्छा कार्य आपको करना हो, व्यापार का या घर का तो आप इस समय करेगे तो अच्छा ही रहेगा, निश्चित सफलता मिलेगी। इस समय अभिजीत मूहर्त में भगवान् अदिति के गर्भ से वामन रूप में अवतार लिया। बोलिए वामन देव की जय।

तं वटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः।
कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम्।।
(श्रीमद्भागवतम् 8.18.13)

बृहसपतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात्।
(श्रीमद्भागवतम् 8.18.14)।

देवमाता अदिति के गर्भ से साक्षात विष्णु भगवान् वामन देव के रूप में प्रकट हुए। बृहस्पति जी यज्ञो पवीत संस्कार कराया और उपवीत् संस्कार कराकर सूर्य देव भगवान् ने गायत्री मन्त्र का उपदेश दिया। ब्रह्मा ने प्रकट होकर कमंडलु दिया। वामन भगवान् को सप्तऋषियों ने कुशा का आसन प्रदान किया। कश्यप जी ने मेखला धारण कराई। भूमि ने मृगचर्म दिया। कुबेर ने स्वयं प्रकट होकर भिक्षा पात्र दिया। सरस्वती माता ने आकर अक्षरमाला प्रदान की।

कुबेर से भिक्षा पात्र पाकर वामन ने माता पार्वती से भिक्षा माँगी। माता ने जो दिया वही उन्होंने गुरुदेव के चरणों में प्रदान किया। गुरुदेव ने देखा और कहा बेटा ये भिक्षा तो बहुत कम है। जाओ थोड़ा और लाओ। जब भगवान् वामन देव ने अपने गुरुदेव के मुख से सुना कि गुरु जी थोड़ी और भिक्षा चाहते हैं, तो गुरु के मुख से ही सुना कि उत्तर दिशा में नर्मदा नदी के किनारे राजा बलि यज्ञ कर रहे हैं; वे वहीं जाने लगे। बोलिए 'वामन देव भगवान् की जय'।

छोटे वामन देव थे, जैसे छोटे वामन देव वैसा छोटा कमण्डुलु, दण्ड। कमण्डुलु संभाले तो दंड गिरे। दण्ड संभालें तो कमण्डुलु गिर जाय।

गीतम्

गोविन्द राधे माधव गोपाल राधे माधव
मेरे माधव.......................................
मेरे वामना मेरे वामना मेरे वामना

वामन देव दिव्य ज्योतिर्मय मूर्ति से राजा बलि के द्वार पर पधारें, बलि ने देखा उस वामन देव को स्वागत किया।

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्किं करवाम ते।
ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वार्य वपुर्धरम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 8.18.29)

राजा बलि ने भगवान् का स्वागत किया, भगवान् के चरण धोए, चरणामृत लिया कहा कि आज मैं कुल समेत पवित्र हो गया, जो इस दिव्य बालक का दर्शन हुआ। बोलिए वामन देव भगवान् की जय। साक्षात् विष्णु भगवान् ब्राह्मण के रूप वामन देव के रूप में राजा बलि के द्वार पर खड़े हैं। बलि ने कहा, महाराज आप क्या माँगने पधारे हैं। कहिए–

"यद्यद्वटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ"

(श्रीमद्भागवतम् 8.18.32)

हे वामन यदि आप कहे तो आपको दूध पीने के लए गऊ दान कर दूँ, वामन भगवान् ने कहा, राजा बलि हमें गऊ नहीं चाहिए, बोले गऊ नहीं तो विप्र कन्या करना, जैसे छोटे आप हैं, वैसी बहू दिला दूं। "वा विप्रं कन्याम्" वामन देव ने कहा राजा बलि ना हमें गऊ चाहिए न बहू बलि ने कहा–सोना, चांदी, हीरे–जवाहरात कुछ तो माँगो। बोले, वामन हाँ! राजा बलि–तुम ये बात क्यों नहीं कहोगे।

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

भगवान् वामन का बलि से तीन पग पृथ्वी माँगना, बलि का वचन देना और शुक्राचार्य जी का उन्हें रोकना

श्री भगवान् उवाच–

वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम्।
यस्य प्रमाणं भृगवः साम्पराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशान्तः।।

(श्रीमद्भागवतम् 8.19.2)

अरे बलि तूने तो ब्राह्मण कुल में, भक्त गृह में जन्म ग्रहण किया है, तेरे जो पिता थे विरोचन। ब्राह्मणों के परम भक्त थे, जीवन में उन्होंने बहुत दान किया। जिसके प्रभाव से आयु बढ़ गई और तेरे बाबा हिरण्यकश्यपु भले ही विष्णु से बैर रखता था। पर ब्राह्मण भक्त था।

तेरे वंश में जो प्रह्लाद जी महाराज हुए वह भगवान् के परम भक्त थे, ब्राह्मण के भी भक्त हुए, तूने भी ब्राह्मणकुल में जन्म लिया मैं तेरे द्वार पर माँगने ही तो आया हूँ।

तस्मात्त्वत्तो महीमीषद्वृणेऽहं वरदर्षभात्।
पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र सम्मितानि पदा मम।।

(श्रीमद्भागवतम् 8.19.16)

राजा बलि मैं तेरे द्वार पर तीन पग माँगने आया हूँ। राजा बलि हँसने लगे, बोले महाराज आप एक चक्रवर्ती के द्वार पर खड़े हैं। आपने मेरे जैसे राजा को प्रसन्न कर लिया और क्या माँग रहे हैं। तीन पग पृथ्वी। यदि आप कहे तो मैं एक लोक का राज्य न्यौछावर कर दूँ।

बलि ने कहा—जैसे ये बालक हैं। वैसी इनकी बालक बुद्धि। इन्हें माँगना भी नहीं आता। हमारी तो बदनामी हो जाएगा। इतने बड़े बलि राजा से तीन पग भूमि माँगने से दान का महत्व घट जाएगा।

"त्वं बालो बालिशमतिः।"

(श्रीमद्भागवतम् 8.19.18)

राजा बलि ने और भी कुछ कहना चाहा, परन्तु भगवान् वामन देव बोले – राजा हम बहुत सन्तोषी ब्राह्मण हैं। हमें तो तीन पग पृथ्वी ही चाहिए, बोले इतनी छोटी भूमि का क्या करोगे? बोले महाराज जैसे हम छोटे हैं, वैसे ही अपने पैर से तीन पग भूमि में छोटी कुटिया बनाकर भजन करेंगे, हमे क्या ज्यादा की आशा करना।

ब्राह्मण का कार्य तो भजन करता हैं राजा बलि ने कहा ठीक हैं। मैं तीन पग भूमि संकल्प करके दान करूँगा, क्या मैं अपने पैर से नापकर दे दूँ, क्योंकि मेरे पांव तो आपसे बड़े हैं। भगवान् ने मन ही मन सोचा ये तो काम बिगड़ा, यदि इसने अपने पैर से नापा तो हमारा कार्य सिद्ध नहीं होगा। भगवान् ने कहा– कि अरे बलि तेरी प्रशंसा की, तेरे बाबा की प्रशंसा की, प्रशंसा से हमारा मुख दुख रहा हैं। उस पर भी तू तीन पग पृथ्वी देने में आनाकानी कर रहा हैं। नखरा दिखा रहा हैं। देख देना है तो दे नहीं तो हम दूसरे से माँग लेंगे। झट वामन देव, दंड और कमंडुलु पकड़कर चलने लगे।

राजा बलि ने कहा कि नहीं–नहीं महाराज आज मेरे द्वार से ब्राह्मण खाली नहीं जाएँगे। मैं तीन पग भूमि दान करूँगा। उसी समय राजा बलि ने अपनी पत्नी विन्धावली को बुलाया, इधर शुक्राचार्य जी आ गए। शुक्राचार्य जी दरवाजे के ऊपर से ब्राह्मण को दिव्य दृष्टि से देख रहे हैं। यह तेजोमय ब्राह्मण वामन कौन है? राजा बलि ने कहा गुरुजी आप भी ब्राह्मण हैं। ये भी ब्राह्मण बालक हैं। दोनों एक–दूसरे की बात जल्दी मान जाते हैं, आप इसे समझाइए ये तो बड़ा जिद्दी बालक लगता हैं। शुक्राचार्य जी ने जब यज्ञमंडप के सिंह द्वार की ओर दृष्टि डालकर दिव्य दृष्टि से

देखा तो वामन को पहचान लिया ये कौन है? राजा बलि से कहा जानते हो ये कौन है? राजा बलि ने कहा 'गुरुदेव कौन है?'

शुक उवाच
एष वैरोचने साक्षाद्भगवान्विष्णुरव्ययः।
कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः।।
(श्रीमद्भागवतम् 8.19.30)

राजा बलि, ये देखने में ब्राह्मण बालक है, पर ये किसी के पुत्र नहीं बनते। बलि ये तेरे द्वार पर साक्षात नारायण हैं। विष्णु खड़े हैं। मालूम है तेरे से क्यों तीन पग भूमि माँग रहे हैं। एक पैर से ऊपर के सब लोक, दूसरे पैर से नीचे के सब लोक और तीसरे पैर में नापने के लिए जब पृथ्वी नहीं बचेगी तो तुझे नरक में डाल देंगे।

बलि ये साक्षात विष्णु हैं, कश्यप अदिति के गर्भ से प्रकट हुए हैं। देवताओं के कार्य सिद्धि के लिए। तू मना कर दे कि मैं तीन पग पृथ्वी दान नहीं करूँगा।

राजा बलि ने कहा गुरुदेव ये भगवान् हैं, तब तो मैं अवश्य दान करूँगा। मैं तो एक लोक का राजा हूँ, परन्तु आज मेरे द्वार पर करोड़ों लोक के राजा भिखारी बनकर हाथ फैलाकर माँग रहे हैं। भले ही भगवान् आज मेरा सर्वस्व हरण कर लें, आज मैं अवश्य दान करूँगा।

शुक्राचार्य को मानो क्रोध आ गया। राजा बलि तू मेरा शिष्य होकर बात नहीं मानता। परन्तु आज शुक्राचार्य गुरु जी भी राजा बलि की परीक्षा ले रहे हैं। राजा बलि ने कहा गुरुदेव मैंने वचन दिया हैं। कैसे पीछे हटूँ। किंतु शुक्राचार्य जी ने कहा ठीक है आपने वचन दे दिया परन्तु कहीं-कहीं झूठ बोलने से दोष नहीं लगता। श्रीमद्भागवत में इस प्रसंग को शुक्र नीति कहते हैं।

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसङ्कटे।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्।।
(श्रीमद्भागवतम् 8.19.43)

दैत्य गुरु शुक्राचार्य जी कहते हैं कि बलि यदि स्त्रियों के बीच में परिहास चल रहा है, और उस समय व्यक्ति मिथ्या भाषण करे तो उस समय झूठ का दोष नहीं लगता 'नर्म विवाहे' किसी लड़की के शादी के समय हमें यदि दो शब्द अतिश्योक्ति कहना पड़े, बेटी अच्छे घर पहुँच जाए तो वहाँ भी झूठ बोलने का दोष नहीं लगता। वर पक्ष ने कन्या पक्ष से पूछा – कन्या कैसी है, बोले शलिग्राम शिला जैसी हैं। जिसको सालिग्राम सिला का ज्ञान है, वही समझ सकता है कि लड़की गोरी है या काली। इसी

प्रकार "वृत्त्यर्थे प्राण संकटे" संपति की रक्षा के लिए, प्राण रक्षा के लिए झूठ बोला जाए तो दोष नहीं लगता। "गोब्राह्मणाथे हिंसायां" किसी ब्राह्मण या गौ हत्या के लिए जा रहा हो और व्यक्ति झूठ बोल दे तो झूठ बोलने का दोष नहीं लगता। और जहाँ सब कुछ लुट रहा हो

"सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम्।
अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित्।।"
(श्रीमद्भागवतम् 8.20.2)

राजा बलि ने कहा कि भगवन, आपने ठीक कहा परन्तु मैं अपनी वाणी से नहीं मुकर सकता, मैं इस वामन को वचन दे चुका हूँ, दान देने के लिए बाध्य हूँ, शुक्राचार्य ने देखा कि मेरा शिष्य होकर मेरी बात नहीं मान रहा है, तो कहा कि राजा बलि, जा तू भी भ्रष्ट हो जा। मैं श्राप देता हूँ कि तुझसे तेरी लक्ष्मी ही रूठ जाए। गुरु शुक्राचार्य नाराज होकर चले गए, परन्तु बलि ने अपनी संकल्प को दृढ़ रखा। मन में विचार किया–

"तदीय वस्तु गोविन्द – तुभ्यम् एव समर्पयेत्"

सब कुछ तो गोविन्द का है, उन्हीं की वस्तु उन्हें ही समर्पण करना चाहता हूँ। तुरंत राजा बलि ने पत्नी विन्धावली को बुलाया। वह जल की झारी भर लाई, और विन्धावली से राजा बलि ने कहा कि देखो, हमारे पुरोहित मना कर रहे हैं कि इन्हें दान मत दो, परन्तु में तो संकल्प कर चुका हूँ दान देने का। देवी जी मन ही तो है अभी मन में आया कि मैं दान कर दूँ और थोड़ी देर में मन में आ जाए कि भगवान् सर्वस्व हरण करके न ले जाए। तो आज हमारे द्वार पर भगवान् आकर खड़े हैं। शुभ कार्य में देर नहीं करनी चाहिए। "श्रेयांशे बहुविध्नानि" श्रेष्ठ कार्य में बहत विघ्न आता है, परन्तु "शुभस्य शीघ्रं" परन्तु शुभ कार्य जितना जल्दी करें उतना अच्छा है।

आज राजा बलि जल लिए अपने हाथ में और राजा को देख भगवान् बोले, आप संकल्प में अपनी इच्छा रखें, तो राजा ने कहा कि मेरी कोई इच्छा नहीं है, बस इस भूमिदान से भगवन प्रसन्न हो जाएं यही मेरी इच्छा है। "नारायण समर्पयेत्"।

राजा बलि की वाणी सुनकर भगवान् कहते हैं कि आप धन्य हैं। राजा बलि, तू दान कर रहा है अपनी खुशी के लिए, तेरी कोई इच्छा नहीं है तो खुशी में कौन बड़ा नहीं होता। दान लेने वाले तो खुश होते हैं तो भगवान् झट विराट रूप में आ गए।

बोलिए विराट भगवान् की जय। एक पैर में भगवान् ने ऊपर के सब लोक, दूसरे पैर में नीचे के सब लोक नाप लिए, जब तीसरे पैर के लिए धरती नहीं बची तो भगवान् ने बलि को पाश में बांधकर पूछा तीसरा पग कहाँ रखूं? राजा बलि तीसरे पग के लिए धरती दो नहीं दी तो "कुतो गति" जानते हो क्या होगा नरक भोगोगे। बार-बार भगवान् भय दिखाने लगे।

अथ एकोनविंशत् अध्यायः

बलि का बांधा जाना

जब भगवान् ने बलि को पाश में बांध लिया और बलि की गर्दन दान न देने के कारण झुक गई। समस्त असुर गण क्रोधित होकर ब्राह्मण पर आक्रमण करने के लिए उद्धृत हुए।

"ते सर्वे वामन हन्तुं शूल पट्टिशपाणयः।"

परन्तु भगवान् के चरणों में भक्ति रखने वाले राजा बलि ने समस्त असुरों को निरस्त किया। राजा बलि ने कहा, महाराज आप मुझे क्यों डरा रहे हो? क्या इसी वेश में आप यहाँ आए थे। भगवान् बोले क्या मैं बदल गया हूँ। भक्त बलि बोलो आप दान लेने के बाद इतने बदल गए कि, इतने बड़े हो गए कि आज तक कोई नहीं बदला। आप पूर्व रूप में आकर अपना वचन पूर्ण कर लो। मेरा कथन सत्य हो जाएगा। राजा बलि की प्रार्थना भगवान् ने सुनी तथा विराट से वामन बन गए। भगवान् ने कहा राजा तीसरे पग के लिए जमीन दो, राजा ने कहा मैं दूँगा। मैंनें आपके विराट रूप में त्रिलोकी के दर्शन करे। सारे विश्व को, परिवार को, पत्नी को देखा। अपनी धन-सम्पत्ति, राज्य, महल, कोष सब देखा परन्तु भगवान् मैंने अपने आप को कहीं नहीं देखा। आपने मेरा सबकुछ ले लिया तो मुझे क्यों छोड़ा आपने। अब आप तीसरे चरण को भी उठाइए और रखिए मेरे मस्तक पर।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

बली के द्वारा भगवान् की स्तुति और भगवान् का उस पर प्रसन्न होना

"पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णिं मे निजम्।"

(श्रीमद्भागवतम् 8.22.2)

और प्रभु अपने भक्त के वचन को आप सत्य करिए।

राजा बलि, वामन देव भगवान् के चरण में नतमस्तक हो गए। भगवान् ने अपना तीसरा पग राजा बलि के मस्तक पर रखकर, राजा बलि के वचन को सत्य किया। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। इस प्रकार राजा बलि ने भगवान् को तन, मन, धन से प्रसन्न कर दिया। आत्मनिवेदन भक्ति से बलि ने भगवान् को प्रसन्न किया।

राजा बलि से भगवान् वामन देव बोले कि तुम सुतल लोक को चले जाओ। राजा बलि कहते हैं, मैं अवश्य जाऊँगा। परन्तु यह बताओ कि आपका दर्शन कब होगा। भगवान् ने कहा राजा बलि तूने मुझे अपना सब कुछ दे दिया तो क्या मैं तुझे ये वामन रूप नहीं दे सकता हूँ, देख राजा बलि जहाँ तू सुतल लोक में रहेगा तो मैं तेरे राजमहल के द्वार पर गदा लेकर तेरी पहरेदारी करूँगा। तू मेरा नित्य दर्शन करेगा।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

बलिका बन्धन से छूट सुतल लोक को जाना

"नित्यं दृष्टासि माँ तत्र गदापाणिमवस्थितम्।"

(श्रीमद्भागवतम् 8.23.10)

बलि जब-जब तू राजमहल से निकलेगा मेरे इस वामन रूप का दर्शन करेगा। आज श्री भगवान् अपने भक्तों के द्वार पर चौकीदार बनकर खड़े हैं। मेरे प्रभु वामन देव इस प्रकार से देवताओं के कार्य सिद्धि के लिए अवतार लिया। भगवान् का ये वामन अवतार हुआ और असुर कुल में होते हुए भी अपने भक्त बलि को राज्य देकर सम्मान दिया।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

भगवान् के मत्स्यावतार की कथा

इत्यष्टम स्कन्ध समाप्तः।




स्कंध-०९

नवम स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

वैवस्वत मनु के पुत्र राजा सुद्युम्न की कथा

सातवें मन्मनतर वैवस्वत में ही भगवान् ने राजा सत्यव्रत को मत्स्य अवतार धारण करके दर्शन दिया और वेदों की प्रतिष्ठा की। राजा परीक्षित ने प्रश्न पूछा कि भगवन कृपा करके बताए सूर्य वंश के बारे में भी, अब भगवान् राम का मंगलमय चरित्र प्रारंभ हो रहा है, भगवान् के वंश का और जन्म विषय श्रवण करें। श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन वैवस्वत मनु जिनका एक नाम था विवस्वान! ये भगवान् सूर्य के पुत्र थे और जिनका आदि गुरु था वशिष्ठ जी महाराज, जिनके दस पुत्र उत्पन्न हुए इक्ष्वाकु, नृग, सजाति, दृष्ट, धृष्ट, करुष, नरीषन्त, मृषघ्र, नभाग और कवि।

इस प्रकार से सादोमनु की पत्नी थी श्राद्ध, जिनका एक नाम था विवस्वान्। जिनके सजाति नाम के पुत्र थे। इन्हीं की पुत्री का नाम था सुकर्णा। इनके वंश में आगे चल कर एक राजा हुए जिनका नाम 'रैवत' जिनकी बेटी थी रेवती और जिनका पाणिग्रहण संस्कार हुआ श्री बलराम जी महाराज के साथ, बोलिए रेवती रमन भगवान् की जय!

अथ द्वितीयोऽध्यायः

पृषघ्र आदि मनु के पाँच पुत्रों का वंश

अथ तृतीयोऽध्यायः

मतृर्षि च्यवन और सुकन्या का चरित्र राजा शर्यति का वंश

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नभाग और अम्बरीश की कथा

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि मनु जी के नौंवे पुत्र थे नाभाग और इनके पुत्र हुए महाराज नाभाग। नाभाग के पुत्र हुए महाराज अम्बरीश, जिनके विषय में भागवत में सुन्दर कथा का वर्णन है कि–

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो–र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये।।
(श्रीमद्भागवतम् 9.4.18)

"अम्बरीश महाभागाः" महाराज अम्बरीश बड़े भग्यवान हैं, जिनका तन मन, धन, तीनों ही कृष्ण को समर्पित थे। जिन्होंने एकादशी का व्रत किया था। व्रत का अर्थ है संकल्प लेना। संकल्प का अर्थ – किसी विशेष दिन में व्रत लेना। व्रत करना – संकल्प लेना। "सम्यक कल्पना इति संकल्पम्" परन्तु देखा जाता है कि आजकल व्रत नहीं, एकादशी नहीं, दीपावली आ गई। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

ये नहीं खाएँ, वे नहीं खाएँ किन्तु कूटू के पकौड़े माल तो चखने को मिलेंगे। चलो रख लें एकादशी और जिस दिन व्रत का दिन होता है हम सुबह से ही हल्ला करते हैं। आज हमारा एकादशी का व्रत है।

देखिए व्रत क्या है, एकादश माने ग्यारह, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारहवां हमारा मन। "कर्मणा मनसा वाचा" ये 11 इन्द्रियां प्रभु के चरणों में लगाना है, ऐसा करते हो तो एकादशी हो गई। मन से तन से प्रभु का गुणगान करो,

संकीर्तन

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे,
हे नाथ नारायण वासुदेवा।।

कर्म भी प्रभु को समर्पण करो।
"श्रीकृष्णाय समर्पयीतम् अस्तु"।
"नारायण समर्पयेत्"।।

तब तो आपकी एकादशी पक्की हो गई, तो महाराज अम्बरीश ने एकादशी व्रत किया। एकादशी करने के बाद दूसरे दिन महाराज अम्बरीश पारण करने जाएँगे, उसी समय महाऋषि दुर्वासा आ गए। दुर्वासा ऋषि ने कहा, राजन हम शिष्य के साथ तुम्हारे अतिथि है हमें भोजन कराओ। राजा तैयार हो गए, परन्तु ऋषि दुर्वासा ने कहा, सरोवर से स्नान करके आकर भोजन करेंगे। दुर्वासा ऋषि शिष्यों के साथ स्नान के लिए चले गए। इधर राजा चिंतित हो गए कि पारण का समय अतिक्रन्त न हो जाए। मंत्रियों से सलाह करके राजा अम्बरीश ने भगवान् विष्णु का चरणामृत ग्रहण किया। चरणामृत कोई खाना नहीं हैं। केवल व्रत को खोलने के लिए पारण मात्र है, जो निर्जला एकादशी करते हैं। वे भगवान् विष्णु के चरणामृत से ही पारण तोड़ते हैं,

राजा अम्बरीश ने पारण अतिक्रन्त का दोष न लगे इसलिए चरणामृत पान किया। इधर दुर्वासा ने देखा कि राजा ने अतिथि का स्वागत न करके स्वयं ही कुछ ग्रहण कर लिया है तो ठहरे दुर्वासा। महा क्रोध में आकर 'कृता' नाम की राक्षसी को उत्पन्न किया वह कृत्या राजा अम्बरीश की तरफ जाने लगी उसे खाने। राजा ने भगवान् का स्मरण किया भगवान् के सुदर्शन ने कृत्या का सिर काट दिया। सुदर्शन मुनि के पीछे भागे तो ब्रह्मा जी के पास गए दुर्वासा। प्रार्थना की रक्षा करो। परन्तु ब्रह्मा जी ने कहा ये विष्णु का चक्र है आप कैलाश में जाओ। मुनि ने प्रार्थना की भोलेनाथ चक्र से हमारी रक्षा करो। "त्मेव शरणं याहि"

भगवान् शिव ने कहा जिसका चक्र है वहीं जाओ। दुर्वासा विष्णु के पास गए। योगी एक लोक से दूसरे लोक में जा सकते हैं। प्रभु, चक्र से रक्षा करें। भगवान् ने कहा–

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रसतहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः।।

(श्रीमद्भागवतम् 9.4.63)

भगवान् बोले दुर्वासा मैं भक्तों के अधीन हूँ, मैं भक्तों के हृदय में भक्त मेरे हृदय में वास करते हैं। भक्त मेरे प्रिय हैं। तुम ऐसा करो अम्बरीश के पास ही जाओ क्योंकि ये सुदर्शन अभी उसी के आधीन हैं। दुर्वासा ऋषि को आश्चर्य हुआ कि सुदर्शन उनके नहीं भक्तों के अधीन हैं। दुर्वासा ऋषि की कातरता देख भगवान् बोले ऋषिवर घबराइए मत– "उपायं करिष्यामि" कुछ उपाय करूँगा ऐसा कहकर दुर्वासा को राजा अम्बरीश के पास भेज दिया। दुर्वासा राजा अम्बरीश की शरण में आए, राजा ने देखा ऋषि ने हमारे चरण में शरण लिया जबकि राजा का धर्म यह नहीं हैं। ऋषी राजा का चरण में पड़े ऐसा विपरीत कार्य देख विष्णु स्मरण से सुदर्शन चक्र रोक दिया। इस प्रकार से दुर्वासा ने राजा का आतिथेय ग्रहण किया। राजा ने सेवा करके अपना गृहस्थ धर्म सम्पन्न किया।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

दुर्वासा जी की दुःखनिवृन्ति

अथ षष्ठोऽध्यायः

इक्ष्वाकु के वंश का वर्णन, मान्धाता और सौभरि ऋषि की कथा

इस प्रकार से मनुजी के पुत्र हुये इक्ष्वाकु, प्रथम पुत्र हुये– जिनके विकुक्षि, निमि, दन्डक आदि 100 पुत्र थे, इसी वंश में आगे चलकर एक राजा हुये– जिनका नाम हुये– युवनाश्व, युवनाश्व के पुत्र हुये– मान्धाता, मान्धाता कि पचाश बेटियां थी, जिन सभी सवका का विवाह संत सौभरि के साथ हुआ था, इनके वंश में आगे चलकर एक राजा हुये जिनके नाम था बाहुक, जिनके समस्त राज्य क्षत्रियों राजाओं ने हरण

अथ सप्तमोऽध्यायः

राजा त्रिशङ्कु और हरि चंद्र की कथा

कर लिया, इन वाहुक राजा के पुत्र थे – महाराज सगर, संस्कृत में सगर का अर्थ, स माने सहित, गर माने विष जिश्सका अर्थ विष के साथ, विष के सहित जिनका जन्म मा के गर्भ से हुआ,

अथ अष्टमोऽध्यायः

सगर चरित्र

इन सगर महाराज का भागवत में वर्णन किया 60 हजार सन्तति, इनके दुर्शार पत्नी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ– जिनका नाम पड़ा– असमन्जस, असमन्जस के पुत्र अंशुमान हुये, जिन्हें अपनी पूर्वजों के लिये कठिन आराधना गंगा माता की किया, किन्तु माता गंगा को नहि लां सका, अंशुमान कि पुत्र महाराज भागीरथ, जिन्होंने गंगा की आराध ना की और भागीरथ महाराज साक्षात गंगाजी को लेकर पधारे हैं, आज भी गंगाजी तीनों लोकों पवित्र कर रही हैं।

अथ नवमोऽध्यायः

भगीरथ चरित्र और गङ्गावतरण

भगीरथ के पुत्र हुए महाराज श्रुत। श्रुत के पुत्र हुए महाराज सुदास। सुदास के पुत्र–सौदास। महाराज सौदास दमयन्ती के पति थे। सौदास महाराज के गुरु वशिष्ठ की कृपा से पुत्र हुए जिनका नाम था अस्मक। अस्मक के पुत्र थे दशरथ। दशरथ के पुत्र हुए महाराज एडवीड। एडवीड के पुत्र हुए महाराज विश्वसह। विश्वसह के पुत्र हुए महाराज कट्टांग। कट्टांग के पुत्र हुए महाराज दीर्घबाहु। दीर्घबाहु के पुत्र हुए महाराज दिलीप। इनके वंश में महाराज दिलीप के पुत्र हुए महाराज रघु। रघु के ही

वंश में हुए महाराज अज और अज के पुत्र हुए महाराज दशरथ। जिनके पूर्व जीवन का प्रसंग वर्णन किया है कि–

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं, कि पूर्व जीवन में महाराज दशरथ भगवान् श्रीकृष्ण के मंदिर में पुजारी थे। इन ब्राह्मण का दैनिक नियम था कि 1000 तुलसीपत्र विष्णु सहस्त्रनाम करते-करते चढ़ाना। भगवान् के चरणों में वे चढ़ाते थे। एक बार इस ब्राह्मण को ज्वर आया। इन्होंने ज्वर से कहा पहले मुझे प्रभु सेवा करने दे फिर मेरे पास आना। इतनी शक्ति ब्राह्मण के पास थी कि ये ब्रह्मनिष्ठ थे, कर्म निष्ठ थे कि इनका ज्वर ही दूर हो गया।

इन्होंने स्नान किया, स्नान करके भगवान् के मंदिर में गए और 1000 तुलसी पत्र भगवान् के चरणों में अर्पित किए। पूजा के बाद देखा कि मंदिर के कोने में कोई रो रही हैं। उठकर ब्राह्मण ने देखा कि एक पिशाचिनी बैठी जोर-जोर से रो रही हैं। ब्राह्मण ने पूछा–हे देवि तू कौन है? उसके पूर्वजन्म के बारे में बताया कि मैंने अपने पति, परिवार को बहुत कष्ट दिया तो आज मैं पिशाचिनी के शरीर में पड़ी हूँ। पिशाचिनी का शरीर प्राप्त किया हैं। प्रभु आप मेरा उद्धार करिए। रोते हुए बोली कृपया मेरा उद्धार करिए। ब्राह्मण को दया आई कि अपनी पूजा का संकल्प करके सारा फल पिशाचिनी को दे दिया। पिशाचिनी ने उस पिशाचिनी शरीर को छोड़कर कालांतर में कौशल देश की राजकुमारी के रूप में पैदा हुई। वही ब्राह्मण कालांतर में अज के परिवार में दशरथ के रूप में पैदा हुआ।

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् जिनकी तीन पत्नी थी, तीन रानियां थीं। कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा। आदि वंश है, आदि सूर्य वंश के कुल गुरु महाराज वशिष्ठ। बहुत समय निकल गया। जब महाराज दशरथ के कोई सन्तान नहीं हुई।

तब अपने गुरु के चरणों में प्रार्थना की कि गुरुजी आपकी कृपा से कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है और पुत्रेष्ठि यज्ञ कराया साक्षात यज्ञ भगवान् प्रकट हुए। बोलिए यज्ञ भगवान् की जय।

यज्ञ का प्रसाद मिला। गुरु की आज्ञा से अर्धभाग प्रसाद का कौशल्या माता को दिया और अर्ध भाग कैकेयी को दिया, बाद में दोनों ने अपने-अपने भाग से सुमित्रा को दिया। सुमित्रा और कौशल्याने प्रसाद को श्रद्धा से ग्रहण किया, परन्तु कैकेयी ने प्रसाद तो लिया मगर बिना श्रद्धा के।

रामचरित मानस में गोस्वामी ने बड़ी सफाई पेश की ही कैकेयी की ओर से। परन्तु महाराज एकनाथ ने जो रामायण लिखी है उसमें बताया है कि कैकेयी कौन

है? कर्कश बाण ही तुम्हारा कैकेयी हैं। प्रसाद का त्याग करके राजमहल से बाहर फेंक दिया। एक चमड़ी पक्षी प्रसाद लेकर उड़ गए। और अंजुलि देवी तपस्या कर रही थी। वह प्रसाद अंजुलि देवी के लिए प्रदान किया। चमड़ी पक्षी के मुख से वह अंजुलि देवी को मिला जिनके गर्भ से हनुमान जी का जन्म हुआ। बोलिए हनुमान जी भगवान् की जय।

इस प्रकार शुकदेव जी महाराज कहते हैं। कैकेयी को बड़ा दुख हुआ कि महाराज की आज्ञा से कैकेयी को प्रसाद पुनः प्राप्त हुआ। तीनों रानियां गर्भवती हुई। गोस्वामी जी बड़े सुन्दर मास, तिथि का वर्णन रामचरित मानस में करते हैं। कितना सुन्दर वह दिवस प्रकट हुआ कि–

अथ दशमोऽध्यायः

भगवान् श्रीराम का जन्म तथा लीलाओं का वर्णन

नवमी तिथि मधुमास पुनीता।
शुक्ल पक्ष अभिजीत हर प्रीता।।

नवमी तिथि, शुक्ल पक्ष चैत्र मास और ठीक अभिजीत मुहुर्त का मध्याह्म का समय था। आज दशरथ के घर में भगवान् ने अपने चारों अंश के रूप में अवतार लिया। राम लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न। बोलिए रामचन्द भगवान् की जय।

गीतम्

भई प्रकट कृपाला, दीन दयाला कौशल हितकारी
हरषित महतारी, मुनि मनहारी, अद्भुत रूप विचारी

भजन

श्रीरामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारुणम्
नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणम्

संकर्तनम्

दशरथ के आनंद भयो जय बोलो श्री राम की
जय बोलो श्रीराम की, जय बोलो श्री राम की
दशरथ के आनंद.......................................
जय बोलो श्रीराम की.................................

शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् आत्मा और देह का बंधन नहीं, केवल इस मन का ही बंधन हैं। श्रीमद्‌भागवत में दशम स्कन्ध में बाल लीलाओं का वर्णन कर परीक्षित के मन को अवरुद्ध किया। परमात्मा में जीव मन को अवरोध करने से मुक्त होती हैं। ग्यारहवे स्कन्ध का लक्षण है मुक्ति। किन्हीं आचार्य ने बताया कि दसवें स्कन्ध का लक्षण है आश्रय। जीव का परम आश्रय ही हैं- श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण की लीला श्रवण से पहले भगवान् राम की लीला का श्रवण करना परमावश्यक है, लीला यानि "लैलम् लालि इति लीला" जिसमें विलीन हो जाती है, उसे लीला कहते हैं। राम और कृष्ण में ऐसे कोई भेद नहीं है क्योंकि पहले श्रीमद् भागवत में भगवान् श्रीराम का चरित्र है केवल दो अध्याय में "राम और घनश्याम में नहीं कोई अंतर भेद" राम और कृष्ण में कोई अंतर नहीं यदि आज ये दोनों अवतार राम, कृष्ण नहीं होते तो भगवान् को मानने वाले भी नहीं पैदा होते। ये दोनों पूर्ण अवतार हैं। कुछ लोग कहते हैं। भगवान् राम हैं—बारह गुण-कला अवतारी, भगवान् कृष्ण हैं—सोलह कला अवतारी। यदि हम पूछे भईया बताओ ये कौन-कौन सी कलाएं हैं। तो लोग बता नहीं पाते। अरे हमारे जैसा मानव उस परमात्मा का कलाओं की गिनती कैसे कर सकता हैं। वे 12, 16 कलावतारी नहीं, भगवान् तो अनंत-अनंत कलाधारी हैं। उसकी कौन गिनती करे, इसलिए सन्त ने कहा कि—

"हरि अनंत हरि कथा अनंता
कह हि सुनई बहु विधि सब सन्ता"

हरि अनन्त हैं, सृष्टि की कथाएं भी अनंत हैं, तो राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं। परन्तु कभी-कभी भक्तों की बड़ी मीठी लड़ाई होती हैं। प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण।

राम भक्त कहते हैं। हमारे राम बड़े। कृष्ण भक्त कहते हैं, हमारे कृष्ण बड़े परन्तु भईया "राम और धनश्याम में नहीं कोई अंतर भेद"

देखिए कितने सुन्दर दिन में भगवान् राम प्रकट हुए।

"नौमी तिथि मधुमास पुनीता शुक्ल पक्ष अभिजीत हरिप्रीता"

विचार करें चैत्र शुक्ल पक्ष, नवमी के दिन भगवान् राम का प्रादुर्भाव हुआ और भगवान् कृष्ण भी अष्टमी तिथि को अवतरित हुए तो यहाँ तो अंतर हो गया। नवमी और अष्टमी। अभी आप सुनेंगे कि अष्टमी तिथि को भगवान् कृष्ण के जन्म के समय सारे लोग सो रहे थे, उठे तो तिथि कौन सी नवमी। अत: तिथि लग गई, नवमी

को ही भगवान् बालकृष्ण का जन्मोत्सव मनाया। दोनों भगवान् कृष्ण, राम की जन्म तिथि नवमी ही है।

देखो भगवान् राम गोरे हैं। श्रीकृष्ण काले हैं। बात तो ठीक है, लेकिन राम भी श्याम हैं। श्याम भी श्याम हैं

"राम और श्याम में नहीं कोई अंतर भेद।"

दोनों में कोई अंतर नहीं हैं। राम ने रावण से विश्वयुद्ध लड़ा। भगवान् ने केवल दो ही हथियार हाथ में रखे धनुष और तीर।

इसी तरह बांके बिहारी जी के भी दो ही हथियार है, लकुट लाठी और बंसी।

गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ठाकुर बांके बिहारी जी के दर्शन के लिए पध ारे, गोस्वामी जी एकटक दर्शन कर रहे थे, उनके पीछे एक सन्त थे उनका नाम था परशुराम। परशुराम जी ने गोस्वामी जी को देखकर कटाक्ष किया कि–

"अपने–अपने इष्ट को नमन करे सब कोई
बिना इष्ट के परशुराम नमे सो मूरख होई"

देखिए दो सन्तों का झगड़ा है और कितना मधुर और मीठा है कि अपने–अपने इष्ट को तो सब प्रणाम करते हैं, परन्तु देखो गोस्वामी जी को कितनी दूर काशी से आए हैं। श्री बांके बिहारी जी को प्रणाम करने के लिए। जब गोस्वामी जी ने सुना तो ठाकुर को मन ही मन कहा प्रभु मैं आपमें और प्रभु राम में कोई अंतर नहीं समझता हूँ। परन्तु आज आपका भक्त ही अंतर समझ रहा है, तो आप राम बनकर दर्शन दे दों राम बनने में उन्हें कितनी देर लगती है भला।

"कित मुरली कित चन्द्रिका, कितः संखियन को साज,
अपने जन के काज, आज कृष्ण भए रघुराज।।"

बोलिए श्री राजा रामचन्द्र भगवान् की जय।

श्री वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

आज भगवान् श्रीकृष्ण भक्त की इच्छा पूर्ण करने के लिए राम बन गए। राम और कृष्ण में कोई अंतर नहीं हैं। कृष्ण ही राम हैं। राम ही कृष्ण हैं। जब तक हम भगवान् राम का प्रसंग श्रवण नहीं करते तो कृष्ण लीला में भी प्रवेश नहीं मिलता। क्योंकि भगवान् राम का जो प्रसंग है भगवान् की जो लीला हैं। वो हमें मर्यादा सिखाती हैं। आदर्श बताती हैं। जब मर्यादा, आदर्श हमारे जीवन में आ जाएं तभी हमें कृष्ण लीला में प्रवेश मिलता हैं। जब तक हमारे जीवन

में मर्यादा, आदर्श नहीं होंगे तो लीला में प्रवेश नहीं। लीला कहते हैं। "लैलम् लायति इति लीला"

जीव को लीन कर दे जिस विषय में, वह राम और कृष्ण लीला में ही संभव है।

लीला कहते हैं। जो हमें परमात्मा में ही लीन कर दें उसे कहते हैं। लीला। भगवान् राम के जीवन से क्या शिक्षा लेनी चाहिए। राम चरित्र की कथा देखिए श्रीमद्‌भागवत में दो ही अध्याय में वर्णन की गई हैं। भगवान् राम जी का चरित्र हमें यह शिक्षा देता है कि भाई-भाई के प्रेम, पति-पत्नी का प्रेम, पिता का पुत्र का प्रेम कैसा, स्वामी और सेवक का भाव कैसा, गुरु शिष्य का सम्बंध कैसा। ये सब सीखना है तो भगवान् राम से सीखो। भगवान् राम के कहे पर चलो, श्रीकृष्ण के वचन से चलो। भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन पर नहीं।

बहुत से लोग कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण ने 16,108 शादी की। हम भी ऐसा ही करें, ऐसा लोगों का कहना है, आप 16 शादी कर सकते हैं। कोई बड़ी बात नहीं। आज भी बहुत से लोग बहुत सी शादी कर डालते हैं। पर संभाला नहीं जाता। भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का अनुसरण करें तो सभी का करें, केवल शादी का क्यों? भगवान् ने गिरिराज उठाया आप एक पत्थर तो उठाकर दिखाइए। एक उंगली पर धारण करके दिखाइए। काली नाग का मर्दन किया भगवान् ने आप सर्प को पकड़कर दिखाओ, अनुसरण करना है तो भगवान् की समस्त लीलाओं का अनुसरण करें। राम जी की लीलाओं का अनुसरण तथा भगवान् श्रीकृष्ण की बानी, जो भगवान् ने गीता में अर्जुन को उपदेश दिया वही जीवन में उतार लो। राम बिना इंसान का आराम कहाँ। राम की कथा, राम का चरित्र तुम जीवन में नहीं उतारोगे तो आराम नहीं मिलेगा। प्रभु राम जी को कबीरदास जी ने कहा सुन्दर शब्दों में। शुकदेव जी ने सुन्दर शब्दों में गुनगुनाते हुए कहा है आप भी गुनगुनाते हुए चलिए–

गीतम्

जर जाए ऐसे जीवन राम बिना
राम बिना घनश्याम बिना
गिरिवर तो तरुवर बिना
गिरिवर तो तरुवर बिना शुने
तरुवर सूने पाद बिना।
जर जाए ऐसो जीवन राम बिना,
मंदिर तो दीपक बिना सूने,

दीपक सूने ज्योति बिना,
कहत कबीर सुनो भई साधु,
तेरी हृदय सूनो भक्ति बिना।

अथ दशमोऽध्यायः

भगवान् श्रीराम की लीलाओं का वर्णन

अथ एकादशोऽध्यायः

भगवान् श्रीराम की शेष लीलाओं का वर्णन

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषारोपितभ्रूविजृम्भ
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः।।

(श्रीमद्भागवतम् 9.10.4)

श्रीशुकदेव जी महाराज कहते हैं जिन्होंने अपने गुरु की आज्ञा को पिता की आज्ञा को पूर्ण करने के लिए अपने राजमहलों के सुख को त्याग दिया। वन में विचरण किया, जिन प्रभु राम के चरण कमल कितने कोमल जब भगवान् राम वन में चलते-चलते थक जाते थे, श्री जानकी जी भगवान् के चरण कमल जब स्पर्श करती थीं तो, भगवान् को जानकी जी के हाथ का स्पर्श भी असह्य हो उठता था। इतने कोमल थे प्रभु के चरण।

"वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषारोपितभ्रूविजृम्भ"

(श्रीमद्भागवतम् 9.10.4)

वह सूर्पनखा पति चुनने के लिए आई, भगवान् ने उसकी नाक काट दी। कुरूप कर दिया उसे। जिस कारण भगवान् को पत्नी वियोग हुआ। लीला में भगवान् जानकी जी को वन-वन में ढूँढने लगे। वन के पक्षी, वन लताओं से पूछने लगे।

हे खग मृग हे मधुकर श्यामी। तुम देखी हो सीता मृग नयनी।।

वन-वन में प्रभु ने जानकी जी की खोज की और दुष्ट रावण का संहार किया। धर्म की स्थापना की भगवान् ने।

"कोसलेन्द्रोऽवतान्न" और भगवान् कौसल देश वापिस आ गए।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि ऐसे राम प्रभु सबकी रक्षा करें, उन प्रभु राम के चरणों में मैं वदन करता हूँ। तो भगवान् राम के जीवन से हमें मर्यादा और आदर्श की शिक्षा मिलती हैं। इस प्रकार राम जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र का श्रीमद्भागवत में वर्णन है, किंतु–

जातो गतः पितृ बगृहाद् व्रजमेधितार्थो
हत्वा रिपून् सुतशतानि कृतोरुदारः।
उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे
आत्मानमात्मनिगमं प्रथञ्नेषु।

(श्रीमद्भागवतम् 9.14.66)

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राम कथा सुनकर राम के सम्बंध में कोई प्रश्न करो या न करे, हमें राम जी की कथा सुना ही देनी चाहिए, परन्तु कृष्ण की कथा? जो जिज्ञासा रखे उसे ही सुनानी चाहिए क्योंकि श्रीराम की कथा जल्दी समझ में आ जाती हैं। पर कृष्ण की कथा नहीं। जैसे कृष्ण जी टेढ़े हैं। ऐसे ही उनकी लीला भी टेढ़ी हैं। दो श्लोक में नवे स्कंध में भगवान् का चरित्र सुनाया।

भगवान् कृष्ण का मथुरा में जन्म, गोकुल में वृद्धि, पूतना, अगासुर, बकासुर आदि दुष्टों का संहार। ढाई वर्ष की अवस्था में नंद गाँव में आना। अनेक लीलाओं का प्रदर्शन करना। 11 साल 4 महीने ब्रज में रहकर फिर मथुरा जाना। मथुरा जाकर कंस आदि दुष्टों का संहार करना, फिर द्वारका निर्माण कर अंत में कौरव पांडव को निमित बनाकर धरती का भार उतारकर उद्धव को ज्ञान का उपदेश देकर भगवान् का परमधाम को गमन। ये दो श्लोकों में भगवान् श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र सुना दिया।

शुकदेव जी महाराज की समाधि लग गई। वे विचार करने लगे कि अब परीक्षित जी जब आगे प्रश्न करेंगे तो हम आगे कथा सुनाएंगे। जैसे बाजार में कोई व्यक्ति मिठाई लेने जाता है तो बानगी भी चखता हैं। उसी प्रकार से शुकदेव जी महाराज कृष्ण भगवान् की बानगी चखा रहा है परीक्षित महाराज को। जब नवें स्कंध के ये दो श्लोक सुन लिए तो उनसे रहा नहीं गया। शुकदेव जी ने बंद आंखों से ही कृष्ण का ध्यान किया। परीक्षित जी ने बड़ा सुन्दर प्रश्न किया।

अथ द्वादशोऽध्यायः

इक्ष्वाकु वंश के शेष राजाओं का वर्णन

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

राजा निमि के वंश का वर्णन

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

चन्द्र वंश का वर्णन

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

ऋचीक चमदाग्नि और परशुराम जी का चरित्र

अथ षोडशोऽध्यायः

परशुराम जी के द्वारा क्षत्रिय संहार-और विश्वामित्र जी के वंश की कथा

अथ सप्तदशोऽध्यायः

क्षत्र वृद्ध राज आदि राजाओं के वंश का वर्णन

अथ अष्टादशोऽध्यायः

ययाति चरित्र

अथ नविंशोऽध्यायः

ययाति का गृहत्याग

अथ विंशोऽध्यायः

पुरू की वंश राज दुष्यन्त और भरत के चरित्र का वर्णन

अथ एकविंशोऽध्यायः

भरत वंश का वर्णन राजा रन्ति देव की कथा

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

पाञ्चाल, कौरव और मगध देशीय राजाओं के वंश का वर्णन

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु और यदु के वंश का वर्णन

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

विदर्भ के वंश का वर्णन

इति नवम स्कन्ध समाप्तः

स्कंध-१०



दशम स्कन्धः

(पूर्वार्द्ध)

अथ प्रथमोऽध्यायः

भगवान् के द्वारा पृथ्वी को आश्वासन, वसुदेव और देवकी का विवाह और कंस के द्वारा देवकी के छः पुत्रों की हत्या

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः।
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.1)

राजा परीक्षित ने कहा कि भगवन् आपने चन्द्र वंश और सूर्य वंश के राजाओं का अद्भुत चरित्र सुनाया, परन्तु जिनका यदुकुल में अवतार हुआ उन श्रीकृष्ण का वर्णन आपने दो श्लोक में ही सुना दिया।

मैं तो कृष्ण लीला सुनने के लिए ही बैठा हूँ। आप मुझे श्रवण कराए। जिनसे जीव का कल्याण होता है।

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात्।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान्विरज्येत विना पशुघ्नात्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.4)

तीन प्रकार के प्राणी मुक्त, ममुक्ष और विषयी। तीनों को ही कृष्ण कथा अति प्रिय है कोई आत्महंता जीव होगा, आत्मघाती जीव होगा, पशु घाती जीव होगा जो कृष्ण भक्ति से प्रेम न करे। उन्हीं कृष्ण की कथा मुझे सुनाइए।

जिन्होंने कौरवों की सेना को परास्त करा दिया। माता के गर्भ में मेरी रक्षा की उन्हीं की कथा सुनाइए। जिन्होंने मानव देह धारण की। बतायें कि भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रज में रहकर कौन-कौन सी लीलाएं कीं और अपने मामा कंस का वध क्यों किया, मामा तो पूजनीय वंदनीय होता हैं। वध करने योग्य नहीं।

ये भी बताइए कि-

रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः सङ्कर्षणसत्वया।
देवक्या गर्भसम्बन्धः कुतो देहान्तरं विना।

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.8)

भगवन आपने ये भी कथा में बताया कि देवकी के पुत्र भी बलराम हैं और रोहिणी के पुत्र भी बलराम हैं, एक जन्म में दो माँ कैसे हो गई, ये भी भगवान् की छुपी हुई लीला हैं। कृपा करके इस लीला का रहस्योद्घाटन करें। शुकदेव जी महाराज ने कहा कि आपने बड़ा सुन्दर प्रश्न किया है, लेकिन आपको कथा सुनते-सुनते चार दिन हो गए जल भी नहीं लिया। अब आप प्रसाद ग्रहण करो फिर कथा सुनाएंगे। किन्तु परिक्षीत ने कहा कि-

नैषातिदु:सहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.13)

महाराज आपके मुख से जो अमृत टपक रहा है कथामृत टपक रहा है, उसी अमृत पान से मुझे भूख-प्यास नहीं लग रही हैं। इस प्रकार से आप कथा अमृत का पान कराते रहिए। इसे एक क्षण के लिए भी बंद मत करिए। मेरे जीवन में एक बार मुझे भूख प्यास लगी थी मैंने सन्त का अपमान किया। सन्त के गले में मृत सर्प डाला। अब मुझे भूख प्यास नहीं लग रही है क्योंकि आप मुझे आत्मा का भोजन दे रहे हैं। अन्न है शरीर का भोजन और कथा-सत्संग आत्मा का भोजन है, तथा आत्मसन्तुष्टि होती है इससे। आप इसे बंद मत करिए। जब शुकदेव जी ने परीक्षित की ये वाणी सुनी तो सूत जी कहते है

"कि एवं निशम भृगुनन्दन साधुवादं।
वैयासकि: स भगवान्थ विष्णुरातम्।।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.10.14)

विष्णुरात परीक्षित का प्रश्न सुनकर शुकदेवजी महाराज गद्गद हो गए। शुकदेव जी महाराज कहते हैं वास्तव में अब तक जितने भी महाराज हुए हैं, तुम सर्वश्रेष्ठ बन गए हो। ये कृष्ण कथा तो तीन प्राणियों को पवित्र करती हैं। वक्ता के लिए, श्रोता के लिए प्रश्नकर्ता के लिए। परीक्षित तुम श्रोता भी हो, प्रश्नकर्ता भी हो। परन्तु श्रोता भी तीन प्रकार का होता है-प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। एक होता है श्रोता, दूसरा होता है शरोता और तीसरा होता सोता। वृन्दावन बिहारी लाल की जय। देखना है कि आप तीनों में से कौन है? देखिए श्रोता है जो ध्यान पूर्वक श्रवण करता हैं। सरोता है जो कथा में बैठकर बेकार तर्क-वितर्क करते हैं, जिससे सुपारी काटते हैं। वही है, सरोता, वह बातों को काटता है, तर्क-वितर्क करता हैं। तीसरा होता है

सोता, घर में नींद आती नहीं, नींद की गोलियों से भी तो नींद नहीं आती चलो कथा में कथा प्रारंभ होते ही गुडाका आ जाएगी। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

गुडाका निद्रा देवी को कहते हैं। कथा में बैठते ही निद्रा आ जाती है वहीं ढेर हो जाते हैं। सो जाते हैं। तो भागवत के मत बनो, सरोता, ना ही बनो सोता, केवल बन जाओ श्रोता।

आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ।

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.17)

राजन् एक बार ये पृथ्वी भू-भार से आक्रांत हुई और श्रीब्रह्मा जी की शरण में पृथ्वी गोरूप धारण करके गई। पृथ्वी ने ब्रह्मा जी से जाकर कहा कि, हे ब्रह्मा! मेरे ऊपर बहुत अधर्म पाप बढ़ चुका है वो दुष्ट राजा जिनके पापकर्म के कारण मैं दबी जा रही हूँ आप मेरी रक्षा करें। पृथ्वी के करुण क्रन्दन सुनकर देवताओं के साथ पृथ्वी को लेकर क्षीरसागर में भगवान् विष्णु के पास जाकर पुरुष सूक्त मन्त्र द्वारा भगवान् की स्तुति करने लगे। ये 16 मन्त्र विशेष हैं। भगवान् इस मन्त्र से प्रसन्न हो जाते हैं। ब्रह्मा जी पुरुष सुक्त द्वारा भगवान् का आह्वान कर रहे हैं।

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम्
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.20)

आवाह्न करते करते समाधि में पहुँच गए। समाधि में बह्माजी ने अपने हृदयाकाश में भगवान् की आकाशवाणी ध्वनि का श्रवण किया और ब्रह्मा जी ने भगवान् को प्रणाम किया और सभी देवताओं और पृथ्वी को भगवान् की आज्ञा का श्रवण कराया। भगवान् की आज्ञा जो ब्रह्माजी ने श्रवण किया वही देवताओं को बताया।

वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.23)

ब्रह्मा जी कहते हैं भगवान् की मुझे आज्ञा हुई - 'वसुदेव गृहे साक्षाद्' भगवान् श्रीकृष्ण जल्द ही वसुदेव के घर अवतार लेने जा रहे हैं। "जनिष्यते तत्प्रियार्थं" अकेले भगवान् प्रकट नहीं होंगे। राधारानी के साथ आएंगे। देवताओं तुम सब अपने अंश से यादव वंश में जन्म धारण करो।

एक बार नन्द नन्दन श्रीकृष्ण गोलोक धाम में अपनी लीला कर रहे थे, तो भगवान् की एक प्रिय सखी थी 'विरजा' इस सखी के घर भगवान् पधारे। जब श्री राधारानी

को यह खबर मिली तो श्री किशोरजी को मान हुआ, श्रीकृष्ण का एक सखा श्रीदामाँ, श्रीदामा ने आकर श्री किशोरी जी से थोड़ा परिहास किया तो उनके मुख से निकला कि देख श्रीदामा एक तो मैं पहले ही दुखी थी, तूने आकर और दुख दिया जा तू असुर योनि में चला जा, ऐसा श्राप दिया। श्राप देते ही श्रीदामा के मुख से निकला कि किशोरी जी आपने मुझे व्यर्थ में श्राप दिया, मैं भी आपको श्राप देता हूँ कि आपका श्रीकृष्ण से 100 बरस का वियोग हो जाए। अब तो किशोरी जी रोने लगी जब प्रभु आए वार्तालाप हुआ तो भगवान् ने कहा कि अब तो किशोरी जी हमें 100 बरस के लिए लीला करनी ही पड़ेगी। श्रीराधारानी ने कहा कि प्यारे मैं एक क्षण के लिए भी आपका वियोग नहीं सह सकती। परन्तु प्रभु ने कहा कि अब आप ही कोई रास्ता बताएं लीला करने के लिए।

श्री राधा रानी ने कहा कि प्यारे जहाँ पर गोलोक धाम, जहाँ पर यमुना जी और गिरिराज पर्वत है वहीं मैं निवास करूँगी। अपने हृदय की ओर भगवान् ने दृष्टिपात किया और गिरिराज पर्वत को प्रकट कर दिया। बोलिए गोवर्धन नाथ की जय।

विरिजा नाम की सखी को भगवान् ने श्री यमुना जी के रूप में उतारा और अपने गोलोक धाम को श्री किशोरी जी को प्रसन्न करने के लिए वृन्दावनेश्वरी है श्री राधारानी, उनको भी उतारा। वो गोलोक धाम को भगवान् ने श्री किशोरी जी को प्रसन्न करने के लिए श्री वृन्दावन के रूप में उतार दिया। ये वृन्दावन श्री गोलोक धाम है तो ब्रह्मा जी सभी देवताओं को कहते हैं।

जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.23)

ब्रह्मा जी कहते हैं कि अपनी श्रीमती राधारानी को लेकर भगवान् लीला करने के लिए अवतार लेने जा रहे हैं। देवताओं तुम सब अपने अंश से जन्म धारण करो। भूदेवी, देवताओं ने जब सुना तो सब गद्गद् हो गए और सभी अपने-अपने लोकों के लिए पधारे।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् मथुरा पुरी के राजा थे–महाराज उग्रसेन। मथुरापुरी जहाँ साक्षात् भगवान् का निवास है, जहाँ भगवान् नित्य अपने भक्तों को दर्शन देते हैं।

'मथुरा भगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.28)

इस उग्रसेन के छोटे भाई थे–दैवक। ये दोनों भाई थे। जिनके सात पुत्रियां और पाँच पुत्र थे। महाराज उग्रसेन के नौ पुत्र पाँच पुत्रियां थीं। कंस सबसे बड़े थे। जिन दैवक महाराज ने अपनी सात पुत्रियों की शादी शूरसेन के पुत्र वसुदेव जी से कराई। वसुदेव के एक भाई देवभाग थे ये दोनों भाई महाराज शूरसेन के पुत्र हैं। मारीशा नाम की पत्नी के गर्भ से छः बेटियों की शादी महाराज वसुदेव के साथ कर दी। योग्य पति समझकर शादी कराई। परन्तु सातवीं देवकी की शादी जब हुई, ये सबसे छोटी थी, तो वसुदेव को ही प्रदान करने का विचार आया। देखिए वसुदेव कहते हैं। आध्यात्म दृष्टि से, हम देखें कि वसुदेव कौन हैं? विशुद्ध चित्त जो हृदय है वही वसुदेव है, जो निष्काम बुद्धि है तुम्हारी वही देवकी हैं। जब वुसदेव, देवकी यानि विशुद्ध हृदय और निष्काम बुद्धि का मिलन हो जाता है तो वही साक्षात भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो जाते हैं।

सुन्दर मुर्हुत में महाराज शूरसेन अपने पुत्र को लेकर आज मथुरा पुरी में पधारे हैं। बारात आई धूम-धाम से। मंगलमय समय मे मंगलमूर्ति भगवान् के माता-पिता का पाणिग्रहण संस्कार हो रहा है कि-

"मंगलम् भगवान् विष्णु मंगलम् गरुड़ ध्वज,
मंगलम् पुंडरीक्षाय मंगलाय तनो हरिः।।"

देवलोक से देवता लोक फूलों की वर्षा कर रहे हैं। जय-जयकार हो रही हैं। आज मथुरा में देवता भी अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं। देवता कहते हैं कि देवकी के गर्भ से साक्षात् भगवान् प्रकट होंगे, अवतार लेंगे लीला करने के लिए। सभी देवता गद्गद् हो रहे हैं। बहुत सारा सामान अपनी बेटी के लिए प्रदान किया दैवक ने। 800 रथ दिए, 200 दासियां दीं, स्वर्णालंकार से आभूषित कर अपनी बेटी को अनेक वस्तुएँ प्रदान की। जब विदाई का समय आया वसुदेव और देवकी दोनों रथ में बैठे हैं। देखिए बड़ा ही विरह का दृश्य होता है जब बेटी की विदाई होती हैं। आज वसुदेव और देवकी जब जाकर रथ में बैठे हैं। सब लोग अश्रुपूर्ण नेत्र से विदा कर रहे हैं। कंस भी राजमहल के द्वार पर खड़ा हैं। कंस ने कहा कि पाँच बहन हैं। मेरी–कंसावति, कंका, कंसा, राष्ट्रपालिका, सुरभू आदि परन्तु कंस का अपनी बहनों से इतना मोह नहीं था, जितना चाचा की बेटी देवकी से स्नेह करते थे। घर में सबसे छोटी थी देवकी जी।

सबका स्नेह था देवकी पर, आज कंस की भी आंखों में आंसू थे। कंस भी रो रहे थे। कंस ने कहा कि मेरी बहन विदा हो रही है, तो क्या मैं इसे छोड़कर नहीं आ

सकता। तो कंस ने तुरंत रथ से सारथी को उतारकर स्वयं बैठ गया। लेकर देवकी वसुदेव को जब निकले तो बाहर ज्योंहि बीच राजपथ पर पहुँचे तो आकाशवाणी होने लगी कि अरे कंस तू जिस बहन को लाड़-प्यार से विदा कर रहा है उसी का आठवां पुत्र तेरा काल स्वरूप होगा।

अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध।

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.34)

कहाँ कंस अपनी बहन से इतना प्रेम करता था, किंतु एक क्षण में ही सारा स्नेह गायब हो गया। झट रथ में से नीचे उतरकर तलवार निकालकर कंस ने देवकी के केश पकड़ लिए, मारने को उद्धत हो गया।

"ना रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी" इस देवकी को मार ही देता हूँ।

"भगिनीं हन्तुमारब्ध खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत्।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.35)

श्री वुसदेव महाराज ने जब देखा तो कहा अरे कंस भैया ये तुम क्या कर रहे हो। देखो कंस एक तो ये तुम्हारी बहन है, ये अबला है और इसकी शादी का समय है, मंगल सूत्र गले में हैं। और तुम अपनी बहन को मारने जा रहे हो। बड़ा अमंगल अनर्थ हो जाएगा कंस ये अत्याचार मत करो। देखो, कंस आकाशवाणी मैंने सुनी है

"मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.38)

कंस जिनका जन्म हुआ है उनकी मृत्यु निश्चित है, "जातस्य ध्रुवो मृत्यु", "ध्रुवं जन्म मृतस्य च" इस मृत्यु को कोई टाल नहीं सकता, देखो कंस मैंने भी आकाशवाणी को सुना है, आपको अपनी बहन से तो कोई डर नहीं है इसके बालकों से डर हैं। कंस मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि "पुत्रान् समर्पयिष्ये" जितने भी पुत्र तुम्हारी बहन से होंगे सब लाकर तुम्हें प्रदान करूँगा। किन्तु वसुदेव ने यह नहीं कहा कि मैं तुम्हें आठवां ही पुत्र दूंगा क्योंकि वसुदेव जी अपने जीवन में कभी नहीं झूठ बोलते थे। सत्यवादी थे। भैया जो सत्यवादी है उनके ही हृदय में श्रीकृष्ण विराजते हैं।

"सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप।।"

सत्यवादी है वसुदेव कंस, इस बात को जानता था। कि कभी भी वसुदेव जी ने अपने जीवन में झूठ नहीं बोला, तो आज मुझसे कैसे झूठ बोल सकते हैं। कंस ने वसुदेव जी की वाणी को सत्य मानकर दोनो को छोड़ दिया, वसुदेव और देवकी अपने महलों में चले गए। समय व्यतीत हुआ, शुकदेव जी कहते हैं देवकी जी ने गर्भ धारण किया, पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई।

नामकरण संस्कार कराया नाम निकला–कीर्तिमान।

"कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.1.57)

उस कीर्तिमान नाम के बालक को लेकर वुसदेव जी कंस के पास गए और कहा कि भैया ये तुम्हारी बहन का प्रथम पुत्र है, मैंने प्रतिज्ञा पूरी की। भैया ये तुम ले लो।

कंस हँसने लगे और बोले कि मुझे इस बालक से भय नहीं हैं। आप इसे ले जाओ। मुझे तो आठवें पुत्र से भय है तो वसुदेव जी कीर्तिमान पुत्र को लेकर चलने लगे। मार्ग में वासुदेव ने सोचा कि कंस दुष्ट प्रवृत्ति का है और दुष्ट लोगों का स्वभाव कैसे होता है कि–

"क्षण रुष्टा क्षणे तुष्टा, रुष्टा, तुष्टा क्षणे क्षणे"

एक क्षण में रुष्ट, एक क्षण में तुष्ट हो जाते हैं। नीतिशास्त्र कहते हैं–

"अव्यवस्थित चित्तानां प्रसादोऽपि भयंकरः।"

जिस प्राणी का मन स्थिर न हो, उस पर कभी विश्वास नहीं करना। ये कंस भी अव्यवस्थित चित्त वाला व्यक्ति हैं। इसका मन स्थिर नहीं है, अभी कह दिया ले जाओ। थोड़ी देर में बोलेगा ले आओ, इसका कोई विश्वास नहीं। वसुदेव ऐसा सोचते जा रहे हैं।

इधर जैसे ही नारद जी को खबर लगी तो उन्होंने सोचा कि कंस जैसे व्यक्ति के मन में दया आ गई तो अब भगवान् अवतार नहीं लेंगे। नारद जी कीर्तन करते हुए मथुरा नगरी में आ रहे हैं, नारद जी का दिव्य मन्त्र है, कीर्तन है।

"श्रीमन् नारायण नारायण नारायण
लक्ष्मी नारायण नारायण हरि हरि"

नारद जी महाराज कंस के पास पहुँचे और कहा कि कंस भैया देवकी के बालकों का क्या हुआ? कंस ने कहा कि गुरु जी अभी एक ही पुत्र का जन्म हुआ है, पहला, और मैंने उस बालक को छोड़ दिया। अरे! कंस तू बड़ा मूर्ख है इतना भी नहीं जानता,

कंस ने कहा–क्यों गुरुजी क्या बात हो गई। नारद जी ने आठ दाने वाली एक माला निकाली और कहा कि कंस गिनो, कितने दाने हैं। कंस ने कहा गुरुदेव आठ। नारद जी ने कहा, कंस अब दूसरे मनके से गिनना शुरू करो और अब पहले मनके को अंत में गिना। कंस ने शुरू कि किया तो जो पहला मनका था वह आठवां बन गया।

बोले कंस अब तीसरे मनके से गिनना शुरू करो। जो दूसरे नम्बर का दाना था वह आठवां बन गया, बोले अब चौथे से गिनना शुरू करो, तो तीसरे नंबर का आठवां बन गया। कंस ने कहा गुरुजी यह बात मेरे पल्ले नहीं पड़ी। नारद जी बोले यही तो समझाने आया हूँ। मनके की तरह देवकी का हर बालक आठवां बन सकता है, परन्तु तुमने छोड़ दिया।

ममै वंश जीवलोके जीव भुत सनातन

ईश्वर अंश जीव अविनाशी

देखिए नारद कौन हैं? नारद कहते हैं–

"नारम् ज्ञानम् ददाति इति नारद्।"

जो मानव के अंदर के अज्ञान को दूर करे वही नारद है, नारद जी साक्षात ज्ञान मूर्ति हैं और ठीक हिसाब समझा रहे हैं। जैसा कि भगवान् ने गीता में कहा ये जीव मेरा अंश हैं। नारद जी भी बता रहे हैं। प्रत्येक जीव परमात्मा का अंश है यानि प्रत्येक पुत्र देवकी का आठवां पुत्र हैं और तूने छोड़ दिया। गुरुजी हिसाब में कुछ कच्चे हैं, परन्तु तुम्हारे समझाने से हम समझ गए। देख कंस, एक खबर और देनी थी। इस समय यादव कुल में देवता जन्म ले रहे हैं, इतनी खबर देकर नारद जी महाराज चले गए।

नारद का काम था केवल संदेश पहुँचाना। सारी डाक व्यवस्था नारद जी के पास ही थी। देखिए नारद शब्द का सुन्दर अर्थ है।

ना–रद् जिसकी बात कभी रद न् हो नारद। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय। देव, दानव, मानव तीनों में बेखटके नारद जी का प्रवेश हैं। हर व्यक्ति उसकी बात को मानते हैं। देवता लोग मानवगण, दानवगण सभी उनकी बात को मानते हैं। तो नारद जी श्रीमन नारायण–3 करते करते चले गए।

नारद जी के जाने क बाद उसी समय कंस अपने पिता उग्रसेन के पास गए और जाकर कहा कि पिताजी इस समय यादव कुल के देवताओं का जन्म हो रहा है, पिता उग्रसेन ने कहा कि बेटा ये तो बहुत खुशी की बात हैं। जिसके कुल में देवता जन्म लेता है उसका कुल पवित्र हो जाता हैं। कंस बोले पिताजी ये देवता, तो ब्राह्मण,

ये गऊ, ये भक्त, ये वैष्णव, ये सन्त सभी मेरे शत्रु हैं और आप इनकी पूजा करते हो, आप मथुरा के सिंहासन पर बैठने के लायक नहीं हो। उतर जाओ, गद्दी से उतर जाओ। कंस ने जबरदस्ती अपने पिता को सिंहासन से उतार दिया और पिता के मस्तक से राजमुकुट उतार कर स्वयं पहन लिया। उग्रसेन को हथकड़ी पहनाकर कारागर में डाल दिया, स्वयं रातोंरात मथुरा पति बन गए। जितना भी पिता का मंत्रिमंडल था कंस ने बदल दिया। जैसा स्वयं था वैसा ही मंत्रिमंडल बनाया। बकासुर, पूतना केशी आदि मन्त्री रखे। क्योंकि जैसा व्यक्ति का स्वभाव होता है उसे वैसा ही संग अच्छा लगता है, यदि कोई सत्संगी है तो उसे सत्संगी व्यक्ति के पास बैठना, मद्यपी को मद्यपी के पास ही बैठना अच्छा लगता हैं। तो कंस ने अपने जैसे ही मन्त्री अपने आस पास रखे।

परन्तु यहाँ प्रश्न है कि इतना धर्मात्मा राजा उग्रसेन और उनके पुत्र कंस दुष्ट अत्याचारी कैसे पैदा हो गए? कंस की माँ थी पवन रेखा ऐसी कथा आती है कि एक बार पवन रेखा अपने बाग में विहार कर रही थी सखियों के साथ। आकाश मार्ग में एक द्रुमिल नामक दैत्य जा रहा था, उसकी दृष्टि पवन रेखा पर पड़ी। मन आसक्त हुआ और उग्रसेन का रूप धारण कर आए। सारी सखियां चली गई संसर्ग हुआ पवन रेखा से और दुष्ट कंस पैदा हो गया। जिसमें महाराज उग्रसेन का अंश नहीं था।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन, देवकी और वसुदेव को पकड़कर कंस ने कारागार में डाल दिया, अब तक देवकी के छः पुत्र हुए और एक-एक करके कंस ने सभी का वध कर दिया। जब सातवां गर्भ धारण किया श्रीदेवकी जी ने तो भगवान् अपने योग माया जी के लिए आज्ञा दे रहे हैं? कि कितने सुन्दर वर्णन किया है शुकदेव जी श्रीमद्भागवत में।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवान् का गर्भ प्रवेश, देवताओं द्वारा गर्भ स्तुति

सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते।
गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.2.5)

जब सातवां गर्भ देवकी जी ने देखा तो "हर्ष शोक विवर्धन" कभी जोर से हंसती है कभी दुखी हुई कि भाई इसे भी नष्ट कर देगा। तो अपना सिर दीवार पर पटक-पटककर रोती हैं। "हर्ष शोक विवर्धनः" कभी रोती है कभी हंसती

है, जब भगवान् ने देखा अपनी माता को, तो भगवान् से रहा नहीं गया। कितना कष्ट है देवकी को। भगवान् ने तुरंत योगमाया को आज्ञा दी कि इस गर्भ को आकर्षण करो और रोहिणी के गर्भ में डाल दो, ये रोहिणी जी नंदबाबा के पास गोकुल में थी, वसुदेव की पत्नी थी गर्भवती थी। आज योगमाया जी को भगवान् कहते हैं–

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलङ्कृतम्।
रोहिणी वसुदेवस्य भार्यास्ते नन्दगोकुले।
अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.2.7)

"गच्छदेवि वृजंभद्रे" देवि आप व्रज में जाकर व्रज रानी यशोदा के गर्भ से पुत्री के रूप से जन्म धारण करो, तो तुम्हारी संसार में देवि के रूप में प्रतिष्ठा होगी। कोई तुम्हें कामुदा कहेगा, दुर्गा कहेगा अनेक तुम्हारे नाम होंगे। जो तुम्हारी पूजा करेगा तुम उन्हें मनवांछित फल दोगी, यह मेरा आशीर्वाद है।

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च।।
कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च।
माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.2.11, 12)

देवी को भगवान् ने आज्ञा दी और देवी ने देवकी के सातवें गर्भ का आकर्षण करके रोहिणी जी के गर्भ में स्थापित कर दिया, इधर मथुरा पुरी में हल्ला हो गया कि देवकी का सातवां गर्भ नष्ट हो गया। जब कंस ने सुना तो हँसने लगा कि मुझे सातवां गर्भ नष्ट नहीं करना पड़ा वह स्वयं नष्ट हो गया। अब तो मेरी बहन अष्टम गर्भ धारण करेगी। तो चतुरंगिनी सेना खड़ी कर दी हाथी, घुड़सवार, पैदल और रथ, ये चार प्रकार की सेना खड़ी, कर दी। ये सब सेना चारों ओर से कारागार को घेर कर खड़ी हो गई। वसुदेव और देवकी के हथकड़ी डाल दी। दैनिक कंस अपनी बहन को कारागर में देखने आते हैं। जब वसुदेव जी द्वारा देवकी जी ने अष्टम गर्भ धारण किया तो कंस का नियम था, रोज देवकी के दर्शन करना। कंस ने देखा कि देवकी के मुख पर एक तेज था।

सा देवकी सर्वजगन्निवास– निवासभूता नितरां न रेजे।

(श्रीमद्भागवतम् 10.2.19)

क्यों न हो? साक्षात जगद्‌निवास श्री हरि देवकी जी के गर्भ में निवास करने लगे। अखिल ब्राह्मण्ड नायक समस्त जगत जिनके रोम कूप में वास करते हैं। आज वह श्रीहरि श्री देवकी जी के गर्भ में निवास जो कर रहे हैं। देवकी जी का अत्यंत सुन्दर लगना स्वाभाविक है।

कंस मन ही मन सोच रहे हैं कि मैंने इतना तेज बहन के मुख पर कभी नहीं देखा। निश्चित मेरा शत्रु इनके गर्भ में बैठा है, म्यान से तलवार निकल कर कंस देवकी को मारना चाहता है परन्तु हाथ उठाने पर भी कंस का हाथ नहीं उठता क्योंकि साक्षात् भगवान् जो बैठे हैं।

"किमद्य तस्मिन करणीयमाशु" कंस सोचने लगे क्या करूँ? पर कर कुछ नहीं पा रहें। दैनिक कंस बहन को देखने आता। जब भगवान् देवकी के गर्भ में विराजमान हुए ब्रह्मादि सभी देवता भगवान् के लिए गर्भ स्तुति गाने पधारे हैं। इसे कहते हैं। गर्भ स्तुति, देखिए किसी भी शास्त्र में गर्भ की स्तुति नहीं की गई। गर्भ एक अंग का भयावह नरक है, जिसमें जीव आना नहीं चाहता। गर्भ में जीव को बहुत कष्ट होता हैं। परन्तु माता देवकी का गर्भ नर्क नहीं पूजनीय हैं। प्रार्थना योग्य है जिसमें साक्षात् भगवान् बैठे हैं। आज शिव ब्रह्मा गर्भ स्तुति कर रहे हैं भगवान् की।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः।।

(श्रीमद्‌भागवतम् 10.2.26)

ब्रह्मा जी ने कहा कि "सत्यव्रत सत्यपरं त्रिसत्यं" प्रभु आपकी प्राप्ति का कोई मार्ग है तो वह है सत्य का मार्ग। जिसने सत्य का अनुसरण किया है उसे आप प्राप्त होते हैं। प्रभु आप ही पंचमहाभूतो का कारण हैं। आप ही सत्यव्रत सत्य संकल्प धारी हैं। 'शरणं प्रपन्ना' हम आपकी शरण हैं। भगवन ये जो संसार है ये अनादि सनातन वृक्ष है जिसकी तीन जड़ हैं। सत्य, रज, तम। जिसके चार रस हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जिस वृक्ष पर दो ही पक्षी बैठे हैं। जीव और ब्रह्म। जिस पर दो ही फल लगे हैं। सुख-दुख। कभी मीठा, कभी खट्टा। ब्रह्मा जी कहते हैं। भगवन इस वृक्ष की उत्पति भी आपसे, पालन भी आपसे और प्रलय भी आप से ही है।परन्तु इस अनादि सनातन वृक्ष को पार करना हो तो कहते हैं कि-

त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम्।

(श्रीमद्‌भागवतम् 10.2.30)

महापुरुषों ने एक बहुत सुन्दर नौका बताई है, जैसे एक छोटी सी नौका बड़ी से बड़ी नदी भी पार कर लेती हैं। उसी प्रकार महापुरुष कहते हैं, संसार रूपी समुद्र पार करने के लिए कोई नौका है तो भगवन आपके चरण कमल हैं। जिसने आपके चरण कमलों कि ध्यान किया वह संसार समुद्र पार कर जाते है, जैसे कोई, व्यक्ति मार्ग में जा रहा है अचानक गौ के वत्स के पद को लांघ जाता हैं। पार कर जाता है।

तथा न ते माधवा तावकाः कश्चिद्।
भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वायि बद्धसौहृदाः।
(श्रीमद्भागवतम् 10.2.33)

ब्रह्मा जी ने कहा कि हे माधव पहले तो भक्तों का मन आपके चरणों में लगता नहीं और एक बार लग जाता है तो वह आपके चरण में बंध जाता हैं। भगवान् के चरण कमल कैसे हैं? मानो एक गुफा है और जैसे गुफा में व्यक्ति एक बार प्रवेश कर जाता है तो फिर निकल नहीं पाता।

इसी प्रकार से गोपियाँ भी कहती हैं, भ्रमर गीत में भगवान् को, कि सबसे प्रीति करना परन्तु इस कन्हैया से कोई प्रीति न करना क्योंकि जो एक बार इस सांवरे सलोने का दर्शन कर लेता है, वह तो घर का रास्ता ही भूल जाता है।

"जानत तुमही–तुमही हो जाइ"
जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।
मैं वोरा डोवन डोरा रहा किनारे बैठ।।

जिन्होंने गोविन्द को खोजा, उन्हें कृष्ण मिला, हमारे प्रभु कैसे हैं? देखो एक ब्रज के भक्त, रसिक संत हुए जिन्होंने अपनी वाणी में एक सुन्दर पद गाया कृष्ण और राधा जी के लिए। उन्होंने गाया–

गीतम्

मेरो कान्हा गुलाब को फूल, किशोरी मेरी कुसुमकली
कान्हा मेरो नन्द जी को छोरा श्री राधे वृषभान लली।
किशोरी मेरी कुसुम कली..

ब्रह्मा जी भगवान् की स्तुति में कहते है, हे माधव एक बार जब भक्त का मन आपके चरण में लग जाता है तो आपके चरण से मन हटता नहीं। आपने युग–युग में अवतार धारण किया कभी कच्छपवतार, नरसिंहावतार, कभी वराह अवतार और अभी भी प्रभु आपका जन्म नहीं हो रहा है उन्होंने कहा कि–

भारं भुवो हर यदुत्तम वन्दनं ते।

पृथ्वी का भार उतारने के लिए आप अवतार ले रहे हैं। आप प्रकट हो रहे हैं। हम सब देवता आपकी शरण में हैं। ब्रह्मा, शिव प्रभु को प्रणाम करते हैं। सभी देवता अपने-अपने लोकों में पधारे हैं।

अथ तृतीयोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्ण का प्राकटय्

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि राजन, यहाँ तक आप श्रीमद्भागवत में भगवान् के जन्म की भूमिका कथा को सुने हो। अब सुनिए भगवान् का जन्मकाल कितना सुन्दर प्रकट हुआ।

"अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.3.1)

काल ने विचार किया कि मेरे कृष्ण प्रकट हो रहे हैं, काल को देखकर हर व्यक्ति को भय लगता है, डर लगता हैं। काल माने मृत्यु उस मृत्यु रूपी काल का सबको भय है, परन्तु आज काल ने कहा कि मैं अपने भयानक स्वरूप में प्रकट नहीं होऊँगा अर्थात मृत्यु रूप में प्रकट नहीं होऊँगा, कहीं लोग मुझे देखकर डर न जाएँ, "कालः परमशोभनः" काल भी सुन्दर रूप धारण करके भगवान् के जन्म की खुशी में प्रकट हो गया। आकाश में नक्षत्र, तारागण, ग्रह शान्त हैं। भादों का महीना हैं। कृष्ण पक्ष है, अष्टमी तिथि, बुधवार है, रोहिणी नक्षत्र के तीसरे चरण में चन्द्रमा भी प्रवेश कर रहा है। दिशाएं प्रसन्न हैं। नदियाँ का जल भी स्वच्छ हो गया।

दिशं प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.3.2)

मन्द सुगंध वायु बह रही है, ये पंचतत्व अपनी शुद्धि कर रहे हैं।

मन्दं मन्दं जलधारा जगर्जुरनुसागरम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.3.7)

पृथ्वी, जल, वायु आकाश और तेज से पंचतत्व अपना शुद्धिकरण कर रहे हैं। अब तक अग्निकुंड में अग्नि शान्त थी, क्योंकि कंस किसी को भी यज्ञ नहीं करने देता था। आज अग्नि स्वयं प्रज्ज्वलित हो गई। ब्राह्मण वैदिक मन्त्रों का पाठ कर रहे हैं। स्वस्ति वचन का पाठ हो रहा हैं। देवता लोग आकाश में दुंदुभि बजा रहे हैं। नगाड़े बजा रहे हैं।

जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुन्दुभयः समम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.3.5)

जितने भी भगवान् के अवतार हुए हैं। भगवान् के अवतार के बाद ही दुंदुभि बजे हैं, नगाड़े बजे हैं, परन्तु ये कृष्ण अवतार ही ऐसा है कि भगवान् के जन्म के पहले ही नगाड़े बजे हैं, दुंदुंभियां बजी है।

आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.3.8)

आज भगवान् कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में जन्म ले रहे हैं, रात्रि के बारह बजे एक ओर चन्द्रमा सम्पूर्ण कलाओं को धारण करके उदय हो चुका है, विचित्र बात है, आज पूर्णिमा की तिथि नहीं है, परन्तु चंद्रमा सम्पूर्ण कलाओं को धारण कर उदय हो रहे हैं। चन्द्रमा के ऊपर भगवान् की विशेष कृपा हैं पूर्णिमा तिथि नहीं है परन्तु आज चंद्रमा सम्पूर्ण कलाओं को धारण करके कैसे प्रकट हो गए? क्योंकि जिस समय भगवान् श्रीराम का अवतार हुआ इस बात को अयोध्या में कोई नहीं जान सका। गोस्वामी जी ने उस रहस्य को राम चरित मानस में प्रकट किया।

मास दिवस कर दिवस भाव, मन - मन जाने कोई।
रथ समेत रथ थाते हो, निशा कवन्धीत होई।

एक महीने का एक मास का दिन अयोध्या में बन गया था। सूर्य भगवान् की गति ठेर गइ अपने प्रभु राम के दर्शन के लिए। सूर्य भगवान् रथ लेकर खड़े हो गए। सभी देवता दर्शन का लाभ लेने खड़े हैं। उस समय रो रहा था केवल चन्द्रमा क्योंकि सूर्य हटे तब चन्द्रमा आकर दर्शनकरे। किंतु सूर्य भगवान् एक महीने के लिए रथ समेत स्थिर हो गए, खड़े हो गए। श्रीराम की झांकी का दर्शन कर रहे हैं। भगवान् श्रीराम कितने सुन्दर हैं। प्रभु राम की दृष्टि जब चन्द्रमा पर पड़ी और प्रभु ने जब चन्द्रमा को देखा तो कहा भईया तुम क्यों रो रहे हो? चन्द्रमा बोले आपका दर्शन नहीं मिल रहा, भगवान् ने कहा मेरे जन्म से किसी को दुख नहीं बल्कि परम सुख मिलता है। फिर आज ये चन्द्रमा क्यों रोए। गोपियों ने चौथे श्लोक में सुन्दर गोपीगीत गाया हैं। वे कहती हैं। कि–

न खलु गोपिकानन्दनो
भवानखिलदेहिनाम - न्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो – विश्वगुपतये – सख
उदेयिवान् – सात्वतां कुले।

गोपियाँ कहती हैं। हे नन्दनन्दन, हे श्याम सुन्दर आपके अवतार से कभी किसी को कष्ट नहीं होता। ब्रह्मा की प्रार्थना पर 'विखन सार्थितो विश्वगुप्तये' आप जगत को सुख देने के लिए अवतार लेते हैं।

परम सुख होता हैं। परम आनन्द की अनुभूति होती है, तो भगवान् ने कहा आज चन्द्रमा ही क्यों रोए? इन्हें भी प्रसन्न करना है भगवान् कहते हैं। भले ही मैं सूर्यवंश में अवतार ले रहा हूँ, परन्तु मैं अपने नाम के साथ सूर्य नहीं लगाऊँगा। भगवान् ने अपने नाम के साथ चन्द्रमा के नाम को भी जोड़ लिया देखिए कोई राम सूरज नहीं कहता रामचन्द्र कहते हैं। बोलिए श्री रामचन्द्र भगवान् की जय।

आज तो चन्द्रवंश में ही भगवान् प्रकट हो रहे हैं, तो चन्द्रमा की खुशी का तो ठिकाना नहीं, अब खुशी में कौन बड़ा नहीं होता। इतनी खुशी है चन्द्रमा को भगवान् की प्रकाट्य की बेला में, कि चंद्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं को धारण करके अर्ध रात्रि को प्रकट हो गए। शुकदेवजी कहते हैं इस प्रकार वसुदेव और देवकी दोनों ही भगवान् का ध्यान कर रहे हैं। उस भादों कृष्णपक्ष अष्टमी तिथि को भगवान् देवकी के गर्भ से अर्धरात्रि में कारागार में जन्म लिया

आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.3.8)

कितना सुन्दर दिव्य बालक है, अद्भुत, अति सुन्दर दर्शन देवकी, वसुदेव जी को हो रहे हैं। कंस के कारागार में। जहाँ केवल वसुदेव, देवकी, सर्वशक्तिमान प्रभु को अपलक दृष्टि से दर्शन कर रहे हैं।

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चर्तुभुजं शङ्खगदाद्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.5.9)

जिनके स्वयं ब्रह्मा पुत्र हैं, शिव भी पुत्र हैं। आज वह स्वयं बालक यानि पुत्र बनकर प्रकट हुए हैं, कितना अद्भुत प्रभु का दर्शन हैं। माथे में मुकुट कानों में कुंडल, गले में हार, बांहों में बाजूबंद तथा हस्तकमलों को शंख, चक्र, गदापद्म हैं। चार शस्त्र भी प्रभु अपने साथ लाए हैं भगवान् ये वस्त्र पहनकर क्यों आए हैं माँ के गर्भ से। क्योंकि भगवान् जानते हैं कि हमारे माता-पिता कारागार में बंद हैं। उनके पास कपड़े भी नहीं होंगे पहनाने के लिए। तो स्वंय अपना इंतजाम करके चलो न। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय। तो "पीताम्बर सान्द्रपयोदसौभगम्" सुन्दर पीताम्बर धारण करके प्रभु प्रकट हुए। शंख, चक्र, पदम्, गदा लेकर प्रभु क्यों आए हैं? भगवान् जानते हैं कि मेरा जन्म मामाजी

के कारागार में हो रहा हैं और मुझे पकड़ने के लिए उन्होंने चर्तुरंगीनि सेना खड़ी कर रखी हैं। यदि मामा जी को खबर लगी कि देवकी के यहाँ आठवां पुत्र हो गया है और वे मुझसे युद्ध करने आये तो मुझे भी शस्त्र चाहिए। तो भगवान् शंख, चक्र, गदा, पदम् लेकर प्रकट हुए। परन्तु एक सन्त अपने भाव प्रकट करते हैं, भगवान् चतुर्भुज रूप में क्यों प्रकट हुए? भगवान् कहते हैं, जो मेरी शरण में एक बार आ जाता है में उसे चारों पदार्थ दे देता हूँ, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

वसुदेव और देवकी दोनों की हथकड़ियां खुल गई, दोनों ही भगवान् की स्तुति करते हैं।

विदितोऽसि भवन्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः।
केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.3.13)

देवकी, वसुदेव आज भगवान् को प्रणाम करते हुए कहते हैं। कि–

'विदितोऽसि भवान्साक्षात्'

आप तो मन, बुद्धि, वाणी शरीर सभी से परे हो, अनिर्वचनीय आपका शरीर है, परन्तु आपने कृपा की, कि अपने स्वरूप को हमें जगा दिया, आपने अपनी पहचान करा दी। "विदितोऽसि भवान्साक्षात्"

वसुदेव जी भगवान् के स्वरूप का स्वयं दर्शन करके कृतार्थ हो गए। पुत्र के रूप में अपना परिचय देकर भगवान् ने वसुदेव जी को कृतकृत्य कर दिया। वसुदेव जी ने भगवान् की बड़ी सुन्दर स्तुति की। परन्तु देवकी माता ने भगवान् के लिए जो स्तुति की वह तो वेदांत की भाषा हैं। देवकी माता बोली–

रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.3.24)

माता देवकी कहती हैं कि भगवन् आप तो निर्गुण हैं, निराकार हैं, निर्विकार हैं। परन्तु भक्तों के आग्रह से सर्वगुण साकार बनकर अवतरित हो जाते हैं। हे आध्याम दीप हम दोनों आपकी शरण में हैं। आपका वंदन करते हैं। भगवान् अपने माता–पिता से बड़ी सुन्दर चर्चा कर रहे हैं। भगवान् कहते हैं कि माता–

त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायम्भुवे सति।
तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.3.32)

मैं आपका एक जन्म का पुत्र नहीं हूँ ये मेरा तीसरा जन्म है, देवकी जी ने कहा प्रभु आप हमारे तीन जन्मों में पुत्र बने हो थोड़ा, कृपा करके बताइए। भगवान् कहते हैं, पूर्व जन्म में आप दोनों सुतपा नाम के ऋषि थे। आपकी पत्नी का नाम पृष्णि था, मैंने पृष्णि गर्भ से जन्म लिया तो नाम पड़ा पृष्णिगर्भ!

दूसरे जन्म में आप बने कश्यप और अदिति! मैंने आपके गर्भ से वामन रूप धारण किया। आज आप देवकी, वसुदेव हैं। मैंने पुनः कृष्ण रूप धारण किया। देखिए यदि आपको कंस से कोई भय है तो आप मुझे गोकुल में छोड़ आएं तथा नंद बाबा की कन्या को गोकुल से ले आएं।

देवकी ने कहा, प्रभु आपकी आज्ञा शिरोधार्य। जैसे आप कहे वैसा ही करें, लेकिन एक प्रार्थना हैं। कृष्ण ने कहा, कहो क्या बात हैं। देवकी बोली मैं एक बार गोद में लेना चाहती हूँ। परन्तु आप शंख, चक्र, गदा, पदम् के साथ खड़े हो। मैं तो चाहती हूँ कि आप भी और बच्चों की तरह छोटे से लाल बन जाएं तो अपनी माँ की कामना को पूर्ण करने के लिए भगवान् ने अपना चतुर्भुज रूप छुपा लिया और बाल रूप में आकर देवकी की गोद में विराजमान हो गए।

"बभूव प्राकृतः शिशुः" (श्रीमद्भागवतम् 10.3.46) तो भगवान् एक छोटा, घुंघराले बाल बाले, मोटी-मोटी आँख वाले शिशु बन गए। बोलिए बाल कृष्ण लाल की जय।

जो देवकी जी ने भगवान् बालकृष्ण का अपनी गोद में दर्शन किया देवकी के स्तन से दूध की धार बहने लगी, देवकी दूध पिलाने बैठी तो वसुदेव बाल कृष्ण को छुड़ाने लगे। देवकी ने कहा मैं छः पुत्रों की माँ बनी सातवां गर्भ में नष्ट हो गया ये आठवां है, इसे दूध तो पिला लेने दो। परन्तु वसुदेव जी ने कहा देवकी मेरे पास समय नहीं है, क्योंकि यदि कंस को पता चल गया तो वह इसका वध कर देगा। तुम धैर्य धारण करो, अब तो हम अपने पुत्र को भी गोद में लेंगे जब, 10,000 गौ दान ब्राह्मण को कर लेगें। यह संकल्प वसुदेव ने किया और देवकी की गोद से बालकृष्ण को छुड़ा लिया।

रोती बिलखती देवकी जी रह गई। बालकृष्ण को जब लेकर चलने लगे तो वसुदेव जी ने भगवान् को सूप में रखा। लोग कहते हैं कि भगवान् को सूप में लेकर गए। (कर्त्तुम्ऽक्र्त्तुम) सब कुछ करने में भगवान् श्रेष्ठ हैं, तो क्या वह स्वयं के लिए रत्न की पिटारी नहीं बना सकते? रत्न से जड़ी हुई पिटारी थी जिसमें मखमली गद्दे, तकिए थे। भगवान् बालकृष्ण को उसमें शयन कराया और लेकर गए। जब वसुदेव

उन्हें अपने सिर पर रखकर चलने लगे तो कारागार के द्वार खुल गए। पहरेदार सो गए और मंद-मंद वर्षा होने लगी। काली घटा छा रही थी, बादल गरज रहे थे।

ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमो रवेः।
ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन्फणैः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.3.49)

आज वसुदेव जी बालकृष्ण को लेकर गोकुल जा रहे हैं, बादल के साथ मृदुल मंद जल की फुहारें छोड़ रहे थे, इसलिए शेष जी अपनी छाया देकर भगवान् के पीछे पीछे चलने लगे। बलराम जी ने विचारा कि मैं बड़ा भाई बना तो भी सेवा ही मेरा परम धर्म हैं। इसलिए ये अपने शेष रूप से असली स्वरूप से श्रीकृष्ण के लिए जल का निवारण करते हुए चले। उन्होंने सोचा कि यदि मेरे रहते हुए मेरे श्याम की वर्षा से कष्ट पहुँचा तो मेरे जीवन का धिक्कार है, इसलिए उन्होंने अपना सिर आगे कर दिया। वसुदेव जी बालकृष्ण को लेकर आ रहे हैं, वसुदेव जी यमुना के निकट पहुँच गए। यमुना जी को उफान में बहते देखकर वसुदेव जी घबराए, सोचा कैसे गोकुल जाया जाए, आज तो यमुना पूर्ण गति से बह रही है, इतने मेंश्रृगाल को जमुना पार होते देखा। वसुदेव जी ने सोचाश्रृगाल पार हो गया तो हम भी पार हो सकते हैं। शायद पानी कम है तोश्रृगाल पार हो गया, वास्तव में यमुना रानी श्रीकृष्ण की पटरानी हैं, अपने प्रभु को गोकुल जाने के लिए स्वयं रास्ता दे दिया।

मार्ग ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.3.50)

गीतम्

भाव से गाइए

गोविन्द मेरो है गोपाल मेरो है
श्री बांकेबिहारी नन्दलाल मेरो है
श्री बंशी बजइया नन्दलाल मेरो है।

बाल कृष्ण को लेकर गोकुल में वसुदेव जी पधारे हैं। श्री यमुना जी को पार कर जब वसुदेव जी गोकुल में नन्दजी के भवन में गए, तो देखा कि द्वार खुले पड़े हैं। सूतिका गृह में ब्रजरानी यशोदा सो रही थी। वसुदेव जी के पहुँचने से पहले ही योगमाया जी प्रकट हो चुकी थीं। तो वसुदेव ने बाल कृष्ण को पलंग पर सुला दिया और योगामया को लेकर मथुरा आ गए। कारागार में प्रवेश करते ही कारागार के द्वार

बंद हो गए। वास्तव में भगवान् का जन्म तो गोकुल में ही हुआ हैं। मथुरा के कारागार में तो भगवान् का प्राकटय् हुआ है।

अथ चर्तुथोऽध्यायः

कंस के हाथ से छूटकर योगमाया की भविष्यवाणी करना

कंस को पता चला कि देवकी के अष्टम गर्भ के बालक ने जन्म ले लिया। कंस अपने मारने वालो को मारने के लिए पूरी तैयारी के साथ कारागार में उपस्थित हुआ, किंतु जाकर देखा कि मेरी बहन की गोद में एक शिशु मुस्करा रही है, देवकी बहुत घबराई क्योंकि देवकी जानती है कि मेरा भाई इसका भी वध कर देगा। इस बालक को अपने प्रयास से कंस ने हाथ न जाने की चेष्टा की। देवकी के लाख प्रयास करने से भी कंस न देवकी की गोद से उस नन्हीं बालिका को खींचकर अपनी गोद में ले लिया, देवकी रोते हुए बोली भैया इसे छोड़ दो ये तो बालिका हैं। परन्तु कंस ने कहा जो भी हो यह अष्टम बालक है, हमारा काल हैं। कंस ने योगमाया रूपी उस बालिका को दीवार पर पटकने का प्रयास किया, परन्तु उससे पहले ही हाथ से फिसल कर वह आकाश में पहुँच गई, अष्ट भुजारूपी देवी का दर्शन कराया और देववाणी में कहा कि–

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत्।
यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्वृथा।

(श्रीमद्भागवतम् 10.4.12)

अरे कंस तू मुझे क्या मारेगा? तुझे मारने वाला तो पैदा हो चुका है, तूने वृथा की हिंसा करके छः बालकों को मार दिया, अब तू अपनी मृत्यु के लिए सोच। कंस घबराकर बोला माता जी वह मेरा शत्रु कहाँ है? देवी माता ने कहा ढूंढते रहो इतना कहकर देवी माता अदृश्य हो गई और कंस को कहा तूने बेकार ही छः पुत्रों को मार दिया, कंस मन ही मन विस्मित होने लगे कि इतनी चतुरांगिणी सेना रखने के बाद मुझे मारने वाला यहाँ से निकल गया।

अथ पंचमोऽध्यायः

गोकुल में भगवान् का जन्मोत्सव

राजा परीक्षित ने प्रश्न किया कि गुरुजी बताइए किस प्रकार भगवान् का जन्म गोकुल में हुआ। जन्मोत्सव गोकुल में किस प्रकार मनाया। अब हम सब गोकुल

की ओर चलें। बड़े प्रेम से, भाव से नन्द उत्सव 18 श्लोक भागवत में बड़े दिव्य है, उसका चिन्तन करें, जब भगवान् में गोकुल का प्रादुर्भाव हुआ तो कैसा दृश्य था कैसे भगवान् पधारे हैं। इस प्रसंग में श्रीमद्भागवत में बड़ी सुन्दर व्याख्या की हैं। श्री जीव गोस्वामी जी ने भी इस श्लोक की बड़े सुन्दर भाव से व्याख्या की है।

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः।
आहूय विप्रान्वेदज्ञान्स्नातः शुचिरलङ्क तः।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.5.1)

राजन् वास्तव में तो प्रभु का जन्म गोकुल में ही हुआ था, महाराज परीक्षित ने कहा कि कृपा करके गोकुल की कथा सुनाइए, तो शुकदेव जी महाराज कहते हैं। माघ का महीना आयो, माघ मास और मकर संक्रान्ति तिथि में नन्दबाबा के छोटे भाई का नाम है उपानन्द इन्हीं उपानन्द, के यहाँ भोजन के लिए ब्राह्मण पधारे। सब ब्राह्मण भोजन कर चुके तो उपानन्द ने नन्दबाबा से कहा देखो भईया! आप घर में सबसे बड़े हो आप ही ब्राह्मणों को तिलक करके दक्षिणा दो। वे ही तिलक कर रहे हैं।

"नमो ब्राह्मणदेवाय, गौ ब्राह्मणहिताय च।
जगत हिताय कृष्णाय, गोविन्दाय नमो नमः।।"

सभी ब्राह्मणों को तिलक करके दक्षिणा दी। सभी ब्राह्मण एक साथ आशीर्वाद दे रहे हैं। 'ब्रजराज आयुष्मान भव'। 'ब्रजराज धनवान भव' आपके यहाँ धन बहुत हो। 'ब्रजराज पुत्रवान भव' आपके यहाँ पुत्र हों, सभी ब्राह्मणों से नन्दबाबा ने हाथ जोड़कर कहा कि देखो दोनों आशीर्वाद तो पक्के हैं, कि हमारे यहाँ धन बहुत हो, आयु बढ़ जाए परन्तु ये तीसरा आशीर्वाद क्यों दे दिया है भैया, अब तो मेरी 60 बरस की आयु हैं। सन्तान की आशा कहाँ है? परन्तु सभी ब्राह्मणों ने कहा ब्रजराज अब तो हमारे मुख से आशीर्वाद निकल ही पड़े हें, अब तो आपके यहाँ लाला ही होयेगो। ब्रज में एक कहावत है–"साठा सो पाठा" बोलो श्री वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

ब्राह्मण दक्षिणा लेकर चले गए। इधर माघ मास कृष्ण पक्ष एकम् तिथि रात्रि में यशोदा नन्दबाबा के चरण दबा रही थी, नन्द बाबा सो गए। यशोदा भी चरण दबाते–दबाते सो गई। प्रातःकाल दोनों ने एक–दूसरे को देखा और नन्दबाबा ने कहा मैंने रात्रि में एक स्वप्न देखा, नन्दरानी यशोदा ने कहा कि मेहेर मैंने भी एक स्वप्न देखा, तो पहले आप स्वप्न सुनाओ तो नन्दरानी यशोदा से नन्दबाबा कहते हैं कि मैंने रात्रि में जो स्वप्न देखा वह बड़ा ही अद्भुत हैं। बोलो मेहेर बताओ तो सही क्या देखा? नन्द बाबा सपने का वर्णन कर रहे हैं। "या कु हृष्ट पुष्ट शरीर, घुंघराले

बाल, श्यामवर्ण शरीर, मोटी–मोटी आंखें ऐसा बालक मैंने आपकी गोद में खेलते हुए देखा है।"

यशोदा मेरा सपना सत्य है न? ब्रजरानी यशोदा ने कहा कि मेहेर बिल्कुल सत्य है ऐसे ही बालक याकु हृष्ट–पुष्ट शरीर, घुंघराले बाल, श्यामवर्ण शरीर, मोटी–मोटी आँख वाला बालक मैंने भी आपकी गोद में खेलते हुए देखा है? तो माघ मास कृष्ण पक्ष एकम् तिथि की रात्रि में नन्दबाबा ने स्वप्न देखा। एकम् तिथि के दिन ही नन्दरानी यशोदा ने गर्भधारण किया, यह गर्भ धारण की तिथि शास्त्रों में आचार्य ने बताई हैं। देखिए परमात्मा का तीन प्रकार से दर्शन होता हैं। शास्त्रों में बताया है कि पहला दर्शन श्री विग्रह होता हैं। दूसरा दर्शन स्वप्न दर्शन होता हैं। भक्तों को भगवान् स्वप्न में भी दर्शन देते हैं। और तीसरा दर्शनप्रत्यक्ष दर्शन। प्रत्यक्ष भगवान् प्रकट हो जाते हैं। ये दो दर्शन नन्दबाबा यशोदा को हो चुके हैं। श्रीविग्रह तथा स्वप्न दर्शन। अब तीसरा दर्शन होने जा रहा है।

श्रीशुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन् पूर्णिमा तिथि आई, जिसे कहते हैं– रक्षा बंधन। सावन का महीना, पूर्णिमा की पावन बेला, सभी ब्राह्मण मिलकर श्रावणी आदि कार्य करने के लिए यमुना तट पर गए और सभी ब्राह्मणों ने कहा कि देखो भईया नंद बाबा को हमने आशीर्वाद दिया कि 'पुत्रवान भव'। तो चलों मालूम करें कि लाला भयो कि नहीं। सारे ब्राह्मण मिलकर रक्षाबंधन को नंद बाबा के घर पधारे। उस समय नन्द बाबा द्वार पर बैठे थे। नन्द बाबा ने जब ब्राह्मण टोली देखी तो उठकर प्रणाम किया। ब्राह्मणों ने मौली बांधी।

बाबा नन्द ने सभी को दक्षिणा दी। सभी ने एक साथ मिलकर आशीर्वाद दिया। 'पुत्रवान भव', 'दीर्घायु भव'। 'धनवान भव' आयुष्मान भव जो कहा पुत्रवान भव, तो नन्द बाबा ने कहा, देखो ब्राह्मणों तुम्हारा आशीर्वाद फलभूत हो रहा हैं। तुम्हारा आशीर्वाद का फल तो दिखने लगा है क्योंकि ब्रजरानी यशोदा गर्भवती है, परन्तु भईया अपना आशीर्वाद पक्का कर लो, पहले भी तुमने कहा पुत्रवान् भव। आज भी कहा है कहीं पुत्रीवान हो गए हो तो क्या करोगे? ब्राह्मण ने कहा, हम ऐसे वैसे ब्राह्मण नहीं हैं। आपके यहाँ लाली भी हो जाएगी, तो उस लाली को हम लाला करके दिखा देगें। आज आप भी हमारे हाथ में रक्षा मौली बांध दो, आज यमुना तट पर हम सब जाएँगे और प्रार्थना करेंगे कि हमारे बाबा के घर लाला को ही पैदा करना। सभी ब्राह्मण खड़े हैं और ब्रजवासी कह रहे हैं कि देखो ब्रजराज इन ब्राह्मणों का आशीर्वाद देखने को मिलेगा आप संकल्प दे दो। सभी ब्राह्मण संकल्प करके यमुना तट पर जाने लगे

तो नंद बाबा ने कहा कि ब्राह्मणों एक बात बताओ कि मेरो लाला को जन्म लेने में कितना समय बाकी है? अपना-अपना पंचांग देखकर उंगली पर गिनते हुए कभी सिर पर हाथ रखकर विचार कर रहे हैं। एक साथ एक स्वर में सभी ब्राह्मणों ने कहा कि ब्रजराज बधाई हो बधाई।। बोलो महाराज आज्ञा करो। प्रार्थना कर रहा हूँ क्या आज्ञा है? ब्रजराज आज से आठवां दिन रोहिणी नक्षत्र में आठवीं तिथि को तीसरे चरण में लाला का जन्म हो जावेगो। इतना कहकर ब्राह्मण चले गए।

नन्द बाबा ने कहा कि मेरी यहाँ लाला के जन्म में केवल आठ ही दिन बचे हैं और हमने कोई तैयारी भी नहीं की हैं। तो भगवान् बालकृष्ण के जन्मोत्सव आठ दिन पहले से ही तैयार हो गए। नन्द बाबा के यहाँ सफाई हो रही है जगह-जगह तोरण, बन्दरवार लगाए जा रहे हैं। मोतियों के चौक पूजे जा रहे हैं। गौ को स्नान कराए जा रहे हैं, उनकी पीठ पर गेरु के थोप लगा जा रहे हैं। उनके सींग से मंढे जा रहे हैं। पीत वस्त्र गौओं को उठाए जा रहे हैं। ब्रजवासी भी नूतन वस्त्र बनवा रहे हैं।

ब्रज की गोपियाँ भीश्रृंगार का सामान एकत्र कर रहे हैं। बधाई का सामान एकत्र कर रही हैं कि नन्द के यहाँ लाला होगा, हम सब बधाई देने जाएँगे।

आठ दिन का समय देखते-देखते ही निकल गया। देखो खुशी का समय मालूम नहीं चलता और दुख का समय काटे से नहीं कटता। अष्टमी तिथि लाला का जन्म नहीं हुआ। अष्टमी तिथि आ गई रात के आठ बज गए। परन्तु लाला का जन्म नहीं हुआ। घर के नौकर चाकर सब नन्दबाबा के पास आए और कहा कि नाम तो आज का ही लिए ना परन्तु लाला का जन्म नहीं हुआ। अब तो रात के आठ बज गए। बहुत थक गए हैं। नन्द बाबा ने कहा कि बात तो बिल्कुल ठीक है, मैंने तो रात दिन एक कर दिया जन्मोत्सव की तैयारी में।

अब तो जब लाला का जन्म हो जायेगो तभी कोई कार्य होगा। जाओ तुम सब जाकर सो जाओ, रात के आठ बजे सभी नौकर चाकर जाकर सो गए। जब दो घंटे और निकले तो नंद बाबा सुनंदा के पास जाकर बोले बहन नाम तो आज को ही लियो है ना, तब रात्रि के दस बजे थे, परन्तु अभी तक लाला का जन्म नहीं हुआ। बहन तू कहे तो मैं भी कमर सीधी कर लूं। सुनंदा बोली, मैं भाभी के पास हूँ ना रात्रि के दस बजे नन्द बाबा भी सो गए। जब एक घंटा समय और निकला तो लाला की बुआ सुनंदा की आंखों में भी नींद आने लगी।

अपनी भाभी नन्दरानी यशोदा के पास गई और कहा कि नाम तो आज का ही लिया है ना अब तो रात्रि के ग्यारह बज गए। अभी तक जन्म नहीं भयो। भाभी अब

तो मुझे भी नींद आ रही हैं। यदि तू कहे तो मैं भी थोड़ी देर के लिए सो जाऊँ। यशोदा बोली हाँ बहन सो जाओ। लाला का जन्म के बाद मैं तुम्हें उठा दूंगी। रात्रि ग्यारह बजे लाला की बुआ भी सो गई। देखिए सब क्यों सो गए। प्रभु की लीला देखिए। पहले आ रही योगमाया। जो सबको सुलाती है, परन्तु भगवान् को सोता हुआ कोई अच्छा नहीं लगा।

"जानहिं जीव यवहिं जग जागा,
तब सब विषय विलास विरागा।"

ठीक ग्यारह बजे सुनंदा जी सो गई। जीव माया की गोद में सो रहे हैं, परन्तु ठाकुर जीव को आकर जगा देते हैं। सुलाते नहीं हैं, प्रभु जगा देते हैं, जब ठीक बारह बजे का समय हुआ तो ब्रजरानी यशोदा भी सो गई। उसी समय वसुदेव जी आए और योगमाया को ले गए।

बालकृष्ण भगवान् को पलंग पर सुला गए और योगमाया रूपी कन्या को लेकर चले गए। भगवान् बालकृष्ण माँ के पलंग पर सो रहे हैं। प्रभु ने प्रथम बार जब अपनी आँख खोलकर देखा तो क्या देखा? क्या सुना? चारों ओर खर्राटे, सब सो रहे हैं। यहाँ तो मेरी मैया बाबा, बुआ, नौकर चाकर सभी सो रहे हैं। कितने भोले हैं। ब्रजवासी? ये नहीं मालूम कि लाला का जन्म हो गया।

भगवान् की इच्छा है ब्रजवासी अब उठकर कुछ गावे, बजावे, नाचे कूदे, परन्तु ये तो सब सो रहे हैं। प्रभु ने विचार किया है मैं इन्हें कैसे उठाऊँ, क्या मैं मैया से कहूँ कि मैया में पैदा हो गया हूँ, तू उठ जा। वह तो मथुरा था जो मैंने पैदा होते ही बोलना शुरू कर दिया। परन्तु मेरा वह वैभव मूर्ति विष्णु रूप था, परन्तु यहाँ बोलने का काम नहीं। यहाँ तो मैं बाल लीला करने आया हूँ, जो जैसे जन्म के समय बालक रोता है तो थोड़ा सा मैं रोऊँ। जब मैया रोने की आवाज सुनेगी तो मैया जाग जाएगी और सारा घर उठा देगी। तो भगवान् कृष्ण ने रुदन करना शुरू कर दिया, परन्तु प्रभु के लिए रुदन करना नहीं आता, जीवन भर में यदि कभी भगवान् रोएं हो तो रोना आए। प्रभु के लिये रोना, जो एक बार प्रभु को याद करके रोता है वह उनको पा जाता हैं और हमेशा-हमेशा के लिए रोना बंद हो जाता हैं। आनंद की लहरो में गोता लगाते हैं। ये जीव संसार के लिए रोता हैं। भगवान् ने कहा कि "दुखालयं अशाश्वतम्"

संसार एक दुख का घर है, जो पल-पल जीव को रूलाता है, संसार में जब बालक का जन्म होता है तो वह रोता हैं। भगवान् ने कहा कि थोड़ा समय मैं भी रोऊँ, आज बालक होकर मैं जन्म ले रहा हूँ। तो मैं भी थोड़ा रोऊँ। भगवान् ने जब संसार

के बालक की भांति रोना शुरू किया तो भगवान् की बात अलग है उनके मुख से रोने के स्थान पर ऊँ-ऊँ की ध्वनि निकली। "कृष्णं वन्दे जगत् गुरु"

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः।
आहूय विप्रान्वेदज्ञान्स्नातः शुचिरलङ्कृतः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.5.1)

योगियों के योगी हैं- श्रीकृष्ण। जब कोई योगी, सन्त, सन्यासी अपनी किसी क्रिया को प्रारंभ करते हैं। तो ऊँ की ध्वनि को लगवाते हैं, आज ब्रजलीला के परम योगी कृष्ण गुरुओं के गुरु जो समस्त विषयों के गुरु, परम गुरु श्रीकृष्ण अपनी लीला को आरंभ करने जा रहे हैं। तो भगवान् भी ऊँ की ध्वनि लगा रहे हैं। जो ब्रजरानी ने ऊँ-ऊँ की ध्वनि सुनी तो सर्वप्रथम मैया ही जागी।

जो अपने पास बालकृष्ण को देखा तो पास में लाला की बुआ सुनन्दा सो रही हैं। उसे जगाया, कहा बधाई हो बधाई हो लाला को जन्म भयो। जब सुनन्दा जी ने सुना भाभी को लाला भयो है तो दौड़कर नन्दबाबा के पास गई और बोली भैया उठो, बध ाई हो, लाला का जन्म हो गया। नन्दबाबा ने सुना कि आज लाला हुआ है तो कहीं दुपट्टा गिरि है, कहीं तो बगलबंदी गिरि है, आज दुपट्टा भी चरमर रह गई। खुशी के कारण किसी को होश कहाँ रहता है?

नन्द बाबा सुतका गृह की ओर दौड़े जा रहे हैं। शरीर का होश नहीं कहीं धोती तो कहीं दुपट्टा हैं। भैया भगवत्प्राप्ति के लिए जीव को देह का अनुसंधान करना पड़ता हैं। जब सुतका गृह की द्वार पर पहुँचे तो ब्रजरानी ने बालकृष्ण को वस्त्र से ढक रखा हैं। नन्दबाबा ने यशोदा से कहा कि आप लाला के दर्शन नहीं कराओगी? बोला दर्शन तो कराऊँगी पर बताओ मुँह देखने में क्या दोगे? नन्द ने कहा जैसे तेरो लाला होगा वैसा दे देंगे। वस्त्र में ढके बालकृष्ण के दर्शन ब्रजरानी यशोदा ने कराया तो सुन्दर झांकी खुली, भगवान् बाल कृष्ण की। बोलो बाल कृष्ण लाल की जय।

जब नन्द बाबा ने बालकृष्ण का दर्शन किया तो कहा कि मैं तेरे लाला को तन, मन, धन तीनों ही न्यौछावर कर रहा हूँ।

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः।
आहूय विप्रान्वेदज्ञान्स्नातः शुचिरलङ्कृतः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.5.1)

नन्द बाबा ने पुरोहितों से सलाह करके जात-कर्म किए, नामकरण, श्रद्धादि कर्म किए और दो लाख गौओं का दान भी किया। बहुत से दान और भी किए। सभी

ब्राह्मणों से नन्दबाबा ने पूछा कि एक बात बताओ कि किस नक्षत्र में मेरो लाला का जन्म भयो है? सभी ब्राह्मणों ने कहा कि ब्रजराज आपके लाला का रोहिणी नक्षत्र के तीसरे चरण में जन्म हुआ हैं। मेरो लाला को जन्म नाम क्या निकला है? बताओ। सभी ब्राह्मण कहने लगे कि आपके लाला का नाम एक नक्षत्र में चार चरण होते हैं। उसी प्रकार रोहिणी नक्षत्र में भी चार चरण हैं। ओ, वा, बि, हू, ये चार अक्षर हैं। तीसरा अक्षर कौन सा पड़ा 'बि' तो सभी ब्राह्मण बोले कि 'बि' अक्षर से अपने लाला का नाम रख लो। सभी ब्राह्मणों से कहा कि आप ही मेरे लाला का नाम रख दो। तुमसे अच्छा नाम मैं थोड़े ही रख सकता हूँ।

सबने कहा कि ब्रजराज हमारी समझ में सबसे अच्छा नाम 'बिहारी' निकला। भगवान् का जन्म नाम है बिहारी। तभी बालक की बुआ आ गई तो बोली ब्राह्मणों तुम्हारी पूजा हो गई, बोलो क्या बात है? अभी तक भाभी ने बालक को दूध नहीं पिलाया हैं। आज्ञा दो तो दूध पिलाया जाए।

सभी ब्राह्मणों ने कहा, हाँ! सुनन्दा लाला को दूध पिलवा दो। सुतका ग्रह में पर्दा डाल दिया गया। केवल ब्रजरानी यशोदा और बालकृष्ण हैं। बालकृष्ण को दूध पिलाने के लिए यशोदा ने गोद में लिया। भगवान् बालकृष्ण इतने कोमल हैं कि माँ की उंगलियां बालकृष्ण के अंग में गड़ जाती हैं। कैसे मैं अपने बालकृष्ण को दूध पिलाऊँ। यदि गोद में लेती हूँ उंगली गड जाती हैं, परन्तु मेरो लाला भी तो भूखा हैं। दूध तो पिलाना ही हैं। ब्रजरानी ने युक्ति निकाली स्वयं पलंग से उतरकर बालकृष्ण को पलंग पर सुला दिया, झुककर टेढो होकर दूध पिलाने लगी। प्रभु ने एक घूंट दूध पिया दूसरे घुंट दूध पिया और जब तीसरी घूंट दूध पीने लगे तो बालकृष्ण को देखने के लिए सुनंदा जी ने पर्दा हठाया।

तो देखा कि भाभी लाला को दूध पिला रही हैं। पर्दा हटाया, देखा कि भाभी टेढी होकर दूध पिला रही हैं। सुनन्दा जी ने कहा कि भाभी ये क्या कर रही हो? टेढ़ी होकर दूध क्यों पिला रही हो? आज पहली बार लाला दूध पी रहे हैं और तू टेढी होकर दूध पिलाएगी तो हमारे लाला भी टेढो बन जायेगे। भगवान् बालकृष्ण कहते हैं कि मथुरा में पिता ने दूध नहीं पीने दिया, यहाँ बुआ आकर दूध नहीं पीने दे रही हैं। जल्दी-जल्दी में भगवान् तीसरी घूंट भी पी गए। तीन जगह से भगवान् बालकृष्ण के अंग टेढे हो गए। कृष्ण का एक नाम है त्रिभंग काला।

"त्रिभंग ललित मदन मोहन"।

देखिए बालक का जन्म नाम नहीं लेना चाहिए। इससे बालक की आयु कम होती हैं। बिहारी जी के आग क्या जोड़े बोले, अभी–अभी टेढो होकर मैया ने लाला को दूध पिलाया तो तीन अंग टेढ़े हो गये तो बिहारी से पहले जोड़ दो बांके, तो नाम पड़ गया बांके बिहारी। देखिए 'बांके बिहारी जी ही टेढ़े नहीं हैं। और भी लोग टेढ़े हैं।

'बांके हैं। नन्द बाबा और यशोमति
बांके घड़ी जन्मे हैं। बिहारी।'
बांके मिली जगबन्दन दुल्हनी,
और बांके गोपाल के बांके उजाई।
भगतन दर्शन देने के कारण,
झुकी झांकी झरोखों में बांके निहाई।

बांके हैं। नन्द बाबा और यशोमति, देखिए माता–पिता भी टेढ़े हैं, क्यों? घर मे तो लाला को जन्म भयो और मात–पिता भर रहे खर्राटे? ये टेढ़ापन नहीं है तो और क्या हैं? बांके घड़ी ही जन्मे हैं बिहारी रात के बारह बजे जन्मे हैं बिहारी। बलराम जी बांके ही उनके भाई हैं। झगड़ा हो जाए तो गले में हल फंसाले और उपर से मूसल मारे। गोविन्दाय नमो नमो बड़े टेढे बलराम जी। बांके मिली दुलहन जगबन्दनी, किशोरी जी राधारानी उनकी दुल्हन हैं। सबसे प्रभु अपनी सेवा कराते हैं, परन्तु आज भी सेवा कुंज में किशोरी जी अपने चरण दबाती हैं प्रभु से। ये टेढापन नहीं तो और क्या है? बांके गोपाल के बांके उजाई। भैया पुजारी जी भी बड़े ही टेढे हैं, बात मान ली तो ठीक है नहीं तो पूजा ही करा देंगे तुम्हारी। भक्तन दर्शन देने के कारण झुकी, झांकी उनके दर्शन भी बड़े ही ढेढे हों। एकटक उनका दर्शन नहीं कर सकते हैं, बार–बार पर्दा आ जाता है, तो मैया ने टेढो होकर दूध पिलाया तो सारी महिमा भी टेढी हो गई। बांके बिहारी की जय। आज आकाश में देवता पुष्प वर्षा कर रहे हैं। दुंदुभी बजा रहे हैं। नगाड़े बजा रहे हैं। शब्द निकल रहे हैं। कि "प्रार्दुभूतो नन्दानन्द"

गीतम्

मैं तो बांके की बांकी बन गई और
बांका बन गया मेरा................

नन्द के घर आनंद भयो। एक माई ने जाकर जब गोपियों को खबर दी, अरे गोपियों नन्द के यहाँ आनंद भयो तो सब गोपियाँ नन्द के यहाँ दौड़ी चली जा रही हैं। भैया कुछ गोपियाँ मोटी तगड़ी हैं। दौड़ नहीं पा रही, तो अपने मर्द से दौड़ लगा रही

हैं, कि जल्द ही वहाँ पहुँचकर लाला के दर्शन कर लें। जब गोपियाँ वहाँ पहुँची तो रोहिणी खड़ी हैं। सारा सामान गोपियों से लेकर रख रही हैं, सुनन्दा जी ने कहा तुम सब बैठी हो लाला की बधाई गाओ। गोपियाँ बालकृष्ण की बधाई गाने लगीं।

बधाई गीत

अरि नन्द यशोदा के द्वार बधाई बज रही...
नन्द के आनंद भयो जय कन्हैया लाल की...

श्रीमद्भागवत का जो दसवां स्कंध है भगवान् के ये शब्द ब्रह्म रूप हैं, हृदय स्वरूप हैं। श्रीकृष्ण के हृदय में तीन लीलाएं हो रही हैं। ब्रजलीला, मथुरा लीला, द्वारका की लीला। ब्रजलीला का दर्शन हो रहा हैं, शुकदेव जी महाराज कहते हैं परीक्षित आत्मज के रूप में श्रीकृष्ण नन्द के घर में प्रकट हुए हैं। भगवान् के अवतार नन्द और यशोदा का घर ही होता हैं। नन्द कौन है? नन्द कहते हैं। "नन्द इति सानन्द"–जो दूसरों को सुख दे, आनंद दे, भलाई दे वह नन्द हैं। यशोदा कौन है? यशोदा कहते हैं। "यसोन ददाति इति यसोदा"–जो दूसरों को यश, भलाई, आनंद देती है वह यशोदा। ऐसे ही भक्त के घर भगवान् का आगमन होता हैं। भगवान् बालकृष्ण प्रकट होते हैं।आज भी वृन्दावन में ठीक चार बजे नन्दोत्सव मनाते हैं। ये तुम्हारा शरीर ब्रज हैं। शरीर रूप ब्रज में हृदय गोकुल हैं। गो माने इंद्रियां कुल माने समूह। जो इन्द्रियों का समूह है वह हृदय हैं। तो हृदय रूपी गोकुल में अपने बालकृष्ण को प्रकट करो। गोकुल में ब्रजवासी दो चार महीने तक उत्सव मनाते हैं। ब्रजवासी ने नहीं कहा कि नन्द के घर लाला भये, पुत्र भये सबने कहा नन्द के घर आनंद भयो। "नन्द के आनंद भयो जय कन्हैया लाल की।" आज नन्द बाबा अति आनंद में हैं, साक्षात् आनंद स्वरूप बाल स्वरूप प्राकटय् से आनंद का पारावार नहीं हैं। नन्द बाबा दोनों हाथों से अन्न, वस्त्र, स्वर्ण, हीरा, जवाहरात दान कर रहे थे। शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् सूत, मगध, बन्दीजनों की भीड़ लग गई है नन्द भवन में, वे दोनों हाथों से लुटा रहे हैं। जो जैसा माँगते हैं उसको नन्द बाबा वैसा ही दे रहे हैं।

आज ऐसा गोकुल में प्रतीत हो रहा है कि साक्षात् लक्ष्मी गली–गली में लोट रही हैं। "रमा क्रीडम् भू नृप:" अपने नारायण का स्वागत कर रही हैं। श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण ही हैं। जैसा कि गोपियों ने गोपी गीत के पहले ही श्लोक में कहा कि–

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा–शाश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका–स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.31.1)

'तेजन्माना' प्रभु आपके जन्म से 'अधिक जयति' इस ब्रज के अधिक जय-जयकार हुई। जब से प्रभु आप इस ब्रज में पधारे हो। ऋद्धियां सिद्धियां सहित लक्ष्मी का निवास इस ब्रज में हुआ हैं। शुकदेव जी कहते हैं कि मानो आज भगवान् के आगमन से ब्रज की गोकुल की समस्त गली में लक्ष्मी लौट रही हैं। ऋद्धि-सिद्धि का निवास है।

समस्त ब्रजमंडल सुख के गोते खा रहा हैं। इस प्रकार से नन्द उत्सव चार महीने तक मनाया गया। शुकदेव जी कहते हैं। परीक्षित आगे की कथा सुनो-

गोपान्गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.5.19)

राजन् उन ब्रज के वृद्ध गोपों के ऊपर नन्द बाबा भार सौंपकर मथुरा में कंस का वार्षिक कर देने गए। मथुरा में नन्द बाबा परम मित्र वसुदेव से मिले। वसुदेव जी ने पूछा कि ब्रज में सब प्रकार से आनंद है ना, किसी प्रकार से आपको तकलीफ तो नहीं हैं। मैंने सुना है कि आपके घर लाला भयो हैं। नन्द बाबा ने कहा वसुदेव जी आपकी कृपा से आपके लाला बिल्कुल ठीक हैं, परन्तु वसुदेव जी स्वयं ही इस बात को छुपा रहे हैं, कि लाला को स्वयं ही छोड़कर आए हैं। जब दोनों का आपस में वार्तालाप हो रहा था नन्द जी महाराज से कुशल मंगल पूछी तो बीच में ही कहा कि हमारे साथ तो विधाता ने मंगल किया पर आपके साथ प्रभु ने ठीक नहीं किया क्योंकि-

अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः।
एकावशिष्टावरजा कन्या सापि दिवं गता।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.5.29)

देखो वसुदेव जी आपके छः पुत्र उस दुष्ट कंस ने मार दिए और सातवीं गर्भ नष्ट हुआ और आठवीं कन्या प्राप्त हुई और वह भी 'दिव्यम् गता:' आकाश में उड़ गई। आपको प्राप्त नहीं हो सकी। स्वर्ग चली गई। कितने कष्ट की बात है, देखो नन्द। हमारे साथ जो प्रभु ने किया वह ठीक, परन्तु आप शीघ्र ही गोकुल चले जाइए। नन्द ने पूछा क्या बात हैं। वसुदेव जी ने कहा गोकुल में अनेक उपद्रव हो सकते हैं। तो मन ही मन नन्द बाबा भगवान् को स्मरण करते हुए वसुदेव जी से मिलकर गोकुल की ओर चल दिए।

अथ षष्ठोऽध्यायः

पूतना उद्धार

श्री शुक उवाच
कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी।
शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु।
(श्रीमद्भागवतम् 10.6.2)

कंस की आज्ञा से कंस की ही सेविका खेचरी पूतनाश्रृंगार करके आज गोकुल में आ रही है, ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् लक्ष्मी अपने नारायण का दर्शन करने आ रही हैं, बाल घातिनी पूतना सुन्दरश्रृंगार कर आ रही है, श्री शुकदेव जी महाराज ने श्रीमद्भागवत में वर्णन किया–

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां
बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यामम्।
सुवाससं कल्पितकर्णभूषण–
त्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम्।
(श्रीमद्भागवतम् 10.6.5)

शुकदेव जी महाराज कहते हैं। पूतना बालघातिनी है, जिसने सुन्दर साड़ी पहनी हैं। कानों में कुंडल, गले में हार, बांहों में सुन्दर बाजूबंद पहने सोलहश्रृंगार करके पूतना सभी ब्रजवासियों के हृदय को प्रसन्न करती हुई अपनी ओर आकर्षित करती हुई चतुरदशी के दिन गोकुल में प्रवेश किया।

आज लाला की छठी पूजी जा रही हैं। मंगल गान गाए जा रहे हैं। सर्वत्र चहल पहल हो रही हैं। पूतना अंदर गई नन्द बाबा के महल में और जाकर कहा कि अरी ब्रजरानी सारे ब्रजवासियों ने लाला को देखा हैं। तुम अपने लाला का मोहे भी दर्शन कराओ। गोपी समझकर यशोदा ने कहा– कि जब सब ब्रजवासियों ने लाला को देखा तो तुम कहाँ चली गई। पूतना ने कहा मैं मायके गई थी। मैंने लाला का मुख दर्शन नहीं किया। अब अपने लाला का मुख दर्शन कराओ। गोपी समझकर यशोदा अंदर गई लाला सो रहे थे पालने में। बालकृष्ण भगवान् को लाकर पूतना की गोद में देती है।

भगवान् ज्यों पूतना को गोद में गए तो झट अपनी आंखें बंद कर ली, क्यों? क्या भगवान् डर गए हैं? प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। इस सम्बंध में भक्तों के अनेक भाव हैं कि भगवान् जब पूतना की गोद में गए क्यों आंखें बंद कर लीं? पहला भाव भक्त

प्रकट करते हैं, कि भगवान् जब पूतना की गोद में गए तो आँख बंद करके पूतना के पूर्व जन्म का ज्ञान कर रहे हैं। कि पूतना पूर्व जन्म में कौन थी? उसने ऐसा कौन–सा सत्कर्म किया जो मेरे सम्मुख आ गई।

सन्मुख होये जीव मोहे जबहि,
जन्म कोटि अघ नाशहि तबहि।

तो आंखें बंद कर भगवान् मानो पूतना के पूर्व जन्म का ध्यान कर रहे हैं। जैसे हम जब कुछ विचार करते हैं। तो आंखे बंद हो जाती हैं। इसी तरह भगवान् विचार कर रहे हैं।

एक भक्त लिखते हैं। कि नहीं–नहीं प्रभु ने आंखें इसलिए बंद की हैं। पूतना बाल घातिनी हैं। हत्यारिनी है ऐसे बालहत्यारिनी की तो मैं शक्ल भी नहीं देखूँगा। ये जघन्य अपराध करती हैं। सोचकर ही झट आंखें बंद कर लेते हैं।

एक सन्त कहते हैं। भगवान् के आंखें बंद करने का कारण है कि ब्रजवासी मुझे माखन मिसरी खिलाएंगे और पूतना दूध में विष लगाकर आई और जहर पीने वाले कौन हैं? भगवान् शिव। आंखें बंद करके भगवान् शिव का ध्यान करते हैं।

परन्तु एक सन्त लिखते हैं कि प्रभु ने आंखें क्यों बंद की हैं। क्योंकि भगवान् कहते हैं कि आंखें मिलने से भी प्रीति हो जाती है, और यदि मेरी पूतना से प्रीति हो गई और मैंने मारने का संकल्प त्याग दिया तो इसका उद्धार कैसे होगा। यही सोचकर भगवान् ने झट आंखें बंद कर लीं।

परन्तु श्रीमद्वल्लाभाचार्य जी महाराज जिन्होंने भागवत पर टीका लिखा 'सुबोधिनी' बड़ा दिव्य ग्रंथ है उन्होंने लिखा है कि पूतना कौन है? ये पूतना है अविद्या। चर्तुदशी के दिन यह गोकुल में आई थी। अविद्या के रहने के स्थान भी चौदह हैं। पंच कर्मेन्द्रियां, पंच ज्ञानेंन्द्रिदयां, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार चौदह स्थान में अविद्या निवास करती है, परन्तु भगवान् हैं विद्या मूर्ति। भगवान् ने कहा मेरे सामने अविद्या नहीं ठहर सकती, मेरे सामने अविद्या ठहर नहीं सकती। अविद्यारूपी इस पुतना इसका उद्धार कैसे होगा। पूतना का उद्धार करना है, सम भाव से भगवान् ने आंखें बंद कर लीं।

ये पूतना बालकृष्ण को लेकर ब्रजवासी यशोदा से बोली कि आप मुझे आज्ञा दो कि मैं इसे बाहर खिला लाऊँ। एक गोपी समझकर ब्रजरानी ने पूतना को आज्ञा दे

दी। पूतना बालकृष्ण को लेकर शिला पर बैठकर बालकृष्ण को दूध पिलाने लगी। भगवान् बालकृष्ण दूध पीने लगे और साथ-साथ पूतना के प्राण भी। पूतना चीखने लगी, चिल्लाने लगी।

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह।
(श्रीमद्भागवतम् 10.6.11)

पूतना चीख रही है चिल्ला रही है कहती है कि अरे बालक छोड़ दे। पूतना ने दो बार कहा छोड़ दे-छोड़ दे। "सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिनी।" दो बार क्यों प्रार्थना की। एक सन्त अपना भाव प्रकट करते हैं कि दो बार प्रार्थना की, कि अरे बालक छोड़ दे, छोड़ दे। उसका अर्थ है कि लोक, परलोक दोनों लोकों से मुक्त कर जो आपका निज धाम है जिसे कहते हैं 'गोलोक धाम', जहाँ से जीव का पतन नहीं होता। आप वहाँ मुझे स्थान प्रदान करें। दो बार पूतना ने कहा कि 'सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी'।

पूतना हाथ-पांव फेंक रही हैं। चीख रही हैं। भगवान् बाल कृष्ण कहते हैं कि पूतना क्या कह रही हो? देख पूतना पहले तो मैं पकडूं नहीं और अगर पकड़ लूं तो छोड़ूं नहीं। तू छोड़ने की बात मत कर। पूतना ने प्रभु से प्रार्थना की। प्रभु ने पूतना का स्तनपान करते-करते प्राण ही हर लिए। पूतना के शरीर से आत्मज्योति निकलकर भगवान् में विलीन हो गई। बोलए भगवान् बाल कृष्ण की जय।

प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप।
(श्रीमद्भागवतम् 10.6.13)

शुक देव जी महाराज कहते हैं। जैसे इन्द्र के वज्र से प्रहार प्राप्त कर वृत्रासुर जाकर गिर गया था। उसी प्रकार पूतना भी भगवान् के गोष्ठ में जा गिरी।

छः कोस तक लम्बी पूतना का शरीर जाकर गिरा। ब्रजवासी सन्त कहते हैं विशाल देह पूतना ने धारण कर ली, हाथ गिरा हाथरस में, गरल गिरा आगरा में, मूढ गिरो मुरसान में, अलकें गिरी अलीगढ़ में, कान गिरा कानपुर में। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय। इतना विशाल देह पूतना ने धारण कर ली मानो विराट पर्वत पड़ा हो, भगवान् बालकृष्ण पूतना के वक्ष स्थल पर खेल रहे हैं, आज जब अचानक भयानक ध्वनि हुई ब्रजवासी ने देखा कि जितने भी पशु पक्षी जीव-जन्तु पूतना के नीचे आये-सबका चूरण हो गया।

ये बालकृष्ण को देखने के लिए ब्रजवासी दौड़ पड़े। पूतना की छाती पर बालकृष्ण

खेल रहे हैं। पूतना के शरीर से बालकृष्ण को उतारने के लिए ब्रजवासियों ने सीढ़ी लगाई। इतना ऊँचा शरीर था पूतना का। बालकृष्ण भगवान् को उतारा और गोपियों को दिया। ये गोपियाँ जिनके अंदर भगवान् के प्रति वात्सल्य भाव था। ये कृष्ण को लेकर गऊशाला गईं। जाकर गोमूत्र से स्नान कराया और गौरज भगवान् के अंग से लगाई। गौ की पूछ लेकर एक-एक भगवान् के अंगों का स्पर्श करती हुई, जा रही हैं। गोपियाँ भगवान् की रक्षार्थ भगवान् से प्रार्थना करती है।

इन्द्रियाणि हृषिकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु।
श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु।

(श्रीमद्भागवतम् 10.6.24)

गोपियों ने प्रार्थना की, हे इन्द्रियों के स्वामी ऋषिकेश लाला की रक्षा करें। प्राणों की रक्षा करने वाले नारायण लाला की रक्षा करें। श्वेत दीप वाले श्रीहरि लाला के मन की रक्षा करें। एक एक अंग प्रभु का स्पर्श करती हुई एक-एक देवता का नाम ले रही हैं। ये सब गोपी भगवान् पर भगवान् के नाम से ही प्रार्थना कर रही हैं कि आप हमारे लाला की भूत-प्रेत, डाकिनी, जोगिनी सबसे रक्षा करें।

शुकदेव जी ने कहा कि राजन आप देख रहे हैं। जो शक्ति प्रभु में नहीं वह नाम में हैं। राम ने तो कुछ जीव का उद्धार किया, परन्तु भगवान् के नाम ने तो भगवान् से पूर्व, भगवान् के समय, आज भी उनके नाम से कल्याण हो रहा हैं, जो शक्ति राम में नहीं वह शक्ति राम नाम में हैं। परन्तु नाम और नामि में कोई भेद नहीं। ये गोपियाँ बालकृष्ण को लेकर यशोदा के पास गई और लाला को उन्हें दे दिया। यशोदा ने प्रभु को दूध पिलाकर पालने में सुला दिया। जब नन्दादि गोप मथुरा में लौटे तो देखा कि बीच मार्ग में पूतना का शरीर पड़ा हैं। विशाल शरीर पूतना का पड़ा है, ब्रजवासियों को आश्चर्य हुआ। ब्रजवासियों ने पूतना के शरीर में आग लगाई तो सुगंध निकलने लगी।

राजा परीक्षित ने कहा, ये कथा तो समझ में नहीं आती भगवन्। जब इस देह को जलाया जाता है तो दुर्गंध निकलती है, पूतना के शरीर से सुगंध निकाल रही थी, तो पूतना कौन है? थोड़ा कृपा करें। शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् ये पूतना पूर्व जन्म में राजा बलि की पुत्री रत्नमाला थी। जब वामन भगवान् राजा बलि के द्वार पर तीन पग माँगने गए तो वहाँ राजावली की पुत्री रत्नमाला खड़ी थी। उन्होंने जब भगवान् को देखा तो वह अति प्रसन्न हो गई और कहा कि यदि मेरा ऐसा पुत्र होता तो गोद में बैठकर दूध पिलाती। भगवान् उसकी कामना समझ गए। वामन

देव ने कहा रत्नमाला इस अवतार में तेरी भावना मैं पूर्ण नहीं कर सकता हूँ, परन्तु कृष्णावतार में मैं तेरी कामना अवश्य पूर्ण करूँगा। शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन् वही रत्नमाला ही पूतना बनी। यहाँ पर एक प्रश्न खड़ा होता है, जब उनके मन में वात्सल्य भाव आया तो भगवान् के लिए हिंसा का भाव क्यों लेकर आई, भगवान् बालकृष्ण को दूध तो पिलाना चाहती है, परन्तु मारना भी चाहती हैं। जब राजा बलि को भगवान् वामन ने छल लिया तो रत्नमाला ने कहा कि मैं भी बदला लूंगी तो देखिए भाव का परिवर्तन हो गया। प्रेम से कहो 'राधे राधे' पहला भाव था वात्सल्य। दूसरा भाव था इन्होंने मेरे पिता को छला है मैं भी बदला लूंगी। पूतना दूध पिलाने के साथ-साथ विष भी पिलाना चाहती है।

कहने का भाव है कि जो इष्ट के चरणों में एक बार जो भाव उठे उसे जीवन पर्यन्त बनाए रखे। यही भक्ति है, भक्ति में भाव प्रधान है "बिना भाव नहीं रीझे नंद लाल" भगवान् गीता में भी कहते हैं-

'भावग्राहि जनार्दनः' भगवान् भक्तों के भाव से ही सेवा ग्रहण करते हैं, सेवा तभी साकार है, देखिए मीरा जी को। मीरा जी के जीवन में एक बार भाव परमात्मा के प्रति प्रकट करना था। जीवन पर्यन्त उसी भाव से यानि क्या भाव था? कान्ता भाव। मीरा जी ने कान्ता भाव से भजा और ऐसा भाव अनुभव होता था कि मेरे साथ सदैव प्रभु हैं। वार्तालाप कर रहे हैं, नृत्य कर रहे हैं। हर क्षण मीरा जी को श्रीकृष्ण की उपस्थिति अनुभव होती थी और जब-जब मीरा जी अपने गोविन्द के सामने जाती थी, गद्गद् भाव से गाया करती थी। "मेरो तो गिरधार गोपाल दूसरों न कोए।"

जाके सोहे मोर मुकुट मेरो पति सोइ।।

गीतम्

ऐरी मैं तो प्रेम दीवानी मेरी दर्द जाने कोइ,

पूतना का भाव मीरा जैसा नहीं, मीरा ने एक बार प्रभु को पति रूप में चाहा और उसे भगवत्प्राप्ति हुई। पूतना के अंदर दो भाव थे पहला बाल भाव, दूसरा हिंसा का भाव। पूतना के अंदर पहले भाव आया कि कृष्ण मेरा पुत्र हो यह बाल भाव है, परन्तु साथ ही विष भी लेकर आई यह हिंसा का भाव। परन्तु भगवान् ने पूतना को अधोगति नहीं मां की गति प्रदान की। कृष्ण के बराबर कौन दयालु हो सकता है, विष पिलाने वालों को भी सद्गति दी 'कवांबादयालू शरणं ब्रजे पूतना के अंदर दो भाव थे, तो भगवान् ने स्तन पान तो किया ही साथ ही पूतना का वध

भी किया।

माँ कभी मारने योग्य नहीं होती। पूजनीय है, वन्दनीय हैं। परन्तु भाव को परिवर्तन से प्रभु ने लीला के माध्यम से बताया कि भाव के परिवर्तन के साथ लीला का परिवर्तन होता हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् भगवान् ने पूतना का उद्धार किया। आयुर्वेद के अनुसार पूतना नाम का एक रोग होता हैं। यह आठ-दस दिन के बच्चे को ही होता हैं। यह पूतना नाम का रोग मानो गोकुल में फैल गया और भगवान् ने इस रोग को दूर कर दिया यानी वध कर दिया।

य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम्।
श्रृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.6.44)

शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् जो पूतना वध की कथा का श्रद्धा से श्रवण करता है उनके हृदय में प्रेमभक्ति जाग्रत होती है।

अथ सप्तमोऽध्यायः

शकट भंजन और तृणावर्त उद्धार

येन येनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.7.1)

राजा परीक्षित ने कहा कि भगवन् इस प्रकार की भगवान् की अन्य बाल लीला भी हमें सुनाएँ, जो लीला कानों को प्रिय लगती है, जिन लीलाओं को सुनकर आनंद प्राप्ति होती है वह सुनाइए। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि, भगवान् की 81 दिन की उम्र में यशोदा ने उन्हें चित्त सुलाया, थोड़ी देर में लौटी तो देखा कि बालकृष्ण ने स्वयं करवट ले ली हैं। ब्रजरानी ने कहा कि अब तो मेरो लाला बड़े हो गए हो। आज मेरो लाला ने स्वयं करवट ली हैं। आज मैं लाला का करवट उत्सव मनाऊँगी। इसे कहते हैं अंग परिवर्तन तो घर में ब्राह्मणों को बुलाकर अन्न दान, गौदान, वस्त्र दान करूंगी। जब घर में ब्राह्मण आएंगे, तो यदि लाला जगते रहो, तो कोइ काम न करने देंगे। तो बाल कृष्ण लाल को स्तनपान कराके पालने में सुला दिया।

ब्रजरानी यशोदा पालना लेकर गई है गौशाला में और वहाँ टूटा रथ पड़ा था उस टूटे रथ के नीचे भगवान् के पालने को रख दिया। स्वयं यशोदा घर के काम में लग गई। ब्राह्मणों की और सन्तों की सेवा में लग गई।

इधर कंस का भेजा एक शकटासुर नाम का असुर आया। बालकृष्ण भगवान् सो

रहे हैं। वह दुष्ट जोर–जोर से रथ हिलाने लगा। जब बालकृष्ण की आंखें खुलीं उन्होंने शकटासुर को देखकर सोचा ये असुर मुझे मारने आया है, मैं थोड़ा रोऊँगा तो मैया आ जाएंगी और ये भाग जाएगा। भगवान् ने रुदन शुरू किया, परन्तु भगवान् के रोने की आवाज मैया ने नहीं सुनी क्योंकि नन्दभवन गौशाला से दूर था। भगवान् बालकृष्ण ने सोचा कि मैया तो मेरा रुदन नहीं सुनती अब शकटासुर से ही दो–दो हाथ कर लेते हैं। जब भगवान् ने अपने नन्हे–चरण उठाकर शकट में लात मारी झट प्रभु ने शकट का भंजन कर दिया। दूसरे क्षण में भगवान् झूलते हुए पालने में विराजमान हो गए। बोलिए बालकृष्ण भगवान् की जय।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् इस प्रकार समझिए यह शकट क्या है, थोड़ी सी माता–पिता (नन्द–यशोदा) ने गलती कर दी जितनी भी दूध दही की मटकी थी ऊपर रखी और बालकृष्ण को रथ के नीचे रखा। थोड़ा समझने की बात है संसार की वस्तु, पदार्थ हमारी दृष्टि में कितना भी महत्व रखती हो, ईश्वर के लिए कोई महत्व नहीं दिया गया। जो भगवान् के पालने को नीचे, संसार की वस्तु, भगवान् उसकी गृहस्थी रूपी गाड़ी का भंजन कर ही देते हैं। उसके शकट (गाड़ी) को भगवान् तोड़ देते हैं। आज से भगवान् की वस्तु को नीचे नहीं रखना। भगवान् के पालने को हमेशा ऊपर रखो। तुम्हारी दृष्टि में ईश्वर का महत्व हो और संसार के भौतिक पदार्थ को नीचे समझना, तो ऐसे ही सोचने समझने से गृहस्थी की गाड़ी ठीक चलती हैं। इस प्रकार से भगवान् ने शकट का भंजन किया। ये शकटासुर हिरणाक्ष का पुत्र उत्कच लोमष ऋषि के श्राप से शकटासुर बने। आज भगवान् के चरण से मुक्ति हुई।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन्

एकदारोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती।
गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सोहे गिरिकूटवत्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.7.18)

राजन् एक दिन ब्रजरानी यशोदा बालकृष्ण को दूध पिला रही थी। दूध पीते–पीते भगवान् की दृष्टि आकाश की ओर गई तो देखा कि वहाँ तृणावृत असुर आयो है, ये आंधी के रूप में आयो। भगवान् ने देखकर विचारा कि ये तृणावृत आंधी रूप में गोकुल आया है और मुझे लेकर आकाश में उड़ जाएगा। यदि मैं मैया की गोद में रहा तो माँ भी मेरे साथ आकाश में उड़ जाएगी। मैं माँ को संभालूंगा या अपने को।

'गरिमाणं शिशेर्वोढुं' भगवान् ने शरीर का वजन बढ़ाना शुरू कर दिया। ब्रजरानी यशोदा ने सोचा बालकृष्ण दूध पीकर इतने भारी हो गए। उन्होंने कहा कि मेरो लाला

में इतना वजन कहाँ से आ गए हो। ये तो बहुत भारी हो गए, जब मैया नहीं संभाल पाती तो अपनी गोद से उतारकर बालकृष्ण को भूमि में बिठा दिया। उसी समय आंधी चली और तृणावृत आ गए। भगवान् बालकृष्ण को लेकर आकाश में जाकर युद्ध करने लगे। एक मुष्टि का प्रहार भगवान् ने तृणावृत के मस्तक पर किया और प्राण हर लिए। शरीर से आत्मज्योति निकलकर भगवान् में विलीन हो गई। बोलिए बालकृष्ण की जय। तृणावृत आंधी हैं। कौन-सी आंधी? व्यक्ति के जीवन में आंधी चल रही, मोह रूपी आंधी। मोह व्यक्ति के लिए होता है, परन्तु ईश्वर के लिए नहीं। ईश्वर के लिए प्रेम होता हैं। जहाँ प्रेम है, वहाँ परमात्मा है, प्रेम सबके लिए होता हैं। परन्तु मोह व्यक्ति के लिए होता है, तो आज भगवान् ने मोहरूपी तृणावृत का संहार किया। असुररूप में जो तृणावृत आए, तो पांडु देश के राजा सहस्त्रक्ष दुर्वासा ऋषि के श्राप से तृणावत्त बने। भगवान् ने आज पांडु नरेश को असुर योनि से मुक्त किया। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन्–

अथ अष्टमोऽध्यायः

नामकरण संस्कार और बाल लीला

गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः।
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.8.1)

एक बार गोकुल में यदुवंश के कुलगुरु गर्गाचार्य जी आए। वे वसुदेव जी की प्रेरणा से नन्द के घर आए, बड़े ही त्रिकालदर्शी, तपस्वी थे। गर्गाचार्य जी महाराज का नन्दबाबा ने स्वागत, पूजन किया। नन्द बाबा ने कहा कि गुरुदेव मेरे दो लाला हैं। अभी तक उनका नामकरण संस्कार नहीं हुआ आप उनका नाम करण संस्कार कर दो। गर्गाचार्य जी ने कहा हम आपके लाल का नामकरण नहीं कर सकते। क्योंकि क्या बात हो गई। आप नाराज हैं? बोले नहीं ये बात यदि कंस को पता चली तो वह हमें दंड देगा। आप अपने पुरोहित से अपने लाला का नामकरण करा लो। परन्तु नन्दबाबा ने कहा कि गुरुजी हमारी इच्छा आपसे कराने की हैं। आप तो त्रिकालदर्शी हैं, आप हमारे लालाओं का नामकरण करें। गर्गाचार्य जी प्रसन्न हुए, नन्दबाबा एकांत में गौशाला में पधारे हैं। नन्द, यशोदा, रोहिणी, गर्गाचार्य और दोनों लाला और कोई नहीं। आज भगवान् का नामकरण एकांत में हो रहा हैं। देखिए तीन विषयों को गुप्त रखना चाहिए। मन्त्र, मूर्ति, माला। मन्त्र गुरु कान में ही देता है, दीक्षा भी गुप्त रूप

से दी जाती हैं। आज कानों कान मन्त्र दीक्षा हो रही हैं। गोकुल में किसी को खबर नहीं केवल नन्दबाबा के परिवार को ही खबर हैं। नन्दबाबा ने दोनों लाला को लाने की खबर दे दी, कि स्नान कराके ले आएँ। गर्गाचार्य जी नामकरण करेंगे। दोनों माताएं लालाओं को लेकर चली हैं। मार्ग में यशोदा ने कहा देख बहन, हमने सुना है कि हमारे गुरु त्रिकालदर्शी हैं–चलो उनके परीक्षा करें। अरे यशोदा हम तो गाँव की गंवार हैं, पढ़ी-लिखी नहीं, इतने बड़े पंडित की परीक्षा हम कैसे करें। देख बहन बस इतना ही करना है, तुम अपना लाला मुझे दे दो। मेरा लाला, तुम ले लो। हम गुरु जी से पूछेंगे कौन सा लाला किसका है? एक दूसरे के लाला को लेकर जब गौशाला में पधारी तो दूर से नन्द बाबा ने देखा कि ये क्या कर रही हैं, आज नामकरण के दिन, अपने अपने लाला को लेकर आएं।

तो नन्दबाबा के मन में भी यह विचार उठा कि आज मैं भी गर्गाचार्य से पूछूंगा कि कौन-सा लाला किसका हैं। गर्गाचार्य ने सबसे पहले गणेश जी का पूजन किया–

गणानां तया गणपति कुम्भवामये
प्रियानां तया प्रियपति कुम्भवामये।।
निधिनां तया निधिपति कुम्भवामये
वसो मम् अहम् जानि गर्भजाः
तमजासि गर्भधम माम्
श्री मन महा गणधि पतये नमः।

स्वस्ति वाचन का पाठ कि और सब देवताओं का पूजन कराया और नन्द बाबा से पूछा कि इन लाला में से पहले हम किस लाला का नाम रखें। गुरुजी यशोदा की गोद में लाल बैठे हैं। पहले आप याकू नामकरण करें। गर्गाचार्य जी महाराज के मुखारविंद से कितने सुन्दर भाव स्फुटित हो रहे हैं। देखो नन्द–

अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन्सुहृदो गुणैः।
आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः।
यदूनामप्रथग्भावात्सङ्कर्षणमुशन्त्युपिः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.8.12)

देखो नन्द "अयहि रोहिणि पुत्रः" यह बैठा तो यशोदा की गोद में है परन्तु रोहिणी का लाल है यशोदा का नहीं। इसके युग-युग में अवतार हुए हैं। तो आज हमने इसका नाम रखा है बल और सबको आनंदित करने वाला होगा तो दूसरा नाम रखा "राम" और तीसरा इसका नाम रखा है "रोहिणेय" और चौथा

नाम है "संकर्षण"। बलराम जी के चार नाम हैं, बलराम, रोहिणेय, संकर्षण। रोहिणी का पुत्र रोहिणेय। इन्हें आकर्षण करके लाया गया था इसीलिये एक नाम हुए संकर्षण। नन्द बाबा ने कहा गुरुदेव आपने तो बड़े सुन्दर नामकरण किया, अब रहे लाला का भी नाम रख दो।

देखो ब्रजराज आपका ये लाला तो बहुत चंचल हैं। देखो कैसे आंखें चला रहा है, याकू भी नाम करण करूँ। बोले हाँ गुरुदेव। गर्गाचार्य जी महाराज के मुख से प्रभु के लिये सुन्दर भाव स्फुटित हुये, कहा...

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.8.13)

देखो नन्द ये बैठा तो रोहिणी की गोद में, परन्तु ये रोहिणी का लाला नहीं है, ये तो यशोदा के लाल हैं, याकू युग-युग में अवतार भए हैं, कभी शुक्ल अवतार, कभी रक्तावतार, कभी पीतांबतार और कभी कृष्णावतार। देखो नन्दबाबा मैंने याकू नाम रखा है- कृष्ण। कृष्ण कहते हैं। 'कर्षति इति कृष्ण' अर्थ है सर्वाकृष्ण जो एक बार आपके लाला का दर्शन कर लोगो वो तो खिंचो ही चले आवेगो। इतना आकर्षण है आपके लाला में आपके लाला के युग-युग में अवतार हुए हैं, अनेक नाम पड़े हैं। कोई कृष्ण, माधव, गिरधारी बहुत से नाम पड़े हैं।

देखो नन्दबाबा आपके लाला साक्षात् नारायण हैं, अब तक तो भगवान् माँ की गोद में चुप थे। नारायण सुनते ही भगवान् ने गर्गाचार्य को अपनी लाल आंखें दिखाना शुरू किया। क्यों? क्यों नाराज हो गए। गुरु जी ने इशारे से पूछा, बालकृष्ण ने कहा गुरुदेव मैं जानता हूँ कि मैं नारायण हूँ, परन्तु आप ऐसा कहेंगे तो मेरे बाबा और मेरी मैया मेरे लिए छोटा-सा मंदिर बनवाएंगे, क्योंकि नारायण को तो मंदिर होता है न। उस मंदिर में मूर्ति की जगह मुझे भिजवा देंगे। सूखे सकल पानी का भोग लगवाएंगे। मैं इस ब्रज में मीठी लीला करने आया हूँ। वह लीला कौन सी (माखन चोरी) वह धरी-की-धरी रह जाएगीं, आप मनाकर दो, कि मैं नारायण नहीं हूँ। गर्गाचार्य जी महाराज ने कहा नन्द बाबा आपका लाला नारायण नहीं हैं। गुरुजी, मैं भी सोच रहा था कि हमारे लाला नारायण कैसे हो सके। नारायण के तो चार हाथ होते हैं। याको तो दो हाथ। शायद इसमें नारायण के कुछ गुण आ गए हों। गर्गार्चाय महाराज ने कहा-"नारायणसमो गुणैः" ब्रजराज आपका ये लाला नारायण नहीं है, कुछ गुण नारायण के आ गए हैं। आज गर्गाचार्य ने भगवान् का नामकरण किया, नन्दबाबा ने दक्षिणा देकर विदा किया।

बोलिए "कृष्ण-बलराम" की जय।

शुकदेव जी कहते हैं। कि राजन गर्गाचार्य जी को जब दक्षिणा देकर विदा किया तो दोनों माएं अपने-अपने लाला के साथ गौशाला से निकलकर भवन की ओर जाने लगी तो एक दूसरे से वार्तालाप हो रही हैं। यशोदा ने रोहिणी से पूछा कि बहन आपको याद है गुरुदेव ने हमारे लाला को क्या नाम रखो। रोहिणी ने कहा यशोदा मैं तो भूल गई। बोली मैं भी अपने लाला का नाम भूल गई। फिर कभी गुरुदेव आएंगे पूछ लेंगे। जब तक गुरु जी नहीं आएंगे तो हम लाला को बलुवा और कनुवा बुलावेंगे। ये ठाकुर जी के प्यारे नाम हैं। जब-जब माँ पुकारती थी अरे कनुवा माखन मिसरी खा ले। देखिए कल आपने भगवान् का नामकरण सुना है, भगवान् का जन्म नाम है बिहारी। मैया ने लाला को टेढ़ो होकर दूध पिलाया तो नाम पड़ा 'बांके'। गुरुदेव ने नाम रखा 'कृष्ण'। माँ कहती थी 'कनुवा'। इस प्रकार से जैसा भक्त का भाव उसी के अनुसार भक्त भगवान् को पुकारता हैं। जैसी जैसी भगवान् की लीलायें होगी वैसा ही होगा नामकरण।

श्रीकृष्ण और बलराम जी को लेकर यशोदा, रोहिणी नन्दभवन में पधारी।

नन्द भवन के आंगन में कृष्ण अपनी बाल लीला कर रहे हैं। कभी तो नन्दबाबा की तलवार पकड़ने भागते हैं। कभी अग्नि को पकड़ने भागते हैं, कभी नन्द बाबा की चरण पादुका लेकर अपने सिर पर रख लेते हैं। देवता देख-देखकर प्रसन्न होते हैं। देवता कहते हैं 'धन्य है ब्रजवासी जिनके घर खेलन आए पूर्ण पुरुषोत्तम अविनाशी'।

अहो भग्यम् अहो भग्यम नन्द गोपो ब्रजौ कसाम्।
जममित्रम् परमानन्दम्। पूण ब्रह्म सनातनम्।।

कितने षड़भागी हैं। ये ब्रजवासी नन्द और यशोदा जिनको प्रभु अपनी बाल लीला का आनंद दे रहे हैं। इस प्रकार लगभग 1.5 (देड़) वर्ष के जब बाल कृष्ण हुए तो प्रभु ने कहा कि अब अपनी नई लीला आरंभ करूँ। तो कौन-सी लीला भगवान् करने जा रहे हैं। जिस लीला को करने भगवान् ब्रज में आएं वही लीला। कौन सी लीला? माखन चोरी, ये ठाकुर जी की विशेष लीला है।

भगवान् ने मन ही मन सोचा कि माखन चोरी तो करूँगा परन्तु ये तो देखूं कि माखन चोरी मुझे आती है क्या? कहाँ से चोरी करना प्रारंभ करूं? भगवान् ने अपने घर से प्रारंभ किया। एक दिन प्रातःकाल का समय था। यशोदा जी स्नान कर रही थीं। बाल कृष्ण लाल पलंग पर सो रहे थे कि उनकी आंखें खुलीं और देखा कि

मैया स्नान कर रही हैं। बालकृष्ण पलंग पर सो रहे हैं। झट बालकृष्ण पलंग से उतरे। घुटनों के बल चलकर अंधेरी कोठरी में पहुँच गए। जिसमें मैया ने माखन की मटकी छिपा रखी थी। प्रभु माखन निकालकर खाने लगे। जब ब्रजरानी यशोदा, स्नान के बाद पलंग के पास आई तो देखा कि पलंग तो खाली पड़ा हैं। अरे कनुवा आवाज लगा रही हैं। प्रभु ने कहा ये तो मैया की आवाज है और मैं माखन चुराकर खा रहा हूँ। ढूंढते ब्रजरानी यशोदा ने अंदर जाकर देखा कि कन्हैया माखन चुराकर खा रहे हैं।

क्यों रे लाला? ये तू माखन चुराकर खा रहा हैं। मैंने माखन नहीं चुराया। मैया बोली अच्छा। तू बता माखन की मटकी में तूने हाथ क्यों दियो। तो प्रभु अपने हाथ की ओर इशारा करने लगा, मैया ने कन्हैया के हाथ में सोने के कंगन पहना रखे थे और उनमें से प्रकाश निकल रहा था। वे चमक रहे थे। बाल कृष्ण भगवान् कहते हैं, मैया, तैने हमें क्या पहना दियो इनमें से कैसे आग निकल रही हैं? इसमें मेरो हाथ जल रहो हैं। मैंने सोचा कहाँ ठंडा करूँ कोई जगह नहीं दिखी, तो माखन की मटकी में ही हाथ दियो क्योंकि ये ठंडा हैं। बोलो वृन्दावन बिहारी की जय।

लाला तेरो हाथ जल रहे हैं। हाँ। मैया मेरो हाथ जल रहे हैं। ब्रजरानी यशोदा ने बाल कृष्ण के हाथ में से हंसते हुए कंगन उतार लिए। बाल कृष्ण कहते हैं कि पहले दिन चोरी की और पकड़े गए। परन्तु अपनी होशियारी से बच गए। तो माखन चोर बन गए। इस प्रकार प्रभु ने प्रथम बार अपने ही घर में माखन चोरी की।

दूसरे दिन भगवान् अपने नन्द भवन से बाहर निकले तो भगवान् के मित्र श्री सुदामा, मधुमंगल, तोषकृष्ण, मनसुखा मिले। जिनके साथ मिलकर कृष्ण माखन चुराने जाते थे।

एक दिन प्रातः काल के समय भगवान् बालकृष्ण अपने नन्द भवन के सामने खड़े हैं। सभी ग्वाल बाल सखा से पूछा भैया तुम सब तैयार हो न? बोले हाँ कन्हैया! आज्ञा करो बोले आज हम सब चिकसौली गांव की गोपी के यहाँ चलेंगे। बरसाना के पास इस नाम का गाँव आज भी हैं। जहाँ चित्रासखी रहती थी। भगवान् की ही जो सखियां हैं- चित्रा, ललिता, विशाखा, तुंगभद्रा, चम्पकलता आदि, चिकसली गाँव की गोपी थीं ये चित्राजी और जिस गाँव की लड़की की शादी गोकुल में हुई। आपस में ये नाम न लेकर गाँव के नाम से पुकारा करती थी। अरे चिकसली वाली गोपी, बरसाने वाली गोपी। इस तरह वे बोला करती थी। अरे चिकसली वाली गोपी, चित्रा जी को कहा करती थी। भगवान् श्रीकृष्ण ने सखाओं से कहा आज हम चिकसली वाली गोपी के घर चलेंगे।

ग्वाल बाल सखा मंडल को लेकर भगवान् चिकसली वाली गोपी के घर चल पड़े। ग्वाल मंडल सखाओं को पीछे रखकर भगवान् जब गोपी के द्वार पर जाकर आवाज लगाई, अरे चिकसली वाली गोपी। प्रभु की आवाज गोपी ने घर में सुनी तो पहचान लिया कि प्रभु की आवाज हैं। कहा ये तो कन्हैया की आवाज हैं। आज इतनी सुबह ये हमारे घर कैसे आयो, झट से वह द्वार पर आई और कहा लाला क्या बात है? आज तू सुबह-सुबह कैसे आओ है?

गोपी क्या बताऊँ, सोकर उठा तो मैया ने तेरो द्वार पर भेज दियो, बोली-लाला मैया ने क्या कहा है? देख गोपी आज हमारे घर साधु सन्त आवे हैं। मैया ने कहा कि देख लाला मैंने तो आज ताजी माखन नहीं निकाला और घर में सन्त आवै है, चिकसली गोपी भोर उठ जाए है, ताजी माखन निकालै है, एक माखन की मटकी माँग कर ले आ और देख गोपी, मैया ने यह भी कहा है कि जब माखन की मटकी वापिस करूंगी तो एक की जगह दो मटकी वापिस करूंगी। चिकसली गोपी ने कहा लाला आपके दर्शन से बड़ी खुशी हुई। जिनके घर सन्त आवै उनके घर पवित्र हई जावै हैं। लाला देख अभी-अभी मैंने एक ताजी माखन की मटकी भरकर निकाली है तू ले जा और मैया से कहयो वापिस करने की जरूरत नाहीं है, मेरी ओर से सन्तन की सेवा कर दें। प्रभु ने कहा गोपी, तेरो तो सन्तन से बड़ा प्रेम हैं। भक्त होए तो तेरो जैसो होए।

गोपी झट जाकर माखन ले आई। बाल कृष्ण भगवान् के हाथ में दे दी। प्रभु मटकी लेकर अपने ग्वाल मंडल के बीच में आ गए। सभी ग्वाल सखाओं ने कहा कि भैया देखो माखन की मटकी तो ले आया। अब जाकि चीज है वाकि द्वार पर बैठकर खाया जाए तो चोरी नहीं कहलावै। हम सब गोपी के द्वार पर बैठकर ही माखन खाएंगे। बीच आंगन में उन ग्वाल बाल सखाओं की पंक्ति लगा दी और अपने हाथ से पत्तल पर प्रभु माखन मिसरी परोसने लगे। परन्तु स्वयं नहीं खा रहे हैं। ग्वाल बाल सखाओं को श्रीकृष्ण माखन मिसरी खिला रहे हैं। अब माखन खाने में ओठों की पट-पट और मसरी चबाने से दांतों की कट्कट् ये आवाज गोपी सुनी तो कहने लगी कि ये आवाज कहाँ से आ रही हैं। क्या कोई कुत्ता या बिल्ली माखन खा रहे हैं। घर में आँख चलाकर देखा परन्तु घर में कोई नहीं हैं। ढूंढते-ढूंढते बाहर आई तो देखा लाला सारे ग्वाल बाल मंडल को मिसरी माखन खिला रही हैं। गोपी को गुस्सा आ गया। क्यों रे कन्हैया तू तो कह रहे थे, कि मैं सन्तन के लिए माखन लेकर जा रहा हूँ। अरे तू ये सन्तन के लिए जे ला रहा है या संड भुसन्ड को खवा रहे हो।

भगवान् बाल कृष्ण कहते हैं, गोपी खबरदार। देख गोपी जितने भी ग्वाल बालक

हैं। वे सब सन्त हैं। किसी ने वस्त्र नहीं पहन रखे, सब नंग धड़ंग हैं। ये नागा साधु हैं। बोलो वृन्दावन बिहारी की जय। सब नागा सन्त हैं, पयोहारी सन्त हैं। गोपी इनको गारी मत दीजो। इन्हें दंडवत् कर। गोपी को और गुस्सा आयो। वह बोली माखन खलाऊँ और दंडवत भी करूँ! तू रुक अंदर से डंडा लाकर अच्छी तरह दंडवत करूंगी। गोपी अंदर डंडा लेने गई। भगवान् बाल कृष्ण कहते हैं कि मैया अब तक माखन खाओ अब डंडा भी खानो पड़ोगे। सारे ग्वाल बाल सखाओं को लेकर दौड़ पड़े, भाग गए। वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

इस प्रकार भगवान् ब्रज में माखन चोरी करने लगे। जब बहुत उपद्रव प्रभु ने मचाओ। रोज गोपियाँ शिकायत करने ब्रजरानी यशोदा के पास जाती थीं। एक दिन यशोदा ने सोचा कि रोज-रोज गोपियाँ लाला की शिकायत करती हैं कि लाला ने माखन चुराया है, आज मैं लाला को सीधा कर दूंगी। गोपियाँ उलाहना देने के बहाने यशोदा रानी के पास जा रही हैं। गोपियाँ एकत्र होकर जब नन्दभवन के द्वार पर पहुँची तो ब्रजरानी यशोदा द्वार पर मिल गई। वह बोली आज तुम सब कहाँ जा रही हो?

कहाँ जाएँगे तेरो ही घर आ रहे हैं। तेरो लाला की शिकायत करने। मेरो लाला ने क्या किया सुनाओ।

ये गोपियाँ भगवान् बालकृष्ण की शिकायत करते हुए कहती हैं। कि–

वत्सान्मुञ्चन्क्वचिदसमये क्रोशसञ्जातहासः
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधिपयः कल्पितैः स्तेययोगैः।
मर्कान्भोक्ष्यन्विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे सगृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.8.29)

गोपियों ने कहा कि अरे ब्रजरानी ये जो तेरो लाला हैं। असमय बछड़ों को खोल देता है, और वन से गौ आती हैं। बछड़ा दूध पी जाता हैं। जब हम दूध निकालने जाती है, तो हमें गौएं दूध न देकर लात मारती हैं। "हमारी कहनी और दहनी दोनों ही टूटें।"

"वत्सान् मुञ्चान् कचिदसमये।" कितनी सुन्दर शिकायत करती हैं। भगवान् की गोपियां। भगवान् कहते हैं गीता के 18वें अध्याय के 66वें श्लोक में–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मोमेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

भगवान् कहते हैं कि तू सभी धर्म का परित्याग कर। किसी ने पूछा कि क्या भगवान् ने धर्म का त्याग करने बताया है, क्यों कहा है? ऐसा।

धर्म के बिना तो जीवन नहीं, धर्म विहीन नर पशु समाना। गीता के श्लोक का अर्थ ठीक-ठीक से समझे

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मोमेकं शरणं व्रज।"

भगवान् धर्म का त्याग करने नहीं बता रहे हैं, भगवान् कहते हैं कि जो धर्म का आश्रय है, वह आश्रय का त्याग कर मेरा आश्रय ले। मेरी शरण में आजा, तो मैं तुझे सभी पापों से मुक्त करके मोक्ष प्रदान कर दूँगा। भगवान् उस धर्म को छोड़कर जीव को अपने आश्रय की शिक्षा दे रहे हैं। धर्म की, स्वयं भगवान् ने रचना की है।

"धर्म साक्षात् भगवतप्रणीताम्।"

तो श्रीकृष्ण की शरण में जाने पर, अभी इस जीव की मुक्ति का समय नहीं हुआ परन्तु प्रभु की शरण में आने से प्रभु असमय में ही पहुँचा देते हैं। जैसे कि गोपियाँ बता रही हैं कि, ब्रजरानी आपका लाला असमय ही बछड़ा खोल देता है बछड़ा कौन है? ये जीव है—बछड़ा।

सर्वो उपनिषदो गावो दुग्धा गोपाल नन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधी भोक्ताः दुग्धम् गीतामृतंमहत्।। (गीता)

जो प्रभु की शरण में आए तो प्रभु उस जीव को असमय में ही मुक्त कर देते हैं। ब्रजरानी यशोदा ने कहा कि ये तो गोपियाँ शिकायत कर रही हैं। बोली, गोपियाँ तुम कहती हैं, कि तेरो लाला असमय बछड़ा खोल देतो हैं। छोटो सो मेरो लाला है और तुम कितनी बड़ी हो? मेरो लाला को डांटा करो। गोपियों ने कहा, यह सीख देने की जरूरत नहीं यह सब हम कर चुकी हैं। वे कहती हैं। कि "क्रोश संजात हास," देखो ब्रजरानी जब हम आपके लाला की ओर लाल-लाल आँख निकालकर डराती हैं, धमकाती हैं। तो वे हँसने लगते हैं। मुस्कराने लगते हैं और हम हंस पड़ती हैं। तो हम तेरो लाला पर क्रोध तो कर ही नहीं सकते, देख ब्रजरानी माखन भी चुराते हैं और मटकी भी फोड़ देते हैं। स्वयं न खाकर बंदरों को खिलाते हैं। यदि घर में माखन न मिले तो छोटे बच्चों को चिकोटी काटकर भाग जाते हैं। सोते से जगा देते हैं। भगवान् को सोता व्यक्ति अच्छा नहीं लगता। कथा में आए हो तो सोना नहीं। सोता व्यक्ति भगवान् का प्यारा नहीं होता। जागो, जग जाओ।

जानहि जब हि जीव जग जागा,
सब विषय विलासा विरागा ।।

कृष्ण की शरण में जब जीव आ जाता हैं। माया की गोद में तो हम सो ही रहे हैं, परन्तु जब श्रीकृष्ण की शरण में आ गए, भगवत कथा में आ गए तो वहाँ जीव आते ही जग जाते हैं। कृष्ण कथा जीव को जगाने के लिए है, भागवत्कार कहते हैं। 'सावधानतया श्रृण' भागवत् कथा सुनने बैठे हैं। तो सावधान होकर नींद में रहकर नहीं। "जागो रे जीव जागना, अब आई जागन की बारी" जागो, जग जाओ।

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं, कि जब गोपियाँ लाला की शिकायत करने लगीं तो एक गोपी ने कहा कि अरे ब्रजरानी तेरो लाला ने मेरे साथ तो बहुत बुरा कियो। बोली अरे गोपी तू भी सुना दे। सबके लाला अच्छा है मेरो लाला बुरो। लाला ने तेरो साथ क्या कियो? गोपी कहने लगी, ब्रजरानी मैंने एक दिन घर में साग-सब्जी नहीं बनाई। मैंने सोचा ससुर और पति जब खेत से लौटेंगे तो माखन से रोटी खा लेंगे। मध्याह्न में जब मेरे ससुर खेत से लौटे तो मैंने थाली में रोटी रखी और छींके से माखन की मटकी उतारकर अपने ससुर के सामने रख दी। जितना चाहे उतना माखन ले लेंगे। कपड़े में ढकी माखन की मटकी थी। ब्रजरानी यशोदा मैं दूर रसोई के द्वार पर जाकर खड़ी हो गई। जो ससुर ने माखन की मटकी से कपड़ा हटाया तो क्या बताऊँ कि वह रोटी की थाली मेरे सिर पर फेंककर मारी और गुस्से से बोले आनदे घर में आज छोरे को, या तो ये बहू रहेगी या मैं। नाराज होकर चले गए मेरे ससुर। मैं अंदर आकर जब माखन की मटकी के पास आई तो क्या देखा कि पीछे से लाला आकर उसमें मिट्टी का गोला रख दियो। माखन सारा खा लियो। अब कैसे मैं ससुर को समझाऊँ कि सारी करतूत कन्हैया की है। मैं यह बता भी न सकूँ। ब्रजरानी उस समय तुम्हारे लाला आकर बोले मेरे ससुर को, बाबा आज कौन-को नाराज हो रहे हो, क्या बात है? बोले देख लाला तेरी भाभी ने मेरो से आज बड़ी हंसी करै हैं। बोले कैसे। बोले आज हमारे सामने माखन की जगह मिट्टी का गोला धर दियो हैं। भगवान् मन ही मन मुस्करा रहे हैं। करतूत तो सारी मेरी है, बोले बाबा मैं तो जाकर अपनी मैया को कह दूंगो। बोले क्या कहोगे। बोले बाबा कहूँगा कि हमारी भाभी से हमारी शादी की बात चल रही है।

अभी दो बरस के लाला कितनी मीठी-मीठी बात कर रहे हैं, मैं तो अपनी मैया से कह दूंगो कि मैया बाबाओं की छोरी मत लीजौ। बाबाओं की छोरी तो बड़ों से हंसी मजाक करै हैं। भगवान् श्रीकृष्ण लीला के माध्यम से शिक्षा देते हैं कि तो ब्रजरानी

मेरो ससुर का क्रोध और बढ़ गयो, मैं दूर द्वार पर खड़ी रही। मैंने कहा कि कन्हैया अब तो मान जा, बस कर, अब तो बहुत हो गयो है, तेरो लाला को दया आ गई। वे बोले बाबा अब तो तेरी बहू खरी है या खोटी घर से बाहर नहीं निकाली जाए। बाबा आप रोटी जीमने चलो, भोजन करने पधारो, बोले लाला आज मैं बहू के हाथ रोटी नहीं खाओगो। आन दे छोरा को या तो बहू रहेगे या मैं। अब तो बाबा मेरी सौगंध जो आप रोटी जीमन न चलो। भैया भगवान् ब्रजवासियों को सौगंध खिला देवे और ब्रजवासी न माने प्रभु की बात यह कैसे हो सकते है?

तुरंत उठकर मेरे ससुर आए, भोजन करने चले तो ब्रजरानी मेरो संग तेरो लाला ने बहत ही बुरो कियो। मैया के पीछे ही बालकृष्ण खड़े हैं और शिकायत सुन रहे हैं। मैया ने लाला के हाथ पकड़कर गोपियों के बीच खड़ा करके कहा देख! लाला तू इनके यहाँ माखन चुरावै है, प्रभु ने कहा मैं तो एक हूँ माँ ये अनेक हैं। माँ बोली लाला आज जरूर मारेंगी तूने माखन खाओ सच बता। गोस्वामी तुलसी दास ने सुन्दर भाव प्रकट कर रहे हैं। मानो इस लीला का साक्षात दर्शन कर रहें हैं। गोस्वामी ने लिखा है, माँ ने पूछा कि तूने माखन खायो। प्रभु ने कहा मैया मैंने नहीं माखन खाओ।

गीतम्

मैया मोरि मैं नहिं माखन खाओ
भोर भये गयो गैयन के पीछे
मधुबन मोहि पढ़ायो

भगवान् कहते हैं कि मैं नहीं माखन खाओ। यशोदा ने कहा गोपियों मेरो लाला सच कह रहे हैं, यदि ये झूठ कहते तो मैं मारति अब कैसे मारूं? गोपियों तुम इसे गाली न देना जो जितना उसने माखन खाओ उतना लेकर पधारो।

तोल-तोल लेओ वीर जितना जाके खाओ।
पर गारि मत दीजो मो गरीब निको झाई है।

अरी गोपियों, मैं कितने जतन कर गोपाल कृष्ण को पायो है, तू मेरो लाल को गारी मत दो। गोपियों ने कहा कि ब्रजरानी हम आपके लाला को गाली देने नहीं आयो हैं। आपने घर में जो सुबह से लाला को बंद कर रखा था ना। उलाहने के बहाने हम दर्शन करने आए हैं। इतना प्रेम जब गोपियों का लाला के लिए देखा, तो ब्रजरानी यशोदा ने कहा कि- अरे आज से कन्हैया तुम्हारा है और तुम कन्हैया के हो, बोलिए बाल कृष्ण लाल की जय।

कौन जीव गोपी हैं? किसी स्त्री का नाम गोपी नहीं।

"गोभि इन्द्रियै भक्त सम पिबति सा गोपीः"

जो अपने ज्ञान, कर्म इन्द्रियों से कृष्ण रस पान करे वह जीव गोपी हैं। इन आंखों से देखे तो ऐसे लगा कि साक्षात् कृष्ण का मैं दर्शन कर रहा हूँ। यदि कानों से सुने तो उसे ऐसा लगे कि मैं अपने गोविन्द का नाम सुन रहा हूँ, यदि कुछ खाए तो ऐसा लगे कि मैं कृष्ण का गोविन्द का प्रसाद पा रहा हूँ। जो अपने ज्ञान और कर्म दोनों इन्द्रियों से कृष्ण रस पान करे वह जीव गोपी है।

ब्रजरानी यशोदा तो बालकृष्ण को गोपियों के बीच में छोड़कर अन्दर चली गई। कृष्ण बैठे हैं। गोपियों ने कहा देख लाला, हमारो प्रेम तोसे कितना है, कि हम तेरो दर्शन के लिए तेरो द्वार तक आ गए हैं, परन्तु तूने हमें याद कियो। भगवान् ने कहा तू मेरे प्रेम को नहीं समझ सकती। आज सुबह से मैया ने न जाने कितनी बार माखन खाने को दियो परन्तु मैया के हाथ का माखन मैंने नहीं खाओ। गोपियों जो स्वाद तुम्हारे घरचोरी करके खाने में हैं, वह स्वाद मैया के हाथ से लेकर खाने में नहीं है।

देखो, ये माखन क्या है? माखन चोर नहीं है भगवान्, ये तो कृष्ण लीला हैं। मेरे गोविन्द तो चितचोर हैं। माखन प्रभु ने क्यों चुराया! नव लख धेनु प्रभु के घर और ऐसे घर का बालक चोरी करे। नन्द बाबा के घर नौ लाख गाय थी और राधा रानी के घर 10 लाख। कृष्ण से एक लाख ज्यादा हैं। बृजेश्वरी हैं न श्री राधारानी। वृन्दावनेश्वरी राधा रानी। तो 9 लाख गाय कृष्ण के और ऐसे घर का छोरा जाओ माखन चोरी करने। ये बात समझ में नहीं आती।

देखिए माखन प्रभु ने क्यों चुराया? भगवान् ने देखा कि जो ये ब्रजवासी हैं। जिनके पास अर्थ बहुत कम है और अर्थ प्राप्त करने के लिए ये मथुरा में दूध, दही बेचते हैं। मथुरा में बैठे हैं, कंस के अनुयायी जिनसे अधर्म बढ़ रहा हैं। पाप बढ़ रहा हैं। भगवान् ने कहा कि यदि मैं कहूँगा कि इस माखन को यहीं रखो जो दीन हीन ब्रजवासी हैं। उन्हें खिलाओ उन्हें पुष्ट करो तो ये मेरी बात नहीं मानेंगे। प्रभु ने ऐसा मार्ग निकाला कि ब्रज में भगवान् धर्म की स्थापना कर रहे हैं।

अधर्म को प्रभु रोक रहे हैं। यानि मथुरा में दूध दही जाने का तात्पर्य है कंस के दुष्ट लोग पुष्ट होंगे जिसका अर्थ है अधर्म का बढ़ना। भगवान् ने वही दूध, दही, माखन लूटने का चोरी करने की एक लीला की और भगवान् स्वयं माखन नहीं खाते, मिसरी नहीं खाते। उन दीन हीन ग्वाल बाल को अपने हाथों से माखन

खिलाते।

परन्तु माखन क्या है, देखिए माखन माने–

'सन्त हृदय नवनीत समाना' भक्त का हृदय एक नवनीत है नवनीत माने ताजा मक्खन। नित नया भाव भक्त के हृदय में है भगवान् उस भाव को ग्रहण करते हैं। माखन नहीं चुराते।

'सन्त हृदय नवनीत समाना' तो मेरे कृष्ण चितचोर हैं। इस प्रकार प्रभु ने माखन चोरी कर अपनी लीला का रहस्य प्रकट किया।

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन एक दिन नन्द नन्दन श्रीकृष्ण अपने घर के बाहर खेल रहे थे। प्रभु का मन आज खेलने में नहीं लग रहा हैं। भगवान् ने सोचा कि माखन तो मैंने बहुत खा लिया। अंदर से पेट भी चिकना हो गया थोड़ी सफाई तो कर लूं। मिट्टी से जैसे सफाई करने कि विचार किया। प्रभु ने जैसे ही मिट्टी का ढेला देखा तुरंत अपने मुख में रख लिया। श्रीदामा ने देखा कहा, कन्हैया ने मिट्टी खाई है, उसने पूछा क्यों रे कान्हा तौने मिट्टी खाई? प्रभु बोले ऊँ हूँ। इसका अर्थ है नहीं। अब मुख में तो मिट्टी है बोले कैसे झट बलराम जी को बुलाया, देखो भैया आज कन्हैया ने मिट्टी खाई हैं। दौड़कर बलराम आए और पूछा कन्हैया तेने मिट्टी खाई हैं। प्रभु बोले ऊँ हूँ। मुख में मिट्टी, तो बोले कैसे? बलराम बोले आज इसे मैया के पास ले चलो वहीं मार लगेगी।

झट दो सखा दौड़ पड़े। एक सखा ने भगवान् के हस्त कमल पकड़े और एक ने चरण कमल पकड़ लिए और डन्डा डोली करते हुए बालकृष्ण को झुलाते हुए माँ के पास ले जाने लगे और ब्रह्मादि देवता आकाश से दर्शन करने लगे। शुकदेव जी महाराज कहते हैं– धन्य है ये ब्रजवासी। ब्रह्माजी देवता कहते हैं। जिनके हस्तकमल पर साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा औंधा लटका पड़ा है–

"कितने बड़भागी हैं। ये ब्रजवासी।

जिनके घर खेलन आयों परम पूर्ण ब्रह्म अविनाशी"

कितने बड़भागी हैं। ब्रजवासी, माँ के पास ले जाकर समि गोयालवाली ने कन्हैया का शिकायत की।

सुन यशोदा माई तेरो लाल ने माटी खाई।
सुनतो माटी का नाम ब्रजरानी दौड़ी आई।
और पकड़ो हरि का हाथ कैसे तूने माटी खाई।

तुतलन के तुतलन को तुतलाई के बोले श्याम।
मैंने नाहि माटी खाई बोले बलदाऊ राम।।
मैया, मैं माटी नहीं खाओ।

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः।
यदि सत्यगिरस्तह समक्षं पश्य मे मुखम्।
(श्रीमद्भागवतम् 10.8.35)

भगवान् बालकृष्ण कहते हैं कि माँ "नाहं भक्षित वानम्व" मैया मैंने माटी नहीं खाई। "सर्वे मिथ्याभिशंसिनः" ये सब झूठ बोल रहे हैं, यशोदा बोली कन्हैया इस संसार में केवल तू ही एक सचधारी पैदा हुओ और सब झूठे हैं। आज मैं तुझे जरूर मारूंगी। झट एक लाठी लेकर आ गई। बालकृष्ण को मारने के लिए जब यशोदा चली और लाला ने माइया के हाथ में जब लाठी देखा तो भगवान् की आंखों से अश्रु झर-झर टपकने लगे। भगवान् ने कहा मैया मारिए मत।

गीतम्

मारे मत मैया वचन भरवाई ले,
वचन भरवा ले चाहे सौगंध खवाई ले।
पर मारे मत मैया..............................।।

भगवान् की आंखों में अश्रु टपकते देखकर मैया के हृदय में करुणा छा गई। यशोदा ने कहा लाला मैं तुझे नहीं मारूँगी पर अपने मुख तो दिखा। भगवान् बोले अरे मैया "सांच को आंच कहाँ है?" तू मेरो मुख देख ले, भगवान् ने मुँह खोल दिया–

"छोटो सो मुखारविन्द कृष्ण ने फाड़ दियो।"

बटुआ सा भगवान् का मुख खुल गया। और "यदि सत्यगिस्तहि समक्षं पश्य मे मुखम्" ज्यों ही प्रभु ने मुख को खोला ब्रजरानी यशोदा ने झांककर देखा कि माटी तो नहीं है, मैया ने मुख में क्या देखा–

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः।
साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सावाय्वग्नीन्दुतारकम्।।
ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान्वियदेव च।
वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.8.37, 38)

मैया कन्हैया के मुख के अंदर सारे ब्रह्माण्ड को देख रही हैं। ब्रह्माण्ड में नंदभवन

का, गोकुल का और बालकृष्ण का दर्शन कर रही हैं। मैया बोली मैं क्या देख रही हूँ अपने लाला के मुख में। मेरे लाला के मुख में ये अलाए बलाएं कहाँ से आ गई। झट माँ ने आंखें बंद कर ली। प्रभु ने कहा मैया ने मेरा ऐश्वर्य को देख लिया। परन्तु मैं ब्रज में अपनी बाल लीला करने आया हूँ। ब्रजवासियों के प्रेम को पाने के लिए आया हूँ। तो भगवान् कहते हैं, जहाँ ऐश्वर्य होता है वहाँ प्रेम नहीं होता। अपने ऐश्वर्य को प्रभु छिपा रहे हैं। जब प्रभु ने देखा कि माँ भयभीत हो गई, मेरे मुख में मेरा विराट रूप देखकर मेरे उस ब्रह्माण्ड को देखकर तो भगवान् मंद-मंद मुस्कराने लगे। माँ की ओर देखकर, श्रीमद् भागवत में कहते हैं, भगवान् की मुस्कराहट, तो मानो फेर दी माया। तो थोड़ी देर में माँ यशोदा ने आँख खोलीं। प्रभु ने माँ से पूछा मैया तौने मेरो मुख में माटी देखी? ब्रजरानी यशोदा कहने लगी लाला "सब जग झूठो केवल केवल एक मेरो लाला साँचो" "ब्रह्मसत्य जगत मिथ्या" ये वेदांत का भी सूत्र है, सत्य है, तो परमात्मा है, श्रीकृष्ण है।

"सांचे श्री राधा रमन झूठे सब संसार
बाजीगर को पेखना मिटो तन लगाई बाज"

जैसे एक जादूगर होता है, जितनी देर खेला देखते हैं, लगता है सब सच हैं। उसी प्रकार भगवान् भी माया का खेल दिखाते हैं। लगता सच है, होता मिथ्या, सच है तो केवल श्रीकृष्ण ही हैं।

गीतम्

अधरम् मधुरम्, बदनं मधुरं, नयनं मधुरं, हसितं मधुरंम्
हृदयम मधुरम्, गमनम मधुरं, मधुराधिपते अखिल मधुरम्

ये मिट्टी प्रभु ने क्यों खाई? मृदभक्षण करके प्रभु ने अपनी लीला का रहस्य प्रकट किया, देखिए पृथ्वी का दो गुण है, प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण पहला गुण हैं– क्षमा, दूसरा हैं परोपकार। देखिए मिट्टी की जब हम खुदाई करते हैं, कितनी खोदते हैं। वृक्ष की कटाई करते हैं, पृथ्वी पर कितना हम गंदगी फैलाते हैं, परन्तु फिर भी माँ पृथ्वी को हम प्रणाम नहीं करते, देखिए ये दो श्लोक हैं। जिनमें प्रातःकाल पृथ्वी के ही वंदन का श्लोक हैं।

समुद्रे वसने देवी पर्वतस्तनमंडले।
विष्णु पती नमसतुभ्यं पाद स्पर्श क्षामस्वमे।।

यह प्रार्थना है, प्रातःकाल उठकर पृथ्वी की वंदना करना। कितना हम पृथ्वी पर

अपराध करते हैं। पर माँ पृथ्वी हमारे सब अपराध क्षमा कर देती हैं। कितनी क्षमा पृथ्वी में हैं। पृथ्वी का जो विकार है, वह वृक्ष हैं। परन्तु जिन वृक्ष की हम कटाई करते हैं। वृक्ष हमें क्या देते हैं? वृक्ष हमें देता है फल, छाया, इसी प्रकार ये परोपकार की भावना और क्षमा ये दो बातें प्राणियों के अंदर होनी चाहिए। यानि दूसरों का उपकार करना, परोपकार करना। पहली क्षमा, आज व्यक्ति के अंदर क्षमा नहीं हैं। क्षमा और परोपकार की भावना यदि व्यक्ति में होती है, तो भैया उसे ईश्वर की प्राप्ति होती है।

राजा ने प्रश्न किया कि नन्द और यशोदा कौन है? शुकदेव जी महाराज ने बताया कि

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया भार्यया सह।
करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह।
(श्रीमद्भागवतम् 10.8.48)

नन्द और यशोदा पूर्व जन्म में द्रोण नाम के वसु थे, जिनकी पत्नी का नाम था धरा। जिन्होंने भगवान् की तपस्या की और भगवान् ने दर्शन देकर कहा कि आप हमसे वरदान माँगें उन्होंने कहा कि भगवन हम आपकी बाल लीला का दर्शन चाहते हैं, तो ये नन्द यशोदा बने और भगवान् बाल लीला का दर्शन दे रहे हैं।

क्षमा और परोपकार ये दो गुण जिस व्यक्ति के जीवन में है, वे लक्ष्य की प्राप्ति कर लेते हैं। दूसरों को क्षमा करना सीखो। दूसरी सीढ़ी है 'परोपकार' "पर उपकाराय सतां विभूतय" यदि ये दो बातें साधक के जीवन में हैं, तो निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति यानि भगवत प्राप्ति हो जाती हैं। किसी ने पूछा कि परमात्मा कैसे मिलता है? ये परमात्मा की प्राप्ति की पहली सीढ़ी है क्षमा और परोपकार। भगवान् ने मृद भक्षण कर अपनी ये लीला प्रकट कर एक और लीला रहस्य प्रकट कर दिया। भगवान् कहते हैं कि ये मृद क्या है? ये मृद ब्रज रस है, ब्रज रस ब्रह्म रस हैं।

ब्रज दूर ही प्राणों से प्यारी लागे,
ब्रज मंडल ही माहि बसायै रहूँ।
रसिकों के सुरंग में मस्त रहूँ
जग ज्वाल सो नाथ बचायै रहो।
नीत बांके झांकी निहारा करूं,
छवि ढांक सो नाथ छकायो रहूँ।
अहो बांके बिहारी यही विनती,

मेरे नैना से नैना मिलाया रहो।
"ब्रज दूर ही प्राणो से प्यारी लागे"

ये ब्रजरज ब्रह्म रस है, एक बार परम् ब्रह्म की इच्छा हुई कि मैं अपने रस का रसास्वादन करूँ। तो भगवान् ने ये मृद भक्षण लीला करके ये ब्रज रज खाई। शुकदेव जी महाराज कहते हैं इस प्रकार प्रभु ने नन्द यशोदा, ग्वाल मंडल, ब्रजवासी, गोपियों को आनंद दिया।

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण का ऊखल से बांधा जाना

राजन् अब बड़ा सुन्दर मास प्रकट हुआ, जिसे कहते हैं–कार्तिक महीना। श्री राधा रानी का प्रिय मास है, कार्तिक है इस महीने में ही भगवान् ने एक सुन्दर लीला की। जिसे कहते हैं– "ऊखल बंधन लीला" इस मास को कहते हैं– 'दामोदर मास'। शुकदेव जी इस लीला को राजा परीक्षित को सुना रहे हैं–

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि।

(श्रीमद्भागवतम् 10.9.1)

राजन् कार्तिक का महीना आया और कार्तिक का भी कितना सुन्दर समय दीपावली। दीपावली के दिन नन्द भवन में सभी सेवक सेविकाएं अपने–अपने कार्य में लगे थे। जब प्रातःकाल हुआ तो सब अपने–अपने कार्य कर रहे थे। ब्रजरानी यशोदा भी सोकर उठी। ब्रजरानी यशोदा ने सोचा कि लाला की माँ तो बन गई परन्तु अपने हाथों से दधि मन्थन नहीं किया। आज मैं अपने बालकृष्ण के लिए मन्थन करूंगी, सुन्दर रेशमी साड़ी पहनकर मन्थन के लिए बैठी है, अब तक जितनी भी प्रभु ने लीलायें की है उनका ध्यान भी कर रही हें, रसिया पद में भजन बनाकर, शुकदेव जी महाराज कहते हैं।

यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च।
दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत।

(श्रीमद्भागवतम् 10.9.2)

परीक्षित अब तक जितनी भी लीलाएं की हैं, ब्रज रानी यशोदा उनका गान भी करती जा रही है और दधि मन्थन भी कर रही हैं। माँ दधि बिलो रही हैं। मनसा वाचा कर्मणा तीनों से श्रीकृष्ण को याद कर रही हैं। देखिए मन भी कृष्ण में है कि

मेरे लाल सोते हुए न उठे। उठने से पहले मैं दधि बिलो लूं, यदि मेरो लाला उठ गयो तो घर का कोई काम करने न देंगे। पहले ही दही बिलो लूं और मन भी श्रीकृष्ण में है, तन से भी श्रीकृष्ण की सेवाकर रही है और वाणी से भी प्रभु का गुण गा रही हैं। जब मनसा, वाचा, कर्मणा तीनों से ही जीव ईश्वर का स्मरण करता है श्रीकृष्ण को याद करता है तो भगवान् उस जीव के लिए सोते नहीं हैं, जाग जाते हैं। जो मनसा, वाचा, कर्मणा से परमात्मा को याद नहीं करता मानो परमात्मा भी उसके लिए सोया हैं। परन्तु ब्रजरानी यशोदा तीनों से प्रभु याद कर रही हैं। मन भी कृष्णमय है तन भी कृष्ण की सेवा में है और वाणी से भी ईश्वर भजन हो रहा हैं। ये तीनों बात यदि हमारे प्रभु में लग जाएं तो प्रभु तुरंत दर्शन देने आ जाते हैं, परन्तु तीनों हमारे एक साथ नहीं लगती यदि तन हमारा कृष्ण सेवा में है तो मन से, वाणी से हम किसी और जगह में हैं। यदि मन से हम कृष्ण के चरणों में है तो तन से, वाणी से हम किसी और स्थान हैं। यदि वाणी से हम प्रभु के लिए गा रहे हैं। तो तन से, मन से कहीं और हैं। जब मनसा, वाचा, कर्मणा तीनों से हम प्रभु के लिए सेवा करते हैं, तो उस जीव के लिए प्रभु जाग जाते हैं। ब्रजरानी आज तीनों से सेवा कर रही हैं। श्रीकृष्ण को याद कर रही हैं।

भगवान् की भी आँख खुली। पलंग से उतरकर प्रभु माँ के पास आए और आकर ब्रजरानी यशोदा से कहा मैया भूख लगी हैं। ब्रजरानी यशोदा ने दही मन्थन छोड़कर कृष्ण को दूध पिलाने लगी। लाला के मुँह को माँ निहार रही है, लाड–प्यार, दुलार कर रही हैं। बार–बार माँ बालकृष्ण के सिर को सूंघती हैं।

तमङ्कमारूढमपाययत्स्तनं स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ।
अतुप्तमुत्सृज्य जवेन सा यया–वुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.9.5)

इधर पदम्गंधा, श्यामल, कपिला ये श्रीकृष्ण जी की जो प्रिय गाय हैं, उनका दूध कढाई में उफन रहा है ऊफन–उफन कर जल रहा हैं। जब ब्रजरानी ने रसोई में देखा तो कहा कहीं मेरे लाला की आयु कम न हो जाए, क्योंकि जिस घर में गोदी का बालक हो और गाय का दूध जले यह अपशकुन हैं। यानि बालक की आयु कम हो जाती हैं। माँ के अंदर तो वात्सल्य भाव है, कि कहीं मेरे लाला की आयु न कम हो जाए। इस भाव को रखते हुए श्रीकृष्ण को दूध पिलाते हुए छोड़कर दूध की कढाई को उतारने ब्रजरानी यशोदा रसोई की ओर चल दी। उधर तो उफन रहा था दूध और इधर पूत भी उफनने लगा। प्रभु ने कहा माँ आपको दूध ज्यादा प्यारा है पूत नहीं हमें

दूध पिलाते छोड़कर चली गई, परन्तु प्रभु ने कहा कि हमें लीला में माँ के ऊपर थोड़ा क्रोध आ गया है।

"संजात कोपः स्फुरितारुणाधरं" भगवान् क्रोध में कपट, कोप करके अपने ऊपर और आँख को लाल कर लिया, भगवान् का चेहरा लाल हो गया। भगवान् ने कहा मेरे क्रोध में तो सारा ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाता है, मैंने ब्रह्माण्ड नष्ट के लिए क्रोध नहीं किया। ये तो लीला में माँ के लिए क्रोध हैं। तो मेरे क्रोध में कुछ न कुछ तो नष्ट होना चाहिए। चलो ब्रह्माण्ड नष्ट न होता तो कोई बात नहीं भगवान् ने तुरंत एक छोटा-सा पत्थर का टुकड़ा उठाया और कहा इस भांड को ही नष्ट कर देता हूँ। माखन की मटकी पर पत्थर मारकर उसे तोड़ दिया। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् श्रीकृष्ण छींके पर चढ़कर सारी मटकी फोड़ रहे हैं और मोर, बंदरों को खिला रहे हैं। भैया ये कौन से मोर हैं? कौन से बंदर हैं, ये राम अवतार के ही वानर हैं। प्रभु राम कहते हैं कि इन वानरों ने मेरी कितनी सेवा की है, परन्तु रामावतार में मैं इन बंदरों को कुछ न दे सका, इसलिए आज श्रीकृष्ण इन्हें अपने हाथों से माखन मिसरी खिला रहे हैं। ताली बजा-बजाकर गद्गद् भाव से नृत्य कर रहे हैं। शुकदेव जी महाराज कहते है, राजन जब मैया रसोई घर से आई और देखा कि लाला ने माखन की मटकी तोड़ कर बंदरों को माखन मिसरी खिला रहे हैं।

पहले तो माँ हँसने लगी। कुछ समय बाद कहने लगी कि नहीं-नहीं अब तो मेरो लाल बड़े हो गए हैं, कुछ डांटना, फटकारना चाहिए।

भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म त-ज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती।

(श्रीमद्भागवतम् 10.9.7)

जो ब्रजरानी यशोदा बाल कृष्ण को पकड़ने के लिए भागी, तो भगवान् भी ऊखल से उतरकर माँ का हाथ छुड़ाकर, नन्द बाबा के घर के पीछे एक बगीचा था उसमें कूद गए। ब्रजरानी यशोदा ने कहा—लाला आज मैं तोकु सीधा कर दूंगी, जरूर मारुंगी। भगवान् कहने लगे कि मैया पहले पकड़ तो ले, मैं 'तोरे हाथ नहीं आऊँगो। मोटी तगड़ी थी यशोदा जी। बार-बार भागती हैं, पकड़ने के लिये कृष्ण को, पर कृष्ण भाग जाते। बड़े-बड़े योगी जोग में आरूढ होकर भी मन वहाँ तक नहीं पहुँच पाता। मन की गति वहाँ तक नहीं पहुँच पाती आज साक्षात् बालकृष्ण को पकड़ने यशोदा भाग रही हैं।

गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.9.9)

देखिए भगवान् को केवल हाथों से नहीं पकड़ना, प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। जिस जिसने भी भगवान् को हाथों से पकड़ा है, भगवान् हाथ छुड़ाकर भाग जाते हैं। भगवान् का एक परम् भक्त था बिल्वमंगल, यह अंधा था। जिसने अपने हाथों से अपनी आंखें फोड़ ली थीं। लोग कहते हैं। सूरदास। नहीं सूरदास इनसे अलग एक भक्त था। जब बिल्वमंगल वृन्दावन की यात्रा पर चला, तो मार्ग में पूछ रहा है कि मुझे वृन्दावन जाना है कोई मुझे पहुँचा दो। मैं अंधा हूँ। तो भगवान् ग्वाल बाल के रूप में बिल्वमंगल को मिले। भगवान् ने कहा कि बाबा कहाँ जाओगे? बोले मैं वृन्दावन जाऊँगा। बाबा यह तो अच्छी बात हो गई। मैं भी वृन्दावन का हूँ आप भी वहीं जाना चाहते हो। मैं आपको वहीं छोड़ देता हूँ।

झट प्रभु ने बिल्वमंगल के हाथ पकड़ लिए। श्रीकृष्ण जब वृन्दावन की सीमा पर पहुँचे तो संधिकाल का समय हो चुका था, भगवान् कहते हैं कि लो वृन्दावन आ गया। आप प्रवेश करें लेकिन बिल्वमंगल श्रीकृष्ण को पहचान चुके हैं। ये मेरे कान्हा हैं। कसकर प्रभु को पकड़कर रखा हैं। अब नहीं छोड़ूंगा। परन्तु प्रभु ने झटका देकर जोर से अपना हाथ छुड़ा लिया। दौड़ पड़े श्रीकृष्ण। बिल्वमगल ने प्रभु को दौड़ते हुए बिन आंखों में अनुभव किया, तो उनकी आंखों से झर-झर आंसू टपकने लगे। विल्वमंगल कहते हैं।

हाथ छुड़ाय जात हो-निवल जान के मोहे।
हृदय मे जब जाओगे, सवल जानूं मैं तोहे।।

प्रभु मैं तो एक अंधा हूँ, मैं आपको पकड़ नहीं सकता। मैं आपको तब सर्वशक्तिमान मानूं जब आप मेरे हृदय से निकल जाओ। ये जो भाव है बड़ा दिव्य भाव है।

गीतम्

मुझे रास आ गया हैं। तेरे दर पे शर झुकाना,
तुझे मिल गया है पुजारी मुझे मिल गया ठिकाना।।
मुझे रास..........................

तो केवल हाथों से प्रभु को नहीं पकड़ना, ठाकुर हाथ छुड़ाकर चले जाते हैं। कहाँ से हम प्रभु को पकड़ें? अपने हृदय में प्रभु को बैठाओ। शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन् आज ब्रजरानी बार-बार प्रभु को पकड़ने के लिये दौड़ रही हैं, पर भगवान् हाथ नहीं आते। सभी गोपियाँ आ गई, उन्होंने कहा कि ब्रजरानी आज सुबह-सुबह तुम

लाला के पीछे क्यों भाग रही हो, क्या बात हैं। यशोदा ने कहा–गोपियों आज लाला ने माखन की मटकी फोड़ दी, गोपियों ने कहा कौन-सा नया काम किया, ये तो रोज हमारे घर करता हैं। जब हमारे घर माखन की मटकी फोड़कर आते हैं। तब तो तुम कुछ नहीं कहती और घर में आज मटकी तोड़ी तो मारने चली हो। यशोदा बोली तुमने ही मेरो लाला की आदत खराब की हैं। आज मैं कन्हैया को सीधा कर दूंगी। जरूर मारूँगी। दूर कृष्ण खड़े हैं, बाल कृष्ण ने कहा मैया पहले पकड़ तो लो, मैं तेरे हाथ नहीं आऊँगो। तो उसी समय भगवान् के परम मित्र मनसुखा आ गए। मनसुखा को देखकर ब्रजरानी यशोदा ने कहा अरे मनसुखा, आज तू लाला को पकड़कर लाएगा तो मैं तुझे माखन खाने को दूंगी। मनसुखा कन्हैया को पकड़ने भागे। प्रभु की ओर भागे प्रभु ने देखा और कहा आरे ब्राह्मण जितने भी प्रभु के बाल सखा थे अहीर थे। केवल एक मनसुखा ही ब्राह्मण थे। आज थोड़े माखन के लोभ में मैया से मार लगवावेगो। देख मनसुखा मैया तो आज ही माखन खाने देगी। पर मैं रोज चोरी कर-करके माखन खवाऊँ हूँ। यदि तूने मैया से मार लगवाई तो अपनी पार्टी से वायकॉट कर दूँगो।

मनसुखा ने कहा कन्हैया मैया दो चपत तेरे गाल पर लगाइगे तो हमार भला हो जाएगा। माखन खाने को मिलेगो। प्रभु ने कहा कि नहीं ब्राह्मण मेरी पूजा करके ले ले तो ठीक हैं। मुझे चपत पड़े और ब्राह्मण का भला हो, यह नहीं हो सकता। फिर भी माखन के लोभ में मनसुखा ने कृष्ण को पकड़ लिया। मैया को आवाज दी और कहा मैया मैंने कन्हैया को पकड़ लिया है, ज्यों ब्रजरानी दौड़कर आई तो फिर मनसुखा ने श्रीकृष्ण को छोड़ दिया, मैया इतनी देर से मैंने श्रीकृष्ण को पकड़ा, तू नहीं आई तो वह हाथ छुड़ाकर भाग गया। मैं तोको बताऊँ तू कैसे लाला को पकड़ेगी।

बोली हाँ मनसुखा बता। मनसुखा ने कहा मैया याकू तू सौगंध खवा। बोली कौन-सी सौगंध खवाऊँ। याकू भक्तन की सौगंध खबा-मैया। अरे मनसुखा चोर को, लवार को, कौन भक्त बनेगो। बोले मैया यदि पकड़ना है तब तो सौगंध खवानो ही पड़ैगो।

मैया ने कहा तोकु तेरे भक्तन की सौगंध, जो तू मेरी गोद में न आवै। परन्तु प्रभु नहीं आए। क्यों रे मनसुखा तू तो कह रहे हो, कि लाला गोद में आ जावै हो परन्तु ये नहीं आवै हो। बोले मैया अब की बार तू लाला को कलयुग के भक्त की सौगंध खवा। कलिकाल के भक्त श्रीकृष्ण को अधिक प्रिय हैं। "अहं भक्त पराधीनः"

ज्यों ब्रजरानी ने कहा अरे लाला तोकु तेरे कलिकाल के भक्तन की सौगंध, जो तू मेरी गोद में न आवै। जो माँ ने सौगंध खावाई तो श्रीकृष्ण ने दौड़ना बंद कर दिया।

मैया के हाथ की लाठी को देखा और कहा मैया तेरी गोद में तो आ जाऊँ पर तेरी हाथ की लाठी से डर लगै है, मैया ने झट हाथ..................

"त्यक्त्या यष्ठिं सुतं भीतं विज्ञाया र्भक वत्सला।"

ज्यों मैया ने लाठी फेंकी तो श्रीकृष्ण दौड़कर माँ की गोद में आ गए। कलिकाल के भक्त श्रीकृष्ण को बहुत प्रिय हैं, अब माँ की गोद में लाला विराजमान हो गए। बोलिए बाल कृष्ण लाल की जय। मैया की गोद में बाल कृष्ण बैठे हैं, कहते हैं मैया अब तो मैं तेरी गोद में हूँ, मार या छोड़ जो तुम्हारी इच्छा हैं। मैया बोली देख लाला न मैं मारूंगी न छोड़ूंगी, परन्तु आज बांधूंगी जरूर। झट अपने सिर से रेशम की डोर खोलकर भगवान् को बांधने लगी।

एक बालक की तरह भगवान् बालकृष्ण को बांधने लगी, तो कहाँ से बांध रही हैं। भगवान् के पेट से। बालकृष्ण सोचने लगे मेरे हाथ को बांधे तो बंध जाऊँ, पांव को बांधे तो बंध जाऊँ। पर मैया तो पेट को बांध रही हैं। मेरे पेट में तो कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हैं। मैं माँ के आधीन हुआ तो सारा ब्रह्माण्ड माँ के अधीन हो गया। बार-बार मैया बांधने जाती तो दो अंगुली छोटी हो जाती डोरी।

तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं यद्यदादत्त बन्धनम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.9.16)

देखिए जीव और ब्रह्म में ये दो अंगुल की ही दूरी हैं। ये परमात्मा क्यों नहीं हमारे बंधन में बंधता। ये केवल दो अंगुल की ही दूरी हैं। प्रथम अंगुल है–

'कृष्ण प्रेम' और दूसरा अंगुल है 'कृष्ण कृपा'। हमें तो ठाकुर से विशुद्धप्रेम करना है जिसमें कोई मिलावट न हो। जब ठाकुर की कृपा हो जाती है स्वयं प्रभु जीव के बंधन में बंध जाते हैं। प्रभु ने देखा कि माँ बांधते-बांधते थक गइ हैं। पसीने से लथपथ हो गई। भगवान् ने माँ पर कृपा कर दी और दो उंगली पूरी कर दी। भगवान् को कसकर बांध दिया ब्रजरानी ने ऊखल से। प्रभु का आज से नाम पड़ा 'दामोदर'। बोलो दामोदर भगवान् की जय। संस्कृत में दाम कहते हैं- रस्सी को। कहाँ से बांधा उदर (पेट) से। नाम पड़ा–दामोदर।

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः।
दुष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत्स्वबन्धते।

(श्रीमद्भागवतम् 10.9.18)

ब्रजरानी तो अपने घर के काम धन्धों में लग गई, प्रभु को ऊखल में बांध कर। इधर भगवान् बगीचे में बंधे पड़े, परन्तु भगवान् बालकृष्ण कहते हैं कि मैं

कितना भी बन्धन में क्यों ना हूँ– परन्तु अभी भी मुझमें इतनी शक्ति है कि मैं दूसरे के बंधन खोल सकता हूँ। कुबेर के दो पुत्र थे नल कुबेर और मणीग्रीव। ये नारद जी के श्राप से वृक्ष योनि में थे। भगवान् ने सोचा कि चलो इनका उद्धार कर दो।

अथो दशमोऽध्यायः

यमलार्जुन का उद्धार

भगवान् श्रीकृष्ण ने ऊखल को घसीटकर उस वृक्ष की जड़ के पास गए। जिसकी जड़ एक और तना दो थे। भगवान् अपने ऊखल को घसीटते हुये लेकर गए और मध्य में प्रभु ने ऊखल फंसाया। जोर से झटका देकर उन वृक्षों को पटक दिया। ये दोनों बाहर निकले और भगवान् को प्रणाम किया। भगवान् की स्तुति करने लगे।

नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल।
वसुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.10.36)

दोनों भगवान् के चरणों में प्रणाम करते हुए बोले कि प्रभु आपके चरणों में जीव का परम कल्याण है हम आपके चरणों में प्रणाम करते हैं।

वाणी गुणानुकथन श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽसतु भवत्तनूनाम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.10.38)

भगवान् के चरणों में प्रणाम करते हुए नल-कुबेर, मणीग्रीव ने कहा प्रभु आज हमारे ऊपर आपने बड़ी कृपा की। वृक्ष योनि से आपने हमें मुक्त करा दिया। हमारी वाणी तो आपके गुणानुवाद गाए। हमारे कान आपकी कथा सुने। हाथ परोपकार में लगे। हमारे मस्तक गुरुओं के सम्मुख झुकें। प्रभु हमारी आंखें सत्पुरुषों के दर्शन करें। नल-कुबेर और मणिग्रीव ने भगवान् को प्रणाम किया।

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् भगवान् को प्रणाम करके अपने लोक को चले गए। जब वृक्ष के टूटने की आवाज ब्रजवासियों ने सुनी, नन्द बाबा ने सुनी तो सब दौड़े। बिना आंधी-तूफान के वृक्ष कैसे टूटे। वहाँ छोटे-छोटे ग्वाल बाल जो खेल रहे थे वे बोले कि ऊखल फंसाकर झटका देकर इन्हें तोड़ दिया। परन्तु किसी

को विश्वास नहीं हुआ। 2.5 वर्ष के लाल ऐसा कैसे कर सकते हैं? यशोदा बोली, "दारिके, चल हट। झूठ बोले।" आज यशोदा मैया को भी विश्वास नहीं हो रहा किसी ब्रजवासी को भी विश्वास नहीं हुआ। प्रभु ने ऊखल बंधन लीला की। आज प्रभु का बंधन नन्द बाबा ने खोला ऊखल से। भैया जो ऊखल बंधन लीला का श्रवण करते हैं। उनके माया के बंधन भी खुल जाते हैं। यही प्रभु की दामोदर लीला है।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् एक दिन भगवान् नन्द नन्दन नन्दभवन के आंगन में खेल रहे थे। नन्दबाबा की खेती की फसल कटकर आई थी। आंगन में जौ, गेहूँ के ऊँचे पहाड़ लगे थे। भगवान् बाल कृष्ण बार-बार नन्दभवन की छत पर चढ़ते और उन गेहूँ के पहाड़ पर कूद पड़ते। ऐसी श्रीकृष्ण की बाल लीला चल रही है।

अथैकादशो अध्यायः

गोकुल से वृन्दावन जाना
बकासुर, वत्सासुर का उद्धार

तो गोकुल की गाँव में एक मालिन आई और जोर-जोर से आवाज लगा रही है कि कोई 'फल ले लो रि।' भगवान् ने मालिन की आवाज सुनी तो भगवान् ने कहा कि सारे जगत को तो मैं फल देता हूँ। मेरे द्वार पर आज फल बेचने कौन आई है? प्रभु ने तुरंत अंजलि में धान के दाने भर लिए।

"च्युतधान्यकरद्वयम्"

(श्रीमद्भागवतम् 10.11.11)

देखो पहले गाँव में यह प्रथा थी कि गाँव के लोग जब सौदा लेकर बाजार जाते थे तो धान, गेहूँ, चना आदि दुकानदार को देते थे, अपनी आवश्यक वस्तु खरीद लेते थे। इस प्रकार भगवान् ने भी धान के दाने अपनी दोनों अंजलि में भरकर मालिन की टोकरी में पटक दिया और दोनों हाथ प्रभु ने पसार दिये और कहा कि मालिन हमें फल दे दे। ज्यों हि मालिन ने श्रीकृष्ण को देखा तो एकटक प्रभु को देखती ही रह गई। कितना सुन्दर है ये बालक। किस गोपी का है ये? कौन सखी का हैं-?

अब देखो मालिन तो श्रीकृष्ण का दर्शन करती है और श्रीकृष्ण मालिन का दर्शन कर रहे हैं। भगवान् गीता में इस लीला का चित्रण कर रहे हैं।

ये यथा माम प्रपदन्ते, त्वाम् तथैवः भजंहम्,

भगवान् कहते हैं कि जो मेरा ध्यान करते हैं, मैं उनका ध्यान करता हूँ। श्रीकृष्ण

और मालिन एक टक देख रहे हैं। समय बीतता गया। मालिन की मानो समाधि लग गई। देखो कभी-कभी आंखें खुली होने पर भी जीव समाधि में पहुँच जाते हैं, एक टक प्रभु का दर्शन करते हुए भक्त समाधि में पहुँच जाते हैं, तो आंखे बंद करके ही समाधि नहीं लगती। ये समाधि कैसे है, विग्रह के, ठाकुर के भक्त दर्शन करते ही समाधि लग जाती हैं। मालिन की तरह। उद्धव की समाधि ज्ञान की पराकाष्ठा है, परन्तु गोपियों की समाधि भक्ति की पराकाष्ठा हैं। उद्धव की समाधि बंद आंखों में और गोपियों की समाधि खुली आंखों में हैं। मालिन भी कोई गोपी हैं। काफी समय निकल गया। भगवान् की दो प्रकार की शक्ति हैं। लीला और कृपा। प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण। ये ही तो भक्ति है श्रीकृष्ण की।

आज प्रभु ने लीला बंद कर दी और मालिन पर कृपा कर दी। जब काफी समय निकल गया तो लीला शक्ति ने कहा, अरे कृपा शक्ति हमारे लाला को तुम कितना देर खड़ा रखोगी? अब तो हमारे बाल कृष्ण थक गए हैं, कृपा हटे तो लीला प्रारंभ हो। कृष्ण की लीला ही बंद हो गई। तब कृपा हटी और लीला प्रारंभ हो गई।

भगवान् बालकृष्ण मालिन से बोले कि तू हमें आंखें फाड़-फाड़कर क्यों देख रही है? झट मालिन की समाधि खत्म हो गई। वह बोली तुम्हें क्या चाहिए? लाला बोलो–फल। मालिन ने लाला के हाथ फल से भर दिए। भगवान् कृष्ण फल खाते हुए अपने भवन को चल दिए। इधर मालिन ने भी अपने सिर पर टोकरी रखकर चलने लगी तो पहले आवाज लगा रही थी कि कोई फल ले लो, क्या कह रही थी? कोई फल ले लो री। परन्तु अब जो मालिन फल बेचने के लिए चली है तो मालिन यह नहीं कह रही हैं। अब चीख रही है चिल्ला रही है कि कोई श्याम ले लो री, कोई श्याम ले लो री, कोई श्याम ले लो री। जब गोपियों ने सुना तो बोली श्याम फल भी होता है क्या? ये कौन चीख रही है कि श्याम ले लो। सभी गोपियाँ यही देखने बाहर आई कि मालिन की आंखें बंद हैं। और झर-झर आंसू टपक रही है और चीख रही है कि कोई श्याम ले लो, गोपियाँ समझ गई कि आज इस मालिन ने नन्द गोप कुमार का दर्शन कर लिया। जो एक बार उसकी सांवली सलोनी सूरत का दर्शन कर लेता है तो जीव उन्हीं का बन जाता है। संसार के मतलब का तो रहता ही नहीं।

"जानत तुम ही – तुम ही होय जाय।" बस केवल कृष्ण को जानना ही तो देर है। अभी हम उसे जाना नहीं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् गिरते पड़ते जब मालिन अपनी कुटिया पहुँची, सिर से टोकरी उतारी, टोकरी से कपड़ा हटाया तो क्या देखा कि मालिन की टोकरी सारी रत्न से भरी हुई हैं।

फलैरपूरयद्रत्नैः फलभाण्डमपूरि च।

(श्रीमद्भागवतम् 10.11.11)

जिसका ग्राहक नन्द गोप कुमार बन जाए उसे और दूसरा ग्राहक बनाना नहीं पड़ता। सारा सौदा हमारे ठाकुर ही खरीद लेंगे। इतना उस मालिन को मिला कि फल बेचना ही छोड़ दिया। वह उसी के ध्यान में बैठ गई। इस प्रकार प्रभु ने मालिन पर कृपा की।

एक दिन बलदाऊ और श्रीकृष्ण खेल रहे थे, वह दिन श्रीकृष्ण का जन्मदिन हैं। ब्रजरानी यशोदा ने रोहिणी से कहा अरे रोहिणी बहन आज बालकों का जन्म दिन हैं। स्नान कराके, नए वस्त्र पहनाकर जन्मदिन मनाना हैं।

"रामं च रोहिणी देवी क्रीडन्त बालकैर्भृशम्"।

(श्रीमद्भागवतम् 10.11.12)

रोहिणी देवी गई और बाहर बालकों को देखा, तो बोली कनुवा बलुवा जल्दी आओ, जन्मदिन हैं। स्नान करे नवीन वस्त्र पहनना है जल्दी आओ। परन्तु कृष्ण बलराम ने रोहिणी माता की बात सुनी नहीं। बच्चों के साथ खेल में मस्त रहते हुए रोहिणी मैया से कहा "हम ना आ रहे हैं" तुम्हीं नहा लो, नए वस्त्र पहन लो।

रोहिणी माता ने वापिस आकर ब्रजरानी यशोदा से कहा बहिन वे नहीं आ रहे। यशोदा बोली बहन तैने क्या कहा? रोहिणी बोली दोनों जल्दी आओ जन्मदिन हैं। पूजा करनी है नहाना है, नए वस्त्र पहनना है, उत्सव मनाना हैं। यशोदा ने कहा बहन ऐसा कहने से नहीं आएंगे। स्नान के नाम से बच्चे डरते हैं। अभी हम जाकर लिवा लावेंगे। यशोदा रानी गई जहाँ बच्चे खेल रहे थे।

"कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.11.15)

अरे कनुवा बलुवा इधर आओ, जल्दी आओ, स्तन पीयो मीठा दूध है, आ जल्दी आ।

ठाकुर जी दूध का नाम सुनकर सब कुछ छोड़कर मैया के पास आ गए। मैया ने दोनों को पकड़कर कहा चलो नहाओ, भगवान् ने कहा, दूध ने का कहकर स्नान करा दिया। मैया ने कहा बेटा पहले नहाओ फिर (अब) दूध पीयो और चला उस अशेष शेखर को ब्रजरानी यशोदा बलराम जी के साथ लेकर नन्दभवन में ले आई।

एक दिन ब्रजवासियों की पंचायत हुई, जिस पंचायत में श्रीकृष्ण चाचा उपनन्द की गोद में बैठे हैं। पंचायत में सभी ब्रजवासीयों ने फैसला करना चाहते हैं कि हम

गोकुल को छोड़कर कहीं और चले क्योंकि गोकुल में अनेक उपद्रव हो रहे हैं। अनेक असुर कंस के द्वारा भेजे जा रहे हैं। मगर यहाँ से जाएं कहाँ? यह प्रस्ताव रखा तो बालकृष्ण इसी इस समय 2.5 वर्ष के हैं और चाचा की गोद में बैठे हैं। भगवान् की प्रेरणा से चाचा उपनंद ने कहा कि–

वनं वृनदावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.11.28)

ब्रजवासियों यदि गोकुल छोड़कर चलना हो तो थोड़ी दूर पर एक वन है–वृन्दावन। वृन्दा माने तुलसी जहाँ पर तुलसी महारानी हैं। वृन्दा कहते हैं- श्री राधा को भी। जहाँ की अधिष्ठात्री देवी हैं श्री राधा। उसे वृन्द कहते हैं, समूह को, जहाँ पर सन्त, भक्त, रसिक, समूह वास करते हैं। वह है वृन्दावन, बोलो श्री वृन्दावन धाम की जय।

"बृजांगना वृन्दस्य वनम् जीवनम् इति वृन्दावनम्"

'जो ब्रज की गोपांगनाओं का जीवन है वही है श्रीवृन्दावन्।'

"वृन्दाया जीवनम् इति वृन्दावनम्"

जहाँ साक्षात वृन्दा देवी राधा रानी का यौवन दिखाई देता है वह है श्री वृन्दावन। वही हम चल रहे हैं। वहीं हमारे गौ का भी प्रबंध है, सभी प्रकार का आनंद है।

"सदा रहत वसन्त श्री वृन्दावनम्"

जहाँ साक्षात् वसन्त ऋतु सदा वृन्दावन का स्वागत करती है। ऐसे वृन्दावन में हम चल कर रहें। सभी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। सभी अपनी झोली में सामर्थ्यनुसार सामान रखकर चल दिए। गोकुल से नन्द गाँव की ओर जा रहे हैं। वृन्दावन की ओर जो जीव जाए राधा रानी का ध्यान करते हुए जाए। आज सभी ब्रजवासी श्री राधा रानी का स्मरण करते हुए वृन्दावन जा रहे हैं। आप सभी मेरे साथ बड़े प्रेम भाव से वृन्दावन चलिये।

गीतम्

वृन्दावन धाम अपार जपे जा राधे राधे
राधा सब वेदन को सार जपे जा राधे राधे
राधा रानी की जय।
महारानी की जय।

राधारानी के नाम का कीर्तन करते हुए शाम की बेला में यमुना पुलीन और गिरि गोवर्धन की तलहटी ये ब्रजवासी मंडल पहुँच गए। सभी ब्रजवासियों ने अपने अर्धचन्द्रकार रथ को खड़ा किया, रात्रि में सभी ब्रजवासी गोवर्धन की तलहटी में विश्राम कर रहे हैं।

गीतम्

लग रही आस करूँ ब्रजवास
गोवर्धन की तलहटी में

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन भगवान् ने अपनी योगमया जी को आज्ञा दी कि इस वन वृन्दावन को आप दिव्य वृन्दावन बना दें। उस वृन्दावन को दिव्य वृन्दावन बना दिया।

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.11.36)

उस वृन्दावन को देखकर जहाँ गोवर्धन यमुना जी का सुन्दर किनारा, हरी-हरी घास सब प्रकार ऐसे उत्तमातित्तम देखकर जो योगमाया जी ने बना दिया था दिव्य वृन्दावन। रामकृष्ण अति प्रसन्न हुए। प्रातःकाल होने पर सभी ब्रजवासी अपने-अपने घर पधारे। शुकदेव महाराज कहते हैं, राजन् जब से भगवान् नन्दनन्दन श्याम सुन्दर अकारण करण करुणामय श्रीकृष्ण अपने नन्द गाँव में पधारे तब से श्रीकृष्ण ने अपनी प्रथम लीला प्रारंभ की जिसे कहते हैं- वत्साचरण-बछड़ा चराने की लीला प्रभु ने प्रारंभ की। दैनिक भगवान् बछड़ा चराने वन में जाते थे। इधर भी कंस के द्वारा भेजे हुए असुर आ रहे हैं।

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.11.42)

बछड़े के रूप में बकासुर नाम का दैत्य आया। भगवान् ने उसका संहार किया। एक दिन यमुना जी के तट पर कृष्ण गए। भगवान् ने देखा एक बगुले के रूप में पूतना का भाई बकासुर ब्रज में आया। ये बगुला के रूप में हैं। भगवान् ने उस बकासुर का भी संहार किया।

स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृक्।
आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली।

(श्रीमद्भागवतम् 10.11.48)

जब भगवत प्राप्ति के लिए व्यक्ति अग्रसर होता है, तो इसकी भक्ति में विघ्न आकर डालते हैं। शतप्रतिशत ये छः शत्रु हैं। भक्ति में विघ्न कारक – काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह मत्सर। ये सभी भक्ति में असुर हैं, बाधक हैं, परन्तु श्रीकृष्ण की भक्ति में होने से इनका विनाश हो जाता हैं। जैसे एक–एक असुर को प्रभु ने मारा है।

अथ द्वादशोऽध्यायः

अघासुर का उद्धार

शुकदेवजी कहते हैं कि राजन्, एक दिन प्रातःकाल के समय नन्द नन्दन श्याम सुन्दर अपने नन्दभवन के बाहर प्रभु खड़े थे। सभी ग्वालवालों ने कहा कि देखो भैया हम दैनिक बछड़ा चराने वन में जाते हैं और मध्याह्न में हमें घर लौटना पड़ता हैं। आज हम घर नहीं लौटेंगे। आज हम वन में बैठकर ही भोजन करेंगे। सभी ग्वाल मंडली गद्गद् हो गई। प्रभु ने कहा, सभी अपनी मैया से अच्छी मिठाईयाँ बनवाओ और हम वन में बैठकर भोजन करेंगे। सारे ग्वाल मंडल के साथ प्रभु यमुना तट पर पधारे।

भगवान् ने बछड़ा चराने के लिए छोड़ दिया और ग्वालों के साथ श्रीकृष्ण खेल रहे हैं। यहाँ भी कंस द्वारा भेजा गया असुर अघासुर आया।

यमुना के तट पर अघासुर मुंह फाड़कर बैठा है, जब असुर को छोटे–छोटे ग्वाल बालों ने देखा तो वे क्या जाने कि ये अघासुर असुर हैं। आपस में उसी के बारे में ही वार्तालाप करते हुए उसके पास गए तो एक गुफा समझकर प्राण वायु के द्वारा सभी ग्वाल बालों को अपने मुँह के अंदर ले गए। हे कृष्ण, हे बलराम हमारी रक्षा करें। रक्षा करें। श्रीकृष्ण बलराम दौड़ पड़े और भगवान् भी अघासुर के मुख में प्रवेश कर गए। अघासुर ने मुख बंद कर लिया। भगवान् ने अपने शरीर को बढ़ाना शुरू कर दिया। भगवान् ने शरीर इतना फुलाया कि अघासुर का कंठ बंद हो गया। सांस नहीं ले पाया। छटपटाने लगा। शरीर से आत्मज्योति निकलकर भगवान् के शरीर में विलीन हो गई। बोलिए कृष्ण बलराम की जय।

देखिए संस्कृत में अघ कहते हैं। पाप को! ये पापासुर हैं। भगवान् की लीला में पाप का प्रवेश नहीं हैं। भगवान् के द्वार पर पाप प्रवेश नहीं करता हैं। जब सत्संग में व्यक्ति आता है पापों की शक्ति नहीं कि वे सत्संग में आ सके। वे द्वार पर ही खड़े रहते हैं। ऐसा शास्त्र सम्मत हैं। पाप का प्रवेश मंदिर में सत्संग में नहीं। प्रभु कहते हैं कि वृन्दावन मेरा धाम है तो यहाँ पाप कैसे रह सकता हैं। अघासुर को मारकर वृन्दावन में पाप का निष्कासन कर दिया।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन इस प्रकार भगवान् अघासुर को मारकर यमुनातट पर श्रीकृष्ण भोजन करने बैठे हैं। कमल कली के समान श्रीकृष्ण और ग्वाल बाल कमलदल के समान। अपना अपना भोजन निकालकर बंटवारा कर रहे हैं।

प्रभु ने देखा कि सभी ग्वाल बाल अपना-अपना भोजन कर रहे हैं, तो भगवान् कहते हैं कि भैया ऐसे वन भोजन का आनंद नहीं आएगा। तुम अपनी चीज मुझे खिलाओ मैं अपनी चीज तुम्हें खिलाऊँगा। इससे प्रीति बढ़ती है।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

ब्रह्माजी का मोह और उसका नाश

भगवान् लीला के माध्यम से प्रेम की शिक्षा दे रहे हैं। भगवान् प्रत्येक बाल सखा के पास जाकर उससे भोजन की वस्तु ग्रहण करते हैं और अपनी वस्तु उन्हें अपने हाथों से खिलाते हैं। प्रभु ने विचारा कि यदि भोजन के समय थोड़ा परिहास हो जाए तो भोजन का आनंद दोगुना हो जाता है।

जब भगवान् जिस जिसके पास गए जो प्रभु के हाथ में ज्यादा रखते प्रभु उसकी प्रशंसा करने लगते, और जो थोड़ा रखते तो कहते भैया तेरी माता को तो बनाना ही नहीं आता, मिठाई हमको अच्छी नहीं लागी।

इस प्रकार परिहास करते हुए अन्त में वे मनसुखा के पास जाकर बोले क्यों रे तू भी कुछ लायो है? क्यों रे कन्हैया मेरी मैया कुछ बनाना नहीं जानते हैं क्या। मैं भी लाया हूँ मनसुखा मिट्टी के पात्र में दिव्य वस्तु लेकर आए हैं। वह दिव्य वस्तु मनसुखा ने श्रीकृष्ण के हाथ में दे दी। प्रभु को वह खाने में बहुत अच्छी लगी। बोले, मनसुखा यह बड़ी अच्छी लगी, थोड़ी और दीजो। मनसुखा ने थोड़ी और कन्हैया के हाथ पर धरी। मनसुखा ने कहा कन्हैया सब तो कु दूंगा तो मोको का खागो। मनसुखा ये बताओ याकू नाम क्या है?

मनसुखा ने कहा याकू नाम वृन्दावनी है, वृन्दावनी, तो प्रभु ने कहा देख मनसुखा आज तू मेरा सारा भोजन लेकर ये वृन्दावनी खाने के लिए दे दे। देखो भैया ये वृन्दावनी क्या है? हमारे वृज में वृजवासियों के घर में भी बनती है, परन्तु आप उसे कहते हैं कढ़ी और हमारे ब्रज में इसे वृन्दावनी कहते हैं। तो बार-बार श्रीकृष्ण कढ़ी की पकौड़ी मनसुखा से मांग रहें। हैं, "कि कड़ि गोपाल दुसरो नहीं कोई", बिहारी जी का एक नाम कढ़ी गोपाल। बारहो महीने श्री

वृन्दावन में कढ़ी भोग लगता है। यह बिहारी जी का विशेष प्रसाद हैं। बोलों कढ़ी गोपाल की जय।

वृन्दावन प्रभु को अति प्रिय हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन जब भगवान् ग्वाल बाल सखाओं के बीच बैठकर वन, भोजन का आनंद ले रहे थे तब ब्रज में श्री ब्रह्मा जी पधारे। ब्रह्मा जी ने आकर लीला का दर्शन किया।

बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोःशृङ्गवेत्रे च कक्षे
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु।
तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.13.11)

ब्रह्मा ने कहा कि ये कैसा ब्रह्म है, ये ब्रजवासियों की जूठन खा रहे हैं, तो ब्रह्मा ने ब्रह्म की लीला में मोहित हो गए। आज ब्रह्माजी ब्रह्म की परीक्षा कर रहे हैं। जितने भी बछड़े हैं। वे ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी ने भेज दिया।

जब भगवान् वन, भोजन करके उठे तो प्रभु ने कहा कि आचमन करने के बाद अपने बछड़ों को देखूँ। दिखाई न देने पर वे सघन वन में जाकर देखने लगे कि हमारे बछड़े कहाँ है? जब भगवान् सघन वन के बीच में गए तो ब्रह्मा पिछे से सारे ग्वाल को भी अन्तर्धान कर दिये।

जब ग्वाल बाल भी ब्रह्मलोक चले गए। बछड़े भी चले गए तो ब्रह्मा ने कहा कि अब देखूंगा कि कैसे ब्रह्म की लीला होगी। भगवान् समझ गए कि सब करतूत इस ब्रह्मा की हैं। बुढ़ापे में इस ब्रह्मा की बुद्धि सठिया गई है। इसे भी मैं अपनी लीला का दर्शन करा दूँ तो जितने भी ग्वाल बाल एवं बछड़े थे उतने ही प्रभु ने रूप धारण कर लिए और बछड़ा चराते श्रीकृष्ण अपने नन्दभवन में पधारे।

यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्‌घ्र्यादिकं
यावद्यष्टिविषावेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम्।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.13.19)

जब कुछ समय निकल गया, देखिए, ब्रह्म का तो कुछ समय ही निकल गया था, परन्तु संसार का तो ब्रज में एक बरस ही निकल गया। भगवान् एक बरस तक ग्वाल बाल और बछड़ा बन कर रहे। ब्रह्मा ने कहा कि अब ब्रह्म का क्या हाल है,

चलकर देखूं। अब तो ब्रह्म की लीला बंद हो गई होगी तो ब्रह्मा जी अपने ब्रह्मलोक से श्रीवृन्दावन पधारे आकर देखा कि बछड़े और ग्वाल बाल सब हैं। ब्रह्मा ने कहा, मैं तो अपने ब्रह्म लोक में छोड़कर आया था यहाँ कहाँ से आ गये थे? फिर, ब्रह्माजी ब्रह्मलोक वापिस गए तो देखा वहाँ भी बछड़े और ग्वाल बाल सब बैठे हैं। वहाँ से ब्रह्माजी वृन्दावन आए। दो चार चक्कर लगातार लगाने के बाद वे थक गए और ब्रह्माकी लीला को समझ गए कि ये तो पूर्ण ब्रह्म है। एकांत में श्री यमुना जी के तट पर भगवान् खड़े थे आकर ब्रह्माजी ने प्रणाम किया एवं स्तुति करने लगे।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

ब्रह्माजी के द्वारा भगवान् की स्तुति

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावंतसपरिपिच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्त्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय।

(श्रीमद्भागवतम् 10.14.1)

ब्रह्माजी ने भगवान् को प्रणाम करके अश्रुपूर्ण नेत्रों से भगवान् के चरणकमल धोते हुए कहा कि हे नन्दनन्दन, हे श्यामसुन्दर, हे पीताम्बरधारी, हे नारायण स्वरूप, हे श्रीकृष्ण "नौमीडयतेडभ्रवपुषे तडिदम्वराय" वास्तव में संसार में प्रभु कोई जानने योग्य यदि है तो केवल आप हैं। जिसने आपको जान लिया तो फिर उसे किसी दूसरे को जानने की आवश्यकता क्या हैं। ब्रह्मा कहते हैं कि हे "पशु पांगजाय" आप कि प्राप्ति का यदि कोई मार्ग हैं-

तो केवल एक सरल मार्ग हैं। कौन-सा? बोले वह है आपकी परम भक्ति।

श्रेयःस्तुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.14.4)

ब्रह्मा कहते हैं, जो आपकी भक्ति की उपेक्षा कर ज्ञान के पीछे भागता है ऐसे व्यक्ति के पल्ले कुछ नहीं पड़ता। जैसे कोई व्यक्ति भूसे को कूटे और मन में सोचे कि मुझे अन्न की प्राप्ति हो जाए, भूसे को कूटने से कभी अन्न

नहीं मिलता उसी प्रकार भगवन यदि आपकी प्राप्ति का कोई सरल मार्ग है तो वह भक्ति मार्ग हैं। भक्ति की उपेक्षाकर जो केवल ज्ञान के पीछे भागते हैं वे भूसे को कूटने के समान हैं। परम् कल्याणकारी यदि कोई मार्ग हैं तो आपकी भक्ति है।

हे प्रभु जो एक बार हृदय से, बपु से, वाणी से, नमस्कार करते हैं। आपको दंडवत करते हैं। तो 'मुक्तिपदे स दायभाक्' (श्रीमद्भागवतम् 10.14.8) उसे आप मुक्ति दिला देते हैं, उसका कल्याण हो जाता है।

हे प्रभु माँ के गर्भ में बच्चा जब हिलता है, हाथ पैर हिलाता है तो माँ को कितना कष्ट होता होगा। परन्तु बच्चा जन्म लेने के बाद क्या माँ बच्चे के उस पाद प्रहार का बदला लेता हैं?

प्रभु सारे विश्व ब्रह्माड आपके पेट में है। यह ब्रह्म भी आपके पेट का बच्चा है, अगर ब्रह्मा ने कोई आपको कष्ट पहुँचाया तो बच्चा समझकर इसे माफ कर दीजिए–

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे।

(श्रीमद्भागवतम् 10.14.12)

ब्रह्मा जी की इतनी सुन्दर प्रार्थना से भी भगवान् ने कुछ नहीं कहा, तब ब्रह्माजी ने ब्रजवासियों का स्मरण करके उनकी प्रशंसा करने लगे क्योंकि ब्रह्माजी जानते हैं कि यदि पिता माता नाराज हो गए तो शायद बच्चों की प्रशंसा से पिता-माता प्रसन्न हों। ब्रह्मा जी ने कहा भगवन ये ब्रजवासी कितने बड़भागी हैं।

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.14.32)

ये ब्रजवासी आपको ईश्वर नहीं कहते प्रभु, आपको ब्रह्म नहीं कहते "यन्मित्रं परमानन्दं" आपको मित्र कहते हैं, सखा कहते हैं, कितना दिव्य भव है आपके प्रति। हे प्रभु मैं तो आपसे यही माँगता हूँ भगवन अबकी बार विश्व में कहीं मेरा जन्म हो तो इतनी कृपा करना कि इस ब्रज में मेरा जन्म हो। देखिये यही प्रार्थना उद्ध व जैसे ज्ञानी ने भी भगवान् से की परम ज्ञानी था उद्धव, ज्ञान का अथाह भंडार था उद्धव, कि–

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.46.1)

जिसने ज्ञान प्राप्त किया देवताओं के गुरु बृहस्पति से। ज्ञान का अथाह भंडार था उद्धव, परन्तु उद्धव जैसा ज्ञानी भी कहते है-

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.47.61)

उद्धव ने कहा, प्रभु अब कि बार संसार में जन्म हो तो प्रभु, हे वृन्दावन बिहारी, हे श्यामसुन्दर इतनी कृपा करना कि ब्रज में मुझे जन्म देना, चाहे कोई लता, पत्ता, औषधि, वृक्ष बना देना, जिससे मैं इन ब्रजवासियों के काम आ सकूं। ब्रह्मा जी कहते हैं कि मेरा जन्म ब्रज में हो ऐसा करना, भगवन नमस्ते।

भगवान् को ब्रह्मा ने अंतिम श्लोक में नमस्कार किया, चालीस श्लोक में स्तुति की। परन्तु भगवान् एक शब्द भी नहीं बोले। क्यों? क्योंकि भगवान् ने कहा, ब्रह्मा ने अपने जीवन में बहुत बड़ी गलती कर दी। प्रेम से बोलो श्रीराधे। जय श्रीकृष्ण, देखिए इन्द्र ने भगवान् की स्तुति की थी, गिरिराज लीला में। इन्द्र ने भी ब्रजवासियों को दुख दिया। इन्द्र ने भीषण वर्षा की थी, परन्तु इन्द्र जो भगवान् की स्तुति की थी, तो अंत में वे भगवान् से वार्तालाप करते हैं, परन्तु आज ब्रह्मा ने 40 श्लोक से भगवान् की स्तुति की परन्तु भगवान् ने एक शब्द नहीं कहा क्योंकि ब्रह्मा ने ब्रजवासियों को कृष्ण से दूर किया और इन्द्र ने कृष्ण को ब्रजवासियों से जोड़ दिया।

सात दिन कृष्ण और ब्रजवासी साथ रहे। प्रेम से कहो श्रीराधे।

कहने का अभिप्राय यह है कि जो परमात्मा से दूर करे वह मुझे पसंद ही नहीं ऐसा परमात्मा कहते हैं। ब्रह्मा ने चालीस श्लोक में स्तुति की लेकिन भगवान् ने एक शब्द नहीं कहा लेकिन जिस इन्द्र ने ब्रजवासियों पर कोप किया परन्तु कृष्ण से ब्रजवासियों को जोड़ दिया इसलिए वे कृष्ण बात करते हैं। भगवान् कहते हैं। मुझे वही जीव प्रिय है जो मुझे भक्तों से जोड़ देते हैं, जो मुझे भक्तों से दूर करता हे वह मुझे पसंद नहीं। भगवान् ने कोई उत्तर ब्रह्मा को नहीं दिया। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन् इस प्रकार ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण को ग्वालबाल एवं बछड़े दिए। भगवान् बछड़े चराते-चराते ग्वाल बाल को लेकर अपने नन्द भवन में पधारे।

अथ पंचदशोऽध्यायः

धेनुकासुर का उद्धार एवं ग्वालबालों को कालिया नाग के विष से बचाना

तत‌श्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदै-
र्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.15.1)

शुकदेव जी महाराज कहते है कि राजन भगवान् पौगण्ड अवस्था में प्रवेश किया, लगभग श्रीकृष्ण की साढ़े पाँच वर्ष की उम्र हुई। एक दिन नन्दनन्दन श्यामसुन्दर रात्रि में सो रहे थे। अपने पलंग पर, यशोदा ब्रजरानी अधोटा लेकर बालकृष्ण को पिलाने के लिए आई। केसर, मेवा मिश्रित वह अधौटा जब लाला को पिलाने लगी तो प्रभु ने कहा कि मैया मैं आज अधौटा नहीं पीयूंगो। देखिए अधौटा कहते हैं, रबड़ी बनने से पहले जिसमें आधा दूध जल जाए, दूध गाढ़ा हो जाए। लाल जी, ठाकुरजी को दैनिक यह भोग लगता है।

तो अधौटा प्रभु को दैनिक ही भोग लगता था। आज प्रभु ने कहा मुझे अधौटा नहीं पीना। मैया ने कहा क्यों लाला क्या बात है? तो प्रभु ने कहा मैया अब हम बड़े हो गए हैं। मेरे लाला बड़े हो गए हैं, तो क्या करें लाला, देख मैया अब हमको बछड़ा चरानो अच्छा न लगे। अब हम गऊ चराने जाएँगे। आज गौ चराने के लिए प्रभु अपनी माँ से जिद कर रहे हैं। ब्रजरानी यशोदा ने कहा कि, देख लाला ये बात अपने बाबा से करियो। इस समय रात्रि है तू सो जा। प्रातःकाल जब उठोगे जैसे बाबा कहेंगे वैसे हम प्रबंध करेंगे। रात्रि में भगवान् को अघौटा पिलाकर शयन कराया, जब प्रातःकाल हुआ नन्द नन्दन श्याम सुन्दर उठते ही प्रभु, नन्द बाबा के पास गए और बोले "बाबा बाबा" लाला आज सुबह-सुबह भैया कैसे आए। बाबा हम बड़े हो गए हैं। तो मैं क्या करूँ। बाबा अब हम बछड़े नहीं गौ चराने जाएँगे।

तो नन्द बाबा ने कहा देख लाला, ऐसे तुम गाय चराने नहीं जाओगे। पहले पुरोहित महाराज को बुलाया जाएगा। मुहुर्त निकलने के बाद ही तुम जाओगे। बाबा आज्ञा दो, मैं अभी पुरोहित को बुलाकर लाता हुँ। लाला तू बहुत चंचल हैं। अच्छा जा बेटा तू पुरोहित जी को बुलाकर ला। भगवान् दौड़कर पुरोहित के घर पहुँचकर प्रणाम करके कहा कि, देखो पुरोहित जी, आज आपको, मेरे गौ चराने का मुहुर्त निकालना हैं। यदि आज का मुहुर्त निकालोगे तब तो बाबा से लम्बी चौड़ी दक्षिणा दिलवाऊँगा और यदि मुहूर्त निकालने में देरी करी तो दक्षिणा के नाम पर ठन-ठन गोपाल। 'मदन गोपाल'। पुरोहित ने कहा कि हमें अपनी दक्षिणा से मतलब हैं। जब तू कहेगो तब को निकाल

दूँगा। बालकृष्ण पुरोहित को लेकर नन्द बाबा के पास आए। नन्दबाबा ने प्रणाम करके आसन दिया। कहा कि अपने पंचांग खोलकर देखो और कोई मुहुर्त निकल रहा है दो चार महीनों में तो बताए दो। अब पंचांग को खोलकर पुरोहित देख रहे हैं, कभी तो सिर पर हाथ रखै, कभी उंगलियां पर गिनने लगे। क्यों, पुरोहित जी महाराज मेरो लाला का कोई मुहुर्त नहीं निकल रहा।

नन्द बाबा से पुरोहित जी ने कहा, कि ब्रजराज आपके लाला का कोई भी 10 साल तक मुहुर्त नहीं निकल रहा यदि मुहुर्त निकाल रहा है– तो हमारी समझ में आज का ही निकाल रहा हैं। पुरोहित जी, कहीं हमारे लाला आपको सिखाय पढ़ाय करके तो नहीं लाये। ये बहुत चंचल हैं। ब्रजराज ये तुम्हारे लाला कहाँ सिखावैगो। अरे जो पंचांग में लिखो हमने आपको बतायो। अब आपकी जो इच्छा। दक्षिणा देकर पुरोहित को नन्द बाब ने विदा करा। लाला बोले, अब बाबा भेज दो न। आपने तो मुहुर्त भी निकाल दियो। देख लाला मुहुर्त का क्या है। फिर दक्षिणा देकर मुहुर्त निकलवा लूंगा। आज तुम गौ चारण के लिए नहीं जाओगे।

नन्दनन्दन श्रीकृष्ण एक कोने में बैठकर रोने लगे। रुदन करने लगे प्रभु, कि मैं गऊ चराने जाऊंगा, मैं गऊ चराने जाऊँगा। कितना प्रेम श्रीकृष्ण का गौ से हैं। इधर श्रीकृष्ण रो रहे हैं। गौ चारण के लिए उधर ग्वाले गऊ को लेने गौशाला में आए हैं। लेकिन आज गौशाला से बाहर नहीं जा रही हैं। बार–बार डंडा दिखाने पर भी रंभा रंभाकर गौशाला में घुस जाती हैं। सभी ग्वाले नन्दबाबा के पास आए और आकर कहा कि लाला को भेज दो, जब हम गौ को गौशाला से निकालते हैं तो आपके लाला द्व ार पर खड़े होकर बंशी बजाते हैं। तो गौ अपने आप निकाल आते हैं, गाय भी रंभाने लगती हैं। नन्द बाबा ने कहा, जाओ लाला गौओं को वन की ओर करके आओ।

तुरंत लाला उठकर गए नन्द बाबा की आज्ञा से। गौशाला के द्वार पर एक मिट्टी का चबूतरा था, श्रीकृष्ण उस पर खड़े हो गए। अपनी कमर में बंशी लेकर मंद मंद बजाने लगे। बंसी की धुन पर प्रिय गौओं के नाम लेने लगे। श्यामा, कपिला, सुरभि, धोरि, धूमर, गंधा, पद्मगंधा सबके नाम श्रीकृष्ण वंशी में ले रहे हैं। जब गौओं ने अपना नाम सुना तो वे बाहर की ओर दौड़कर श्रीकृष्ण को घेरकर खड़ी हो गई। कोई गाय भगवान् के चरण, कोई गाय हस्त चाट रही हैं। कोई गाय पीताम्बर अपने दांतों से पकड़कर खींच रही हैं। कोई गाय उनके दर्शन कर रही हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन् जब नन्दबाबा ने देखा इन गौओं को, कि मेरे लाला से इन्हें इतना प्रेम है तो नन्दबाबा ने कहा मेरे लाल आज से ही तू गौ चराने जा। तुरंत ही नंद भवन में

खबर कर दी, दोनों लाला को तैयार कराओ, आज ही मेरो लाला गऊ चराने जाएगा। ब्रजवासी इस माधुर्य मिश्रित भाव को देखते हैं। आप लोग भी गुनगुनाइए–

गीतम्

छोटी–छोटी गैया छोटे–छोटे ग्वाल
छोटे सो मेरो मदन गोपाल।
आगे–आगे गैया पीछे पीछे ग्वाल
बीच में मेरो मदन गोपाल।।

कार्तिक का महीना शुक्ल पक्ष और अष्टमी तिथि कितनी सुन्दर तिथि गोपाष्टमी। इसी गोपाष्टमी के दिन भगवान् बालकृष्ण प्रथम बार गौ चराने के लिए वन में पधारे। आज उन्हीं गोपाल के देश भारतवर्ष में गौवध होते जा रहे हैं। हमारे वेद कहते हैं कि "गावौ विश्वस्य माता" गौ तो विश्व की माँ है, जननी हैं। यदि गौ का दार्शन प्रात:काल हो जाए तो मानो हमें सभी देवताओं का दर्शन हो गया। 33 करोड़ देवता गऊ के अंग–अंग में निवास करते हैं। गऊ का एक–एक अंग पवित्र है, जिस गौ के दूध हम ग्रहण करते हैं। आयुर्वेद के अनुसार इसमें वह शक्ति है कि बालक को यदि गौ का दूध पिलाया जाए तो वह शक्तिमान, बुद्धिमान, दीर्घायु बनता हैं। प्रभु ने अपने जीवन में अपने नाम को सार्थक किया हैं। भागवत में गौ सेवा का दिव्य सुन्दर वर्णन किया गया है।

भगवान् अपने हाथों से गौ सेवा किया करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण गौ चराने जाते, स्वयं स्नान कराते, स्वयं चारा लाकर खिलते थे। कभी–कभी गौएं जब चलते–चलते थक जाती तो प्रभु चरण दबाते थे। अपने नाम को उन्होंने सार्थक किया। आज गोपाल के देश में गौ का सम्मान नहीं। ऐसे कृत्यों का सम्मान नहीं करना चाहिए। जगह–जगह जो गौ वध हो रहा है, तो हम संकल्प लें भागवत के माध्यम से कि ऐसे कृत्य बन्द होने चाहिए।

यदि शक्ति न हो तो ठाकुर से प्रार्थना करो। यदि ऐसा आयोजन हो कि जिसके वहाँ कोई तैयारी हो रही हो तो हमें सहयोग देना चाहिए। यानि इस गौ वध का विरोध नहीं तीव्र विरोध करें और गौ पालन का संकल्प हमें लेना चाहिए। गौ की सेवा से श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं। गौ सेवा महान सेवा है, बड़े शहर में न सही परन्तु छोटे–छोटे शहर में, गाँवों में हर भारतवासी को एक दो गौ पालनी ही चाहिए।

गौ रक्षा होगी, विश्व की माता की रक्षा होगी। मानव को, मानव समाज का परम्

कल्याण होगा। गौ सेवा भगवत सेवा हैं। गौ सेवा समाज की शांति की, रक्षा की, समृद्धि की सेवा हैं। प्रभु ने अपने जीवन में स्वयं करके बताया तो आज प्रथम बार प्रभु गौ सेवा के लिए वन में जा रहे हैं। सन्धि काल के समय, प्रभु घर लौटते थे इस प्रकार प्रभु दैनिक गौ चराने जाते थे। एक दिन श्याम सुन्दर गौ चारण के लिए जब वन में पधारे तो–

"एवं वृन्दावनं श्रीमत्कृष्णः प्रीतमनाः पशून्।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.15.9)

यहाँ भी असुर आ रहे हैं। इस असुर का नाम हैं– धेनुकासुर। गधे के रूप में असुर आए। भगवान् गौ चारण के लिए वन में पधारे तो देखा कि धेनुकासुर नाम का असुर आया हैं। सभी ग्वाल बालकृष्ण श्रीकृष्ण के पास आए और कहा कि कन्हैया हमें बड़ी भूख लगी हैं। देख सामने जो वन है। वह तेरे मामा कंस का हैं। यदि तू आज्ञा दे तो हम फल तोड़कर खा लें।

प्रभु ने कहा भैया मैं दूसरे के वन में आज्ञा नहीं दे सकता हूँ। भले ही मेरे मामा की संपत्ति हो, क्योंकि इस पर मेरा अधिकार नहीं हैं। श्री बलराम जी महाराज लेटे हुये थे।

कहा कि ग्वाल बाल सखाओं क्या बात है? बोले दाऊ भैया बड़ी भूख लगी हैं। आप आज्ञा दो तो हम फल तोड़कर खा लें। वहाँ बड़े-बड़े सुन्दर फल पक रहे थे सुगंध फैल रही थी। बालकों ने दाऊ भैया से प्रार्थना किया। बलराम जी ने कहा जाओ तुम्हें कौन रोकता है? सारे ग्वाल बाल वन की ओर दौड़ पड़े, जाकर तालवन में सारे ग्वालबाल फल तोड़कर खाने लगे। धेनकासुर ग्वालबाल को देखते ही मारने दौड़ पड़ा। ग्वाल बालक चीखने चिल्लाने लगे। दाऊ भैया हमारी रक्षा करो, रक्षा करो। तुरंत श्री बलराम जी गए और बलराम जी ने धेनकासुर का पीछे के पाँव पकड़कर सिर घुमाकर भूमि पर पटक दिया। शरीर से आत्मज्योति निकलकर भगवान् के अंग में विलीन हो गई।

भगवान् कृष्ण दूर से सब देख रहे हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन धेनकासुर का वध दाऊ भैया से करा कर वन से लौटे। भगवान् परिहास में बड़े भाई को भी नहीं छोड़ते थे। सभी ग्वालबालों से प्रभु कहने लगे भैया मालूम है आज दाऊभैया कौन को मारा हैं। ग्वालबालों ने कहा, कौन को मारो है गधा को मारो है प्रभु ने कहा, कि देखो जब मैंने अघासुर को मारो तो तुमने मेरो नाम वकमारो रख दी।

आज ग्वाल बालों के कान में श्रीकृष्ण ये कह रहे हैं, कि आज दाऊ भैया ने गधा मारो है, तो तुम आज से इसे "गधा मारो, गधा मारो" कहा करो। दाऊ जी महाराज

जब सुने तो बोले, अच्छा कन्हैया अच्छे-अच्छे असुर आयो तो खुद मारो, गधा आया तो हमसे मरवायो। अब कहलवा रहे हो कि गधा मारो, गधा मारो कहा करो। कन्हैया तू बड़ा चंचल हैं। इस प्रकार बलराम जी से श्रीकृष्ण परिहास करते थे।

अथ षोडशोऽध्यायः

कालिया पर कृपा

श्रीशुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् एक दिन भगवान् नन्दनन्दन श्यामसुन्दर जब यमुना के तट पर कालिया दाह पर पधारे, विचरण करने के लिए। गौ ने जब जल पीया तो सब मूर्च्छित हो गई। ग्वाल बालक ने जल पीया तो वे भी मूर्छित हो गए कि

"विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.16.1)

भगवान् ने श्री यमुना जी के जल को दूषित देखा "विलोक्य दूषितां कृष्णां" देखिए आज से (5.5) साड़े पाँच हजार साल पहले जितना श्रीकृष्ण महत्वपूर्ण थे उतना ही आज भी हमारे जीवन में हैं। आज भी श्रीकृष्ण की लीलाएं हमें प्रेरणा दे रही है, यानि यमुना जल दूषित था, यानि कालि ही प्रदूषण हैं। उस समय भगवान् के सामने भी प्रदूषण की समस्या हो गई थी, तो भगवान् ने संकल्प किया मैं इस क्षेत्र को प्रदूषण मुक्त करूँगा यानि कालि का निष्कासन करूँगा। भगवान् ने सोचा मैं कृष्ण यानि यमुना मेरी। ब्रज में काली कहाँ से आ गए। "कृष्णः कृष्णाहीना विभुः" "प्रेम गली अति सांकरी या मैं दो न समाये।" तो प्रभु ने संकल्प लिया यमुना से कालीय नाग को निकालकर दूर फेंकना हैं। प्रभु ने सारे ग्वाल और गायों को जीवित कराया अपनी अमृतमय दृष्टि से। अपनी मंडली के साथ नन्दभवन आ गए।

भगवान् ने संकल्प के अनुसार एक दिन श्री बलराम जी का जन्मदिन देखकर उन्हें छोड़कर गौ चारण के लिए गए। बलराम जी का जन्मदिन था इसलिए वे गौ चारण के लिए नहीं गए। अकेले श्रीकृष्ण यमुनाजी के तट पर गए। सुदामा के साथ गेंद से खेलने लगे। खेल-खेल में गेंद यमुना जी के जल में फेंक दी। श्रीदामा जी अपनी गेंद श्रीकृष्ण से माँगने लगे, कन्हैया वो मेरी गेंद हैं। श्रीकृष्ण बोले तेरी गेंद तो यमुना जी में चली गई। देखिए इस लीला का चन्द्र सखी ने सुन्दर वर्णन किया हैं। आप सब गाइए-

गीतम्

कारीदंह पे खेलन आओ री, मेरो बारो सौ कन्हैया।
मेरो बारो सो कन्हैया, अरि मेरो छोटो सो कन्हैया।।

श्रीदामा ने कहा भैया हमारी गेंद दो, श्रीकृष्ण ने कहा गेंद जमुना से कैसे लाऊँ? आगो घर चल मैया से दिलवा दूंगो। वह बोला मुझे तो अपना ही गेंद चाहिए। भाईया श्रीदामा इसमें बहुत बड़ा कालिया नाग हैं। मैं कैसे जाऊँ? परन्तु श्रीदामा रोने लगे। गेंद को निमित्त बनाकर भगवान् कालिय नाग को नाथना चाहते हैं। कदंब के वृक्ष पर चढ़ा देखकर कृष्ण को सारे ग्वाल बाल चिल्लाने लगे, तू श्रीदामा की बात परमत आ कालियानाग के पास न जा। परन्तु भगवान् तुरंत उस कदंब के वृक्ष से यमुना जी में कूद पड़े। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय। भगवान् के कूदते ही कालिया नाग हिल गया, उसके निवास स्थान पर ही कृष्ण पहुँचो तो देखा कि कालिया सो रहा है नागिन जाग रही है। दर्शन करते ही नागिन बोली "कौन दिशा में आयो रे बालक क्या तोहारो नाम है?" कौन सखि के पुत्र जू कहिए कहाँ तोहार गाँव है?

प्रभु नागिन से कहते हैं कि "नागिन पूरब दिशा से आयो रे नागिन कृष्ण हमारो नाम है। माता जसोदा पिता नन्द जू गोकुल हमारो गाँव है।"

नागिन कहती है कि "तुम जमुना में क्यों कूदे, क्या रास्ता भूल गए, क्या किसी से बैर हो गया या पत्नी से झगड़ा हुआ कि जमुना में कूद पड़े।"

कि कह बालक तुम डगर भूलो, गगन भूलो।
कह घर, नार सैयां क्या तेरे मन में।
क्रोध जो उपजो काह बैरि भरमाइया।।
प्रभु कहते हैं। नागिन से–
"ना, ना बैर मैं डगर भूले, गगन भूलो
ना घर, नार रे सैयां
ना मेरे मन में क्रोध उपजो ना बैरिभरमाइया"

"नागिन बोली तो बालक यमुना में क्यों कूदे? देखो हमारे पति कालिय अभी सो रहे हैं, उनके उठने से पूर्व यहाँ से चले जाओ जो चाहिए हमसे ले जाओ।"

"ले बालक गलहार माला, सवा लाख की बोरियाँ,
इतना ले घर जाओ रे बालक नाग से कहूँ मैं चोरियाँ"

भगवान् कहते हैं। नागिन–

"ना चाहिए गलहार माला, सवा लाख की बोरियां"

मालूम है मैं यहाँ क्यों आया हूँ, नागिन ने कहा, क्यों।
"माता यशोदा दही बिलौवै, तेरे नाग की करूँ मैं डोरियाँ"

जब मेरी मैया दही मंथन करेगी तो उनको डोरी की आवश्यकता पड़ेगी ना, तेरे नाग की मैं डोरी बनांऊगा जब मेरी श्री राधा रानी झूला झूलेगी तो रस्सी मैं तेरे नाग की बनवाऊँगा। नागिन कहने लगी कि ये बालक हमारे पति का अपमान कर रहा हैं। हम इन्हें कितना स्नेह दे रही हैं। तो नागिन का क्रोध आ गया, ये अपने पति को जगाने लगी।

"पैर चूमे भुजा मरोडे नागिन नाग जगाइयाँ,
उठो-उठो बलवन्त जो थाम, बालक नाथन आइयाँ"।।

नागिनों ने अपने पति कालीय से प्रार्थना की, तो वह उठ बैठा और श्रीकृष्ण को कसकर अपने लपेटे में ले लिया। भगवान् कालीय के लपेटों में जब फंसे तो अपने अंगों को इतना फुलाया कि कालीय की नस-नस चटकने लगे, जो कालीय ने बंधन को ढीला किया तो झट कृष्ण बाहर निकल आए और छलांग लगाकर कालीय के फन पर चढ़ गए। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय। श्रीकृष्ण कालीय के फन पर झट से चढ़ गये। देवता वाद्ययंत्र बजाने लगे। भगवान् कालीय के फन पर नृत्य करने लगे। नागिनों ने श्रीकृष्ण के नृत्य को देखा तो सोचने लगे कि यह कोई अलौकिक शक्ति हैं। जिस-जिस फन से कालीय फुंकार रहे हैं। श्रीकृष्ण उन फनों पर चरण स्पर्श कर रहे हैं। काली की आँख, नाक से खून टपक रहा था। कालीय कहते हैं। त्राहिमाम्! त्राहिमाम! त्राहिमाम! नागिन भी भगवान् की स्तुति करने लगे।

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्विषेऽस्मि-स्तवावतारः खलनिग्रहाय।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टि-र्धत्से दमं फलमेवानुशंसन।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.16.33)

नागिन कहती हैं, प्रभु आपका अवतार दुष्टों को दंड देने के लिए हुआ हैं। अधर्म को रोकने के लिए धर्म की स्थापना के लिए आप अवतार लेते हैं। परन्तु हमारे पति ने आपके एक-एक अंग को डंसा काटा दाँत से, परन्तु हे गोविन्द बिना पति के पत्नी का जीना मुश्किल होता हैं। दुखमय होता हैं। हम झोली फैलाकर अपने पति की ओर से क्षमा माँगती हैं, आप हमारे पतिका जीवन दान दीजिए। आपने हमारे पति के सिर पर नृत्य करके क्षत-विक्षत कर दिया, फिर भी अनुग्रह है, देखने में दंड है पर आपके चरणों की कृपा है,

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.16.37)

हे प्रभु आपसे ऋद्धि-सिद्धि की कामना नहीं करती हूँ जो आप योगियों को देते हैं। न हम आपसे चक्रवर्ती राजा बनना चाहते हैं, प्रभु हम तो आपके चरणों की धूल ही प्राप्त करना चाहते हैं।

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने।
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.16.39)

भगवान् के चरणों में अनेक अलौकिक नाम लेकर प्रभु की प्रार्थना नागिनों ने की। उनकी प्रार्थना है कि 'पतिः प्राणः प्रदीयताम्' पति के प्राण की भिक्षा की है। 21 श्लोकों में नागिनों ने अपने पति के लिए सुन्दर प्रार्थना की भगवान् के श्री चरणों में। परन्तु इधर कालीय लम्बी-लम्बी सांस ले रहे हैं। बड़ी लम्बी सांस कालीय की बह रही हैं। कालीय ने कहा कि भगवन्

वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः।
स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यद्सद्ग्रहः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.16.56)

हे जगदीश्वर प्रभु हमारा तो इस सर्पयोनि में जन्म हुआ है, एक सर्प का तो तमोगुणी स्वभाव होता हैं, और ये स्वभाव भी तो आपने ही दिया हैं। इस तमोगुणी शरीर में प्रभु हमने आपको नहीं पहचाना। आपको हमने कितना डसा। परन्तु आज आपने मेरा निग्रह कर दिया। मेरे ऊपर कृपा कर दी। प्रभु हमारे मन में एक प्रश्न है, प्रभु बोले कहिए क्या प्रश्न है? प्रभु इस जगत को किसने बनाया? भगवान् ने कहा हमने।

तो फिर ये सर्प कुल को किसने बनाया? भगवान् ने कहा हमने। सर्प के मुख में विष किसने दिया? भगवान् ने कहा हमने। कालीय ने कहा तो फिर निर्णय हो गया। जो आपने हमें दिया वही हमने आपको दिया। विष की जगह अमृत देते तो लोग हमारा मुँह चूमता, जहर के कारण सब हमसे डरकर दूर भागने लगे। तो हे प्रभु तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा। हे नन्दनन्दन, श्याम सुन्दर मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

भगवान् ने कहा कि कालीय तू वृन्दावन को छोड़कर चला जा। कालीय ने कहा मैं कहाँ जाऊँ? भगवान् ने कहा तू रमणीक द्वीप चला जा।

द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.16.63)

कालीय ने कहा कि यदि मैं वृन्दावन छोड़कर गया तो प्रभु, गरुड मेरा भक्षण कर लेगा।

श्री वृन्दावन में गरुड का प्रवेश नहीं था। ये कालीय जानते थे। एक बार श्री वृन्दावन में भगवान् के पार्षद गरुड़ यमुना जी से मछली निकालकर भक्षण कर रहा था। वहाँ एक सन्त खड़े थे। जिनका नाम था सोभरि ऋषि। देखकर उन्होंने कहा अरे गुरुड़ तू भगवान् का पार्षद होकर इस वृन्दावन में आकर हिंसा करता हैं। अबकी बार तू वृन्दावन में आया है तो वृन्दावन स्पर्श किया तो तेरे मस्तक के हजारों टुकड़े हो जाएँगे। सन्त के श्राप के कारण गरुड़ वृन्दावन नहीं आ सकते। यह बात कालीय को मालूम थी। प्रतिदिन एक सर्प दैनिक भोजन के रूप में गरुड को जाता था। एक बार जब कालीय का नम्बर आया तो वे वहाँ गए। गरुड जी महाराज वहाँ थे नहीं जितनी भी पूजा सामग्री वहाँ थी सब कालीय भक्षण कर गए। अब उन्हें लगा भय तो कालीय वहाँ से भागे और जानते थे कि वृन्दावन में गरुड़ नहीं आ सकते। उनके भय से वे जमुना जी में आकर रहने लगे। आज भगवान् कहने लगे तेरे मस्तक पर मेरे चरण चिन्ह बन चुका हैं। अब गरुड़ तेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।

भगवान् को प्रणाम करके कालीय सीधे रमणक द्वीप चले गए। ये कालीय कौन है? कालीय काम का प्रतीक है, भगवान् श्री वृन्दावन से काम को निष्कासित कर रहे हैं। रास लीला की तैयारी कर रहे हैं। थोड़ा ध्यान दें तो प्रभु की लीला समझ में आने लगेगी।

जब ब्रजवासियों ने सुना कि कृष्ण श्री यमुना जी में कूद पड़े हैं। सारे ब्रजवासी यमुना जी की ओर दौड़ पड़े हैं। ब्रजरानी यशोदा तो जमुना में ही कूदने लगी कि मेरा कन्हैया यमुना में तो डूब गयो। बलराम जी प्रभु का प्रभाव जानते थे। उन्होंने माँ को संभाला, पकड़ लिया यमुना में कूदने नहीं दिया। धीरज प्रदान कर रहे हैं। डाँढस बधा रहे हैं। कह रहे हैं कि मैया जैसे और दुष्टों को मारा वैसे ही काली को मारकर लौट आएँगे।

थोड़ी दूर में ब्रजवासियों ने देखा कि एक हाथ में श्रीकृष्ण के वंशी है और दूसरे हाथ में सुदामा की गेंद हैं। जब प्रभु जमुना से बाहर आए तो नन्दरानी ने लाला को पकड़ लिया माँ के स्नेह से लाला मर गए। तब रात्रि हो चुकी थी। सारे ब्रजवासी कालिया देह पर निवास करने लगे और सो गए और रात्री में मूंज के वन में आग लग गई।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

ब्रजवासियों को दावानल से बचाना

कृष्ण कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम।
एष घोरतमो वह्निस्तावन्ग्रसते हि नः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.17.23)

सारे ब्रजवासी की आँख खुल गई और पुकारने लगे हे कृष्ण हे दाऊ, है अति विक्रम इस अग्नि से रक्षा करो। भगवान् ने उसी समय देखा कि हमारे भक्त हमारे शरणागत हुए। सारे ब्रजवासी हमारे शरणागत हुए। सभी आंखें बंद करो, भगवान् ने कहा श्रीकृष्ण सारी अग्नि का पान कर गए।

देखिए तीन बार भगवान् ने ब्रज में अग्नि का पान किया हैं। एक प्रसंग है रामावतार में। जब जानकी की राम ने अग्नि परीक्षा ली थी। जानकी जी को राम ने सुरक्षित अग्नि से बाहर निकाला था। एक बाल भी जानकी जी का नहीं जला था। रामावतार में भगवान् श्रीराम ने संकल्प लिया कि मैं अग्नि देव को भी सम्मान दूंगा, तो आज तीन बार भगवान् श्रीकृष्णवतार में कृष्ण अग्नि का अपने मुख में सम्मान दे रहे हैं। इस प्रकार प्रात:काल जब हुई तो सभी ब्रजवासी अपने-अपने घर पधारें।

अथ अष्टादशोऽध्यायः

प्रलम्बासुर-उद्धार

अथैकोनविंशोऽध्यायः

गौ और गोपों को दावानल से बचाना

अथ विंशोऽध्यायः

वर्षा और शरद् ऋतु का वर्णन

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम जी अपनी ग्वाल बाल, सखा के साथ गोचरण में गए। उसी समय एक असुर आए। ये गोप का रूप धारण करके आए जिनका नाम था प्रलम्बासुर हैं। ग्वाल बाल नृत्य गीत में व्यस्त हैं। भगवान् अंतर्यामी है जान गए कि यह गोप असुर ही हैं। उसी समय भगवान् ने प्रलम्बासुर को द्वंद्व युद्ध में परास्त करके मार दिया।

उनकी मणि लेकर रोहिणी सुत बलराम जी को दे दिया। इस प्रकार से ब्रज में भगवान् लीला करते रहें। ग्रीष्म ऋतु आ गई, इसके बाद वर्षा और फिर शरद। ये शरद ऋतु का वर्णन श्रीमद् भागवत में किया हैं। जिसमें गोपियों ने वेणु गीत का गान किया है, गोपियाँ वेणु गीत के द्वारा श्रीकृष्ण का ध्यान कर रही हैं।

अथौकविंशोऽध्याय:

वेणुगीत

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधयापूरयन्गोपवृन्दैर्
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.21.5)

गोपियाँ इस श्लोक का गान करती हैं। जिसमें भगवान् के श्रीरूप का वर्णन है, भगवान् का नाम है नटवर, वपु माने शरीर, नटवर रूपी शरीर में सुन्दर मोर पुंछ धारी, कान में सुन्दर कर्णिका फूल की शोभा हैं। इनके गले में सुन्दर वैजयन्ती माला है, पीताम्बरधारी हैं। हाथ में बंसी लिए हुए और उस वंसी को अधर में फूंकते हुए और बंसी पर उंगलियां चलाते हुए, गोपियों को टेढी नजर में देखते हुए, नंगे पैर में वृन्दावन में अपने दाऊ भाऊ भाई और ग्वाल बालों के साथ स्मितभाव, कटाक्ष गोपियों के प्रति करते हुए प्रवेश कर रहे हैं। गोपियाँ आज इस श्लोक के माध्यम से भगवान् के स्वरूप का चिन्तन कर रही हैं। वेणुगीत का गान करती हैं।

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदाम
सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.21.7)

जब भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार गोपियों को तिरछी नजर से देखकर वंशी बजाते हुए गौ चराने के लिए जाते हैं। उस तिरछी नजर वाले कृष्ण का चिन्तन करती हुई गोपियाँ घर का काम काज करती रहती हैं। तेरह श्लोक हैं वेणुगीत में, आचार्य ने बड़े सुन्दर रहस्य बताया वेणुगीत में। वेणुगीत के द्वारा गोपियाँ भगवान् का जो आह्वान्

करती हैं। वेणुगीत 13 श्लोक में क्यों? श्रीमद् वल्लभाचार्य ने अपनी सुबोधिनी टीका में लिखा है कि 13 प्रकार की गोपियाँ हैं। ये 13 ही गोपियाँ श्रीकृष्ण में लगी हुई हैं। 5 कर्मेन्द्रियां, 5 ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित्त। परन्तु 14 तत्व हैं। अहंकार। वहाँ पर कहीं अहंकार नहीं। भगवान् को अभिमानी व्यक्ति कभी पसंद नहीं होता। तो वेणु गीत में जो 13 श्लोक हैं। इसका तात्पर्य यह बताया गया है कि 5 कर्मेन्द्रियाँ, 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, मन बुद्धि, चित्त 13 ही गोपियाँ श्रीकृष्ण में लगी हुई हैं।

भगवान् ने वेणुगीत के द्वारा गोपियों के अंदर काम को जाग्रत किया और महारास के द्वारा इस काम को जीते। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन, एकदिन नन्दनन्दन श्रीकृष्ण प्रातः काल अमृत वेला में यमुनाजी के तट पर अपने साथ ग्वाल बालों को लेकर पहुँचे। जहाँ छोटी छोटी व्रज गोपियाँ भी थी। जिनकी उम्र सात आठ वर्ष के थी। ये गोपियाँ मार्गशीर्ष का स्नान करती थी।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

चीर हरण

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.22.1)

आज गोपियाँ मार्गशीर्ष का स्नान कर रही हैं। जमुना के बाहर निकलकर कात्यायिनी देवी की मूर्ति बनाती और प्रार्थना करती है कि–

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः।
इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.22.4)

हे कात्यायनि महामायी नन्दगोपसुतं देवि "पतिंमे कुरु ते नमः।" जो नन्द कुमार है उसे हमारा पति बना दों, ऐसी प्रार्थना किया करती थी। ये रोजाना की साधना है, गोपियों की, एक दिन भगवान् पहुँच गए श्री यमुना जी के तट पर और भगवान् ने गोपियों के वस्त्र देखकर उनका हरण कर लिया। जिसे कहते हैं चीर हरण। जब गोपियों ने अपने वस्त्र तट पर नहीं देखे तो वे यमुना के जल में ही हैं। टिटोर रही हैं, "आकण्ठः मग्ना शितोदे" जलमग्न गोपियाँ यमुना के अन्दर कण्ठ पर्यन्त जल में खड़ी हैं। गोपियाँ श्रीकृष्ण से प्रार्थना कर रही हैं कि–

श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम्।
देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवाम हे।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.22.15)

गोपियाँ कहती हैं, हे श्याम सुन्दर, हम आपकी दासी है, जैसा आप कहेंगे हम वैसा ही करेंगे, आप हमें हमारे वस्त्र प्रदान करें। भगवान् ने कहा कि गोपियों, यदि तुम हमारी आज्ञा का पालन करती हो तो यमुना से बाहर आकर वस्त्र ग्रहण करो। जब गोपियाँ लाज को बचाती हुई बाहर आई। प्रेम से कहो श्रीराधे। इस कथा में व्यक्ति सुनकर शंका करते हैं कि प्रभु ने चीर हरण लीला क्यों की? देखिए भगवान् अपनी लीला के माध्यम से इस रहस्य का प्रकट करते हैं। कि आज से 5,500 साल पहले नग्नता, अश्लीलता यानि, सार्वजनिक स्थान पर गोपियाँ स्नान करती थीं और प्रभु ने प्रारंभिक वेला में ही रोक लगा दी। अपनी लीला के माध्यम से। प्रभु अपनी लीला के माध्यम से बता रहे हैं, परन्तु वास्तव में इस लीला का रहस्य आचार्य ने बताया हैं- कि ये वस्त्र जन्म-जन्माँतर के वासना के वस्त्र हैं। वल्लभाचार्य ने ये बताया है कि ये जीव और परमात्मा के बीच में जो एक वासना का वस्त्र है, अबतक वासनारूपी वस्त्र नहीं हटता, तब तक इस जीव को परमानंद नहीं मिलता। जैसे माता यदि अपने आंचल को ढककर रखे तो कैसे बालक को दूध पान करा सकती हैं। इस प्रकार जीव और ब्रह्म के बीच जबतक वासना का वस्त्र नहीं हटता तब तक उसे आनंद की प्राप्ति नहीं होती। प्रभु ने इस वासना के वस्त्र को हटा दिया।

शुद्रवर्ण की गोपी प्रभु से कहती है 'श्यामसुंदर तेदास्यः' हे श्यामसुन्दर हम आपकी दासी हैं।

वैश्यवर्ण की गोपी कहती हैं। 'करवाम् तवोदितम' हमारे आप वस्त्र दे दीजिए।

क्षत्रिय वर्ण की गोपी कहती है "देहि वासांसिधर्मज्ञ" हे धर्मवीर आप हमारे वस्त्र दे दीजिए।

ब्राह्मण वर्ण की गोपी कहती हैं। 'नो चेद राज्ञे ब्रुवामहे' वस्त्र दे दे नहीं तो राजा से शिकायत कर देंगे।

परन्तु आज भगवान् जन्मजन्माँतर के वस्त्र को हटा दिया। भगवान् गोपियों से कहते हैं कि-

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेशते।

(श्रीमद्भागवतम् 10.22.26)

गोपियों तुम मेरे पास जो संसार की कामना वासना लेकर आई हो ना, मेरे अंदर सांसारिक भोग जाग्रत नहीं होता। यदि मेरी शरण में सांसारिक संसर्ग लेकर कोई आता है तो मैं उसका उस काम बीज को ही विनष्ट कर देता हूँ।

गोपियों आगामी शरण की रात्रि तुम मेरे रसमयस्वरूप का दर्शन करोगे। जो उपनिषदों में आया हैं। "रसो वै स:" परमात्मा का रसावतार कौन-सा है? वही कृष्ण ाावतार हैं। तो महारासलीला के माध्यम से भगवान् ने अपना रसावतार दिखाया कि मैं साक्षात् रसावतार हूँ। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन्, इस प्रकार अनेक लीलीयें कर नन्दभवन की ओर निकल गए, गोपियों के ऊपर कृपा करके।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

यज्ञ पत्नियों पर कृपा

इस प्रकार से भगवान् प्रतिदिन ग्वाल बालों के साथ गौ-चारण, वन भ्रमण नित्य नई लीलाएं, वन भोजन आदि करते-करते रोज नई लीला का संपादन करते थे। एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण गौ-चारण करते-करते सखाओं, ग्वाल बालकों से कहा मित्रों अचानक बड़ी भूख लगी है और तुम जाओ यज्ञ कर रहे ब्राह्मणों से भोजन सामग्री माँगकर लाओ। ये ग्वालबालक ब्राह्मण के पास गए, कहा कृष्ण बलराम को भूख लगी हैं। सुनकर भी उनकी बात पर ध्यान दिया नहीं, ना ही उन्हें भोजन प्रसाद दिया। बालकों ने आकर बताया ब्राह्मण यज्ञ में व्यस्त है हमारी सुनते नहीं। कृष्ण ने कहा इनकी पत्नी के पास जाकर कहो कि कृष्ण बलराम को भूख लगी हैं। कुछ खाने को दो। ये बालक पत्नियों के पास गए और कहा कृष्ण को भूख लगी है आप कुछ भोजन प्रसाद दे सकते हैं। उसी समय ब्राह्मण पत्नियों ने श्यामसुन्दर के रूप का चिन्तन करते-करते भोजन सामग्री लेकर बालकों के साथ कृष्ण बलराम के पास पहुँची और उन्हें भोजन कराकर अवशिष्ट बचाकर प्रसाद लेकर घर आई। भगवान् श्रीकृष्ण ने उनका स्वागत किया, प्रसाद लेकर कृतार्थ किया।

बाद में यज्ञ समाप्त होने के बाद ब्राह्मणों को होश आया कि हमने जिस यज्ञ का आरंभ किया और यज्ञ के मूल में नारायण, उस नारायण की सेवा न करके यज्ञ में लगे रहे। बड़भागी हमारी पत्नियां जिन्होंने कृष्ण बलराम को सप्रेम भोजन कराया। आज ब्राह्मणों ने श्रीकृष्ण का वह बचा प्रसाद ग्रहण कर कृतार्थ हुआ और अपनी पत्नियों की प्रशंसा की।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

इन्द्र यज्ञ-निवारण

एक दिन प्रभु गौ चारण के बाद, गौ गऊशाला में छोड़ दी, आचमन करके हाथ-मुंह धोकर के भगवान् श्रीकृष्ण नन्दनन्दन और बलराम जी दोनों घर में गए और देखा कि मैया सुन्दर-सुन्दर मिठाइयाँ बना रही हैं, प्रभु ने पूछा मैया आज कौन-सा त्यौहार ब्रजवासी मनाने जा रहे हैं, बड़ी तैयारियां हो रही हैं। 56 भोग 36 व्यंजन बन रहे हैं। कौन-सा उत्सव आ रहा हैं। बालपन में भगवान् ने कुछ मीठा खाने की इच्छा प्रकट की। मैया ने कहा कन्हैया दूर-दूर हाथ न लगाना। भगवान् मुँह लटकाकर बाबा के पास गए और बोले मैया ने आज हाथ न लगाने दिया कौन-सा उत्सव हैं। नन्द बाबा ने कहा हम इन्द्र की पूजा की तैयारी कर रहे हैं। भगवान् ने कहा हम इन्द्र की पूजा क्यों करते हैं? नन्दबाबा ने कहा कि-

पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः।
तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.24.8)

देखो लाल ये इन्द्र हमारे खेतों के लिए वर्षा करते हैं, जिससे हमारी अन्न की समस्या हल होती हैं। बरसों से हम इन्द्र की पूजा करते हैं। जिस अन्न हमारी रक्षा करती है, उस अन्न से हमारी छप्पन प्रकार की मिठाइयां बनाकर भोग लगाते हैं। इन्द्र का आवाहन करते हैं। पूजा करते हैं। इन्द्र हमें सुख देते हैं। कृष्ण ने हँसकर मींमासक की तरह सुन्दर शिक्षा दे रहे हैं। भगवान् कहते हैं देखो बाबा ये सुख-दुख का दाता इन्द्र नहीं हैं

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते।

(श्रीमद्भागवतम् 10.22.13)

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि सुख-दुख इन्द्र नहीं देता, ये तो जीव जैसा कर्म करता है उसी से सुख-दुख प्राप्त होता हैं। बाबा इसमें इन्द्र कुछ नहीं करता उसकी पूजा बंद कर दीजिए।

"कर्मैव गुरुरीश्वरः" (श्रीमद्भागवतम् 10.24.17) कर्म ही गुरु और कर्म ही ईश्वर, एक मीमाँसक की तरह कृष्ण अपने पिता को शिक्षा दे रहे हैं। बाबा देखो हमारा कर्म क्या है? हम है वैश्य। हमारा कर्म है गौपालन, कृषि, वाणिज्य, उधार पर धन लेना,

देना ये सब हमारा कर्म हैं। ये सब कर्म में हमें प्रेरित होना चाहिए।

बाबा आप इन्द्र की पूजा बंद कर दो। नन्द बाबा बोले–लाला मैं तो तेरी बात मान लूंगा, परन्तु सारे ब्रजवासी नहीं मानेंगे। सभी ब्रजवासी तैयारी कर रहे हैं। बाबा, आप सभी का पंचायत बुलाओ मैं सभी को संबोधित करूँगा। सभी इकट्ठा हुए। श्रीकृष्ण 7 वर्ष के हैं और 7 कोस के गिरिराज है और 7 दिन तक प्रभु धारण करेंगे। बीच में प्रभु खड़े होकर आज भाषण दे रहे हैं। देखिए कितना सुन्दर प्रभु का भाषण हो रहा हैं। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि ब्रजवासियों देखो हमारा देवता इन्द्र नहीं है, हम वन में रहने वाले हैं। हमारा देवता वृक्ष है, गुफा है, कन्दर है श्री गिरधारी गोवर्धन हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन् भगवान् ने सभी ब्रजवासियों से कहा कि तुम इन्द्र की पूजा करना बंद कर दो। ब्रजवासियों ने कहा कि देखो लाला अब तो हमने तैयारी कर ली है, हमें पूजा कर लेने दो, आगे से हम इन्द्र की पूजा नहीं करेंगे। ये सब चीजें 56 भोग सब बेकार जाएगा।

परन्तु भगवान् कहते हैं कि ब्रजवासियों तुम्हारी कोई वस्तु बेकार नहीं जाएगी। यदि तुम्हें पूजा करनी हो तो मिलकर गिरिराज की पूजा करेंगे। सारे ब्रजवासीयों ने गद्गद् भाव से प्रस्ताव स्वीकार किया। सभी ने कहा कन्हैया जैसा तुम कहोगे वैसा ही करेगे। परन्तु ब्रजवासियों ने कहा कि कन्हैया एक बात हैं। क्या बात है? कन्हैया ने पूछा। पहली बात तो हम गरीब ब्रजवासी हैं, हमारा ये सामान, प्रसाद तुम्हारे ठाकुर गिरिराज ग्रहण करेंगे। प्रभु ने कहा प्रेम से कराओगे तो जरूर करेंगे। दूसरी बात देखो इन्द्र को तो हमने कभी देखा नहीं, क्या तुम्हारे ठाकुर दर्शन देंगे। कृष्ण ने कहा अवश्य। तीसरी बात इन्द्र के कुपित होने पर गोवर्धन में हमारी रक्षा की सामर्थ्य हैं। कृष्ण ने कहा बिल्कुल है, तुम पूजा करके देखो। सभी ब्रजवासियों ने 56 प्रकार की मिठाईयाँ ली, जतिपुरा में चल पड़े। जहाँ गिरिराज का मुखारविंद हैं। भगवान् नन्दनन्दन श्याम सुन्दर एक रूप से बीच में खड़े हैं और एक रूप से गिरिराज के अंदर प्रवेश कर चुके हैं। गर्गाचार्य जी महाराज भी हैं, जिन्होंने पूजन किया, गिरिराज का। सभी ब्रजवासियों ने पूजन किया। गर्गाचार्य जी स्वस्ति वाचन पाठ करते हुए पूजन कर रहे हैं, तो देखिए, कितना दिव्य वातावरण जतिपुरा में बन गया हैं। बोलिए श्री वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

"पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.24.26)

गीतम्

मैं तो गोवर्धन को जाऊँ मेरी वीर,

नाय माने मेरो मनवा।
सात कोस की दे परिक्रमा
मैं तो मानसी गंगा नहाऊँ।
नाय..............................

सभी लोग जतिपुरा में जाकर आरती करके भोग लगाया और परिक्रमा दे रहे हैं, गिरिराज जी की।

गीतम्

श्रीगोवर्धन महाराज, तेरे माथे पे मुकुट विराज रहे ओ,
तोपे पान चढ़े तो पे फूल चढ़े
तो पे चढ़े घी, दूध की भार,
तेरे माथे पे मुकुट बिराज रहे ओ
श्री गोवर्धन महाराज, तेरे माथे पे मुकुट विराज रहे ओ,

सभी ब्रजवासी परिक्रमा दे रहे हैं आरती के बाद ब्रजवासियों ने जब ठाकुर जी को भोग लगाया, एक-एक चीज गिरिराज के मुखारविंद में डाल रहे हैं। प्रभु ने कहा ये कैसे भोग लगा रहे हैं। मेरे गिरिराज का कितना मुँह बड़ा है और ये एक एक करके लगा रहे हैं। भगवान् ने कहा ऐसे नहीं, पूरे थाल, कटोरे टोकरे गिरिराज के मुँह में डालकर भोग लगाओ।

ब्रजवासी तो सब गद्‌गद् हो गए। सब थाल, कटोरे, टोकरें, भर-भर कर लाते और गिरिराज के मुखारविंद से ध्वनि निकाल रही हैं। "आन" और "और लाओ और लाओ"। देखो आज भी गिरिराज के मुख के सामने आनोर नाम का गाँव है? गिरिराज जी के मुखारविंद से ध्वनि निकली थी-आन 'आओ'। ब्रजवासी चमत्कार को ही नमस्कार करे हैं। ब्रजवासी चकित हुये हमने कभी इन्द्र को नहीं देखा। आज प्रत्यक्ष होकर हमारी वस्तुओं का भोग लगा रहे, कन्हैया के इष्ट। धन्य है हम सभी ब्रजवासी। साक्षात् गिरिराज का दर्शन कर रहे हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन्, सभी ब्रजवासी ने मिलकर भोग लगाया और पूछा कन्हैया अब क्या करें। भगवान् ने कहा अब हम सब मिलकर सात कोस की परिक्रमा करेंगे। भैया हमारे जीवन की ये परिक्रमा चल रही हे, प्रेम से कहो जय श्री राधे। किसी ने पूछा कि इष्ट की, गुरु की, गोविन्द की परिक्रमा के लिए। देखिए परिक्रमा हमारे जीवन की जो चल रही आदि काल से, अनन्त काल से जो हमारे जीवन की परिक्रमा हैं। वह थम जाए। अतः हमें

इष्ट की, गुरु की, गोविन्द की परिक्रमा करनी चाहिए। परिक्रमा में गुरु की शक्ति निकलती है जब गोविन्द की परिक्रमा करते हैं। वह शक्ति हमारे अंदर आ जाती हैं। इस प्रकार भगवान् ब्रजवासियों के साथ मिलकर गिरिराज की परिक्रमा कर रहे हैं। सभी ब्रजवासी चुपचाप चल रहे थे। प्रभु ने कहा ऐसे परिक्रमा नहीं लगाते। जब भी वहाँ जाओ गिरिराज, श्रीराधारानी का स्मरण करते हुए परिक्रमा करनी चाहिए। सभी ने कहा कन्हैया तू ही जयकारा बोलकर थोड़ा कीर्तन करा दो। भगवान् सभी ब्रजवासियों से जयकारा कराके कीर्तन कराने लगे।

बड़े प्रेम से आप सभी मानसिक परिक्रमा करें, श्री गिरिराज जी की हमारे साथ मन से ही चलें गिरिराज जी और सात परिक्रमा लगाइए। देखिए मानसिक पूजा का महत्व तन से की गई पूजा से अधिक हैं। मानसिक पूजा में श्रद्धा होती हैं। प्रेम श्रद्धा का प्रतीक हैं। हम सब यहाँ गिरिराज जी की मानसिक परिक्रमा लगाएँ। बड़े प्रेम से भाव से गाइए।

संकीर्तन

गिरिराज धरन प्रभु तुम्हरि सरण,
गिरिज धरन प्रभु तुम्हरि सरण,
प्रभु तुम्हरी सरण श्रीजी तुम्हरीसरण,
गिरिराज धरन प्रभु तुम्हरि सरण।
बोलिए गिरिराज महाराज की जय।

भैया ब्रजवासियों ने तो इतनी जोर से आवाज लगाकर जयकारा बोला था कि इन्द्र के स्वर्गलोक तक आवाज पहुँच गई। परन्तु आप लोगों की आवाज तो मेरे कान तक नहीं पहुँची।

जोर से जयकारा बोलो, गिरिराज महाराज की जय। गिरिराज महाराज का जयकारा बोलकर कीर्तन करते हुए, सभी ब्रजवासी अपने–अपने घर पधारे।

भगवान् ने सात दिन गिरिराज को धारण किया था। हमारे जीवन में भी 7 दिन ही मिले हैं। आठवां दिन नहीं होता। ये आपको मालूम हैं। कि राजा परीक्षित को श्राप मिला था कि "इति लंह्यते मर्यादाम् तक्षक: सप्त में हानि:" जीवन में कभी आठवां दिन नहीं होगा। सप्त वार है, सप्त दिन हैं। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं। भगवान् रामचन्द्र जी ने भी कहा कि–

"अब हम सर्वभूतमयं दद्गाभ्यं तत् वृत्तं नम:"

जो एक बार हाथ पसारकर कह देते हैं कि प्रभु मैं आपका हूँ, आपका शरण ाागत हूँ। प्रभु कहते हैं कि सातों दिन मैं उसकी रक्षा करता हूँ। यह मेरा व्रत है, यह मेरा संकल्प है, तो जीवन में केवल सात दिन हैं। आज गिरिराज पूजन किया है, परन्तु सात दिन में से जो हमारे जीवन के हैं। 1 वर्ष में सभी उत्सव आते हैं। तो हमारे जीवन में जो 7 दिन हमें मिले हैं। एक उत्सव ब्रज में आया जिसे कहते हैं- होली का उत्सव। भगवान् नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ब्रज का होली उत्सव भी सम्पन्न कराया।

श्रीमद्‌भागवत का जो 10वां स्कन्ध हैं। आचार्य ने बताया इसका लक्षण है निरोध। अपने मन का परमात्मा में निरोध करो। "चेतःकलषबन्धाय मुक्तये च आत्मनो मनो मनम्" भगवान् बालकृष्ण की बाल लीलाओं के द्वारा शुकदेव जी परीक्षित के मन का निरोध परमात्मा के चरण में करते हैं। अपने मन का निरोध परमात्मा में करने से जीव की मुक्ति होती हैं। ब्रजवासियों ने दिव्य भाव से गोवर्धन की पूजा, परिक्रमा कर आज अपने-अपने घर में पधारे।

अथ पंचविंशोऽध्यायः

गोवर्धन धारण

जब इन्द्र ने सुना कि आज मेरी पूजा बंद करवा दी इस नन्द के लाला की करतूत देखो। हमारी पूजा बंद कर अपनी पूजा चालू करवा दी, इन्द्र को क्रोध आया, उसने सामन्त मेघों को बुलाया, आदेश दिया कि जाओ ब्रज पर वर्षा करो।

गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चान्तकारिणाम्।
इन्द्रः प्राचोदयत्क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत।
(श्रीमद्‌भागवतम् 10.25.2)

इन्द्र ने क्रोध करके कहा कि इस बालक की करतूत तो देखो, अपने को पंडित मानता हैं। ब्रजवालों ने इसे ही उपासक मान लिया। मैं अभी आकर उसकी खबर लेता हूँ।

वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पडितमानिनम्।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम्।
(श्रीमद्‌भागवतम् 10.25.5)

इन्द्र इतने क्रोधित हो गए कि अपने को रोक न सका। स्वयं ऐरावत के ऊपर चढ़कर ब्रज में आए। इन्द्र मन ही मन सोचने लगे कि नन्दादि गोपों के घमंड को

मैं चूर करता हूँ। वास्तव में जो क्रोधित हो जाता है वह दूसरों में क्रोध करने में नहीं रोक पाता। ब्रजवासियों की कोई गलती नहीं, क्योंकि कृष्ण के कहने से ही इन्द्र की पूजा बंद की गई। इतने लम्बे समय से इन्द्र की ही पूजा होती थी। एक बार पूजा न होने से इन्द्र क्रोधित हो गए। बात सोचने की हैं, शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन् इतनी भयंकर वर्षा हुई मानो बारिश न होकर बर्फ की सिल्लियां गिर रही हैं। इतनी भीषण वर्षा, प्रलयकारी वर्षा। सारे ब्रजवासी उस वर्षा में असहाय हो गए। आर्त्त स्वर में भगवान् को पुकारने लगे। प्रार्थना करने लगे।

गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः।
शिरः सुताश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.25.11, 12)

सब ब्रजवासी बोले हे गोविन्द! हे कृष्ण, हे नन्दनन्दन, हे गोकुलनाथ "शरणंयुगः"। हम सब आपकी शरण में है, रक्षा करें। भगवान् ने देखाकि सभी ब्रजवासी मेरी प्रार्थना कर रहे हैं। भयंकर वर्षा हो रही हैं। भगवान् सभी को लेकर गिरिराज जी के सामने आए। देखो कृष्ण का एक पीतांबर का छोर भी नहीं भीगा, उस बारिश में जा रहे हैं, परन्तु इन्द्र की क्या शक्ति कि कृष्ण को भिगो दें। उनके पीताम्बर को भी नहीं भिगो पाए। ब्रजवासियों पर तुंरत अपनी कृपा बरसाई।

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम्।
दधार लीलया विष्णुश्छत्रारधत्राकमिव बालकः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.25.19)

भगवान् उसी समय अपने बाएं हाथ की कनिष्ठ उंगली की नोक पर गिरिराज को धारण कर लिया। बोलिए गिरिधारी भगवान् की जय। सभी ब्रजवासी अपने अपने गौधन को लेकर गिरिराज के नीचे जाकर बैठ गए। प्रभु गिरिराज को लेकर खड़े हैं, गोवर्धन–गो माने इन्द्रियाँ अर्थात इन्द्रियों का संवर्धन। गो माने ज्ञान, ज्ञान का संवर्धन।

गो माने गौ–गौओं का संवर्धन। गो माने भक्ति, भक्ति का संबंध ये गिरिराज लीला कर प्रभु बता रहे हैं। ज्ञान का, भक्ति का, गौ का संवर्धन और इन्द्रियों का संवर्धन। संवर्धन का अर्थ है बढ़ाना। भगवान् की भक्ति में इन्द्रियां, ज्ञान, भक्ति और गौ सभी बढ़ जाते हैं। सभी की परवरिश होती है।

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन्, जब यशोदा मैया ने देखा कि मेरो छोटो से 7 बर्ष का लाला 7 कोस के गिरिराज को कैसे संभाल रहे हैं। सभी ब्रजवासियों से कहा कि तुम भी थोड़ा सहारा लगा दो मेरे लाडला को। सभी ने

अपनी अपनी लाठी लगा दी और कन्हैया से कहा, देख तू ये मत समझियो तू अकेलो उठा रहा हैं। देख भैया हमने भी अपनी-अपनी लाठी लगा रखी हैं। तो भगवान् थोड़ी-सी लीलाओं में संचार करने के लिए और अपनी शक्ति दिखाने के लिए कहा कि देखो हमें छोड़कर गिरिराज धारण कर लोगे? ब्रजवासियों ने कहा लाला तू चिंता मत कर उंगली हटा ले कृष्ण ने जैसे ही उंगली हटाने लगे सभी लाठियां टूट गई पर्वत नीचे आने लगा। कृष्ण ने तुरंत संभाला और कहा ये तुम्हारी ही शक्ति है।

"कुछ माखन को बल बढ़ो, कुछ गोपन करि सहाय।
श्री राधे जो कि कृपा पे, मैंने गिरिवर लियो उठाय।।"

ये तो श्रीजी की कृपा है भैया और सब तुम्हारा सहयोग हैं। प्रभु के अंदर अभिमान नहीं हैं। इतने बड़े पर्वत को उठाने के बाद भी जरा भी घमंड नहीं हैं। सब समझ गए कि आज भगवान् अपने भक्तों का मान बढ़ा रहे हैं। उधर इन्द्र अभिमानी है और अभिमानी व्यक्ति भगवान् को कतई पसंद नहीं। भक्ति में अभिमान का कोई स्थान नहीं हैं। भगवान् ने इन्द्र का अभिमान चूर्ण करने के लिए, मान भंग करने के लिए गिरिराज धारण किया। इसलिए भगवान् कहते हैं।

"अहम् सर्वभूतेभ्य ददाभ्ये तद् व्रतं ममः"

एक बार जो कह देता है कि हे गोविन्द मैं आपका हूँ, आपका शरणागत हूँ, भगवान् कहते हैं। कि सर्वभूतो से मैं उन्हें अभयदान प्रदान करता हूँ। भगवान् ने इन्द्र का अभिमान भंग किया। सात दिन तक वर्षा होती रही। वर्षा के बाद गिरिराज को यथा स्थान स्थापित किया।

भगवान्पि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत्प्रभुः।
पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.25.28)

सभी ब्रजवासी गिरिराज के पूजन के बाद जब अपने-अपने घर पधारे। ब्रजवासियों के अंदर प्रभु की प्रेम भक्ति का संचरण हुआ। जब ब्रजवासी अपने घर गए तो सभी को परम आश्चर्य हुआ कि जो वस्तु जहाँ छोड़ी थी वैसी ही हैं। वर्षा का नामोनिशान तक नहीं। सभी ब्रजवासियों ने कन्हैया से पूछा कि कन्हैया। इतनी वर्षा हुई उसका जल कहाँ गया। प्रभु ने सोचा कि यदि मैंने कहा कि शेषजी और सुदर्शन लगा रखा था ब्रज के चारों ओर जल सोखने के लिए, तो ये कभी मेरा विश्वास नहीं करेंगे? ब्रजवासी मुझे कभी भी ईश्वर नहीं मानते।

"यं मित्रम् परमानन्द पूर्ण ब्रह्मं सनातन्"

ये तो मुझे अपना सखा कहते हैं। कन्हैया मेरा मित्र हैं। भगवान् ब्रजवासियों के भाव को पूर्ण करने के लिए सभी ग्वाल बालों, सखाओं, ब्रजवासियों से कहने लगे कि तुम सबने मिलकर गिरिराज को भोग लगाओ परन्तु काने पानी भी पिलाओ?

सभी ने कहा हम तो भोग लगाते-लगाते थक गए और पानी पिलाना भूल गए। भगवान् ब्रजवासियों के भाव को पूर्ण करने के लिए कहते हैं। जितना जल था भैया गिरिराज महाराज पी गए। सभी ने कहा भैया ठीक हैं। जो ज्यादा खाएगा वह पानी भी ज्यादा पीएगा। इस प्रकार ब्रजवासियों के भाव को पूर्ण किया। इन्द्र मान भंग किया। इन्द्र का मान भंग तो किया, परन्तु इन्द्र से भगवान् बहुत नाराज नहीं हैं। इन्द्र ने 7 दिन 7 रात ब्रजवासी, नन्द बाबा माँ, सखा, मित्र मंडल, ब्रजमंडल को हरि के साथ रखा। ठाकुरजी की संगत प्राप्त करके ये ब्रजवासी अति धन्य हुए। परन्तु ब्रह्माजी ने ब्रजवासियों को गौ बछड़े को 1 साल के लिए भगवान् से दूर किया। जो ब्रजवासी नित्य भगवान् का संग करते हैं, लीला करते हैं, भ्रमण करते हैं। उसमें ब्रह्मा ने भंग डाला। भगवान् की, ब्रह्मा जी ने गूढ़ रहस्य को भेद करके 40 श्लोकों में ब्रजवासियों की प्रशंसा करते हुए स्तुति की, परन्तु भगवान् प्रसन्न नहीं हुए। भगवान् ब्रह्मा जी का मान मर्दन किया। इन्द्र का भी मान मर्दन किया। ब्रह्मा सृष्टिकर्ता एवं इन्द्र शासन कर्ता स्वर्ग के, तो भी दोनों का मान भंग हुआ। अभिमानी, भगवान् को प्रिय नहीं हैं। अतः भगवान् ने दोनों को मान भंग किया इस लीला के माध्यम से।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

नन्दबाबा से गोपों की श्रीकृष्ण के प्रभाव के विषय में बातचीत

एक दिन सब ब्रजवासी नन्द बाबा के घर पहुँचकर कहने लगे, नन्द बाबा तुम्हारा बालक साक्षात् भगवान् हैं। हमें शक है, ये तुम्हारा पुत्र नहीं हैं। यदि ये बालक तुम्हारा होता तो 7 दिन इतनी बड़ी शिला कैसे धारण करता, अतः हमें संशय है कि ये आपका पुत्र नहीं हैं। नन्द बोले हमारा नहीं तो कौन को पुत्र है ये।

क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम्।
ततो नो जायते शङ्का व्रजनाथ तवात्मजे।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.26.14)

आज नन्द बाबा ब्रजवासियों की शंका का श्रवण करते हुए समझा रहे हैं। देखो ब्रजवासियों गर्ग बाबा ने मुझे एक बात बताई थी, वह नामकरण का समय था। हमने किसी को बताया नहीं। देखो नन्द यह तुम्हारा पुत्र है इसने अनेक युगों में अनेक बार जन्म लिया हैं। कभी ये श्वेत वर्ण, कभी रक्त वर्ण, कभी पीत वर्ण के रूप में अवतरित हुए। पर "इदानीं कृष्णतां गत:" परन्तु अभी ये कृष्ण वर्ण में आए कृष्ण माने जो सबको अपनी ओर आकर्षण करे। ब्रजवासियों गर्गाचार्य ने कहा था नन्द तुम्हारा पुत्र साक्षत्त् नारायण हैं।

मैंने कहा कैसे? नारायण के तो चार हाथ होते हैं। इनको तो दो हाथ हैं। उसी समय गर्गाचार्य ने कहा नन्द ये नारायण नहीं हैं। "नारायण समो गुणै:" कहा कि नन्द ये नारायण के समान गुणी हैं। इनमें शक्ति है ये बहुत पराक्रमी होगा। ब्रजवासी श्रीकृष्ण से मिलना चाहते थे, तो नन्द बाबा ने कन्हैया को बुलाकर कहा कन्हैया तूने गिरिराज उठाया तो ये सब तुझे भगवान् कह रहे हैं। तू इन्हें समझा कि तू भगवान् नहीं, हमारा पुत्र हैं। आज श्रीकृष्ण ने ब्रजवासियों से कहा, देखो तुम फिर भगवान् के पीछे पड़ गए हो, हम भगवान् नहीं हैं। वे बोले तूने इतनी बड़ी शिला धारण की,भगवान् नहीं तो कौन है? भगवान् ने कहा, देखो ब्रजवासियों मेरे गुरु जी ने मोकु एक मन्त्र दिया। उससे मैं जिसे देखूं उसकी ताकत मुझमें आ जाए। पाठ करके तुम्हें देखने से तुम्हारी सबकी ताकत हममें आ गई। हमने पर्वत धारण कर लिया। हम तो बाबा के बेटे हैं। भगवान् नहीं। इसी प्रकार भगवत्व को छिपाते हुए ब्रजवासियों को प्रसन्न किया, अपनी लीला रस को बढ़ाया।

अथ सप्तविंशोऽध्याय:

श्रीकृष्ण का अभिषेक

विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम्।
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो न विद्यते ते ग्रहणानुबन्ध:।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.27.4)

आज एकांत में नन्दनन्दन श्यामसुन्दर प्रभु यमुना तट पर खड़े हैं। इन्द्र नीचे सिर करके पहले ऊपर सिर था कि देवताओं का राजा है, परन्तु आज कन्हैया के सामने सिर नीचा करके खड़े हैं। कामधेनु गौ को आगे करके कामधेनु की दूध से भगवान्

का अभिषेक किया और इन्द्र भगवान् कृष्ण की स्तुति कर रहे हैं, हे प्रभु आपका जो धाम है विशुद्ध सत्व गुण से बना हैं। शान्त सुन्दर हैं। जहाँ रज और तमस का कोई प्रवेश नहीं। उस तेजोमय धाम में माया का प्रवेश नहीं हैं। आप जिनके ऊपर अति कृपा करते हैं। केवल वही आपका विशुद्ध धाम में आपके चरण में सेवारत हुए प्रवेश पाते हैं। सेवा की भावना से ही प्रवेश पाते हैं। हे प्रभु क्षमा कीजिए मेरी गलतियों को–

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने।
वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.27.10)

भगवान् को प्रणाम करके कहा, आप ही साक्षात कृष्ण हैं, गोविन्द हैं, वासुदेव हैं। "नमस्तुभ्यं भगवते" हे पूर्ण ब्रह्म परमात्मा, हे भगवते मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आज भगवान् ने इन्द्र को कहा कि इन्द्र–

मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्ड पाणिं न पश्यति।
तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.27.16)

मैं जिनके ऊपर कृपा करता हूँ इन्द्र उन्हें दंड देते हुए उसके दंभ को मेरी ही कृपा से (अन्ध होकर पथभ्रष्ट होता है तो) उसको पुनः दंड देकर कृपा करता हूँ। जाओ इन्द्र "गम्यतां शक्र भद्रं" आगे से तुम हमारे ब्रजवासियों से ऐसा कभी नहीं करना। देखो ये हमारे बहुत प्रिय हैं। तुमने इन्हें बहुत कष्ट दिया। आगे से ऐसा नहीं करना। आज कामधेनु गौ भी भगवान् की स्तुति कर रही है–

कृष्ण कृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वसम्भव।
भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.27.19)

कामधेनु कहती है–"हे विश्व सम्भव" विश्व के सम्पूर्ण कार्य संभव करने वाले विश्व की आत्मा 'विश्वात्मन'। हे श्रीकृष्ण, कृष्ण कृष्ण महायोगिन आप तो महायोगी हैं, योगियों के भी ईश्वर हैं, आज आपका दर्शन करके अब तक अनाथ थी, परन्तु अब मैं सनाथ हो गई। इस प्रकार कामधेनु गौ ने भी भगवान् को प्रणाम किया और इन्द्र को इशारे से कामधेनु ने अपने दूध से भगवान् का अभिषेक किया। ऐरावत हाथी से भगवान् को आकाश गंगा से स्नान कराया। प्रणाम करके इन्द्र ने भगवान् का पूजन किया और इन्द्र ने भगवान् को एक बड़ा सुन्दर नाम दिया (गोविन्द) "गोपम् आनन्दम्

ददाति इति गोविन्दं" ये प्रभु का नाम पड़ा गोविन्द जो इन्द्र ने दिया। गोविन्द किसे कहते हैं? प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण।

गोविन्द मानो जो गौ और ग्वाल वालों, समस्त ब्रजवासियों को आनंद देते हैं। जो अपने शरणागत को परम आनंद देने वाले हैं। वही है 'गोविन्द'। "गोविन्द इति चाभ्यध ात्" इस प्रकार 10 श्लोकों में इन्द्र ने प्रार्थना करके भगवान् को प्रसन्न कर दिया। भगवान् ने इन्द्र से वार्तालाप किया। प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण।

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः

वरुणलोक से नन्द जी को छुड़ाना

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.28.1)

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं। परीक्षित, एक बार नन्दबाबा ने एकादशी का व्रत किया और उस समय घड़ी तो थी नहीं। रात्रि में 2.30 बजे नन्द बाबा की आँखे खुल गई, नन्द बाबा ने समझा अमृत वेला हो गई हैं। चलो यमुना में स्नान करने के लिए चलें। द्वादशी तिथि लग गई हैं। "द्वादश्यां जलमाविशत्"

असुरि बेला में नन्दबाबा श्री जमुना जी में स्नान करने के लिए यमुना तट पर पहुँच गए। यमुना जी में स्नान कर रहे नन्द बाबा, उसी समय वरुण देवता के सेवक वहाँ घूम रहे थे, वे नन्दबाबा को दबोच कर वरुण लोक में ले गए। देखो जी तीन प्रकार की वेला हैं, तीन प्रकार के स्नान हैं। ऋषि स्नान, मानव स्नान, आसुरि स्नान। ऋषि स्नान कहते हैं। ब्रह्ममुर्हत में जो स्नान, सुबह के समय मानव, रात्रि के 12 बजे 2:30 बजे तक आसुरि स्नाता।

नन्द बाबा ने आसुरि बेला में स्नान किया।
"अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.28.2)

जब शाम हो गई नहीं लौटे नन्द बाबा तो श्रीकृष्ण (बलराम जी के साथ) वरुणलोक गए। वरुण देव ने श्रीकृष्ण (बलराम जी) को देखा तो उठकर प्रणाम किया, पूजन किया और भगवान् ने पूछा कि क्यों रे वरुण तू हमारे बाबा को यहाँ क्यों लाया? वरुण देव घबराए और कहा कि आपके बाबा! कौन हैं? श्रीकृष्ण ने कहा–ये जो बंधे पड़े हैं। ये मेरे बाबा हैं।

वरुण ने कहा–

अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना।
आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान्क्षन्तुमर्हति।
(श्रीमद्भागवतम् 10.28.7)

अनजाने में हमारे मूढ़ अज्ञानी सेवक आपके पिता को बंदी बना लाए उसके लिए हम क्षमा भिक्षा करते हैं। 'भवान-क्षन्तुर्मतिः' क्षमाकर दीजिए। भगवान् ने कहा ठीक हैं। क्षमा कर दिया, बाबा का बंधन खोल दीजिए। बाबा ने देखा बड़े-बड़े देव हमारे लाला के पास आकर प्रार्थना करने लगे और कन्हैया आशीर्वाद देने लगे। नन्द बाबा को बड़ा आश्चर्य हुआ। कृष्ण (बलराम) नन्द बाबा के साथ नन्द गाँव में आ गए। इस प्रकार वरुण देव पर कृपा करके आए, तो नन्द बाबा ने बताया कि हम वैकुण्ठ देख आए। ग्वालबालों के मन में भी वैकुण्ठ देखने की इच्छा हो गई। बोले–कन्हैया तू साक्षात् भगवान् हैं। बोले ब्रजवासियों फिर हमको भगवान् बना दियो वे बोले तुम्हारी अनेक लीला दर्शन से हम समझे कि तुम भगवान् हो। हमें तो केवल बैकुण्ठ दिखा दो। भगवान् ने कहा, हम तुम्हें वैकुण्ठ दिखा देंगे। हम भगवान् हैं या नहीं। इस चक्कर में मत पड़ो। ग्वाल बाल बोले ठीक है उसी समय ब्रजवासियों को लेकर नन्द लाल ने सबको डुबकी लगाने को बोला।

ते तु ब्रह्महृदम्नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः।
ददृशुब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात्पुरा।
(श्रीमद्भागवतम् 10.28.16)

ब्रह्माहृद में ब्रजवासियों से डुबकी लगवाकर वरुण लोक में भेज दिया ठाकुर जी ने। वहाँ पहुँचकर ग्वाल बाल सखा ने देखा बड़े बड़े मकान, बड़े दरवाजे, बड़े चौकीदार, मणिमुक्तों की सजावट। ये सब कहने लगे राम-राम, चौकीदार कुछ नहीं बोला। ये बोले राधे-राधे। परन्तु वे न राम-राम बोले, न राधे-राधे। ब्रजवासियों ने समझा ये भाषा अन्तर हैं। तभी दूर सर्प के ऊपर कन्हैया सा देखकर बोले देखो कन्हैया सोया हैं। सर्प के ऊपर ये जाने लगे परन्तु दरबान ने रोक दिये। ये वैकुण्ठ है, यहाँ से आगे नहीं जा सकते। उसी समय श्री वृन्दावन को याद किया और जिस हृदय में डुबकी लगाई वही प्रकट हो गए। पूछा भैया कैसा रहा है, वैकुण्ठ देश, ब्रजवासियों ने कहा तुम्हारा वैकुण्ठ तो अच्छा है, हमें अच्छा न लगा। भगवान् को कहा देख कन्हैया, यहाँ तो तुम्हारे साथ खेले कूदे

आनंद है, वहाँ सर्पन के ऊपर सोया है। तेरे से मिल न सके, खान-पान तो दूर। याकू वैकुण्ठ में रहकर क्या करें, यही अच्छा हैं। ब्रजवासियों की बात सुनकर प्रभु अति प्रसन्न हुए। इस प्रकार से वैकुण्ठ से वृन्दावन की स्तुति ब्रजवासियों के मुख से कहलाकर अपनी महिमा बढ़ाई।

प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

रासलीला का प्रारंभ

भगवान्पि ता रात्रीः शरदोत्फुलमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.29.1)

जिस रात्रि का इंतजार गोपियों को था, वह शरद की रात्रि थी, शरद की रात्रियों में भगवान् ने गोपियों के साथ रास क्रीड़ा की है, तो, "भगवान्पि ता रात्रीः"।

श्री शुकदेव जी महाराज परीक्षित जी के शंका का निवारण कर रहे हैं। पहले ही श्लोक में जब महारास की कथा का प्रारंभ कर रहे हैं। तो भगवान् को यानी कृष्ण को, कृष्ण नहीं कहाँ, भगवान् का नाम तो बहुत है गोविन्द है, माधव है, गिरधारी है, केशव है, परन्तु शुकदेव जी महाराज जब इस कथा को प्रारंभ करते हैं तो कहते हैं कि "भगवान्पि ता रात्रीः"।

जहाँ पर भगवान् कह दिया वहाँ कोई शंका नहीं रहती। यदि कृष्ण कहते तो प्रश्न खड़ा हो सकता था गोविन्द कहते या माधव कहने पर भी प्रश्न हो सकता था परन्तु आज शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि "भगवान्पि ता रात्रिः"।

जिनके अंदर छह गुण विद्यमान हैं- पूर्ण ज्ञान, पूर्ण-वैराग्य, पूर्ण ऐश्वर्य, पूर्ण श्री, पूर्ण यश, पूर्ण तेज। षड्गुण ऐश्वर्य सम्पन्न वही साक्षात पूर्णब्रह्म हैं। परमात्मा है- भगवान् हैं। ये सभी गुण उस परमात्मा श्रीकृष्ण में पूर्ण हैं। पूर्ण का अर्थ कभी नहीं खत्म होने वाला। जहाँ पर भगवान् कह दिया वहाँ कोई शंका नहीं रहती। 'कर्तुं अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम्' जो सब कुछ करने मे परम श्रेष्ठ है, वही भगवान् हैं। जब वेदव्यास जी लिखते हैं भागवत्, तो महारास की कथा में, सबसे पहले लिखा है 'भगवान्पि ता रात्रि'।

श्री शुकदेव जी महाराज भी कह रह हैं कि 'भगवान्पि ता रात्रि' तो कृष्ण को

भगवान् कहकर सम्बोधित किया कि–

एते चांसकला पुंसः – कृष्णस्तु भगवान् स्वयं,
इद्राणि व्याकुलं लोकम् – मिडयन्ति युगे-युगे।।

साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा है श्रीकृष्ण तो भगवान् कहकर सम्बोधित करते हुए शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि परीक्षित 'भगवान् अपि' यहाँ पर अपि पद का प्रयोग किया हैं।

अब तक तो गोपियाँ श्रीकृष्ण के साथ रास करना चाहती थी, पर अपि पद के प्रयोग से भगवान् के महारास का रहस्य प्रकट किया कि भगवान् स्वयं अपि माने आज स्वयं कृष्ण की इच्छा हो गई कि मैं महारास करूँ गोपियों के साथ। अब तक कृष्ण की इच्छा नहीं थी, परन्तु आज प्रभु की स्वयं इच्छा हुई। भगवान् ने अपनी योगमाया – "योगमायामुपाश्रितः" पर यहाँ योगमाया कौन है? यहाँ योगमाया श्री राधा है, श्रीराधा जी का आश्रय लिया ठाकुर जी ने, किशोरी जी का आश्रय लिया और सुन्दर शरद की रात्रि को बना दिया दिव्यम्। कितनी सुन्दर वह रात्रि है कि–

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुङ्कु मारुणम्।
वनं च तत्कोमलगोभि रञ्जितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्।
(श्रीमद्भागवतम् 10.29.3)

कितनी सुन्दर वह शरद की रात्रि, जिस शरद की रात्रि में नन्दनन्दन श्रीकृष्ण अपने शयनागार में सो रहे थे। भगवान् ने अपने पूर्व दिशा की खिड़की खोली तो 'ता रात्रि' वह रात्रि श्रीकृष्ण को याद आ गई। गोपियों से प्रभु ने कहा था कि आगामी शरद की रात्रि में मैं तुम्हारे साथ रास लीला करूँगा। शरद की रात्री को देख करके भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपना श्रृंगार करते हैं– इस समय भगवान् की आयु आठ वर्ष पूरी हो चुकी हैं। नौवें वर्ष में वह प्रवेश कर रहे थे। 'अति सुकुमार' अवस्था भगवान् की। आज भी ब्रज में, ब्रज के गाँव में सात-आठ वर्ष के बालक दिगम्बर भ्रमण करते हैं, प्रभु ने जब नौंवे वर्ष में प्रवेश किया तब महारास लीला की।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं। कि राजन् भगवान् स्वयं अपनाश्रृंगार कर रहे हैं। प्रभु एक-एक आभूषण, एक-एक वस्त्र धारण करते हुए स्वयं को निहार रहे हैं। जिन्होंने सुन्दर जगत को बनाया, आज अपने सौंदर्य को अपलक निहार रहे हैं, माथे पर मुकुट, कानों में कुंडल, गले में हार, सुन्दर पीताम्बर और वंशी को लेकर उस अपनी चित्रासारी की पूर्व दिशा की खिड़की से कूद पड़े। केसर के कलियों में गुलाबों के बगीचे में, लता पता के नीचे झुकझुककर श्रीकृष्ण चल रहे हैं, वह नागर नट, वंशी

वट पर पहुँचकर कदंब की छाया के नीचे खड़े हुए श्रीकृष्ण।

यमुना के पुलिन में प्रभु ने कमर से पीताम्बर खोलकर बिछाया और वंशी को विराजमान किया, दोनों घुटने टेककर हाथ जोड़कर बैठकर वंशी की स्तुति करने लगे। भगवान् ने वंशी से कहा—अरे वंशी देख मैंने तेरी बहुत सेवा की है, परन्तु आज तक तू मेरे कोई काम नहीं आई। वंशी ने कहा कि प्यारे आपने मेरी सेवा की। बताइए कब की? देख वंशी मैं तुझे अपने हाथन के पालक पर सुलाया हूँ, अपने होंठों का तकिया लगाता हूँ और जब तेरे छिद्र पर मेरी उंगलियां चलती हैं तो मानो तेरी चरण सेवा कर रहा हूँ। जब हवा से मेरे घुंघराले बाल हिलते हैं तो मानो तेरा पंखा कर रहा हूँ। वंशी मैंने तेरी कितनी सेवा की है, परन्तु आज तक तू मेरे काम नहीं आई। वंशी ने कहा, प्यारे आपको प्रशंसा करना बहुत आता हैं। आप बताइए क्या काम है? कृष्ण बोले आज तू ब्रज में जा नवयुवती गोपियों के हृदय में जो माणिक धारो हैं वह चित्त रूपी माणिक चुराकर ला। वंशी ने कहा, प्यारे बस आपके पास चोरी की ही बात है, कोई दूसरी बात नहीं हैं। भगवान् ने कहा, आज तो तुझे यही कार्य करना हैं। झट भगवान् ने बंसी उठाकर पीतांबर कमर पर कसा।

बंसी वट की छाया के नीचे खड़े होकर मंदमंद स्वर से श्रीकृष्ण बंसी बजाने लगे। वंशी में श्रीराधा, ललिता, विशाखा, तुंगभद्रा, चित्रा, रंगदेवी, रन्द्रादेवी, इन्दुलेखा, चंपकलता, सुदेवी, श्रीदेवी, चन्द्रावली इन सभी सखियों के नाम प्रभु वंशी में ले रहे हैं। जब इन्होंने अपने अपने नाम वंशी में सुने तो कृष्ण की वंसी पर चारों पदार्थों को न्यौछावर करा दिया।

निशम्य गीतां तदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.29.4)

श्रीकृष्ण की वंसी ने समस्त ब्रजांगनाओं के मन को कृष्ण की ओर आकृष्ट कर दिया, श्रीकृष्ण की वंसी की धुन गोपियों के हृदय में, मन में छा गई। इससे गोपियाँ व्याकुल हो गई। श्रीकृष्ण से मिलने की आतुरता बढ़ती चली गई और ये चारों पदार्थ यानि कि पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को त्याग दिया और श्रीकृष्ण की वंसी पर न्यौछावर कर दिया। कोई गोपी धर्म कमाने बैठी थी, गुरुजन, सास–ससुर की सेवा कर रही थी, परन्तु कृष्ण की वंसी सुनते ही भाग चली, धर्म भी छोड़ दिया। कोई गोपी अर्थ कमाने के लिए दूध दोह रही थी गाय का, परन्तु ज्योंहि कन्हैया की बंसी सुनी पात्र फेंककर बंसी वट की ओर दौड़ पड़ी। कोई गोपी अपने सुन्दरश्रृंगार हेतु बैठी, अभी एक आँख में ही काजल डाला था दूसरी में

डाल ही रही थी कि काजल को छोड़कर काम को भी कृष्ण की बंसी पर न्यौछावर कर दिया। कोई गोपी मोक्ष प्राप्ति के लिए आसन पर बैठी हैं। पर ज्योंहि वंसी सुनी तो मोक्ष की अभिलाषा छोड़कर भाग पड़ी। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ कृष्ण की वंशी पर न्यौछावर कर दिया।

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा। ययुः।।
परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून्पयः।
शुश्रूषन्त्यः पतीन्काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम्।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.29.5, 6)

एक गोपी सुन्दर भाव प्रकाश कर रही है प्रभु से वंसी को सुनकर–

गीतम्

दूर नगरी बड़ी दूर नगरी, दूर नगरी बड़ी दूर नगरी।
कैसे आऊँ मैं कन्हैया तेरी गोकुल नगरी।
बड़ी दूर नगरी.................................।।

ये सब गोपी वंशी वट की ओर जाते हुए अपने भाव को प्रकाश करती हुई प्रभु से मिलने की इच्छा से जा रही है, परन्तु एक गोपी अपने घर से बाहर निकली तो पति ने पूछा कि क्यों री कहाँ जा रही है? गोपी ने कहा, प्यारे बुला रहे हैं। बोले हमसे ज्यादा प्यारा कौन है? गोपी ने कहा, आप इस देह के स्वामी हैं, मालिक है परन्तु आत्मा के स्वामी श्रीकृष्ण हैं, वे बुला रहे हैं। तो उस गोप ने उसे जाने नहीं दिया। हठ पकड़ लिया, जाने नहीं दूँगा। जबरदस्ती घर में बंद करके कुंडी लगा दी। उसकी दशा का वर्णन भागवत में शुकदेव जी ने किया कि–

दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः।
ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः
(श्रीमद्भागवतम् 10.29.10)

शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन् एक गोपी कृष्ण की विरहाग्नि में जलने लगी और कृष्ण के वियोग में इसने अपने सारे अशुभ संस्कारों को निवृत्त किया।

"ध्यान प्राप्ताच्युताश्लेष निर्वृत्या क्षीण मंगला।"

फिर वह गोपी कृष्ण के ध्यान में जाकर बैठ गई। ध्यान में कृष्ण का आलिंगन किया तो अपने पुण्यों को भी समाप्त कर लिया। जब पाप और पुण्य दोनों ही समाप्त

हो गए तो इस देह को त्याग करके आत्म स्वरूप से उन परमात्मा श्रीकृष्ण से मिल गई।

'जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.29.11)

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन् इस प्रकार गोपियाँ वंशीवट की ओर दौड़ी चली जा रही हैं। परन्तु राजा ने प्रश्न किया कि ये कथा मेरी समझ में नहीं आ रही हैं। गोपियों का भगवान् के प्रति ब्रह्मभाव नहीं है, "न तू ब्रह्मतया मुने" कान्त भाव हैं। पति भाव हैं। परन्तु शुकदेव जी कहते हैं कि राजन् ये बात तो मैंने तुझे सप्तम स्कन्ध में बताई थी कि जैसे शिशुपाल के अंदर भगवान् के लिए द्वेष भाव था भगवान् ने उसे पूर्ण किया, तो इस प्रकार से हम किसी भी भाव से भगवान् की शरण में जाए वह उसे पूर्ण करते हैं कि–

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते।

(श्रीमद्भागवतम् 10.29.15)

देखो परीक्षित काम से, क्रोध से, भय से, स्नेह से, सम्बंधी भाव से नित्य प्रतिदिन विधिवत, आराधना के भाव से भी क्यों न हो। किसी भी भाव से हमारी परमात्मा श्रीकृष्ण से तन्मयता हो जाए, भाव कोई भी हो, मुख्य बात हैं। 'तन्मयता'। भगवान् केवल साधारण मानव नहीं हैं। कृष्ण भगवान् योगियों के परमेश्वर हैं। श्रीकृष्ण, वंशीवट पर जब गोपियाँ पहुँचीं, तो भगवान् ने उनका स्वागत किया कि–

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।
व्रजस्यानामयं कच्चिद्ब्रूतागमनकारणम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.29.18)

भगवान् कहते हैं, स्वागतम् गोपियों।

तुम्हारा स्वागत है, जब ये जीव ईश्वर की शरण में जाता है, परमात्मा की शरणगति हो जाता हैं तो भगवान् उस जीव का स्वागत करते हैं। क्या गोपियों के पास बहुत दौलत थी? नहीं। बड़े महल थे? नहीं। परन्तु भागवत में उन गोपांगनाओं का भगवान् स्वागत कर रहे हैं। "स्वागतम् वो महाभागाः"

परमात्मा की दृष्टि से धन का काई महत्त्व नहीं हैं। भगवान् नहीं देखते कि यह धनवान है, सत्संग में आया है, मंदिर में आया हैं। अच्छे वस्त्र धारण किये हैं। इनका महत्त्व नहीं हैं। परमात्मा की दृष्टि में प्रेम का, भाव का महत्त्व हैं। भगवान् गोपियों

से कहते हैं, "स्वागतं वो महा भागा" तुम्हारा स्वागत हैं। तुम सब आज यहाँ कैसे पधारे हो? "ब्रूतागमनकारणम्" गोपियों आपको प्रसन्न करने के लिए मैं क्या करूँ। क्या कंस के द्वारा भेजा असुर आ गया जिसके भय से तुम सब चली आ रही हो? या गोपियाँ "रजन्येषा धोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता"

(श्रीमद्भागवतम् 10-29-19)

इस शरद की घोर रूपा रजनी का दर्शन करने आई हो।

देखो गोपियों तुम्हारे पिता, माता, बन्धु सब तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं। सब चिंतित हो रहे हैं।

मातरः पितरः, पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः।
विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृढ्वं बन्धुसाध्वसम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.29.20)

गोपियों तुमने शरद की रात्रि की शोभा को देख लिया, अब तुम लौट जाओ। सुन्दर कुमुद वन का भी दर्शन किया, सुन्दर चाँदनी का दर्शन किया। यमुना की नील धारा का दर्शन किया, सुन्दर तरुलता का दर्शन किया अब लौट जाओ। देखो गोपियों यह घोर जंगल हैं। यहाँ हिंसक जानवर भी हैं। कहीं तुम्हारे दर्शन किये तो तुम्हें छोड़ेंगे नहीं। हम समझते हैं कि तुम हमसे प्रेम करते हो, परन्तु इसे गुप्त ही रखना हैं तभी मधुर है। नहीं तो कष्टकर। प्रिय व्यक्ति के मिलन नहीं, चिन्तन में अधिक सुख मिलता है। हम कहीं भी हो, तुम कहीं भी हो, वहीं से हमारा चिन्तन करो। अब सब लौट जाओ। देखो गोपियों चाहे पति क्रोधी, दुशील, दुर्भागी, कामी, कुटिल, वृद्ध, जड़ रोगी कैसा भी हो? स्त्री का धर्म, नारी का धर्म अपने पति की सेवा करना है।

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकप्सुभिरपातकी।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.29.25)

एक गोपी ने कहा कि आप हमें ठीक शिक्षा दे रहे हैं, कि नारी धर्म क्या है, परन्तु हम आपसे एक प्रश्न करते हैं। भगवान् ने कहा–कहा! क्या प्रश्न है? गोपी ने कहा, महाराज ये बताइए कि एक गोपी का अपने पति से प्रेम है, भाव है श्रद्धा, सेवा है और होना भी चाहिए, पर एक बार अपना चित्र देकर पति बाहर यात्रा पर गया और कहा कि हमारी सेवा चित्र में करना मुझे प्राप्त होगा। पीछे से पत्नी चित्र में सेवा करती है, चन्दन लगाती है, कपड़े पहनाती हैं आरती-भोग लगाती है यानी कि सुबह से शाम तक पति के चित्र की सेवा करती हैं। जब पति लौटकर आया तो द्वार पर पति

खड़ा हैं। दरवाजा खटखटा रहा हैं। अंदर पत्नी पति के चित्र की पूजा कर रही है। तो स्त्री दरवाजा खोलने जाए या नहीं? भगवन बताइए, क्योंकि यहाँ भी पति है वहाँ भी पति हैं। बताइए द्वार खोलने जाए या नहीं?

भगवान् ने कहा, गोपियों ये भी पूछने की बात है? जब साक्षात पति आ गए तो चित्र की पूजा कैसी, गोपियाँ कहती हैं, प्यारे यही तो हम आपको समझाना चाहती हैं। कि संसार का सम्बंध चित्रवत है, जैसे एक चित्रकार चित्र का निर्माण करता है यदि उससे पूछा जाए कि अपने सुंदर चित्र बनाया है और कीमती भी है, परन्तु बताओ इसकी मियाद कितनी है कितने बरस तक ये ठीक बना रहेगा। तो तुरन्त उस चित्रकार चित्र का मियाद भी वता देगा कि वरश, दो वरश, इस प्रकार ये गोपियाँ कहती हैं, कि भगवान् संसार के सम्बंध चित्रवत हैं। एक दिन नष्ट हो जाएँगे। चित्र के समान ये सभी नष्ट होने वाले हैं, परन्तु शाश्वत सम्बंध यदि है तो आपसे है क्योंकि–

मैवं विभोऽर्हति भवान्गादितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.29.31)

गोपियाँ कहती हैं, हम संसार के विषयों को, कामनाओं को त्याग करके हे गोविन्द आपके चरणों में आई हैं, जैसे कि आदि पुरुष नारायण भक्तों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार आप हमारी रक्षा करें।

हम आपसे ही सम्बंध रखना चाहती हैं। भगवान् ने गोपियों के सुन्दर विचार श्रवण किये। 10 श्लोकों में भगवान् ने कहा–गोपियों चली जाओ। समाज का उत्तर दायित्व बताते हुए कहा चली जाओ। परन्तु ब्रजांगनाओ ने हार नहीं मानी। चिंताओं में डूबते हुए भगवान् के चरणों में रही। गोपियों ने 11 श्लोकों में भगवान् के 10 श्लोकों का उत्तर दिया। भगवान् उनके विचारों से अति प्रसन्न हुए।

जब भगवान् ने देखा कि गोपियाँ मेरे लिए समर्पित हैं, पूर्ण शरणागत हैं तो भगवान् ने सबसे पहले गोपियों के प्रसन्न करने के लिए रास किया। अभी महारास में प्रवेश नहीं मिला, देखिए गोपियाँ महारास से पहले रास में प्रवेश करती हैं। अब रास कृष्ण के साथ हुआ था। गोपियों को घमंड हो गया कि हमारे समान भाग्यशाली संसार में कौन होगा जो साक्षात् पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण के साथ नृत्य कर रही हैं। भगवान् ने सभी के मन की बात जान ली। भगवान् ने कहा, अभी कर रही है मान, थोडी देर में करेगी

अभिमान। कहाँ तक समझाऊँ, इन्हें। कहाँ तक समझाऊँ?

अथो त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण के विरह में गोपियों की दशा

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम्

(श्रीमद्‌भागवतम् 10.30.1)

श्री राधारानी को साथ लेकर भगवान् गोपियों के बीच में से अन्तर्हित हो गए। "अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजांगना" देखिए भगवान् इस जीवका अर्न्तहित चाहते हैं। प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। बाहर का हित तो व्यक्ति कर देता है, परन्तु अंतर्हित चाहने वाला केवल एक ईश्वर हैं। परमात्मा है, गुरुजन है, जो हमारा अंतर्हित चाहता हैं। अंतर से जो सच्चा हितैषी है बाहर से नहीं। मीठा बोलने वाले व्यक्ति तो बहुत मिल जाएँगे। परन्तु अंतर उसका कितना प्रेम है यह नहीं मालूम। तो अंतर से जो प्रेम करे, वही साक्षात हितैषी हैं। भगवान् बाहर से प्रेम नहीं करते हैं। ईश्वर प्रेम बाहर से प्रकट नहीं करता है, वह अपनी कृपा प्रकट नहीं करता। परमात्मा की कृपा तो अंदर से होती हैं।

भगवान् राधारानी को लेकर गोपियों के बीच में से अंतर्हित हो गए, क्यों? अंतर्धान हो गये, यहाँ अंतर्हित प्रभु चाहते हैं। क्यों? भगवान् चाहते हैं कि गोपियाँ साधना मार्ग की ओर बढ़ चुकी हैं और साधना मार्ग में साधक को यदि गर्व हो जाए, अभिमान हो जाए, मान हो जाए तो वह अपनी साधना पर नहीं बढ़ सकता हैं। भगवान् गोपियों के बीच में से अंतर्हित हो गए उनके गर्व को चूर करने के लिए।

"अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः।"

(श्रीमद्‌भागवतम् 10.30.1)

जब गोपियों ने नृत्य करते-करते आँख खोलकर देखा तो राधाकृष्ण का दर्शन नहीं किया। ये गोपियाँ रोने लगी। लता-पता, पशु-पक्षी से लिपट-लिपट करके गोपीयाँ प्यारे कृष्ण को पूछ रही हैं, गोपियाँ सर्वप्रथम अशोक वृक्ष से पूछने लगी।

"दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः"

(श्रीमद्‌भागवतम् 10.30.5)

हे अशोक वृक्ष आप वृद्ध हैं, क्या आप बता सकते हैं कि नन्द सुत कृष्ण कन्हैया कहाँ गए हैं? परन्तु वृक्षों ने कुछ नहीं बताया। गोपियों ने तुलसी से पूछा, हे तुलसी!

आप गोविंद की कृपा पात्री हैं। हे कल्याणी क्या आप बता सकती हैं। श्रीकृष्ण किधर गए।

"कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.30.7)

परन्तु हवा का एक झोंका आया और तुलसी हिलने लगी मानो कह रही है मुझे नहीं मालूम। गोपी ने कहा, ये क्यों बताएगी। ये तो हमारी सौत लगती हैं। कुछ आगे जाकर देखा जमीन पर गड़ा हुआ भारी पैर का निशान देखा मानो कांधे पर कोई किसी को ले गया। गोपियाँ ये देखकर अनुमान कर रही है कि कोई उस शक्ति को कंधे पर चढ़ाकर ले गई हैं। गोपियाँ श्रीकृष्ण का अन्वेषण करते-करते इतना व्याकुल हो गई कि वर्णन नहीं किया जा सकता है।

"इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणाकातराः।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.30.14)

गोपियों का भाव श्रीकृष्ण के लिए उत्तम हैं। श्रीमद् भागवत में जिसे गोपी भाव कहते हैं। अब तक जितनी भी लीला ब्रज में श्रीकृष्ण ने की हैं ये गोपियाँ उन लीलाओं का स्मरण अनुकरण कर रही हैं। कोई गोपी कृष्ण बनी तो कोई अघासुर। अघासुर लीला का अनुसरण कर रही हैं। कोई गोपी पूतना बनी तो कोई कृष्ण। कोई गोपी अरिष्ठासुर बना तो कोई गोपी-कृष्ण। किसी गोपी ने अपनी चुनर तान लि और अपनी उंगली लगा ली और कहा कि 'कृष्णोऽहं पश्यत' मैंने गिरिराज को धारण कर लिया। इस तरह कृष्ण का अनुसरण कर रही हैं, लता पता वृक्ष तुलसी आदि से लिपटकर अपने प्यारे को पूछ रही हैं। जब बहुत समय निकल गया तब राधा रानी ने कहा, प्यारे अब तो बहुत देर हो गई, प्रकट हो जाओ। देखो प्यारे ये गोपियाँ आपके वियोग से कितना दुखी हैं। भगवान् ने कहा, किशोरी जी अभी आगे और चलो, मैं थोड़ी देर में प्रकट हो जाऊँगा। किंतु राधा रानी भगवान् को बहत मनाते हुए कहती हैं, कि प्यारे अब तो मैं एक पल भी नहीं चल सकती।

" न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.30.37)

मैं थक गई हूँ, एक कदम भी नहीं चल सकती। श्रीकृष्ण बोले, किशोरी जी आप थक गई हैं, तो आप उस मिट्टी के चबूतरे पर खड़ी हो जाओ और मेरे कंधे पर बैठ जाओ। आज राधारानी को भी मान हुआ। श्री राधाजी उस मिट्टी के चबूतरे पर खड़ी

हुई। श्रीकृष्ण नीचे की ओर झुके कि अकस्मात अंन्तर्धान हो गए। श्रीराधा रानी को भी छोड़कर प्रभु छिप गए। जब श्रीराधा रानी ने श्रीकृष्ण को नहीं देखा तो पछाड़ खाकर भूमि पर गिर पड़ी। राधारानी आर्तनाद करते हुए प्रभु को पुकारते हुए प्रार्थना करते हुए मूर्च्छित हो गई।

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.30.39)

किशोरी जी प्रभु को पुकार रही हैं। हे नाथ, हे रमण, अपनी दासी राधा के सान्निध्य में प्रकट होकर सुख प्रदान करें। हे श्यामसुंदर, हे नन्दकुमार ऐसे शब्द मुख से निकाल रही हैं। पीछे से गोपियाँ श्रीकृष्ण का स्मरण करती आ रही हैं। मार्ग में जब किशोरी जी को पड़े हुए देखा तो राधा को अपने हाथ का सहारा दिया गोपियों ने। सहारा देकर गोपियाँ राधा जी को लेकर यमुना तट पर आई और गोपी गीत के द्वारा सभी गोपियाँ श्रीकृष्ण का आह्वान करती हैं। श्रीमद्भागवत में 19 श्लोक हैं। जिसे कहते हैं गोपी गीता।

जो व्यक्ति इस गोपी गीत का पाठ करता है निश्चित ही श्रीकृष्ण का दर्शन करता हैं। यह एक अचूक पाठ है सिद्ध पाठ हैं। श्रीकृष्ण प्राप्ति का एक साधन पाठ हैं। जिसे कहते हैं। 'कनक मंजरी छंद' (गोपी गीत) बड़ा दिव्य पाठ है, जिन्हें याद है वे मेरे साथ गाएं, जिन्हें याद नहीं वे श्रीकृष्ण का ध्यान करें। बड़े प्रेम से गाइए।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

गोपी गीत

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते।।

शरदुदाशये साधुजात्-सत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.31.1, 2)

गोपी गीत के द्वारा गोपियाँ श्रीकृष्ण का आह्वान करती हैं, जमुना की पलिन में, ये 19 श्लोक श्रीमद् भागवत में हैं, आप अवश्य पाठ करें, ये बड़ा दिव्य पाठ हैं। जो लोग गोपी गीत का पाठ श्रीकृष्ण के लिए सुनाते हैं। निश्चित उन्हें गोविन्द का दर्शन होता हैं। कितना सुन्दर गोपियाँ प्रभु को कह रही हैं कि

"जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।"

हे प्रभु जब से आपका आगमन इस ब्रज में हुआ है तब से ऋद्धि-सिद्धि सहित लक्ष्मी का भी निवास इस ब्रज में हुआ हैं। आज हम आपको दशों दिशाओं में ढूंढ रहे हैं। अपने प्राणों को धारण कर, हे गोविन्द आपके वियोग में शरद रात्रि भी कितनी उदास मिलती हैं। भगवन आपने अपना सुकटाक्ष पूर्ण नेत्रों से ऐसा हमारे चित्त को भेद दिया हैं। ऐसा वध तो एक शस्त्र से भी नहीं होता। भगवन यदि आपका स्मरण करते-करते हमारे शरीर से प्राण निकल गए तो हे गोविन्द कहीं ऐसा न हो कि आपको स्त्री-वध का पाप लगे। हम तो आपकी बिना मोल की खरीदी हुई दासियां हैं। अपनी दासियों के बीच में दर्शन देकर आप कृत-कृत करें। यदि प्रभु आपको हमें तड़पा-तड़पाकर ऐसे ही मारना था तो हमारी उस विष से रक्षा क्यों करी। अघासुर, बकासुर, पूतना उन दैत्यों से क्यों रक्षा की। लोग कहते हैं कि आप यशोदा के लाल हैं। नहीं-नहीं आप यशोदा के लाल नहीं, गोपियाँ कहती हैं कि-

"न खलु गोपिकानन्दनो भवा-"

(श्रीमद्भागवतम् 10.31.4)

हे कृष्ण, आप तो 'अखिल देहिनाम्' समस्त देहधारी जीवों के आत्म साक्षी हैं। हे गोविन्द "प्रणतदेहिनां पापकशनं" हम आपको प्रणाम करती हैं। जो आपको एक बार प्रणाम कर देते हैं। समर्पित कर देते हैं, तो "पाप कर्षणम्" आप उसके सभी पापों को दूर कर देते हैं।

हे गोविन्द, भगवन?

"मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.31.8)

आपकी जो वाणी है वह कितनी मधुर है, कितनी मीठी हैं। कितनी रहस्यमयी हैं। बड़े-बड़े विद्वान भी आपकी वाणी को सुनकर चकित हो जाते हैं। भगवन आपकी वाणी हमने भी सुनी हैं। "तव कथामृतं तप्तजीवनं" इस तपे हुये जीवन में आपकी वाणी यदि एक बार सुन ली जाए तो अमृत की तरह लाभ करती हैं। एक अमृत देवताओं ने पीया जिस अमृत को पीकर देवताओं ने अपने पुण्य को क्षीण किया। ये कथामृत है इसे पीने से कभी क्षीण नहीं होता। गोपियाँ कहती हैं। इस अमृत को कान में डालकर पीयो। कान रूपी दोनों में कथा रूपी अमृत को डालकर भर-भरकर पीयो। 'तप्त जीवनं' ये तपा हुआ हमारा जीवन है। ये शरीर तपा हैं। किससे? बोले काम, क्रोध, लोभ, मद मोह से। इस तपे जीवन में केवल भागवत सत्संग से शांति

मिले। प्रभु की कथा सुनकर ही परम शीतलता का अनुभव होता है, जैसे भीषण गर्मी के समय पानी डालने से शरीर की गर्मी शान्त हो जाती हैं। उसी प्रकार प्रभु आपकी कथा से परमानंद की अनुभूति होती हैं। देखिए गोपियों ने कितनी सुन्दर भागवत की महिमा बताई।

श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.31.9)

गोपियाँ कहती हैं कि 'श्रवण मंगलं' देखिए और जो ग्रन्थ, जिन्हें पढ़कर चिन्तन मनन करते हैं गोपियाँ कहती हैं 'श्रवण मंगलं' केवल कानों से कथा सुनो। सुनने मात्र से ही जीव का परम् कल्याण कर देती हैं। ये भागवत की कथा है, गोविन्द कथा है, कृष्ण कथा है।

"श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणनित ते भूरिदा जनाः।"

कितनी बार भगवत कथा का श्रवण किया जाए। श्री वेदव्यास लिखते हैं कि श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के तृतीय श्लोक में "मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः" हे रसिक जनों, हे भावुक जनो इस भागवतामृत, रस की 'मोक्ष्यपर्जन्तम्।' पान करते रहें। शरीर छूटने पर दोबारा शरीर मिलने पर भी इसका पान करो। ये तो रसालय हैं। रस का घर हैं। रस से ओत-प्रोत हैं। ऐसी कोई कथा नहीं जो श्रवणनीय न हो। भागवत की हर कथा अनुकरणीय हैं। भागवत की हर कथा श्रवणनीय हैं। गोपियाँ कहती हैं, कि केवल बैठकर भागवत का श्रवण करें और सुनते समय कान को सावधान रखो। सावधानी से सुनो। "सावधानतया शृनुः" प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। हर शब्द का सावधानी से श्रवण करने से कल्याण हो जाता हैं। भागवत की ऐसी कथा है।

व्यासादि कवि जिन्होंने आपकी कथा का गान किया हैं। उन्हें हम प्रणाम करती हैं। इस प्रकार से गोपियाँ कहती हैं, प्यारे! आज आप हमसे छुपते-लुकते हुए वन-वन में विचरण कर रहे हैं। आपके चरण कितने कोमल हैं, जब आपके चरण को हम अपने वक्षस्थल पर धारण करती थीं तो ऐसे लगता था कि कहीं हमारे प्यारे के चरण को आघात न लगे क्योंकि हमारे हृदय कठोर निष्ठुर हैं। आज उन्हीं चरण कमलों से आप वन-वन में विचरण कर रहे हैं। कितने कंटकपूर्ण मार्ग हैं। हे गोविन्द आप प्रकट होकर दासियों को दर्शन लाभ कराएँ। इस प्रकार से जब गोपियाँ गोपी गीत के द्वारा भगवान् का आह्वान करती हैं, तो भगवान् से नहीं रहा गया। गोपियों की प्रार्थना से साक्षात श्रीकृष्ण दर्शन देने आए।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

भगवान् का प्रकट होकर गोपियों को सांत्वना देना

यमुना के पुलिन में श्रीराधा रानी के साथ सभी गोपियाँ कृष्ण दर्शन की लालसा से उत्कंठित होकर बड़ी करुण क्रन्दन कर रही हैं। हे राजन्! उस दृश्य को देखा नहीं जाता, आज भगवान् स्वयं "साक्षान्मम मन्मथ" गोपियों के बीच में प्रकट हो रहे हैं।

जिनके करोड़ों कामदेवों को आभा लज्जित कर रही है, ऐसे सुन्दर पीताम्बर धारण करके श्रीकृष्ण गोपियों के बीच प्रकट हो गए। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय। गोपियों श्रीकृष्ण का दर्शन करते ही उन्हें लेकर यमुना तट पर बैठ गई। दर्शन करके प्रसन्न हो गई। गोपियाँ कहती है, कि प्यारे हम आपसे प्रश्न करती हैं। भगवान् ने कहा पूछो।

1. संसार में कितनी तरह के प्राणी होते हैं। भगवान् ने कहा गोपियों तुम्ही बताओ? एक गोपी बोली। एक होता है जो प्रेम करने वालों के साथ प्रेम करता है।

2. प्रेम करे न करे वह सबसे प्रेम करता है।

3. प्रेम करने वालों के साथ भी सम्बंध नहीं रखता। तो भगवन ये बताइए कि इन तीनों में से आप कौन से हैं। भगवान् ने मुस्कराकर कहा कि जो प्रेम करने वालों के लिए प्रेम करते हैं। ना वे–

मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते।

(श्रीमद्भागवतम् 10.32.17)

भगवान् कहते हैं, जो प्रेम करने वालों के लिए प्रेम करते हैं, वहाँ प्रेम नहीं हैं। प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। यदि किसी ने हमें प्रेम दिया और हमने उसे बदले में दिया तो यह प्रेम नहीं हैं। धर्म भी नहीं हैं। केवल स्वार्थ है, परन्तु गोपियों आपने दूसरे प्राणियों के बारे में पूछा कि जिन्हें कोई प्रेम करे या न करे वह सबसे प्रेम करते हैं। बोले गोपियों वहाँ प्रेम भी हैं। धर्म भी हैं। स्वार्थ नहीं हैं। वे है माता-पिता एवं गुरुजन। चाहे शिष्य गुरु से प्रेम करे या न करे। श्रद्धा रखे या नहीं। परन्तु गुरु का आशीर्वाद उसके जीवन में होता हैं। माता-पिता से प्रीति सन्तान करे या न करे, परन्तु माता-पिता निरंतर उसका स्मरण करते हैं। अपने परिवार के लिए हमेशा कल्याण की भावना बनाए रखते हैं। तो यहाँ प्रेम भी है और धर्म भी है।

भजन्तयभजते ये वै करुणाः पितरौ यथा।

(श्रीमद्भागवतम् 10.32.18)

परन्तु तीसरे प्राणियों के बारे में आपने जो पूछा है, गोपियों उनके चार लक्षण हैं। आत्माराम, पूर्णकाम, कृतघ्न, गुरुद्रोही।

"–आत्माराम", कहते हैं। जो अपनी आत्मा में रमण करे, दुनियादारी से मतलब नहीं।

"–पूर्ण काम", कहते हैं। संसार के विषय, भोग सब सामने पड़ा हैं, परन्तु तृप्त हैं, कोई ईच्छा नहीं हैं,

"–कृतघ्न", यानि जो उपकार को न माने।

"–गुरुद्रोही", उपकार करने वाले को अपना शत्रु मान ले।

तो उसके चार लक्षण हैं गोपियाँ,

परन्तु इन तीनों में से हम कोई भी नहीं हैं।

गोपियों इस दुर्जयश्रृंखला को तोड़ना कितना कठिन है? इस संसार के बंधन को तोड़ना कितना कठिन है? कहना तो सरल है, परन्तु मोह ममता को छोड़ना कठिन हैं। तुमने मेरे लिए इस संसार कीश्रृंखला को, मोह को, बंधन तोड़ दिया। यदि मैं देवताओंके समान आयु प्राप्त कर लूं तो भी तुम्हारे कर्ज से मुक्त नहीं हो सकता। कब तक? जब तक तुम नहीं चाहोगी। देखो, गोपियों जितना मेरा वियोग में चिन्तन होता है उतना संयोग में नहीं। गोपियाँ कृष्ण की वाणी सुनकर गद्‌गद् हो गई। देखिए पहले भगवान् ने किया रास, अब महारास की ओर जा रहे हैं। प्रेम से कहो श्रीराधे।

रास क्या है? "रसो बै सहः, रसम् ह्वायन् लब्धानंद भवति"

उपनिषद भी कहता है कि परमात्मा रस मूर्ति है, यह स्वरूप है, तो परमात्मा का वह रसावतार कौन सा है? वही श्रीकृष्ण अवतार हैं। इसे कहते हैं रसावतार। साक्षात् रस की मूर्ति हैं- श्रीकृष्ण।

"रसानाम् समूहः इति रासः" जहाँ एक रस अनेक रसों के रूप में प्रकट हो गया हो, भैया! उसे ही कहते हैं रास। अब भगवान् चल रहे हैं। महारास की ओर, महारास में प्रवेश उसे मिलता है जिसने पहले रास देखा हो, रास में जिसे प्रवेश मिला हो वही महारास की ओर जाता हैं। जिस महारास में कामदेव ने गोपियों के माध्यम से श्रीकृष्ण की ओर बाण छोड़े–पहला आलिंगन, दूसरा अलका बोलि स्पर्श, तीसरा नर्महास, चौथा नखाग्रयात, पाँचवाँ है सुष्मीत कटाक्षपात। ये पाँच बाण कामदेव ने गोपियों के माध्यम से श्रीकृष्ण पर छोड़े। एक बार कामदेव श्रीकृष्ण के पास आकर ताल ठोकने लगे। भगवान् ने कहा, बेटा उद्‌दंड हो गये हो, क्या बात है? पिता के सामने ही ताल

ठोक रहा है। कोई पुत्र यदि पिता के सामने ताल ठोके तो क्रोध पिता को आयेगा ही। भगवान् ने कहा, क्या इच्छा है? कामदेव ने कहा, आपसे युद्ध करने की इच्छा है। प्रभु ने कहा मैदानी लड़ाई लड़ोगे या किले की, कामदेव ने कहा कि महाराज अबतक तो किले की लड़ाई लडी़, अब आपसे मैदानी युद्ध करने की इच्छा हैं। भगवान् ने कहा कि, तो फिर चलो वृन्दावन यमुना तट पर। बंसी बट की छाया पर भगवान् पधारे हैं। कामदेव का मान भंग करने के लिए। भगवान् गोपियों के साथ महारास किया। ये काम लीला नहीं, काम पर विजय प्राप्ति की लीला है।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

महारास

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः।
यं मन्येरन्नभस्तावद्विमानशतसङ्कु लम्।
दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.33.3)

इन महाभागी गोपियों के साथ भगवान् महारास कर रहे हैं, रासलीला हो रही हैं। जितनी गोपियाँ हैं उतने ही भगवान् ने रूप धारण कर लिया हैं। प्रत्येक गोपियों के साथ भगवान् उस महारास के बीच में नृत्य करते हैं। योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण महारास उत्सव में गोपी मंडलों के बीच दो-दो गोपियों के बीच में एक-एक कृष्ण ऐसे शोभा पा रहे हैं जो अनिर्वचनीय हैं। कहीं तो भगवान् आलिंगन बद्ध खड़े हैं, कहीं भगवान् गोपियों के साथ पाद से पाद मिलाकर ताल से ताल मिलकर नृत्य कर रहे हैं। श्रीशुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन, इस प्रकार से भगवान् ने महारास लीला की–

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.33.16)

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् जैसे एक बालक अपनी आकृति को देखकर खेलता है, कभी बच्चे को देखना, बालक अपनी आकृति को शीशे पर देखकर हाथ मारता है, खेलता हैं। इसी प्रकार भगवान् अपनी आकृति से ही तो खेल रहे हैं। अपनी आत्माकार वृत्ति से ही श्रीकृष्ण आत्माभुत उन जीवों से प्रभु खेल रहे

हैं, ये महारास लीला हो रही है।

"रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि–"

श्री शुकदेव महाराज ने जब राजा परीक्षित को सुनाई है, तो परीक्षित ने कथा सुनकर कहा कि महाराज एक बात समझ नहीं आती। थोड़ा समझाओ कि जिस धर्म की स्थापना करने के लिए अवतार हुआ ऐसे श्रीकृष्ण का परस्त्रीगमन क्यों? ये बताइए। शुकदेवजी महाराज कहते हैं कि राजन् अग्नि को, ईश्वर को और सूर्य को ही मर्यादा का उल्लंघन करते हुए देखा है।

"समर्थ को नहीं दोष गुँसाई"

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.33.29)

परन्तु प्रभु की ये लीला को अनुकरण नहीं करना। उन्हीं लीला का हमें अनुकरण करना चाहिए जो अनुकरणीय हैं। यदि कोई व्यक्ति कहता है कि शिव ने विष पान किया मैं भी करूँ तो होगा "गोविंदाय नमः"। वह तो मर ही जाएगा। भगवान् की उन्हीं लीलाओं का अनुकरण करो जो अनुकरणीय हैं। हर लीला का हमें अनुकरण नहीं करना चाहिए। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन्–

"गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम्"

(श्रीमद्भागवतम् 10.33.35)

परीक्षित भगवान् केवल गोपियों के लिए ही पति नहीं है जितने भी देवधारी जीव हैं, सबके पति श्रीकृष्ण हैं। जितनी भी गोपियाँ थीं सबके पति थे। उन पतियों को ये आभास था कि हमारी पत्नी हमारे पास हैं।

नासूयन्खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया।
मन्यमानाः स्वपाश्वर्श्वस्थान्स्वान्स्वान्दारान्व्रजौकसः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.33.37)

ये तो आत्मा से परमात्मा श्रीकृष्ण से मिलन हो रहा हैं। किसी गोप के अंदर श्रीकृष्ण के प्रति अनसूया का भाव नहीं आया। किसी भी गोप के मन में श्रीकृष्ण के प्रति अनसूया भाव द्वेषभाव नहीं आया। सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी परम माया शक्ति से सबको मोहित कर दिया।

इस प्रकार भगवान् ब्रह्मा की 6 महीने की रात्रि लेकर रास किया।

ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.33.38)

ब्रह्माजी 6 महीने की रात्रि प्रभु ने ले ली और महा रासलीला करते रहें। ये कोई लौकिक नृत्य गीत नहीं हैं। ये तो सर्वेश्वर अखिलेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का सर्वोत्तम रासोत्सव हैं। आत्मा का परमात्मा से मिलन हैं। जब पाँच तीर गोपियों के कामदेव के माध्यम से छोड़े श्रीकृष्ण के ऊपर, तो भगवान् ने पाँचों तीरों को परास्त कर दिया। अंत में कामदेव ने भगवान् को 'अच्युत् केशव' कहकर प्रणाम किया।

बोलिए अच्युत् केशव भगवान् की जय।

उस महारास दर्शन करने के लिए साक्षात् भगवान् शिव भी ब्रज में पधारे हैं। बोलिए शंकर भगवान् की जय। शिव जैसे महान योगी भी उस महारास के दर्शन के लिए ब्रज में आए हैं। जब रास मंडल के अंदर जाने लगे तो द्वार पर खड़े हैं ललिता जी। ये भगवान् की प्रधान सखी हैं। उन्होंने भगवान् शिव को रोक दिया, महाराज आप अन्दर नही जा सकते हैं, शिव ने कहा ललिताजी हमें महारास का दर्शन कराओ। ललिता ने कहा, आप गोपी बनकर ही अंदर जा सकते हैं। ब्रज का जो भाव है, उपासना है वह है कान्त (गोपी) भाव।

एक बार का प्रसंग है जब मीरा जी वृन्दावन में पधारी। उस समय ब्रज में एक गोड़ीय आचार्य श्री जीव गोस्वामी जी, जिनका नाम मीरा ने सुना हैं। परम भक्त, परम वैष्णव एवं परं विद्वान हैं। मीरा जी की इच्छा थी कि उनके दर्शन करूँ। जब जीव गोस्वामी जी की कुटिया में मीरा जी पहुँची तो द्वार पर ही सेवक ने रोक दिया। अंदर से खबर आई, सेवक ने कहा कि हमारे गुरुदेव की आज्ञा है कि मैं स्त्रियों से नहीं मिलता। मीरा जी ने सुना तो हँसकर कहा कि आज मुझे पहली बार पता चला कि वृन्दावन में कृष्ण के अलावा दूसरा भी पुरुष रहता है। जब जाकर सेवक ने ये बात जीव गोस्वामी को सुनाई, तो वे लज्जित हो गए, तुरंत अपने आसन से उठ बैठे और द्वार की ओर दौड़ पड़े। मीरा जी के चरणों में गिर पड़े। वास्तव में मुझे अपने पुरुषत्व का अभिमान हो गया। पुरुष तो केवल कृष्ण हैं। जीवमात्र ही गोपी है। भगवान् श्रीकृष्ण का अंशभूत जीव ही गोपी हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का अंश जीव गोपी हैं। तो आज भगवान् शिव महारास देखना चाहते हैं तो शिव को भी बनना ही पड़ेगा गोपी।

गोपी कौन है? "गोभि इन्द्रिय: भक्त रसमपिबति स: गोपी"

जो अपने हर ज्ञान और कर्म से इन्द्रिय से कृष्ण रसपान करते हैं। वही जीव गोपी हैं, तो भगवान् शिव को गोपी बनाया सुन्दर लहंगा, चोली, बिन्दी, कुंडल, हार ललिता जी पहना रही हैं। सुन्दर श्रृंगार कर एक हाथ का घूंघट निकालकर दाढ़ी मूंछ भी छिपा

दी। वृन्दावन बिहारी की जय, जुगलमन्त्र का उपदेश ललिता जी ने देकर महारास में प्रवेश दिलाया। जब महारास में भगवान् शिव पधारे। लम्बी चौड़ी हट्टी कट्टी गोपी पहुँची, तो सब गोपियाँ देख रही हैं कि ये कौन है? भगवान् ने भी देखा। प्रभु समझ गए कि ये तो भगवान् शिव हैं, बहुत देर तक प्रभु भगवान् शिव के साथ नृत्य करते रहें। परन्तु भगवान् ने कहा कि आज हमारे-साथ शिव भी गोपी बनकर नृत्य कर रहे हैं। चलो रास के बीच में थोड़ा परिहास हो जाए। रास का आनंद दुगुना बढ़ जाएगा। तो भगवान् श्रीकृष्ण सभी गोपियों से कहते हैं कि अरे गोपियों तुम मेरे साथ कितना देर से नृत्य कर रही हो, तुम्हारा मुख दर्शन तो किया ही नहीं। तुम्हारा मुख तो दर्शन कराओ।

सब घूंघट में हो, अरे मुख तो दिखाओ ना, सभी ने कहा प्यारे आप से क्या छुपाना, देख लो हमारा मुख। भगवान् शिव ने मन में सोचा ये कन्हैया को क्या सूझी। जैसे-तैसे हम यहाँ आए हैं और ये कन्हैया मेरी बेइज्जती में जुटा हैं। परन्तु हजारों गोपियों में कन्हैया शायद मुख देखते-देखते थक जाएँगे।

भगवान् श्रीकृष्ण सब गोपियों से बोले, गोपियों तुम सब एक साथ लाईन में खड़ी हो जाओ। मैं सबका बारी-बारी मुख देखूँगा। शिव भगवान् ने सोचा ठीक है। मैं अंत में खड़ा हो जाऊँगा हजारों-करोड़ों गोपियाँ हैं। कनाई थक जायेंगें, तो सबसे अंत में जब भगवान् शिव खड़े हुए, श्रीकृष्ण की दृष्टि जब शिव पर पड़ी तो बोले, अरे गोपियों देखो, मैं पहला नम्बर ईधर से शुरू नहीं करूँगा उधर से करूँगा।

भगवान् शिव ने सोचा कि यह तो मेरा ही पहला नम्बर आया। जब वे भागने लगे तो भगवान् श्रीकृष्ण ने झट शिव को पकड़कर घूँघट ऊपर कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविंद से कितना सुन्दर भाव स्फुटित हुआ बोले, आइए गोपेश्वर, आपकी जय हो। आपकी जय हो। बोलिए गोपेश्वर महादेव की जय। शंकर भगवान् की जय। आज भी श्रीवृन्दावन में यमुना तट पर गोपेश्वर भगवान् विराजमान हैं। सर्व मनोकामना पूर्ण करने वाले भगवान् शिव हैं। आज गोपियों के बीच भोले नाथ को देखकर श्रीकृष्ण क्रोधित नहीं हुए। बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया। बोले आओ गोपेश्वर आपकी जय हो- जय हो भगवान् श्रीकृष्ण को भगवान् शंकर का गोपी रूप में अतिप्रिय लगा। श्रीकृष्ण के प्रिय शंकर हैं। शंकर वैष्णव हैं, अग्रणी, वैष्णव हैं।

"वैष्णव नाम यथा शम्भु"

आप कभी वृन्दावन जाएँ और वह यात्रा तब पूरी होगी जब गोपेश्वर महादेव का

दर्शन करोगे। हर सोमवार को गोपिका श्रृंगार होता हैं। साक्षात गोपी बनकर भगवान् शिव दर्शन देते हैं तो भगवान् शिव हैं नटराज और भगवान् श्रीकृष्ण हैं नटवर। नटवर ने किया है कत्थक। नटराज ने किया है तांडव। बड़ा ही दिव्य नृत्य हैं। भैया सरस्वती यदि चाहे अपनी वाणी से वर्णन करना तो भी नहीं कर सकती। शिव और कृष्ण का दिव्य नृत्य हो रहा हैं। बोलो कृष्ण की जय। भगवान् शिव की जय।

भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् शिव तन्मय होकर नृत्य कर रहे हैं, भैया! उसका वर्णन कौन कर सकता हैं? शुकदेव जी कहते हैं कि 6 महीने की रात्रि ब्रह्मा के ले ली और महारास चलता रहा, जब रात्रि पूर्ण हुई भगवान् कृष्ण कहते हैं अरे! गोपियों, अब तुम अपने घर पधारो। गोपियाँ बोली आप कहाँ जाओगे, बताओ। भगवान् ने कहा मैं अपने गुरुजी के दर्शन करने जाऊँगा। वे बोली आपके गुरु कौन हैं? प्रभु ने कहा दुर्वासा मेरे गुरु हैं। बोली कहाँ रहते हैं? यमुना के पार, तो सभी गोपियों ने कहा, प्यारे हमें अपने गुरुदेव का दर्शन नहीं कराओगे। गोपियों अवश्य कराऊँगा, परन्तु आप पहले मेरे गुरुदेव का दर्शन कर आवे फिर मैं जाऊँगा। भगवान् की आज्ञा लेकर गोपियाँ यमुना जी की ओर जाने लगी और कहा गुरु के लिए कोई भेंट दों। प्रभु ने योगमाया को आज्ञा दी कि सुन्दर दिव्य थाली में 56 भोग, पदार्थ फल आदि लेकर जब श्री यमुना तट पर गई तो यमुना पूर्ण वेग के साथ बह रही है। कोई नौका भी नहीं है गोपियाँ लौटकर श्रीकृष्ण के पास आई।

बोली प्रभु यमुना को कैसे पार करें? ये तो पूर्ण वेग के साथ बह रही हैं। प्रभु ने कहा तुम यमुना रानी से कहो कि "हमारे प्यारे श्रीकृष्ण के गुरुदेव दुर्वासा केवल दूर्वा घास ही खाकर रहते हैं। तो यमुना जी हमें मार्ग प्रदान करो।" गोपियाँ विचारने लगी कि इतना पहुँचा हुआ सन्त जो दूर्बा ही खाकर रहता है। ऐसे सन्त का दर्शन तो अवश्य ही करना चाहिए। झट गोपियों ने तट पर जाकर के कहा, कि अरे यमुना हमारे प्यारे श्रीकृष्ण के गुरुदेव जो दुर्बा खाकर ही रहते हैं। तो हमें मार्ग प्रदान करो। तो "मार्गम् दरौ" झट यमुना महारानी दोनों ओर हट गई। यानि यमुना से जल दूर चला गया। यमुना को पार करके गोपियाँ दुर्वासा जी के पास गई। वह आसन लगाकर बैठे थे। प्रणाम करके गोपियों ने सब मिठाई सन्त के चरणों में अर्पित कर दी। देखते-देखते दुर्वासा जी सारा माल खा गए। गोपियाँ एक दूसरे की शक्ल देखकर सोचने लगा कि प्यारे ने कहा था कि वह केवल घास ही खाकर रहते हैं, परन्तु ये बाबजी तो सारा माल चटपट कर गए। प्रसाद भी नहीं छोड़ा। वे बोली कोई बात नहीं हमें प्यारे श्रीकृष्ण गुरु दर्शन का फल तो मिल गया। गोपियों ने गुरु देव दुर्वासा

को प्रणाम किया और यमुना तट पर आईं, देखा, पुनः वेग से यमुनाजी बह रही हैं। तुरंत लौटकर दुर्वासा के पास आई और कहा वहाँ से तो आपके चेले ने यमुना जी पार करने का मन्त्र बताया तो अब आप भी तो कुछ बताओ कैसे जमुना जी को पार करें।

दुर्वासा बोले देखो "गोपियों यमुना जी से कहो कि हमारे प्यारे श्रीकृष्ण का यदि अखंड ब्रह्मचर्य स्वरूप हो तो हमें मार्ग प्रदान करें"। गोपियों ने कहा कैसे अखंड ब्रह्मचारी हैं? अभी अभी तो हमारे साथ महारास किया। परन्तु हमें तो यमुना जी पार करना ही है तो गोपियाँ यमुना तट पर आई और कहा "यमुना जी हमारे प्यारे का यदि अखंड ब्रह्मचर्य स्वरूप हो तो हमें मार्ग प्रदान करे।।" तो "मार्गम् ददौ" झट यमुना दोनों तरफ हट गई। प्रभु के पास जाकर प्रणाम किया। भगवान् ने पूछा गोपियों मेरे गुरुदेव का दर्शन किया, वे बोली जैसा चेला वैसा गुरु। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

गोपी ने कहा कि प्यारे आपने तो कहा था कि मेरे गुरु तो केवल दूर्बा घास खाकर ही रहते हैं, परन्तु इस बाबा जी ने तो प्रसाद तक नहीं छोड़ा। श्रीकृष्ण बोले, आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। प्रसाद भी नहीं छोड़ा। मैंने भी ठीक कहा केवल घास ही खाते हैं। बोले प्रभु कैसे सम्भव भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं गोपीयों मेरे गुरूदेव के दृष्टि में संसार के सभी पदार्थ तृण के समान, तुम लेकर गई थी तो तुम्हारा सम्मान तो करना ही था। अतः उन्होंने ग्रहण किया अन्यथा वे ग्रहण नहीं करते। बोली प्रभु तो ठीक है, परन्तु आप कैसे अखंड ब्रह्मचारी हो। तो भगवान् इसी लीला रहस्य को प्रकट करने के लिए भगवान् ने महारास लीला की है, जो कामलीला नहीं। यह तो काम पर विजय प्राप्ति की लीला हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन्–

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद्यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.33.39)

श्री शुकदेव जी कहते हैं, ये महारास की कथा जो श्रवण करता है सुनता है, भैया उनके अंदर भगवान् की पराभक्ति जाग्रत होती हैं। ये बड़ा दिव्य चरित्र है भगवान् का। दिव्य लीला है "हृदोगमाश्वपहिनो त्यचिरेण धीरः"

यदि किसी व्यक्ति के जीवन में काम विकार हो, हृदय रोग हो तो देखिए आज

ये रोग व्यक्ति को बहुत लगा होता हैं। प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण उच्चतम रक्तचाप, निम्नतम रस्तचाप की बहुत लोगों को शिकायत है, परन्तु हम औषधी पर तो विश्वास करते हैं। हमारे भागवत की कथा में कितनी शक्ति है देखिए। भागवत की महारास की कथा में लिखा हैं अंतिम श्लोक में कि जिस व्यक्ति को हृदय रोग हो उसे महारास का पाठ करना चाहिए। 'रास पंचाध्यायी' अध्याय का पाठ करने से उसका हृदय रोग ठीक हो जाता हैं। आप स्वयं प्रयोग करके देखिए। अनुभव कीजिए स्वयं अपने जीवन में।

ये पाँच अध्याय हैं, श्रीमद्‌भावगत के दसवें स्कंध के पूर्वाद्ध में 29वां अध्याय से 33वें अध्याय तक। ये ठाकुर जी के पंच प्राण हैं। तो जो रास का पाठ करते हैं। उनका हृदय रोग ठीक हो जाता हैं। इस प्रकार से रास–महारास की महिमा बताकर श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं। कि–

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

सुदर्शन और शंखचूड़ का उद्धार

"एकदा देवयात्रायां गोपाल जातकौतुकाः।"

(श्रीमद्‌भागवतम् 10.34.1)

एक बार महाशिवरात्रि का पर्व पड़ा, सभी ब्रजवासी देवी अम्बिका के वन में पूजन करने पधारे। सभी ने देवी का पूजन किया और रात्रि में वहीं विश्राम किया। रात्रि में एक बड़ा सर्प वहाँ आया, नन्द बाबा सो रहे थे उनके पैर पकड़ लिए, लिपट गए पांव में, नन्द बाबा चीखने लगे। हे कृष्ण, हे बलराम हमारी रक्षा करो, रक्षा करो। देखो कितना बड़ा सर्प हमें निगल रहा है।

स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम्।
सर्पो मा ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय।

(श्रीमद्‌भागवतम् 10.34.6)

झट श्रीकृष्ण दौड़कर आए हैं, भगवान् को तो बचपन से सर्प पकड़ने की आदत थी। श्रीकृष्ण ने अपने चरणों का स्पर्श किया और सर्प ने सर्प योनि छोड़कर दिव्य शरीर धारण किया। भगवान् ने पूछा आप कौन हैं? ये परिचय देने लगे।

अहं विद्याधरः कश्चित्सुदर्शन इति श्रुतः।
श्रिया स्वरूपसम्पत्त्या विमानेनाचरन्दिशः।

(श्रीमद्‌भागवतम् 10.34.12)

भगवान् को कहा प्रभु मैं विद्याधर हूँ, मेरे नाम था सुदर्शन। मैंने एक सन्त के रूप को देखकर उसका मजाक किया। हंसी उड़ा दी, उस सन्त ने श्राप दिया कि जा तू सर्प योनि में चला जा। प्रभु मैं इसी सर्प योनि में पड़ा हूँ। परन्तु आज आपने अनुग्रह किया, स्पर्श करके मेरा उद्धार किया। मैं विमुक्त हो गया हूँ ब्रह्मश्राप से। "ब्रह्मदण्डात् विमुक्तोऽदृं"।

इस प्रकार से भगवान् ने सुदर्शन नामक विद्याधर को सर्पयोनि से मुक्त किया।

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन! एक दिन शंखचूड, नामक दैत्य आया। यह कुबेर के दूत था। इसके मस्तक से मणि निकालकर भगवान् ने बलराम जी को दे दी।

एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः सम्प्रमत्तवत्।
शङ्खचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.34.25)

इसी प्रकार से भगवान् नन्दनन्दन, श्यामसुन्दर दैनिक वन में गौ चराने में जाते हैं और लीला करते थे। पीछे से गोपियाँ भगवान् को स्मरण करती थीं। श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन्..............................

अथ पंचत्रिंशोऽध्यायः

युगल गीत

एवं अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

अरिष्टासुर का उद्धार और कंस का श्री अक्रूर जी को ब्रज भेजना

एक अरिष्टासुर नामक राक्षस महान बैल के रूप में आया। भगवान् ने उस अरिष्टासुर का वध करके ब्रजवासियों को भयमुक्त किया। एक दिन श्री नारदजी मथुरा में कंस के पास गए।

कंसायाथाह भगवान्नारदो देवदर्शनः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.36.16)

भगवान् का स्मरण करते हुए नारद जी जाकर कंस से मिले। कंस से जाकर बोले भैया बताओ देवकी के बालकों का क्या हुआ? कंस ने कहा गुरुजी, मैंने अपनी बहन के 6 पुत्रों को मार दिया। सातवां गर्भ नष्ट हुआ और आठवां मैंने ब्रज के गाँव-गाँव

में दूतों को भेजा तो उन्होंने देवकी के आठवें पुत्र को भी मार दिया होगा।

नारद जी ने कहा, अरे कंस तू बड़ा पागल है! इतना भी नहीं जानता, देख कंस देवकी के सातवें एवं आठवें पुत्र जीवित हैं, जो नन्दगाँव में यशोदा का लाला है, देवकी का आठवाँ पुत्र हैं और जो बलराम है वह देवकी का सातवां पुत्र हैं। तुमसे वसुदेव जी ने झूठ बोला, अपना पुत्र गोकुल में छोड़ आए और उसकी कन्या लेकर तेरे पास आए, इतना कहकर श्रीमन्ननारायण, जाप करते-करते नारद जी महाराज चल दिए।

नारद जी महाराज तो चले गए, उसी समय कंस ने अक्रूर को बुलाया और कहा कि आप मेरे परम हितैषी हैं। अक्रूर जी ब्रज में जाकर किसी भी तरह कृष्ण और बलराम को लेकर आइए।

गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतावानकदुन्दुभेः।
आसाते ताविहानेन रथेनानय मा चिरम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.36.30)

अक्रूर जी ने मन में विचार किया कि ये दुष्ट हैं। इसलिए पाप के विषय में ही विचार करता हैं। यदि मैं इसकी आज्ञा का उल्लंघन करूँगा तो ये मुझे ही दंड दे देगा। इससे तो अच्छा है वृन्दावन जाकर ब्रजभूमि का, कृष्ण-बलराम का दर्शन करूँ और उन्हें ले आऊँ, जो इस दुष्ट का संहार करे तो मन ही मन भगवान् को याद करते हुए ब्रजयात्रा का संकल्प ले लिया। अक्रूर जी ब्रजयात्रा की तैयारी कर रहे हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन इस प्रकार से एक दिन भगवान् नन्दनन्दन, श्यामसुन्दर ने यमुना तट पर उस केशी नाम के असुर को मारा।

अथ सप्तत्रिंशोऽध्याय:

केशी और व्योमासुर का उद्धार तथा नारद जी के द्वारा भगवान् की स्तुति

एवं अथाष्टत्रिंशोऽध्याय:

अक्रूर जी की ब्रजयात्रा

जिसका नाम था केशी, जो कंस की प्रेरणा से कृष्ण को मारने आए थे। आज कृष्ण ने ही उसे यमुना तट पर मार डाला। "केशी तु कंश प्रहित:" ये केशी नामक दानव व्रज में घोड़े के रूप में आए। भगवान् उसको मारकर खड़े

हैं। यमुना तट पर, तो नारद जी प्रकट हुए 'श्रीमन्नारायण' भगवान् ने कहा, नारद जी आइए, आइए, आप कंस को खबर दे आए कि देवकी का पुत्र कृष्ण बलराम के रूप में नन्दग्राम में हैं। हाँ प्रभु जैसे आपने प्रेरणा की हम कंस को खबर दे आए। अब मैं आपको परसों मथुरा पुरी में देखना चाहता हूँ। नारद जी को भगवान् ने कहा—नारदजी मैं भी काका जी का इंतजार कर रहा हूँ। कब मुझे ब्रज में लेने आवै, मैं ब्रजलीला को पुर्ण कर मथुरा लीला करूँगा। नारद जी चल दिए नारायण नारायण।

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि राजन्, अक्रूर जी सुन्दर रथ में बैठे हैं। जिसमें पवन की गति से चलने वाले अश्व लगे हुये हैं।

अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः।
उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.38.1)

सुन्दर रथ में बैठकर अक्रूर जी वृन्दावन आ रहे हैं। मन में प्रसन्नता है, वे सोच रहे हैं। कि—

किं मयाचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः।
किं 'वाथाप्यर्हते दत्तं यद्द्रक्ष्याम्यद्य केशवम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.38.3)

मैंने क्या तप किया जो मैं आज साक्षात् ब्रज नन्दन हरि का दर्शन करूँगा। आज तो कंस के अनुग्रह से कृष्ण का दर्शन हो रहा हैं। बड़भागी है हम। भगवान् का दर्शन करेंगे। अनेक प्रकार से चिन्तन करते हुए अक्रूर जी ब्रज की ओर जा रहे हैं। एक खुशी, एक गम लेकर ब्रज यात्रा कर रहे हैं। देखिए श्री वृन्दावन की यात्रा कोई करे तो गुनगुनाते हुए करनी चाहिए तो दो मिनट के लिए आप भी गाइए।

संकीर्तन

गोविन्द राधे माधव, गोपाल राधे माधव
मेरे माधव, मेरे माधव, मेरे माधव
गोविन्द राधे माधव, गोपाल राधेमाधव
मेरे माधव, मेरे माधव, मेरे माधव

श्री अक्रूर जी महाराज प्रभु का नाम संकीर्तन करते हुए नन्दगाँव की ओर यात्रा पर जा रहे हैं। भगवान् की जो नवधा भक्ति हैं। इसमें जो छठी सीढ़ी है, वन्दनम् ये

अक्रूर जी के जीवन में देखने को मिला। साक्षात् अक्रूर जी महाराज वन्दना करते हुए श्रीकृष्ण की ओर जा रहे हैं।

ममाद्यामङ्गला नष्टं फलवांश्चैव मे भवः।
यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयान्घ्रिपङ्कजम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.38.6)

मार्ग में अक्रूर जी ने विचार किया कि मैं एक कंस का दूत बनकर जा रहा हूँ। एक दुष्ट का संगी। कहीं ऐसा न हो कि प्रभु मुझे देखकर मुँह न फेर लें। नहीं नहीं मेरे ठाकुर बड़े उदार हैं। कृष्ण बलराम मुझे देखकर आलिंगन करेंगे इस तरह सोचते-सोचते संधिकाल के समय अक्रूर जी महाराज नन्द गाँव पहुँचे।

"रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.38.24)

भगवान् के चरण कमल का दर्शन कर परम् आह्लाद हुआ। बार-बार अक्रूर जी महाराज रथ से उतरकर साष्टांग दण्डवत कर रहे हैं। नन्द बाबा के साथ श्रीकृष्ण और बलराम जी गाय का दूध निकालकर बाहर आ रहे हैं। श्रीकृष्ण के हाथ में दूध का पात्र है।

ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ।
पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरहेक्षणौ।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.38.28)

दोनों आ रहे हैं। एक ओर कृष्ण दूसरी ओर बलराम। जब अक्रूर जी महारास ने कृष्ण को देखा तुरंत रथ से कूदकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। प्रभु ने जब देखा अक्रूर जी प्रणाम कर रहे हैं तो भगवान् ने दूध के पात्र को फेंक दिया। श्रीकृष्ण दौड़ पड़े और अक्रूर जी को दोनों हाथों से उठा लिया और छाती से लगाया यानी आलिंगन किया। चाचा जी से लिपट गए अक्रूर जी और प्रभु के मिलन यदि सरस्वती जी चाहे कि अपनी वाणी में कह दूँ तो वर्णन नहीं कर सकती। साक्षात् जीव और शिव का मिलन हो रहा हैं। अक्रूर जी और शिव हैं। कृष्ण जी अपने अश्रुपूरित नेत्रों से प्रभु अपने भक्त के पांव प्रक्षालन कर रहे हैं। अक्रूर जी को प्रभु ने उठाया, लेकर नन्दभवन के अंदर गए, आतिथ्य प्रदान किया। एक गौदान भी की। नन्दबाबा ने पूछा महाराज सब प्रकार से मथुरा में आनंद मंगल हैं ना, आज आपने हमारे यहाँ पधार कर नन्दभवन को कैसे पवित्र किया?

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण, बलराम का मथुरागमन

अक्रूर जी ने कहा कि—ब्रजराज मैं कंस की आज्ञा से यहाँ आया हूँ। परसों मथुरा में धनुष्य यज्ञ का कार्यक्रम हैं। आप कृष्ण बलराम के साथ मथुरा चलें और दूध दही का प्रबंध भी आप करें। विशिष्ट लोग जो आयेगें उनके लिये और कंस को ले जाकर दें। जब श्रीकृष्ण, बलराम का नाम लिया तो प्रभु ने कहा बाबा देखो काकाजी ठीक कह रहे हैं। हम मथुरा नहीं गए। कल आपके साथ हम भी जाएँगे। दोनों भाई मथुरा जाने की जिद करने लगे। जब ब्रजरानी ने सुना कि मेरो लाला मथुरा जाय रहो हैं। तो श्री ब्रजरानी यशोदा की आंखों से अश्रु टपकने लगे। रात्रि में भगवान् की मथुरा जाने की तैयारी करती हैं। रोते-राते रात्रि बीत गई, सोई नहीं। प्रातःकाल रोहिणी और यशोदा ने दोनों को तैयार किया मुकुट, कुंडल, हार, बाजूबंद सुन्दरश्रृंगार किया। दोनों ने अपनी अपनी माताओं को प्रणाम किया। प्रभु ने जब माँ के अश्रु देखे तो कहा रो मत। हम बाबा के साथ जा रहे हैं। मथुरा पुरी को देखकर शीघ्र लौट आएँगे। माँ मत रो, जैसे तैसे माँ की भगवान् सान्त्वना प्रदान कर रहे हैं।

जब रथ में प्रभु बैठे, गोपियों को खबर लगी कि प्यारे श्रीकृष्ण मथुरा जा रहे हैं। वे लोकलाज त्यागकर श्रीकृष्ण के रथ को पकड़कर खड़ी हो गई। विधाता को कोस रही हैं।

अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.39.19)

अरे विधाता तू तो दया की मूर्ति है, परन्तु ऐसा लगता है तेरे अंदर दया का अभाव है, इस संसार में तू प्रेमियों का मिलन क्यों कराता है? क्या उनका विछोह के लिए। यही तेरा न्याय है? जिस कृष्ण के लिए हमने अपना पति, परिवार, गुरुजनों को त्याग दिया। आज वे श्रीकृष्ण हमें त्याग कर जा रहे हैं। कृष्ण के रथ को पकड़कर खड़ी है, गोपियाँ रथ को आगे नहीं बढ़ने दे रही हैं। गोपियां—

एक गोपी जिनके अंदर पुत्र भाव था, भगवान् के प्रति। वह कहती है, देख तेरे वियोग से ये गोपियाँ कितनी दुखी हैं। तू कन्हैया मथुरा मत जा। उस गोपी का भाव है, आप लोग भी साथ दीजिए, गाइए गोपियों का विरह गीत।

ओ रे कन्हैया पड़ू तोरे पैया,
मत जा मत जा मथुरा नगरैया।

कंजन की गलियों में दौड़ लगायै

चोरी चोरी माखन को अब कौन खये।
घेर घेर लायेगा कौन तेरी गांईया।।
एवं ब्रुवाणा-विरहातुरा भृशं
व्रजस्त्रिय कृष्णविषक्तमानसाः।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म
सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति।

(श्रीमद्भागवतम् 10.39.31)

प्यारे आपका इतना कठोर हृदय है तो हम आपके रथ के आगे लेट रही हैं। आप रथ के पहिये से हमारी छाती के ऊपर से जाओ, परन्तु हे प्यारे, हमारा एक क्षण के लिए भी त्याग मत करो। भगवान् ने कहा, गोपियों मैं शीघ्र ही आऊँगा। "शीघ्र आयस्य", नहीं आ पाया तो संदेश भेजूंगा। इस प्रकार गोपियाँ रथ के आगे से हटी। रथ चलते ही गोपियाँ देखने लगी। जब रथ दिखना बंद हो गया तो रथ की ध्वजा ही गोपियाँ देखने लगी। जब वह भी दिखनी बंद हो गई तो धूल ही देख रही हैं। कि "प्यारे के रथ की धूल हैं। जब धूल भी दिखनी बंद हो गई तो गोपियों ने कहा कि परतन आगे पांव, पाछे ही लोचन लक्षण, मन हर ले गयो सांवारो। मन हर ले गयो सांवरो।।"

अब तो हमारे ब्रज की ओर कदम नहीं पड़ते। आज हमारे चित्त को चुराकर कृष्ण ले गयो। रोते-बिलखते गोपियाँ घरों में पधारी। रथ भी मथुरा की ओर चल दिया।

"वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम्।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.39.38)

बोलिए श्री वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

धर्म की जय हो। अधर्म का नाश हो।

अक्रूर जी नन्दनन्दन कृष्ण जी को लेकर मथुरा की ओर जा रहे हैं, तो ठाकुर जी ने बड़ी लीला की, कहा! काकाजी भूख लगी है। खाने को मिलेगा। अक्रूर जी ने सोचा अभी से भूख लगी तो कंस को कैसे मारेंगे। सोचते-सोचते अक्रूर जी ने रथ को यमुना तट पर खड़ा किया और यमुना जी में डुबकी लगाई, जल में कृष्ण-बलराम को देख रहे हैं। ऊपर आकर भी रथ में उन्हीं को देख रहे हैं। अक्रूर जी समझ गए प्रभु ने हमारे संदेह को दूर करने के लिए ऐसी लीला की।

अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य निवेश्य च रथोपरि।
कालिन्द्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.39.40)

मार्ग में प्रभु ने अपने चतुर्भुज रूप का भी दर्शन कराया। शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन् भगवान् अपनी लीला का रहस्य प्रकट करते हैं,

"वृन्दावनं परित्यज्य पादम् एकं न गच्छति"

मैं वृन्दावन त्यागकर एक पग भी बाहर नहीं जाता हूँ। अक्रूर जी को भगवान् ने बताया कि आपने जो मेरा नारायण स्वरूप देखा आज वह आपके साथ यशोदानन्दन कृष्ण नहीं जा रहें हैं, वसुदेव नन्दन वासुदेव जा रहे हैं। यशोदानन्दन तो ब्रज में ही निवास करते हैं, अपनी लीला का रहस्य अक्रूर जी के सामने प्रकट किया हैं। संधि समय वे मथुरा सीमा पर पधारे। अक्रूर जी ने भगवान् को कहा कि आप हमारे महलों की ओर चले। भगवान् ने कहा पहले मामा का निमन्त्रण है उनसे मिलकर तुम्हारे घर भी आएंगे। अपने मन से ही अक्रूर जी चल दिए, कंस के महलों में और खबर दे दी–

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

अक्रूरजी के द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति

एवं अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण का मथुरा जी में प्रवेश

इधर रात्रि में भगवान् मथुरा की सीमा में आए। विराजमान हुये प्रातःकाल में श्रीकृष्ण, बलराम यमुना में स्नान करने गए आकर अपने बाबा को प्रणाम किया देखिए भगवान् राम–कृष्ण दोनों प्रातः उठकर अपने माता–पिता, गुरुजन को प्रणाम करते थे।

"प्रातःकाल उठि रघुनाथा, मात पिता गुरु नावहि माथा", बाबा देखो आज पहली बार हम मथुरा आए हैं। हमें आज्ञा दो हम मथुरा पुरी का दर्शन कर आवै। नन्द बाबा ने कहा, देख कन्हैया तू बड़ा चंचल है। देर शाम को दोनों मेरे साथ चलकर दर्शन करना। भगवान् बोले बाबा मैं चंचल तो ठीक है पर दाऊ भैया तो चंचल नहीं हैं ना, मैं इनके साथ मथुरा पुरी का दर्शन करूँगा। बलराम जी के साथ, सभी ग्वाल बालों के साथ, मथुरा दर्शन के लिए चल दिए। श्रीशुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन्–

मथुरां प्राविशद्गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.41.19)

नन्दनन्दन श्याम सुन्दर मथुरा के अंदर प्रवेश कर रहे हैं, कितनी सुन्दर मथुरा पुरी हैं। सुन्दर सिंह द्वार है, दीवारों पर कालाकारियां हैं। अटारियां बनी हैं। जिन पर मथुरा के निवासी गौर और श्याम छवि का दर्शन करने के लिए बैठे हैं। सभी मथुरा के नगर निवासी कहते हैं कि कितने हम बड़भागी हैं? जो आज बारह बरस के बाद ये छवि गौर और श्याम हमारी मथुरा में पधारी हैं, हम कितने सौभाग्यशाली हैं।

'बाबरी आंखयिां जर जाँये जो, स्यामरौ छाँर निहारत गोरो'।।

कृष्ण बलराम का दर्शन कर सभी नगर वासी गद्गद हो गए। कंस ने घोषणा कर दी थी कि कोई भी कृष्ण-बलराम का स्वागत नहीं करेगा। परन्तु भक्तों का भाव है भगवान् कृष्ण बलराम का स्वागत ही नहीं किया बल्कि पुष्प वर्षा कर रहे हैं। बहुत प्रसन्नता के साथ सभी मथुरा वासी श्यामल गौर का स्वागत कर रहे हैं, कंस ने भले ही राजपथ में स्वागत नहीं करने दिया, परन्तु अपने घर की अटारियों पर खड़े होकर सुमन वर्षा कर रहे हैं। सुमन का अर्थ सुन्दर मन भी हैं। आज मथुरा की स्त्रियां, मथुरा के भक्त सुन्दर मन का पुष्प वर्षा भेंट कर रहे हैं

प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखाम्बुजाः।
अभ्यवर्षन्सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ।

(श्रीमद्भागवतम् 10.41.29)

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् कृष्ण बलराम सभी को दर्शन देते हुए जब मथुरा गली से निकलकर यमुना तट पर आ गए। जब भगवान् ने ग्वाल बालों को देखा तो सभी ने लंगोटी लगा रखी हैं। भगवान् ने कहा मथुरावासी क्या कहेंगे कि ब्रज वासियों के पास पहनने के लिये कपड़े नहीं हैं, तो इन्हें कपड़े पहनाएँ। भगवान् ने देखा वहाँ एक रजक बैठा है रंगरेज है, धोबी है।

रजकं कश्चिदायान्तं रङ्गकारं गदाग्रजः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.41.32)

ये राजा कंस का धोबी था। इसने राजा कंस के कपड़ों को धोकर रखा था। भगवान् कृष्ण कहते हैं, भैया तेरा कल्याण हो, ये कपड़े हमें पहनने के लिए दे दे, हम कंस के खास भान्जे हैं। वे हमारे मामा हैं। उस रजक ने जब श्रीकृष्ण बलराम जी को देखा तो तुरंत अपना मूसल उठा लिया। हे कृष्ण बलराम् मालूम है ये वस्त्र किसके हैं? राजा कंस के वस्त्र हैं। यदि तुमने इन वस्त्र की याचना की तो ये मूसल तुम्हारे सिर में ही मारूंगा। गाँव के रहने वाले, वन में विचरण करने वाले, तुम राजा कंस के वस्त्र पहनने की इच्छा रखते हो। धोबी ने बहुत बातें कृष्ण बलराम को सुनाई।

ईदृशान्येव वासांसी नित्यं गिरिवनेचरः।
परिधत्त किमुद्धत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.41.35)

उसी समय भगवान् को रामावतार की बात याद आ गई। भगवान् ने कहा कि इस रजक की कटु बात सुनकर मैंने प्राण प्रिय जानकी को घर से निकाल दिया था। परन्तु वह मेरा मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार था। वहाँ मुझे लीला में मर्यादा रखती थी। यहाँ मर्यादा का काम नहीं हैं। मैं यहाँ लीला पूरी करने आया हूँ। झट से कृष्ण उछले और रजक के हाथ से मूसल छुड़ा लिया और उसी को रजक के मस्तक पर प्रहार करके प्राण हरण कर लिया।

रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.41.37)

शरीर से आत्मा ज्योति निकली भगवान् में विलीन हो गई।

बोलिए श्रीकृष्ण भगवान् की जय।

सभी ग्वाल बालकों से कहा कि, भैया कंस के वस्त्र को पहन लो। सभी कन्हैया की आज्ञा पर उनपर टूट पड़े। परन्तु लम्बा-चौड़ा कंस, छोटा-छोटा ग्वाल बाल। ब्रजवासियों ने कहा कि अरे कन्हैया तुने पहला दियों? कोट को पैंट से ओर पैंट ऊपर से पहनने लगे। प्रभु ने यह देखकर कहा ऐसे नहीं ये कपड़े पहने जाते। आज प्रभु ने अपने हाथों से ग्वाल बालकों को कपड़े पहनाए। पायजामा तो बहुत लम्बा था। जैसे तैसे उन्हें पहनाए गए। छोटे-छोटे ग्वाल बालक हैं। कंस के लम्बे चौड़े वस्त्र हैं। जब सभी ने कोट पहना तो बोले कोट को कहाँ तक ले जाएं, बड़ा लम्बा हैं। कपड़े रास्ता साफ करते चल रहे हैं। इतने लम्बे कोट थे। ग्वाल बालों ने कहा, "कन्हैया तैने हमें क्या हाथी के से झोल पहना दियो हैं।" हम पर चलो अी नहीं जाय हैं। प्रभु ने कहा भैया आगे चलो कोई भक्त मिलेगा तो वस्त्र ठीक करा देंगे। आगे एक दरजी था, जो कृष्ण का ध्यान कर रहा था। श्रीकृष्ण शरणं मम-2 ओर श्रीकृष्ण आ गए। जो श्रीकृष्ण का ध्यान करते हैं। उन्हें दर्शन देर सबेर अवश्य देते हैं। भगवान् ने उस दरजी को देखकर कहा तुम हमारे और हमारे ग्वाल बालकों के कपड़े यथा व्यवस्थित कर दो। उसने उठकर बलराम को और कृष्ण को प्रणाम करके कहा हमारी जन्म-जन्म की साधना पूर्ण हुई, तुम्हारे दर्शन के लिए मैं तड़प रहा था। आज दर्शन हुए। ये रामावतार में भी मिथिलापुरी के दरजी था। ये भगवान् का वस्त्र बनाना चाहता था, परन्तु रामावतार में इच्छा पूर्ण नहीं हुई। आज कृष्णावतार में

भगवान् की आज्ञा से कृष्ण बलराम के लिए पोशाक बनाकर पहनाई। ग्वाल बालकों के कपड़े काटकर ठीक किए। भगवान् ने उसे भक्ति का वर प्रदान किया। श्रीशुकदेव जी महाराज जी कहते हैं कि राजन् सब बालग्वाल मस्त होकर कन्हैया के साथ चल रहे हैं–

जय हो जय हो कन्हैया लाल की।
जय हो जय हो नन्द लाल की।

सभी ग्वाल बालक कहने लगे भैया तूने हमें कितने सुंदर वस्त्र पहनाए। परन्तु देख भैया ब्रजवासियों का गला सूना अच्छा नहीं लगता माला भी पहना दो। प्रभु ने कहा आगे चलो कोई भक्त मिलेगा तो माला पहन लेना। आ गया कोई भक्त माला पहनाने वाला

ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः।
तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.41.43)

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् सुदामा नाम का माली था। ये भी राजपरिवार का माली था और इसने दो बड़ी-बड़ी मालाएँ बना रखी थी। कंस के लिए और अन्य छोटी मालाएँ मंत्रियों के लिए। भगवान् ने उसे देखकर कहा भैया तेरा कल्याण हो। ये माला हमें पहना दें। उस माली ने कृष्ण की ओर देखा कि इतनी सुन्दर छवि है। वास्तव में इस माला के योग्य आप हैं। प्रभु वह दुष्ट कंस नहीं। अब तक मैंने इन हाथों से उस दुष्ट कंस को मालाएँ पहनाईं। आज मैं आपको माला पहनाऊँगा। मेरी जन्मजन्म की साधना पूर्ण होगी। पूर्व जन्म में भी माली था ये, भगवान् शिव का भक्त था, नाम था हिममाली, ऐसे गर्ग संहिता में लिखा हैं। 300 बेल पत्र भगवान् शिव को दैनिक चढ़ाता था।

"ओम नमः शिवायः स्वाहा"

भगवान् शिव ने उसे दर्शन दिया और कहा वर माँग ले। बोला यदि आप मुझसे प्रसन्न है तो वर दे कि साक्षात् श्रीकृष्ण मेरे द्वार पर पधारें और मैं अपने हाथों से भगवान् को पुष्प भेंट करूँ। भगवान् शिव ने कहा तथास्तु ऐसा ही होगा।

यही आकर जन्म लिया मथुरा में माली बना। आज भगवान् इसके द्वार पर स्वयं गए और सुदामा माली ने माला भेंट की। सब ग्वाल बालकों को माला पहना दी भगवान् ने इसे भी भक्ति का वरदान दिया। ग्वाल बालकों के साथ भगवान् आगे

मथुरा पुरी देखने चल दिए।

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

कुब्जा पर कृपा, धनु भंग और कंस की घबराहट

अथ व्रजन्राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीताङ्गविलोपभाजनाम्।
विलोक्य कुबजां युवतीं वराननां पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन्रसप्रदः।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.42.1)

शुकदेव जी कहते हैं कि राजन् जब बीच राजपथ पर भगवान् कृष्ण और बलरामजी पहुँचे तो ग्वाल बालों ने कहा कन्हैया तेने हमें कितने सुन्दर कपड़े पहनाए, कितने सुन्दर माला पहनाए, किन्तु ब्रजवासियों का मस्तक सूना अच्छा नहीं लगता कन्हैया चन्दन लगवा दो। भगवान् ने कहा कोई भक्त मिलेगा तो चंदन भी लगवा दूँगा।

कंस की एक दासी थी–कुब्जा ये सौरन्द्री थी। ये सुबह से शाम तक चंदन घिसती रहती थी। अति सुन्दर थी, लेकिन पीठ में कूबड़ था। सारा सौंदर्य ही भ्रष्ट–नष्ट हो रहा था। ये कंस को अति प्रिय लगती थी। इनके हाथ का चंदन कंस को बहुत भाता था। यहाँ तक कि कूबड़ी के हाथ के चंदन को लगाए बिना कंस को अच्छा नहीं लगता था,

"परन्तु कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम्"
(श्रीमद्भागवतम् 10.42.6)

भगवान् ने उस कुब्जा को देखकर कहा कि हे सुन्दरी, जो उसने सुना कि मुझे किसी ने पहली बार सुन्दरी कहा है, मैं तो सुन्दर नहीं हूँ। झट पीछे मुडकर देखा, श्रीकृष्ण को देखकर गद्गद हो गई। भगवान् ने उसके हाथ में चांदी का कटोरा देखकर कहा, हे सुन्दरी ये चंदन तू हमें लगा दे, आज कुब्जा भगवान् को देखकर अति प्रसन्न हो गई। देखिए परमात्मा की दृष्टि से कौन जीव सुन्दर है, प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। भगवान् रूप सौंदर्य नहीं देखते कि यह रूपवान है, धनवान है परमात्मा की दृष्टि में वही सुन्दर हैं जिसका जीवन सुन्दर है। रूप सुंदर नहीं। किसी ने पूछा कि सुन्दरता कहाँ है? लोग कहते हैं कि महाराज सुन्दरता तो ब्यूटी पार्लर में है। चाहे कितनी सुन्दरता खरीद लो। ब्यूटी पार्लर में सुन्दरता नहीं, सुन्दरता तो व्यक्ति के जीवन चरित्र में है।

देखिए ईश्वर देखता है तुम्हारे जीवन में सद्गुण कितना है तुम्हारा जीवन

कितना सुन्दर है। जीवन को सुन्दर बनाने के लिए पहले अपने आहार को सुन्दर करो, आहार के शुद्धिकरण से आत्मकरण शुद्धि होती हैं, प्रेम से कहो जय श्री राधे। आज व्यक्ति का आहार सुन्दर नहीं हैं। घर-घर में माँस मदिरा न जाने क्या-क्या वस्तुएँ लोग खाता हैं। 'जैसा खाओगे अन्न वैसा होगा मन' दूषित दूसरे अन्न को भी हमें त्यागना चाहिए। तामसिक वस्तु भी हमे त्यागनी चाहिए। पाश्चात्य में भी लोग आज शाकाहारी हो रहे हैं। हरे कृष्णा आंदोलन के माध्यम से हजारों, लाखों लोग शाकाहारी बन रहे हैं। भले ही शास्त्र की दृष्टि से क्यों न हो परन्तु हमारे भारतवर्ष में घर-घरमें माँस मदिरा प्रवेश कर रही है। जीवन को सुन्दर बनाने के लिए पहले भोजन को सुन्दर करना है। यदि आहार सुन्दर न हो तो विचार कभी सुन्दर नहीं हो सकते। जब हमारा आहार सुन्दर होगा तो जीवन भी सुंदर बन जाएगा। देखिए साधना मार्ग के लिए भी एक बात समझ लीजिए-

साधना मार्ग में हमारी तरक्की हो तो ठीक प्रकार से प्रभु का भजन हमारे जीवन में हो, तो इसके लिए भी सात्विक भोजन ही करना होगा। हमारा मन भोजन में उद्विग्न रहता है।

उपाय बताइए, मैं बताऊँ? ध्यान देना आप कहीं किसी तामसिक वस्तु का तो सेवन नहीं करते। मन्त्र करने बैठोगे और तामसिक वस्तुओं का सेवन करोगे। तो मन कभी नहीं लगेगा, ठीक प्रकार से हमारा मन प्रभु चरण में लगे, शुद्ध विचार हमारे हो इसके लिए अपना भोजन सुन्दर करो। पहला आहार सुन्दर। दूसरा विचार सुन्दर व्यक्ति का विचार जैसा होगा उसी प्रकार की आकृति बन जाती हैं। जिसका आहार सात्विक होगा उसके चेहरे पर सौम्यता दिखाई देगी। जिसका भोजन तामसिक होगा। उस व्यक्ति के चेहरे पर क्रूरता झलकती हैं। ये भोजन का सम्बंध है चेहरे से कितनी भी सुन्दर व्यक्ति क्यों न हो, परन्तु चेहरे पर उसके क्रूरता ही होती हैं। जैसा हम भोजन करते हैं। वैसा ही हमारे विचार होते हैं और वैसी ही हमारी आकृति (शक्ल) हो जाती हैं। तो आहार सुन्दर तो विचार सुन्दर। विचार सुन्दर तो जीवन सुंदर।

तो परमात्मा की दृष्टि में वह जीव सुन्दर है जिसका आहार, विचार, जीवन सुन्दर है। आज भगवान् ने कुब्जा को सुन्दर कहा, हे सुन्दरी! ये चंदन हमें लगा दे। कुब्जा ने कहा भगवान् वास्तव में चंदन लगाने योग्य आप हैं। दुष्ट कंस नहीं। तुरंत बीच मथुरा के बाजार में चौकी बिछाकर कृष्ण-बलराम को बैठाकर सुन्दर तिलक लगाया। गालों पर चंदन का फूल बनाया। बाकी प्रसादी ग्वाल बालों ने अपने मस्तक पर पोत ली।

"मुकुन्दस्पर्शनात्सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा"

(श्रीमद्भागवतम् 10.42.8)

यह कन्हैया की प्रसादी हैं। भगवान् ने कहा कुब्जा टेढी है तो मैं भी बांके बिहारी हूँ ना। बांके माने टेढा। प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। आज दोनों ही टेढ़े-टेढ़े मिल गए हैं। ये भी टेढ़ी हैं। मैं भी टेढ़ा हूँ। ये भी कुब्जा हैं। में भी बांके बिहारी हूँ। परन्तु प्रभु कहते हैं। मेरी शरण में कितना भी टेढ़ा आ जाता हैं वह सीधा बन जाता है तो क्या मैं इस कुब्जा को सीधा नहीं कर सकता।

भगवान् ने कुब्जा से कहा सुन्दरी मेरे पास आओ। जब कुब्जा कृष्ण के पास आई। भगवान् ने अपना दाहिना चरण उठाकर कुब्जा के पैरों पर रखा। तो बाँया हाथ पीठ से लगाया दो उंगली थोड़ी से प्रभु लगाई जोर से झटका दिया और कुब्जा को सीधा कर दिया। बोलिए बाल कृष्ण लाल की जय। आध्यात्मिक दृष्टि से आप देखें तो कुब्जा कौन हैं? यह तुम्हारी बुद्धि, जो परमात्मा से विमुख हैं। कुब्जा रूपी बुद्धि को जब हम परमात्मा के चरण में लगा देते हैं। तो उल्टी बुद्धि भी सीधी हो जाती हैं। कुब्जा ने कहा, प्रभु हमारे घर चलें। प्रभु ने कहा पहले मामा जी का निमन्त्रण है फिर आपसे आकर जरूर मिलूँगा। इस प्रकार कुब्जा पर कृपा करके भगवान् आगे बढ़े।

जहाँ पर धनुष यज्ञ का कार्यक्रम चल रहा था। देखते-देखते भगवान् मंच पर चढ़ गए और अपने दाहिने हाथ से उस धनुष को उठा लिया यह शिवजी का धनुष था। देखिए भगवान् राम ने भी शिव धनुष तोड़ा और भगवान् कृष्ण ने भी शिव का धनुष तोड़ा। भगवान् शिव का अपमान नहीं, कंस के अहंकार का प्रतीक हैं। भगवान् ने मंच पर चढ़कर अपने हाथों से शिव धनुष को उठाकर चक्कर खिलाकर नीचे फेंक दिया। दो टुकड़े हो गए। भयंकर शब्द हुआ। बड़े-बड़े दिग्गजों के दिल दहल गए। इतना भयंकर शब्द हुआ। जितने भी पहलवान रखवाले थे सभी श्रीकृष्ण और वलराम से युद्ध करने आ गये।

सबका मन भंग करके श्रीकृष्ण बलराम अपने डेरे में पहुँचे। रात्रि समय कंस ने भी धनुष टूटने की आवाज सुनी। कंस का भी दिल दहल गया, रात्रि में सेवक भोजन लेकर कंस के पास आए, परन्तु आज कंस को भोजन अच्छा नहीं लगता। भोजन में साक्षात् कृष्ण काल के रूप में खड़े हैं। जल पीते हैं तो जल में साक्षात् कृष्ण काल के रूप में दर्शन दे रहे हैं। जितनी भी मणियां महल में हैं। उनमें भी साक्षात् श्रीकृष्ण काल रूप में दिख रहे हैं।

रात्रि में कंस ने आवश्यक बैठक बुलाई। सभी पहलवानों को बुलाया। मुझे मारने

वाले श्रीकृष्ण बलराम मथुरा में आ गए। तुमने उन्हें मारने का कोई प्रबंध नहीं किया। ये सब पहलवान बोले महाराज चिंता क्यों करते हो? आपने जो नया स्टेडियम बनवाया हैं उसका उद्‌घाटन नहीं हुआ। कल उसका उद्‌घाटन दंगल के कार्यक्रम से कर देंगे। कृष्ण बलराम कुश्ती के लिए आएंगे, उन्हें तोड़-मरोड़कर पटक देंगे। आप चिंता क्यों करते हैं? जैसे तैसे कंस को समझा-बुझाया। परन्तु कंस की समझ में कोई बात नहीं आ रही हैं। वो अंतिम समय का लक्षण हैं। श्रीमदभागवत में बताये हैं।

ये सब कंस को दिखाई दे रहे हैं। अपने आपको व्यक्ति यदि सपने में गर्दभ पर सवारी करते हुए देखे और कीचड़ पोते हुए शरीर देखे तो छह महीने के अंदर गोविन्दाय नमो-नमो।

हम भूमि पर चलें और हमार चिन्ह न दिखें तो ये भी अंतिम समय का लक्षण हैं। दर्पण में हमें शरीर तो दिखे मुख नहीं, यह भी अंतिम समय का लक्षण हैं। सबसे नजदीक समय का लक्षण हैं। यदि कान में उंगली डालें तो गूँज होती है यदि वह बंद हो जाए तो आठ दिनों में व्यक्ति की मृत्यु हो जाती हैं। गोविन्दाय नमो नमः।

ये सब कंस को दिखाई दे रहा था। जैसे-तैसे कंस ने रात्रि काटी प्रातः घोषणा कर दी कि आज दंगल का कार्यक्रम हैं। बड़े-बड़े पहलवान कुश्ती लड़ने और देखने आए हैं। ब्रजवासियों ने सुना तो वे भी पधारे।

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

कुवलयापीड़ का उद्धार एवं अखाड़े में प्रवेश

रंगशाला के द्वार पर कुवलयापीड़ हाथी खड़ा हैं। जब ब्रजवासी अंदर जाने लगे तो उस हाथी वाले ने हाथी को हटा लिया, जब श्रीकृष्ण बलराम अंदर जाने लगे तो महावत ने बीच मार्ग में अपने हाथी को खड़ा कर दिया। श्रीकृष्ण ने कहा अरे महावत अपना हाथी हटाओ अंदर हम अपने मामा से मिलने जा रहे हैं। उस महावत ने कहा, अरे कृष्ण, बलराम पीछे किसी अन्य मामा से मिलना, पहले इस मामा से मिल लो। कृष्ण बोले अच्छा तो ये हाथी भी हमारे मामा हैं, तब तो जरूर मिलेंगे। श्रीकृष्ण ने उछलकर एक मुष्टि से प्रहार हाथी के मस्तक पर किया तो वह झट चक्कर खाकर भूमि पर गिर गया। प्रभु ने हाथी की पूंछ पकड़कर सौ हाथ दूर फेंक दिया। इतनी शक्ति श्रीकृष्ण के अंदर, शरीर से आत्मज्योति निकलकर भगवान् में विलीन हो गई।

बोलिए श्रीकृष्ण बलराम की जय। हाथी का दाँत प्रभु ने निकाल लिया। महावत का संहार किया। जितने भी सेवक खड़े थे सबका मान भंग करते अपने-अपने कंधे पर कृष्ण बलराम हाथी के दाँत रखकर रंगशाला में प्रवेश किया। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् इतनी सुन्दर शोभा है उस समय की। भगवान् के दर्शन कितने अद्भुत लग रहे हैं।

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.43.17)

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि उस समय कितनी सुन्दर कृष्ण बलराम की शोभा हैं। भगवान् पहलवानों को तो पहलवान के रूप में दर्शन दे रहे हैं। स्त्रियों को साक्षात काम देव के रूप में भगवान् दर्शन देते हैं। देखिए संस्कृत में स्मर माने कामदेव। साक्षात् कामदेव के रूप में श्रीकृष्ण खड़े हैं। अपने माता-पिता देवकी वसुदेव को छोटे बालक के रूप में दर्शन दे रहे हैं। साक्षात् मृत्यु के रूप में कंस को दिखाई दे रहे हैं।

"जाकि रही भावना जेसी प्रभु मूरत तेने देखियो तैसी"

जिसका जैसा भाव था उसी के अनुसार भगवान् सबको दर्शन दे रहे हैं। कृष्ण भगवान् जो जाकर रंगभूमि में बैठे तो चाणूर और मुष्टिक ताल ठोक रहे हैं, ये बोले अरे कृष्ण बलराम हमसे कुश्ती लड़ो। प्रभु ने कहा हम छोटे बालक और तुम बड़े पहलवान। हम तुमसे कैसे लड़ सकते हैं। चाणूर ने कहा, अरे! कृष्ण तुम छोटे नहीं हो।

न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बिलनां वरः।
लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.43.39)

हे कृष्ण तुम बालक नहीं हो जिसमें 10,000 हाथियों का बल था उस कुवलयाकपीड हाथी को तुमने खेल ही खेल में मार दिया। तुम महान वीर हो। हमसे कुश्ती लड़ो। फिर भगवान् बलराम जी से कहते हैं, दादा भैया, ये दुष्ट आ ही गये हैं। तो दिखाओ न दो-दो हाथ, तुरंत कृष्ण बलराम रंगभूमि में कूद पड़े। बोलिए कृष्ण बलराम की जय।

अथ चतुश्चतवारिंशोऽध्याय:

चाणूर, मुष्टिक आदि पलवानों का तथा कंस का उद्धार

अथ पंचचत्वारिंशोऽध्याय:

श्रीकृष्ण बलराम का यज्ञोपवीत और गुरुकुल प्रवेश

चाणूर के साथ कृष्ण की कुश्ती तथा मुष्टिक के साथ बलराम जी की कुश्ती हो रही हैं। जंघा से जंघा, पंजा से पंजा भगवान् लड रहे हैं। देवता भी उस दृश्य का दर्शन कर रहे हैं। कितना अलौकिक दृश्य हैं। कृष्ण की कुश्ती हो रही है एक पहलवान की तरह प्रभु लड़ रहे हैं। झट चाणूर को भगवान् ने उठा लिया, चक्कर कटाकर फेंक दिया। चाणूर का प्राणांत हो गया। भगवान् कहते हैं। बलराम जी से, कि दादा भैया! आप सकुशल पहलवानों से जोड़ (युद्ध) कराओ मैं मामाजी से मिल आऊँ।

इतना कहकर भगवान् ने ऊँचे मंच पर छलांग लगाई और चढ़ गए कंस के पास। जैसे ही कंस ने देखा तो अपनी खड्ग निकाली और बोले ये कैसे ऊपर आ गया!

"धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम्"

(श्रीमद्भागवतम् 10.44.32)

अरे दुष्ट कैसे आ गया, ये तो गोप का धन संपति चुराते हैं। दुमति नंद के पुत्र को मार डालो। ऐसा कहकर म्यान से तलवार निकालकर मारने को तैयार हुआ।

"तं खड्गपाणिं विचरन्तमाशु"

(श्रीमद्भागवतम् 10.44.36)

भगवान् ने कहा मामाजी अन्त समय में आप ये तलवार दिखा रहे हो। एक बार प्यारसे नहीं कहा कनुआ, कन्हैया। अंत समय में ये तलवार।

भगवान् कहते हैं अहंकार का प्रतीक है ये कंस। अधर्म का प्रतीक है कंस। इसने जीवन में बड़ा पाप किया हैं। भगवान् कहते हैं कि अब इसका पाप का घड़ा भर चुका है कि इतना विचार कर उछलकर कृष्ण ने कंस के बाल पकड़ लिए। देखिए भगवान् ने कंस की चोटी क्यों पकड़ ली? भगवान् को याद आया कि इस दुष्ट ने मेरी माँ के केश पकड़े थे। इसलिए भगवान् ने कंस की चोटी पकड़ ली और दनादन घूंसे मारने लगे। अभी थोड़ी देर है कंस के मरने में। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय। दुष्ट व्यक्ति थोड़ी देर से ही मरते हैं। भगवान् कहते हैं, मामा जी आपका कोई कर्म बाकी नहीं हैं। ऐसा कहते ही धड़ाम से मंच से नीचे फेंक दिया। नीचे गिरते ही

उस पर भगवान् भी त्रिलोकी का भार लेकर कूद पड़े। जब कंस का प्राणांत हुआ सभी प्रसन्न हुए। एक व्यक्ति ऐसा था भैया जो प्रसन्न नहीं था। सबने ताली बजाकर भगवान् का स्वागत किया। उस एक व्यक्ति को छोड़कर। भैया वह कौन था। वह था कंस, जो मर गया। कंस को मुक्ति मिली। ब्रजवासी परिहास में कहते हैं। कंस को तो मुक्ति मिल गई।

"मुक्ति कहे गोपाल से मेरी मुक्ति बताए"

"बरज रज उड़ मस्तकलागे तो मुक्ती मुक्त हो जाए।"

आज सभी ने श्रीकृष्ण का कन्हैया का, गोपाल का, गोविन्द का स्वागत किया। आइए ठाकुर का स्वागत करें।

संकीर्तन्

स्वागतम् कृष्ण शरनागतम् कृष्ण

देखिए जो ताली नहीं बजाएँगे वे तो मालूम है किस श्रेणी में जाएँगे, कंस की। जो ताली बजाकर बोलेंगे वे श्रीकृष्ण की श्रेणी में जाएँगे। तो प्रेम से, ताली बजाकर झूमकर गाइए।

संकीर्तन

स्वागतम् कृष्ण शरणागतम कृष्ण,

स्वागतम् सुस्वागतम् शरणागतम कृष्णा

सभी ने कन्हैया का स्वागत किया। प्रभु दौड़ पड़े कारागार की ओर माता-पिता के पास जो कैद हैं, प्रभु ने उन्हें बंधन से मुक्त किया। आज 11 वर्ष 4.5 महीने के बाद अपने पुत्र के मुखदर्शन किए माँ देवकी ने। गद्गद हो रही है देवकी। पीयूष धार बहने लगी जब कृष्ण को गोद में लेने दौड़ी। झट वसुदेव जी महाराज ने देवकी का हाथ पकड़ लिया।

वसुदेव जी बोले देवकी जी हम अपने लाला को गोद में नहीं लेंगे। जन्म के समय संकल्प लिया था। 10,000 गौदान के बाद हम लाला को गोद में लेंगे। देवकी जी ने कहा मेरे पुत्र मेरे सामने हैं और उसे गोद में न लूँ। ये कैसे हो सकता है? जब वसुदेव जी महाराज ने देखा कि देवकी जी धैर्य खो बैठी हैं। नहीं मानेगी तो वसुदेव जी ने मानसिक गौदान का संकल्प करके देवकी की गोद में कृष्ण को बैठा दिए। निर्धन को धन मिला। अपने माता-पिता को प्रभु ने बंधन मुक्त करके प्रसन्न किया।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन कंस की मृत्यु के बाद कंस के पिता उग्रसेन को गद्दी पर बिठाया। माता-पिता ने श्रीकृष्ण के योज्ञोपवीत संस्कार कराए। प्रभु ने नंद बाबा से कहा, अब आप नंद गाँव जाएँ। बोले कन्हैया, तुम नहीं चलोगे। कृष्ण ने कहा, तुम चलो! हम दोनों पीछे से आते हैं। नन्द बाबा ने कहा नहीं कन्हैया हम अब समझ गयो हैं। तुम हमारो नहीं हो, तुम वसुदेव-देवकी के हो, परन्तु देख कन्हैया मैं तो धीरज धारण कर लूँगा। परन्तु तेरी मैया को मैं क्या जवाब दूँगा। तू एक बार चल।

बाबा, आप ब्रज जाओ। हम दोनों भैया आपके पीछे-पीछे ही आ रहे हैं। रोते विलखते ब्रजवासियों को विदाई दी। माता-पिता की आज्ञा से भगवान् उज्जैन गुरु संदीपनिमुनि के आश्रम में गए। 64 दिनों में 64 कलाओं को प्राप्त किया। विद्यार्थी के लिये "काक चेष्टा बकोध्यानम्"- "श्वान निद्रा तथैवच अल्पहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पंच लक्षणम्।" देखिए भगवान् श्रीकृष्ण गुरु के आश्रम में रहकर अल्प समय में सारे विद्या का अभ्यास कर लिया। गुरुदेव को गुरु दक्षिणा प्रदान की। मृत पुत्र को जीवित करके। "गुरुपुत्रः प्रदीयताम्"

कृष्ण तो साक्षात् भगवान् हैं। गुरु पुत्र को लाना उनके लिए कठिन नहीं था। पुत्र को प्राप्त करके गुरु माता बहुत प्रसन्न हुई। गुरुदेव ने आशीर्वाद दिया कि-

"गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी"

(श्रीमद्भागवतम् 10.45.48)

हे पुत्र अपने घर प्रस्थान करो, मेरा आशीर्वाद है कि संसार में तेरी कीर्ति फैलेगी। आशीर्वाद लेकर वे लौट गए।

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

उद्धवजी की ब्रजयात्रा

जब से नन्द नन्दन श्यामसुन्दर पधारे हैं, ब्रज में से मथुरा, तब से उद्धव जी परम सखा बने हैं। परम ज्ञानी हैं। वे ज्ञान का अगाध भण्डार हैं- उद्धव जी।

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.46.1)

वृष्णीयों के परम मन्त्री हैं उद्धव जी, और कृष्ण के परम मित्र हैं, उद्धव जी। ज्ञान का अगाध भंडार उद्धव हैं। परन्तु भगवान् ने कहा, ये ज्ञानी तो हैं पर मेरी भक्ति नहीं

है इसमें। यदि इसकी ज्ञान की चादर पर भक्ति का रंग चढ़ जाए तो इसकी चादर सुशोभित हो जाए। क्योंकि बिना ज्ञान की भक्ति अंधी है। बिना भक्ति के ज्ञान पंगु हैं। दोनों एक–दूसरे के सहायक हैं। भक्ति और ज्ञान। देखो, अर्जुन परम्भक्त था। भगवान् ने उसे गीता का ज्ञान दिया। और परम्ज्ञानी है उद्धव भगवान् उसे भक्ति की ओर भेज रहे हैं। प्रभु ने विचार किया कि मैं उद्धव को भक्ति का उपदेश दूँ, तो यह भक्ति कभी उपदेशात्मक रूप में समझ नहीं आती। भक्ति उपदेशात्मक नहीं क्रियात्मक होनी चाहिए। यदि प्रत्यक्ष रूप से ही कहीं दर्शन होता है तो वह एक ही स्थान है श्री वृन्दावन। भक्ति के आचार्य है ब्रज की गोपांगनाएँ। तो मैं उद्धव को वृन्दावन भेजूँगा।

दैनिक श्रीकृष्ण उद्धव जी के साथ यमुना जी में स्नान करने जाया करते थे। एक दिन यमुना जी में स्नान करने के लिए जब उद्धव जी के साथ श्रीकृष्ण पधारे तो वृन्दावन की ओर से कमल का फूल बहकर आ रहा था। श्रीकृष्ण ने देखा ये श्री राधारानी का ही प्रसादी फूल था। राधारानी प्रति दिन फूल प्रवाहित करती कि मेरे प्यारे इसे देखेंगे और मेरा स्मरण होगा।

आज प्रभु ने स्नान करते हुए ये फूल देखा और उठा लिया उसे सूंघा और तुरंत यमुनाजी में ही प्रभु मूर्च्छित होने लगे। पास में ही उद्धवजी स्नान कर रहे थे उन्होंने देखा तो अपने हाथ का सहारा देकर श्रीकृष्ण को महल में लाए। जाकर उद्धवजी ने कहा प्रभु आप भी किसी को याद करते हो? भगवान् उद्धवजी के हाथ में हाथ रखकर कहते हैं, उद्धवजी "मोहे ब्रज विसरत नाहि।" मैं ब्रज की एक क्षन भी नहीं भूल सकता हूँ। उद्धव तुम शीघ्र ब्रज जाओ, मेरे प्रियजन गोपियों को संदेशा दो–

गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः।
गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह।
गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय।

(श्रीमद्भागवतम् 10.46.2, 3)

भगवान् श्रीकृष्ण बोले, उद्धव मैं ब्रज को क्षण भर के लिए भी नहीं भूल सकता। उद्धव बोले प्रभु मैं तुम्हारी प्रीति जानता हूँ, ब्रज से आपको बड़ा प्रेम हैं, प्रीत हैं। परन्तु आप मुझे संदेश दीजिए।

प्रभु ने कहा उद्धव जी आज इसी क्षण जाकर मेरा संदेश सुना। सबसे पहले प्रभु अपनी माँ को संदेश भेज रहे हैं। कितना सुन्दर प्रभु कहते हैं।

गीतम्

उधौ मेया ते जा कहियो
तेरो लाल दुख पायो

(देखिए कितना प्रेम माँ से कहते हैं। हमारा वेद भी कहते हैं। मातृ देवो भव। माँ पूजनीय हैं। हे उद्धव मैं जब से मथुरा आया हूँ ना–

गीतम्

कोई न खवावै माखन रोटी
जलाचरण न करावै
माखन मिसरी न ही मैं जानौ

(मेरी उंगली पकड़कर बाबा चलना सिखाते थे)

गीतम्

बाबा नंद उंगुरिया गहि – गहि
पायल चलनौ सिखायै,
और थको जान कन्हैया मेरो गोद लियो और
हियो सो लगावो, मैया ते जा कहियो।।
उधो मैया को सुनाइयौ

(देख उद्धव जब मैं छोटो सो हो और बालकपन में माखन चोरी करता, तो गोपियाँ मेरी शिकायत करने माँ के पास जाती थीं, (प्रभु बचपन याद कर रहे हैं) अरि ब्रजरानी तेरा लाल चोर हैं। हमारे यहाँ माखन खाकर मटकी फोड़ देवै, परंतु मेरी माँ उनका विश्वास नहीं करती थी।)

गीतम्

आवन गापी देन उलाहन और
नाहक बाल खस जो मेरो– वा वार कुलदोर्वि मानावे भाईय ते जा कहियों,

(गोपी तो उलाहना देकर चली जाती उद्धव, यदि नहाते समय सिर से एक बाल टूटकर गिर जाता था तो, कुल देवता को मनाती थी, कि आज मेरो कन्हैया को बाल टूट गयो! मैं क्या बताऊँ। उद्धव बोले, आप व्याकुल न हो मैं ब्रज जाकर आपका संदेश सुनाता हूँ। भगवान् बोले।)

गीतम्

गहर जन जाबै उद्धौआज ही जा बौ ब्रज
आवत ह याद गोप और गैयन की
उठति और फिरती मन आवै नहीं धीर
उस करत अधीर वात, बंसीबट और छैया की
उन्हें। समझाइऐ उद्धव आवेंगे दोऊ भैया ओर जावै नन्दरैया।
मेरो ले नाम उद्धो कहियो प्रणाम मेरी
मैया के कृपायन उद्योमी कन्हैया की।

मोरि माँ को चरण प्रणाम करके और मां से कहियो मा, तोकु तेरो चंचल कानाईया प्रणाम कर हो हैं। देख उद्धव राधारानी के चरण में एक अर्ज कर दीजो, जब तक श्रीकिशोरी जी की कृपा नहीं होगी तबतक मैं ब्रज नहीं आ सकता।

"हे वृषभानु सुते ललिते मम कौन कियो अपराधा तिहारौ, काढ़ दियो ब्रजमंडल ते अब और नन्द रहो अतिधारण सौ कर लो अपनो करलो निकुंज कुटियन न अब तजो, आप सुजान दयानिधान भयि सो भयि अब दे दो संभारो।"

उद्धव ने कहा प्रभु आप व्याकुल न हों मैं अभी आपका संदेश ब्रज वासियों को जाकर कहता हूँ। उद्धव आज ब्रज जा रहे हैं। सुन्दर रथ में चढ़कर।

इत्युक्त उद्धवो राजन्संदेशं भर्तुरादृतः।
आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम्।
(श्रीमद्भागवतम् 10.46.7)

उद्धवजी महाराज सुन्दर रथ में विराजमान होकर मथुरा से ब्रज की ओर चल दिये। अब देखिए ब्रज की क्या दशा है? "बिन गोपाल बैरीन मयि कुंज" आज वहीं कुंज गलियां गोपियों को बैरिन के समान प्रतीत हो रही हैं। यमुना तट सूने पड़े हैं, गोपियाँ जल भरने नहीं जाती हैं, दैनिक ग्वाल बाल वृन्दावन सीमा पर बैठ जाते हैं कि हमारे कन्हैया कहकर गयो है कि मैं शीघ्र आऊँगा। तो आज जरूर आविगो, परन्तु शाम होनेपर जब कन्हैया नहीं लौटते तो यशोदा के पास जाकर कहते कि मैया देख आज तेरो कन्हैया नहीं आयो पर कल जरूर आवेगो।

आज धूल उड़ाता हुआ रथ मथुरा से आ रहा हैं। ग्वाल बालों ने सोचा कन्हैया हैं। कहने लगे कि हमारे कन्हैया आ गए हैं। पास में रथ पहुँचने पर देखा कि हमारे कन्हैया नहीं, उनके जैसो कोई और हैं। उद्धव ने पूछा नन्द भवन कहा हैं। भैया?

ग्वाल बालों ने नन्द बाबा के द्वार पर पहुँचा दिया। नन्दबाबा हँस पड़े हैं- मूर्च्छित पड़े है- चार पाईया पर उद्धव ने तुरंत रथ से उतरकर अपने हाथ का सहारा दिया, तो नन्द बाबा ने कहा लाला आ गया तू। उद्धव ने कहा मैं उद्धव हूँ आपका कन्हैया नहीं। जब कन्हैया-कन्हैया की आवाज यशोदा ने सुनी तो दौड़कर द्वार पर आई, उद्धव जी को कसकर झकझोरा, मेरा कनुवा कहाँ है? मेरा कनुवा कहाँ है?

उद्धव जी बोले माँ मैं तेरो कन्हैया का मित्र संदेश लेकर आया हूँ, यशोदा रानी बोली उद्धव मेरो कन्हैया संदेश भिजवा तो रहे हैं, एक बार ब्रज नहीं आवैगो, देख मैं अपने कन्हैया के लिए दिन-रात रोती रही हूँ, यदि रोते-रोते अंधी हो गई और तब कन्हैया आये तो इन आंखन से मैं दर्शन नहीं कर सकूँ। एक बार ब्रज आने को कन्हैया से कह दीजो।

रात्रि भर उद्धव श्रीकृष्ण चर्चा ही माता-पिता से करते रहे, उद्धवजी ने इतना प्रेम अपने जीवन में पहली बार देखा। ये तो साक्षात प्रेमभूमि हैं। भक्ति भूमि हैं,

"धन्यम् वृन्दावनम् तेन-भक्ति नित्यति यत्र च"

जहाँ साक्षात भक्ति के क्रियात्मक रूप के दर्शन हो रहे हैं। उद्धव जी विचार करने लगे कि हमने इतना प्रेम जीवन में कभी नहीं देखा। सारी रात उद्धव जी महाराज को कृण चर्चा करते हुए निकल गई, जब प्रात:काल उद्धव जी नन्द बाबा से कहने लगे कि मैं स्नान करने जाऊँ मुझे आज्ञा दो। आज्ञा लेकर यमुना जी की ओर गए।

दृष्ट्वा रथं शातकौम्भ्यं कस्यायमिति चाब्रुवन्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.46.47)

जब गोपियों ने आज एक रथ खड़ा देखा नन्द बाबा के द्वार पर, गोपियों ने कहा हमारे प्यारे कृष्ण आ गए। एक बोली नहीं नहीं यदि कृष्ण आते तो सबसे पहले आकर हमसे मिलते। तो ये कौन आया है? पहले क्रूर-अक्रूर आया था, जो हमारे प्यारे श्रीकृष्ण को लेकर चला गया। अब तो हमारे पास केवल प्राण बाकी बचे हैं, इन प्राणों को लेने कौन आया है? क्या हमारे प्राण लेकर कंस का पिंड दान करेगा, गोपियों ने उद्धव जी को दूर से देखा।

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्याय:

उद्धव तथा गोपियों की बातचीत और भ्रमर गीत

तं वीक्ष्य कृषानुचरं व्रजस्त्रिय: प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम्।

पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्–मुखारविन्दं परिमृष्टकुण्डलम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.47.1)

गोपियों को जब खबर लगी कि कृष्ण का कोई मित्र उद्धव आया है, तो सभी एकत्र होकर राधारानी के साथ यमुना तट पर पधारीं। उद्धव जी एक ओर स्नान कर रहे हैं। एक ओर गोपियाँ खड़ी हैं। पहली बार उद्धव जी आए हैं ब्रज में। कैसे बात करें। उद्धव जी को गोपियों ने दर्शन कर रही हैं। बिल्कुल कृष्ण की तरह हैं, लम्बे हाथ, पीताम्बर गले में माला। दूर से देखने पर कोई भी कृष्ण ही समझेगा। उसी समय एक भ्रमर आया, आज गोपियाँ कृष्ण चर्चा भी सुनना चाहती हैं, परन्तु कृष्ण की चर्चा कोई विरला व्यक्ति ही करते हैं, श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि,

"मार्गे–मार्गे जायेते साधु संग"

यदि मार्ग में तुम जा रहे हो और किसी संत का दर्शन मिले किसी सत् पुरूष का दर्शन प्राप्त हो तो उनसे व्यर्थ की चर्चा न कर उनके मुखराविन्द से "श्रुयते कृष्ण कथाः" प्रभु के गुनानुवाद का श्रवण करो, तो आज गोपीयाँ भी कृष्ण चर्चा सुनना चाहती हैं, गोपियों का यही भाव हैं, मानो आज गोपियाँ ने उद्धव से कह रही हैं– कि

गीतम्

(कृष्ण) श्याम की कोई खबर लाता नहीं।
बेखबर हमसे रहा जाता नहीं
श्याम की कोई खबर लाता नहीं,।

जी चाहता हैं– मेरे श्याम एक खत लिखूँ

[प्यारे आपको एक खत लिखूँ]

जी चाहता है– मेरे श्याम एक खत लिखूँ

[जब प्रेम अगाध हो जाता है तो उस प्रेम की महिमा को हम शब्द में वर्णन नहीं कर सकते प्रेम मूक बन जाता हैं, परन्तु फिर भी लिखने बैठी हूँ]

जी चाहता है। मेरे श्याम एक खत लिखूँ

[पर प्यारे]

बिन कलम हमसे लिखा जाता नही
श्याम की कोई खबर लाता नहीं।

जी चाहता है मेरे श्याम मैं पंछी बनूँ।

[जो कन्हैया आपके पास उड़कर पहुँच जाऊँ]

जी चाहता है मेरे श्याम मैं पंछी बनूँ

[पर प्यारे]

पंख बिना हम से उड़ा जाता नहीं।

श्याम की कोई खबर लाता नहीं

बेखबर हमसे रहा जाता नहीं

जी चाहता है मेरे श्याम तेरी जोगन बनूँ।

(प्यारे दर–दर भटकने की अब इच्छा नहीं होती। केवल आपका दर मिल जाए। अब कहीं जाने की इच्छा नहीं होती,)

(यदि व्यक्ति के जीवन में उसे एक बार लक्ष्य की प्राप्ति हो जाए तो कहीं भटकाव नहीं)

जी चाहता है मेरे श्याम तेरी जोगन बनूँ

दर–ब–दर हमसे फिरा जाता नहीं

श्याम की कोई खबर लाता नहीं,

बेखबर हमसे रहा जाता नहीं।

उसी समय एक भ्रमर आ गया, भ्रमर का स्वभाव होता है कभी इधर उड़ता कभी उधर। कभी गोपियों की तरफ जाता हैं। कभी उद्धव जी की तरफ, जो गोपियों की तरफ वह भ्रमर आया तो वे गोपियाँ बोली अरे भ्रमर –

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशङ्घ्रि सपत्न्याः

कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः।

वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं

यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.47.12)

अरे भ्रमर तू उस धूर्त कृष्ण का धूर्त मित्र है? भ्रमर अब हमें कृष्ण से बहुत घृणा हो रही हैं। देख, तूने जो अपनी मूंछों पर मथुरा की स्त्रियों की कुचका जो कुमकुम लगा रखा हैं यह प्रसाद जा कृष्ण को दे। "मा स्पृशांघ्रि" तू मेरा स्पर्श मत कर। देखिए कितना प्रेम, ये भ्रमर गीत गोपियों का प्रेम दर्शन कराते हैं। जिन कृष्ण के लिए हमने सर्वस्व त्याग दिया। वह कृष्ण आज हमें त्याग कर चले गए। भ्रमर जैसा कि

तेरा स्वभाव हैं अनेक पुष्पों के मधु को ग्रहण कर तू उसे त्याग देता हैं। उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने हमारा त्याग किया। न जाने लक्ष्मी उनकी मीठी मीठी बातों में कैसे आ जाती हैं। भ्रमर वह तो जन्म जन्म से छलिया है।

रामावतार को याद किया गोपियों ने, भ्रमर गीत में। गोपियाँ कहती हैं कि छिपकर बालि को मारा, वैवस्वत् मनमन्तर में राजा बलि के द्वार पर वामन बनकर गया और सर्वस्व हरण कर लिया। वह तो जन्म-जन्म छलिया हैं। लोग कहते हैं समदर्शी हैं। देखो उसकी समदर्शिता। भ्रमर अब हमें कृष्ण से बेहद घृणा हो रही हैं। तू चर्चा मत कर, हमें कृष्ण के विषय में कुछ नहीं सुनना हैं। अंतिम श्लोक में कहती हैं जिनके साथ रास विलास हास परिहास किया उन कृष्ण को हम कैसे भूल सकती हैं। आ बैठ हमसे कुछ कृष्ण (गोपियाँ बोली) चर्चा करते हैं।

अनुचित उचित विचार त्यागकर, व्याघ्र सदृश रघुराई।
वान राजा बालि को मारे, मन में दया न आई।
सुन्दरता पर मुगध राक्षसि, सूर्पनखा जब आई।
तब भाई लक्ष्मण के द्वारा, उसकी नाक कटाई।
वामन बनकर बलि राजा के, यज्ञस्थल में आए।
तीन पैर पृथ्वी माँगे, फिर पाछे रूप बढ़ाए।
अूट गया मन। मधुकर, अब प्रीती किये पछताति।
पर स्वभाव से विवश हुई, हम गीत उन्हीं के गाती।

गीतम्

जो मैं ऐसा जानती प्रीत किए दुख होई।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत न करियो कोई
प्रीतम बसे पहाड़ में मैं जमुना के तीर
अब तो मिलना कठिन है, मेरे पांव पड़िं जंजीर
नहीं सुनना चाहती हैं। उसकी कथा, क्या है उसकी कथा में?

बेचारे बालि ने उसका कुछ नहीं बिगाड़ा था। वृक्ष के पीछे छिपकर उसे मारा शिकारी की तरह। यही तो सब कथा है उसकी, किसका भला होता है सुनकर। कथा वाचक गाते ही रहते हैं। लगता है कथावाचक को रिश्वत दी है कि मेरे गुणानुवाद करो ताकि मुझमें सबकी प्रीति हो। कथावाचकों ने पूछा तो तुम हमें क्या दोगे। बदले में, तो उन्होंने घूस दे दिया। हम तुम्हें मुक्ति दे देंगे। मुक्ति की घूस दे दी है उसने

इसलिए ये सब गाते ही रहते हैं। कथा में है क्या? कपट ही तो भरा पड़ा हैं। गोपियाँ बहुत दुखी, नाराज हैं। नहीं सुननी है हमें कथा, चले जाओ, अब हमे मत सताओ। भ्रमर चला गया, क्या कहा, अरे मधुप क्या तुम नशे में हो, जो गुन-गुना रहे हो? क्या यदुपति के गुण गा रहे हो। नहीं हमें नहीं सुनना हैं क्योंकि उसकी कथा एकबार सुनी तो प्रेम हुआ, अब पछता रही हैं, उसके वियोग में। अब नहीं सुनना हैं। चले जाओ। भ्रमर चला गया। उद्धव जी समझते हैं। भ्रमर माध्यम है सुना रही हैं मुझे क्योंकि उद्धव ने देखा यहाँ कोई तो नहीं हैं, ये गोपियाँ किससे बात कर रही हैं। भ्रमर के बहाने मुझे ही सुना रही हैं, किंतु मैं सुनना ही नहीं चाहता तो मुझे क्या आवश्यकता है सुनने की। उद्धव जी भी दूर चले गए। जाने पर विचार आया कि कन्हैया मुझसे पूछेंगे? मेरा संदेश दिया? तो मैं क्या जवाब दूँगा। डाकिया डाक डाल दे, यही उसका कर्तव्य हैं। कोई पढ़े न पढ़े यह उसकी मर्जी। मैं संदेश वाहक हूँ, संदेश सुना ही दूँगा। पुनः पास आए उद्धवजी, नजदीक आये, और भ्रमर को देखकर गोपियों ने कहा बेशर्म कहीं के, हमने निकाल दिया, फिर भी आया। उद्धवजी वहीं ठहर गए। ऐसा ही स्वभाव है तुम्हारा। वह भी बहुत सताता था, हम रूठ जाती थीं, धक्का मारकर घर से निकाल देते थे। तो पीछे वाली खिड़की से आ जाता था। नखरे दिखाकर हमें मना लेता था। अब तो बिसरी बातें याद आती हैं। मन रोता हैं। छोड़कर चला गया हमें। अच्छा। कहो क्या कहना चाहते हो? कुशल तो है न अपनी स्त्रियों के साथ। हमें याद रखते हैं। या भूल गए। भ्रमर कहो क्या संदेश लाए हो? गोपियों ने कहा बताओ हमारे लिए क्या संदेश भेजा है। उद्धव जी ने सोचा अब बोलने का मौका है, नजदीक आ गए, लेकिन भ्रमर गीत उद्धव जी को गोपियों के द्वारा मिल गई प्रेम भक्ति की दीक्षा। ज्ञानी का ज्ञान भक्ति के रंग से रंग गया। गोपियों के चरणों में उद्धव जी ने नमस्कार किया।

अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः।
वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.47.23)

धन्य है ब्रजांगनाएं। दान, व्रत, जप, तप, होम, श्रद्धा, संयम आदि से ये सब साधन हैं। साध्य है कृष्ण में प्रेम "कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते"। सो तुमको हुआ तुम धन्य हो—सुनो मैं तुम्हारे लिए संदेश लाया हूँ। सुनकर गोपियाँ खिल-खिलकर हँसने लगी। उद्धव ने कहा इसमें हँसने की क्या बात है! गोपियों ने कहा, सुनो संदेश तो उसका आता है जो कहीं बाहर गया हो। कृष्ण कहीं बाहर गया ही नहीं, वह तो हमारे हृदय

में हैं। देखो व्याकुलता और वैचित्य, संयोग में वियोग और वियोग में संयोग का अनुभव वैचित्य। पागल की तरह होता है प्रेमी। गोपियों ने कहा कि तुम क्या संदेश लाओगे। हम तो रुबरु बातें करती हैं। वह हमारे हृदय में ही है।

गीतम्

मेरे प्रीतम को पातियाँ लिखूँ जो वह गए परदेश।
मेरे प्रीतम को, प्रीतम को, प्रीतम को
प्रीतम को पातियाँ लिखूँ, जो वह गए परदेश।।
तन में, मन में, नैनन में वाको काह संदेश।
जो तन में, मन में, नैनन में वाको काह संदेश
मेरे प्रीतम को प्रीतम को प्रीतम को।।

यदि प्रीतम परदेस गये हो तो पतियां लिखूं, लेकिन जो तन में, मन में, नैनन में, हैं वा को का संदेश है उद्धव जी। तुम ब्रह्म का संदेश देने आए। कहते हो ये अलग सत्ता ही निर्गुण कहलाती है, वह तो व्यापक हैं और व्यापक का वियोग संभव नहीं हैं ये बताते हो, यदि सब कुछ ब्रह्म है, तो फिर ब्रह्म होकर ब्रह्म को ब्रह्म का उपदेश क्यों करते हो? तुम भी ब्रह्म हो हम भी ब्रह्म है तो फिर कौन किसका उपदेश करें। तुम बातें करते हो अद्वैत की, मथुरा वासी तुम जी रहे हो द्वैत में। छोड़ो उद्धव ये ज्ञान चर्चा। परन्तु उद्धव जी ने गोपियों को उपदेश दिया।

भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित्।
(श्रीमद्भागवतम् 10.47.29)

बृहस्पति के परम ज्ञानी शिष्य उद्धव जी महाराज ने कहा, गोपियाँ उस चर्चा को सुन रही हैं। जिन कृष्ण का तुम वियोग समझ रही हो, जिनके लिए तुम रो रही हो, यदि तुम्हें उन कृष्ण का दर्शन करना हो तो अपनी नासिका के अग्रभाग में ध्यान लगाओ, तो अपने अंत चक्षु में उन परमात्मा श्रीकृष्ण को तुम दर्शन करोगी। गोपियाँ खिलखिलाकर हँसने लगी और कहने लगी, कि तुम उद्धव क्या ये मज़ाक की चिट्ठी लाए हो। तुम तो बावरे हो गए हो। उद्धव तुम तो पागल हो गये, कि हम योग रभाँवे कि

दोहा

जोग को रमावै, समाधि को लगावै यहाँ,
सुख–दुख साधन, सो निपटनै बैरि है।

कहत रत्नाकर न जाने क्यों इतै तजु
आज शासन की शासना की बसना बीखरै है।
हम यमराज की हैरावत् जमानत कुछ
सुरपत सम्पत की, चाहत् न ढेरी है

चरी है न (उद्धव), काहू ब्रह्म के बवा की है हम, सूधो कहाँ देत, एक कान की कंवारी है।

(उधौ हम तो एक केवल एक बात सीखी है और जानती हैं।)
"उधौ हम एक बात जाने जग दूजी पहचानने नाय,
हम हैं। बिहारी के, और बिहारी जी हमारे हैं।"

बस हम तो केवल इतना ही जानती हैं कि श्रीकृष्ण हमारे और हम श्रीकृष्ण कि हैं। हम किसी ब्रह्म को, परमात्मा को नहीं जानते। उद्धव हमारा ब्रह्म हमारा परमात्मा, हमारा ईश्वर तो साक्षात् श्रीकृष्ण हैं, हमारा तो सर्वस्व श्रीकृष्ण हैं, जो हमारे साथ वार्तालाप करता हैं। हमारे साथ खोलता है, ये योग की पत्रिका जो तुम लाए हो, उद्धव हम तो–

श्याम तन श्याम मन श्याम ही हमारो धन,
अंखियानों में उद्धव हमें श्याम ही सुहावै है।
श्याम गति श्याम मति श्याम ही हैंप्राणपति,
श्याम सुख दाई, सो भलाई,, शोभा धाम की।
श्याम हीए, श्याम जीए, श्याम बिने नहीं पीय
योग कहाँ रखे, यहाँ रोम–रोम श्याम है।।

उद्धव हमारे रोम रोम में श्याम है, योग का समय नहीं, योग की जो चिट्ठी लाए होन न इसकी हमें फुर्सत नहीं। हमारे तो रोम–रोम में श्याम रमा है।

गीतम्

ये तो प्रेम की बात है उद्धो
बन्दगी तेरे बस की नहीं हैं
यहाँ सर देकर होते हैं सौदौ
आशिकी इतनी सस्ती नहीं है।
प्रेम वालो ने कब वक्त पूछा
उनकी पूजा में सुन लेडो

यहां दम–दम में होती है पूजा
सर झुकाने की फुरसत नहीं है।
जिसकी नजरों में है श्याम प्यारे
वह तो रहते हैं जग मे न्यारे
जिसकी नजरों में मोहन समाये
वो नजर फिर तरसते नहीं है।
जो असल में है मस्ती में डूबे
उन्हें क्या परवाह है जिंदगी की।।
जो उतरती है, चढ़ती है मस्ती
वह हकीकत में मस्ती नहीं है
ये तो प्रेम की बात है उद्धो
बंदगी तेरे बस की नहीं है।

जब उधो जी महाराज ने गोपियों को सुना वे गद्‌गद्‌ हो गए। आज उद्धव जी की वह ज्ञान की गुदड़ी जमुना जी के पुलिन में खुल गई। उद्धव जी गोपियों के चरणों में गिर पड़े, उधौ जी ने कहा–

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।
(श्रीमद्‌भागवतम् 10.47.61)

उधौ कहते हैं कि प्रभु धन्य हैं। ये ब्रज की गोपांगनाएं ब्रज की गोपियाँ, जिनके मुखारविंद से ये भक्ति की चर्चा हो रही है, कितना दिव्य इस चर्चा को सुनकर अनुभव हो रहा हैं। ऐसा लगता है अबकी बार यदि इस संसार में जन्म हो, इतनी कृपा करना, हे वृन्दावन बिहारी, हे नन्दनन्दन कि इस वृन्दावन में कोई लता, पत्ती, वृक्ष, औषधि बना देना।

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्‌गीतं पुनाति भुवनत्रयम्।।
(श्रीमद्‌भागवतम् 10.47.63)

ब्रज की ब्रजांगानाओं के चरणों में मैं कोटि–कोटि वन्दन करता हूँ। कोटि–कोटि प्रणाम करता हूँ। उद्धवजी महाराज ने गोपियों के चरणों में वन्दन किया। नहीं नहीं

उद्धव जी महाराज गोपीयों के चरणों को नहीं चरणो के धूल को प्रणाम किया। उद्धव जी महाराज ने गोपियों के चरण वंदन नहीं उनकी चरणरज का वंदन किया। "पादरेणुमभीक्ष्णशः"

आए थे उद्धव जी महाराज 2-4 दिन के लिए, परन्तु उद्धव जी 2-4 दिनों के लिए गए पर 2-4 महीने निकल गए। भक्ति की मस्ती में डूब गए। "उवास कतिचिन्मासान्", गोकुलवासियों ने तो भगवान् को भी दिया, भगवान् से कुछ भी नहीं लिया, उद्धव क्या दे सकते थे। उद्धव जी मथुरा जाने के लिए तैयार हुए। एक दिन उद्धव जी ने नन्दबाबा को कहा आज मोकु आज्ञा दो मथुरा जाने की। उद्धव जी के लिए सुन्दर रथ सजाया, सभी ब्रजवासी उन्हें विदा करने आए। माँ यशोदा ने माखन मिसरी देकर कहा मेरे लाला को कहना तोहार माँ ने भेजा हैं। कहा कि यह ताजा माखन लल्ला को जरूर खिलाना।

उद्धव, मेरे लाला को अपने हाथ से माखन खवा दीजो और एकबार मेरे लाला को कह दीजो कि ब्रज आ जाये और देख। एक संदेश मेरी बहन देवकी से कह दीजो कि

संदेसो देवकी सो कहियो हो तो धाय तिहारी
सुत की दया करत नित रहियो,
मैं लाला की माँ नहीं, आया हूँ पालने वाली हूँ।

पर प्रातःकाल होते ही मेरे लाला को माखन मिसरी भावै है, तो उसे दे दीजो। और एक बार मेरे कनुवा से जरूर कह दीजियो कि एकवार ब्रज जरूर आ जाये,

एक बात और कहना उद्धव, लाला को। तू तो महल में रहता है राजा बन गया। बहुत से नौकर-चाकर दास-दासी होंगे। यदि कोई दासी की जगह खाली हो तो माँ को कहना, मैं दासी की जगह रहूँगी। तोहारो बरतन साफ करूँगी। लेकिन पुत्र तुम्हारे वियोग में नहीं मैं जी सकती।

दोहा

चाकर रहा सु बाग लगा सु
नित उठ दरशन पासु
वृन्दावन की कुंज गली में
गोविन्द लीला गा सु
श्याम मैंने चाकर राखो जी-गिरिधारी लाल चाकर राखो जी
वात्सल्य का मूर्तिमंत रूप है यसोदा माँ।

ब्रजवासियों के प्रेम का वर्णन क्या कहै!

ब्रजवासी अपनी ओर से भेंट लेकर आए हैं। कन्हैया को देने के लिए। इधर राधारानी भी लताओं के बीच में निकुंज में बैठी हैं। उद्धवजी मिलने गए राधारानी से। जाकर चरणों में प्रणाम किया और बोले किशोरी जी कोई संदेश नहीं भेजेंगी। पत्रिका लेकर बैठी हैं। कृष्ण को लिखने के लिए, परन्तु इतने आंसू टपक रहे हैं। किशोरी जी के, कि पत्र बारंबार धुल जाता हैं। कुछ नहीं लिख पा रही है अपने प्यारे को।

ठीक उसी समय श्रीमती राधारानी को याद आया कि जिस समय हमारे प्यारे जा रहे थे तो अपनी बाँसुरी छोड़ गए थे। तुंरत वह लाकर दी और कहा कि मेरे प्यारे को यह भेंट कर दीजै। उद्धवजी ने साष्टांग प्रणाम किया, स्तुति की और बंसी लेकर तुरंत रथ में बैठे। वहाँ से मथुरा की ओर प्रस्थान कर गए। श्रीवृन्दावन से मथुरा की ओर, अब मथुरा में जाकर श्री कृष्ण से मिले तो कहा कि कन्हैया आप बहुत निष्ठुर हों, कृष्ण उद्धवजी का हाथ पकड़कर बोले, पूछा माँ कैसी है? बाबा कैसे हैं? सब गोपियाँ कैसी हैं? उद्धव जी की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। कृष्ण मैं तुम्हें करुणामय, दयालु समझता था। आज पता चला तुमसा कोई निष्ठुर नहीं। आपका हृदय बहुत कठोर हैं। क्या प्रेम है ब्रजवासियों का, उद्धव जी की आँखों में आँसू देख भगवान् की आँखों में आँसू आ गए। भगवान् मन ही मन गद्‌गद् होने लगे। विचार करने लगे कि मेरा मित्र केवल अब ज्ञानी नहीं बल्कि भक्तिमय भी हो गया। इसकी ज्ञान की चादर पर भक्ति का रंग चढ़ गया है, उद्धव जी ने कहा आपको तो सब छोड़ कर ब्रज चले जाना चाहिए। वे सब आपको याद करते हैं। नन्दबाबा, माँ यशोदा गोपियां, ग्वाल बाल, पशु गाय भी सब रो रहे हैं। भगवान् बोले उद्धव– क्या तुम समझते हो कि मैं व्रजवासियों को भूल गया–

"ब्रजवासी बल्लभ सदा मेरे जीवन प्राण"

इन्हुंन कबहुं बिसौ हूँ मुझे नन्दबाबा की आन, "नन्द बाबा की सौगंध खाकर कह सकता हूँ कि मैं ब्रजवासियों को कभी नहीं भूल सकता हूँ, ये मेरे अपने जन हैं। उद्धव जिसको मैं भी कुछ नहीं दे पाया तुम क्या दोगे? ब्रजवासियों के प्रेम से छूटना मुश्किल हैं। उद्धव ज्ञान साबुन है, मन के मैले कपड़े को धोने के लिए, लेकिन साबुन लगाने से पहले शर्त है कि कपड़े को जल में डाल दो। फिर भीगे कपड़े पर साबुन लगाया जाता है, तो ज्ञान साबुन है तो भक्ति जल है। प्रेम भक्ति के जल में अपने मन के वस्त्र डालो फिर ज्ञान का साबुन लगाओ, फिर वैराग्य का फटका लगाओ उस पर मन का वस्त्र साफ हो जाएगा।

मन निर्मल है तो परमात्मा दूर नहीं। (ज्ञान, भक्ति, वैराग्य तीनों में कोई गौण नहीं, तीनों मुख्य हैं।) आज उद्धव जी ने अपने हाथों से माँ यशोदा का दिया माखन खिलाया। भगवान् की आँखों से आँसू टपक रहे हैं। उद्धव माखन खिलाकर चले गए और बांसुरी जो राधारानी ने दी थी वह भी कृष्ण को दे दी।

आज श्रीकृष्ण राधारानी के चरण कमलों का ध्यान कर रहे हैं। चिन्तन कर रहे हैं।

गीतम्

प्रिय राधे प्रिय राधे राधे-राधे प्रिया प्रिया।
प्रिय श्यामा प्रिया श्यामा श्यामा-श्यामा प्रिया प्रिया
जय राधे राधे प्रिया प्रिया,
जय श्यामा श्यामा प्रिया प्रिया

प्रभु कहते हैं कि श्री गीता जी के अंदर "ये यथा माम प्रपद्यान्ते त्वाम् तथैव भजाम्यहम्"

जो मुझे जिस प्रकार याद करता है। मैं भी उसे याद करता हूँ जो मेरा नाम लेता है मैं भी उसका नाम लेता हूँ। जो मेरा ध्यान करता है मैं भी उसका ध्यान करता हूँ। आज भगवान् गीता का वर्णन करते हैं। बृजवासी जैसे कृष्ण को याद करते हैं, वे भी वैसा ही करते हैं। उद्धव जी से ब्रज की खबर मँगाई और अपना संदेश भेजा।

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् का कुब्जा और अक्रूर जी के घर जाना

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अक्रुरजी का हस्तिनापुर जाना

अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः।
सैरन्ध्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ।

(श्रीमद्भागवतम् 10.48.1)

भगवान् श्रीकृष्ण अक्रूर जी के घर पधारे,बाद में कुब्जा के घर भी पधारे। उन पर अनुग्रह किया और अक्रूर जी के द्वारा हस्तिनापुर का संवाद भी प्राप्त किया। पाण्डु राजा की मृत्यु के बाद कौरवों ने पांडवों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। समाचार ऐसा मिला अक्रूर को भेजने से। धृतराष्ट्र को समझाया। कुन्ती जी को वासुदेव जी का

संदेश देकर पुनः मथुरा आए। पुनः अक्रूर जी ने भगवान् को सब विदित किया। दशम स्कन्ध के पूर्वाध यहाँ समाप्त हुआ। अब उत्तरार्ध की बारी है।

दशम स्कन्धः

(उत्तरार्ध)

अथ पंचाशत्तमोऽध्यायः

जरासन्ध से युद्ध और द्वारका पुरी का निर्माण

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् अक्रूर जी को भगवान् ने भेज दिया है हस्तिनापुर पांडवों की खबर लाने। दसवें स्कंध के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भाग हैं। दसवां स्कंध हृदय है और हृदय के भी दो भाग हैं। दायां एवं बायां। पूर्वार्द्ध में जैसे 'परित्राणाय साधूनाम्' कार्य केंद्र में है।

उत्तरार्द्ध में 'विनाशाय च दुष्कृतम्' कार्य केंद्र में है।

पूर्वार्द्ध में ब्रजलीला केंद्र में है, उत्तरार्द्ध में द्वारका लीला केंद्र में है।

पूर्वार्द्ध में नन्दनन्दन की बांसुरी की कथा हैं। उत्तरार्द्ध में श्रीकृष्ण की पाँचजन्य शंख की कथा है।

49 वां अध्याय पूर्ण हुआ। पचासवें अध्याय से उत्तरार्द्ध प्रारंभ होता है, जीवन का उत्तरार्द्ध भी पचास साल से शुरू हो जाता हैं। पचास के बाद इक्यावन, बावन अब वन की ओर जीवन का उत्तरार्द्ध शुरू हुआ। जब जीवन का उत्तरार्द्ध शुरू होता है तो जरासंध आ जाता हैं, मथुरा पुरी को घेर लेता हैं।

जरा का अर्थ है– वृद्धावस्था।

कंस के मारे जाने के पश्चात कंस की दो पत्नी अस्ति और प्राप्ति "अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यो भरतर्षभ!"

अपने पिता जरासंध के पास गई मगध में और कहा कि हमारे वैधव्य का कारण कृष्ण हैं। जरासंध क्रोधित हुआ और तुरंत मथुरा पुरी को घेर लिया। तेईश अक्षौहिणी सेना लेकर के मथुरा पर आक्रमण कर दिया। देह मथुरा को घेरने के लिए जरा आ गई, जीवन के उत्तरार्द्ध में। अब यौवन विदा ले रहा हैं। बुढ़ापे का आगमन हो रहा है। यहाँ से श्रीकृष्ण की वीर रस की लीला प्रारंभ हो गई।

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात्सूर्यवर्चसौ।

(श्रीमद्भागवतम् 10.50.11)

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् कृष्ण और बलराम जी युद्ध करने के लिए दौड़ पड़े, उस समय आकाश से दो सूर्य के समान चमकते हुये रथ नीचे उतरे। कृष्ण और बलराम जी ने उन रथ में चढ़कर युद्ध किया। कन्हैया ने कहा दाऊ दादा मथुरा पर संकट आया हैं। यादवों पर संकट आया है हम भी पृथ्वी के भार को हरण करने को तैयार हो जाएं। दोनों भाई रथ में बैठे, यादवों की सेना तैयार हुई। भगवान् ने यादवों को निमित्त बनाकर जरासंध की तेईश अक्षौहिणी सेना का विनाश किया। जरासंध का मान भंग किया। जरासंध और दाऊ जी महाराज में युद्ध होने लगा भगवान् श्रीकृष्ण ने दाउजी को बताया जरासंध को छोड़ दो क्योंकि छोड़ेगे तो ये पुनः युद्ध करने के लिए बदला लेने के लिए सेना को इकट्ठा करके आएगा। सेना का विनाश करेंगे और इसे छोड़ देंगें पुनः ऐसा ही होगा और हम फिर से सेना को विनाश करके इसे छोड़ देंगे। हम कहाँ तक दुष्टों को ढूंढेंगे, हमें पृथ्वी का भार हरन करना है, ये ही सबको जमा करता रहेगा और हम इन्हें मारते जाएँगे। बिना कमीशन के ये हमारा एजेंट बनेगा। कृष्ण की यही विचित्र नीति देखो। जरासंध एक अधर्मी राजा हैं। ऐसे राजाओं से संसार में बहुत अधर्म भी बढ़ चुका हैं और ऐसे राजाओं के लिए ही मैंने अवतार लिया हैं। इनका संहार करने के लिए। अधर्म को हटाकर धर्म की स्थापना के लिए मेरा अवतार है। जरासंधको निमित्त बनाकर मुझे अनेक दुष्ट राजाओं का संहार करना है। श्रीकृष्ण ने दाऊ जी से उसे छुड़वा दिया। दाऊ जी ने जरासंध को छोड़ दिया। युद्ध भूमि से जान बचाकर बदला लेने के लिए बार-बार आता रहा परन्तु हार नहीं मानी। भगवान् ने उसकी सेना का विनाश किया। 17 बार मथुरा पुरी पर आक्रमण किया और 17 बार ही भगवान् ने उसे हराया। 17 बार पराजित होकर जरासंध अब अठारहवी बार मथुरा पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगे। देवऋषि नारद ने विचारो किया की इस समय भगवान् दुष्ट राजाओं का संहार कर रहे हैं, तो इस कालयवन को लाइन में खड़ा कर दो। इसका भी उद्धार हो जाए। भईया सन्त तो जीव का कल्याण ही चाहते हैं। नारद जी गए काल यवन के पास और पूर्व जन्म का ज्ञान करा दिया। कालयवन के अंदर कृष्ण के प्रति शत्रु भाव पैदा करा दिया। अब नारद का भेजा कालयवन आया। इसने 3 करोड़ की विलक्षण सेना के साथ दक्षिण से आक्रमण किया। जरा और काल दोनों एक साथ आ गए तो बचना संभव नहीं। अब स्थानांतरण करना चाहिए, मथुरा से द्वारका। जरा और काल दोनों का एक साथ आक्रमण होने से मृत्यु।

इधर भगवान् की आज्ञा से विश्वकर्मा ने भारत के पश्चिम तट के एक द्वीप पर नगर बनवाया। सोने का किला है, बहुत से द्वार हैं, द्वारावती नाम हैं। भगवान् ने अपनी योगमाया से सब यादवों को उठाया और द्वारका में रख दिया। जीव एक शरीर से निकलकर दूसरे शरीर में कैसे जाती हैं और कहाँ से जाती हैं, यह किसको पता है। श्रीमद् भागवत में यादव मथुरा से द्वारका किस मार्ग से गए उसका वर्णन नहीं है।

इति सम्मन्त्र्य भगवान्दुर्गं द्वादशयोजनम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.50.49)

इस सुन्दर 12 योजन सोने के किले में भगवान् ने यादवों को प्रतिष्ठित किया। सुबह जब यादव उठकर द्वार ढूंढने लगे, कहा कि द्वार कहाँ, द्वार कहाँ? नाम पड़ा द्वारका।

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कालयवन का भस्म होना, मुचुकंद की कथा

इधर कृष्ण और बलराम दोनों को खबर लगी तो दोनों बाहर निकले मथुरा पुरी से निहत्थे। प्रभु के हाथ में कोई अस्त्र नहीं हैं। कालयवन पहचान गए ये ही कृष्ण हैं। कृष्ण आगे कालयवन पीछे भागने लगे। भगवान् भी लुके छिपे एक गुफा में प्रवेश कर गए। वहाँ पर गुफा के अंदर एक राजा मुचुकंद सो रहे थे। ये सूर्यवंश के राजा थे। देवताओं की युद्ध में सहायता की। देवताओं ने वरदान माँगने को कहा तब निद्रा का वरदान माँग लिया। जो हमें नींद से जगाए वह हमारी आँख की अग्नि से जल कर भस्म हो जाए। राजा मुचुकन्द तभी से गुफा में सो रहे थे। भगवान् श्रीकृष्ण पीताम्बर उतारकर मुचुकंद पर ढक दिया और स्वयं छिपकर खड़े हो गए। भगवान् मुचुकंद को जगाना चाहते थे, और कालयवन को मरवाना चाहते थे। कालयवन, गुफा में आया और क्रोध से लात मारी मुचुकंद जागे। कृष्ण समझकर कालयवन ने जब लात मारी मुचुकंद को तो वह प्रहार से झट उठ बैठे। आँख से निकली अग्नि से कालयवन जलकर भस्म हुआ। तब भगवान् हँसते हुए बाहर आए, चलो एक साथ दोनों काम हुए। एक नींद से जागा, एक मारा गया। सूर्यवंशी राजा बहुत सोते रहे हैं। देखो अब तो द्वापर युग आ गया। त्रेता में मैं राम बनकर आया अब तो द्वापर का अंत होने वाला हैं। मैं कृष्ण बनकर आया। राजा ने भगवान् को प्रणाम किया और कहा कि भगवन–

"को भवानिह सम्प्राप्तो"

(श्रीमद्भागवतम् 10.51.27)

हे भगवन आप कौन हैं? अपना परिचय तो दीजिए। भगवान् ने अपना परिचय

दिया। जन्म, कर्म से मेरे बहुत जन्म हैं

"जन्मकर्मभिधानानि सन्ति मेऽङ्गसहस्त्रशः।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.51.36)

परन्तु इस बार यदुकूल में मेरा अवतार हुआ है।

"अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.51.40)

मुझे कोई गोविन्द कहते हैं और कोई वासुदेव कहते हैं, कोई गिरधारी कहता है, अपना परिचय जब प्रभु ने राजा मुचुकंद को दिया तो भगवान् की स्तुति करने लगे। इन्हें ज्ञान हो गया कि ये साक्षात श्रीहरि हैं, भगवान् हैं। राजा ने मुक्ति के लिए भगवान् की स्तुति और प्रार्थना की।

विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक्।
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित्पुरुषश्च वञ्चितः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.50.45)

भगवान् आपकी माया से मोहित ये सारा संसार हो रहा है। प्रत्येक जीव आपकी माया से मोहित आपको भूल रहा है। भगवन् आपके और हमारे बीच में जो पर्दा लगा है इसे आप हटा दीजिए। जीव और ब्रह्म के बीच में माया का पर्दा है। जब तक ये नहीं हटता तब तक इस जीव को परमात्मा का दर्शन नहीं होता। जब-जब जीव परमात्मा की ओर बढ़ता है तब-तब ये माया का पर्दा आँखों पर पड़ता है। तो भगवन जो केवल माया-माया का ही चिन्तन करता है कि-

माया-माया सब भजे, माधव भजे न कोय।
जो माधव को भजे, माया चेरि होय।।

माधव-माधव जीव नहीं भजते, माया को ही जीव भजते हैं। पर मायापति को नहीं भजते, परन्तु जो माया पति नारायण को भजता है, वह धन्य है क्योंकि जहाँ पर नारायण हैं। वहाँ लक्ष्मी को आना ही पड़ता है। लक्ष्मी का अर्थ हैं सुख। वह हमें सुख दे सकती है। परन्तु किसी को शांति नहीं मिलती है। शांति तभी मिलती है जब लक्ष्मी के साथ नारायण भी आ जाएँ, कृष्ण भी आ जाएँ। तो हमारे जीवन में सुख के साथ शान्ति भी आ जाती हैं। मुचुकन्द राजा ने भगवान् की स्तुति की, प्रार्थना की, कहा-

सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता।
वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.51.58)

राजा ने कहा कि आप मुझे मुक्त करा दीजिए। तब भगवान् ने कहा एक जन्म और लेना होगा। उस जन्म के द्विज बनोगे, मेरी भक्ति को प्राप्त करोगे। भगवान् ने मुचुकंद पर कृपा किया। भगवान् ने कहा कि आप राजन् बद्रिकाश्रम चले जाएँ। राजन चल दिए, भगवान् जब गुफा के बाहर निकले तो कालयवन की सेना आ गई युद्ध करने। भगवान् ने उस विराट सेना का भी मान भंग किया और उसी समय जरासंध भी आ गए। दाऊ जी महाराज और कृष्ण जरासंध के साथ ऐसी छलना की कि दोनों सगे भाई, जरासंध ने पीछे कर लीं सेना, कृष्ण और दाऊ दोनों भाई भागते हुए प्रवर्षन पर्वत पर चढ़ गए। जरासंध ने पर्वत को चारों ओर से घेर लिया और आग लगा दी। जरासंध बहुत प्रसन्न हुए समझ लिया कि बस दोनों जिंदा ही नहीं रहेगा जरासंध घर लौट गया। भगवान् का नाम हुआ रणछोड़, बोलिए भगवान् रणछोड़ की जय। जरासंध अपनी राजधानी मगध लौट गए। मान लिया कि कृष्ण बलराम जिंदा जल गए। इधर कृष्ण बलराम पर्वत से छलांग लगाकर सबके अलक्ष्य में जरासंध की विशाल सेना को अतिक्रम करके द्वारका पहुँचे।

अथ द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः

द्वारका गमन, श्री बलरामजी का विवाह तथा श्रीकृष्ण के पास रुक्मिणी जी का संदेश लेकर ब्राह्मण का आना

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन इस प्रकार से भगवान् अपनी द्वारका लीला प्रारंभ करने जा रहे हैं। दाऊ जी महाराज का विवाह रैवत राजा की पुत्री रेवती से हुआ। कृष्ण को बड़े भाई के विवाह का इंतजार था। जब तक बड़े भाई न करते तो कन्हैया कैसे करते? अब उनकी बारी आई। शुकदेव जी महाराज ने कहा कि परीक्षित अब आपको कौन-सी कथा सुनाऊँ, राजा ने कहा भगवन आप मुझे रुक्मिणी मंगल की कथा सुनाएँ, देखिए बड़ा अद्भुत चरित्र प्रारंभ हो रहा है। राजा परीक्षित ने प्रश्न किया कि–

भगवान्भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम्।
राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.52.18)

राजा ने प्रश्न किया महाराज मैंने सुना है कि रुक्मिणी जी के साथ भगवान् ने विवाह राक्षस विधि से किया था। देखिए आठ प्रकार से शादियां होती हैं, प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण, उसमें एक विधि है राक्षस विधि, प्रश्न किया भागवत में "राक्षसेन विधानेन उपयेम इतिश्रुतम्" क्या भगवान् ने राक्षस विधि से शादी की थी? भगवन कृष्ण कथा को सुनकर तृप्ति नहीं हो रही, कथा आगे बढ़ाइए। देखिए राक्षस विधि से क्षत्रिय में अपहरण करके कन्या लाए और विवाह करे ये श्रेष्ठ माना जाता हैं। भगवान् ने रुक्मिणी का अपहरण किया, लेकिन अपना शौर्य बताने के लिए नहीं, पहले रुक्मिणी का पत्र आया (कन्या का मन जानना जरूरी) तब भगवान् ने अपहरण किया।

ब्रह्मन्कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः।
को नु तृप्येतशृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.52.20)

कृष्ण कथा को सुनकर कौन जीव तृप्त हो सकता है, जितना कथा को सुना जाए उतना ही प्यास बढ़ती है, ये भगवान् की दिव्य कथा हैं। जितनी बार इस कथा को रस पान किया जाए उतनी ही प्यास बढ़ जाती हैं। यही है भगावत की अमृत कथा प्रवाह। भागवत् कथा को सुनकर कभी तृप्त नहीं होना, 'कब तक'?

पीवतः भागवत्म् रसमालयम् मुहुरहो रसिका भुविभावुकाः।

यानि मोक्ष पर्यन्त ये भागवत श्रवण करते रहना, इस प्रकार राजा परीक्षित ने भी ये ही प्रश्न किया कि कौन ऐसा जीव होगा जो भागवत कथा सुनकर तृप्त हो जाए। तो शुकदेव जी महाराज सुन्दर इस कथा का वर्णन कर रहे हैं। कि–

राजासीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान्
तस्य पंचाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.52.21)

श्रीकृष्ण का प्रथम विवाह भीष्मक राजा की पुत्री रुक्मिणी के साथ हुआ। परीक्षित, विदर्भ देश के राजा भीष्मक जिनकी रुक्मी एवं रुक्मबाहु, रुक्मरथ, रुक्मकेश, रुक्ममाली नाम के पाँच पुत्र थे और जिनकी एक बेटी थी रुक्मिणी। जब रुक्मिणी पाँच बरस की थी तभी से अपने पिता के साथ सत्संग में बैठा करती थी। सत्संग में बड़े ध्यान से कथा सुनती थी। पाँच बरस में रुक्मिणी जी के अंदर भगवान् के प्रति पतिभाव जागृत हुआ, भगवान् के प्रति जैसे पतिभाव मीराबाई के जीवन में हुआ। जब वे शादी योग्य हुई तो विवाह की चर्चा होने लगी। रुक्मिणी जी ने पिता

से कहा कि मुझे विवाह नहीं करना। क्यों बेटी, ऐसा कैसे हो सकता है? तुम्हारा मन यदि किसी में लगा हो तो बता दो। योग्य होगा तो हम वहीं विवाह करा देंगे। रुक्मिणी जी ने कह दिया कि हमारा मन तो द्वारका वाले श्रीकृष्ण से लग गया।

ये तो अच्छी बात हैं। वहीं विवाह कराएंगे। लेकिन तब रुक्मिणी का भाई वहाँ आया। उसने कहा आप चिंता न करें। अपने मित्र शिशुपाल के साथ विवाह पक्का कर दिया। रुक्मिणी बहुत घबराई व नाराज हुई भाई पर। भाई से बोली मुझे विवाह नहीं करना। भाईया एकबार पूछा भी नहि मुझसे। भाई ने कहा–कन्या को पूछने की क्या जरूरत है। शिशुपाल हर तरह से अच्छा है, लग्न का दिन नजदीक है, परन्तु भीष्मक महाराज की इच्छा थी कि द्वारकाधीश से ही विवाह हो। जब पुत्र 16 बरस का हो जाए तो नीति शास्त्र कहता हैं पुत्र के साथ मित्र भाव रखना चाहिए पिता को। कोई भी कार्य करे पुत्र से ही सलाह लो। सलाह मिल गई कि बहन की शादी शिशुपाल से करेंगे। पिता को यह बात माननी पड़ी। शुभ मुहुर्त में विवाह का तय हो गया। लग्न का समय नजदीक आने लगा। शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् रुक्मिणी जी ने एक सुन्दर दिव्य पत्र भगवान् श्रीकृष्ण के नाम पर लिखा, सुदेव नामक ब्राह्मण को पत्र दिया। जिसमें लिखा है सात श्लोक। श्रीमद्‌भागवत में ये दिव्य श्लोक है एक-एक श्लोक रुक्मिणी जी लिखती जा रही हैं और रुक्मिणी जी ने श्रीकृष्ण के साथ मानसिक फेरे भी डालती जा रही हैं।

रुक्मिणी जी ने सात श्लोक लिखकर पत्रिका को बंद किया और अपने पुरोहित भुदेव ब्राह्मण को दिया। ब्राह्मण देव से प्रार्थना की कि हे देव मेरी इस पत्रिका को द्वारकाधीश को पहुँचाए। ब्राह्मण देव चल दिए, श्रीकृष्ण भगवान् के लिए। प्रभु का स्मरण करते हुये जा रहे हैं।

गीतम्

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारी हे, नाथ नारायण वासुदेव

सारा दिन और सारी रात ब्राह्मण देव चले और प्रातःकाल पहुँच गए द्वारकापुरी। बोलिए द्वारकाधीश भगवान् की जय।

भगवान् ने ब्राह्मण देवता का स्वागत किया, आतिथ्य प्रदान किया। विश्राम कर चरण दबाते हुए श्रीकृष्ण ने पूछा ब्राह्मण देवता आपको मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ। सुखपूर्वक यात्रा रही। बोले प्रभु कोई तकलीफ नहीं हुई। भगवान् ने पूछा कहो कहाँ से आ रहे हो। कहा कि मैं विदर्भ से आ रहा हूँ। राजा भीष्मक कैसे

हैं? कुशल हैं, बोले आज आपने इस द्वारका पुरी को कैसे पवित्र किया ब्राह्मण देव। कृपा करें। भुदेव ब्राह्मण ने चिट्टी निकालकर कन्हैया को दी और कहा राजकुमारी ने इसे भेजा हैं। कृष्ण ने कहा ब्रह्मण देव आपहि पड़कर सुनाइये न हमारे लिये रुक्मिणी जी ने क्या लिखा हैं। आज भगवान् ने ब्राह्मण देव को चिट्ठी पढ़ने के लिए कहा क्या भगवान् उस पत्रिका को नहीं पढ़ सकते। "सत्यं ज्ञानं अन्त कृष्ण" देखिए दूसरे के पत्र को पढ़ने में बहुत आनंद आता है। रहस्मयी बात हैं और उसमें भी किसी लड़की की चिट्ठी किसी लड़के लिए हो। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

लेकिन इस तरह से लिखा है पढ़ने योग्य हैं। समय कम है, चिट्ठी बड़ी सुन्दर हैं। रुक्मिणी का पत्र हकीकत में पढ़ने जैसा है, परन्तु समय बड़ा कम हैं। बोलो क्या किया जाय? पढ़ें कि छोड़ दें? पढ़ूँ! वाह! वाह! दूसरे का पत्र पढ़ने में हमे होशियार। यही आदत है हमारी। इसका दर्शन हुआ हमें, किन्तु दूसरे का पत्र नहीं पढ़ना चाहिए। सुनाओ, तो रुक्मिणी का संदेश कृष्ण के नाम। फिर भी यदि आप कहते हैं तो पढ़ूँ। कृष्ण ने स्वयं भुदेव से कहा, इसलिए अब आप पढ़कर सुनाइये। सात श्लोक में पत्र लिखा है रुक्मिणी जी ने, पहले सोचा सम्बोधन क्या करूं, अभी तक विवाह नहीं हुआ, मर्यादा होनी चाहिए। बहुत विचारने के बाद सम्बोधन किया कि हे भुवनसुन्दर! इस पत्र को पढ़कर सुना रहे हैं। आज ये ब्राह्मण देवता।

श्रुत्वा गुणान्भुवनसुन्दरशृष्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं में।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.52.37)

पहला शब्द है श्रुत्वा, भक्ति के पहली बात है। सुनना। हे भुवन सुन्दर आपकी गुणानुवाद की चर्चा सुनकर मेरा मन आपमें लग गया है। मैंने आपको मेरा चित्त पत्र समर्पित किया। सम्बंध बांधा। लेकिन स्त्री पुरुष के मध्य तो कई प्रकार के सम्बंध होते हैं, इसलिए दूसरे श्लोक में सम्बंध को नाम दिया गया हे।

आप जो कुलशील और रूप से अतिप्रिय लग रहे हैं। कौन कन्या आपको पतिरूप में स्वीकार नहीं करेगी। मैंने आपको पतिरूप में स्वीकार्य किया। सम्बंध को नाम दिया है, मैं पति के रूप में आपको मन से वर चुकी हूँ। आपको समर्पित हो चुकी हूँ, कुल, शील, विद्या, रूप, धन धाम ये सभी हमारे तुल्य हैं, उपयुक्त हैं,

1. कुल : जब सम्बंध करते हैं, विवाह करते हैं। तो देखना चाहिए कुल?

2. शील : परिवार चरित्र देखना चाहिए।

3. फिर विद्या

4. रूप,

5. धन, द्रव्य–पैसा,

6. घर, धाम–मकान,

7. उम्र वय, यानि–वयस,

आदि आदि देखनी चाहिए कि सब ठीक है या नहीं। आप इन सब बातों में योग्य हैं। तो मैं भी योग्या हूँ, इसलिए ये सम्बंध उचित रहेगा। लेकिन तीसरे श्लोक में कहा कि–

ये तो एक पक्ष की बात रही कि मैंने आपको पतिरूप में स्वीकार किया हैं। यदि आप मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार करना चाहते हैं– हाँ हाँ यदि आप के अनुसार यह उचित है तो यहाँ आकर मेरा हरण करना होगा। जैसे सिंह अपने भाग को ले जाता है, श्रृगाल की ताकत भी नहीं कि उसके सामने देखे। आप पुरुष सिंह हैं और मैं आपका भाग हूँ। शिशुपाल तोश्रृगाल है वह क्या मेरे सामने देखे। परन्तु प्रभु मेरे भाई ने शिशुपाल के साथ मेरा विवाह तय किया है। आप पुरुष सिंह का परिचय देकरश्रृगाल से अपने भाग की रक्षा करेंगे। अब भगवान् के साथ कोई विवाह का दावा करता है तो कोई सत्कर्म तो होना चाहिए। इसलिए रुक्मिणी ने चौथा श्लोक में सुन्दर लिखा है कि–

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्र–गुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः।
आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं
गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये।

(श्रीमद्भागवतम् 10.52.40)

यदि हमने बड़े–बड़े मंदिर बनाए हैं, धर्मशालाएं बनाई हैं, तालाब और कुएं बनाए हैं, प्याऊ बनाई हैं। यदि दान, व्रत, तप, जप, होम किया हैं। यदि गदाग्रज भगवान् की आराधना की है तो हमारे सत्कर्म के अनुसार फल स्वरूप हे कृष्ण आप हमारा पाणिग्रहण करो।

हाँ यदि आइएगा तो सोच–समझ कर आइए, ये कोई सरल बात नहीं। शिशुपाल के साथ जरासंध आदि मित्र भी आने वाले। युद्ध की पूर्ण आशंका हैं। यदि अपने बाहुबल मे पूर्ण विश्वास हो तबहि आईयेगा।

अब ऐसा लिखा है कि कौन पुरुष ना कहेगा।
कृष्ण यदि न जाए तो कायर कहलाएंगे।

हाँ यदि आप पूछना चाहते हैं कि कैसे हरण करूँ, तो मैं युक्ति बताऊँ, हमारे कुल में रिवाज है, कि जिस कन्या का विवाह होता है, उसे गाँव के बाहर जगदम्बा की पूजा के लिए जाना होता है।

"पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा" मैं अपनी सखियों के साथ पूजा करने जाऊँगी। आप वहीं पर अपना रथ लेकर आ जाएं, वहीं से भाग निकलेंगे। यदि आप मुझे ग्रहण नहीं करेंगे तो मैं अन्न जल का त्याग कर सकती हूँ, पर किसी भी स्थिति में शिशुपाल को वरण नहीं करूँगी। अब अंतिम श्लोक में कहा, अनन्यता का दर्शन करते हुए रुक्मिणी ने कहा, कि यदि आप नहीं आए तो ये रुक्मिणी आपके नाम, की माला फेरकर सारा जीवन व्यतीत कर देगी। एक बार जो आपकी हो चुकी है, किसी अन्य की नहीं होगी। अनन्यता का दर्शन कराया रुक्मिणी जी ने।

चिट्ठी पढ़ सुनाई ब्राह्मण देवता ने। पूछा वासुदेव भगवान् को, क्या कहना? जल्दी करो एक ही रात बाकी हैं। कल तो विवाह का मुहुर्त हैं। बारात आने वाली हैं। जल्दी करो। ब्राह्मण ने कहा, आप शीघ्र विचार करें।

हरि ने तुरंत निर्णय लिया। ब्राह्मण का चरण पकड़ते हुए कहा– क्या बताऊँ ब्राह्मण देवता मेरा मन भी रुक्मिणी में लगा है, मुझे भी उसी के विचार आते रहते हैं, रात को सोता हूँ तो उसी के सपने दिखते हैं, निद्रा भी नहीं आती।

अथ त्रिपंचशत्तमोऽध्यायः

रुक्मिणी हरण

वैदर्भ्याः स तु सन्देशं निशम्य यदुनन्दनः।
प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.53.1)

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि रुक्मिणी अपने पत्र में लिखती है कि मैं आपकी आदि अनादि सनातन भाग हूँ, मुझे स्वीकार करें। भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मण का हाथ हाथ में रखकर हँसने लगे, भगवान् ने कहा, देखो ब्राह्मण जैसे रुक्मिणी का मन मुझ में अनुरक्त हैं वैसे ही मेरा मन भी रुक्मिणी में अनुरक्त हैं। भगवान् ने तो यहाँ तक कह दिया कि मुझे रात्रि में नींद नहीं आती। उसके सपने आति हैं,

"निद्रां च न लभे निशि" मैं भी रुक्मिणी जी का चिन्तन कर रहा हूँ। देखिए दोनों ओर विशुद्ध प्रेम हैं। ब्राह्मण देवता ने कहा नींद नहीं आती तो सपने कैसे आते हैं? कहा कि वो जो आप समझो, मेरा मन भी रुक्मिणी में लगा है। इसका मतलब है कि

भगवान् का कहना है कि "ये यथां माम् प्रपद्यन्ते, ताम् तां तथैव भजाम्यहं" जो जिस प्रकार भगवान् को भजते हैं। भगवान् उसे वैसे ही कृपा करते हैं, भजते हैं।

भगवान् ने अपने सारथि दारुक को बुलाया, कहा कि रथ तैयार करो, शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहकैः चार दिव्य अश्व रथ में जोड़े। सुदेव ब्राह्मण को रथ में बैठाया बाद में स्वयं बैठे। किसी को कहा भी नहीं कि कहाँ जा रहा हूँ। रथ को भगाया, एक ही रात में द्वारका से विदर्भ पहुँचे। कौंडिन्यपूर आ गए। वहाँ तो राजा भीष्मक शादी की तैयारी कर दी थी। 15 दिन से शादी की तैयारियां चल रही थी। दमघोष पुत्र शिशुपाल अपनी बारात लेकर आया था। बारातियों का स्वागत भी हो चुका था। उतारा भी दे दिया गया था। तब द्वारकानाथ पधारे। उनका भी स्वागत कर उतारा दे दिया गया। ये बात शिशुपाल के बारातियों के पास पहुँची। जहाँ दूल्हा बैठा हुआ था "द्वारकावाले कृष्ण आए हैं"। ये सुनते ही दूल्हे के हाथ का श्रीफल काँपने लगा। अपने मित्र को बताया कि ध्यान रखना। वह कन्हैया मेरे मामा का लड़का है वह बचपन से ही चोरी करता हैं। यदि वह चोरी करके कन्या ले गया तो हम कुँवारे ही मर जाएँगे।

मित्रों ने कहा कि तुम चिंता मत करो। हमारे जैसे वीर पुरुष मौजूद हैं, तुम्हें। चिन्ता किस बात की, तुम श्रीफल ठीक से पकड़ो, वरना गिर जाएगा। चिंता मत करो। मित्र ने शिशुपाल को शान्त किया। यहाँ दूसरे दिन वर यात्रा निकली कन्या के घर जाने के लिये, और कन्या निकली भवानी मन्दिर जाने।

जगह-जगह तोरण द्वार, बन्दनवार, मोतियों के चौक बनाए जा रहे हैं। आज विदर्भ देश को दुल्हन की तरह सजाए जा रहे हैं, मंगल गान गाए जा रहे हैं। रुक्मिणी जी को मंगल सूत्र बाँधा जा रहा हैं। अन्नदान, वस्त्र दान, गौदान आदि हो रहे हैं। परन्तु रुक्मिणी जी को कुछ अच्छा नहीं लगा रहा हैं। उनका ध्यान सिंह द्वार की ओर केंद्रित हैं। कब ब्राह्मण आकर मेरे प्राणनाथ का संदेश सुनाएगा। तो क्या, उसी समय ब्राह्मण देव आते दिखे। रुक्मिणी जी का वामाँग फड़कने लगा। "प्रिय भाषिणः" ये शगुन दिखा। स्त्रियों के लिए वामाँग फड़कना शुभ होता हैं। सामने से ब्राह्मण देवता रुक्मिणी जी के पास आए, रुक्मिणी जी ने उन्हें प्रणाम किया। वे बोले, पुत्री तेरी मनोकामना पूर्ण हो गई। तेरे प्राणनाथ विदर्भ देश में पहुँच चुके हैं।

ब्राह्मण देव से रुक्मिणी जी ने सुना कि द्वारकाधीश पधार चुके हैं, तो पुनः रुक्मिणी जी ने ब्राह्मण देवता को प्रणाम किया। आशीर्वाद दिया ब्राह्मण देव ने और ब्राह्मण देव चले गए। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् वह सुंदर दिन भी प्रकट

हो गए जिस दिन रुक्मिणी जी अपनी सखियो के साथ अपने सहेलियो साथ देवी मन्दिर में जा रही हैं।

इधर चतुरंगिनी सेना, हाथी, घुड़सवार, रथ और पैदल खड़े हैं। रुक्मिणी जी इस विशाल सेना के मध्य में से सखियों के साथ जा रही हैं, देवी जगदम्बा के मंदिर की ओर।

हाथ में मंगल थाल सजे हैं। सखी सहेलियां कुछ मंगल गीत गा रही हैं, कुछ गुनगुना रही हैं, रुक्मिणी जी भी प्रसन्न मुद्रा में गा रही हैं। देखिए भगवान् के मंदिर में गुनगुनाते हुए जाना चाहिए। भगवत नाम का उच्चारण करना चाहिए। रुक्मिणी जी भी गुनगुना रही हैं, आप भी उन्हीं के साथ गुनगुनाइए। रुक्मिणी जी गा रही हैं।

दोहा

वृन्दावन मकरन्द है रसिक करत रस पान,
दुल्हन प्यारी राधिका दूल्हा श्याम सुजान।
ऐसे बर को क्या वरु जो जन्मे और मर जाए,
बरिए गिरधर लाल को चुड़लो अमर हो जाए।

गीतम्

आओ मेरी सखियों मुझे मेहंदी लगा दो।।
मेहंदी लगा दो मुझे ऐसी सजा दो–
मुझे श्याम सुन्दर की दुल्हन बना दो।।
आओ...
सत्संग में मेरी बात चलाई, सद्गुरु ने मेरी कोनरे सगाई।
सत्संग मेरी..........................

....
ऐसी पहनूं चूड़ी जो कबहुं न टूटै।
ऐसी बरुं दूल्हा जो कबहुं न छूटे।।
अटल सुहाग की बिन्दिया लगा दो।
मुझे श्याम सुन्दर.............।।
ऐसी पहनूं चुनरी जो रंग ना ही छूटे।
प्रीत का धागा कबहु न टूटे।।
आज मेरी मेतियन से माँग भरा दो।

मुझे...................
सद्‌गुरु को बुलाके फेरे तो पड़ा हो।
मुझे...........................।।
भक्ति का सूरमा मैं आँख में लगाऊँगी।
दुनिया से नाता तोड़ उन्हीं की हो जाऊँगी।
सद्‌गुरु...............................
मुझे................................
बांध के घुंघरू मैं उनको रिझाऊँगी।
लेके इकतारा मैं श्याम-श्याम गाऊँगी।
सखियों को बुलाके डोली तो सजवा दो।
सद्‌गुरु को बुला के विदा तो करवा दो।।
मुझे श्याम...............................
रुक्मिणी जी गुनगनाती हुई सखियों के साथ
जगदम्बा के मंदिर में जाकर पूजा, प्रार्थना की।
नमस्ये तवाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम्।
भूयात्पतिर्मे भगवान्कृष्णस्तदनुमोदताम्।।
(श्रीमद्‌भागवतम् 10.53.46)

रुक्मिणी जी ने जगदम्बा माँ से प्रार्थना की, कि आपकी गोद में बैठे आपके प्रिय पुत्र गणेश जी को तथा आपको बारंबार नमस्कार करती हूँ, कि मेरा प्रार्थना पूर्ण हो। मेरे पति कृष्ण हों। जगदम्बा की मूर्ति हँसती हुई दिखी। फूलमाला रुक्मिणी पर गिर पड़ी। रुक्मिणी के लिए शकुन हुआ।

पूजन करके बाहर निकली और देखा कि मैंने पत्रिका में यहीं इंतजार करने के लिए लिखा था, पर कृष्ण यहाँ नहीं दिख रहे। आए तो जरूर होंगे, पर मेरे प्रीतम को सब कारज चोरी से करने की आदत है, देखूँ कहीं छिपकर तो नहीं खड़े हैं। तो रुक्मिणी जी ने घूंघट उठाया कृष्ण को देखने के लिए। सभी सैनिक साक्षात शुभ लक्ष्मी स्वरूपा रुक्मिणी जी का अलौकिक सौंदर्य देखकर मूर्छित हो गए।

वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने दारूक से कहा रथ तैयार करो हम मंदिर जाएं। शिशुपाल भले ही मंडप जाएँ। सखियों ने जैसे ही देखा, रुक्मिणी को इशारा किया, वो आ गए रुक्मिणी। भगवान् श्रीकृष्ण नन्द नन्दन, अपना सुन्दर रथ लेकर दौड़ाते हुए आए और तुरंत मंदिर के द्वार पर रथ रोका और अपने हाथ का सहारा

रुक्मिणी जी की अपना हाथ भगवान् के हाथ में रखा, भगवान् ने रुक्मिणी जी को रथ में बैठा लिया और लेकर रथ को भगवान् श्रीकृष्ण ने उस चक्रव्यूह से बाहर निकालने के लिए दौड़ाया। जैसे ही रथ भागा, भगवान् ने जोर से अपना पाँचजन्य शंख बजाया। प्रभु ने ज्यों शंख बजाया तो मूर्च्छित सैनिक उठकर हल्ला करने लगे। सैनिक सभी एक साथ बोलने लगे। "लेयो गए लेयो गए" सैनिक पीछे दौड़े किन्तु रथ तब तक बहुत दूर चला गया था। इस प्रकार सभी सैनिक मारो मारो, पकड़ो-पकड़ो कहते कृष्ण के पीछे भागने लगे। तब जरासंध आदि राजाओं को बहुत क्रोध आया। ये भी अपने सैनिक के साथ कृष्ण के पीछे भागे।

यहाँ कृष्ण अकेले हैं। कृष्ण को ललकारा तो उन्होंने रथ रोक दिया। आज अकेले कृष्ण हैं, सामने सेना के साथ बहुत से राजा हैं। जरासंध प्रसन्न हो गए कि आज अकेला है बचेगा नहीं। लेकिन उसी समय दाऊ जी महाराज यादव सेना लेकर पधारे। पीछे जय-जयकार हुआ यादव सेना के द्वारा। "द्वारकाधीश की जय"

कन्हैया ने मुड़कर देखा कि बड़े भाई ठीक मौके पर आए। इसी को कहते हैं, बड़े भाई। ऐसा भीषण युद्ध हुआ कि जरासंघ आदि राजा को सेना का विनाश कर दिया। वे जान-बचाकर भागे। जब गए कुंडीनपुर तो रुक्मि क्रोधित हुई, उसने बड़े प्रतिज्ञा की कि मैं अपनी बहन का विवाह शिशुपाल के साथ ही करूँगा। अभी बहन को लेकर आता हूँ पर ऐसा नहीं हुआ। अन्न, जल, नहीं ग्रहण करूँगा। गाँव में प्रवेश नहीं करूँगा। रक्मि के साथ भी युद्ध हुआ। सेना का विनाश हुआ सभी का मान भंग करते हुए अंत में रुक्मि को जैसे ही कृष्ण मारने गए तो दाऊ महाराज ने देखा कि रुक्मिणी घबराई हुई है, कि अभी हमारे भाई के दो टुकड़े हो जाएँगे। दाऊ जी महाराज ने दौड़कर कृष्ण का हाथ पकड़कर कहा—जाने दो। कृष्ण ने कहा क्यों? दाऊ ने कहा साले साहेब जो हैं। कन्हैया को दया आ गई, लेकिन उसकी एक मूँछ और आधे सिर का मुंडन कर दिया। इस प्रकार विरुप बनाकर रुक्मि को छोड़ दिया। अपमानित होकर रुक्मि अपनी प्रतिज्ञानुसार गाँव में नहीं गए। गाँव में क्या मुँह दिखाता। भोजकट नाम का नया शहर बसाकर वहीं बस गए।

यहाँ दाऊ जी महाराज रुक्मिणी, कृष्ण और यादव सेना के साथ द्वारका आए। वहीं माधोपुर में भगवान् द्वारकाधीश और रुक्मिणी का विवाह सम्पन्न हुआ। बड़ी वैदिक रीति से शादी का कार्यक्रम हुआ। आज भी जो भीड़ प्रदेश गुजरात में हैं। जूना गढ़ जिले में, वहाँ मेला लगता हैं। जहाँ भगवान् माधव राव का विवाह रुक्मिणी जी के साथ हुआ। देखिए आज एक दस मिनट का कार्यक्रम भी नहीं देखने को मिलता।

स्वस्ति वाचन का पाठ ही केवल करके ब्राह्मण देव विवाह करा देते हैं। अंगूठी पहनाकर माला बदलवा देते हैं। 'बज गई ताली, हो गई शादी' परन्तु भगवान् रुक्मिणी का विवाह बड़ी धूम-धाम से हुआ। सुन्दर मंडप की रचना हुई। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि दूल्हे के रूप साक्षात् विष्णु हैं। दुल्हन के रूप में लक्ष्मी स्वरूपा रुक्मिणी जी है, पवित्रता से उच्च स्वर से स्वस्ति वाचन का पाठ हो रहा है, ब्राह्मण कर रहे हैं।

स्वस्ति वाचन

हरि ॐ

सुमुखो चयि गज मुखश्च कपिलो करतलाः
लम्बोदरश्च विप्र बिना सोभनायता
धूम्रकेतु रणगतः सोभाल चन्द्र गजाननं
द्वादशै एताननेन माने पड़े क्ष्छुड़िया दपि,
विदयारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा संग्रामे संकटे चैव,
एव चे विघ्न तस्य न जायते
श्रीमन्न महा गणाधि पतये नमः।।

इस प्रकार से ब्राह्मणों का सुन्दर वैदिक स्वति वाचन और मंगल गीत, शहनाइयां सब मिलाकर भगवान् श्रीकृष्ण का रुक्मिणी के साथ विवाह सुन्दर रूप से मनाया गया। भगवान् ने रुक्मिणी के गले में जयमाला अर्पण किया और रुक्मिणी ने भगवान् के गले में जयमाला प्रदान किया। बोलो रुक्मिणी द्वारकाधीश की जय।

गीतम्

विवाह गीत

राधे गोविन्द भजो- राधे गोविन्द।।-2
द्वारकानुनाथ भजो- राधे गोविन्द।।-2
रुक्मिणीनुनाथ भजो राधे गोविन्द-2
गोपियननु न्याथ भजो राधे गोविन्द।।
मीरा बाई नु नाथ भजो राधे गोविन्द।।
डोगरे जीनुलाल भजो राधे गोविन्द।।
नरसिंह जी नु नाथ भजो राधे गोविन्द।।
तुका राम नु नाथ भजो भजो राधे गोविन्द।।

राधे गोविन्द भजो राधे गोविन्द।।
जय जय श्री राधे।।

बोलिए श्री वृन्दावन बिहारी लाल की जय....

देखिए ये प्रतीकात्मक है, रुक्मिणी है लक्ष्मी स्वरूपा, भिष्मक है सागर और रुक्मि है विष।

रुक्मिणी का भाई।

तो हमें हमारी लक्ष्मी का विवाह करना है भगवान् के साथ, मतलब अपनी लक्ष्मी का जो सदुपयोग करे भगवत कार्यों में। भगवत कार्य यानि कि भगवत सेवा। भगवान् की वाणी का प्रचार करना। ग्रन्थ रचना करना, वितरण करना। श्री विग्रह की प्रतिष्ठा करना, मंदिर निर्माण करना। साधु सन्त, साधक, भक्त को भोजन कराना, हर सत्कर्म में भगवत भवित होकर समाज की, देश की, प्रदेश की सेवा करना।

अथ चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः

शिशुपाल के साथी राजाओं की और सभी कि हार, तथा श्रीकृष्ण-रूक्मिणी विवाह

अथ पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः

प्रद्युम्न का जन्म और शम्बरासुर का वध

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुरुद्रमन्युना।
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत।
स एव जातो वौदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः।
प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.55.1, 2)

भगवान् श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी जी का मंगल विवाह हुआ, श्री रुक्मिणी शुद्ध लक्ष्मी स्वरूपा हैं। भिष्मक समुद्र का रूप हैं। सागर सुता है लक्ष्मी। भिष्मक का पुत्र रुक्मी विषावतार, विष का प्रतीक हैं। लक्ष्मी विष्णु पत्नी हैं, लक्ष्मी निंदनीय नहीं, वंदनीय हैं। लक्ष्मी में जो आसक्ति है, वह निंदनीय हैं। लक्ष्मी को भजने वाले तीन प्रकार के होते हैं।

उत्तमा, मध्यम, कनिष्ठ।

उत्तम – जो लक्ष्मी को पुत्री की तरह भजे।

मध्यम – जो लक्ष्मी की माँ समझे।

कनिष्ठ अधम – जो स्वयं को लक्ष्मी का मालिक समझे।

उत्तम–

लक्ष्मी को पुत्री समझकर भजता हैं। पुत्री को पाल पोस कर माता पिता बड़ी करते हैं, ऐसे लोग लक्ष्मी को बढ़ाते जाएँगे। लखपति से करोड़पति हो जाएगा। जैसे–जैसे कन्या बड़ी होती है, पिता माता की चिंता बढ़ती हैं। अब इसके हाथ पीले कर दें। ऐसे भक्तों के घर में जैसे–जैसे लक्ष्मी की वृद्धि होती जाएगी कि मैं लक्ष्मी का विवाह कर दूं, लक्ष्मी का विवाह विष्णु के साथ होना चाहिए। कृष्ण के साथ ही होना चाहिए। मतलब अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करना। जो अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करता हैं भागवत कार्य में लक्ष्मी का खर्च किया जाता है, ये लक्ष्मी के साथ विष्णु का विवाह हुआ।

मध्यम

मध्यम प्रकार का भक्त है जो लक्ष्मी को माँ के रूप में भजता हैं, माँ केवल जिस तरह बच्चे का ही पोषण करती हैं। उस तरह अपनी लक्ष्मी अपने पोषण के लिए ही खर्च करता हैं। दूसरे की भलाई में नहीं लगाता। न दूसरों को देता है, न प्रयोग करता हैं।

तो पहले भक्त, लक्ष्मी की गति है–दान। दूसरे प्रकार के भक्त की गति है–भोग। अपने पोषण के लिए ही लक्ष्मी को खर्च करता हैं। उपयोग करता हैं।

अधम

कनिष्ठ प्रकार के जो हैं, वह अपने आप को लक्ष्मी का मालिक समझते हैं। वहाँ लक्ष्मी रहती नहीं, चली जाती हैं। धन की तीसरी गति–नाश। तीन गति है धन की। दान, भोग, नाश। लेकिन उत्तम गति मानी गई है– प्रथम, जो दान है।

"सोधन धन्य प्रथम गतिं जाके"

वह धन धन्य है जिसकी प्रथम गति, यानि दान में जो लक्ष्मी लगाई जाती है वह धन्य हैं। रुक्मिणी और भगवान् श्रीकृष्ण का विवाह हुआ। उनके घर पुत्र हुआ प्रद्युम्न। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् रुक्मिणी के प्रथम पुत्र प्रद्युम्न जो कामदेव के अवतार थे।

प्रद्युम्न साक्षात कामदेव हैं। कामदेव श्रीकृष्ण के पुत्र बनकर आए हैं। काम असुर नहीं देव हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का पुत्र बनकर आता हैं। ये काम कहाँ से पैदा होता है? चित्त से प्रकट होता हैं। जिस समय भगवान् शिव ने कामदेव को जलाकर भस्म किया, कामदेव की पत्नी रति रोती–रोती शिवजी के पास आई। शिवजी की शरण में अपने सौभाग्य की भीख माँगी, प्रार्थना की कि आप मुझे मेरा पति प्रदान करें। भगवान् शिव ने काम को पुनर्जीवित करते हुए कहा था कि–

दोहा

"अब ते रति तब नाथ कर होइहि नाम अनंग

बेनु बपु बैपहि सबहि पुनीत सुनि निज मिलन प्रसंग"

रति तुम्हारे पति को मैं पुर्नजीवित करता हूँ। परन्तु अब वह लोगों के हृदय में एक वृत्ति के रूप में रहेगा। मन में, हृदय में कामना के भाव में रहेंगे, काम के भाव में रहेंगे। तब कामदेव की पत्नी रति ने कहा कि प्रभु आपने मेरे पति को पुर्नजीवित किया संसार के लिए, मेरे लिए नहीं। हे आशुतोष! मुझे तो अपना पति सदैव प्राप्त होना चाहिए। तब भगवान् शिव ने वरदान देते हुए रति को कहाः–

गीतम्

"जब जदुवंश कृष्ण अवतारा,
होइहि हरण महा महि भारा।
कृष्ण तनयपति होइहि तोरा,
वचन अन्यथा होइहि न मोरा।"

रति, जब यदुवंश में भगवान् का अवतार होगा, पृथ्वी का भार हरण करने के लिए, तब श्रीकृष्ण के पुत्र के रूप में तुम्हें तुम्हारा पति सदैव प्राप्त हो जाएगा। भगवान् शिवजी के वरदान के अनुसार कामदेव भगवान् के पुत्र बनकर आए। देव बनकर आए। वही प्रद्युम्न महाराज कामदेव हैं। जब 6 दिन के प्रद्युम्न थे। एक शम्बरासुर सुर नाम के असुर उठाकर सूत का घर से ले गए। जाकर सागर में फेंक दिया। एक मछली निगल गई। मछली पकड़ने वालों ने उसे पकड़ा और शम्बरासुर के रसोइए को ही भेज दिया। इसे पता था कि श्रीकृष्ण के पुत्र द्वारा ही मेरा प्राणांत होगा। इधर जिनके पास पाकशाला की अध्यक्ष थी रति, मायावती जी, काम की पत्नी, जब पेट चीरा उस मछली का तब नन्हे से बालक को देखा। उसका पोषण करने लगी। कम समय में ही बालक मायावती की देखभाल से बड़े होने लगे। अति शीघ्र

ही जवान हो गए।

"नातिदीर्घेण कालेन स कार्ष्णि रुढयौवनः।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.55.9)

मायावती रति की देखभाल से प्रद्युम्न के रूप में कामदेव शीघ्र युवा अवस्था प्राप्त किया,

एक दिन नारद जी ने आकर अवगत कराया काम पत्नी रति को, रति तुम्हारी गोद में ये कौन है? जानती हो। रति बोली–बताइए गुरु जी कौन हैं? नारद ने कहा – रति, मायावति तुम हो रति और तुम्हारे हैं ये पति, कामदेव। शिवजी के आशीर्वाद के वरदान को याद दिलाकर अवगत कराया कि ये बालक जो जवान हो चुका हैं। पिछले जन्म में ये कामदेव थे।। नारद जी तो चले गए, किंतु सुन्दर नवयुवक देखकर मायावति–रति बहुत प्रसन्न हुई। सुन्दर पदम् की तरह आँखें, लम्बे–लम्बे हाथ, सुन्दर मुख कमल को देख मायावती से रहा नहीं गया। अपने पति ये हैं। मन में सोचकर जो मातृभाव से बालक को बड़ा किया उसे छोड़कर पत्नी जैसा भाव लाने लगी। जैसे पत्नी के पास अपने पति का अनुराग होता है।

"मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.55.11)

प्रद्युम्न ने देखा कि जिस माता ने मेरा पालन किया वह मातृभाव छोड़कर पतिन, जैसा आचरण कर रही हैं। वह बोला माता आप ये कैसा आचरण कर रही हैं, आप मेरी माता हैं, पालन–पोषण किया है, मायाावती ने कहा प्रभु कुछ भी याद नही?

प्रद्युम्न ने कहा, देवी नहीं। मायावती ने कहा, प्रभु आप भगवान् नारायण के पुत्र हैं। शम्बरासुर ने आपका अपहरण करके महासागर में फेंक दिया। वहाँ से मछुआरों ने आपको पकड़ लिया। आप मछली के पेट में थे आप हमारी रसोई में आ गए। मैं आपकी पत्नी रति हूँ आप मेरे पति कामदेव हैं। नारद ने हमें ये सारी बातें बताईं। इसमें शंका न कीजिए। नारद की बात से प्रद्युम्न को विश्वास हुआ। उसी समय प्रद्युम्न महाराज ने 12 साल की उम्र में शम्बरासुर को ललकारा और वध कर दिया। अपनी पत्नी मायावती को लेकर द्वारका पहुँचे। इधर द्वारका में प्रद्युम्न ने द्वारकाधीश को प्रणाम किया। साथ में मायावती रति आई। सुन्दर कुमार–कुमारी को देखकर रुक्मिणी ने द्वारकाधीश से कहा यह हमारे खोए बालक की तरह दिखता हैं। आज वह पता नहीं कहाँ है? भगवान् द्वारकाधीश ने कहा कि देवी रुक्मिणी ये वही बालक हैं। अंत में भगवान् श्रीकृष्ण ने सारी बात रुक्मिणी को बताई। वह अति प्रसन्न हुई।

प्रद्युम्न और रति को प्राप्त करके। बाद में प्रद्युम्न का विवाह सम्पन्न हुआ। बड़ी धूम–धाम के साथ विवाह में सभी लोग आनंदित हुए।

अथ षटपंचाशत्तमोऽध्याय:

स्यमन्तक मणि की कथा, जाम्बवती और सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण का विवाह

शुकदेव जी कहते हैं कि राजन् एक सत्राजित नाम के यादव द्वारिका में निवास करते थे और जिनकी बेटी थी–सत्यभामा

"सत्रजित: स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिष:।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.56.1)

एक बार सत्राजित जी ने भगवान् को मिथ्या कलंक लगाया। झूठा कलंक। उसी समय राजा परीक्षित ने तुंरत प्रश्न किया कि, गुरु जी भगवान् को झूठा कलंक क्यों लगा? शुकदेव महाराज कहते हैं, कि राजन् भगवान् ने एक बार भादों सुदी चौथ का चाँद देख लिया था।

प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। देखिए भादों सुदी चौथ का चंद्रमा कभी नहीं देखना। ये शास्त्र सम्मत है, इसे देखने से मिथ्या कलंक लग जाता हैं। एक बार भगवान् ने भी चौथ का चन्द्रमा को देखा और भगवान् को भी झूठा कलंक लग गया है? सुनिए।

एक दिन भादों सुदी चौथ के दिन गणेश जी भ्रमण के लिए गए, तो गणेश जी का पैर कीचड़ में फिसल गया। धड़ाम से गणेश जी गिर पड़े। इस दृश्य को देखकर चन्द्रमा हँसने लगे। गणेश जी ने उठकर वस्त्र झाड़े ज्यों चंद्रमा की ओर देखाकि वह हँस रहा हैं। गणेश जी को क्रोध आ गया बोले, देखो चंद्रमा मुझे चोट लगने पर तुम हँस रहे हो। देख आज के दिन जो तेरा दर्शन करेगा उसे मिथ्या कलंक लगेगा। तभी से जो भादों सुदी चौथ का चंद्रमा देखता है, उसे कलंक लग जाता है चाहे वह झूठा ही हो। इसलिए इसका परिहार करना चाहिए। शास्त्रों में ऐसा कहा है।

राजन् जिसको यह मिथ्या कलंक लग जाता हैं। उस व्यक्ति को इसके परिहार के लिए प्रायश्चित् करना चाहिए। इस मिथ्या कलंक से मुक्ति के लिए स्यामन्तक मणि की जो कथा हैं श्रीमद्भागवत में उसका श्रवण करना चाहिए। इस कथा श्रवण से कलंक दूर हो जाता हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् इस प्रकार से एक दिन भगवान्

ने चांद देख लिये भादो के शुद्धि चौथ का चन्द्रमा और मिथ्या कलंक प्रभु को लगा।

आसीत्सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा।
प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्स च तुष्टः स्यमन्तकम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.56.3)

राजन् एक सत्राजित नाम के यादव जो सूर्य भगवान् के परम भक्त थे, परम मित्र थे। सूर्य भगवान् ने प्रसन्न होकर इन्हें एक मणि दी जिसका नाम था स्यामन्तक मणि। जिसके अंदर से 160 तोले सोना रोज निकलता था। झड़ता था, परन्तु इस 160 ताले को प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन 8 घंटे पूजा करनी पड़ती थी। एक बार उस मणि को पहनकर सत्राजित यादव उग्रसेन की सभा में गए, जब ये उस मणि को पहनकर वहाँ पहुँचे तो मणि के प्रभाव से चारों ओर प्रकाश फैल गया। सभी कहने लगे कि क्या आज सूर्य देव पृथ्वी पर आ गए, इतना प्रकाश उस सभा में। सबकी दृष्टि सत्राजित और उस मणि पर पड़ीं। भगवान् द्वारकाधीश भी वहीं हैं। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण श्यामसुन्दर सभासदों को कहते हैं कि भईया ये सूर्य भगवान् नहीं हैं। ये सूर्य का भक्त है, मित्र हैं। जिनका नाम सत्राजित हैं। ये सत्राजित के गले में जो मणि हैं। उसी का प्रभाव हैं। जब पास में आए सत्राजित तो भगवान् ने कहा ये मणि राजाओं को शोभा देती हैं। इसे उग्रसेन महाराज को दे दो। उसने सोचा सत्राजित की लेने की इच्छा तो कृष्ण की हैं, आपना नाम लेते नहीं, और महाराज उग्रसेन का नाम ले रहें। हैं, मणि नहीं देना चाहते थे अतः चुपचाप उठकर चले गए। राजन् एक दिन उस मणि को धारण करके सत्राजित के भाई प्रसेन मृगया करने गए।

तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम्।
प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.56.13)

परन्तु प्रसेन को शिकर नहीं मिला। प्रसेन पर एक सिंह ने आक्रमण किया। सिंह ने प्रसेन का वध कर दिया। सिंह के पंजे में मणि फँस गई। सिंह जाम्बवन की गुफा के सामने से निकला। जाम्बवान राम अवतार में भगवान् श्रीरामजी के पार्षद थे। जाम्बवन ने सिंह का वध करके मणि प्राप्त कर ली। जाम्बवन जी ने वह मणि अपनी बेटी जाम्बवती को दे दी। वह उसे गले में डालकर आनंद से खेलने लगी। रात्रि में जब प्रसेन घर नहीं लौटा तो महाराज सत्राजित अपने भाई को ढूँढने वन में गए। कहीं भी नहीं मिले। ढूँढते-ढूँढते देखा कि घोड़ा भी मरा पड़ा है, प्रसेन भी मरा पड़ा हैं। परन्तु स्यामन्तक मणि ढूंढने पर भी नहीं मिली। सत्राजित भाई की मृत्यु से और मणि न

मिलने से रोता हुआ घर वापिस आया। पत्नी से कहा कि आज हमारे भाई का वध द्वारिकाधीश भगवान् ने कर दिया क्योंकि वह हमसे मणि माँग रहे थे। तू किसी से नहीं कहना, जो हुआ सो हुआ। पत्नी ने कहा नहीं कहूँगी। पर सखी सहेलियों के सामने ये बात-बातों बात में बता दी कि तुमने सुना है आज मेरे देवर का वध द्व ारिकाधीश भगवान् ने कर दिया और स्यामन्तक मणि ले ली। मैंने तुम्हें बताया क्योंकि तुम मेरी प्रिय सखियाँ हो, तुम किसी से नहीं कहना। बोली नहीं कहूँगी। परन्तु स्त्रियों का स्वभाव है, बात पचती नहीं। एक दूसरे से कहती भी जा रही है, मना भी करती जा रही हैं। जब तक दो कान में बात रहेगी तो बात छिप जाएगी। यदि दो से चार कानों में पड़ी तो हजारों कानों में पहुँच जाएगी?

"कर्णे कर्णे जपन जनाः"

कानों कान जब श्रीकृष्ण तक खबर पहुँची तो भगवान् ने कहा कि अच्छा मैंने भादो सुदी चाँद देखा तो मुझे भी झूठा कलंक लग रहा हैं। भगवान् तुरंत उठकर यादवों के साथ गए जहाँ प्रसेन मरा पड़ा था। वहाँ भगवान् ने देखा कि प्रसेन है मणि नहीं। भगवान् ने सिंह के पंजे के निसान देखे और पीछे-पीछे जाने पर देखा कि सिंह भी मरा पड़ा हैं। भगवान् ने फिर जाम्बवन की गुफा देखी और वहाँ जाकर देखाकि जाम्बवती मणि उछाल-उछालकर खेल रही हैं, भगवान् उस मणि का लेने के लिये अब गये हैं, वह चीखती चिल्लाती अपनी उपमाता के साथ गुफा में चली गई। भगवान् भी गुफा के अंदर प्रवेश कर गए।

जब भगवान् अंदर गए तो वहाँ जाम्बवन्त जी को देखा, उन्होंने भगवान् को नहीं पहचाना कि-

तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत्।
तच्छ्रुत्वाभ्यद्रवत्क्रुद्धो जाम्बवान्बलिनां वरः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.56.21)

भगवान् को देखकर न पहचानकर एक अपरिचित मनुष्य को देखकर बच्चे की तरह भयभीत होकर चिल्ला उठे। परम् बलि रिच्छराज जाम्बवान भगवान् को न पहचानकर द्वंद्व युद्ध प्रारम्भ कर दिया। 28 दिन तक युद्ध चलता रहा। भगवान् ने मार-मारकर नस-नस ढीली कर दी। इतना मारा प्रभु ने जाम्बवन्त जी को कि उनकी बुद्धि ठिकाने आ गई। वे प्रभु को पहचान गए बोले आप मेरे प्रभु राम हैं। आज कृष्ण रूप में दर्शन मिला। भगवान् बोले मैंने आपसे युद्ध इसलिए किया कि जिस समय राम-रावण का युद्ध हो रहा था, उस समय आप तृप्त नहीं हुए। कोई खुशी नहीं हुई।

आपको तृप्त करने के लिए। ये युद्ध किया। रावण विजय के बाद जब मैं अपने पार्षदों के साथ अयोध्या वापिस आया तो कुछ समय के बाद सभी पार्षदों की विदाई के समय कुछ वस्तु एवं आर्शीवाद दे रहा था।

आज कृष्ण रामअवतार की कथा जाम्बवन्त को बता रहे हैं। आपके मन में रावण को वध करने की इच्छा हुई, पर यह मुझे करना था। फिर आपने इच्छा की कि मैं प्रभु से युद्ध करूँ, देखू, प्रभु की बाँह में कितनी ताकत हैं। तुमने मुझसे द्वंद्व युद्ध माँगा राम के मर्यादा रूप होने के कारण मैंने कहा आप पिता समान हैं। मैं युद्ध कैसे कर सकता हूँ? आज तुम्हारी ये इच्छा मैंने पूर्ण की, जाम्बवन्त जी ने विचारा कि जो हुआ सो हुआ, अब भगवान् का कैसे प्रसन्न करूँ? मन में विचार आया कि अपनी बेटी के साथ मधुर सम्बंध स्थापित कर दूँ। लोग कहते हैं कि क्या भगवान् का विवाह रिछनी के साथ हुआ था। बोलिए वृन्दावन बिहारी लाल की जय। वे मानव शरीर में ही थे। जाम्वती के साथ भगवान् की शादी करा दी और दहेज में मणि दे दी। भगवान् को मणि चाहिए थी, वह मिल गई। जाम्वती के साथ भगवान् द्वारका लौट आये। आते ही सत्राजित को बुलाया।

सत्राजित को बुलाकर भगवान् ने कहा कि तुम्हारी मणि हमने नहीं ली है। ये मुझे महाराज जाम्बवान जी से मिली। जाम्वती जी से मणि को प्राप्त किया। अब तुम इस मणि को ले लो, इसने कहा कि वास्तव में हमने विना सोचे समझे भगवान् को झूठा कलंक लगा दिया।

"बेनु विचारे जो करे, सो पाछे पछिताय"

आज सत्राजित महाराज बीच सभा में लज्जित हो गए क्योंकि भगवान् पर झूठा कलंक लगाया। जब तक किसी बात पर ठीक से जानकारी न कर ले वह कार्य तब तक पूर्ण नहीं होगा।

जाम्बवान जी से मणि लेकर आए पर सत्राजित महाराज कहते हैं कि आपने मणि ली है, भगवान् द्वारकाधीश ने बीच सभा में मणि दे दी। सत्राजित ने सोचा कि मैंने भगवान् पर झूठा कलंक लगाया है अब कोई मधुर सम्बंध भगवान् से जोड़ लूँ। उनकी बेटी थी सत्यभामा, उनका पाणिग्रहण संस्कार श्रीकृष्ण के साथ कर दिया। जब दहेज में मणि देने लगा तो भगवान् ने कहा, ये मणि हमें नहीं चाहिए। इसके कारण हमें झूठा कलंक लगा था। सत्राजित ने कहा कि भगवन मेरी इस बेटी के अतिरिक्त कोई सन्तान नहीं हैं। मैं इसका क्या करूँ? आपने बेटी को स्वीकारा तो इसे भी स्वीकार करें। भगवान् ने कहा कि जिसने अपनी बेटी दे दी वह और क्या

देगा। देखिए भगवान् दहेज प्रथा का विरोध कर रहे हैं। द्वारकाधीश भगवान् दहेज नहीं ले रहे। जिसने अपनी बेटी दे दी वह और क्या देगा? कन्या का दान सबसे बड़ा दान हैं। परन्तु कभी-कभी कन्या पक्ष के लोग भी वर पक्ष से आग्रह करते हैं, परन्तु कभी-कभी जबरदस्ती भी ऐसा हो जाता हैं। यादव सत्राजित ने कहा कि प्रभु आप कुछ तो बोलिए। भगवान् ने कहा देखो यदि देना जरूरी है तो मणि के स्थान पर 160 तोले झड़ने वाला सोना राजमहल भिजवा दिया करो। भगवान् की ससुराल से रोज ऐसा ही होने लगा। ऐसी ससुराल सबको मिले। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

परन्तु भगवान् उस स्वर्ण का दुरुपयोग नहीं करते थे, सत्कर्म में उस स्वर्ण को खर्च करते थे। स्वर्ण का अर्थ है धन – अच्छे कार्यों में भगवान् धन लगाते थे। इस प्रकार भगवान् का तृतीय विवाह सत्यभामा के साथ हुआ।

अथ सप्त पंचाशत्तमोऽध्यायः

स्यमन्तक हरण, धनधन्वा का उद्धार और अक्रूर जी का फिर से द्वारका बुलाना

अथाष्ट पंचाशत्तमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्ण के अन्यान्य विवाह की कथा

एकदा पांडवान्द्रष्टुं प्रतीतान्पुरुषोत्तमः।
इन्द्रप्रस्थं गतःश्रृईमान्युयुधानादिभिर्वृतः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.58.1)

चतुर्थ विवाह भगवान् जी का कालिंदी जी से हुआ। श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन् एक बार नन्दनन्दन श्यामसुन्दर द्वारिकाधीश इन्द्रप्रस्थ में पधारे, जो आधुनिक भारत की राजधानी दिल्ली हैं। अर्जुन को साथ लेकर भगवान् यमुना तट पर भ्रमण कर रहे थे, भगवान् ने देखा कि यमुना के तटपर एक सुन्दर युवती बैठकर ध्यान कर रही हैं। भगवान् ने अर्जुन से कहा देखो ये किसका ध्यान कर रही है और हैं कौन? अर्जुन ने पूछा देवि आप कौन हैं? किसे प्राप्त करने के लिए तपस्या कर रही हैं। दवि ने कहा–

अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती।
विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थितः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.58.20)

अर्जुन, मेरा नाम कालिंदी हैं। मैं सूर्य भगवान् की बेटी हूँ। देखिए सूर्य की बेटी है यमुना। जिसका एक नाम कालिंदी हैं। आज कालिंदी जी अर्जुन से कह रही हैं कि मैं भगवान् विष्णु को पति रूप में प्राप्त करने के लिए तप कर रही हूँ। विष्णु का नाम सुनते ही अर्जुन ने सोचा कि साक्षात् कृष्ण ही विष्णु रूप हैं। तुरंत अर्जुन कालिंदी को लेकर भगवान् कृष्ण के पास गये और भगवान् कलिंदी के साथ पाणिग्रहण किया। कुछ दिन भगवान् इन्द्रप्रस्थ में रहे और शुभ मुहुर्त में कालिंदी के साथ द्वारका गए। बोलिए द्वारकाधीश भगवान् की जय।

अब पंचम विवाह की कथा हैं। एक राजा थे–विन्द अनुविन्द जिनकी बहन का नाम थी– मित्रविन्दा। जिनके साथ भगवान् का पाणिग्रहण संस्कार हुआ।

षष्ठ विवाह की कथा राजन् श्रवण करें, भगवान् द्वारिकाधीश का षष्ठ विवाह भद्रा से हुआ। एक राजा थे–भद्र। जिनकी पुत्री थी, भद्रा। देखिए-भद्र का अर्थ है–कल्याण। श्रीकृष्ण को भद्रा मिली, कहने का अभिप्राय है कि जो जीव परमात्मा की शरण में जाता है उसी का कल्याण है, जब तक ईश्वर की शरणगात इस जीव का न हो तब तक जीव का कल्याण नहीं। षष्ठ पटरानी की प्राप्ति हुई। श्रीकृष्ण को भद्रा के रूप में।

सप्तम विवाह – एक राजा नग्नाजिति नाम के थे। जिनकी बेटी थी सत्या। राजा ने अपनी बेटी के लिए संकल्प लिया कि जो एक साथ सात खूंखार बैलों की नाक में रस्सी डाल देंगे उससे हम बेटी का विवाह करेंगे। ये बैल इतने खूंखार थे कि पुरुष गंध को भी सहन नहीं करते थे। ऐसे आयोजनो में भगवान् ने जाने की इच्छा की। भगवान् को बड़ा आनंद आता था दुष्टों को, असुरों को परास्त करने के लिए, उद्धार करने के लिए। भगवान् आज उस स्वयंवर में जाकर सात रूप धारण किया और सातों बैलों की नाक में नकेल डाल दी। फिर भगवान् एक रूप धारण कर राजा के समक्ष गए। राजा की इच्छा को द्वारकाधीश भगवान् ने पूर्ण किया, राजा ने अपनी बेटी का विवाह द्वारकाधीश से किया। भगवान् श्रीकृष्ण के साथ देखिए सात बैल कौन-कौन से हैं। ये सात बैल शब्द बार-बार प्रयोग हो रहा हैं। "काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर, अहंकार" ये बड़े खूंखार बैल हैं, जब हम इनकी नाक में नकेल डालते हैं। तो हमें सत्य प्राप्त होता हैं। सत्य ही परमात्मा का स्वरूप हैं। सत्य ही प्रकाश हैं। सत्य ही नारायण हैं। सत्य ही भगवान् हैं। इस प्रकार से सत्या कृष्ण को प्राप्त हुई। द्वारकाधीश भगवान् का सातवां विवाह सम्पन्न हुआ। राजन् अब भगवान् के अष्टम विवाह की कथा श्रवण करें। भगवान् का आठवां पाणिग्रहण संस्कार

लक्ष्मणा के साथ हुआ। मद्धाधिपति की बेटी लक्ष्मणा बड़ी ही सुलक्षणा हैं। भगवान् ने मत्स्य भेदन कर लक्ष्मणा जी को प्राप्त किया। श्रीशुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् भगवान् की आठ पटरानियां हैं, देखिए गीता जी में भगवान् ने अपनी अष्टधा प्रकृति का वर्णन किया हैं। आठ प्रकार की प्रकृति है, तो इन्हीं का स्वरूप इन आठ पटरानियों को बताया गया हैं। राजा ने प्रश्न किया कि महाराज अभी आठ शादियां ही हुई हैं, भगवान् की। अभी भी 16,100 शादियाँ बाकी हैं। कृपा करके उस कथा को सुनाइए।

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

भौमासुर का उद्धार और सोलह हजार एक सौ राज कन्याओं के साथ विवाह

"इन्द्रेण हृतछत्रेण हृतकुण्डलबन्धुना।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.59.2)

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन एक बार नारद जी महाराज देवताओं की खबर लाकर द्वारका पुरी में प्रभु का स्मरण करते हुए पधारे। नाम संकीर्तन करते हुए पधारे। संकीर्तन–

श्रीमन्न नारायण–3

कृष्ण नारायण–3

लक्ष्मी नारायण–3

श्रीमन्न नारायण नारायण हरि हरि।

श्री नारद जी द्वारकाधीश भगवान् के पास पधारे। भगवान् ने पूछा कैसे पधारे हो, बड़ा स्वागत किया। वे बोले, मैं देवताओं की खबर लेकर आया हूँ। देवताओं ने आपसे प्रार्थना की है कि देवताओं की माता अदिति जी ने, जिनका कुण्डल और वरुण का छत्र, देवताओं की विहार स्थली मणि पर्वत उस दुष्ट भैामासुर ने जबरदस्ती प्राप्त कर ली, हड़प लीं देवताओं ने आपसे प्रार्थना की है कि आप देवताओं को सम्मान दिलाए। खोई वस्तु मिल जाए। भगवान् ने कहा, देखो! नारद जी कभी समय मिलेगा तो मैं देवताओं का कार्य अवश्य करुँगा।

नारद जी जब भगवान् के पास आए थे तो अपने साथ एक पारिजात वृक्ष का फूल भी लाए थे। जो भगवान् को भेंट किया था। भगवान् ने उसके सूंघकर पास में

खड़ी रुक्मिणी जी के हाथ में दे दिया। नारद जी देवताओं की खबर देकर भगवान् के महल से बाहर निकले। श्रीमन्न नारायण का जाप करते हुए जब महलों से नारद जी निकले तो सोचा कि मैंने देवताओं का कार्य तो कर दिया कुछ अपना कार्य भी करूँ। नारद जी चाहते हैं। देवताओं को वह स्थान शीघ्र प्राप्त हो जाए। जो भौमासुर ने हड़प लिया। नारद जी विचार करने लगे कि आज मैं किस पर कृपा करूँ। चलो, आज अपनी शिष्या पर ही कृपा कर देता हूँ।

सत्यभामा जी के घर गए। नारदजी उनके गुरु हैं। वहाँ जाकर देखा कि उन्हें देखकर सत्यभामा जी गद्‌गद् हो गई। गुरु का सत्कार किया, निवृत्त होने के बाद नारद जी को कहा कि गुरुदेव बहुत दिनों बाद आप पधारे। कभी-कभी कृपा करते रहो। बोले सत्यभामा क्या बताऊँ, समय नहीं मिलता। परन्तु आज मेरी इच्छा हुई कि चलो आज अपनी शिष्या से मिलें, लेकिन आज मैंने तेरे प्रेम की परीक्षा ले ली। क्या मेरे और कृष्ण के प्रेम की परीक्षा की।

नारद जी ने कहा देख सत्यभामा जब-जब मैं तेरे पास आता था तो तू कहती थी कृष्ण हमसे बहुत प्रेम करते हैं। परन्तु आज मुझे मालूम हो गया कि तुमसे कृष्ण विल्कुल प्रेम नहीं करते, सत्यभामा ने कहा ऐसा आपने क्या देखा? नारद बोले आज मैं स्वर्ग से देवताओं का समाचार लेकर श्रीकृष्ण के पास आया। साथ में पारिजात वृक्ष का एक फूल भी लाया। मैंने वह फूल श्रीकृष्ण को भेंट किया। भगवान् ने उसे सूंघा और पास में खड़ी रुक्मिणी जी के हाथ में दे दिया। यदि आपसे प्रेम करते तो आपको फूल देते। प्रेम का प्रतीक है फूल, जो आपको नहीं दिया।

सत्यभामा जी ने कहा, गुरु जी! फूल जैसी वस्तु पर क्या झगड़ा करते अच्छी लगूँगी। यदि प्रभु कोई सुवर्णों का, हीरों का सैट बनवाकर हमारी जगह रुक्मिणी जी को देते तो झगड़ा करने में आनंद आता। फूल जैसी वस्तु पर क्या झगड़ना। नारद जी ने मन ही मन सोचा ये तो काम बिगड़ा, झगड़ा नहीं करेगी। इतनी मैंने मेहनत की नारद जी। "लोकविग्रह मुक्तस्य" वे स्वर्ग नरक, पाताल भ्रमण कराते हैं। कैसे भी लोक, कैसे भी जीव को प्रभु की शरण में लगाते हैं। झगड़ा भी कराते हैं। देव, दानव, मानव भी उनकी बात मानते हैं।

आज नारद जी ने सत्यभामा जी से कहा कि मैंने भगवान् से कहा था कि ये फूल एक बार सत्यभामा को दिखा देना। पर कन्हैया ने ध्यान नहीं दिया, सत्यभामा जी ने कहा अच्छा गुरुजी आपने सभा में मेरा नाम भी लिया और उन्होंने ध्यान नहीं दिया। आज आने दो, अच्छी तरह खबर लूँगी। नारद जी मन ही मन नारायण का जप, ध्यान,

कीर्तन करने लगे। श्रीमन्न नारायण-नारायण उनका काम हो गया क्योंकि सत्यभामा जी अब क्रोधित होकर कोप भवन की ओर जाने लगी।

अब सत्यभामा जी ने काले कपड़े पहने और कोपभवन में लेट गई। देखिए, पहले पति और पत्नी के झगड़ा करने के लिए भी एक कमरा होता था। बड़े-बड़े घरों में। आजकल तो घर ही नहीं बचा। बाजार में, सार्वजनिक स्थान में ही आजकल झगड़ा शुरू हो जाता हैं। तू-तू मैं-मैं शुरू हो जाती हैं। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण अपने पारिवारिक जीवन में आदर्श प्रिय थे। प्रभु का पत्नी से झगड़ा तो हुआ पर कोपभवन में। भगवान् जब सभा से उठकर आए तो द्वार पर कोई स्वागत करने वाला नहीं। सेवकों से पूछा कि सत्यभामा कहाँ हैं, आज दिखाई नहीं दे रही हैं

आप से नाराज हैं। बोले हमसे क्यों नाराज हैं? तुरंत उन्हें याद आई रामावतार की कथा। जहाँ माता कैकेयी ने कोपभवन जाकर दशरथ को विवश कर दिया। जहाँ राम जी का राज्यभिषेक होने वाला था, वन गमन करा दिया। कोप भवन में ही समस्त छवि बदल गई। कृष्ण सोचने लगे कि मैं ही तो राम बनकर आया था। 14 वर्ष वन में विपद में पड़े। पर वह तो मर्यादा पुरुषोत्तम लीला थी। अब तो मैं लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण बनकर आया हूँ। भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकाधीश विचार मग्न उस कोप भवन में गए और देखा कि रो रही हैं सत्यभामा जी। नजदीक जाकर भगवान् ने कहा कि सत्यभामा जी आप क्यों रो रही हैं। क्या बात हो गई? क्या किसी ने कुछ कहा है? वह बोली महाराज वार्तालाप की कोई आवश्यकता नहीं, आप जाइए रुक्मिणी जी के महलों में। द्वारकाधीश श्री भगवान् कृष्ण ने कहा इतना क्रोध क्यों, बात तो बताइए। बोली, प्रभु, बताइए! परिजात वृक्ष का फूल आज आपके पास कोई लेकर आया? अब तो भगवान् समझ गए कि सब करतूत नारद की है।

आज इस नारद ने मुझ पर भी कृपा कर दी। देखो, सत्यभामा जी नारद जी वह फूल दे गए। पास में रुक्मिणी जी थी मैंने उन्हें वह पारिजात फूल दे दिया। इसमें कौन-सी बड़ी बात हो गई। सत्यभामा जी ने कहा प्रभु फूल प्रेम का प्रतीक होता है और वह फूल हमें दिखाया तक नहीं। आपने रुक्मिणी जी को दे दिया। स्वर्ग का वह फूल, बहुत अद्‌भुत है, दुर्लभ है।

भगवान् ने कहा सत्यभामा नाराज न हो, कभी हम स्वर्ग चलेंगे और पौधा लाकर आपके राजमहल में लगा देगे। सत्यभामा जी ने कहा प्रभु, कभी नहीं, आज, अभी इसी क्षण आप स्वर्ग चलिए और पारिजात वृक्ष का पौधा लाइए। भगवान् जानते हैं कि स्त्री हठ बड़ी बलवान है, राजहठ बड़ा बलवान हैं। बालहठ बड़ा बलवान हैं। भगवान्

ने स्त्री हठ को स्वीकार कर लिया। राजा यदि बिगड़ जाए तो क्या कहना, बालक यदि मचल जाए तो अपनी बात मनवा लेता हैं। ऐसे यदि स्त्री हठ करे तो अपने मन की ही कराती हैं। ये तीनों हठ बहुत प्रसिद्ध हैं। भगवान् ने विचारा कि घर के क्लेश को शान्त करना ही होगा। भगवान् ने कहा, चलो देवताओं का भी कार्य कर दूँगा। भगवान् तुरंत सत्यभामाजी को लेकर के स्वर्गलोक चल दिए। सबसे पहले भगवान् उस दुष्ट भौमासुर से युद्ध करने के लिये पधारे।

जिसने अपने कारागार में 16,100 राज कन्याओं को बंदकर रखा था। सबसे एक साथ शादी करना चाहता था। भगवान् श्रीकृष्ण की तरह बनना चाहते थे। भगवान् की भी 16108 स्त्री थी। भगवान् द्वारकाधीश सत्यभामा के साथ गए और भस्मासुर को ललकारा। भौमासुर का मुर नाम का एक दैत्य था जो द्वारकाधीश से युद्ध करने आया। भगवान् ने एक क्षण में ही उसका संहार किया। मुर दैत्य का संहार करने से भगवान् का एक नाम पड़ा मुरारी। बोलिए मुरारी भगवान् की जय। अंत में भौमासुर और भगवान् का भीषण युद्ध हुआ भौमासुर मारा गया। भगवान् ने 16,100 कन्याओं को मुक्ति दिलाई। सभी राजकन्याओं से भगवान् ने कहा देवियों अपने-अपने घर जाओ।

16,100 राज कन्याओं ने भगवान् द्वारकाधीश से कहा कि हमें इस दुष्ट के कारागार में कितना ही समय निकल गया। भगवान् हम अब यदि घर जाएँगे तो माता-पिता स्वीकार नहीं करेंगे। हमें कौन आश्रय देगा? यदि कोई आश्रय देने वाला न हो तो, कारागार ही ठीक है। सभी विवश होकर कहने लगे। भगवान् ने सोचा कि अगर मैं इसको आश्रय नहीं दूंगा तो संसार में व्याभिचार न फैले। मेरा तो धर्म की स्थापना के लिए अवतार होता हैं। भगवान् ने तुरंत 16,100 राजकन्याओं को द्वारका भेज दिया।

बोलिए द्वारकाधीश भगवान् की जय। इधर भगवान् देवताओं की प्रतिष्ठा लेकर स्वर्ग में गए। भौमासुर ने जो-जो वस्तु, स्थान पर अधिकार कर लिया था वह सभी देवताओं को प्रदान करके प्रतिष्ठा दिलाई।

अब भगवान् जब चलने लगे, स्वर्ग में देवताओं के विहार स्थल, सुन्दर बन प्रदेश जहाँ से उन्होंने पारिजात वृक्ष का पौधा उखाड़ लिया, तुरंत ही इंद्र को खबर लगी वह भगवान् से युद्ध करने आ गया। जिस इन्द्र को भगवान् ने प्रतिष्ठा दिलाई। वही आज मदमत्त होकर युद्ध कर रहे हैं। विलक्षण युद्ध हुआ।

एक ओर श्रीकृष्ण और दूसरी ओर इन्द्र
एक ओर सत्यभामा और दूसरी ओर इन्द्राणी।

पारिजात वृक्ष के ऊपर युद्ध हो रहा है। उसी समय नारद जी आ गए, जिसने यह पारिजात पुष्प की लीला प्रारंभ की थी। शुरु जिसने कराया वही शान्त कराए। नारायण–नारायण कहते नारद जी आ गए। आकर इन्द्र को धमकाया। जिन द्वारकाधीश ने तुम्हें प्रतिष्ठा दिलाई उनसे तुम युद्ध करते हो। इन्द्र देवताओं वास्तव में तुम अपने कार्य में बहुत चतुर हो। इन्द्र तुम इस युद्ध को बंद कर दो, तो नारदजी कि आदेश से इन्द्र ने युद्ध बंद कर दिया।

भगवान् पारिजात वृक्ष का पौधा लेकर द्वारिका पधारे और राजमहल में लगा दिया। सत्यभामा जी को प्रसन्न किया। 16,100 यज्ञ मंडप बनवाए। 16,100 ही वेदियां बनीं। 16,100 ही ब्राह्मण बैठे, 16,100 ही शहनाई वादक बैठे। 16,100 ही भगवान् रूप धारण किए। एक ही मुहुर्त में भगवान् ने दूल्हे का रूप धारण कर लियो। बोलिए द्वारकाधीश भगवान् की जय। एक ही मुहुर्त में भगवान् ने सबके साथ पाणिग्रहण संस्कार कर लिया। बोलए, द्वारकाधीश भगवान् की जय।

संकीर्तन

जय गोविन्द जय गोपाल मुरली मनोहर नन्द लाला–2
मुरली मनोहर नन्दलाला–2

16,100 शादियां द्वारकाधीश की कैसे हुई? मालूम। यह संख्या कैसे पूरी होती हैं। पूछा, महाराज इस विषय को विस्तार से बताइए कि भगवान् की इतनी शादियाँ कैसे हुई। आचार्य ने कहा हमारे वेदों में 1 लाख मन्त्र हैं। 80 हजार कर्म कांड जो ब्रह्मचारियों के लिए हैं। 4000 ज्ञान कांड का विषय है यो विरक्ति के लिए हैं। 16000 उपासना कांड का विषय है गृहस्थी के लिए हैं। उपासना कांड के जो मन्त्र थे। उन्होंने जब सुना कि "रसोवै सहः" की परमात्मा रसावतार है तो प्रभु का कौन सा रसावतार है? कृष्ण अवतार ही रसराज, वेदों के व मन्त्र सब राज कन्या बनकर प्रकट हुए। 16000 उपासना कांड के जो मन्त्र हैं, ऋचाएं हैं। वे राजकन्या बनकर प्रकट हुई। इस प्रकार ये सब राजकन्या वेद मन्त्र हैं। वेद की ऋचाएं हैं और 100 कृषक हैं। ये भी राजकन्या बनकर प्रगट हुई, इस प्रकार 16,100 ऋचाओं और कृषकों ने भगवान् का सान्निध्य प्राप्त किया, तो आइए बड़े प्रेम से, भाव से आप भी शहनाई के साथ गाइए।

गीतम्

तू गोकुल का रखवाला है, कोई क्या जाने नन्द लाला है?

तेरे मोर मुकुट सिर सोहत है, मंगलाकृति कुंडल मोहत है
तेरे गल बैजन्ती माला है, कोई................................
तू मीठी बीन बजाता है, यमुना तट धेनु चराता है
ग्वालन संग खेल रचाता है, कोई.....................
संसार तुम्हारी माया है, घट–घट में तू ही समाया है,
तू ही प्रभु दीन दयाला है, कोई.........................
जो शरण तुम्हारी आता है, वह अविचल भक्ति पाता है
फिर जन्ममरण मिट जाता है, कोई.......................
ये दास तेरा गुण गाता है, चरणों में शीश नवाता है
तू बिगड़ी बनाने वाला है, कोई...........................
तू गोकुल......................., कोई..........................
बोलिए द्वारिकाधीश भगवान् की जय!

मंगलमय मुहूर्त में मंगलमूर्ति द्वारिकाधीश नन्दनन्दन श्यामसुन्दर अकारण करुणा वरुणालय श्रीकृष्ण जिनका पाणिग्रहण संस्कार हुआ। हमें इस लीला से जीवन की क्या शिक्षा मिली। सत्संग, सद्विचार सद्गृहस्थ कृष्ण के जीवन में ये तीन बातें देखने को मिलती हैं। जब व्यक्ति सत्संग से जुड़ता है तो उसके जीवन में सद्विचार प्रकट होता हैं। जब सद्विचार जीवन में होता हैं। तो सद्गृहस्थ जीवन हो जाता हैं। गृहस्थ में रहकर भी व्यक्ति एक अच्छा मार्ग प्राप्त कर लेता हैं। ये तीनों बातें हमें भगवान् द्वारकाधीश की लीला में भागवत में देखने को मिल रही हैं। भगवान् की पाणिग्रहण लीला सम्पन्न हुई। शुकदेव जी महाराज कहते हैं।

अथ षष्टितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण रुक्मिणी संवाद

राजन् द्वारिका में सभी पुरवासी मंत्रिमंडल नौकर चाकर सभी ने रुक्मिणी जी की बड़ी प्रशंसा करते हैं, रुक्मिणी जी को सभी लोग प्रिय लगते हैं। ये रुक्मिणी जी केवल द्वारकाधीश की पत्नी इसलिए नहीं वह तो साक्षात लक्ष्मी हैं। शुद्ध लक्ष्मी हैं। जिनके अंदर भगवान् का अष्टदा प्रकृति के सभी गुण विद्यमान हैं। रुक्मिणी जी सबकी प्रिय हैं, कभी क्रोध नहीं करतीं। हंसमुख, सहज, सरल, सुन्दर स्वभाव वाली हैं। एक दिन द्वारकाधीश के मन में विचार आया कि आज रुक्मिणी जी की परीक्षा लूं कि क्रोध आता है या नहीं।

लीलाधारी श्रीकृष्ण एक दिन झूले में बैठे हैं, रुक्मिणी जी झुला रही हैं भगवान् को। अचानक द्वारकाधीश ने पूछा रुक्मिणी जी तुमने हमसे शादी क्यों की? अचानक भगवान् ने प्रश्न किया और रुक्मिणी ने जवाब नहीं दिया। भगवान् ने कहा देखो तुम तो राजपुत्री हो, तुमने राजाओं से शादी न करके हमसे क्यों की? यदि कहो कि सौंदर्य–तो हमें तो सब काले कृष्ण कहते हैं। तुम्हारा रूप तो बहुत सुन्दर तुमने हमसे शादी क्यों की? ये बात कब पूछी भगवान् ने–जब पुत्र का भी पुत्र हो गया।

राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः।
महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.60.10)

आप कहोगे देवि हम शूरवीर हैं। काहे का शूरवीर देवि।

जरासंध ने आक्रमण किया, हमने उसके भय से प्राण बचाकर समुद्र के अंदर शरण ली। जरासंध के भय से हम राज्य छोड़कर चले आए।

राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रुः समुद्रं शरणं गतान्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.60.12)

निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियताः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.60.14)

देवी ये साधक हमें भी अपना मानते हैं। ये निष्किंचन भिक्षुक भक्त मुझे प्रिय है और उन्हें मैं अति प्रिय हूँ। वे मुझे अपना मानते हैं। मैं भी उनका ही होता हूँ। इस प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण ने आज रुक्मिणी माता की धैर्य की परीक्षा ली परन्तु जब बार–बार भगवान् ने कहा कि अभी भी समय है, चाहो तो सोच सकते हो, कि क्यों विवाह किया? यह सुनकर वे घबराकर मूर्छित हो गई। ये तबकी बात है जब रुक्मिणी के पुत्र के घर में भी पुत्र आ गया। भगवान् ने देखा कि रुक्मिणी बेहोश हो गई तो उसी समय भगवान् ने चतुर्भुज धारण करके रुक्मिणी को उठाया। अपनी गोद में बैठाकर चारों हाथों से सेवा करने लगे।

पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.60.26)

भगवान् की कमल सदृश सुन्दर हाथ के स्पर्श से देवि की मूर्छा चली गई। भगवान् कहने लगे कि देवी तुम हमारी इतनी पति परायण हो, मैं जानता हूँ।

लेकिन, अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम्।

यन्नर्मैरीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.60.31)

देवी गृहस्थ जीवन में कभी-कभी मजाक सुख का कारण है। मैंने जो थोड़ा हास-परिहास किया, बुरा न मानना।

रुक्मिणी ने कहा प्रभु आप जो भी बोले सत्य ही हैं। अपने क्या बोला, आप रूपहीन, गुणहीन, क्या कोई आपके को रूप, गुण की तुलना कर सकता हैं। आप इस सबसे परे हैं। आपने क्या कहा बड़े-बड़े राजा के भय से समुद्र में गए। आपने हृदय समुद्र में आत्मा के स्वरूप में है।

'शेते समुद्र उपलम्भनमात्र आत्मा।'

(श्रीमद्भागवतम् 10.60.35)

आपने बताया निष्किंचन भक्त आपको प्रिय हैं। उनके ही आप एकमात्र आधार है। रुक्मिणी माता ने बहुत सुन्दर स्तुति की। भगवान् ने कहा, देवी आज मैं आपकी परीक्षा के बहाने नहीं बोलता तो आपकी प्रतिभा, हमारे प्रति जो श्रद्धा, ज्ञान है वह पता नहीं चलता, आप धन्य हैं। भगवान् ने भी उनकी प्रशंसा की। राजप्रसाद के नौकर चाकर सभी रुक्मिणी माता के प्रिय हैं, वे साक्षात् लक्ष्मी स्वरूप हैं।

अथै कषष्टितमोऽध्यायः

भगवान् की सन्तति का वर्णन तथा अनिरूद्ध के विवाह में सभी का मारा जाना

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

उषा अनिरुद्ध मिलन

इतना विशाल वंश भगवान् का, भागवत में सुन्दर वर्णन है 56 करोड़ यादव थे। जिन्हें पढ़ाने के लिए 3 करोड़ 88 लाख अध्यापक होते थे। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन् भगवान् समय-समय पर अपनी रानियों से हास-परिहास करते थे। भगवान् के पुत्र प्रद्युम्न और उनके पुत्र अनिरुद्ध जिनका प्रथम पाणिग्रहण रुक्मि की पौत्री रोचना के साथ हुआ। दूसरा इनका पाणिग्रहण संस्कार बाणासुर की बेटी उषा के साथ हुआ।

राजा परीक्षित ने प्रार्थना की आप कृपया इसे सुनाइए। श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् राजा बलि के 100 पुत्रों में से सबसे बड़े पुत्र बनासुर थे।

बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः।
येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.62.2)

एक बार भगवान् शिव तांडव नृत्य कर रहे थे। उस समय बाणासुर ने इतना सुन्दर वाद्ययंत्र बजाया कि शिव प्रसन्न हो गए। वे बोले, तू हमसे वर माँग ले। बाणासुर ने कहा आप प्रसन्न हैं। तो मेरे नगर रक्षक बन जाइए। भगवान् शिव ने कहा तथास्तु। शिव इसके नगर रक्षक बन गए। अब शिव की शक्ति को प्राप्त करके बाणासुर को अभिमान हो गया। एक दिन ताल ठोकते हुए शिव से कहा कि मेरे समान संसार में कौन शक्तिशाली होगा। शिव ने देखा कि मेरे ही भक्तों में इतना अभिमान हो गया। भगवान् शिव ने कहा तू अभिमान न कर। संसार की सभी वस्तुएँ अनित्य हैं। नश्वर हैं, यदि अभिमान करना है तो एक बात का अभिमान होना चाहिए कि ठाकुर मेरे हैं। बिहारी जी मेरे हैं, श्याम सुन्दर मेरे हैं। सिर्फ इसी का अभिमान करना संसार की वस्तुओं का नहीं।

जिस वस्तु का अभिमान सदा सर्वदा हो जिसका अभाव तुम्हारे जीवन में कभी न हो, किसी काल में न हो, वह परमात्मा है। वह ईश्वर है जो कभी तुम्हारे से दूर नहीं। न ही तुम इससे दूर हो। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन् भगवान् शिव ने भी कहा, कि मेरे भक्तों को मेरा अभिमान नहीं है, कि मेरे शिव हैं। इसने मेरी शक्ति का अभिमान कर, इसका दुरुपयोग कर रहा है यानि जीवों को दुख दे रहा है। अधर्म कर रहा है। शिव ने कहा बाणासुर देख अभिमान मत कर जिस दिन तेरे राजमहल की ध्वजा झुक जाएगी, तो समझ जाना कि तेरे से भी बड़ा वीर हैं और अब उसी वीर से तेरा युद्ध होगा। इतना अहंकार को बाणासुर था कि प्रतिदिन ध्वजा देखा करता था। देखते-देखते एक दिन देखा कि ध्वज झुक गई। बाणासुर समझ गए कि मेरा प्रतिद्वंदी आने वाला है, इनकी पुत्री थी उषा। उन्होंने अनिरुद्ध के स्वप्न में दर्शन करके अपना प्रीतम मान लिया। कान्त कहकर उठी। इनकी सहेली थी चित्रलेखा, जो इनके मन्त्री की बेटी थी। वे बोली अभी तुम्हारी शादी नहीं हुई तो कांत किसे कहाँ? ये अपनी सहेली से स्वप्न की चर्चा करने लगी।

दुष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः।
पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयंगमः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.62.14)

ये स्वप्न का जो वर्णन निराकार था उसे साकार बता रही है कि मैंने एक सुन्दर स्वप्न देखा। मैंने सुन्दर पुरुष देखा जिसके कमल समान नेत्र थे, लम्बी बाहू, श्याम वर्ण, सुन्दर गले में पीताम्बर धारी था, ऐसा दिव्य पुरुष मैंने स्वप्न में देखा। चित्रलेखा सुन्दर चित्र बनाती थी। देखो, चित्रलेखा, यदि पाणिग्रहण करुँगी तो उसके साथ करूँगी चित्रलेखा अनेक प्रकार की चित्र बनाती थी। इसने अनेक राजाओं के चित्र बनाए। जब द्वारकाधीश का चित्र बनाया तो वह बोली ऐसे ही युवक को मैंने स्वप्न में देखा। चित्रलेखा ने भगवान् के वंश में प्रद्युम्न का चित्र बनाया तथा फिर उसके पुत्र अनिरुद्ध का चित्र बनाया, उसने चित्रलेखा से कहा कि यही वह पुरुष है। चित्रलेखा माया विद्या से उड़ते हुए द्वारकापुरी गई और सोते हुए अनिरुद्ध को उठाकर बाणासुर के महलों में पहुँचा दिया। शोणितपुर का वर्तमान नाम दिसपुर जो आसाम प्रदेश में स्थित है।

अनिरुद्ध उषा के महलों में निवास करने लगे। जब बाणासुर को खबर लगी, कि उषा के घर से पुरुष की आवाज आ रही हैं। तो चौकीदारों ने कहा आप सावधान रहिए, अन्यथा "कन्यायाःकुलदूषणम्" ये कन्या अपना कुल को कलुषित कर देगा।

बाणासुर ने कहा हमारे पहरेदारों को रहते वहाँ कोई नहीं जा सकता, वे बोले महाराज हमारे सामने से तो कोई नहीं गया। बाणासुर ने सेना भेजा अनिरुद्ध ने स्वयं ही सेना परास्त कर दी। बाणासुर स्वयं सेना लेकर आए देखा कि अनिरुद्ध वहीं हैं। उन्होंने दोनों को बंदी बनाकर कारगार में बंद कर दिया। चार महीने हो गए वे कारागार में बंद हैं। इधर नारद जी द्वारका में गए और बोले कि प्रभु द्वारका में सभी हैं। परन्तु आपका पौत्र अनिरुद्ध कहाँ हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 16,100 रानियां, पटरानियां हैं। उनके 10-10 पुत्र हैं। फिर उनके पुत्र हैं। कहाँ तक ख्याल रखूँ, यहीं कहीं होगा। नारद जी ने कहा प्रभु आप सन्तान तो पैदा कर देते हैं परन्तु उनका ख्याल नहीं रखते हो। भगवान् ने कहा आप ही बताइए कहाँ है? नारद जी ने कहा अनिरुद्ध चार महीने से बाणासुर के कारागार में बंद पड़ा है।

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्ण के साथ बाणासुर का युद्ध

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि हमारे पौत्र कारागार में बंद हैं। नारद जी ने कहा बाणासुर ने उन्हें बंद किया है। भगवान् श्रीकृष्ण तुरंत बलराम जी के पास जाकर

विचार–विमर्श करके 12 अक्षौहणी सेना तैयार की और बाणासुर की राजधानी शणितपुर पर आक्रमण कर दिया। जो अभी दिसपुर हैं। देखिए, बड़ा विलक्षण युद्ध हुआ। आज शिव को भी भक्तों की रक्षा के लिए आना पड़ा। एक ओर शिव हैं, एक ओर कृष्ण हैं। एक ओर मन्त्री कूष्माडं और कूपकर्ण है, दूसरी ओर बलराम जी महाराज हैं। तीसरी ओर सात्यकि और बाणासुर हैं। इस तरह त्रिकोण ाात्मक युद्ध प्रारंभ हो गया। भीषण युद्ध प्रारंभ हो गया। शिव कृष्ण की ओर तीर छोड़ रहे हैं। किंतु जितने भी तीर भगवान् शिव छोड़ते हैं कृष्ण हर तीर काट देते हैं। अंत में भगवान् कृष्ण ने शिव पर एक जिम्भ्रबाण छोड़ा, जो लगते ही उबासी आने लगती है, तुरंत शिव मूर्च्छित हो गए। बार–बार उबासी भरने लगे। उसी समय बाणासुर ने आकर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध प्रारंभ किया। एक साथ 500 धनुषों के ऊपर दो–दो तीर चढ़ाकर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने आ गए। भगवान् ने उसके समस्त तीरों को परास्त किया। उसी समय शिव का एक ज्वर था जिसका नाम विषम् ज्वर उसने भगवान् श्रीकृष्ण पर आक्रमण किया। तो भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अपना वैष्णव ज्वर को छोड़ दिया। विषम ज्वर को इतना मारा वैष्णव ज्वर ने कि वह भयभीत हो गया। "भीतों महोश्वरो ज्वर:" वैष्णव ज्वर से मार खाते हुए शिव के विषम् ज्वरों ने चार श्लोकों में भगवान् की स्तुति की।

नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशम् सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम्।
विश्वोत्यत्तिस्थानसंरोधहेतं यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गम्प्रशान्तम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.63.25)

भगवान् के चरणों में प्रणाम कर विषम ज्वरों ने कहा कि आप मुझे जीवन दान दें। चार श्लोकों में जीवन दान की प्रार्थना की। भगवान् ने कहा, आज के मेरे तुम्हारे संवाद का जो श्रवण करेंगे तो ज्वर पीड़ित व्यक्ति का ज्वर दूर हो जाएगा। देखिए, कथाओं में कितनी शक्ति हैं। कल आपने कथा सुनी थी महारास की जो भगवान् के पंच प्राण हैं। महारास की कथा के सम्बंध में बताया था कि जो महारास की कथा का पान करता है उसका हृदय रोग ठीक हो जाता हैं। इस प्रकार से भागवत की कथाओं में श्लोकों में मन्त्र हैं। भागवत के पाठ और श्रवण से रोग की निवृत्ति होती हैं। ऐसी अद्भुत कथाएँ हैं।

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् जब भगवान् बाणासुर को मारने के लिए उद्यत हुए तो शिव की मूर्छा दूर हो गई ये बाणासुर 1000 भुजाओं को धारण

कर श्रीकृष्ण से युद्ध करने आये थे। भगवान् शिव ने 12 श्लोकों में भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की।

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्माणि वाङ्मये।
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.64.34)

शिव ने कहा कि प्रभु आपने सदा भक्तों की रक्षा की है। आप अपने भक्तों की क्षमा करने के लिए अति प्रसिद्ध है। आज भगवान् शिव ने भगवान् श्रीकृष्ण से अपने भक्त बाणासुर की क्षमा याचना की, प्रार्थना की। भगवान् श्रीकृष्ण को भी अपनी वाणी याद आ गई। भगवान् ने प्रह्लाद जी से कहा था कि–

त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ।

(श्रीमद्भागवतम् 7.10.18)

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि मैंने प्रह्लाद जी को वचन दिया था कि तुम्हारे कुल में कोई कितना भी अपराध करे, मैं उसे प्राण दंड नहीं दूँगा। यह तो उन्हीं का वंशज हैं। आज अपने वचन को सत्य करने के लिए बाणासुर को जीवन दान देता हूँ, चार भुजाएँ छोड़कर बाकी सभी काट दीं। बाणासुर ने प्रभु को प्रणाम किया और अपनी बेटी उषा और अनिरुद्ध को कारागार से मुक्त करके भगवान् के सामने उपस्थित हुए। मंगलमय मुहूर्त में पाणिग्रहण हुआ, भगवान् ने सभी को लेकर द्वारिका गए। बोलिए द्वारिकाधीश भगवान् की जय।

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

नृगराज की कथा

एकदोपवनं राजन्जग्मुर्यदुकुमारकाः।
विहर्तुं साम्बप्रद्युम्न चारुभानुगदादयः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.64.1)

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं राजन् एक बार द्वारका के समीप में ही यादव बालक खेल रहे थे। साम्ब, प्रद्युम्न, चारुभानु ओर गद अनिरुद्ध ये सब खेल रहे थे। कुएँ में गेंद गिर गये, गेंद लेने गये–(खेल–खेल में सबको प्यास लगी। सभी यादव बालक एक सूखा कुआं देखकर जल पीने जो गए हैं।) तो उन्होंने क्या देखा कि उस कुएँ में एक गिरगिट पड़ा हैं। उस कांकलास को देखकर भगवान् से प्रार्थना की। भगवान् ने आकर अपने कर कमल से स्पर्श किया और उस कांकलास ने शरीर छोड़ दिया। दिव्य शरीर धारण किया। भगवान् ने पूछा, महाराज आप कौन हैं? इन्होंने अपना परिचय दिया कहा कि–

नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो।
दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम्।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.64.10)

भगवान् के चरणों में प्रणाम करके कहा कि भगवन् मैं अयोध्या का राजा हूँ। मेरा नाम है—नृग। भगवान् बोले आप इतने बड़े राजा इस कांकलास शरीर में क्यों हो? वे बोले महाराज आपने कभी गौ दानी की सूची उठाकर देखी होगी तो सबसे पहले मेरा ही नाम पढ़ा होगा।

मैंने अपने जीवन में बहुत गौ दान किया। भगवान् ने कहा कि आपने गौदान भी किया, फिर भी इस गिरगिट की योनि में क्यों हो? क्या अपराध किया है आपने। क्या आपने कभी रुग्ण गौ को दान किया? जिस कारण यह अपराध आपको लगा। राजा नृग ने कहा नहीं महाराज ऐसा नहीं किया। हमने तो दूध देने वाली सुंदर कपिला गाय का ही दान किया।

पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूप-गुणोपपन्नाः कपिला हेमसृङ्गीः।
(श्रीमद्भागवतम् 10.64.13)

भगवान् ने कहा आपका इतनी गुणवान सुन्दर गौदान के बाद भी कांकलास शरीर धारण का कारण क्या है? राजा नृग ने कहा महाराज दैनिक मैं गौदान किया करता था। एक बार एक ब्राह्मण की गौ आकर के मेरी गौशाला में मिल गई और मैंने उसे दूसरे ब्राह्मण को दान कर दी। पूर्व ब्राह्मण आकर बोले यह तो हमारी गौ हैं। राजा ने कहा मैंने तो इसे दान कर दिया हैं। इसके बदले में स्वर्ण, चांदी, हीरे जवाहरात जो चाहिए ले लो। मैं इस गौ को दान कर चुका हूँ। उस ब्राह्मण ने कहा, कि राजा मुझे तो अपनी गौ ही चाहिए। मुझे तो इसे ही लेना हैं। इसके बदले में दान नहीं लेना हैं। महाराज अब इस गौ को कैसे दें। गाय एक, ब्राह्मण दो।

दोनों ब्राह्मण अपना अधिकार जता रहे हैं। प्रथम ब्राह्मण ने कहा मेरी गौ है। दूसरे ब्राह्मण ने कहा मेरी गौ है। अब किसे गौ दी जाए? राजा ने किसी को भी गाय नहीं दी। अपनी ही गौशाला में रख ली। जब कालांतर में राजा नृग की मृत्यु हुई, यमलोक में राजा नृग गए, तो यमराज ने कहा राजन् आपने अपने जीवन में एक ही गलत काम किया हैं। एक पाप आपने कर दिया। आपने ब्राह्मण की सम्पति स्वयं रखकर अपराध किया है। इस कारण तुम्हें कांकलास की योनि में जाना पड़ेगा। परन्तु भगवन आज आपने मेरा कांकलास शरीर से उद्धार कर दिया। इतना कहकर राजा नृग भगवान् को प्रणाम करके चले गए। भगवान् ने तुरंत अपने सभी पुत्रों को बुलाकर कहा, देखो!

पुत्रों शिक्षा लो कि–

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.64.39)

भगवान् कहते हैं जो अपने द्वारा दी गई ब्राह्मण की वस्तु या दूसरे के द्वारा प्रदत्त वस्तु ब्राह्मण की या किसी देव स्थान या मंदिर की सम्पति या दान की वस्तु जो बलात् पूर्वक अपने पास रखता हैं भगवान् कहते हैं "षष्टि वर्ष सहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः" वह जीव साठ हजार वर्ष तक नाली का कीड़ा बनकर जीवन व्यतीत करता है।

एक बार अयोध्या में एक कुत्ता रो रहा था। भगवान् लक्ष्मण को भेजा जाओ, देखो! ये क्यों रो रहा है? क्योंकि भगवान् श्रीराम अपने राज्य में हर जीव का ध्यान रखते हैं। श्रीराम के राज्य में भगवान् ने कुत्ते का भी ध्यान रखते थे, लक्ष्मण को भेजा। उन्होंने कुत्ते से पूछा तो वह कुत्ते बोला, महाराज वह जो ब्राह्मण जा रहा हैं उसने मुझे पत्थर मारा। तुरंत लक्ष्मण ने ब्राह्मण को बुलाकर पूछा आपने इस कुत्ते का पत्थर क्यों मारा? वह बोला मैं भोजन लेकर जा रहा था और यह मुझे देखकर भौंक रहा था। लक्ष्मण ने कहा, यह भौंकना तो उसका स्वभाव हैं। आपने पत्थर मारकर अपराध किया है, उन दोनों को दरबार में पेश किया गया। भगवान् राम अब निर्णय कर रहे हैं।

भगवान् राम ने पूछा, ब्राह्मण देव आपने इसे पत्थर क्यों मारा? बोले महाराज ये मुझे देखकर भौंका मैंने इसे पत्थर मार दिया। भगवान् राम ने भी कहा कि आप अपराधी हैं, आपको दंड मिलना चाहिए। भगवान् अपनी ओर से दंड न देकर कुत्ते से पूछा कि इसे क्या दंड दिया जाए। कुत्ते ने कहा, महाराज आप इसे किसी मंदिर या मठ का मठाधीश बना दो। भगवान् को अब और भी आश्चर्य हुआ। भगवान् ने कहा कि तुम्हें जिसने मारा उसे मठाधीश बना दूँ क्यों?

कुत्ते ने कहा महाराज पूर्व जन्म में, मैं भी किसी मठ का मठाधीश था। आश्रम का सन्त था और मैंने आश्रम यानि देव स्थान की सम्पति का दुरुपयोग किया, तो आज इस कुत्ते की यानि में पड़ा हूँ। कहने का अभिप्राय है कि–

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.64.39)

भगवान् श्रीकृष्ण भी भागवत में कहते हैं, भैया अपने द्वारा दी वस्तु किसी ब्राह्मण के पास हो या किसी दूसरे के द्वारा दी वस्तु ब्राह्मण की हो या मंदिर की दान की, पैसे की, मठ की संपत्ति हो तो उस पर बलात् अधिकार कभी मत करना।

"षष्टिवर्ष सहस्राणि विष्ठायां जायते कृमि:"

साठ हजार वर्षों तक वह नाली का कीड़ा बनता हैं। यह उपेदश भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने पुत्रों को दिया।

अथ पंचषष्टितमोऽध्याय:

श्रीबलराम जी का ब्रज गमन

एक दिन बलराम जी ने कन्हैया से कहा देखो हमें ब्रज से आए बहुत दिन हो गए, हम वृन्दावन चलें, परन्तु कृष्ण भगवान् ने कहा देखो बड़े भैया आप देख रहे हैं, मैं कितना गृहस्थ में फँसा पड़ा हूँ। किसी और दिन चलेंगे। आज हम किसी को कहते हैं न, चलो वृन्दावन चलें। लोग कहते हैं। मरने की फुर्सत नहीं। कैसे चलें? लेकिन बलराम जी वृन्दावन को जा रहे हैं।

बलभद्र: कुरुश्रेष्ठ भगवान्रथमास्थित:।

(श्रीमद्भागवतम् 10.65.1)

श्री बलराम जी महाराज श्री वृन्दावन की ओर चल दिए। चैत्र और वैशाख दो महीने वे वहीं रहें-

"द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्यधुं माधवं एव च।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.65.17)

गोपियों के साथ बलराम जी ने विहार किया। यमुना जी का आकर्षण किया। ये जमुना जी नहीं आ रही थीं तो बलराम जी कुपित हुए।

"पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाहुता।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.65.26)

बलराम जी का क्रोध देखकर यमुना जी पधारीं हैं और सभी भयभीत होकर बलराम जी की स्तुति करने लगी। प्रार्थना करने लगी।

राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.65.28)

सभी ब्रजवासियों ने बलराम जी की स्तुति की और दिव्य रास किया, विहार किया।

गीतम्

मीठे रस से भारो री राधारानी लागे, महारानी लागे।
माने खारोखारो जमुना जी रो पानी लागे।।
जमुना जी तो कारी कारी राधा गोरी गोरी
वृन्दावन में धूम मचायो बरसाने की छोरी।।
ब्रजधाम राधा जु की राजधानी लागे-2
मैनो खारो-खारो यमुना जी रो पानी लागे।
मीठे रस से भरो री राधारानी लागे, महारानी लागे,
माने खारो खरो यमुना जी रो पानी लागे।।

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

पौण्ड्रक और काशिराज का उद्धार

बलराम श्री वृन्दावन धाम तो गए थे। इधर एक राजा था, कौरुष देश का जिसका नाम था पौण्ड्रक, इसने द्वारका में भगवान् के पास दूत भेजा। वह दूत भगवान् के पास जाकर बोला कि यदि आप स्वयं को नारायण स्वरूप कहते हैं। तो हमारे राजा पौण्ड्रक के साथ युद्ध करें, वह साक्षात नारायण हैं। भगवान् ने कहा ऐसे राजा, ऐसे व्यक्ति कलयुग में बहुत पैदा होंगे, जो कहेंगे कि मैं ही भगवान् हूँ। भईया आज तो ऐसे अवतार रोज ही होते हैं, नहीं-नहीं भगवान् तो यत्र-तत्र अवतार नहीं लेते और भगवान् कौन हैं? बोले 'कृष्णऽस्तु भगवानं स्वयं' कृष्ण ही साक्षात् भगवान् हैं, पूर्ण ब्रह्म हैं, ईश्वर हैं, परन्तु जो स्वयं को भगवान् कहते हैं, अंत में उनकी दुर्गति भी होती हैं। ये भागवत की कथा हैं। पौण्ड्रक ने भी अपने को भगवान् कहा है, तो भगवान् ने उसे चुनौती दे दी, कि मैं तुमसे युद्ध करूँगा। तुम्हारे जैसों का संहार करने के लिए मेरा अवतार हुआ हैं। पाप फैलाने वाले, अधर्मी का नाश करने के लिए ही मेरा अवतार हुआ हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने राजा की चुनौती स्वीकार कर ली और वे युद्ध करने आ गए।

जैसे ही भगवान् का पार्षद है- गरुड़। इसने काठ का गरुड बना लिया और जैसे कि भगवान् नारायण के चार हाथ हैं। उसने दो लकड़ी के हाथ लगाकर चक्र, शंख, गदा के साथ युद्ध करने आ गया। भगवान् यह देख रहे हैं। फिर सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी और उसने धड़ अलग कर दिया। शरीर से आत्मा ज्योति निकलकर भगवान् में समा गई। बोलिए श्रीकृष्ण भगवान् की जय।

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

द्विविद का उद्धार

पौड्रक राजा के मित्र काशी नरेश थे, भगवान् ने उन्हें भी दंड दिया। देखिए दुष्ट व्यक्ति का संग करने से उस व्यक्ति को भी उसी श्रेणी में खड़ा होना पड़ता हैं। भगवान् ने काशी नरेश को भी दंड दिया। कभी भी असत् का संग मत करो। सत् का संग करो। भगवान् ने उस काशी के राजा को दण्ड देकर अपनी लीला का रहस्य को प्रकट किया। शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन्–

"नरकस्य सखा कश्चिद्द्विविदो नाम वानरः।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.67.2)

राजन् एक द्विविद नाम का वानर था, वह बंदर जो पास में रैवत नामक पर्वत जिस पर बलराम जी विहार कर रहे थे। वहाँ आकर बलराम जी की स्त्रियों के साथ परिहास करने लगा, उन्हें तंग करने लगा। तो प्रभु ने बलराम के हाथों उसका संहार कराया। ये द्विविद बन्दर सुग्रीव का मन्त्री था। ये रामावतार का बंदर हैं। भगवान् राम इसे रामावतार में दंड देना चाहते थे, पर दे नहीं पाए। ये रात्रि में लंका जाकर शराब पीता था, व्याभिचार करता था, जुआ खेलता था अनेक पाप करता था। तो भगवान् राम को उस पर बहुत क्रोध था। भगवान् कहते मेरी शरण में आने पर यह अनेक पाप करता है, तो भगवान् इस दुष्ट को सहन नहीं कर पाए। भगवान् ने कहा रामावतार में मैं इसे दंड नहीं दूँगा। कृष्णावतार में इसे अवश्य दँड दूँगा। इसलिए प्रभु ने बलराम जी से दँड दिलवाया। शरीर से आत्मा ज्योति निकल कर श्री बलराम जी में विलीन हो गई। बोलिए श्रीकृष्ण बलदेव की जय।

अथाष्ट षष्टितमोऽध्यायः

कौरवों पर बलराम जी का कोप और साम्बका विवाह

अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

देवर्षि नारद जी का भगवान् की गृहचर्या देखना

श्रीशुकदेव जी महाराज कहते हैं कि दुर्योधन की बेटी लक्ष्मणा के साथ जाम्बवती भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब के साथ विवाह हुआ। जिसमें कौरव बहुत नाराज हुए, परन्तु आखिर में वर पक्ष की तरफ से समझौता हुआ और विवाह सम्पन्न हुआ।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् एक दिन नारद जी भगवान् श्रीकृष्ण का

स्मरण करते हुए मन में संकल्प लेकर द्वारका आए।

सोचा नारद ने कि भगवान् एक है रानियां अनेक हैं, कैसे? सबको सुख प्रदान करते होंगे। घर में एक पत्नी से तो बनती नहीं, लेकिन जिनकी 16,108 पत्नी हो उनका निर्वाह कैसे हो? तो आज मैं भगवान् की गृहस्थ लीला का दर्शन करूँगा। नारद जैसे भक्त परम वैष्णव का भगवान् की गृहस्थ लीला दर्शन चाहना, समझ नहीं आता। प्रभु की लीला भी बड़ी विचित्र हैं। नारद जी महाराज आए द्वारका में, अमृत वेला में, देखिए, भगवान् अमृत वेला में ही उठा करते थे। प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण।

अमृत वेला 4 से 5 बजे होती हैं। 5 से 6 बजे तक ब्रह्म मुहुर्त, 6 से 7 बजे सकाल वेला, व्यक्ति यदि स्वस्थ्य रहना चाहे, दवा न खानी पड़े, तो प्रातःकाल में उठे। परन्तु व्यक्ति सुबह उठना मंजूर न करके वह दवाखाना मंजूर कर सकता है। व्यक्ति यदि अमृत वेला में न उठ पाए तो भी ब्रह्म वेला में अवश्य उठे। उस समय प्रकृति कितना अमृत बरसाती हैं। श्री वृन्दावनधाम आदि स्थानों पर साधकों ने अनुभव किया कि यहाँ अमृत बरसता हैं। ये अपने जीवन का अनुभव भी बता रहे हैं। जो व्यक्ति अमृत वेला और ब्रह्म बेला में उठता हैं। वह स्वयं अनुभव कर सकता है।

उस समय प्रकृति से अमृत टपकता हैं। उसी की वर्षा होती हैं। ये सच बात है मनगढंत कथा नहीं है। श्री वृन्दावन धाम में एक बार रामकृष्ण परमहंस जी के गुरु भाई आए, तो उन्होंने ब्रज की महिमा बताई कि ब्रज में अमृत और ब्रह्म मुहूर्त वेला में प्रकृति स्वयं अमृत बरसाती हैं। उन्होंने लिखा है कि अमृत तो टपकाती ही है सारा वातावरण भी आध्यात्मिक बन जाता है। ऐसा सन्तों का अनुभव है। श्रीवृन्दावन धाम की भूमि अलौकिक है। परन्तु आप कहीं भी हों, अमृत और ब्रह्म बेला में प्रकृति अमृत बरसाती है उसे आप हृदय रूपी झोली में भर लो। तुम्हारे जीवन में कोई रोग, शोक नहीं होगा। यदि अमृत वेला में न उठ सको तो कोई बात नहीं, कम से कम 5 से 6 बजे के बीच उठना तो अति आवश्यक है। देखिए भगवान् श्रीकृष्ण अमृत वेला में उठते थे। इस बेला में उठकर श्रीकृष्ण सबसे पहले अपने कर का दर्शन करते थे। प्रभु ये बता रहे हैं कि इस श्लोक को आप याद कर लें या लिख लें।

कराग्रे वसते लक्ष्मी, कर मध्ये सरस्वती।
करमूले गोविन्द प्रभाते कर दर्शनम्।।

प्रातःकाल उठकर अपने कर का दर्शन करो, ये तीनों बातें तुम्हारे हाथ में है। जिसके लिए भाग रहे हो वह तुम्हारे पास है, ये तो भागवत कथा है। कर के

अग्र भाग में लक्ष्मी, मध्य में सरस्वती, मूल में गोविन्द है, तो ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों तुम्हारे हाथ में है।

तीनों को प्राप्त करने के तुम अधिकारी हो, तो प्रातःकाल उठकर अपने कर का दर्शन करो, लाभ होगा।

दूसरा श्लोक है

समुद्र वसने देवि पर्वत स्तन मंडले।
विष्णु पत्नी नमःस्तुभ्यं पादःस्पर्शे क्षमसेयमे।।

ये दूसरा श्लोक बोलकर ये प्रार्थना करनी चाहिए कि, हे माँ पृथ्वी आपकी समुद्र वसन है, पर्वत आपके स्तन हैं, भगवान् विष्णु की आप पत्नी हैं। मैं आपका स्पर्श करता हूँ, मेरे अपराध को क्षमा करें।

तीन बार हमें इस श्लोक से पृथ्वी का वंदन करना चाहिए। हो सके तो अमृत वेला में 10-12 मिनट पलंग पर बैठकर ही बिना स्नान किए भी इस मन्त्र के साथ ध्यान चिन्तन कर सकते हैं। ये अधिक आवश्यक है।

भगवान् भी अपने पलंग पर ही बैठकर श्रीकृष्ण मायातित माया से परे जो कृष्ण का स्वरूप है, भगवान् उस स्वरूप का ध्यान किया करते थे। तो किसी ने पूछा कि हम किसका ध्यान करें? हमें साक्षात श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए। भगवान् फिर प्रातःकाल में भ्रमण किया करते थे।

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्ण की नित्यचर्या एवं उनके पास जरासंध के कैदी राजाओं के दूत का आना

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.70.4)

ये श्रीमद्भागवत में लिखा है कि प्रातःकाल भ्रमण करते थे, फिर स्नान, ध्यान, वंदन, गायत्री जप किया करते थे। गायत्री मन्त्र का ध्यान, जप करते और गुरुजनों को प्रणाम करते थे।

फिर ब्राह्मणों को वस्त्र दान, अन्न दान करते थे फिर प्रसाद ग्रहण किया करते थे। इस प्रकार से एक दिन अमृत वेला में जब श्रीकृष्ण सोकर उठे तो श्रीमन् नारायण-नारायण करते हुए नारद जी रुक्मिणी जी के महल में पहुँच गए। वहाँ जाकर आवाज लगाई तो रुक्मिणी जी बाहर आ गई।

रुक्मिणी जी ने कहा कि नारद जी आज अमृत वेला में कैसे पधारे, तो वे बोले आपके महलों में भगवान् हैं? वे बोली अभी सोकर उठे हैं। मैं अभी बुलाती हूँ। नारद जी ने कहा, अभी आता हूँ और झट महल से निकलकर जाम्बती के महल में जाकर पूछा भगवान् हैं? वे बोली अभी-अभी पलंग से उठकर स्नानागार जा रहे हैं। अभी बुलाती हूँ। नारद जी बोले अभी आया कह कर सत्यभामा जी के महलों में पहुँचा पूछा क्या यहाँ भगवान् हैं? हाँ स्नान की तैयारी कर रहे हैं, आप बैठिए अभी बुलाती हूँ, वे बोले मैं अभी आया कहकर जमुना जी के महल में पहुँच गए। बोले कालिंदी जी आपके यहाँ भगवान् हैं, वे बोली स्नान कर रहे हैं। देखिए दैनिक कालिंदी जी भगवान् को स्नान कराती थीं। यमुना जी का स्नान श्रीकृष्ण द्वारका में करते थे। नारद जी ने कहा मैं अभी आता हूँ।

नारद जी ने सोचा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि अंदर ही अंदर प्रभु ने कोई रास्ता बना रखा हो। जब तक मैं दूसरी रानी के महलों में पहुँचा तो वह पहले पहुँच जाएँ, भाई ऐसा नहीं है, साक्षात् कृष्ण का ही दर्शन मिला नारद जी को। कहीं भगवान्, संध्या वंदन, कहीं सत्संग, कहीं यज्ञ, कहीं मंत्रियों से विचार, कहीं पुत्रों से वार्तालाप, कहीं पौत्रों के साथ कृष्ण खेल रहे हैं। इस प्रकार हर स्थान पर नारद को श्रीकृष्ण का दर्शन मिला। नारद बड़भागी हैं। जब शाम हो गई तो इधर से भगवान् आ रहे हैं। तो उधर से नारद जी जा रहे हैं, तो भगवान् ने कहा, कहाँ जा रहे हो नारद? भगवान् ने कहा, अभी आऊँ? सुबह से अभी तक, अभी आऊँ पूरी नहीं हुई क्यों? आपने विचारा होगा कि जहाँ मैं नहीं मिलूंगा, आप मेरी शिकायत करेंगे। तो नारद यदि मैं एक रूप में रहूँ तो सभी को सुख नहीं दे पाऊँगा। इसलिए सबको सुख देने के लिए अनेक रूप धारण किए हैं। बोलिए श्रीकृष्ण भगवान् की जय।

इस तरह भगवान् ने अपने गृहस्थ लीला का दर्शन नारद जी को करा दिया।

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण भगवान् का इन्द्रप्रस्थ पधारना

एक बार मगध से एक दूत भगवान् की सभा में आया, आकर भगवान् को प्रणाम करके सुन्दर प्रार्थना की कि – "दिव्य है श्रीमद्भागवत का ये श्लोक, बड़ा ही ध्यान देने योग्य हैं।

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।

नन्द गोपकुमाराय गोविंन्दाय नमो नमो।।

देखिए ये श्लोक कुन्ती स्तुति का है। जिसमें भगवान् के अनेक नाम कुंती देवी ने लिये हैं। एक और श्लोक भी दिव्य है।

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतः क्लेशनाशाय् गोविन्दाय नमो नमः।।

ये दोनों श्लोक श्रीमद्भागवत के दिव्य हैं, इन दोनों श्लोकों में भगवान् को बार–बार नमो नमो किया जा रहा हैं। आप भगवान् को नमस्कार करते हैं, कृष्णाय नमः रामायः नमः, शिवायः नमः, बालकृष्णायनमः।

नमः माने नमस्कार। देखिये केवल दोनों हाथ जोड़ना नहीं बोले मन में तो श्रद्धा नहीं, हाथ जोड़े, चरण स्पर्श करें। नहीं, देखिए नमस्कार कहते हैं–"नमोः इति नमः" आपने वैदिक विद्वानों को कभी देखा होगा, ये लोग जब कर्मकांड कराते हैं और आहुतियाँ दिलाते हैं। यज्ञ में, इन्द्राय स्वाहा, वरुणाया स्वाहा, इन्द्राय नमः, वरुणाय नमः, वैदिक विद्वान भी नमस्कार करते हैं। आज इस दूत ने भी प्रभु को प्रणाम कर प्रार्थना की।

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

पाडवों के राजसूय यज्ञ का आयोजन और जरासंध का उद्धार

प्रार्थना

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतः क्लेश नाशाय गोविन्दाय नमो नमः।।

20800 राजाओं ने अपने अभिमान को त्याग कर भगवान् के चरणों में प्रणाम किया। दूत ने कहा कि महाराज ये सभी राजा आपसे प्रार्थना कर रहे हैं कि आप उन्हें बंधन मुक्त करें, भगवान् तुरंत उद्धवजी को बुलाकर कहते हैं कि आप की क्या मन्त्रणा है, क्या सलाह है, वे बोले कि महाराज समय तो बहुत अच्छा है, और हमारे पास इस समय नारद जी बैठे हैं। कौरव और पांडव दोनों मिलकर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। सभी राजाओं पर विजय प्राप्त कर चुके हें, परन्तु एक राजा जरासंध को नहीं जीत सके। तो समय का लाभ उठाइए। उसी समय भगवान् हस्तिनापुर आए और भीम, अर्जुन को साथ लेकर ब्राह्मण का रूप धारण कर प्रभु मगध राज्य की ओर

चल दिए।

भगवान् जानते थे कि जरासंध का ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा हैं। क्योंकि 18 वी बार मथुरा के युद्ध में जरासंध की सेना में भगवान् ने ब्राह्मण को देखकर युद्ध न कराके पर्वत पर चढ़ गए। जरासंध ने मान लिया कि जय हमारी हुई। तब से जरासंध ब्राह्मण के प्रति श्रद्धा अटूट रखते थे, इसलिए आज प्रभु, भीम, अर्जुन के साथ ब्राह्मण वेश में जरासंध के द्वार पर जाकर कहा 'भिक्षाम् देहि' राजन् भिक्षा दो। जरासंध ने ब्राह्मण के वेश में कृष्ण, भीम, अर्जुन को नहीं पहचाना। इधर ब्राह्मणों की कृपा से जरासंध की बार-बार जीत हो जाती थी। ब्राह्मण के आशीर्वाद से वह बलशाली बन चुका था। पर साथ ही वह अहंकारी भी हो गया था। श्रीकृष्ण के 'भिक्षाम् देहि' कहने पर जरासंध ने कहा माँगो क्या चाहिए। भगवान् ने कहा कि-

"युद्धं नो देहि राजेन्द्र द्वन्द्वशो यदि मन्यसे।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.72.28)

मुझे द्वन्द्व युद्ध का दान दीजिए। जरासंध ने कहा ब्राह्मण कभी युद्ध का दान नहीं माँगता, तुम कौन हो? भगवान् श्रीकृष्ण बोले-

असो वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्रातार्जुनो ह्ययम्।
अनयोर्मातुलेयं मा कृष्णं जानीहि ते रिपुम्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.72.29)

देखो, ये जो मेरी ओर भारी पेट वाला है यह भीमसेन हैं। बगल में जो है ये अर्जुन हैं। मुझे तो तुमने पहचान ही लिया तुम्हारे मामा का बेटा कृष्ण हूँ। तुम्हारा पुराना शत्रु हूँ। जरासंध को बड़ा आश्चर्य हुआ कि तीनों क्षत्रिय ब्राह्मण के वेश में हैं। पर हिम्मत नहीं हारे, बोले देखो कृष्ण मैं तुमसे युद्ध नहीं करूँगा। तुम तो भीरू हो। मेरे सामने नहीं टिक पाओगे। पहले ही तुम रण छोड़ हो। रणभूमि को छोड़कर भाग गया था। मैं तेरे साथ युद्ध नहीं करूँगा। तूने अपनी पूरी मथुरा त्याग कर समुद्र में द्वारिका में आश्रय लिया हैं। इसलिए कृष्ण तुम जैसे डरपोक से हम युद्ध नहीं करेंगे।

न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवतेजसा।
मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.72.31)

और ये अर्जुन-गांडीव चलाने से इसके हाथ में टेक पड़ी थी। परन्तु अर्जुन भी मेरी बराबरी नहीं कर सकता। मैं तो इसे योद्धा ही नहीं समझता। पर मैं आपको युद्ध की

भिक्षा अवश्य दूँगा। दान दूंगा मैं तुम्हें युद्ध का। परन्तु युद्ध उससे अच्छा लगता है, जो बराबरी का हो। न अर्जुन बराबरी का हो सकता है, न तुम। हाँ ये भीम कर सकता हैं मुझसे युद्ध एक गदा भीम को देकर युद्ध प्रारंभ किया है।

अर्जुनों न भवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम।
(श्रीमद्भागवतम् 10.72.32)

फिर क्या था समतल भूमि पर आकर युद्ध करने लगे। भीम और जरासंध, दोनों सखा कृष्ण और अर्जुन युद्ध देख रहे हैं।

28 दिन युद्ध चला। जरासंध ने मार-मार कर भीम की नस-नस ढीली कर दी। 20 वें दिन युद्ध शुरू हुआ। भीम सेन ने भगवान् की तरफ देखा, भगवान् ने कहा युद्ध करते हुए देखते नहीं। भगवान् का इशारा भीम ने देखा कि केले के पत्ते को चीर कर फेंका। भीम सेन समझ गया कि गदा से नहीं, इसे चीरकर फेंकना। भीमसेन में क्या सामर्थ्य जो जरासंध को जीत सके। भीमसेन भगवान् की ओर देखने लगे। भगवान् ने कहा देखो भीम जरासंध जरा राक्षसी के द्वारा दो खंड में जुड़ा हैं। भगवान् ने भीम को इशारा किया तो उसने पटककर तुरंत जरासंध को पैर पर पैर रखके चीरकर दो भाग में पटक दिया। दाहिना भाग बाईं ओर बायां भाग दाहिनी ओर फेंक दिया। शरीर से आत्मज्योति निकल कर भगवान् में विलीन हो गई। बोलिए श्रीकृष्ण भगवान् की जय।

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

जरासंध की जेल से छूटे राजाओं की विदाई और भगवान् का इन्द्रप्रस्थ लौटना

भगवान् ने भीम के द्वारा जरासंध का वध कराके उसके पुत्र सहदेव को गद्दी पर बैठाया। 20,800 राजाओं को बंधन मुक्त कराया। सभी को प्रभु ने सम्मान देकर अपने-अपने राज्य भेज दिया। भीमसेन ने जरासंध के मुकुट के साथ राजधानी में आकर संदूक में रख दिया। यह वही मुकुट है जरासंध का जिसे राजा परीक्षित के मंत्रियों ने संदूक खुलवाकर राजा के मस्तिष्क पर धारण कराया।

इसके कारण राजा का मन मृगया के लिए स्थिर हुआ और राजा परीक्षित को मृगया में पिपासार्थ होते हुए जल न मिलने पर ऋषि पुत्र श्रृंगी का श्राप मिला। सात दिन में राजा की मृत्यु हुई, जरासंध दुरनिति का शासक है, जिनके मुकुट में अनेक हीरे जवाहरात थे। अन्यायी शासक के मुकुट धारण करने से राजा परीक्षित

के ऊपर कलि की छाया पड़ी। कलि ने राजा को विपद गामी करा दिया। अन्यायी और आततायी का धन व्यक्ति को नष्ट कर देता हैं। जिसका प्रमाण राजा परीक्षित हैं। असमय में ही राजा को राजगद्दी प्रसाद छोड़कर गंगा के किनारे जाकर शरीर छोड़ना पड़ा।

अथ चतुः सप्ततितमोऽध्यायः

भगवान् की अग्रपूजा और शिशुपाल का उद्धार

जरासंध का उद्धार करके भगवान् ने कौरवों और पांडवों को राजसूय यज्ञ करने का अधिकारी बना दिया। राजसूय यज्ञ वही व्यक्ति कर सकते हैं। जो समस्त राजाओं पर विजय प्राप्त कर ले। आज युधिष्ठिर ने समस्त राजाओं को जीत लिया जरासंध को पराजित कर आज वह कार्य भी हो गया। राजसूय यज्ञ में देश देशान्तर से बड़े-बड़े राजाओं ने आकर भाग लिया। उस सभा में शिशुपाल आदि दुष्ट राजा भी उपस्थित हैं। प्रश्न उठा कि ये राजसूय यज्ञ की अग्रपूजा कैसे और किससे की जाए।

सभी ने कहा कि कृष्ण से ही अग्रपूजा की जाए। उसी समय शिशुपाल ने विरोध किया, कि ये कृष्ण ही अग्रपूजा क्यों करेंगे? गौ चराते हैं, ग्वाले हैं, अपने मामा के हत्यारे, पर स्त्री से रास नृत्य करते हैं। ये अग्रपूजा का अधिकारी नहीं हो सकता हैं। कृष्ण को सामान्य पुरुष समझकर गालियाँ बकने लगा।

भगवान् श्रीकृष्ण ने शिशुपाल की माता को वचन दिया था कि 100 गालियों तक माफ करेंगे। 100 के बाद गिनती करके 1, 2, 3, 4, 5 में छोड़ूंगा नहीं। शिशुपाल की माता ने कहा, ये तुम्हारा भाई है, ये गाली क्यों देगा? भगवान् ने कहा गाली नहीं देगा तो मैं मारूंगा भी नहीं। शिशुपाल के जन्म के समय उसके चार हाथ हुए। विचित्र बालक को देखकर सब चकित हो गए। जिसकी गोद में देनेसे इसके दो हाथ गायब होंगे, वही इसकी मृत्यु का कारण बनेगा। शिशुपाल की माता इस चार हाथ वाले बालक को सबकी गोद में देने लगी, परन्तु तब कृष्ण की गोद में दिया तो झट से दो हाथ गायब हो गए। शिशुपाल की माता ने तभी भयभीत होकर कहा था कि मेरे बेटे को मारना नहीं। कृष्ण ने कहा मेरा भाई है, मैं क्यों मारूँगा? परन्तु आज शिशुपाल जब भगवान् को गालियां देने लगे तो वे बोले मैंने तुम्हारी माता को दिया वचन पूरा किया हैं। अब आगे बढ़े तो, ये मेरा सुदर्शन है, शिशुपाल नहीं माना और गालियां देते रहे और कृष्ण ने सुदर्शन से सिर काट दिया और शरीर से आत्मज्योति निकल गई।

अथ पंचसप्ततिमोऽध्यायः

राजसूय यज्ञ की पूर्ति और दुर्योधन का अपमान

भगवान् की अध्यक्षता में राजसूय यज्ञ प्रारंभ हुआ, प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण। आज भगवान् श्रीकृष्ण ने सबके ऊपर सेवा सौंपी। क्योंकि ये बड़ा यज्ञ, राजसूय यज्ञ हैं। जिम्मेदारी लेनी चाहिए। एक के ऊपर सारा काम नहीं सौंपना चाहिए। क्योंकि एक के ऊपर अधिक सेवा होने से वह अपनी जिम्मेदारी ठीक से नहीं निभा सकते। भगवान् ने राजसूय यज्ञ को निर्विघ्न पूर्ण करना चाहा। भगवान् ने युधिष्ठिर महाराज के लिए निश्चित किया कि आने वाले राजाओं का स्वागत करना।

भीम को भंडार घर का मुखिया बनाया गया। वे खाते भी हैं। खिलाते भी हैं। यही उचित हैं। क्योंकि भीमसेन स्वयं भी प्रेम से खाते हैं। और दूसरों को भी प्रेम से खिलाते हैं। राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर महाराज का यश बढ़े। भोजन में किसी को कष्ट न हो। भीमसेन को उत्तरदायित्व दिया गया। साधु सन्तों को ठहराने का काम अर्जुन को मिला। नकुल, सहदेव का दायित्व यज्ञ सामग्री का देखभाल करना था। दुर्योधन को बनाया कोषाध्यक्ष। देखो हर परिवार में हर समाज में दुर्योधन जैसे व्यक्ति भी होते हैं, जो बने बनाए काम को बिगाड़ते हैं।

स्वभाव के अनुसार यह हर कार्य में विध्न डालता था। प्रभु ने सोचा यदि इसे सम्मान न मिला तो यह काम बिगाड़ देगा। दुर्योधन जैसा व्यक्ति यदि हो, जो काम बिगाड़ता हो, तो उसके हाथ में थैली को सौंप देना चाहिए। बोले, वृन्दावन बिहारी लाल की जय। यह नीति की बात हैं। भगवान् शिक्षा दे रहे हैं। भगवान् जानते थे कि दुर्योधन के हाथ में धन बढ़ने वाली रेखा हैं। जितना ये खर्च करेगा, उतना ही बढ़ेगा। धन की कमी यज्ञ में नहीं रहेगी। दूसरा यह हर कार्य बिगाड़ता हैं। तो इसे प्रतिष्ठा देकर अपना काम बना लो। सुबह से शाम तक जितना पैसा खर्च होता यह देता रहता। जो भी कोई आता पैसे के लिए उसे देता रहता और रात्रि में वही बात लेकर हिसाब के लिए बैठ जाता तो उसे झगड़े का समय ही नहीं मिलता। बोलिए श्रीकृष्ण भगवान् की जय। भगवान् समय न देकर कार्य करा लिया। एक कार्य किसी को नहीं दिया गया। वह कार्य था जितने सन्त आ रहे हैं, जितने महात्मा, वैष्णव आ रहे हैं उनके चरण धोने का कार्य किसी ने नहीं लिया। भगवान् हाथ जोड़कर युधिष्ठिर से कहते हैं कि दादा भैया आप मुझे भी कोई सेवा बताइए। कहा प्रभु आप की तो हम पूजा करेंगे, आप तो सिंहासन पर बैठिए।

भगवान् ने कहा नहीं इतने बड़े यज्ञ में मैं भी सेवा करूँगा। "सेवा हि परमोधर्मः" बड़े-बड़े यज्ञ में हमें निष्काम भाव से सेवा करते हुए भाग लेना चाहिए। भगवान् अपने जीवन में सेवा करके बता रहे हैं कि–

कृते जत् धायते विष्णुः – त्रेतायाम् यजते मखै।
द्वापरे परिचर्याम् कलौ तद् हरि कीर्तनाद्।।

द्वापर में सेवाभाव स्वयं कृष्ण के जीवन में देखने को मिला। प्रभु ने स्वयं सेवा का आग्रह किया। जिस सेवा का किसी ने ध्यान नहीं किया और व्यक्ति सेवा को निभाने में, करने में अपने को बहुत छोटा समझता हैं। मैं कैसे गुरु के चरणों को धोऊँ, ब्राह्मणों को संतों को प्रणाम करूँ। दूसरे के चरण धोने से चरणों में प्रणाम करने से व्यक्ति स्वयं को हीन समझता हैं। परन्तु देखिए भगवान् को "लघुता से प्रभुता मिले प्रभुता से प्रभु दूर।" जितना व्यक्ति लघु बनेगा उतनी ही उसकी प्रभुता बढ़ती हैं। भगवान् तो महान है, श्रीकृष्ण तो साक्षात भगवान् हैं, परन्तु भगवान् भी अपने जीवन में इतने छोटे बन गए। इस महायज्ञ में जिसमें साक्षात् श्रीकृष्ण की अग्रपूजा हो रही हैं। उस भगवान् को पूजा को स्वीकार करते हुए सेवा में भी लगे हुए हैं। भगवान् ने कहा कि मैं सेवा करूँगा। सभी सन्त महात्मा के चरण धोऊँगा। युधिष्ठिर के बहुत मना करने पर भी न मानते हुए यही सेवा स्वीकारी। द्वार पर बैठकर सभी सन्तों के अपने हाथों से चरण धोए और शीश पर जल चढ़ा रहे हैं। भागवत कहती है कि–

"तीर्थि कुर्वन्ति तीर्थानि, स्वान्त स्थेन गदाभृताः" सन्तों का यदि कोई विशेष अंग है तो वे हैं चरण हमारे देश में साधु सन्तों के चरणों की बड़ी महिमा हैं। चरण पादुका सेवा की भी बड़ी महिमा हैं। भगवान् राम ने भरत को पादुका प्रदान की। भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव को पादुका प्रदान की। भगवान् के ये दोनों परम भक्त भरत और उद्धव पादुका सेवा ही करते रहें। सन्त की चरण सेवा बड़े भाग्य से मिलती हैं। जिन चरणों के द्वारा सन्त तीर्थों का सेवन करते हैं, तीर्थ में वास, ध्यान, पूजन, साधना करते हैं। जिस प्रकार सन्त तीर्थ पवित्र करते हैं सन्त साक्षात् जंगम (चलते फिरते) तीर्थ हैं। आज भगवान् स्वयं सन्तों के चरण धो रहे हैं और उसके चरणोदक शीष पर चढ़ा रहे हैं।

जब से नारद जी महाराज ने सुना कि आज भगवान् पैर धो रहे हैं, इस राजसूय यज्ञ में, तो सोचा फिर ऐसा मौका कब मिलेगा। चलो भगवान् से पैर धुलवाएं। नारद जी तुरंत आए। नारद जी ने आकर कहा कि प्रभु हमारे पैर धोओ। भगवान् बोले बैठो

अभी धो देता हूँ। नारद जी को चौकी पर बैठाकर भगवान् उनके चरण धोने लगे। जब कोमल हाथों का स्पर्श नारद जी को हुआ तो उन्हें बहुत आनंद हुआ एवं चौकी पर खर्राटे भरने लगे। बोलो वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

जब खर्राटे भरने लगे तो प्रभु ने देखा कि नारद जी सो गए, अब इन्हें कैसे जगाऊँ, ये तो गहरी नींद में हैं। भगवान् उन्हें एकटक देखते हुए गद्‌गद् हो रहे हैं। भगवान् सोचने लगे कि नारद कितना परिश्रम करता है। निरंतर मेरा जाप करता है। 'श्रीमन्न नारायण' परन्तु थोड़ी देर में उन्होंने देखा कि पीछे और भी सन्त खड़े हैं, अब तो नारद जी को जगाना ही होगा। वे बोले नारद जी उठिए, देखिए। बहुत सन्त पीछे खड़े हैं। मुझे सबके चरण धोने हैं, नारद जी ने कहा क्या मेरे चरण धुल गए। भगवान् ने कहा कि मिट्टी का एक कण भी नहीं हैं। नारद जी देखकर प्रसन्न हुये और यज्ञ मंडप की ओर चले गए। वहाँ की शोभा देखकर कहाँ हमें तो दक्ष का शाप हैं। हम 2.5 घड़ी से अधिक ठहर नहीं सकते। क्या करें। बैठ नहीं सकते, तो क्या करें?

एक प्रवेश द्वार था यज्ञ के मंडप का और एक निकास द्वार था। नारद जी अंदर जाते हैं और निकास द्वार से चले जाते हैं। कीचड़ में अपने पैर करके भगवान् के पास आ जाते हैं। प्रभु हमारे चरण धोओ। देखिए, भगवान् भी मना नहीं करते। यही भगवान् की भक्त वत्सलता हैं। कितनी बार नारद जी आए। भगवान् ने उनके चरण धोए हैं। सब संतों ने भगवान् से एक-एक बार चरण धुलवाए मगर नारद जी ने सुबह से शाम तक अपने चरण धुलवाए। बोलिए, श्रीकृष्ण भगवान् की जय। इस प्रकार भगवान् की अध्यक्षता में राजसूय यज्ञ का आरंभ हुआ। यज्ञ सुसम्पन्न हुआ। यज्ञान्ते युधिष्ठिर ने स्नान किया। रिद्धि-सिद्धि की प्राप्ति हुई। जिस महल को दुर्योधन देखता है, दृष्टि भ्रम होता हैं। यज्ञ का प्रासाद था मयदानव का बनाया हुआ। दिव्य महल – जिसमें दुर्योधन को जल में थल, थल में जल का आभास हुआ। द्रौपदी बोल पड़ी – 'अंधे का पुत्र अन्धा' क्योंकि दुर्योधन स्थल में चलने गए तो जल में गिरे। द्रौपदी ने इसलिए कटाक्ष किया। यही महाभारत का भी एक कारण बना।

भगवान् श्रीकृष्ण कौरव और पांडव को निमित्त बनाकर पृथ्वी का भार उतारना चाहते थे। परन्तु श्री बलराम जी महाराज ने सोचा कि कन्हैया तो झगड़ा ही कराने पर तुले हैं। किंतु मेरा तो दोनों से ही प्रेम हैं। श्री बलराम जी ने कहा हम तो तीर्थ यात्रा पर जा रहे हैं। बोलिए बलराम जी महाराज की जय।

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

शाल्व के साथ यादवों का युद्ध

अथ सप्तसप्ततिमोऽध्यायः

शाल्व उद्धार

अथाष्टसप्रतितमोऽध्यायः

दन्तवक्त्र और विदुरथ का उद्धार तथा तीर्थ यात्रा में बलराम जी के हाथ से सूत जी का वध

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

बल्वल का उद्धार और बलराम जी की तीर्थ यात्रा

राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा को लेकर शिशुपाल भगवान् के विरोध में खड़े होकर गालियाँ देने लगे। शिशुपाल जन्म से ही भगवान् को गाली देते थे। सुबह से आरंभ करते थे। आज यज्ञ में भी अंतिम गालियाँ देने लगे। भगवान् ने कहा शिशुपाल 100 गालियों का वचन मैंने तेरी माँ को दिया था उसके बाद मैं तुम्हें नहीं छोडूंगा। परन्तु विपरीत बुद्धि वाले शिशुपाल भगवान् को गाली देने लगे। 1, 2, 3, 4, 5, 100 के बाद सुदर्शन को आदेश दिया और शिशुपाल का सिर धड़ से अलग हो गया। शिशुपाल के मित्र थे, शाल्व। जो श्रीकृष्ण से, यादवों से युद्ध करने लगे। परन्तु भीषण युद्ध होने के बाद भी भगवान् श्रीकृष्ण ने शाल्व का उद्धार किया उन्होंने परमगति प्राप्त की। शाल्व के बाद दन्तवक्र और विदुरथ आए, यादव सेनाओं के साथ युद्ध करने दन्तवक्र और विदुरथ को भी परमगति प्राप्त हुई।

इधर तीर्थ यात्रा पर बलराम जी नैमिषारण्य में सन्तों की सभा में उपस्थित हुए।

"जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.78.20)

उस समय समस्त ऋषियों की सभा, विराट सत्र का आयोजन हो रहा है। सूत जी गद्दी पर बैठे। सभी बड़े-बड़े साधु-सन्तों ने बलराम जी का स्वागत किया। परन्तु सूत जी उठे नहीं। बलराम जी ने एक छोटा तिनका उनकी तरफ फेंका। उसके लगते ही उनकी मृत्यु हो गई, बलराम जी ने कहा–

"वधमर्हति दुर्मतिः"

(श्रीमद्भागवतम् 10.78.24)

अरे अहंकारी वृथा तू स्वयं को पंडित मानता हैं। उसका फल तुझे प्राप्त होगा। इतना कहकर–

"कुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.78.28)

उस समय बल्वल नामक असुर आया, उसे भी मुक्ति दिलाकर बलराम जी तीर्थ यात्रा के लिए चले गए।

अथाशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण के द्वारा सुदामा जी का स्वागत

श्रीशुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् आपको कौन सी कथा सुनाएँ। राजा ने कहा महाराज किसी भक्त का चरित्र सुनाएँ। श्रीशुकदेव जी महाराज सुदामा जी का चरित्र वर्णन कर रहे हैं। बड़ा दिव्य ब्राह्मण, भागवत में इनका दिव्य चरित्र हैं। शुकदेव महाराज कहते हैं। राजन जितना आनंद भागवत कथा में है उससे दुगुना आनंद भक्त के चरित्र वर्णन में है।

कृष्णस्यासीत्सखा कश्चिद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तम्ः।
विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.80.6)

राजन् श्री सुदामा जी कृष्ण के परम मित्र थे। "ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः" बड़े वित राग थे, बड़ा तपस्वी जीवन था, जीतेन्द्रिय थे, लोग कहते हैं कि सुदामा जी तो दरिद्र थे। देखिए भगवान् का भक्त निर्धन हो सकता है पर दरिद्र नहीं। लेकिन यदि हम दरिद्र कहेंगे तो हम सुदामा जी का अपमान करेंगे। भगवान् का भक्त निर्धन हो सकता है, दरिद्र नहीं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन् सुदामा जी महाराज की सुन्दर सुशील पत्नी थी। नाम था सुशीला। सुदामा जी के जीवन में बहुत गरीबी थी। निर्धनता भी जीवन का अभिशाप ही हैं। जो उनके जीवन में थी। इतनी गरीबी थी कि एक समय का भोजन भी नहीं मिलता था। जब-जब सुदामा जी गरीबी से दुखी होते तब अपनी पत्नी को भगवान् की कथा सुनाते।

कथाओं के बीच में कहते थे कि देख सुशीला जिन भगवान् की मैं कथा सुना रहा हूँ वह द्वारका के राजा हैं और मेरे परम मित्र हैं। एक दिन सुशीला जी ने कहा आप बार-बार कहते हैं। द्वारिका के राजा मेरे मित्र हैं। तो उनसे माँगने क्यों नहीं जाते। देखो सुशीला हमारे जीवन में कितनी भी निर्धनता हो मैं अपने मित्र के द्वार पर माँगने नहीं

जाऊँगा, क्योंकि कन्हैया से मेरा मित्रवत, सम्बंध हैं, सुशीला जी ने कहा आप माँगने मत जाइए। मित्र के दर्शन के लिए जाइए।

सुदामा जी सुशीला की बात से अनुप्राणित होकर तुरंत बोले ये ठीक कहा है, तूने।

"अयं हि परमो लाभ उत्तमःश्लोकदर्शनम्।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.80.12)

सुशीला इस जीवन का परम लाभ तभी है जब हम इन आँखों से कृष्ण दर्शन करे। कितना हममें प्रेम था, आज तुमने उनकी याद दिला दी। मैं अवश्य जाऊँगा। परन्तु क्या कुछ है, घर में जो कन्हैया को भेंट कर सकूँ।

सुशीला ने देखा कि सुदामा द्वारकाधीश कृष्ण के दर्शन के लिए जा रहे हैं। घर में चावल का एक दाना तक नहीं हैं। बुद्धिमति सुशीला जी चार घर गई, चार मुट्ठी चिवड़ा माँग कर लाई है।

याचित्वा चतुरो मुष्टीन्विप्रान्पृथुकतण्डुलान्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.80.14)

सुदामा जी का एक फटा दुपट्टा था जिसके चारों ओर दुर्बल दशा थी और चार मुट्ठी चिवडा बांध कर सुदामा जी के हाथ में दे दिया। वे चल दिए।

देखिए तीन जगह कभी खाली हाथ न जाना–गुरु के द्वार पर, भगवान् के मंदिर में, मित्र के घर। कुछ न कुछ अवश्य ले जाइए। सुदामा जी का तो तीनों ही सम्बंध कृष्ण से हैं, मित्र भी हैं और "कृष्णम् बन्दे जगद्गुरु" जगद्गुरु भी कृष्ण हैं। और साक्षात् भगवान् भी कैसे खाली हाथ जाते। आज सुदामा जी महाराज चार मुट्ठी चिउड़ा लेकर द्वारिका की ओर गए। मार्ग में सुदामा जी सोच रहे हैं कि कहाँ मैं निर्धन ब्राह्मण, कहाँ मेरा मित्र द्वारिका के राजा, क्या मुझे कृष्ण दर्शन देंगे। ऐसा सुदामा जी मन ही मन सोच रहे हैं और सुदामा जी कृष्ण को पुकारते हुए जा रहे हैं। प्रेम से आप लोग भी गुनगुनाइए – सुदामा जी के भाव हैं।

गीतम्

कन्हैया – कन्हैया पुकारा करेंगे
लताओं में ब्रज की गुजारा करेंगे।
कन्हैया...................................।।
कहीं तो मिलेंगे वो बांके बिहारी
चरणों में चित्त को लगाया करेंगे।

बनाएँगे हृदय में हम प्रेम मंदिर
उन्हीं से सदा मन लगाया करेंगे।
कन्हैया..................................।।

सुदामा जी कन्हैया - कन्हैया कहते हुए जा रहे हैं, सुदामा जी कृष्ण का स्मरण कर रहे हैं। उधर कृष्ण भी सुदामा जी को याद करते हैं। भक्त और भगवान् एक-दूसरे को स्मरण करते हैं। सुदामा जी द्वारिका की ओर जा रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण आज सुदामा जी का स्मरण कर रहे हैं और सुदामा जी श्रीकृष्ण को याद कर रहे हैं, चलते हुए उन्हें रात्रि हो गई। एक वृक्ष के नीचे वे लेटे और गहरी नींद में डूब गए। भगवान् ने तुरंत योगमाया जी को आज्ञा दी कि मेरे मित्र को तुरंत द्वारिका पहुँचा दो। वे चलते-चलते थक गए हैं। योगमाया जी ने सुदामा को द्वारिका में पहुँचा दिया। प्रातःकाल होने पर वे गहरी नींद में थे। भुवन भास्कर सूर्य भगवान् की किरण जब आँख पर पड़ी तो वे उठे।

मन ही मन सोचा आज मैं बहुत सोया। आँख खुलते ही सुदामा जी ने देखा कि चारों ओर महल ही महल खड़े हैं। वे सोचने लगे कि मैं तो निर्जन वन में सोया था, तो यहाँ कैसे आया? लोग इधर-उधर आ-जा रहे हैं। घंटे घड़ियाल बज रहे हैं। सुदामा जी ने किसी से पूछा, ये कौन से राजा का नगर हैं। वहाँ के लोग बोले ब्राह्मण देवता ये द्वारिका हैं। वे सोचने लगे और बोले भैया द्वारिका में कन्हैया का महल कौन-सा है? किसी ने भी नहीं बताया। पूछते-पूछते उन्हें बहुत देर हो गई। सबका मकान व्यक्ति जानता है पर कृष्ण का मकान कोई बिरला ही व्यक्ति जानता हैं। सुदामा जी आगे पूछते हुए बढ़ रहे हैं। एक यादव आए और उन्होंने कहा मैं आपको सुबह से देख रहा हूँ कि, आपको किससे मिलना हैं। सुदामा जी ने कहा कृष्ण का, कौन-सा महल है, किसी ने नहीं बताया। भईया मैंने तो सुना था कि द्वारिका में मेरे मित्र कृष्ण रहते हैं, परन्तु यहाँ कोई कृष्ण का मकान ही नहीं जानता वे बोले ब्राह्मण देवता, ये सभी महल आपके मित्र कृष्ण के हैं। जिसमें भी जाएँगे कृष्ण को ही वहीं पाएंगे। सामने वाले महल उनकी बड़ी रानी रुक्मिणी जी के हैं। वहीं जाइए। सुदामा जी महाराज उस यादव को प्रणाम करके आगे बढ़े। द्वार पर द्वारपाल खड़े हैं। उन्होंने अंदर नहीं जाने दिया। कहा, कहाँ जाना है? कहाँ से आए हो? क्या नाम है? अंदर क्यों जा रहे हो? सुदामा जी ने कहा भैया यहाँ आकर भी उस अंतरयामी के द्वार पर परिचय देना पड़ता है। बस इतना ही कह देना मेरे मित्र कृष्ण से कि तुम्हारा मित्र सुदामा मिलने आया है। मेरा मित्र सब समझ जाएगा। वह घट-घट बासी है, भगवान्

द्वारकाधीश बैठे हैं, सिंहासन पर। बोलिए भगवान् द्वारिकाधीश की जय।

द्वारपाल ने प्रणाम किया भगवान् द्वारिकाधीश को और सुदामा जी की दीनदशा का विषय में वर्णन किया।

सीस पगा न झगा तन में,
प्रभु जानि के आए बसै एक ही ग्राम
धोती फटी-सी लाटि दुपाटी
और पायन उपायन की नाहि समाना
द्वार खड़े द्विज दुर्बल एक
रखो चकि सोम सुदामा विरामा
पूछत दीन दयाल को धाम
बतावत अपनो नाम सुदामा

द्वार पर एक ब्राह्मण खड़ा है सीस पर टोपी नहीं, तन पर कुरता नहीं, धोती भी जगह जगह से फटी है, पैरों में जूते है पर तले का ठिकाना नहीं। भगवन आपकी द्वारिका आश्चर्यचकित होकर देख रहा है और अपना नाम सुदामा बता रहा हैं। ज्यों कहा सुदामा श्रीकृष्ण की समाधि भंग हो गई। वे भूल गए कि मैं द्वारिका का राजा हूँ। वे सिंहासन से कूद पड़े। सुदामा! सुदामा कहते द्वार की ओर दौड़ पड़े। कहीं भगवान् का मुकुट है, कहीं पीताम्बर है, श्रीकृष्ण दौड़े चले जा रहे हैं, इस प्रकार जब हम एक कदम कन्हैया की ओर बढ़ते हैं। तो 10 कदम ठाकुर बढ़ते हैं, हम 10 कदम तो प्रभु 100 कदम बढ़ते हैं। वे भूल गए कि मैं द्वारिकाधीश, अपने अंग में भरकर सुदामा जी को उठा लिया। बोलिए भक्त वत्सल भगवान् की जय। अन्त:पुर की ओर भगवान् चले। सुदामा मेरे मित्र आए हैं। रुक्मिणी आदि रानियों को अचरज हुआ ये कौन हैं? हमारे प्राणनाथ जिन्हें? इतना सम्मान दे रहे हैं। अपने भाई बलराम जी की तरह।

भगवान् सुदामा जी के साथ अत:पुर में गए और अपने सिंहासन पर बैठा दिया। रुक्मिणी आदि रानियों को आश्चर्य हुआ, जब कृष्ण भगवान् सुदामाजी के चरण में बैठे। बोले ये सन्त हैं, ब्राह्मण हैं। मेरे मित्र भी हैं। मेरे घर में एक द्विज आए हैं।

मैं अपने मित्र के पहले चरण धोऊँगा। देखिए सन्त के केवल एक अंग चरण में ही शक्ति हैं। चरण धोने के लिए ही श्रीकृष्ण बैठे हैं। सुदामा जी के चरण की दशा देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि वे नीचे से फटे हैं। काँटे लगे हैं। प्रभु ने कहा, मित्र इतने दिन आप कहाँ रहे, आप मेरे पास क्यों नहीं आए? इतना, कष्ट आपके जीवन में।

देखि सुदामा की दीन दशा, करुणा–
करके करुणानिधि रोए।।
पानि परात को हाथ छुओ नहीं।
नयन के जल सो पग धोए।।

श्रीकृष्ण के आंखों से इतने अश्रु टपक रहे हैं कि प्रभु ने उस जल की झारि को हाथ नहीं लगाया। अपने अश्रु से ही मित्र सुदामा के चरण धो दिए। सुदामा ने कहा मित्र सुबह से हम आपका मकान ढूँढ रहे थे, किसी ने नहीं बताया। हमने सुबह से न स्नान किया, न पूजा। श्रीकृष्ण ने कहा आप बड़े भोले हो, आप कृष्ण का मकान पूछ रहे थे। ये महल आपकी कृपा से ही हैं। सन्तों की कृपा से ही सब संभव है। तो सब संतो का कृपा प्रसाद हैं।

मित्र सुदामा जी ने कहा हमने स्नान नहीं किया, हमें रस्सी, बाल्टी देकर कुंआ दिखाओ हम स्नान कर लें। कितने भोले ब्राह्मण हैं, भगवान् बोले– मित्र आपको कुंआ पर जाने की आवश्यकता नहीं। मैं यहीं स्नान कराऊँगा। मेरे मित्र का इतना ऐश्वर्य है, कि रत्न जड़ित सिंहासन पर ही स्नान कराएँगे?

सुदामा जी गद्‌गद् हो सोचने लगे। उसी समय भगवान् ने मित्र के स्नान के लिए सारी रानियों को पानी लाने की आज्ञा दी। सभी रानियां दौड़कर गई और जल से भरा कलश लेकर आई।

ज्यों सुदामा जी ने लम्बी लाइन देखी तो पूछा कन्हैया, ये सब कौन हैं? प्रभु ने कहा मित्र ये सब तुम्हारी भाभी हैं। बोले कितनी हैं? मित्र बस थोड़ी सी ही तो हैं। अरे कन्हैया बताओ तो सही कितनी हैं? प्रभु ने कहा मित्र बस 16,108 ही तो हैं। सुदामा जी बोले, मित्र मैं तो अपनी घर वाली से ठीक से मिलकर नहीं आयो, बोले भाभी की याद क्यों कर रहे हो?

कन्हैया एक दो कलश से तो स्नान कर सकता हूँ 16,108 से कैसे करूँ? यदि ऐसा किया तो 1.5 पाटी का शरीर है मेरो यहीं गोविन्दाय नमा नमः। घर तक नहीं पहुँच पाएँगे। यहीं पूरा हो जाएगा शरीर। सुदामा जी ने बात तो ठीक ही कही–भगवान् ने कहा कि देख–री! तुम सब जल भर कर कलश लाई हो। अरे 1–2 हो तो ठीक। सभी चली आई हो। अब कोई एक मेरे मित्र पर जल डाल दो। वास्तव में 16108 सोने की गागर में जल लेकर खड़ी हैं। विचित्र सुन्दर दृश्य देखकर सुदामा जी को आश्चर्य हुआ।

सभी रानियों ने कहा कि महाराज आप ही बताएँ, सुदामा ब्राह्मण पर कौन-सी रानी जल डालेगी। यही है धर्म संकट, जिसका नाम नहीं लिया वही नाराज। परन्तु पास में खड़े उद्धव जी महाराज से कहा कि अब तुम ही मेरे मित्र को स्नान कराओ इस धर्म संकट से निकालो तो सही। उद्धव ज्ञानी हैं। बुद्धि का प्रयोग करते हुए एक खाली कलश मंगाया सभी कलश से एक-एक चम्मच जल लेकर कलश भरके सुदामा जी को स्नान कराके सुन्दर कपड़े पहनाए। सुदामा जी की धूप-दीप से आरती उतारी।

धूपैः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिमुर्दा।
अर्चित्वावेद्य ताम्बूलं गां च स्वागतमब्रवीत्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.80.22)

सुदामा जी का सुन्दर स्वागत हुआ और वे बड़े प्रसन्न हैं क्योंकि सारा संसार जिसकी पूजा करता हैं वे श्रीकृष्ण भगवान् और बुद्धि में तेज उद्धव जी और 16108 रानियों के साथ हैं। सुदामा जी ने कहा मित्र-पूजा हो गई। बहुत भूख लगी है। भगवान् ने कहा – मित्र चलो रसोई घर में भोजन तैयार है। सुदामा जी को लेकर भगवान् रसोईघर में गए। अपने हाथ से चौकी बिछाकर आसन लगाकर जल की झारी रखी। हजारों सेवक हैं। परन्तु स्वयं श्रीकृष्ण मित्र की सेवा कर रहे हैं, रुक्मिणी आदि रानियाँ सुदामा जी को भोजन कराने के लिए खड़ी हैं। 56 प्रकार की मिठाइयाँ स्वर्ण थाल में सजाकर लाई और सुदामा जी को परोस दी।

रुक्मिणी जी ने कहा, प्रभु ये आपके मित्र हैं?

भगवान् ने कहा हाँ हमारे मित्र भी हैं, ब्राह्मण भी हैं। तो रुक्मिणी बोली, आज पहली बार हमारे घर ब्राह्मण देवता आए हैं। आप इनसे कहो कि हम इन्हें बारी-बारी प्रणाम करें और ये आशीर्वाद दें।

भगवान् ने सभी की प्रार्थना सुनकर कहा कि मित्र ये सब भाभियाँ क्या कहती हैं? बोलो कन्हैया क्या कहती हैं। ये सब प्रणाम करने और आशीर्वाद देने के लिए कहती हैं। अवश्य ऐसा ही होगा। सबसे पहले रुक्मिणी जी ने प्रणाम किया आशीर्वाद मिला – सौभाग्यवती भव। पुत्रवती भवः। पति प्रिया भवः।

फिर जाम्बती ने किया उसे भी ऐसा ही कहा फिर सत्यभामा जी ने प्रणाम किया, उन्हें भी ऐसा ही कहा गया।

इस प्रकार जब 100 रानियाँ निकल गईं तो सुदामा जी ने कहा और कितनी हैं? प्रभु ने कहा अभी तो 100 ही निकली हैं। आशीर्वाद दिए चले जाओ।

मित्र – अब तो हाथ नहीं उठता। थक गए हैं, बोले मित्र आप बड़े भोले हो।

ब्राह्मणों को हाथ उठाने की आवश्यकता क्या हैं। सन्त और ब्राह्मण के मुख से जो निकले वही आशीर्वाद है, मुँह से आशीर्वाद दो। फिर रानियाँ प्रणाम कर रही। आशीर्वाद ले रही हैं। सौभाग्यशाली भवः। पति प्रियाः भवः। पुत्रवती भवः।

एक के बाद एक को आशीर्वाद देते जा रहे हैं। साँस लेने का भी समय सुदामा जी को नहीं मिला। 200 रानियाँ और निकल गई तो वाणी ने भी साथ छोड़ दिया। कहा कि कन्हैया अब कितनी हैं। मित्र अभी तो 300 ही निकली हैं। कन्हैया वाणी साथ नहीं देती। बात बिल्कुल ठीक हैं। मेरे मित्र को भोजन करने में भी देर हो रही हैं। सबको आशीर्वाद चाहिए। भगवान् ने कहा देखो री तुम सब लाइन में खड़े होकर प्रणाम करो और मित्र सबको एक साथ आशीर्वाद दे देंगे। सुदामा बोले ठीक है।

सभी ने एक साथ प्रणाम किया और आशीर्वाद ग्रहण किया। सुदामा जी ने भोजन किया। फिर भगवान् शयन कक्ष में ले गए, पलंग पर सुलाया, चादर उड़ाई और अपने शयनकक्ष की ओर चले गए।

जब संधिकाल का समय हुआ तो भगवान् ने देखा कि मित्र अभी तक सो रहे हैं। थोड़ी देर बाद वे उठे। भगवान् ने सुदामाजी को आचमन कराया। मुख प्रक्षालन किया। सुदामाजी सुंदर कक्ष में भगवान् के साथ रुक्मिणी जी के अलौकिक महल में गए। सिंहासन पर बैठे। रुक्मिणी जी पंखा कर रही हैं। सुबह से आप आए हैं। परन्तु स्नान में ध्यान में पुजन में शयन में ही सारा समय निकल गया। अभी तक वार्तालाप नहीं हुआ। भगवान् ने कहा कि–

अपि ब्रह्मन्गुरु कुलाद्भवता लब्धदक्षिणात्।
समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.80.28)

भगवान् ने पूछा मित्र बताओ तुम्हारी शादी हुई? आज भगवान् सबसे पहले पत्नी के बारे में पूछ रहे हैं। कन्हैया हमारी शादी हो गई। नाम सुशीला और व्यवहार में सुशील हैं। सब प्रकार से आनंद हैं। सुदामा जी अपनी गरीबी को छिपा रहे हैं, उनसे जिनसे कभी कुछ नहीं छिपता। अंतर्यामी से अपनी गरीबी छिपा रहे हैं। प्रेम से बोलो श्री राधे। क्या प्रभु नहीं जानते हैं? आज हम भगवान् के मंदिर में जाकर भगवान् के सामने अपनी माँग रखते हैं। पूजन भजन, फूल सब पीछे हैं। क्या भगवान् माँगने से ही देते हैं। भगवान् से माँगना सीखो। प्रेम से कहो श्री राधे।

भगवान् से उसकी वस्तु नहीं माँगना बल्कि भगवान् से भगवान् को ही माँग लेना। बिहारी जी से बिहारी जी ही माँग लेना।

बिहारी जी की वस्तु आपको प्राप्त हो जाएगी। बिहारी स्वयं ही प्राप्त हो जाएँगे। आज सुदामा जी ने अपनी गरीबी का रोना भगवान् के सामने नहीं रोया। वे बोले कन्हैया तेरी कृपा है। जब कृपा ही है ठाकुर की तो और क्या। सब आनंद है तेरी कृपा से। परन्तु भगवान् भी सुदामा जी को यह ज्ञान कराना चाहते हैं कि मित्रों आपके जीवन में गरीबी क्यों है? यह रहस्य सबको बताना चाहते हैं?

मित्र याद करो हम तुम संदीपनी ऋषि के आश्रम में पढ़ते थे। एक बार आप और हम गुरु माता की आज्ञा से लकड़ी काटने गए। एक डाल पर तुम थे और एक पर मैं। अपने गुरु की सेवा कर रहे थे।

मित्र याद है, गुरुमाता ने आपको भुने चने दिए थे और कहा था सुदामा भूख लगे तो दोनों भाई खा लेना। मित्र याद आ गई। सुदामा जी बोले, कन्हैया! हाँ याद आ गई। देखो भगवान् वार्ता तो सुदामा जी से कर रहे हैं और ध्यान है उस पोटली पर जो सुदामा जी ने छिपा रखी हैं। जो स्नान, ध्यान, शयन के पश्चात् भी चार मुट्ठी चावल की पोटली को बगल में ही छिपा रखो हैं। कैसे भेंट करूँ। कहीं मेरे कन्हैया का अपमान न हो जाए। मैं गरीब ब्राह्मण हूँ, मित्र द्वारका के राजा। इस बात को सोचकर सुदामा जी ने चावल कृष्ण को भेंट नहीं किए।

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

सुदामा जी को ऐवश्र्य की प्राप्ति

क्वाहं दरिद्रः पापीयान्क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.81.16)

कहाँ मैं गरीब ब्राह्मण कहाँ ये द्वारका के राजा। परन्तु आज द्वारिका के राजा को क्या हो गया? बातें हम से कर रहे हैं और नजर पोटली पर है। कहीं जो चावल काँख में बंद किए हैं, ये दिख तो नहीं रहे देखूँ। ज्यों सुदामा जी ने गर्दन घुमाई तो देखा कि थोड़ा सा कपड़ा दिखाई दे रहा हैं। पोटली को अंदर किया और बगल में दबा लिया। फिर भगवान् वार्तालाप करने लगे। बोले वर्षा में आप और हम वृक्ष के नीचे बैठ गए। गुरुमाता के दिए भुने चने आप खाने लगे और माँगने पर भी आपने मुझे नहीं दिया कहा कि कुछ नहीं हैं। दाँत की आवाज को तुमने कहा कि वर्षा की सर्दी से दाँत

किटकिटा रहे हैं। भगवान् वार्तालाप तो सुदामा जी से कर रहे हैं, परन्तु फिर भी नजर पोटली पर हैं। सुदामा जी ने कहा कि ये कैसे राजा हैं? हमसे बातें करते हुए भी नजर पोटली पर हैं। सुदामा जी ने कसकर बगल दबाई। तो कपड़ा फट गया और चावल गिरने लगे। श्रीकृष्ण ने सुदामा जी के बगल से चावल ले लिए। भगवान् ने कहा जिस कारण गरीबी भोग रहे हो फिर वही कार्य कर रहे हो? भगवान् ये ज्ञान कराना चाहते हैं कि जो दूसरों का अधिकार छीनता है वह सदा गरीब ही रहता हैं। अपने अधिकार का त्याग कभी मत करना। परन्तु दूसरों के अधिकार की ओर ध्यान मत देना। आज इस लीला के माध्यम से बताया श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् भगवान् ने पोटली खोलकर एक मुट्टी चावल खाए। श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि श्रीमद्भागवत में केवल एक मुट्ठी चावल का वर्णन किया हैं। सन्त–महात्मा कहते हैं कि दो मुट्ठी चावल खाए। जब दूसरी मुट्ठी चावल प्रभु खाने लगे, तीसरी मुट्ठी चावल खाने लगे तो रुक्मिणी जी के हाथ से पंखा छूट गया। वे बोली–आपने एक मुट्ठी चावल खाया तो एक लोक का राज्य दिया। दूसरी मुट्ठी चावल से दूसरे लोक का राज्य दिया। तीसरी मुट्ठी चावल खाने से तीनों लोक का राज्य सुदामा जी को दे देंगे। अपने रहने की सोची है? कहाँ रहेंगे। भगवान् इशारे से कहते हैं कि रुक्मिण ी जी ये बात शोभा नहीं दे रही हैं। याद करो संसार में यदि ब्राह्मण न होते तो तुम मेरे घर कैसे आती? पूर्व, आपने कथा सुनी है विदर्भ देश से ब्राह्मण रुक्मिणी जी की पत्रिका लेकर गया और भगवान् ने आकर पाणिग्रहण किया। आज मैं दान कर रहा हूँ तो आप मना कर रही हैं। दोनों के इशारे सुदामा जी समझ रहे हैं। परन्तु सुदामा जी की आंखों से अश्रु टपक रहे हैं। सुदामा जी ने कहा कि कृष्ण, मित्र हो तो तेरे जैसा हो। कन्हैया कहाँ मैं एक गरीब ब्राह्मण और तू मुझे इतना बड़ा सम्मान दे रहा हैं। मैंने सपने में भी नहीं सोचा था। वास्तव में तूने अपना नाम सार्थक कर दिया। लोग तुझे कहते हैं। ब्राह्मणदेव। तू वही है ब्राह्मणदेव।

नमो ब्राह्मण देवायो गो ब्राह्मण हिताय च।
जगतहिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।।

वास्तव में कन्हैया ब्राह्मदेव के साथ–साथ जगत के समस्त प्राणि का कल्याण करता हैं। हे देव, हे गोविन्द आपके चरण में ब्राह्मण सुदामा का कोटि–कोटि प्रणाम।

भगवान् कहते हैं कि मित्र तूने तो मुझे चिड़वा दिया है, परन्तु मैं तो–

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

(श्रीमद् भगवद् गीता 9.26)

भगवान् कहते हैं कि कुछ न मिले तो मेरे ऊपर फल चढ़ा दो, फूल चढ़ा दो, ये न होतो तुलसी जल चढ़ा दो, यदि ये भी न मिले तो तोयं (जल) ही चढ़ा दो। मैं तो उसी से प्रसन्न हो जाता हूँ। दो मुट्ठी चावल खाकर अलौकिक संपति सुदामा जी को प्रदान कर दी। परन्तु सुदामा जी कृष्ण की कृपा समझ नहीं सके।

"तुझे देते नहीं देखा, पर तूने झोली भर दी।"

भगवान् की कृपा जब जीव पर होती है तो भगवान् अपनी कृपा गाते नहीं। प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। मानव अपनी भलाई, जताता रहता हैं। हमने तुम्हारी भलाई की, मदद की, परन्तु जिसकी कृपा बरस रही हैं, वह परमात्मा, वह भगवान् कभी अपनी कृपा गाता नहीं।

भगवान् की कृपा अदृश्य होती है। परम् भगवान् की कृपा अलौकिक रूप से होती हैं। सुदामा जी महाराज इस बात को नहीं समझ पाए कि मेरे जीवन में कृष्ण कृपा हो चुकी हैं। वे आए तो थे दो चार दिन के लिए, परन्तु उन्हें दो-चार महीने निकल गए। दैनिक रुक्मिणी आदि रानियों को सुदामा जी महाराज भगवान् की कथाएँ सुनाते थे।

एक दिन सुदामा जी ने कृष्ण से कहा कि मित्र हमें आए बहुत दिन हो गए। अब आज्ञा दो हम चलें। प्रभु ने कहा-मित्र पधारो यानि कि जा सकते हो। सुदामा जी ने मन ही मन सोचा अरे, क्या ऐसा द्वारिका के राजा हैं? एक बार भी नहीं कहा कि दो-चार दिन और ठहर जाओ। कितना आनंद मिल रहा था। 56 भोग, प्रसाद आदि सुविधा मिल रही थी। ये तो कोरा जवाब दे दिया। अब तो जाना ही पड़ेगा। सुदामा जी ने कहा-अब हम जा रहे हैं। प्रभु ने कहा ठीक है, पधारिए। अरे ये तो समझता ही नहीं बोले मित्र हम जा रहे हैं। अपने भाभ से कुछ कहना, सुनना, लेना देना हो, तो बता दो, ऐसा न हो कि बाद में तुम्हें याद आएगा। कृष्ण ने कहा भाभी को मेरी राम-राम कह देना। अच्छा! ये द्वारका के राजा हैं। राम-राम ही कर दी। सुदामा प्रभु का स्मरण करते हुए गाँव की ओर चल दिए। मार्ग में चलते हुए विचार किया वास्तव में मेरी कुछ भी लेने की इच्छा नहीं थी। मेरी पत्नी की इच्छा थी। मैं उसे समझा दूँगा कि मुझे उसके दर्शन हो गए। मानो सब कुछ ही मिल गया।

इस प्रकार से सोचते-सोचते विचार विमर्श करते-करते जब अपने गाँव में पहुँच गया तो देखा कि जैसे महल द्वारका में थे वैसे ही महल यहाँ खड़े हैं। भैया ये कौन से राजा का नगर हैं। सुदामा जी ने लोगों से पूछा। लोग कहने लगे ब्राह्मण देव ये सुदामा नगर हैं। आज भी हमारे भारतवर्ष में जो गुजरात में पोरबंदर है यही सुदामा नगर हैं।

प्राचीन नाम उसका सुदामा नगर था। सुदामा जी को आश्चर्य हुआ यह सुदामा नगर कब बस गया?

सुदामा जी महाराज गए जहाँ उनकी कुटी थी। वहाँ जाकर देखा कि एक बहुत बड़ा महल खड़ा हैं। सुदामा जी ने कहा कि यहाँ तो हमारी झोंपड़ी भी नहीं है और यहाँ वह वृक्ष भी नहीं हैं। जिसके नीचे हम बैठा करते थे। हमारी पत्नी भी नहीं दिख रही हैं। सुदामा जी ने देखा कि महल तो बहुत सुन्दर हैं। उसकी दीवार के सहारे टिककर बैठ गया। सिर पर हाथ रखकर सुदामा बोले – स्थान तो वही है। जहाँ मेरी कुटिया थी, परन्तु अच्छे थे कृष्ण भगवान् से मिलने द्वारिका गए। परन्तु अब हमारी ब्राह्मणी कहाँ चली गई।

"सुदामा मंदिर देख डरे, यहाँ तो थी मेरी टूटी झुपड़िया। अब कंचन महल खड़े, सुदामा मंदिर देख डरे।" बैठे–बैठे वे रो रहे थे, सोच रहे थे कि "कहाँ गैहल हमारी राम मडहैया" "हमारे मडहैया की मडहैया गई, लघुवा की लघुवा गई"! सुदामा जी तो रोते–रोते सोच रहे, कुछ समझ नहीं आ रहो, वास्तव में पीछे से भगवान् के पार्षद सुशीला जी को धन–वैभव देकर चले गए। जब सुशीला जी ने सुदामा जी को देखा तो अंदर बुलाया। एक बार तो सुदामा जी पत्नी का भी भूल गए। क्योंकि सुख के दिन कुछ और होते हैं और दुख के कुछ और। सुदामा जी को देखकर सुशीला जी ने प्रसन्नता व्यक्त की, आरती उतारी, सुशीला जी के परिधान में सुदामा जी ने सुंदर साड़ी देखी, तो आश्चर्य हुआ। सुदामा जी ने सुशीला जी को संदेह की दृष्टि से देखा, पूछा, सुशीला ये धन तुझे किसने दिया। वे बोली आप द्वारका गए। वहाँ से सेवक आए और धन देकर गए। विश्वकर्मा ने भवन बनाया।

सुदामा जी ने कहा नहीं सुशीला सच बता। नहीं तो मैं तुझे घर में नहीं रखूँगा। सुशीला बोली यदि तुम्हें विश्वास नहीं है तो कन्हैया यही हैं। उनसे ही पूछ लो। द्वारकाधीश मंदिर में ले गई सुदामा जी को। सुदामा जी महाराज, मूर्ति के सामने खड़े होकर कृष्ण का आह्वान करते हैं, प्रार्थना करते हैं।

गीत

मंदिर में रहते हो भगवन,
कभी बाहर भी आया जाया करो।
मैं रोज तेरे द्वार आता हूँ
कभी तुम भी मरे घर आया करो।
मंदिर में.................................।।

मैं तेरे दर का जोगी हूँ
हुआ तेरे बिना वियोगी हूँ।
तेरी याद में आंसू बहते हैं
इतना ना मुझे तड़पाया करो।।
मैं रोज.........................
बोलिए द्वारिकाधीश भगवान् की जय।

द्वारकाधीश भगवान् प्रकट हो गए और बोले कि मित्र सुदामा जी भाभी से क्यों झगड़ा कर रहे हो? क्यों नाराज हो, मेरे प्रिय मित्र क्या ये सब धन मैं नहीं दे सकता हूँ। सुदामा जी बोले—महाराज चलते समय तो राम नाम से विदा किया, इतना धन कैसे दे सकता है?

सुदामा जी भी जानते हैं कि भगवान् क्या नहीं कर सकते? फिर भी ऐसा प्रश्न खड़ा कर दिया। भगवान् ने कहा मित्र एक बात बताओ? जब तुम मेरे पास आए तो तुम्हारे मन में कुछ लेने की इच्छा थी। सुदामा जी ने कहा—नहीं। भगवान् ने कहा मित्र ये सब धन मैंने आपको नहीं दिया, ये तो मैंने अपनी भाभी के चरणों में भेंट किया। इस धन का सदुपयोग करना। अच्छे मार्ग में लगाना। अंत में संसार के सुख भोगते हुए मेरे परम धाम को प्राप्त करोगे।

"लब्ध भाव भगवती कर्म बन्धात उच्यते।"

ये सुदामा जी ब्राह्मण का चरित्र देखिए कितना दिव्य हैं। इस सुदामा चरित्र के माध्यम से व्यक्ति को बहुत शिक्षा मिलती हैं। सुदामा जी के चरित्र से हमें क्या शिक्षा मिली—

"धीरज धर्म, मित्र और तारि"
आपथ काल परखेउ तीन चारि।"

व्यक्ति के जीवन में धैर्य बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। साधक को धीरज रखना चाहिए। जब तक भगवत्प्राप्ति नहीं होती तब तक धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए।

"सधर्मो निधनां श्रेय पर धर्मो भयावो"

व्यक्ति को अपने धर्म में ही रहकर भगवद् भक्ति की ओर बढ़ते रहना चाहिए। सुदामा जी ने ब्राह्मणत्व को नहीं छोड़ा।

सुदामा जी की पत्नी सुशीला जी आदर्श पतिव्रता नारी हैं। घर में अनेक दरिद्रता देखने को मिली, परन्तु पति के साथ कभी झगड़ा नहीं किया, बल्कि पति को

भगवत्दर्शन के लिए प्रेरित किया।

"अयं परम् लाभो – उत्तम श्लोकों दर्शनम्"

उत्तम श्लोक भगवान् को कहते हैं। उस उत्तम श्लोक को देखने की इच्छा सुशीला जी के कहने से ही प्रकट हुई। सुशीला जी पतिव्रता धर्म को रखते हुए पति को धर्म की ओर, कृष्ण की ओर प्रेरित किया, आपद काल में व्यक्ति को धर्म, मित्र और नारी की परीक्षा होती हैं। इन सभी में सुदामा, सुशीला पास हो गए। भगवान् अपने भक्तों का दोष दूर करके महिमा मंडित करते हैं। सौभाग्यवान, धनवान बना देते हैं।

यद्यपि बाल्यकाल में सुदामा जी ने गुरुकुल में अपराध किया था भगवान् को चिड़वा न देकर स्वयं खाया, ये सुदामा की बाल सुलभ चपलता है, परन्तु परिणत उम्र में वैवाहिक जीवन में सुशीला जी को प्राप्त किया। उनकी प्रेरणा से भगवत्प्राप्ति भी की। सुशीला जी को निमित्त बनाकर भगवान् ने अपने मित्र को परम ऐश्वर्य का अधिकारी बना दिया। भक्ति करने से परम्धाम प्राप्त होता हैं। यह भी बताया। कह दिया कि अन्त में तू मेरे परम धाम प्राप्त करेगा।

"लब्ध भाव भगवति – कर्मबन्धात् उच्यते।"

अथ द्वायशीतितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्ण बलराम से गोप-गोपियों की भेंट

अथ त्रयशीतितमोऽध्यायः

भगवान् की रानियों क साथ द्रौपदी की वार्ता

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

वसुदेव जी का यज्ञोत्सव

अथ पंचाशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण भगवान् द्वारा वसुदेव जी को ब्रह्मज्ञान का उपदेश तथा देवकी जी के छः पुत्रों को लौटा लाना

अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः।
सूर्योपरागः सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.82.1)

शुकदेव जी महाराज ने राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के उत्तरार्ध में सुदामा चरित का वर्णन किया। जो अत्यंत सुखदायी है। दसवे स्कंध का लक्षण बताया – निरोध। ग्यारवहें स्कंध का लक्षण बताया – मुक्ति। मन का परमात्मा में निरोध करने से जीव की मुक्ति होती है।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् ये भगवान् की अलौकिक लीलाएं हो रही हैं। कृष्ण और बलराम जी द्वारिका में निवास करते हुए अपनी सुन्दर दिव्य लीलाओं का दर्शन करा रहे हैं। एक बार सूर्य ग्रहण पड़ा, जिसमें कुरुक्षेत्र का बहुत सारा महत्व हैं। भगवान् अपने परिवार को लेकर कुरुक्षेत्र में पधारे। श्रीधाम वृन्दावन से ब्रजवासी भी आए।

हस्तिनापुर से पांडव भी आए हैं। वहाँ भगवान् ने गोपियों के वियोग जनित ताप को दूर किया और ज्ञानोपदेश दिया। श्री राधा रानी से श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र में मिले। रुक्मिणी आदि रानियों ने अपनी अपने विवाह कि दिव्य कथा कुन्ती और द्रौपदी से चर्चा की–

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धि सलिले न कर्हिचि-
ज्ञनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.84.13)

मनुष्य अपनी कुबुद्धि को सर्वोपरि मानता है, सोचता है कि तीर्थ में जाकर स्नान करने से परम कल्याण हो जाता है, परन्तु केवल तीर्थों का स्नान ही परम् प्राप्ति नहीं होता। तीर्थों में वास करने वाले साधु सन्त से तथ्यज्ञान का विचार-विमर्श न करके केवल स्नान करने से परम् कल्याण नहीं होता। श्रीमद्भागवत कहे हैं ऐसा व्यक्ति "स एव गोखरः" अर्थात ऐसा व्यक्ति गो अर्थात गाय, खर अर्थात गधा। इनकी बुद्धि से सम्पन्न व्यक्ति हैं। अतः तीर्थ सेवन का अर्थ तीर्थ के निर्मल जल में स्नान करके, निर्मल होकर साधु सन्त आदि हरि भक्तों का सत्संग करके आत्मज्ञान उपलब्धि करने का है।

श्रीशुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् श्री वसुदेव जी महाराज ने वहाँ पर सन्तो को वरण कर दिव्य यज्ञ किया। दान किया, जिस यज्ञ के प्रभाव से भगवान् के प्रति जो पुत्र भाव था। वह समाप्त होकर ब्रह्म भाव जाग्रत हुआ। श्रीकृष्ण और बलराम जी का दैनिक नियम था कि प्रातःकाल अमृत बेला में उठकर सबसे पहले अपने माता-पिता को प्रणाम करना।

एक दिन भगवान् माता–पिता को प्रणाम करने के लिए पधारे। वासुदेव–देवकी दोनों ही खड़े होकर श्रीकृष्ण बलराम जी को वंदन करने लगे।

वसुदेव जी ने कहा कि, प्रभु आप तो साक्षात् पूर्ण ब्रह्म हैं, हम आपको केवल अपना पुत्र ही समझते रहे, कितनी बड़ी भूल हमने जीवन में की। आप ब्रह्म हैं, ईश्वर हैं, भगवान् ने सोचा कि सन्तों का प्रभाव माता–पिता के जीवन में हो गया हैं। मेरे प्रति ब्रह्म भाव हो गया, परन्तु माँ के अंदर कुछ संसार की कामना शेष हैं। जब तक सम्पूर्ण संसार से कामना, वासना न मिट जाए तब तक उसे आत्म ज्ञान नहीं होता।

शुकदेव जी कहते हैं कि राजन् भगवान् ने कहा कि पिताजी देवकी माँ आपने ठीक कहा कि मैं ब्रह्म हूँ, वही ब्रह्म आपके अंदर, देवकी माँ के अंदर बैठा हैं। वही दाऊ भैया में है, पिताजी आपने तो सुन्दर ढंग से समझा दिया। जैसे एक गुरु अपने शिष्य को 'तत्वमसि' का उपदेश देता हैं। उसी प्रकार आपने मुझे सरल शब्दों में परमात्मा से परिचित कराया। ब्रह्म का स्वरूप बताया, कृपा की। देवकी ने कहा कि

"राम रामाप्रमेयात्मन्कृष्ण योगेश्वरेश्वर।"

(श्रीमद्भागवतम् 10.85.29)

हे राम, हे कृष्ण आप तो योगेश्वर हैं, सब कुछ कर सकते हैं। भगवन मैं अपने पुत्रों को देखना चाहती हूँ। जो कंस द्वारा मारे गए हैं, तो भगवान् अपनी माता की कामना को पूर्ण करने के लिए तुरंत श्रीकृष्ण सुतल लोक में राजा बलि के पास गए। राजा बलि से भगवान् देवकी के पुत्रों को लाए और अपनी माँ की झोली में डाल दिए। देवकी ने सभी पुत्रों को दूध पिलाया और सब मुक्तात्मा हो गए। भगवान् की प्रसादी को प्राप्त कर सब जीवात्मा मुक्त हो गए।

पीत्वामृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः।
नारायणाङ्गसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.85.55)

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

सुभद्रा हरण और भगवान् का मिथिलापुरी में राजा जनक और श्रुतदेव ब्राह्मण के घर एक ही साथ जाना

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

वेदस्तुति

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण के परम मित्र अर्जुन तीर्थ यात्रा के लिए भ्रमण कर रहे थे और प्रवास क्षेत्रादि भ्रमण करते-करते द्वारिका पुरी में आए। परन्तु अर्जुन का वेश त्रिदंडधारी संन्यासी का था।

अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः।
गतः प्रभा समश्रृणोन्मातुलेयीं स आत्मनः।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.86.2)

त्रिदंडधारी अर्जुन को भगवान् की कृपा से द्वारिका पुरी के जन-जन को पता था। आज श्रीकृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन ने द्वारिका पुरी में प्रवेश किया। ग्रामीण लोग सन्यासी अर्जुन को नहीं पहचान पाए। एक साधु समझकर अपना कुशल-मंगल भूत-भविष्य पूछने लगे। अर्जुन छद्मवेशी संन्यासी के रूप में सबको प्रसन्न करते हुए सबके प्रश्नों के उत्तर, सही रूप में देने लगे। बलराम जी को पता लगा कि एक महान ज्योतिषि, साधु आया हैं। "त्रिदण्डी द्वारकामगात्" सोचा कि बहन बड़ी हो गई है–सुभद्रा। इनके बारे में कुछ सोचा जाए। बड़ा तो मैं ही हूँ कान्हा तो कुछ सोचेगा नहीं। विवाह के विषय में पूछ लेना चाए। बलराम जी त्रिदंडी स्वामी वेषधारी अर्जुन को द्वारिकापुरी अपने महल में आमंत्रित किया। सुभद्रा को बुलाया, सुभद्रा को देखकर अर्जुन ने कहा विवाह शीघ्र होने वाला है चिंता न करे।

कृष्ण भी आ गए। दाऊ जी कृष्ण भगवान् के सामने संन्यासी को छोड़कर अन्य कार्य में व्यस्त हो गए। सुभद्रा से कहा साधु के भोजन का ध्यान रखना। कृष्ण भगवान् और अर्जुन आँखों आँखो में बतियाने लगे। कृष्ण ने कहा सुभद्रा तुम संन्यासी के भोजन की तैयारी करो मैं अभी आया। भगवान् कृष्ण भी चले गए। अब सुभद्रा और संन्यासी वेषधारी अर्जुन दोनों में बात होने लगी। सुभद्रा को लगा कि इन्हें कहीं देखा हैं पर बात मन से बाहर नहीं निकाली। फिर उन्हें लगा कि ये कहीं अर्जुन तो नहीं। सुभद्रा अंदर गई। भोजन तैयार किया। संन्यासी बाबा को परोसा, भोजन ग्रहण करने लगे पर सुभद्रा चतुर है कृष्ण की बहन हैं। अंदर से आवाज लगाई अर्जुन। नाम सुनते ही सशंकित हो गए, कि मेरा नाम कौन बोला। सशंकित होते ही संन्यासी का भेद खुला कि यह अर्जुन है। सुभद्रा ने कहा ये वेश क्यों धरा? वे बोले सभी द्वारिकाधीश की लीला है।

"दीनबंधु दीनानाथ–मेरी डोरी तेरे हाथ"

जो भी हो रहा कृष्ण की इच्छा से, वे जो चाहते हैं। मैं वैसा ही करता हूँ। श्रीकृष्ण ने आवाज लगाई। प्रसाद ठीक हो रहा हैं। कहा हाँ। पूर्ण परिकल्पनानुसार संन्यासी वेशधारी अर्जुन श्रीकृष्ण के रथ में सुभद्रा को बैठाकर चल दिया। किसी की भी हिम्मत रथ रोकने की नहीं हुई। बलराम जी ने क्रोध में कहा ज्योतिषी ही सुभद्रा को लेकर चला गया। वे बोले कृष्ण कुछ करो, संन्यासी सुभद्रा को ले जा रहा हैं। कान्हा ने कहा, आप ही तो उसे लाए थे। चलो अब रोकते हैं। पीछे से बोले रुक जा ठहर जा।

रास्ते में सुभद्रा ने घोड़े की लगाम पकड़ ली। अर्जुन को मुक्त कर दिया। बलराम जी ने देखा कि सुभद्रा के हाथ में लगाम है तो वह संन्यासी को लेकर जा रही है। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा दाऊ भैया मुझे भी यही दिख रहा है, ये किसी का हिम्मत है हमारे राजप्रासाद से सुभद्रा को चोरी करके ले जायें। आप देखो दाऊ भैया इसे कोई डर नहीं आपसे, सुदर्शन से नहीं डर रहा हैं। मुझे संदेह हो रहा हैं। कान्हा ने कहा दाऊ भैया आप सुभद्रा के विवाह के लिए चिंतित थे। सुभद्रा भी अर्जुन का नाम जपती थी तो अब ठीक हो गया हैं। वे रुके और बोले सन्यासी बाबा नमो नारायण। अर्जुन ने कहा दाऊ भैया जो कराता है, वही मैं करता हूँ। कन्हैया ने दाऊ भैया का क्रोध शान्त करके विवाह कराया।

कृष्णास्यासीद् द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.86.13)

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन् मिथिला में एक ब्राह्मण थे जिनका नाम था श्रुतदेव और मिथिला पुरी में ही जो राजा थे–बहुलष। ये दोनों ही कृष्ण भक्त थे। एक बार भगवान् सन्त मंडली लेकर मिथिला पहुँचे। राजा और ब्राह्मण दोनों ही भगवान् की स्तुति, प्रार्थना, दर्शन करने आए। भगवान् ने देखा कि राजा भी खड़ा है। ब्राह्मण भी खड़ा है, भगवान् ने सोचा कि यदि राजा के घर जाऊँगा तो लोग क्या कहेंगे कि भगवान् को भी इच्छा होती है, यहाँ बड़ी दक्षिण मिलेगी। मैं राजा के घर जांऊ? ये ब्राह्मण मुझे क्या देगा। परन्तु भगवान् की दृष्टि में धन का महत्त्व नहीं, परमात्मा की दृष्टि में तो भाव का महत्त्व हैं। भगवान् दोनों के मन के भाव जान गए कि दोनों के मन में प्रेम हैं। भगवान् ने दो रूप धारण किए और दोनों के घर पहुँच गए। दोनों के आर्ध्य पाद से पूजन किया। राजा ने 56 भोग लगाए। ब्राह्मण के 56 भोग थे नहीं कुटिया में ले गए बैठने के लिए चटाई दी। श्रीकृष्ण वहीं बैठ गए। भोग

लगाया दाल रोटी का जब प्रेम से श्रीकृष्ण भोग लगाने लगे तो ब्राह्मण तन्मयता से नृत्य करने लगे।

"श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारी हे नाथ नारायण वासुदेवा"

भगवान् इस लीला को प्रकट करके इस रहस्य को प्रकट किया कि मेरी दृष्टि में धन का रूप का, ऐश्वर्य का, प्रतिष्ठा का कोई महत्त्व नहीं है।

"राम ही केवल प्रेम प्यारा"

"बिना भाव नाही रिझे श्री नटवर नंद किशोर"

भगवान् के लिए बड़े-बड़े राजा महाराज मखमल के आसन बिछाया करते थे। गद्दी लगाते थे। श्रीकृष्ण उस आसन को नहीं ग्रहण करते परन्तु गोपियाँ जिस चुनर से गोबर के हाथ पोंछती उसी चुनर को कृष्ण के लिए बिछाती और भगवान् उसी पर बैठ जाते थे। प्रेम की ध्वजा है गोपांगनाएं। प्रेम की साक्षात मूर्ति है गोपिकाएं। श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् परमात्मा की दृष्टि में प्रेम का महत्व हैं। साक्षात् श्रीकृष्ण प्रेम मूर्ति है, इस प्रकार भगवान् ने राजा, ब्राह्मण दोनों पर कृपा की। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। परीक्षित उस ब्राह्मण की टोली में मैं भी था।

अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः।

(श्रीमद्भागवतम् 10.86.18)

भगवान् कभी-कभी समय-समय पर अप्राकृतिक (अलौकिक) विहार भी करते थे। भगवान् जब चाहते उस ऋतु को द्वारका में प्रकट कर लेते, अपनी रानियों को सुख प्रदान करते थे। जो 16,108 थीं।

इस प्रकार भगवान् रानियों को खुश करते हुए अपने वंश का पालन करते थे। वंश में 56 करोड़ यादव 3 करोड़, 88 लाख अध्यापक थे। भगवान् ने विचार किया कि मेरा वंश बहुत बढ़ चुका हैं। मैंने कौरव, पांडव को निमित्त बनाकर पृथ्वी का भार उतार दिया हैं। परन्तु मेरा वंश बहुत बड़ा है, भगवान् इसे भी प्रलय की ओर ले जाना चाहते हैं।, वे अपने कुल को ही संहारने के लिए साधुओं का श्राप लगवा दिया।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् 28 स्तुतियों ने भगवान् को वेद स्तुति की।

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां।
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्त भगः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.87.14)

ये पहला श्लोक है वेद की स्तुति का।
स्तुतियों ने भगवान् की स्तुति की है।

28 स्तुतियां हैं। ये, जैसे राजा को बंदी जन उठाते हैं। प्रभात काल में गान गाते हैं उठाने के लिए। इसी प्रकार से जब प्रलय हो जाती हैं। उस समय वेदों की स्तुतियां भी भगवान् का आह्वान करती है, उन्हें जगाती है। 28 स्तुतियों का वर्णन है, ये बड़ी दिव्य हैं। नरकटक छंद मे इसका सुंदर वर्णन है।

अथाष्टाशीतितमोऽध्याय:

शिवजी का संकट मोचन

देवासुरमनुष्येसु ये भजन्त्यशिवं शिवम्।
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्या: पतिं हरिम्।

(श्रीमद्भागवतम् 10.88.1)

राजा परीक्षित ने प्रश्न किया भगवान् असुर लोग धनवान होते हैं, भगवन के भक्त निर्धन होते हैं। इसका क्या तात्पर्य है, श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन्, सुनो असुर शंकर भगवान् को पूछते हैं, वे बिना सोचे वरदान देते हैं। बलवान बना देते हैं। भगवान् श्री हरि भक्तों को जल्दी धन संपति नहीं देते हैं। परीक्षा परख कर ही देते हैं। एक बार एक वृकासुर नामक असुर हुए। जिन्होंने भगवान् शंकर से वर प्राप्त किया कि जिनके सिर पर हाथ रखूं वह भस्म हो जाएं। वे बिना सोचे वर देते हैं, सो दे दिया। वृकासुर असुरी विद्या सम्पन्न है।

इत्युक्त: सोऽसुरो नूनं गौरीहरणलालस:।

(श्रीमद्भागवतम् 10.88.23)

असुर ने सोचा वर मिल गया, पर ये काम करता है या नहीं देखूं, शंकर के सिर पर ही हाथ रखने को बढ़ाया–शंकर भागे ये तो मेरे ऊपर ही उल्टा पड़ गया। हुआ ये कि, शंकर भगवान् के पास माता गौरी धरनी पर बैठी थी। उन्हें देखकर वृकासुर को लालच आ गया कि शंकर को भस्म करके, गौरी का हरण कर लूं, असुरी बुद्धि हैं। शंकर भागे।

पीछे–पीछे असुर भागे। भगवान् को पसीने आ गए। भगवान् विष्णु को लगा आज तो भगवान् शंकर अपने भोलेपन में फंसे। ब्राह्मण के, रूप में भगवान् विष्णु दोनों के मध्य में प्रकट हो गए। बोले–

शाकुनेय भवान्व्यक्तं श्रान्तः किं दूरमागतः।
क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्मायं सर्वकामधुक्।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.88.29)

भगवान् विष्णु ने कहा–हे वृकासुर कहाँ भागे जा रहे हो–विश्राम करो–अरे तुम्हें पसीना आ रहा है। किसके पीछे भाग रहे हो? वृकासुर बोला, तुम कौन हो? पीछे हटो, मुझे शंकर के सिर पर हाथ रखना है। बोले श्मशान घाट वाला शंकर। आशीर्वाद मिला है, जिसके सिर पर हाथ रखूं वह भस्म हो जाएगा। विष्णु हँसे और बोले तुम्हें इस बात पर विश्वास है, ऐसा कैसे हो सकता हैं? अपने सिर पर हाथ रखके देखो दूर से शंकर भगवान् ये सब देख रहे थे। भगवान् विष्णु ने कहा कि वृकासुर चिंता मत करो जरा सी गरमाहट होते ही हाथ हटा लेना। भगवान् की मोहिनी माया ने वृकासुर को मोहित कर दिया। अपने ही सिर पर हाथ रखा और भस्म हो गया। ये भस्म हो गए शंकर भगवान् ने प्रभु के चरण में स्तुति की। प्रभु रक्षमाम-रक्षमाम्। बोले शंकर अपने शिष्यों को भी, जो माँगे वही मत दो, थोड़ा ठोक-पीट करके दो, आगे से ऐसा नहीं करना।

वर प्राप्त करके भगवान् शंकर के शिष्य उन्मुक्त हो जाते हैं। मद्मत्त हो जाते हैं। ईश्वर की प्राप्ति में। भगवान् श्रीहरि अपने भक्तों को माँगने से भी नीति, प्रीति से ही देते हैं। झट से नहीं देते हैं।

प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण।

अथैकोननवतितमोऽध्यायः

भृगुजी के द्वारा त्रिदेवों की परीक्षा तथा भगवान् का मरे हुए ब्राह्मण बालकों को वापस लाना

अथ नवतितमोऽध्यायः

भगवान् कृष्ण के लीला विहार का वर्णन

एक बार शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् ब्रह्मा, विष्णु, महेश में कौन श्रेष्ठ है? इसकी चर्चा हुई। इसके लिए कि श्रेष्ठ कौन है? भृगु जी को सौंपा गया, वे ब्रह्मा जी के पास चलें ब्रह्माजी को अपने पुत्र भृगु को देख प्रसन्नता हुई परन्तु भृगु महाराज ब्रह्मा जी को श्रेष्ठता नहीं दे पाए। उनमें कुछ त्रुटियां देखीं। फिर भृगुजी कैलास में महेश से मिलने गए। भृगु को देख महेश्वर जी ने उठकर स्वागत किया। उनका त्रिशूल और भस्म शरीर देखकर भृगु जी ने उन्हें भी श्रेष्ठता नहीं दी। अब भृगुजी, वैकुण्ठ में भगवान् विष्णु

को मिले। उस समय भगवान् विष्णु को सोए देख लक्ष्मी जी को चरण सेवा करते देखा भृगु जी ने, विष्णु जी की छाती पर लात मारी। वे बिना क्रोधित हुए बोले–

अतीवकोमलौ तात चरणौ ते महामुने।
इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.89.10)

भगवान् ने कहा मुनिवर आप कब आए? हमारा हृदय कठोर है, आपके चरण स्पर्श से चरण में चोट लगी हो तो हम मल दें। कोमल चरण पत्थर से हृदय से टकराकर चोट खा गया होगा। इस प्रकार से भृगु जी ने देखा कि जो लात खाकर भी क्रोधित नहीं हुआ बल्कि विनम्रता दिखा रहा है तो यही श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मा–विष्णु, महेश में भगवान् विष्णु श्रेष्ठ हैं।

एक बार द्वारिका में एक ब्राह्मण आकर उच्च स्वर में आकर बताया कि हे जगदीश्वर, हे वासुदेव, ये कैसे विचार हैं? कैसे धर्म है कि वृद्ध के सामने बालक की मृत्यु होती है। यह सुनकर अर्जुन ने भगवान् के सामने प्रतिज्ञा की कि–

नाहं सङ्कर्षणो ब्रह्मन्न कृष्णः कार्ष्णिरेव च।
अहं वा अर्जुनो नाम गाण्डीवं यस्य वै धनुः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.89.32)

अर्जुन ने कहा ब्राह्मण दुखी मत होइए। मैं आपको बालकों को अवश्य वापिस लाऊँगा। आज अर्जुन ने कहा मैं संकर्षण नहीं हूँ। मै कृष्ण नहीं हूँ। मैं गांडीव धारी अर्जुन हूँ। अर्जुन ने अपने गांडीव का प्रदर्शन करते हुए मन के अहंकार को दिखाया। बालकों को लाने चल दिया। परन्तु अनेक देश, अनेक रात्रि के बाद भी पहुँच नहीं पाए। अंत में भगवान् ने स्वयं अर्जुन के व्रत की रक्षा के लिए यथा संभव प्रयास करते हुए मान रखा।

इति दशम स्कन्धोत्तरार्धः सम्पूर्णः


स्कंध-११

एकादश स्कन्ध

अथ प्रथमोऽध्याय:

यदुवंश को ऋषियों का श्राप

पिण्डरकं समगमन्मुनयो निसृष्टाः।

(श्रीमद्भागवतम् 11.1.11)

राजन् एक बार द्वारिका के निकट एक पिण्डरक नाम का स्थान था। यहाँ पर सन्त मंडली आकर श्रीकृष्ण का ध्यान कर रही थी।

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः।
कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः।।

(श्रीमद्भागवतम् 11.1.12)

पिण्डरक में ये सब सन्त नारद, वशिष्ठ, अत्रि, विश्वामित्र, असित, वामदेव, कश्यप, कर्ण, दुर्वासा, भृगु और अंगिरा बैठे हैं। भगवान् कृष्ण का ध्यान कर रहे थे। यादव बालक भी वहाँ खेल रहे हैं। बालकों ने जब उन संतों को देखा तो परिहास की इच्छा हुई। ये सन्त भगवान् का ध्यान कर रहे थे।

जाम्बती के पुत्र साम्ब को सुन्दर स्त्री रूप धारण कराके लेकर गए और कहा महाराज ये गर्भवती स्त्री है बताएं कि पुत्र होगा या पुत्री!

सन्तों ने कहा, अरे दुष्ट यादव बालकों, हमसे हंसी करते हो जाओ, इसके गर्भ से

जनयिष्यति वो मन्दा मुषलं कुलनाशनम्।

(श्रीमद्भागवतम् 11.1.16)

मुसल प्राप्त करोगे नाहि पुत्र होगा न पुत्री।
तुम्हारे कुल का नाशक होगा ये मूसल।।

देखिए कथा शिक्षा देती है कि हमें सन्तों से, गुरुजनों से परिहास नहीं करना चाहिए। उनका मजाक नहीं करना चाहिए। इस लीला के माध्यम से भगवान् बता रहे हैं कि जो अपने से बड़ों का परिहास करता है वह जीवन में दुखी हो जाता है।

आज यादव बालकों को श्राप लगा कि "मूषलं कुलनाशनम्"

जब यादव बालकों ने जाम्बवती के पुत्र के पेट के ऊपर से कपड़ा हटाया तो मूसल देखा। महाराज उग्रसेन की सभा में जाकर प्रणाम किया। सभी ने विचार किया

कि हमारे कुल का नाशक न बन जाए। प्रवास क्षेत्र में सागर के तट पर रेती में घिसवाया। केवल एक छोटी कील बाकी बची, उसे तुच्छ समझकर सागर में फेंक दिया। एक मछली ने उसे निगल लिया। मछुआरे ने मछली पकड़ी। पेट चीरा तो कील निकालकर बीच मार्ग में फेंक दी। एक जरा नामक वैद्य अपने तीर में नुकीली वस्तु ढूंढ रहा था तुरंत उसने उसे तीर में लगा लिया। यानि भगवान् के कुल के नाश के लिए बीज बो दिया।

प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्णा।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

वसुदेव जी के पास नारद जी का आना और उन्हें राजा जनक तथा नौ योगीश्वरों का संवाद सुनाना

गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरुद्वह।
अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः।

(श्रीमद्भागवतम् 11.2.1)

एक बार नारद जी महाराज श्री भगवान् का स्मरण करते हुए द्वारिका में पधारे। अक्सर नारद जी द्वारिका में निवास करते थे और भगवान् की गृहस्थ लीला का दर्शन करते थे। आज नारद जी द्वारिका में आए और वसुदेव जी के महल में गए। श्री वसुदेव जी ने नारद जी का पूजन करके प्रार्थना की, कि आप तो पूर्ण सन्त हैं, ये बताइए मानव के लिए परमश्रेय मार्ग क्या है? आप थोड़ा प्रकाश डालें, नारद जी ने कहा कि वसुदेव जी आपको इस सम्बंध में सुन्दर कथा सुनाते हैं।

ऋषभ देव भगवान् के सौ पुत्र हुए। जिनमे 81 कर्म काण्डी गृही बने, नष्ठिक ब्रह्मचारी हुए 9 योगेश्वर कहलाए। कबी, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविहोत्र, द्रुमिल, चमस, कारभाजन।

जिन्होंने राजा निमि से सत्संग किया। एक बार राजा के महल में गए। राजा ने इनका बड़ा स्वागत किया। चरण धोए। चरणामृत लिया और प्रार्थना की कि–

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्।

(श्रीमद्भागवतम् 11.2.29)

राजा ने कहा कि महाराज मानव शरीर दुर्लभ है, साथ–साथ क्षणभंगुर भी हैं। सन्त का दर्शन अति दुर्लभ हैं। "एक घड़ी आधी घड़ी, आधी की पुनि आधि,

तुलसी संगत साधु की, मिटे कोटि अपराध"

"वैकुण्ठ प्रिय दर्शनम्"

राजा निमि कहते हैं, भगवन् आप साक्षात् ब्रह्म हैं, मैं आपसे प्रश्न करता हूँ। पहला प्रश्न–

1. भागवत् धर्म क्या है?
2. भक्त का स्वरूप क्या है?
3. माया का स्वरूप क्या है?
4. माया से तरने का उपाय क्या है?
5. ब्रह्म के स्वरूप के सम्बंध में।
6. कर्म सम्बंधी प्रश्न किया?
7. अवतार सम्बंधी?
8. भक्ति की प्राप्ति कैसे हो?
9. युग धर्म क्या है?

1. पहले प्रश्न का उत्तर कवी नामक योगेश्वर ने कहा, कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद्यत्सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयेत्तत्।

(श्रीमद्भागवतम् 11.2.36)

किसे भागवत् धर्म कहते हैं? जो व्यक्ति भागवत् कर्म करते हैं, जो व्यक्ति अपना मन, बुद्धि, वाणी, शरीर, अपने स्वभाव के अनुसार कर्म करे और अंत में अपना सम्पूर्ण कर्म सात्विक वृत्ति के द्वारा करते हुए "श्रीकृष्णाय समर्पणं अस्तु" जो परमात्मा की प्रसन्नता के लिए हर कर्म करते हैं, उसे कहते हैं। भागवत् कर्म। अन्त में यही भागवत् धर्म बन जाता हैं। यही मोक्ष का मार्ग है। प्रेम से कहो–जय श्रीकृष्ण।

इस सम्बंध में महापुरुष एक दृष्टांत देते हैं। एक माता जिसके पास धन, प्रतिष्ठा नहीं थी। शरीर असमर्थ था। गाँव में सन्त के आने पर दर्शन करने गई और पूछा स्वामी जी आप मुझे कोई उपाय बताएँ, जिससे भगवान् प्रसन्न हों। सन्त ने कहा, माता दान करो। भगवान् प्रसन्न हो जाएँगे। माता ने कहा इतना धन नहीं है, तो सत्संग में जाओ। माता ने कहा शरीर में इतनी शक्ति नहीं हैं। सन्त ने कहा जो भी संसार में

कार्य करे "हरि अर्पणम्" कह देना। क्या करोगी? 'हरि अर्पणम्', बस भगवान् प्रसन्न हो जाएँगे। सन्त चले गए। कोई भी काम घर का बाहर का करती 'हरि अर्पणम्' कहती। श्रीकृष्ण अर्पणम् अस्तु यानि अपना हर अच्छा बुरा कर्म परमात्मा को अर्पित कर देती हैं। 12 वर्ष हो गए माता को ऐसा करते-करते।

एक दिन प्रातःकाल सफाई करते हुए कूड़ा घर के बाहर फेंकते हुए कहा हरि अर्पणम्। नारद जी वहीं थे। उन्होंने देखा कि माता कूड़ा भेंट कर रही है, भगवान् को। चपत गाल पर लगाई माता के। पर वह माता के गाल पर नहीं वैकुण्ठ में भगवान् के गाल पर लगा। भगवान् विलख कर बोले जो भक्त मुझे सम्पूर्ण कर्म अर्पित कर रहा है। भागवत कर्म हैं। मन, बुद्धि, वाणी, कर्म, सामर्थ से अपना सब कर्म भगवान् को अर्पित करते हैं। वह तुम्हारा भागवत कर्म हैं। यही अंत में भागवत धर्म बन जाता है।

2. 'हरि' दूसरा प्रश्न किया भक्त का स्वरूप क्या है? इस सम्बंध में भक्त का व्यवहार, स्वरूप, लक्षण बता रहे हैं। हरि नाम के योगेश्वर कहते हैं। कि "हरति पापानि इति हरि" हरि कहते हैं कि जो एक बार हरि नाम का उच्चारण करता है। उसके समस्त पाप दूर हो जाते हैं। 'हरि' का अर्थ है 'समस्त पाप हरण करने वाले' हरि माने भगवान् हरि बोलिए हरि भगवान् की जय, हरि नामक योगेश्वर कहते है। कि राजा–

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवत्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः।

(श्रीमद्भागवतम् 11.2.45)

राजा 3 प्रकार के भक्त होते हैं। प्रथम जो भक्त हैं उत्तम भक्त, वे "भक्त भगवत भावमात्मनः" यानि प्रत्येक जीव में वे भगवान् का दर्शन करते हैं, जैसे एक भक्त माल की कथा, सुनीए।

एक महाराष्ट्र के सन्त हुए, जिनका नाम था एकनाथ जी महाराज। इनमें कृष्ण प्रेम था। ये गंगोत्री गए और वहाँ से गंगाजल लेकर शिव को चढ़ाने जा रहे थे रामेश्वरम्। कीर्तन करते हुए मित्र मंडली के साथ जा रहे थे।

कीर्तन

राधे गोपाल गिरिधर गोपाल
गोपी गोपाला गिरिधर गोपाला
राधे....................................
गोपी...................................

मार्ग में रेगिस्तान पड़ा यहाँ पर जल की समस्या थी। एक व्यापारी व्यापार के लिए जा रहा था। जिसने गधों पर सामान लाद रखा था। अपना व्यापार था। एक गधा प्यास से तड़पने लगा। उस व्यापारी ने देखा कि एक गधा प्यासा हैं। जल प्याऊ अपना पात्र लेकर जल ढूँढने गया। पर जल नहीं मिला। उसने सोचा ये मर जाएगा कहाँ से पानी लाऊँ? उसका सामान उतार दूसरे गधों पर डाल दिया? प्यासे गधे को छोड़कर चला गया। कोई दया नहीं उस व्यापारी में।

इधर पीछे से एकनाथ जी महाराज कीर्तन करते आ रहे थे। उन्होंने देखा कि वह एक गधा प्यासा हैं। कीर्तन बंद करके तुरंत दौड़ कर गधे के सिर को गोद में रखकर कांवड़ खोलकर गंगा जल पिलाने लगे। मित्रों ने कहा, कितने कष्ट से हम ये गंगाजल लाए हैं। तुम ऐसा क्यों कर रहे हो? तेरा तो विवेक भ्रष्ट हो चुका हैं। सारे सन्त उन्हें छोड़कर चले गए। एकनाथ जी ने किसी की बात नहीं सुनी और गधे को गंगाजल पिलाते रहें। जैसे ही कंठ से नीचे गंगाजल पहुँचा तो वह जीवित हो गया। एकनाथ जी को गधे की आँख में साक्षात् शिव के दर्शन होने लगे। बोलिए भगवान् शिव की जय। शिव ने कहा कि एकनाथ तुमने मुझे गधा योनि में भी पहचान लिया। भक्त कहते हैं कि प्रभु आप कहाँ नहीं हैं?

"हरि व्यापक सर्वत्र समाना प्रेम से प्रकट होए मैं जाना"

जीव मात्र में जो परमात्मा का दर्शन करे और उस परमात्मा में जीव को देखे ये उत्तम कोटि के भक्त हैं।

मध्यम कोटि के भक्त भेद भाव रखते हैं, ईश्वर के चरणों में प्रेम होता हैं। भक्तो में नहीं। शत्रु की उपेक्षा करता हैं। मूर्खों पर कृपा करता हैं। भगवान् का भेद दर्शी मध्यम कोटि का भक्त हैं। जो आरंभ कोटि के भक्त मूर्ति पूजक होते हैं, न ब्राह्मण में, न गाय में, न सन्त में, न सद्‌गुरु में उसकी आस्था होती हैं। वह पहली सीढ़ी में खड़ा है। राजा ने प्रश्न किया कि-

अथ तृतीयोऽध्यायः

माया, माया से पार होने के उपाय तथा ब्रह्म और कर्म योग का निरूपण

परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम्।
मायां वेदितुमिच्छामो भगवन्तो ब्रुवन्तु नः।।
(श्रीमद्‌भागवतम् 11.3.1)

महाराज, लोग कहते हैं कि भगवान् की माया, माया, माया। ये माया क्या है बताइए। कहते हैं, राजन् ये माया रूप हीन पदार्थ हैं। माया का कोई स्वरूप नहीं, परन्तु फिर भी इसके 3 रूप भागवत् में बताए हैं–

महा लक्ष्मी

महा सरस्वती

महा काली

ये माया के 3 स्वरूप हैं, जिनके द्वारा भगवान् जन्म से प्रलय आदि कराते हैं। माया का आश्रय देकर भगवान् जन्म करते हैं, पालन करते हैं और प्रलय की ओर ले जाते हैं।

इस माया के तरने का उपाय क्या है? उपाय है जीवन में आपपर तीन कृपा हो जाए।

1. गुरु कृपा
2. शास्त्र कृपा
3. भगत् कृपा

ये भागवत कहती है जिन व्यक्ति पर ये तीन कृपा हो जाएँ, वे माया से तर जाएँ।

हमारी गुरु चरणों में सच्ची निष्ठा होनी चाहिए। गुरु कृपा के बाद ही शास्त्र कृपा होती हैं। शास्त्र कृपा को और भागवत कृपा को यदि व्यक्ति चाहे, तो गुरु कृपा होनी चाहिए।

ये तीनों जिसके जीवन में हों वह माया को जीत लेता है।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

भगवान् के अवतारों का वर्णन

अथ पंचमोऽध्यायः

भक्तिहीन पुरुषों की गति और भगवान् की पूजा विधि का वर्णन

आगे प्रश्न किया कर्म के सम्बंध में। कितने प्रकार के कर्म हैं? ब्रह्म के स्वरूप के बारे में, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त, तुरी चार अवस्था में जन्म, स्थित, प्रलय जिसके द्वारा है जिसका किसी काल में अभाव नहीं, जो त्रिकाल सत्य है, कर्म के बारे में प्रश्न किया, तो 3 प्रकार के कर्म बताइए। कर्म, विकर्म, अकर्म।

आगे प्रश्न किया भगवान् के अवतार के सम्बंध में। देखिए कौन-कौन से भगवान् के अवतार हुए। भागवत में बताया। पहले भगवान् के अवतार हुए 4 रूप में।

1. सनक, सनन्द, सनातन, सनतकुमार।

2. वराह

3. नारद

4. नर नारायण

5. कपिल – जिन्होंने शंख प्रकट किया

6. दत्तात्रेय

7. आकूति के गर्भ से यज्ञावतार हुआ

8. मेरुदेव्य, ऋषभ देव

9. पृथु अवतार

10. मोहिनी अवतार

11. कमठ, कूर्म अवतार

12. धन्वन्तरि अवतार

13. मोहिनी अवतार

14. नरसिंह अवतार

15. वामनावतार

16. परशुराम अवतार

17. वेदव्यास के रूप में भगवान् का साहित्यिक अवतार

18. भगवान् राम

19 श्री बलराम जी महाराज

20. श्रीकृष्ण

21. भगवान् का हरि अवतार

22. हयग्रीव

23. बुद्ध अवतार

24. कल्कि अवतार

ये 24 अवतार भगवान् के हैं। कल्कि, कलि काल के अंतिम चरण में भगवान् विष्णु यश ब्राह्मण के घर अवतार लेंगे और धर्म की स्थापना करेंगे। यानि ये भगवान्

के 24 अवतार में अंतिम अवतार हैं।

आगे युग धर्म के बारे में प्रश्न किया कि इस युग में परमात्मा की किस प्रकार प्रप्ति होती हैं। चार युगों में परमात्मा की प्राप्ति के चार मार्ग हैं। हम किस युग में है–कलयुग में।

सत्युग में परमात्मा की प्राप्ति का उपाय-ध्यान।
त्रेतायुग में परमात्मा की प्राप्ति का उपाय-यज्ञ।
द्वापर युग में परमात्मा की प्राप्ति का उपाय-सेवा।

कलि काल में परमात्मा की प्राप्ति का एक मात्र उपाय नाम संकीर्तन

गीता में भगवान् कहते हैं। "यज्ञानां जप यज्ञस्मि" आप यज्ञ करेंगे तो सामग्री चाहिए। यज्ञ में बहुत समय, साधन, धन चाहिए। परन्तु कलि काल में व्यक्ति के पास समय, साधन, धन नहीं होता। अतः अपनी प्राप्ति का कलिकाल में भगवान् ने गीता में सरल, सहज उपाय बताया है भगवान् कहते हैं। "कलौ केशव कीर्तनाद्" प्रभु का नाम जप का कोई समय नहीं हैं। संकीर्तन का कोई समय नहीं होता। जैसे व्यक्ति को प्यास लगे तो पानी पीता हैं। भूख लगे तो भोजन चाहिए। उसी तरह जब ईश्वर का स्मरण आए उसे स्मरण कीजिए। सबसे बड़ा यज्ञ इस कलि काल में मेरा नाम संकीर्तन हैं। ध्यान और यज्ञ को नहीं कहा, सिर्फ संकीर्तन को कहा है। देखिए लगभग 530 वर्ष पहले श्री चैतन्य महाप्रभु, मीराबाई जी, परम रसिक शिरोमणि स्वामी हरि दास जी महाराज आदि अनेक सन्त महापुरुष हुए। उन्होंने ठोस ब्रह्म को सरल बना दिया। भगवत प्राप्ति का एक सरल मार्ग प्रकट कर दिया। आचार्यों ने हरिदास के दोहा पद लिखा है–

"हरि भज-हरिभज, छानमान नरतन को।"
मत बनछे मत बनछरे तिल तिल धन को।।

आन माँगे आगे आवेगो जो, पल लागे पल को, कहे श्री हरिदास मीत, जो आवे किँउ धन है आप उनको। हरि भज, हरि भज, छान मान नरतन को इस मानव तन का अभिमान मत कर। प्रभु का नाम लेने का कोई समय नहीं। जीव, हरि भज, हरिभज, हरिभज, स्नान करके ही नाम लूँ, नहीं कभी भी प्रभु का नाम लो। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण। सुमिरन करते रहो।

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा कि–

"चेतो दर्पण मार्जनम् भव महा दावाग्नि निर्वापनम्,
श्रेय कौरव चन्द्रिका वितरणम् विद्या वधू जीवनम्।
आनंद अंबुधि वर्धनम् प्रतिपदम् पूर्णामतृ, अस्वादनं
सर्वात्मा स्नपनम् परम विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्।।
परम विजमते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्।"

जो इस कलि में भगवान् का नाम संकीर्तन करते हैं। वह परम विजय लाभ प्राप्त करते हैं, देखिए जो संकीर्तन करते हैं। उस नर्तकी माया को भगा देते हैं। जो हमें मोह, वासना, अज्ञान में डाल देती हैं। जो कीर्तन करते हैं, वे माया से सदा बचे रहते हैं। सुरक्षित रहते हैं।

संकीर्तन

गोविन्द राधे माधव गोपाल राधे माधव।
गोविन्द राधे माधव गोपाल राधे माधव।

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः।।

(श्रीमद्भागवतम् 11.5.32)

शुकदेव जी महाराज कहते हैं। राजन्, राजा निमि का अंतिम योगेश्वर ने कहा–कृतेयत् ध्यायतो विष्णु, त्रेतायां यजतो मखै

द्वापरे परि चर्यायां – कलै तद् हरि कीर्तनाद्।।

इस कलिकाल में भगवत प्राप्ति का मार्ग केवल संकीर्तन हैं। समय का बंधन नहीं। जब जैसे चाहो संकीर्तन करो। राधा रमन, राधा रमन" करते रहो। भगवान् अनेक युगों में अनेक वर्णों में आए। कभी रक्त, श्वेत, कृष्ण वर्ण। द्वापर में कृष्ण वर्ण में आए। पार्षदों को संग में लाए। कलि में वे चैतन्य महाप्रभु के रूप में संकीर्तन यज्ञ के लिए आए। जो विवेकी पुरुष कलियुग में नाम संकीर्तन करते हैं उनका परम लाभ होता है। इस प्रकार से 9 योगेश्वरों का पूजन राजा निमि ने किया। श्रीनारद जी ने वसुदेव को यह कथा सुनाई। नारद जी ने कहा कि वसुदेव जी अपने जीवन में 2 बातों को ख्याल रखना प्रथम काल, का दूसरा कृष्ण का। ये दो बातें कहकर नारद जी चले गए। भगवान् के प्रति वसुदेव जी का ब्रह्म भाव जाग्रत हुआ। शुकदेव जी महाराज कथा बढ़ाते हुए कहते हैं कि–

अथ षष्ठोऽध्यायः

देवताओं को भगवान् के स्वधाम सिधारने के लिए प्रार्थना तथा यादवों को प्रभास क्षेत्र जाने की तैयारी करते देख उद्धव का भगवान् के पास जाना

अथ ब्रह्मात्मजै देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात्।
भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः।।

(श्रीमद्भागवतम् 11.6.1)

राजन एक बार ब्रह्मादिक सभी देवता भगवान् की स्तुति करने के लिए द्वारका पधारे। देवताओं ने भगवान् की स्तुति की। ब्रह्मा जी ने कहा कि आपको अवतार लिए 125 वर्ष हो गए हैं। जिस कारण अवतार हुआ वह पूरा हो गया। वह है, धर्म की स्थापना। अब आप अपने परम धाम पधारें। ब्रह्मा जी से कृष्ण ने कहा, मुझे याद है मैं शीघ्र ही गमन करूँगा। ऐसा सुनकर देवता अपने लोक में चले गए।

अथ सप्तमोऽध्यायः

अवधूतोपाख्यान पृथ्वी से लेकर कबूतर तक आठ गुरुओं की कथा

अथ अष्टमोऽध्यायः

अवधूतोपाख्यान अजगर से लेकर पिंगला तक नौ गुरुओं की कथा

एक दिन एकांत में श्रीकृष्ण द्वारिका में थे, उद्धवजी ने प्रणाम करके प्रार्थना किया कि–

योगेश योगविन्यास योगात्मन्योगसम्भव।
निः श्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः।।

(श्रीमद्भागवतम् 11.7.14)

कि हे योग संभव, हे योगात्मन् श्रीकृष्ण

"स्त्यागः संन्यासलक्षणः"

जिसका त्याग संन्यास लक्षण है, ऐसे आप संन्यास का वर्णन करें। मुझे समझाएं कि "त्यागः संन्यास लक्षणः"

भगवान् कृष्ण ने कहा कि दत्तात्रेय के 24 गुरुओं के वर्णन सुनो। किसी ने पूछा कि क्या गुरु 24 होते हैं? नहीं गुरु एक होता हैं। एक दीक्षा गुरु, बाकी शिक्षा गुरु। ये शिक्षा गुरु अनेक हो सकते हैं, जब विद्यालय में अध्यापक पढ़ाते हैं। हम उन्हें गुरुजी कहते हैं, किसी व्यक्ति से अच्छी बातें सुने तो उसे भी गुरु कहते हैं। कोई हुनर सीखने को मिले तो उसे भी गुरु कहते हैं। एक होता है, दीक्षा गुरु और एकाधिक शिक्षा– गुरु। दीक्षा गुरु वह होता है जो हमें कान में मन्त्र दीक्षा देता है, यह वैष्णव सिद्धांत के अनुसार। शुकदेव जी महाराज कहते हैं, राजन् दत्तात्रेय महाराज ने इन 24 गुरुओं का वर्णन 24 श्लोकों में राजा यदु के लिए कहा।

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः।
कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद्गजः।।
मधुहा हरिणो मीनः पिङ्गला कुररोऽर्भकः
कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत्।।

(श्रीमद्भागवतम् 11.7.33, 34)

देखिए कितना सुन्दर गुरु बनाया है दत्तात्रेय जी महाराज ने। सबसे प्रथम गुरु बनाया पृथ्वी को। पृथ्वी को गुरु धारण करके शिक्षा मिलती है कि एक साधक को अपने जीवन में शिक्षा लेनी चाहिए कि साधना मार्ग पर हम कैसे बढ़ें। यह भागवत् शिक्षा दे रही है। इस प्रसंग से समझिए कि किसी ने हमसे पूछा कि महाराज कैसे हमें साधना प्रारंभ करनी चाहिए। तो साधक के जीवन में दो बातें आवश्यक हैं। पहली सहनशीलता यानि क्षमा, दूसरा परोपकार।

ये दो बातें यदि साधक के जीवन में नहीं हैं तो जीवन में वह लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकते। देखिए पृथ्वी हमें ये दो बातों की शिक्षा दे रही है, पृथ्वी पर हम जगह–जगह गड्ढे खोदते हैं, मल मूत्र करते हैं, परन्तु पृथ्वी माता सभी के अपराधों को क्षमा कर देती हैं। कितना धैर्य, क्षमा शक्ति है पृथ्वी में। जिसे हम काटते हैं। वही वृक्ष हमें फल, छाया देता है। कितना परोपकारी है वह। इसी प्रकार यदि साधक के जीवन मे सन्त के जीवन में ये दो बातें हैं, तो वही लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। साधक के लिए पृथ्वी एक गुरु है।

दूसरा गुरु है वायु–वायु भी एक गुरु है। दो प्रकार की वायु होती है। अंतर वायु, बाह्य वायु। बाह्य वायु हमें शिक्षा देती है निर्लिप्तता का। यानि अनासक्ति। जब सुगंध वाली जगह पर वायु आती है तो हम कहते हैं कितनी दुर्गंध हैं। जब सुगंध वाली जगह पर वायु चली जाती है, तो हम कहते हैं कितनी दुर्गंध आ रही है, परन्तु हमेशा

के लिए न कोई दुर्गंध रहती है न सुगंध। दत्तात्रेय महाराज कहते हैं कि अनासक्त भाव से जीवन व्यतीत करना चाहिए।

जो अंतर वायु है, ये हमें सिखाती है कि केवल इन्द्रियों की तृप्ति के लिए व्यक्ति आहार ग्रहण करता है। प्राण की रक्षार्थ साधक को आहार लेना चाहिए क्योंकि इन्द्रिय कभी तृप्त होने वाली नहीं है। जैसे कोई अग्नि में घृत डाले और सोचे कि अग्नि शान्त हो जाए किन्तु यह सोचना सर्वथा भूल है। इसी प्रकार अंतर वायु शिक्षा प्रदान करती है।

तीसरा गुरु आकाश – आकाश हमें असंगता की शिक्षा–प्रदान करता है। आकाश न कोई छू सकता है, न पकड़ सकता है, फिर भी सब आकाश में ही रहते हैं, आकाश सर्वदा असंगतता की शिक्षा प्रदान करता है।

चौथा गुरु जल – जल से शुद्धता, पवित्रता की शिक्षा प्राप्त होती हैं, यानि साधक का जीवन पवित्र होना चाहिए। देखिए जल के दो गुण हैं। प्रथम मिठास, दूसरा शीतलता। साधक के जीवन में भी ये दो गुण होने चाहिए।

"ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोए।
औरन को सीतल करे आपहु सीतल होए।।"

साधक का जीवन शुद्ध, पवित्र होना चाहिए।

पाँचवा गुरु अग्नि – अग्नि होती हैं सर्वभक्षी। अग्नि में जो भी डालेंगे भस्म हो जाएगा। इसी प्रकार सत्संग से एक अग्नि प्राप्त होती है, वह कौन–सी अग्नि है? वह है "बिनु सत्संग विमुख न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई" ये विवेक रूपी अग्नि सत्संग से ही प्राप्त होती हैं। जब विवेक जीवन में आ जाता है, तो सब अज्ञान नष्ट हो जाता है।

छठा गुरु चन्द्रमा – से शिक्षा मिलती है कि आत्मा अविनाशी और देह नाशवान है, देखना कभी चन्द्रमा को यह 15 दिन घटता है 15 दिन बढ़ता हैं। ये ठीक है? नहीं हैं। ये सत्यता नहीं है चन्द्रमा कभी घटता बढ़ता नहीं हैं। चन्द्रमा की कलायें घटती, बढ़ती हैं। इस प्रकार आत्मा नित्य है, देह जन्मती है मरती है।

सातवाँ गुरु सूर्य भगवान् – सूर्य भगवान् शिक्षा देते हैं कि आत्मा का भेद देहादि उपाधियों के द्वारा। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जब पात्र में पड़ता है तो कहते हैं। यहाँ भी सूर्य है वहाँ भी सूर्य हैं। परन्तु सूर्य एक है इसी प्रकार आत्मा भी एक है चाहे वह बालक हो या वृद्ध। युवक हो या प्रौढ़ हो। हर जीव में एक ही आत्मा

है। परन्तु आत्मा का भेद हमें क्यों होता है? इसलिए कि देहादि उपाधियों के कारण।

आठवाँ गुरु कपोत – एक कपोत कपोती का जोड़ा वन में रहता था जो तन मन से एक थे। बच्चे भी हुए। बच्चों के प्रति वे आसक्त थे। एक दिन वे दोनों दाना चुगने गए। पीछे से एक बहेलिया आया उसने जाल फैला कर दाना डाला, बच्चे उसमें फँस गए। तड़प रहे हैं, छटपटा रहे हैं, कपोत कपोतिनी ने देखा कि बच्चे जाल में हैं, आसक्ति वश वह भी जाल में जाकर फँस गई। कपोत ने सोचा कि मैं क्या करूँ वह भी जाल में गिर गया। एक गृहस्थ को शिक्षा लेनी चाहिए कि गृहस्थाश्रम में व्यक्ति रहे यह सर्वश्रेष्ठ आश्रम हैं। इसी में सन्त, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ भी आता हैं। तीनों की सेवा का मौका मिलता हैं। परन्तु गृहस्थाश्रम में रहकर आसक्ती त्यागकर निरासक्त भाव से कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए। अवसर में देखना चाहिए कि कहीं हमारी आसक्ति तो नहीं हो रही है। कपोत की तरह बच्चों में उम्र घटती है, मोह बढ़ता है, ममता बढ़ती है।

ममता तू न गई मेरे मन से पाके किस जनम के साथी।
जोत गए नैनन ते ममता तू न गई मेरे मन से।।

नौवा गुरु अजगर – सर्पों को गुरु धारण किया दत्तात्रेय जी महाराज ने। सन्तों का भाव है–

"अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम,
दास मलूका कह गए सबके दाता राम।"

एक बार अजगर शिकार करके महीनों तक भक्षण करता हैं। एक साधक के लिए भगवत प्राप्ति के लिए उनके जीवन में सन्तोष होना चाहिए।

दसवां गुरु समुद्र – समुद्र से गंभीरता की शिक्षा मिलती हैं। समुद्र जितना गंभीर हैं, उतना ही सन्त को गंभीर होना चाहिए।

ग्यारहवें स्थान पर – पाँच विषयों को गुरु धारण किया। रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गंध – रूप की शिक्षा मिलती हैं। पतंग से, जो अग्नि को देखकर उसी में जाकर जल जाता हैं। उसी प्रकार साधक को अपने रूप को सजाने में ही नहीं लगे रहना चाहिए। नहीं तो पतंगे की तरह पतन हो जाता हैं। फिर रसना की शिक्षा देती है मछली स्वाद के चक्कर में काँटे में फँस जाती हैं। प्रेम से कहो जय श्रीकृष्ण। जैसे मछली काँटे में फँस जाती हैं। कहीं तुम्हारे जीवन में स्वाद तो नहीं

हैं। जो मिले उसे ठाकुर जी का प्रसाद समझकर ग्रहण करोगे तो जीवन में खुशी मिलेगी।

"प्रसादेस्तु प्रसन्नता"

यदि स्वाद समझा तो रोना भी पड़ सकता है।

इसी प्रकार 12वें स्थान पर भ्रमर को गुरु माना है जो विवेकी पुरुष हैं। अनेक शास्त्रों का सार ग्रहण करते हैं, जैसे अनेक पुष्पों का मधु भ्रमर ग्रहण करता है।

13वें स्थान पर हिरन को दत्तात्रेय जी ने गुरु कहा है। बहेलिए की मधुर ध्वनि सुनकर हिरन जाल में फँस जाता हैं। देखिए एक शब्द बाहर भी है। एक शब्द अंदर भी है। बाहरी शब्द इस दुनिया का है जो फिल्मी गीतों में नाचते हैं। सुनते हैं। अपितु उस गीत से आप विषयों की ओर जाएँगे और जीवन का पतन हो जाएगा। एक संकीर्तन नाम है जिसे आप गुनगुनाएँगे, नृत्य करेंगे तो आप आनंदित होंगे। भगवान् की वाणी है कि–

"नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनाम् हृदयेना वा।
मद्भक्ता यत्रगायन्ती तत्र तिष्ठामि नारद:।।"

भगवान् कहते हैं ना ही योगियों के हृदय में, ना ही वैकुण्ठ में, मैं तो जहाँ भक्त पुकारते हैं वही रहता हूँ। एक शब्द बाहर भी है और भीतर भी है, ये शब्द परमात्मा से जोड़ रहा है, और वे शब्द आपको विषयों की ओर, संसार के भोगों की ओर ले जा रहा है।

14वें स्थान पर हाथी – हाथी से स्पर्श की शिक्षा प्राप्त हुई, कैसे महावत हाथी को पकड़ते हैं। बड़ा गड्ढा खोदकर काठ की हथीनी बनाकर वहाँ खड़ा कर देते हैं। उस गड्ढ़े को घास से ढक देते हैं। दूर से काष्ठ हाथी को देख मिलने की इच्छा होती हैं। पास आने पर गड्ढे में गिर जाता है। इसी प्रकार साधक को, सन्त को पैर से भी स्त्री का स्पर्श नहीं करना चाहिए।

15वें स्थान – दत्तात्रेय महाराज ने गुरु बनाया मधुभर्त्ता को आपने देखा होगा कि कामर डाल कर जाता है और सारा मधु ले जाता है छत्ता तोड़कर। इसी प्रकार जो लोग पाप की कमाई करते हैं दुष्ट पापी ही उसके सारे धन को हर लेता है।

16, दत्तात्रेय महाराज ने कहा राजन् हमने एक गणिका को गुरु बनाया। जो विदेहनगरी मिथिला में रहती थी। एक बार पिंगला नामनी गणिका अपना सुन्दर शृंगार करके कोठे पर बैठी थी। परन्तु उस दिन पूरी रात्रि व्यतीत होने पर भी कोई

नहीं आया। सुबह हो गई, तो उसने एक गीत गाया। भागवत् में ये पिंगला कहती है कि–

गीतम्

अहो मे मोहविततिं पश्यताविजितात्मनः।
या कान्तादसतः कामं कामये येन बालिशा।।
सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय।
अकामदं दुःखभयादिशोक–मोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा।।

(श्रीमद्भागवतम् 11.8.30, 31)

पिंगला ने गीत गाया भावुकता से, देखो मेरे मोह को, धिक्कार है मुझे कि मैंने कितनी रात्रि व्यर्थ की चिंता में गुजार दी, परन्तु संसार के लोगों से मुझे क्या मिला, केवल अपमान और तुच्छ इन्द्रिय सुख के अलावा कुछ नहीं मिला। यदि एक रात्रि श्रीकृष्ण के लिए गुजार देती, तो गोविन्द की कृपा होती, गोविन्द का दर्शन मिल जाता,

"सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं"

जो मेरा नित्य पति है, मैंने उसे त्याग कर अनित्य की कामना की। जिनका कोई अस्तित्व ही नहीं, ऐसे लोगों की मैंने जीवन में कामना की। पिंगला नामनी गणिका ने अपने जीवन का निष्कर्ष निकाल लिया। उसने कहा कि–

"आशा हि परमं दुःखमं नैराश्यं परमं सुखम्।
यथा सञ्छिद्य कान्ताशां, सुखं सुष्वाप पिङ्गला।।"

(श्रीमद्भागवतम् 11.8.44)

पिंगला ने कहा कि व्यक्ति संसार में यदि अपना कल्याण चाहे तो "आशा ही परम् दुखम्" संसार के प्रति कभी आशा नहीं रखना। संसार के प्रति सदा निराशा ही रखना। यदि जीवन के प्रति आशा हो तो एक बात की आशा रखना, वह है भगवत प्राप्ति की आशा। मुझे कृष्ण की प्राप्ति होगी। ये पिंगला के जीवन से दत्तात्रेय महाराज ने शिक्षा प्राप्त की।

17वें स्थान पर एक कुकर पक्षी से शिक्षा प्राप्त की जिसे वस्तु संग्रह की लालसा थी। पक्षी दूर–दूर जाकर अपने घोंसले के लिए घास फूस लाकर सुन्दर घोंसला बनाता था। एक दिन वह घोंसला नष्ट हो गया। आगे महाराज दत्तात्रेय ने बालक को गुरु बनाया।

18वें स्थान पर मान और अपमान की शिक्षा ग्रहण की। मान–अपमान का महत्व साधक के जीवन में नहीं होता। देखिए बहुत से कहते हैं कि हम फलाने जगह गए तो हमें बहुत सम्मान मिला, फलाने जगह गए तो उसने पानी भी न पूछा। यानि मान–अपमान की अपेक्षा व्यक्ति हमेशा रखता है। परन्तु साधक और सन्त के जीवन में मान–अपमान का कोई महत्व नहीं, देखिए–बालक को यदि आप थोड़ा–सा प्यार देंगे तो पास आएगा। यदि आप डांटेंगे तो दूर चला जाएगा। बालक यह विचार नहीं करता कि इसने मेरा मान अपमान किया। बालक का हृदय सरल होता है। मान–अपमान की शिक्षा एक बालक देता है।

19वें स्थान पर एक कुमारी कन्या के कंगन को, एक कुंवारी कन्या को देखने मेहमान आए। घर में भोजन का प्रबंध नहीं था। वह कन्या धान कूटने लगी। जिसके हाथ में चूड़ियां थीं शोर होने लगा। उसने सोचा शोर सुनकर मेहमान पिता को दरिद्र न समझे कि भोजन की व्यवस्था भी नहीं है, शादी में ये क्या देंगे। कन्या ने एक चूड़ी उतार दी और धान कूटने लगी अभी भी शोर हो रहा है चूड़ियों का मतलब कन्या के हाथ में चूड़ियां थी तो शोर होता रहा, जब एक चूड़ी रह गई तो शोर बंद हो गया। दत्तात्रेय जी उस कन्या को खिड़की से देख रहे हैं। ये क्या लीला कर रही है? उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यदि भगवान् का भजन करना हो, साधना करनी हो, ध्यान करना हो तो हमेशा एकांत में बैठना चाहिए यदि ध्यान के समय एक से दो हो गए तो बेकार का वार्तालाप शुरू हो जाएगी अधिक होने पर कलह भी हो सकता है।

"वासे बहूनाम् कलहो भवेत्"

20वें स्थान पर सर्प को गुरु बनाया, अकेले विचरण करना चाहिए, साधक को निर्भय होकर। परमात्मा के लिए।

21वें स्थान पर बाण बनाने वाले को, तीर बनाने वाले को गुरु धारण किया। इससे एक दिव्य शिक्षा प्राप्त की, मन की एकाग्रता। यह सरकृत बाधक अपना तीर बना रहा था, उसी समय राजा की सवारी निकल रही थी, जोर से बाजा बज रहा था, किंतु तीर बनाने वाला अपना तीर बनाने में ही लगा था उसने आँख उठाकर भी नहीं देखा। सवारी निकल गई तो दत्तात्रेय जी महाराज वहाँ गए और पूछा राजा की सवारी देखी आपने। वह बोला मेरा अपराध क्षमा करें मैंने सवारी नहीं देखी। तुमने बाजे की आवाज नहीं सुनी, नहीं। वह बोला नहीं। दत्तात्रेय जी ने उसके चरण पकड़ कर कहा तू मेरे गुरु हैं। तीर बनाने के लिए मन से लगा था उसी प्रकार हमारे सामने से भी सवारियां संसार की भोगों की जा रही है, यदि व्यक्ति का लक्ष्य की ओर ध्यान

नहीं हैं। मन एकाग्र नहीं है तो वह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। मन की एकाग्रता की शिखा एक बधिक ने प्रदान की।

फिर 22वें स्थान पर भ्रमरी नाम की कीट को गुरु धारण किया। देखिए संग दोष की शिक्षा इसमें है, ये भंवरी नामक कीट दीवारों पर मिट्टी का घर बना लेता हैं। और दूसरी जातियों के कीड़ों को पकड़कर उसमें बंद कर देता हैं। गुन-गुन शब्द करता रहता हैं। जो कीड़ा उसमें बन्द हैं। वह भंवरी का चिन्तन करता है और उसी की तरह स्वरूप, चाल, ढाल, बोल चाल ढंग हो जाता हैं। दत्तात्रेय जी ने जब देखा कि ये मेरा गुरु हैं। जैसा तुम संग करोगे वैसा ही जीवन बन जाएगा।

"जैसा करोगे संग, वैसा ही होगा रंग"

आप कभी मद्यपान करने वाले का संग करेंगे तो आप भी मद्यपान करने लगेंगे। यदि आप सत्संगी का संग करेंगे तो एक दिन आप भी सत्संगी बन जाएँगे। यही संग का दोष हैं। इस प्रकार से दत्तात्रेय महाराज ने 23वाँ ऊर्णनाभि ओर 24वें स्थान सुप्रसाकृत को गुरु बनाया। 25वां गुरु अपने शरीर को बनाया। ये शरीर भी गुरु हैं। ये विरक्ति, विवेक, तत्व को जानने का परम् साधन है शरीर।

इस मानव जीवन को पाकर व्यर्थ में समय न गंवा कर–

"शरीर माध्यम् खलु धर्मं साधनम्"

श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् "साधन, धाम, मोक्ष करि द्वारा" इसे मुक्ति का खुला द्वार ही समझना। ऐसे कोई ओर योनि नहीं हैं जिसमें हमें ईश्वर की याद हो। ईश्वर प्राप्ति हो।

केवल मानव शरीर ही ऐसा है, जिसमें परमात्मा का स्मरण हमें बना रहता हैं। ईश्वर की स्मृति बनी हुई है। कहीं ये साँस न निकल जाए। जितनी हमें मिलती है। जो बची है उनका सदुपयोग करो। सत्कार्य भी करो। प्रभु का स्मरण भी करो।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारि, हे नाथ नारायण वासुदेव,

इस प्रकार उद्धव जी महाराज को दत्तात्रेय जी का 24 गुरुओं का वर्णन किया। उध्दजी ने प्रश्न किया कि, 'नित्य बद्ध' और 'नित्य मुक्त' जीव कौन है? भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं। अविद्यायुक्त मन नित्य बद्ध है, और विद्यायुक्त मन नित्य मुक्त हैं। आगे प्रश्न किया कि महाराज कृपा करके सनातन धर्म के विषय में बताइए। यह क्या है? सनातन धर्म के अंतर्गत चार वर्ण और चार आश्रम हैं। अपने-अपने वर्ण का, अपने-अपने आश्रम का वर्णन हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र।

परन्तु श्रीमद्भागवत कहती है कि चारों ही भगवान् के अंग हैं। (ब्राह्मणो मुखोमा आश्रितो। बाहुराजनयकृत) भगवान् के मुख ब्राह्मण, क्षत्रिय, बाहु, उरु है वैश्य, शूद्र है चरण। चार ही आश्रम हैं। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, गृहस्थ, संन्यास। जो वर्ण आश्रम का पालन करता है वही सनातन धर्मी है। आगे प्रश्न किया उध्दवजी ने, कि सत्संग के विषय में बताएँ, शुकदेव जी महाराज ने बताया कि अब तक जिसको भगवत प्राप्ति हुई वह सत्संग के द्वारा ही हुई। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। सत्संग से ही भगवान् मिलते हैं। फिर प्रश्न किया उद्धवजी महाराज ने कि सांश का भी प्रवचन करे। भागवत के तीसरे स्कन्ध में भी सांश का वर्णन हैं। जिसे कपिल गीता कहते हैं। सांश में 24 तत्व बताए हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियां, पंच महाभूत, पंच तन्मात्रा, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार 25वां तत्व जीवात्मा हैं। सभी के विषय में अलग-अलग धारणा है। कोई कहते हैं 13 तत्व हैं। परन्तु हम इस पचड़े में न पड़ें श्रीमद्भागवत में 24 तत्व बताए हैं। आगे प्रश्न करने पर श्रीशुकदेव जी महाराज कहते हैं कि योगियों के लिए जो ऋद्धि-सिद्धि भगवान् प्रदान करते हैं, धारणाओं का सिद्धियों का वर्णन करते हैं। अणिमा, लघिमा, परिक्रमा, ईशीता, वशीता ये सब सिद्धियाँ हैं, इनके बारे में बताया। अन्त में सार बताते हैं कि उद्धव यदि ज्ञान रूप दीपक अपने अंदर प्रज्ज्वलित करना हो, तो देखिए, दीपक जलाने के लिए चार वस्तुओं की आवश्यकता होती है। प्रेम से बोलो जय श्रीकृष्ण। पात्र, सलाई, घृत एवं बाती। यदि एक की भी कमी है तो दीपक नहीं जलेगा। यही सम्पूर्ण सार है कृष्ण उद्धव संवाद का। ज्ञान रूपी दीपक को प्रज्ज्वलित करने के लिए, हमारा अखंड दीपक जलता रहे, इसके लिए भक्ति को पात्र बनाना चाहिए। भक्ति रूपी पात्र में वैराग्य रूपी तेल डालकर ज्ञान रूपी बत्ती रखकर श्रद्धा रूपी सलाई से जलाओ दीपक कभी नहीं बुझेगा।

भागवत में दो जगह सनातन धर्म का वर्णन किया है, सप्तम स्कन्ध के 11वें अध्याय में, 15 अध्याय को कर्मपंचायी अध्याय कहते हैं। 11वें स्कंध में भी इसका वर्णन है।

अथ दशमोऽध्यायः

लौकिक तथा पारलौकिक भोगों की असारता का निरुपण

अथैकादशोऽध्यायः

बद्ध, मुक्त और भक्तजनों के लक्षण

अथ द्वादशोऽध्यायः

सत्संग की महिमा और कर्म तथा कर्म त्याग की विधि

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

हंस रूप से सनकादि को दिए उपदेश का वर्णन

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

भक्ति की महिमा तथा ध्यान विधि का वर्णन

अथ पंचदशोऽध्यायः

भिन्न-भिन्न सिद्धियों के नाम तथा लक्षण

अथ षोडशोऽध्यायः

भगवान् की विभूतियों का वर्णन

अथ सप्तदशोऽध्यायः

वर्णाश्रम-धर्म निरूपण

अथाष्टादशोऽध्यायः

वानप्रस्थ और संन्यासी के धर्म

अथैकोनविंशोऽध्यायः

भक्ति, ज्ञान और यम नियमादि साधनों का वर्णन

अथ विंशोऽध्यायः

ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्तियोग

अथैकविंशोऽध्यायः

गुण-दोष, व्यवस्था का स्वरूप और रहस्य

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

तत्वों की संख्या और पुरुष प्रकृति विवेक

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

एक तितिक्षु ब्राह्मण का इतिहास

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

सांख्य योग

अथ पंचविंशोऽध्यायः

तीनों गुणों की वृत्तियों का निरूपण

अथ षड्विंशोऽध्यायः

पुरुरवा को वैराग्योक्ति

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

क्रियायोग का वर्णन

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

परमार्थ निरुपण

अथैकोनात्रिंशोऽध्यायः

भागवत् धर्म का निरूपण और उद्धवजी का बद्रिकाश्रम गमन

विद्रावितो मोहमहान्धकारो य आश्रितो मे तव सन्निधानात्।
विभावसोः किं नु समीपगस्य शीतं तमो भीः प्रभवन्त्यजाद्य।।

(श्रीमद्भागवतम् 11.29.37)

उद्धव जी महाराज ने भगवान् के चरणों में प्रणाम करके कहा कि प्रभु आपका सान्निध्य, प्रवचन दर्शन से मुझे एक बड़ा लाभ हुआ, कि जैसे सर्दी में जब ठंड लगती है यदि अग्नि को जलाकर पास में बैठे तो ठंड समाप्त हो जाती हैं। उसी प्रकार आपकी इस ज्ञान रूपी चर्चा को, वाणी को सुनकर अज्ञान रूपी सीत, ठण्डी मिट चुकी हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ–

नमोऽस्तु ते महायोगिन्प्रपन्नमनुशाधि माम्।
यथा त्वच्चरणाम्भोते रतिः स्यादनपायिनी।।

(श्रीमद्भागवतम् 11.29.40)

हे महायोगी, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए कि जिससे आपके चरण कमलों में मेरी अनन्य भक्ति बनी रहे।

"बार-बार वर माँगू हर्ष देव श्री रंग
पद सरोज अनपायिनी, भक्ति सदा सत्संग"

उद्धव जी से भगवान् कहते हैं कि उद्धव–

गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्याख्यम् ममाश्रमम्।
तत्र मत्पादतीर्थोदि स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः।।

(श्रीमद्भागवतम् 11.29.41)

उद्धव तुम सीधे बद्रिकाश्रम जाओ और मेरे स्वरूप का चिन्तन करना, अंत में मुझे प्राप्त कर लोगे।

इतना कहकर भगवान् ने अपनी चरण पादुका उद्धव को दी। उद्धव जी सिर पर धारण करके बद्रिकाश्रम चले गए। राजा परीक्षित ने पूछा कि–

अथत्रिशांऽध्यायः

यदुकुल का संहार

अथैक त्रिंशोऽध्यायः

श्रीभगवान् का स्वधाम गमन

ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम्।
द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः।।

(श्रीमद्भागवतम् 11.30.1)

जब उद्धव जी चले गए, तब भगवान् ने कौन सी लीला की, बताइए। शुकदेव जी महाराज ने कहा राजन् परीक्षित, द्वारका में धूमकेतु प्रकट हुआ। यह अपशकुन था, 13 दिन का पक्ष पड़ा, सभी यादव विचार करने लगे कि कोई प्रायश्चित कर्म बताइए। भगवान् ने कहा, देखो हम तीर्थ में चले सत्कर्म करें, इसके परिहार के लिए तो सभी ने ऐसा ही किया। भगवान् श्रीकृष्ण सभी यादवों को लेकर द्वारिका से प्रभास क्षेत्र की ओर चल दिये।

सभी ने दान किया, यज्ञ किया, सत्कर्म किया। फिर दुष्ट बुद्धि हो गई। विवेक भ्रष्ट हुआ। मदिरा पीकर जुआ खेलने बैठ गए। अब कोई व्यक्ति मदिरा पीए तो अनेक दुर्गण आ जाते हैं। अनेक दुर्गुण समीप आ जाते हैं। छोटी-छोटी बात पर झगड़ा शुरू हो गया। एक-दूसरे के साथ मारपीट शुरू हो गई। अस्त्र-शस्त्र नष्ट होने पर सरकंड नाम के वृक्ष को उखाड़कर फेंकने लगे। भगवान् कुल का संहार सामने होते देखते रहे। परन्तु कृष्ण को न सुख है, न दुख। शान्त-चित्त बैठे रहे।

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन्, बलराम जी समझ गए कि अब कन्हैया अपनी लीला को विश्राम देने जा रहे हैं। बलराम ठीक कहते हैं कि रामवतार में तुमने मुझे अपना छोटा भाई लक्ष्मण बनाया था। कृष्णावतार में बड़ा भाई बलराम बना दिया। मैं तुम्हें जाते हुए नहीं देख सकता। तुरंत प्रणाम कर समुद्र में प्रवेश कर गए बलराम जी महाराज–

राम: समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम्।
तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मानि।।

(श्रीमद्भागवतम् 11.30.26)

श्री बलराम जी महाराज तुरंत प्रभास क्षेत्र में, सागर में प्रवेश करके समाधि धारण कर ली। अपने मूल स्वरूप शेषनाग में आ गए। बोलिए बलराम जी महाराज की जय।

भगवान् नन्दनन्दन श्याम सुन्दर पीपल वृक्ष के नीचे अंतिम विश्राम मुद्रा में बैठ गए। प्रभास क्षेत्र में जरा नाम का व्याध्र (शिकारी) रहता था। जिसने अपने तीर में कील लगा रखी थी, यह कथा आपने सुनी होगी। राम भगवान् की लीला में बलि हैं। जिन्हें भगवान् ने मारा था वही बालि व्याध बना और प्रतिहिंसा स्वरूप भगवान् को मारना चाहता था। मछली के पेट से निकली कील को तीर से लगाकर चलाया भगवान् के पाँव में, उसे मृग की शंका हुई और बाण चला दिया। पास में पहुँचने पर देखा कि श्रीकृष्ण बैठे हैं। चरण कमल में तीर हैं। शिकारी फूट-फूट कर रोने लगा। व्याध्र चरणों में गिर पड़ा। भगवान् ने उठाकर छाती से लगाया।

भगवान् ने कहा रो मत। तेरा कर्ज उतारने के लिए यहाँ बैठा था। बोले, प्रभु मेरा कब का कर्ज था। रामावतार में तू बालि था, मैंने छिपकर तुझे मारा था। आज तूने मुझे मारा। अखंड भक्ति का दान तुझे देता हूँ मैं। भगवान् बताते हैं कि कर्म के अनुसार जीव को फल भोगना ही पड़ेगा।

"कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते।।
(श्रीमद्भागवतम् 10.24.13)

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने चरण कमलों की भक्ति देकर व्याध्र को विदा किया। भगवान् के गले में सुन्दर तुलसी की माला पड़ी है। जिस तुलसी सुगंध को सूंघते-सूंघते भगवान् के रथ चालक दारुक (सारथी) वहाँ आए। भगवान् ने कहा, तुम द्वारका चले जाओ, आज से सात दिन बाद सारी द्वारिका सागर में विलीन हो जाएगी। जाकर अर्जुन से कहना कि जो भी लोग बचे हस्तिनापुर चले जाएँ। दारुक को भी भगवान् ने भक्ति का दान दिया। दारुक प्रणाम करके चले गए।

श्रीकृष्ण अंतिम विश्राम की मुद्रा में हैं। वह रथ जिसमें भगवान् ने लड़ाइयाँ लड़ीं, वह आकाश में उड़ने लगा। भगवान् के आयुध, अस्त्रशस्त्र, शंख, गदा आदि आकाश में उड़ने लगे। सभी देवता आकाश में खड़े रहे। ब्रह्मा जी, शिव भी, इन्द्र भी, वरुण भी खड़े हैं। अंतिम दर्शन के लिए।

सभी देवताओं ने अपनी-अपनी प्रार्थना की भगवान् के लिए। ब्रह्माजी ने कहा आप मेरे ब्रह्म लोक में चलिए। शिवजी ने कहा शिवलोक में। इन्द्र ने कहा, इन्द्रलोक में, वरुण ने कहा वरुण लोक में चलिए। श्रीकृष्ण ने कहा मुझे अपने घर से आए बहुत दिन हो गए। श्रीकृष्ण का स्वधाम है, श्री वृन्दावन।

सब देवता भगवान् पर पुष्प वर्षा कर रहे हैं। श्रीकृष्ण भगवान् की जय।

सर्वत्र जय-जय कार हो रही है।

भगवान् सशरीर देवताओं के बीच से अन्तर्निहित हो गये, और सीधे भगवान् जाकर ब्रज में पहुँच गए।

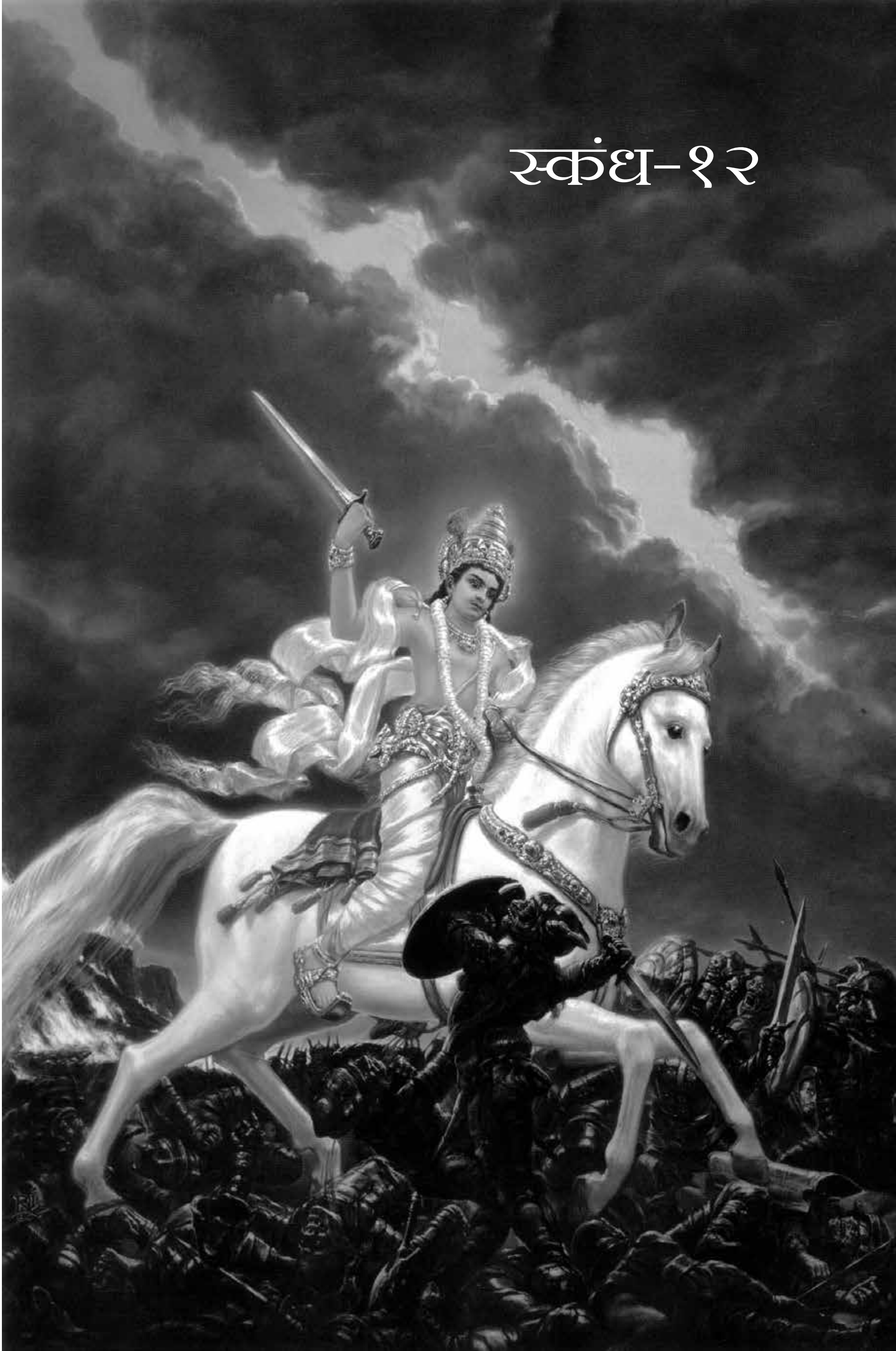
सौदामन्या यथाक्लाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम्।
(श्रीमद्भागवतम् 11.31.9)

जैसे आकाश में बिजली की चमक होती है और फिर कुछ नहीं दिखता उसी प्रकार भगवान् स्वधाम चले गए। क्योंकि श्री भगवान् कहकर आए थे मैं शीघ्र ही ब्रज आऊँगा। परन्तु अपने सारे कर्म पूर्ण करके, पृथ्वी का भार उतारकर, असुरों का विनाश करके साधुओं का कल्याण करके 125 वर्षों में वापिस आ गए।

इसके बाद किसके वंश से प्रारंभ हुआ, भगवान् वंश के बाद कृपा करके बताइए राजा परीक्षित ने पूछा।

इति एकादश स्कन्ध समाप्तः

स्कंध-१२



द्वादश स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

कलियुग के राजवंशो का वर्णन

अथ द्वितीयोऽध्यायः

कलियुग के धर्म

अथ तृतीयोऽध्यायः

राज्य, युगधर्म और कलियुग के दोषों से बचने का उपाय नाम-संकीर्तन

अथ चतुर्थोऽध्यायः

चार प्रकार के प्रलय

अथ पंचमोऽध्यायः

श्री शुकदेव जी का अन्तिम उपदेश

शुकदेव जी महाराज कहते हैं कि राजन् आपको मैंने नौवें स्कंध में बताया था कि असीम कृष्ण नाम के एक राजा थे, जिनके वंश श्रीकृष्ण के वंश के बाद प्रारंभ हुआ, इसी वंश में फिर 9 नन्द हुए। आगे चलकर जिनका चाणक्यों ने संहार किया। इसी वंश में आगे एक राजा हुए बृहरथ, जिनके मित्र थे पुष्प मित्र। जिन्होंने अपने राजा को छल से मारकर सिंह वंश की स्थापना की। राजन् फिर अनेक छोटे-छोटे राजा उत्पन्न हुए। राजन् 10 पीढ़ी अब गुरंग शासन करेंगे। देखिए यह भी भागवत में लिखा हैं। यह समय निकल चुका है। 11 पीढ़ियाँ भी राज्य करेंगे। जोकि 300 वर्ष तक व्यवस्था चलेगी। परन्तु मौन राज्य भी अब समाप्ति की ओर है।

14 पीढ़ियाँ यवन शासन करेंगी। यह भी भागवत में लिखा हैं। 10,000 वर्ष तक भारतवर्ष पराधीन रहेगा। कैकेय देश काश्मीर से कलिकाल का प्रवेश भारत वर्ष में होगा। वह भी आज हम देख रहे हैं। कलिकाल में प्रजा में धर्म नहीं होगा। पति-पत्नी में प्रेम नहीं। जब तक रमन तब तक प्रेम।

दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायेव व्यावहारिके।
स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि।।

(श्रीमद्भागवतम् 12.2.3)

स्वयं माता-पिता के द्वारा पुत्रों की परवरिश ठीक प्रकार से नहीं हो पाएगी। सन्तान भी माता पिता का आदर, सेवा नहीं कर पाएगी क्योंकि कलि के प्रभाव से सब जीव का कर्म बंद हैं। कलिकाल में केवल शिखा बंधन एवं यज्ञोपवीत् धारण ही ब्राह्मण कहलागें। नदियों के जल सूख जाएँगे। कहीं अधिक वर्षा होगी कहीं बहुत कम। राजा धर्म के नाम से पाखंड प्रचार करेंगे। सब राजन दस्यु ही बन जाएँगे।

पाखण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु।

(श्रीमद्भागवतम् 12.2.13)

एक बात श्रीमद्भागवत में नहीं लिखी है, परन्तु सन्तों ने ढूँढ निकाला है, सन्तों की वाणी में लिखा है कि जब आठ वर्ष की कन्या का सन्तान का योग होगा तो घोर कलिकाल होगा।

ऐसे कलिकाल में जीव किसकी शरण में जाए? बोले प्रभु का केवल नाम संकीर्तन ही है।

संकीर्तन

कलियुग केवल नाम अधारा
सुमिर-सुमिर नर उतरे ही पारा,
भाए कुभाए अनख आलस हूँ
नाम जपत मंगल दिस दस हूँ
सुमिर पवन सुत पावन नामू
आपने बस करै राखियौ रामू
श्रीराम जय राम जय-जय राम।।

केवल प्रभु का एक नाम है, जो नाम रूपी नौका पर बैठ चुका है, भईया वही इस भव सागर को पार कर सकता हैं। शुकदेव जी महाराज कहते हैं। कि राजन्

त्वं तु राजन्मरिष्येति पशुबुद्धिमिमा जहि।
न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि।

(श्रीमद्भागवतम् 12.5.2)

राजन तुम कहते हो कि मैं मर जाऊँगा, ये तो बड़ी विचित्र बात तुम कहते हो? यह तो पशु बुद्धि है, परीक्षित जन्म है तो मृत्यु निश्चित है।

"जातस्य ही ध्रुव मृत्युः।"

तुम ये मत कहो। मैं राजा परीक्षित हूँ। आज से 45 वर्ष पूर्व तुम राजा नहीं थे और आगे भी नहीं रहोगे। ये तो 45 वर्ष के लिए चक्रवर्ती राजा बन गए। अब परीक्षित तुम सर्वाधिष्ठान परमात्मा का ध्यान अपने अन्दर करो। निज आत्म स्वरूप का चिन्तन करो।

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्।
एवं समीक्ष चात्मानमात्मन्याधाय निष्कले।।

(श्रीमद्भागवतम् 12.5.11)

ऐसा तुम ध्यान करो, चिन्तन करो, निज आत्म स्वरूप का। परीक्षित को जब ये अंतिम श्लोक बताए शुकदेव जी महाराज ने कि, एक क्या अनेक तक्षक भी आकर काटे तो फिर भी कुछ नहीं बिगड़ेगा और सुनो मैं अभी भी गद्दी पर बैठा हूँ। तक्षक आ भी जाए तो मैं ब्रह्मदृष्टि से तक्षक के विष को अमृत बना दूँगा। उठकर राजा परीक्षित ने शुकदेव जी महाराज के चरणों में प्रणाम किया, "भवता करुणा आत्मना" भगवन् आपने कितनी दया की जो मुझे भागवत सुनाई है। भगवन् मैं किन शब्दों में आपका धन्यवाद करूँ? मेरे पास शब्द नहीं हैं। यदि मैं आपकी प्रशंसा करूँ तो यह होगा सूर्य को दीपक दिखाना। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी महाराज का पूजन किया, तिलक किया।

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु–सतं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि।

(श्रीमद्भागवतम् 1.2.2)

शुकदेव जी महाराज गंगा जी के तट से राजा परीक्षित पर कृपा करके चल दिए। बोलिए शुकदेव जी महाराज की जय।

अथ षष्ठोऽध्यायः

परीक्षित की परम गति, जनमेजय का सर्पसत्र और वेदों के शाखा भेद

अथ सप्तमोऽध्यायः

अथर्ववेद की शाखाएं ओर पुराणों के लक्षण

अथाष्टमोऽध्यायः

मार्कण्डेय जी की तपस्या और वर प्राप्ति

अथ नवमोऽध्यायः

मार्कण्डेय जी का माया दर्शन

अथ दशमोऽध्यायः

मार्कण्डेय जी को भगवान् शंकर का वरदान

अथैकादशोऽध्यायः

भगवान् के अंग-उपांग और आयुधों का रहस्य तथा विभिन्न सूर्यगणों का वर्णन

अथ द्वादशोऽध्यायः

श्रीमद् भागवत की संक्षिप्त विषय सूचि

परीक्षित की समाधि

तक्षक–

कश्यप–

राजा परीक्षित समाधि में बैठ गए, वहाँ उन्होंने अपनी देह त्याग दी। आत्म स्वरूप से परमात्मा में लीन हो गए।

इधर तक्षक आ रहे हैं, राजा को काटने के लिए। मार्ग में एक कश्यप नाम के ब्राह्मण मिल गए। तक्षक ने पूछा कहाँ जा रहे हैं? ब्राह्मण देवता बोले राजा परीक्षित को तक्षक काटेगा तो अपनी मन्त्र शक्ति से उसे जीवित कर देंगे। बोले क्या आपके मन्त्र में इतनी शक्ति है?

एक हरे-भरे वृक्ष को तक्षक ने अपने फुंफकार से उसे जलाकर राख की ढेरी बना दिया। तुरंत उस ब्राह्मण ने अपने कमण्डल से जल लेकर राख पर छिड़का तो वृक्ष हरा-भरा हो गया। तक्षक समझ गया कि इस ब्राह्मण में शक्ति हैं। दक्षिणा

देकर उसे विदा किया। अपने मस्तक पर मणि से दान दे दिया। तक्षक गंगा जी के तट पर पहुँच गए। साधना-समाधि में राजा परीक्षित का केवल शरीर हैं। आत्मा तो परमात्मा में लीन हो चुके हैं। राजा परीक्षित के शरीर को जलाकर तक्षक ने भस्म कर दिया।

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेदेहोऽहिगरलाग्निना।
बभूव भस्मसात्सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम्।।
(श्रीमद्भागवतम् 12.6.13)

जब तक्षक ने राजा का शरीर जला दिया, तो उस ब्रह्मभूत स्थिति को प्राप्त किए हुए परीक्षित के शरीर को तक्षक की गरलाग्नि के द्वारा जलते हुए सबने देखा और राजा का शरीर एक क्षण में भस्म हो गया।

जब जन्मेजय ने सुना, हमारे पिता को तक्षक ने काटा है, तो उसने सर्पयज्ञ प्रारंभ किया। समस्त सर्प आकर यज्ञ कुंड में गिरने लगे। अलग-अलग प्रकार के हजारों लाखों सर्प जनमेजय की मन्त्र शक्ति से यज्ञ में गिरने लगे। उसी समय आक्तिक और वशिष्ठ ऋषि पधारे, उस यज्ञ को समाप्त कराया ओर सर्पकुल की रक्षा की। जनमेजय को भगवान् की चरण कमलों की भक्ति प्रदान की। तभी से अस्तिक मुनि का नाम लेते ही सर्प दूर चले जाते हैं।

"अस्तिकस्य मुनि माता जरत् कारु मुनि पत्नी
ॐ मंसादेवभयै नमः नमो,"

सर्प को देखकर इस मन्त्र का उच्चारण करने से सर्प चले जाते हैं।

श्री सुतजी महाराज ने सनकादिक ऋषियों से कहा कि अब आपको कौन-सी कथा सुनावै। वे बोले हमें मार्कण्डेय ऋषि की कथा भी सुनाइए। उनका चरित्र सुनाइए। देखिए ये अंतिम कथा है।

ये मार्कण्ड जी के पुत्र थे मार्कण्डेय, जिन्होंने 6 मन्वन्तर तक भगवान् की आराधना की। कौन-कौन सी मन्वन्तर? स्वयंभू, सुरुचि, उत्तम, तामस्, रैवत, चाक्षुश। छठी मन्मन्तर में भगवान् ने इन्हें दर्शन दिया। दर्शन देकर भगवान् ने कहा मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो।

मर्कण्ड जी ने कहा, प्रभु मैं आपकी माया का दर्शन करना चाहता हूँ। भगवन् बोले आज से तीसरे दिन मेरा माया का दर्शन करेंगे। उन्हें तीसरे दिन के बाद चारों ओर जल ही जल दिखाई दिया। जल का प्रभाव देखकर वे आश्रम की सीढ़ियों से

नीचे उतरकर गोता लगाकर ऊपर आए देखा कि चारों ओर जल ही है, इसके सिवा कुछ नहीं है।

एक वट वृक्ष के दो पत्ते मिलकर दोना बन गए हैं देखा। वहाँ बालकृष्ण भगवान् पैर का अंगूठा चूसते हुए सो रहे हें।

करारविन्देन् पदारविन्देम् मुखारविंदे विनिबे स्ययन्तम्।
वटस्य वत्रस्य पुटेशयानम्, बालम्मुकुन्दम् प्रणतोऽसि नित्यम्।

हे बालकृष्ण, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मार्कण्ड ऋषि महाराज भगवान् से वार्त्तालाप करने गए। ज्यों पास गए भगवान् ने प्राण वायु खींची तो मार्कण्डेय जी मुख के द्वारा पेट में चले गए। फिर प्राणवायु को बाहर फेंका तो मार्कण्डेय जी जल में गोता लगाने लगा। यानि भगवान् ने बताया कि किस प्रकार माया का आश्रय लेकर किस प्रकार संसार को जन्म देकर, पालन करके प्रलय करता हूँ इस तरह अपनी माया का दर्शन करा दिया।

एक दिन मार्कण्डेय जी अपने आश्रम में थे। भगवान् शिव-पार्वती पधारे। पार्वती जी ने शिव को कहा कि देखो कोई सन्त बैठकर तपस्या कर रहे हैं। आप इन्हें वरदान दे दें। भगवान् शिव ने कहा वर माँगे। वे बोले मैंने एक बार भगवान् नारायण से वर माँगा तो माया के बहुत थप्पड़ खाए। अब आप यदि मुझे वरदान देना चाहें तो मेरे अंदर श्रीकृष्ण के चरणों में अखण्ड प्रेम हो जाए और कुछ मैं आपसे नहीं माँगता। तो मार्कण्डेय जी से भगवान् ने कहा तथास्तु। इस तरह सुन्दर चरित्र धारण करते हुए शिव के आशीर्वाद से श्रीकृष्ण के भजन में जुट गए।

अब प्रभु कृपा करो यही भांति
सब तजु भजन करहु दिन राति
श्री राम जय राम जय-जय राम
हरे कृष्ण महा मन्त्र.................

भईया मैं आपको सूचना दे रहा हूँ कि भागवत् की अनुक्रमणिका केवल 5 मिनट की हैं। भागवत का यह अंतिम चरण है, तो अंतिम श्रवण आहुति आप सब महायज्ञ में डालें केवल 5 मिनट की सूची कथा हैं। बोलिए वृन्दावन बिहारी लाल की जय।

संकीर्तन

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारि, हे नाथ नारायण वासुदेवा।

अथ त्रयोदशोऽध्याय

विभिन्न पुराणों की श्लोक संख्या और श्रीमद् भागवत की महिमा

सूची कथा

श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान् का ही स्वरूप हैं। भागवद् में और भगवान् में कोई अंतर नहीं। श्रीमद्भागवत में 12 स्कन्ध हैं, 335 अध्याय हैं। 18,000 श्लोक हैं, एक-एक स्कंध भगवान् का एक-एक अंग हैं। श्रीमद्भागवत पुराण के 10 लक्षण हैं। सर्ग, विसर्ग, स्थान, उती, पोशन, ईषानु कथा मन्वन्तर, निरोध, मुक्ति और आश्रय।

सबसे प्रथम स्कन्ध में 19 अध्याय में मंगलाचरण हैं, सुत और शौनक संवाद में 6 प्रश्नों का उपक्रम है।

24 अवतार भगवान् के बताए हैं। पुनः व्यास नारद संवाद में नारद जी ने व्यास जी की आत्मा के असन्तोष के कारण को बताते हुए अपने जन्म व कर्म का रहस्य बताया।

आगे परीक्षित के जन्म प्रसंग में पांडवों का संक्षिप्त जीवन चरित वर्णन किया है।

भीष्म निर्वाण, राजा परीक्षित का जन्म, दिग्विजय, कलिका निग्रह, शमिक मुनि के आश्रम पर जाकर सन्तों के गले में मृत सर्प डालना और परीक्षित को श्राप लगना।

"इति लंघ्यति मर्मादम्, तक्षकः सप्तमे हानि"

अन्न जल का त्याग करके राजा परीक्षित का गंगा जी के तट पर पधारना और ऋषियों का आगमन। म्रियमान पुरुष का कर्त्तव्य - अकर्तव्य विवाद पर श्री शुकदेव जी महाराज का आगमन।

यह प्रथम स्कन्ध का विषय हुआ।

द्वितीय स्कंध में 10 अध्याय में शुकदेव जी महाराज कहते हैं।

"वरीयानेष तै प्रश्ने कृत लोकहितो नृपः"

(श्रीमद्भागवतम् 2.2.1)

इस श्लोक से प्रारंभ कर रहे कथा, हृदश्यच चतुर्भुज भगवान् के ध्यान विषय में वर्णन किया, विराट स्वरूप का वर्णन किया। सद्मुक्ति और क्रममुक्ति वर्णन करते हुए चतु श्लोकी भागवत जिसमें चार श्लोक हैं। वर्णन किया। चार तत्व वर्णन किया

है, ब्रह्म–तत्व, माया–तत्व, जग–तत्व, आत्म–तत्व। चतुर श्लोकी भागवत में चार तत्व बताया हैं,

इसी प्रकार पुराण के 10 लक्षण बताए हैं।

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः।।
(श्रीमद्भागवतम् 2.10.1)

तृतीय स्कंध में 33 अध्याय के अंतर्गत विदुर–उध्दव संवाद और विदुर मैत्रेय संवाद में पुराणों सम्बंधी प्रश्न किए हैं। प्रलय काल की स्थिति का वर्णन किया है, प्राकृतिक सृष्टि का वर्णन करते हुए श्रीमद्भागवत में आगे ब्रह्माण्ड की उत्पति, काल की गति, ब्रह्मा की उत्पति, वराह भगवान् का अवतार, हिरण्यकश्यपु का वध, पृथ्वी के उद्धार का वर्णन है।

ब्रह्म से मनु शतरूपा की उत्पत्ति, मनु कर्दम जन्म, कर्दम देवहुति पाणिग्रहण संस्कार और कपिल भगवान् का अवतार। कपिल के द्वारा अपनी माँ के लिए भक्ति का प्रवचन करना, यानि सांख्य योग का प्रचार करना। जीव की गर्भावस्था का वर्णन करना। अंत में देवी देवहुति की मुक्ति।

चौथे स्कंध में 31 अध्याय में प्रथम सती जी का चरित्र हैं। फिर ध्रुव का चरित्र हैं। वेन का चरित्र हैं। पृथु जी का चरित्र हैं। सनत् कुमारों का ज्ञानोपदेश, नारद जी और प्राचीन बर्हि कथा है। पुरंजन उपाख्यान हैं,

पंचम स्कंध में 26 अध्यायों में महाराज प्रियवर्त का चरित्र हैं। जिस गृहस्थाश्रम में रहकर व्यक्ति को अपने स्वरूप की विस्मृति हो जाती है, परन्तु उसी गृहस्थ आश्रम में रहकर भी प्रियवर्त महाराज बंधन में नहीं बंधे। गृहस्थ धर्म की श्रेष्ठता नामि का जन्म, ऋषय का जन्म, रहूगण और भरत का संवाद, भवाटवी का वर्णन और भूगोल–खगोल का वर्णन, 28 नरकों का वर्णन, शिशु वंश चक्र का वर्णन आदि है।

छठे स्कंध में 19 अध्याय हैं। अजामिल उपाख्यान भगवान् के नाम की महिमा का वर्णन, दक्ष की सृष्टि का वर्णन, नारद का कूट उपदेश वृत्रासुर का वध, चित्रकेतु का व्याख्यान, (वायु) मरुद्गणों की उत्पति का वर्णन और पुंसव्रत वत का वर्णन।

सातवें स्कन्ध में 15 अध्याय हैं। पहले अध्याय में यह प्रश्न किया कि–

समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन्भूतानां भगवान्स्वयम्।
इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा।।
(श्रीमद्भागवतम् 7.1.1)

इस प्रश्न का उत्तर श्री शुकदेव जी महाराज ने पहले अध्याय में परीक्षित को दिया। द्वितीय अध्याय से दसवें अध्याय तक प्रह्लाद जी का सम्पुर्ण चरित्र वर्णन किया। 11वें अध्याय से 15वें अध्याय तक कर्म पंचायी अध्याय का वर्णन करके नारद जी द्वारा अपने पूर्व जीवन का वृतान्त बताया। वर्णाश्रम धर्म का वर्णन करना।

आठवें स्कंध में 24 अध्याय हैं। जिनमें मन्वन्तरों का वर्णन, गजेन्द्र मोक्षम्, समुद्र मन्थन, वामन अवतार, बलि चरित्र और मत्स्य अवतार कथा।

नौवें स्कन्ध में 24 अध्याय हैं, जिनमें सूर्य और चन्द्र वंश का वर्णन है, इक्ष्वाकु का जन्म, शेषात् राजाओं का चरित्र, अंबरीश उपाख्यान, इक्ष्वाकु वंश के राजाओं का वर्णन। भगवान् श्रीराम का मंगलमय चरित्र का वर्णन। बाद में राजा निमि के वंश का वर्णन। चन्द्र वंश में परशुराम, दुष्यन्त, रन्ति देव, भरत, नहुष, ययाति और यदुवंश का वर्णन है।

अंत में 2 श्लोकों का भगवान् बालकृष्ण का चरित्र सुनाया।

दशम स्कन्ध के प्रारम्भ में राजा परीक्षित का प्रश्न भगवत मेरी तृप्ति नहीं हुई, दो श्लोकों में कृष्ण कथा सुनकर। आप मुझे सम्पूर्ण चरित्र कृष्ण का सुनाइए। दशम स्कंध श्रीकृष्ण का जन्म, पूतना वध, शकटासुर, तृणावृत, बकासुर, वत्सासुर, कालिया दमन, धेनुकासुर, प्रलम्बासुर आदि असुरों का संहार।

दावानल से गोपों की रक्षा। चीर हरण करना। गोवर्धन धारण करना, गोपी-गीत, महारास लीला, युगल गीत, शंखचूड का वध। भगवान् का श्री अक्रूर जी के साथ मथुरा गमन। कुवलयापीड़, चाणुर मुष्टिक आदि का वध, कंस का संहार, कालयवन का वध, द्वारिका निर्माण, रुक्मिणी हरण, प्रद्युम्न का जन्म, शंभरासुर वध, स्यमन्तक मणि का वर्णन, राजा नृग का चरित्र तथा उद्धार, पौण्ड्रक कि वध, भौमासुर वध, शिशुपाल आदि राजाओं का चरित्र और उनका संहार का भी वर्णन हैं। सुदामा जी का चरित्र, वेद स्तुति, भगवान् के अप्राकृतिविहार का वर्णन, इस प्रकार 90 अध्यायों में यह कथा हैं। भगवत के वांड्मय स्वरूप में भगवान् का हृदय है, यानि कि 10 स्कन्ध भगवान् का हृदय है, हृदय के जैसे दो भाग हैं। पूर्वाद्ध एवं उत्तरार्द्ध।

ग्यारहवें स्कंध में 31 अध्याय हैं। जिनमें ऋषियों का यदुकुल को श्राप, मूसल उत्पत्ति, निमि योगेश्वर संवाद कथा में नारद जी का वसुदेव जी को भागवत धर्म का वर्णन कर माया का स्वरूप बताना। निवृत्ति कैसी होती है यह बताया। अवतार चरित्र, कृष्ण उद्धव संवाद में दत्तात्रेय जी के 24 गुरुओं का वर्णन करते हुए सत्संग महिमा

बताई। 18 सिद्धियों का वर्णन किया, धारणाओं का वर्णन किया, विभूति योग का वर्णन किया, वर्णाश्रम, सांख्य योग, परम योग, ब्रह्म मीमाँसा और यदुकाल का संहार करके भगवान् का परम धाम गमन।

12वें स्कन्ध में 13 अध्याय हैं, श्रीमद्भागवत में भविष्य में कलयुग में कौन-कौन से राजा हुए हैं उनका वर्णन हैं। युगधर्म और कल्कि अवतार, विष्णु यश ब्राह्मण के घर भगवान् अवतार लेंगे। कलि काल के अंतिम चरण में इसकी 4,32,000 वर्ष आयु बताई हैं। इस प्रकार भागवत में कल्कि अवतार के विषय में बताया है।

चार प्रकार के प्रलय के बारे में बताया है–

1. नित्य प्रलय
2. नैमित्यिक प्रलय,
3. आत्यन्तिक प्रलय,
4. महा प्रलय।

इस प्रकार चार प्रलय के बारे में बताकर भगवान् के नाम की महिमा भी बताई हैं। परीक्षित का मृत्यु, भय निवारण और मोक्ष, वेदों की शाखाओं का वर्णन हैं। सर्वप्रथम ऋग्वेद अकेला वेद था। वेदों को स्मरण करने के लिए वेदव्यास जी ने चार भाग में बाँट दिया ऋग्वेद को। ऋग, साम, यर्जु, अथर्व।

मार्कण्डेय जी का चरित्र, सूर्य के व्यूह का वर्णन हैं। पुराणों की संख्या का वर्णन हैं। उनमें कितने पुराण हैं, और उन पुराणों में कितने कितने श्लोक है। अंत में सब की ओर से शुकदेव जी महाराज ने भगवान् के चरण में प्रणाम करते हुए प्रार्थना की है। यह श्लोक गीता और भागवत दोनों में हैं। यह अन्तिम श्लोक जिन्हें याद है मेरे साथ बोले, जिन्हें याद नहीं हैं वे एक मिनट तक आँख बंद कर श्रीकृष्ण का प्रणाम करते हुए प्रभु के चरण कमलों में ध्यान करें।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः
स्तवैवेदैः सांगपदक्रमो पनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यंयोगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः

(श्रीमद्भागवतम् 12.13.1)

अन्तिम दो श्लोकों का मुख से उच्चारण करने से अनेक राजसीय और वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतो यथा।
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा।
क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमाः।
तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः।
(श्रीमद्भागवतम् 12.13.16, 17)

जैसे निम्नगामी नदियों में गंगा सर्वोत्तम है, देवताओं में से अच्युत भगवान् श्रेष्ठ हैं, वैष्णवों में शंकर श्रेष्ठ हैं। पुराणों में भागवत् श्रेष्ठ हैं। क्षेत्रों में काशी को उत्तम माना जाता हैं। उसी प्रकार समस्त पुराणों में श्रीमद्भागवत को ब्राह्मण लोग श्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवत स्वरूप हैं।

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्तवं नो यतः प्रभो।
(श्रीमद्भागवतम् 12.13.22)

इस श्लोक का अर्थ बताया है कि भागवत् कथा को सुनकर हमें भगवान् से क्या माँगना चाहिए। यही, हमें श्री वृन्दावन बिहारी नन्दनन्दन अकारण करुणा वरुणालय श्रीकृष्ण से प्रार्थना करें कि जब-जब मेरा जन्म संसार में हो, इतनी कृपा करना हे वृन्दावन बिहारी कि आपके चरण कमलों की याद हमें हमेशा बनी रहे। मैं आपके चरण कमलों को न भूलूँ–

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुखःशन मस्त नमामि हरिं परम्।
(श्रीमद्भागवतम् 12.13.23)

इसका अर्थ है कि जो श्रद्धा से भागवत् कथा सुनते हैं। कीर्तन करते हैं तो कथा का फल मिलता हैं। नाम संकीर्तन से क्या मिला? अंतिम श्लोक में कहा है कि–

"नाम संकीर्तन् यस्य सर्वपाप प्रणाशनम्"

सारे पाप दूर हो जाते हैं और–

"प्रणामो दुखःशमनस्तं नमामि हरिं परम्"

परमात्मा को प्रणाम करने से सारे दुख दूर हो जाते हैं। नाम लेने से पाप, दूर होते हैं और प्रणाम करने से दुख दूर होते हैं। आपने देखा होगा कि मोहर का अक्षर उल्टे होते हैं। जब छपता है अक्षर सीधा बन जाता हैं। इसी तरह विधाता ने हमारे मस्तक पर कुछ उल्टी रेखाएं लिख दी जब हम इस मस्तक को गुरु गोविन्द के चरणों में झुकाते

हैं तो वे उल्टी रेखाएं सीधी हो जाती हैं। प्रेम से कहो, जय श्रीकृष्ण। हरे कृष्ण।

इस कथा के माध्यम से सबसे पहले सान्निध्य, स्थान ओर वक्ता आपको मिल गए। सान्निध्य, देवालय ठाकुर जी का साथ मिला, स्थान भी अच्छा मिला, वक्ता टूटे–फूटे शब्दों वाले मिले।

मैं अपने प्रभु श्री वृन्दावन बिहारी लाल जी के चरण कमल में, राधा पार्थ सारथी जी के चरण कमल में प्रार्थना कर रहा हूँ कि जितने भी भक्त जन इस ज्ञान महायज्ञ में भाग लिया है, उनकी तरफ से अपने प्रभु श्री श्यामसुन्दर भगवान् के चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि इनके जीवन में सुख–शान्ति, समृद्धि और भगवान् आपको अपने चरणों की भक्ति प्रदान करे।

इति द्वादश स्कन्धः समाप्तः

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा करिश्चत् दुखभाक भवेत।।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

पूर्णाहुति

विश्राम

ठाकुर जी की आरती।

लेखक परिचय



कथा व्यास पूज्य सन्त
श्री राधा दामोदर दास जी विलक्षण प्रतिभा के धनी

श्रीमद् भागवत कथा का गायन, पारायन और श्रवण प्राचीन काल से ही वेदों से निसृत श्रीमद् भागवत पुराण की सरस वाग्धारा निरन्तर अबाध गति से प्रवाहित होकर इस धरातल पर सांसारिक मोह जाल के पाश में आबद्ध एवं अतृप्त

मानव–जीवन में नवीन चेतना का संचार करती हुई उसे आध्यात्मिक सुख प्रदान करने के साथ–साथ संसार को माया जाल से मुक्त कराने का निरन्तर प्रयास कर रही है। इसी परम्परा को आगे बढ़ाने का सत्कार्य करने में लगे हुए श्रद्धेय सन्त श्री राधा दामोदर दास जी का आगमन उसी कुलीन परिवार में 7 सितम्बर, 1956 में हुआ है जो भागवत सतसंग में रूची रखता है। सन्त जी का परिवार पश्चिमी बंगाल में निवास करता था, पिता वन विहारी, माता अन्नपूर्णा देवी का लाडला बालक दामोदर या नयन मनि, आँखो का तारा, उच्चशिक्षा प्राप्त कर धीर स्थिर मेधावी दामोदर उत्तर प्रदेश चले आयें। पश्चिमी बंगाल में अध्ययन रत दामोदर कभी–कभी श्रीधाम मायापुर, जो भगवान् चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव तथा लीला स्थली है, भ्रमण दर्शन करने जाते थे। यही से बालक दामोदर के हृदय में कृष्णभक्ति की सुगम यात्रा प्रारम्भ हुई।

कालान्तर में आप श्री वृन्दावन धाम चले आयें, तदन्तर–अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ में प्रवेश पाकर सेवा, पूजा–प्रचार आदि में दृढ़ होकर साथ–साथ श्रीमद् भागवत महापुराण का गहन अध्ययन–पठन मनन तथा अभ्यास अनुशीलन करने लगें। आज संसार के भटकते जीवों के कल्याण के लिये उन्हें आध्यात्मिक सुख की अनुभूति कराने के लिये कृष्ण भक्ति धारा में आनन्दित करने का निरन्तर प्रयास कर रहे है। आप के ऊपर यही भगवत कृपा है कि आप अनेक कठिनाईयों का सामना करते हुए भी आप दुर्गम गाँवों में जाकर कथा प्रसार करते हैं जहाँ जाना और रहना दोनों ही दुष्कर है। अपने लक्ष्य को पूरा करने में आपको उन कठिनाईयों में भी नवीन आनन्द का अनुभव होता है। आज तक आप समुचे भारत वर्ष तथा बांग्लादेश में असंख्य भागवत कथा कर चुके हैं। वह सब भगवान् की कृपा का प्रसाद है, हरि कृपा, गुरूकृपा, सन्त कृपा और भागवत ग्रन्थ कृपा का ही फल है।

आपके द्वारा प्रवाहित भागवत कथामृत का रसपान करते हुए जनता, भक्त उसमें आकंठ डूब जाते है। जितनी बार आपके श्रीमुख से भागवत कथामृत का रसपान किया जाता है उतनी ही पिपासा बढ़ती जाती है। आप का जीवन सीधा–सरल प्रेरणात्मक है। ठाकुर जी के चरणों में प्रार्थना है कि आपका यश संसार में सूर्य की भांति फैलते जाये।

विनित

वैष्णव भक्त समाज